आध्यात्म रामायण भाषा टीका समेत

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

9972

अथाध्यात्मरामायणं भाषाटीकासमेतं बालकांडप्रा०

150/=

इस पुस्तकका सब अधिकार सन् १८६७ ई० २५ एक्टके अनुसार रजिष्टर कराके यन्त्राधिकारीने स्वाधीन रक्खा है

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

बालकांड

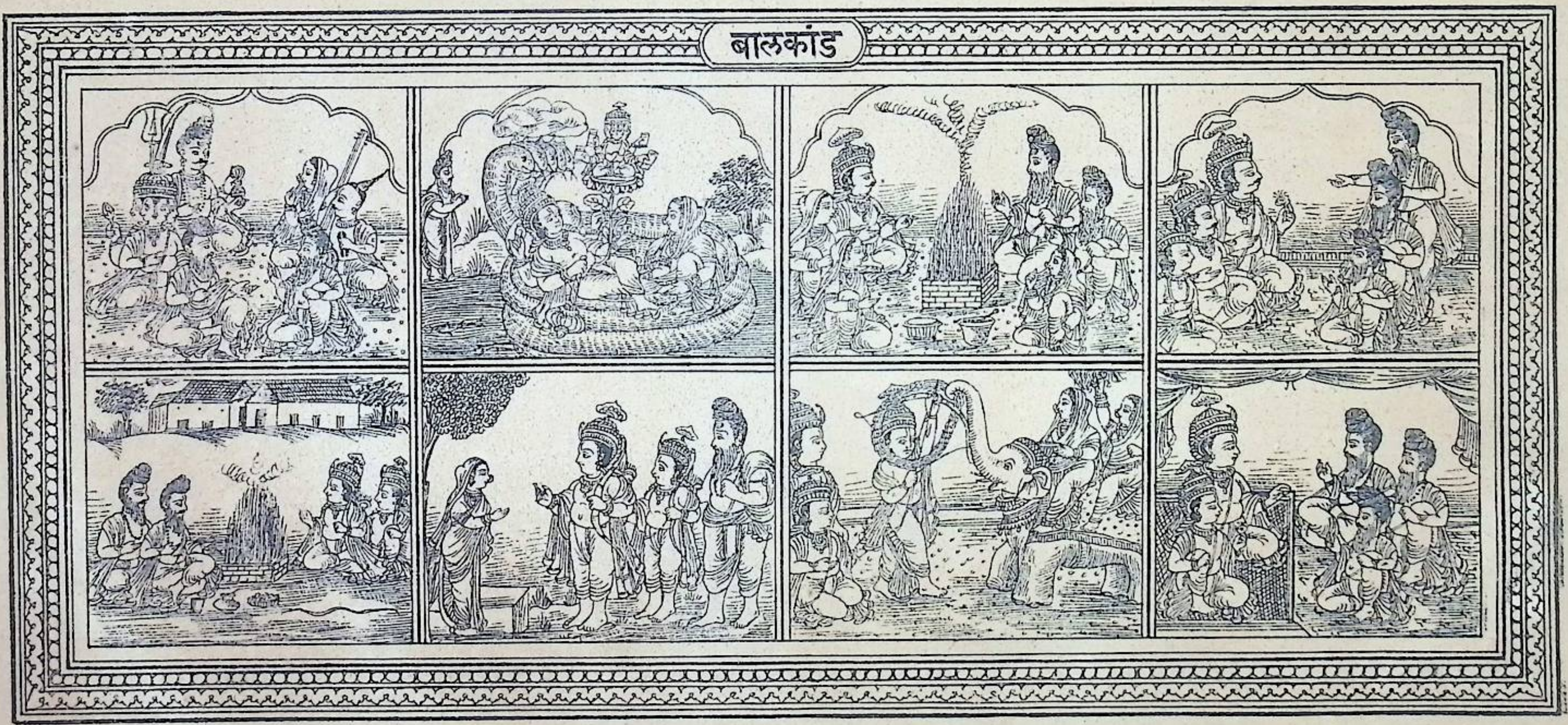

समर्पण–

परमोदार सर्वगुणाकर "श्रीवेङ्कटेश्वर" यंत्राधिप, वैश्यवंशावतंस सेठ–खेमराज श्रीकृष्णदासजी.

प्रियवर ! आप अपनी उदार बुद्धिसे अनेक शुभ कार्योंको तन मन धनसे करकै स्वदेशवासियोंका कल्याण करते हो,धर्मकार्यमें अत्यन्त प्रीति रखकर सर्व साधारणको संतुष्ट रखते हो । सहस्रों ग्रंथ प्रकाशित करके आपने जगत्का महान् उपकार किया है । भवदीय उपरोक्त गुणोंसे मोहित हो यह वेदान्तमय अध्यात्मरामायण आपको अर्पण करताहूं; आशा है कि, इसको आप उदारचित्तसे स्वीकार करैंगे ।

आपका आज्ञाकारी–**बलदेवप्रसाद मिश्र**, दीनदारपुरा मुरादाबाद.

॥ श्रीः ॥

भूमिका ।

बहुत दिनोंसे भारतवर्ष विदेशियोंके दुर्द्धर्ष पराक्रमको सहता चला आता है । कितनी जातियोंने भारतवर्षपर प्रभुताई की, कितनी जातियोंने अपने हाथसे इसकी प्रभुताईको खोदिया, परन्तु भारतवर्षकी स्वाधीनता फिर किसी प्रकारसे फिरकर न आई । अब पराधीनताही भारतवर्षकी अवस्था होकर प्राणरूप होगई है । पुराने रोगीको जैसे करवट लेतेमेंभी कष्ट होता है, वैसेही आज भारतवर्ष कठोर पराधीनतारूपी भीतको लाँघकर एक पैर उठानेमेंभी मानो कष्ट समझता है ।

यद्यपि भारतवर्ष इतना पराधीन होगया है, तथापि आजतक इसकी जीवनशक्तिका नाश नहीं हुआ । मुसल्मानोंके राज्यमें सनातन धर्मावलंबियोंने कितने कष्ट सहेथे; मुसल्मान बादशाहोंने हिन्दुओंको मुसल्मान करनेकी कोशिशमें कोई बात उठानरक्खीथी ? कितनेही सनातनधर्मावलम्बी विनाकारण एक मूर्तिपूजाके अपराधसे भगवत्पद स्मरण करते २ मारे गयेथे । क्रमानुसार न जाने मुसल्मानोंका राज्य कहाँको समागया; और दूरदेश इङ्गलैण्डके रहनेवाले प्रबल पराक्रमकारी अंग्रेज जातिका राज्य आया । इस सुसभ्य अंग्रेज सरकारने हम लोगोंको विद्या सिखानेके लिये कितने सुप्रबंध कियेहैं;परन्तु इस ओर फिर अनेक प्रकारसे अंग्रेज सरकारकी सहायता पाये ख्रिस्टीयधर्मप्रचारक गण, सनातनधर्मावलंबियोंको ईसाई बनानेके लिये कितना परिश्रम और यत्न करते हैं । इतना कष्ट, इतना दबाओ, और इतनी विपदमें रहकरभी सनातनधर्मावलंबियोंका वंश आजतक लोप नहीं हुआ । जो अवस्था अनुकूल हुई तौ कौन कह सक्ता है कि, सनातनधर्मावलंबी फिर अपनी पहली महिमाके साथ नहीं जागेंगे ? सनातन भारतका पवित्र सनातनभाव अबतकभी सम्पूर्णतः नहीं गया है; और न कभी यह सम्पूर्णतः जा सकता है । जबतक वेद उपनिषद् रहेंगे; जबतक रामायण व महाभारतादि इतिहास रहेंगे; तबतक इस पुण्यभूमि भारतवर्षसे सनातनधर्म किसीप्रकार लोप नहीं हो सकता । इस सनातन धर्मके रक्षित होनेसेही अबतक हिन्दूजातिकी स्वतंत्रता बनीहुई है ।

इसप्रकार स्वतंत्रताकी रक्षा होनेसे हिन्दूजातिको एक विशेषपन प्राप्त होगया है । जिसप्रकार कोई वंश वंशपरम्पराके कार्यका अवलंबन कर

ले,तौ उस व्यापार या उस कार्यकी उन्नति स्वभावसेही होती है; वैसेही एक जातिकी स्वतंत्रंता रक्षित होवै, तो उस जातिका विशेषभावभी सहजसेही खिलजाता है; कश्मीरके शाल दुशालोंकी तारीफको कौन नहीं जान्ता ? हिन्दुओंके सनातन धर्मकी दृढ़ता [illegible] कौन नहीं जान्ताहै ? इस प्रकारसे स्वतंत्रताकी रक्षा करनेको पृथ्वीकी और कौनसी जाति कृतकार्य हुई। प्राचीन रोमकगण इससमय कहाँ हैं ? कुछ थोड़ीसी अनिवारित पहाड़ी जातियोंने अचानक आयकर रोमराज्यको अधिकार किया।

धीरे २ रोमक जाति अपने विशेषपनको खोकर कालसागरमें डूबगई। इससमय प्राचीन ग्रीक जातिका आचार, विचार, व्यवहार और धर्म कहाँ है ? प्राचीन पारसियोंका आचार विचार और धर्म इससमय कहाँ है ? इन जातियोंका धर्म और आचार व्यवहार आज केवल इतिहास लिखने वालोंकी लेखनीमें रहगया है।

भारतवर्षके साथ दूसरे देशोंकी ऐसी घोर विषमता होनेका क्या कारण है ? इसका उत्तर केवल एक शब्दमें दिया जासकता है—धर्म। भारतवर्षने धर्मकी रक्षाकी है, और धर्मभी भारतवर्षकी रक्षा कर रहाहै। "धर्मो रक्षति रक्षितः" यह महावाक्य न कभी मिथ्या हुआ न होगा। रोमकादि जातियोंके पूर्व पुरुषोंने पार्थिवविषय लालसासेही हृदयको परिपूर्ण कर रक्खाथा, बस इसकारणसे वह धर्मको प्राप्त नहीं करसके; उन्होंने विषय साधना करके आईन; पदार्थविज्ञान, शिल्पनिपुणता, इत्यादिको प्राप्त किया। भारतीय सनातनधर्मावलंबियोंके पूर्व पुरुषोंने विषयलालसाको दूर बहाय गिरिकन्दर, नदीतीर, गंभीर वनादिके एकान्त स्थानमें छिपकर अनन्य चित्तसे ब्रह्मसाधन करके अनुपम धर्म प्राप्त कियाथा। वही धर्म इस महान् इन्द्रजातिकी रक्षा करनेको समर्थ हुआ है; मैं यह नहीं कहना चाहता; कि हमारे यहाँ पदार्थविज्ञान या शिल्पनिपुणता आदि विद्या नहींथी। इस भारतवर्षके सिवाय सबसे पहले और किस देशमें गणितका प्रचार हुआथा ? इस भारतवर्षके अतिरिक्त और किस देशमें सबसे पहले ज्योतिष विद्याका आगमन हुआथा; और कहाँपर उपरोक्त विद्याकी उन्नति हुईथी ? परन्तु इन पार्थिव विद्याओंको ऋषिलोग नीचीपदवी देकर केवल ब्रह्मविद्याकोही श्रेष्ठ कहगये हैं, "अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।"

इस धर्मरक्षा करनेको प्राणपणसे चेष्टा करनाही देश विदेशमें हिन्दुओंके यशप्रचारका कारण हुआ है[1] इसके लिये विलायतके पंडितगणभी हिन्दुओंकी प्रशंसा करते हैं वह केवल हिन्दूजातिहीकी प्रशंसा नहीं करते, वरन् जिन शास्त्रोंके कल्याणसे हिन्दूजाति धर्मभावको इसप्रकारसे पुष्ट करनेमें सफल हुई, उन हिन्दुशास्त्रोंकोभी वह विलायती पंडितगण कंठका भूषण और शान्तिका जल कहकर ग्रहण करते हैं। जर्म्मन (शर्मण्य) देशका विख्यात दार्शनिक सोपेनहीर (Schopenhauer) कहता है कि "वह उपनिषद्ही हैं; जिन्होंने इस जीवनमें मुझको शान्तिदी; और परकालमेंभी शान्ति देंगे।" बड़े दुःखकी बात है कि, आजकाल हिन्दूलोग अपनी मर्यादाको यहाँतक भूल गए हैं कि जबतक विलायतके पंडित हमारे अमोल शास्त्रोंको भला न कहैं, तबतक वह मानो अपने शास्त्रोंकी ओर देखनेमेंभी लजाते हैं; जब अंग्रेज़ पंडित कहदेते हैं, जब कहीं एकवार शास्त्रोंपर नज़र फेर गये तो फेरगये। हमारे एक परममित्र किसी कारणसे बहुत दिनोंतक हिन्दूधर्मपर श्रद्धाहीन रहेथे।किन्तु पीछेसे उन्होंने एकवार इङ्गलैण्ड जायकर अध्यापक मोक्षमूलरसे मुलाक़ात की। मोक्षमूलरने उनसे कहा 'तुम लोग हमको अंग्रेज़ीमें क्या सिखाओगे?। यदि कुछ सिखा सकतेहो तो वह केवल उपनिषदादिका ब्रह्मज्ञान है'। फिर उन हमारे परममित्रने भारतवर्षमें आय किसी विशेष अवसरपर कहा "जर्म्मनि इङ्गलैंड एमरीका, इत्यादि देशोंमें जायकर जहांपरभी तुम अपनेको हिन्दू बताओगे; वैसेही वहांके निवासी आदरमानसे तुमको नमस्कार करेंगे। यह नमस्कार तुमको नहीं, वरन् हिन्दू होनेसे तुम्हारे जातीय धर्मको है वास्तवमें ऋषिलोगोंके साधन फलसे आजतक इस हिन्दूजातिके शास्त्रग्रंथ केवल हिन्दूजातिको नहीं, वरन् समस्तधार्मिक संसारको निर्मल प्रकाशके उजालेमें मोक्षमार्गकी ओर चलारहेहैं। इसी धर्मके प्रभावसे आज स्वामी विवेकानंदजीने तमाम एमरिका देशमें नाम पाया है।

---

[1] इस धर्मरक्षाका भाव रहनेसे हिन्दु बंधुओंके मुखपर और जातिवाले कैदियों की अपेक्षा श्री और सद्भाव अधिक रहता है। सुप्रसिद्ध चार्लस डार्विननेभी यह माना है। इन महाशयने पोर्ट लुई शहर (अण्डामान द्वीप–कालेपानी) में हिन्दु बंधुओंकी श्री देखकर कहाहै कि वे "Were such noble looking persons." इन्होंने औरभी लिखाहै;– "These men are generally and well-conducted; from their outword conduct; their cleanliness and faithful observance of their strange religious rites, it is impossible to look at them with the same eyes as on our wretched convicts in New South Wales"

(A Naturalist's Voyage Round the World, P. 484.)

अध्यात्मरामायणका प्रभाव ।

हिन्दूजातिका धर्म भाव ऐसा नहीं है, कि आज है कल नहीं । उन धर्म भावोंने वेद वेदरूप गोमुखीसे गंगाकी धारके समान चले आयकर सनातन धर्मावलंबियोंके हृदयको हरा भरा कर रक्खा है । उपनिषद्, वाल्मीकिरामायण, अध्यात्मरामायण, तुलसीकृतरामायण, महाभारत और महाभारतान्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतादि अमूल्यशास्त्र ग्रन्थरूप कुण्डसे शाखानदियोंने प्रवाहित होकर गंगाकी धारको परिपूर्ण कर रक्खा है। दिन रात हिन्दुओंके शास्त्रोंसे एकही शब्द उठ रहाहै 'येनाहं नाऽमृता स्याम् किमहं तेन कुर्याम् " जिसके द्वारा अमृत स्वरूपका संग प्राप्त करकै अमर ना हूं, तिसको लेकर मैं क्या करूंगा ? यह उदास व उदारगीत हिन्दुओंके हृदयरूपी तारमें सदासे गुंजार कर रहाहै; अब आयुकी अल्पतासे हो, अथवा समझनेकी कष्टतासेही हो, वेदादिशास्त्रका समस्त पढ़ना पढ़ाना एक प्रकार हिन्दुस्थानसे उठही गयाहै, तथापि व्यासजीकी और वाल्मीकिजीआदि ऋषिलोगोंकी कृपासे हिन्दुओंके हृदयसे धर्मभाव लोप नहीं हो सकताहै । युग २ से महर्षि वाल्मीकिजी व व्यासजीकी कीर्तिनेही समस्त हिन्दूजातिमें प्रत्यक्ष और परोक्षभावसे पवित्र धर्मकी धारको प्रवाहित कररक्खाहै आनंदकी बात है कि, आजतक हिन्दू सन्तान रामायणादि ग्रन्थोंका पठन पाठन किये जातेहैं।

यह शोच समझकर कि आजकल मनुष्यगण ज्ञानचर्चामें मन लगातेहैं अध्यात्मरामायणका भाषानुवाद कियागया । क्योंकि संस्कृत भाषाको सर्व साधारण नहीं समझते, बरन् अपनी मातृभाषा संस्कृतसे हम भारतवासियोंने इतना मुँह फेराहै कि भली भाँतिसे संस्कृत जाननेवाले पोरुओंपर गिने जा सकतेहैं । इसके साथ भाषानुवाद करनेका एक यहभी हेतु है कि प्रत्येक सम्प्रदायके पंडितगण अपनी २ रुचिके अनुसारही अर्थ किया करतेहैं; यहाँतक कि, कोई २ सेतुबंधके प्रसंगसे महादेवजीका पूजनही एक कलम उड़ाये देतेहैं, कोई दूसरे महात्मा आदिशक्ति व विष्णुजीका अवतारही नहीं मानतेहैं, कोई लौकिक प्रसंग लगाकर रामायणको घरेलू झगड़ा बतलातेहैं; बस इन लोगोंके ऊंटपटांग अर्थ करनेसे मनुष्योंके मनको भ्रम होजाताहै,और वे चट अपने धर्मसे आस्था छोड़ इधर उधरके मार्गोंमें भूले भटकते फिरा करते हैं । यही कारणहै कि, हमने पक्षपातरहितहो मूलके अनुसार भाषानुवाद कियाहै; शंकाओंका समाधान टीका टिप्पनी व कहीं २ विषमपदकी व्याख्याभी करदी गईहै; हमारे इस भाषानुवादसे उन महापापोंको जो कि मनमाना घर जाना अर्थ लगाया करतेहैं–अवश्य कष्ट होगा, वे तो यही कहेंगे कि "भाषाकरकै

पृथ्वीका गौरव घटादिया, इस लोभका क्या ठिकानाहै? " इसका उत्तर यही दिया जासकताहै कि " महाशयगण ! अब वह समय चलागया। कि जब आप लोग सबको एकही लकडीसे हाँकतेथे। अब 'मकर' 'तुला' व 'धन' केही जानलेनेसे आपका पचडा संसारको नहीं ठग सकता " अतएव ऐसे गुणवानों (?) की शुभवार्ता (?) पर ध्यान न देकर अपने कर्त्तव्यकार्य पर लक्ष दियागया;–

आदिकवि मुनि वाल्मीकिजीने श्रीरामचरित्ररूप महारामायण निर्माणकर तिसमें सर्वाधिष्ठान ब्रह्मरूप श्रीराम श्रीरामचंद्रजीके स्वरूपकी स्तुति आदिके प्रसंगसे बहुतही गुप्त कथाओंका वर्णन कियाहै। और इन कथाओंको सदाशिवजीने पार्वतीको ब्रह्मविद्याका बोध करनेके लिये कहा। उसका स्पष्ट २ अर्थ परमदयालु श्रीवेदव्यासजीने ब्रह्माण्डपुराणके अन्तर्गत श्रीअध्यात्मरामायणनामक रचा, जो अध्यात्मरामायण इसलोक तथा परलोकमें कल्याणदायिनी है; अतएव इसकारणसे यह ग्रन्थ भाषान्तर करकै आप लोगोंकी सेवामें अर्पण किया जाताहै।

अब इतनाही कहनाहै कि, अध्यात्मरामायणमें जो वेदान्तविषयकी कथाहै उनमें कदाचित् कहीं भूल चूक हुई हो सो गुणग्राही पाठकगण शुद्ध करकै पढ़ैं, और मेरे अपराधको क्षमा करैं। कारण कि न मैं कोई विद्वानहूं, न ग्रंथकर्ताहूं, परन्तु ऐसे कार्यमें चित्त उत्कंठित होताहै।

श्रीमान् ज्ञानवान्, गुणीजन–गुणग्राहक–सर्व लायक, धीर, गंभीर, महामहिम खेमराज श्रीकृष्णदासजीनें इस ग्रन्थके भाषान्तर करनेका मुझे अनुरोध किया। तिनकी आज्ञासे यह कार्य पूर्ण कियागया।

जब कभी लिखते २ और विचारते २ शरीरपर आलस्यका अधिकार होकर मन उत्साहहीन होता तबही तब मेरे परमकृपालु भ्राता कन्हैयालाल मिश्र व लाला शालिग्राम वैश्य, श्रीललताप्रसादशर्मा व सेठ कुन्दनलाल इत्यादि मित्रगण दूना तिगुना उत्साह दिलाकर मेरे अवसादको दूर किया करते अत एव इन अपने मित्रोंको अंतःकरणसे धन्यवाद देकर भूमिकाको समाप्त करताहूं।

आपलोगोंका शुभचिन्तक–
बलदेवप्रसाद मिश्र,
दीनदारपुरा–मुरादाबाद.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेङ्कटेश्वर " छापाखाना–मुम्बई.

॥ अध्यात्मरामायणान्तर्गतविषयानुक्रमणिका ॥

बालकाण्डम् १.

स.	प.	पृ.	विषयाः
१	१	१	ग्रन्थादौदक्षिणामूर्तिनमस्कारमङ्गलपुरःसरंरामायणमाहात्म्यवर्णनम् । ६०.
१	४	२	राममङ्गलपुरःसरंपार्वतीपृष्टमहादेवकृतरामायणोपोद्घातेरामहृदयवर्णनम् । ५६.
२	८	२	ब्रह्मादिस्तुतक्षीरोदधिस्थभगवत्कृतनिजावतारप्रतिज्ञानिर्देशवर्णनम् । ३२.
३	१०	२	दशरथकृतपुत्रेष्टियागेनतद्गृहेचतुर्धाभगवदवतारवर्णनम्, (तत्र पञ्चमश्लोकानन्तरमष्टाशीतिश्लोकात्मकंप्रक्षिप्तमृष्यशृङ्गाख्यानं) बाललीला च । ६६.
४	२०	२	कौशिकमखसंरक्षणार्थंप्रस्थितेनरामेणताटकावधः । ३३.
५	२२	२	विश्वामित्रमखसंरक्षणपुरःसरमहल्योद्धरणम्,तत्कृतस्तुतिश्च ६५
६	२७	१	जानकीपरिणयनम् । ८२.
७	३१	२	परशुरामपराभववर्णनम् । ९७.

अयोध्याकाण्डम् २.

स.	प.	पृ.	विषयाः
१	३७	१	दण्डकारण्यगमनायरावणवधायच नारदसंस्तुतरामचन्द्रकृतप्रतिज्ञावर्णनम् । ४१.
२	३९	२	दशरथेरामस्यराज्याभिषेकोद्युक्तेमंथरामोहितकैकयीनिश्चितराज्याभिषेकप्रत्यूहवर्णनम् । ८३.
३	४४	१	दशरथंशपथैरवरुध्यकैकयीकृतरामचन्द्रदण्डकारण्यगमनरूपवरवर्णनम्, रामचन्द्रस्यपितृप्रतिज्ञापालनायतद्वरस्वीकरणपुरःसरंकौसल्यामन्दिरगमनम् । ८०.
४	४८	२	श्रीरामचन्द्रस्यलक्ष्मणसान्त्वनपुरःसरंसीतयालक्ष्मणेनचसहदण्डकारण्यगमनसंनाहः । ८७.
५	५३	२	सीतालक्ष्मणसमन्वितस्यरामचन्द्रस्यदण्डकारण्यप्रस्थानम्, तत्रादौ शृङ्गवेरपुरेगङ्गोपकण्ठंनिवासवर्णनम् । ७३.
६	५७	२	गुहाश्वासनपुरःसरंरामचन्द्रस्यवाल्मीक्याश्रमगमनम्, तत्रमुनिभिःसह सुखनिवासवर्णनं च । ९२.

स.	प.	पृ.	विषयाः
७	६२	२	अयोध्यायांसुमन्त्रागमनोत्तरंदशरथप्राणप्रयाणप्रसङ्गवर्णनम् , मातुलकुलाद्भरतागमनम् , रामानुगमनेभरतप्रतिज्ञाच । ११४.
८	६९	१	वसिष्ठोपदिष्टस्यापिभरतस्याधिराज्यतिरस्करणपुरःसरंरामचन्द्रसंनिधिंप्रतिगमनम् । ६६.
९	७२	२	श्रीरामचन्द्रसंनिधिंगतस्यभरतस्यरामानुगमनेदृढनिश्चयः, रामचोदितवसिष्ठोपदिष्टस्यभरतस्यरामपादुकास्त्रीकरणपुरःसरंनंन्दिग्रामेवन्यवृत्त्यानिवासवर्णनम् । रामचन्द्रस्यात्र्याश्रमगमनवर्णनम् । ९२.

आरण्यकाण्डम् ३.

स.	प.	पृ.	विषयाः
१	८०	१	अथात्रिशिष्यप्रदर्शितमार्गस्यरामचन्द्रस्यदण्डकारण्यप्रवेशः, तत्रविराधवधवर्णनम् । ४६.
२	८२	२	शरभङ्गसायुज्यदानपूर्वकंमुनीनांतपोवनस्थितिनिरीक्षणम् , ततश्चाग्निजिह्वाश्रमगमनवर्णनम् । ४१.
३	८५	२	अग्निजिह्वेनसहरामचन्द्रस्यागस्त्याश्रमगमनवर्णनम्, अगस्त्यकृतपरब्रह्मविराड्रूपस्थितिवर्णनम् । ५०.
४	८८	२	मार्गेजटायुःसमागमः, पञ्चवट्यांकुटींनिर्मायनिवासः, लक्ष्मणायतत्त्वज्ञानोपदेशः । ५५.
५	९१	२	लक्ष्मणेनशूर्पणखायाविरूपकरणम् , खरदूषणादीनांवधः, रावणंप्रतिशूर्पणखयापञ्चवटीस्थवृत्तान्तवर्णनम् । ६१.
६	९५	१	रावणचोदितमारीचस्यमाययासुवर्णमृगरूपधारणपुरःसरं पञ्चवट्यांरामाश्रमंपरितःसंचारवर्णनम् । ४१.
७	९७	१	मायासीतानिर्माणपुरःसरंरामचन्द्रकृतमारीचवधः, म्रियमाणमारीचस्यरामसदृशवचःश्रवणेनसंदिग्धायाःसीतायानिष्ठुरवचनासहिष्णोर्लक्ष्मणस्यरामं प्रतिगमनानन्तरंभिक्षुरूपधारिरावणकृतजानकीहरणवर्णनम्, रावणजटायुर्युद्धवर्णनम् ।६६.
८	१०१	१	सीतान्वेषणार्थंनिर्गतस्यरामचन्द्रस्य जटायुषऔर्ध्वदेहिककर्मकरणम्, दिव्यदेहिजटायुःकृतरामचन्द्रस्तुतिवर्णनम् । ५६.
९	१०४	२	कबन्धवधः, तत्कृतरामचन्द्रस्तोत्रम् । ५६.
१०	१०८	१	शबर्याश्रमगमनम्, तत्कृतसंमानसंतुष्टरामचन्द्रेणतांप्रतितत्त्वज्ञानोपदेशः । ४४.

किष्किन्धाकाण्डम् ४.

स.	प.	पृ.	विषयाः
१	११२	१	अथ श्रीरामचन्द्रस्यपम्पासरोवरगमनम्, तदुपान्तस्थर्ष्यमूकपर्वतेहनूमत्कारितरामसुग्रीवसख्यवर्णनम्,सुग्रीवकृतरामपरीक्षा।९३.
२	११७	२	सुग्रीवनिमित्तंरामचन्द्रकृतवालिवधवर्णनम् । ७१.
३	१२२	१	तारासान्त्वनपुरःसरंलक्ष्मणद्वाराकिष्किन्धायांसुग्रीवराज्याभिषेककरणवर्णनम्, रामचन्द्रस्यप्रवर्षणगिरौचातुर्मास्यपर्यन्तंवासवर्णनं

स.	प.	पृ.	विषयाः
			च । ३५.
४	१२५	२	प्रवर्षणगिरौरामपूजनंप्रतिलक्ष्मणेनपृष्टोरामचन्द्रोयथाविधिशास्त्रदृष्टपूजाप्रकारंसविस्तरमनुजायाह । ५४.
५	१२९	१	रामशोकमसहिष्णोर्लक्ष्मणस्यसुग्रीवभीषणायकिष्किन्धां प्रतिगमनम्, ततःसर्ववानरैःसहसुग्रीवस्यरामसमीपं प्रत्यागमनम् । ६३.
६	१३२	२	रामज्ञयासीतान्वेषणार्थंदशदिक्षुसुग्रीवेणवानरप्रेषणम्, तत्रहनूमदादीनांदक्षिणमार्गप्रस्थानेगह्वरस्थस्वयंप्रभासमागमः, तस्याः श्रीरामोपसदनं, परमपदप्राप्तिवर्णनं च । ८४.
७	१३८	१	सीतामन्वेषयतामपितच्छोधमनधिगतवतांचिन्तातुराणांहनूमत्कृतसमाश्वासनेनकथंचिद्धैर्यावलम्बिनांवानराणां दक्षिणसमुद्रतीरेपुनर्निराशानांप्रायोपवेशनेसंपातिनासहसमागमवर्णनम् । ५६.
८	१४१	२	संपातिकथितस्वकीयवृत्तान्तवर्णनम् । ५५.
९	१४४	२	वानराणांसमुद्रतरणेबलपरीक्षणचर्चायांहनूमतोबलिष्ठत्वेनसीतान्वेषणार्थं सर्ववानरकृततत्प्रशंसावर्णनम्, हनूमतःसमुद्रतरणसंनहनवर्णनम् । २९.

सुन्दरकाण्डम् ५.

स.	प.	पृ.	विषयाः
१	१४९	१	अथहनूमतःसमुद्रोल्लङ्घनम्, तत्रदेवप्रहितायैसुरसायैनिजकौशलपरीक्षादानम्, मैनाकानुग्रहणम्, सिंहिकावधः, लङ्काप्रवेशः लङ्कादेवीपराभवः । ५८.
२	१५२	२	अशोकद्रुमखण्डगस्यहनूमतोजानकीदर्शनम्, रावणकृतजानकीतर्दननिरीक्षणम्, त्रिजटास्वप्नवर्णनम् । ५८ .
३	१५६	१	हनूमत्कृतरामचन्द्रसंदेशवर्णने रामचरित्रवर्णनम्, जानक्याःप्रत्यक्षदर्शनम्, प्रत्ययार्थमुद्रिकादानम्, जानकीसमाश्वासनम्, रामप्रत्ययार्थंसीतायाश्चूडामणिशक्रकाककथाग्रहणम्, स्वस्य महारूपदर्शनम्, उपवननिर्दलनम्, नानाराक्षसवधः, इन्द्रजिताब्रह्मास्त्रेणमिषमात्रनिबद्धस्यमरुत्पुत्रस्य कार्यगौरवार्थं रावणसभागनम् । १००.
४	१६२	१	रावणायहनूमत्कृतसान्त्वबोधः हनूमल्लांगूलेऽग्निदीपनम्, हनूमत्कृतलंकादहनम् । ४७.
५	१६६	२	जानक्याज्ञयाहनूमतोलङ्कातःप्रस्थानम् समुद्रतरणम्, सुग्रीवस्य मधुवनविध्वंसनम्, रामचन्द्रसमीपंप्रतिसर्ववानराणामागमनम् । सीतासंदेशनिरूपणम् । रामस्यहनूमति प्रसादवर्णनम् । ६४.

युद्धकाण्डम् ६.

स.	प.	पृ.	विषयाः
१	१७२	१	अथ हनूमत्कथितलङ्कावृत्तान्ताकर्णनेन रामचन्द्रस्यसर्ववानरैः

स.	प.	पृ.	विषयाः
			सहदीक्षणाब्धिकूलं प्रत्यागमनवर्णनम् । ५४.
२	१७५	२	लंकायांहनूमत्कृत्यचर्चावसरेविभीषणेनसम्यगवबोधितस्यापिप्रमत्तस्य रावणस्यक्रोधातिशयं दृष्ट्वाविभीषणस्य स्वमन्त्रिभिः सहोदधिपारतीरेरामचन्द्रोपसदनम् । ४६.
३	१७८	२	स्वशरणं प्रपन्नस्य स्तवनं कुर्वतो विभीषणस्य समुद्रतीर एव रामचन्द्रकारितलंकाधिराज्याभिषेकवर्णनम् रावणप्रहितशुककृतसंदेशनिवेदनम्, समुद्रनिग्रहः, तत्कृतस्तुतिः सेतुन्बधनाय नलं प्रत्याज्ञादानम् । ८७.
४	१८४	२	सेत्वारंभे रामेश्वरलिंगप्रतिष्ठा, निबद्धसेतुमार्गेण लंकानिकटवर्तिसुवेलाद्रिगमनम्, लंकानिरीक्षणम्; शुकेन रावणं प्रतिरामवृत्तनिवेदनम्. रावणकृतरामसैन्यनिरीक्षणम् , शुककृतोरावणं प्रत्युपदेशः । ५६.
५	१८७	२	क्रोधोद्धतरावणनिर्भर्त्सितस्य शुकस्य निर्वेदेन स्वगृहगमनम्, तस्यपूर्ववृत्तान्तवर्णनं च,रावणकृतसदुपदेशकमाल्यवन्मातामहतिरस्कारः, रामकृतमुकुटच्छेदलज्जितरावणप्रहितराक्षसानां वानरैः सहमहायुद्धवर्णनम् । हनूमता द्रोणाचलानयनेन सर्ववानरसंजीवनम्, पुनारक्षोवानरमहायुद्धम् । ८६.
६	१९२	१	रामरावणयुद्धवर्णनम्, लक्ष्मणोपरि शक्तिपातः, पुना रामरावणयुद्धम्, द्रोणाचलानयनाय हनूमतोगमनम्, हनूमद्विघ्नसमुद्यताय रावणाय कालनेमिकृतसदुपदेशः । ६३.
७	१९६	१	क्रुद्धरावणनिदेशान्मध्येमार्गं समागतस्य कालनेमेर्हनूमत्कृतवधवर्णनम्, द्रोणाचलानयनेनलक्ष्मणसंजीवनम्, युद्धार्थमुत्थापितकुम्भकर्णनिवेदितनारदोद्गीतरामचन्द्रावतारकारणोपन्यासः ।७०.
८	२००	१	रामचन्द्रेण कुम्भकर्णवधेकृते देवादिकृता रामचन्द्रसपर्या स्तुतिश्च, इन्द्रजित्कृताभिचारमखविध्वंसनाय विभीषणेन लक्ष्मणानुज्ञायैरामचन्द्रप्रार्थना । ६८.
९	२०४	२	विभीषणेन वानरसैनिकैश्च सह रामाज्ञयाप्रस्थितेन लक्ष्मणेन निकुम्भिलास्थेनेन्द्रजिता महायुद्धे लक्ष्मणकृतेन्द्रजिद्वधवर्णनम्, सीताहननोद्युक्तस्य रावणस्य मन्दोदरीकृतनिवारणम् । ६८.
१०	२०८	२	रावणकृताभिचारयागेऽङ्गदादिकृतमन्दोदरीविडम्बनम्; यागविध्वंसः रावणकृतमन्दोदरीसान्त्वनम् । ६१.
११	२११	२	पुनःश्रीरामेण सह रावणस्यावशिष्टसमस्तराक्षसैः सहान्त्यमहायुद्धे रावणस्य परमपदश्रीरामसायुज्यप्राप्तिवर्णनम् । नारदकृतभगवत्प्रशंसा । ८८.
१२	२१७	१	विभीषणमन्दोदर्यादिसान्त्वनपुरःसरं विभीषणेन रावणादीना-

स.	प.	पृ.	विषयाः
			मौर्ध्वदैहिककर्मकरणम्, मातले रामानुज्ञया स्वर्गगमनम्, जानकीसमानयनम्, तस्याः शुद्धतापरीक्षणाय वह्नौप्रवेशः ८४.
१३	२२२	१	इन्द्रादिदेवानांरामचन्द्रसमीपं प्रत्यागमनम्,ब्रह्मकृतराचन्द्रस्तुतिः अग्निकृतशुद्धसीतासमर्पणम्,इन्द्रकृतरामचन्द्रस्तुतिः, इन्द्रकृतामृतवर्षणेनमृतसमस्तवानरसंजीवनम् सर्ववानरैःसहरामचन्द्रस्य पुष्पकविमानाधिरोहणम् । ६०.
१४	२२७	१	श्रीरामचन्द्रस्य मैथिल्यैयुद्धादिप्रदेशप्रदर्शनपूर्वकं भरद्वाजाश्रमगमनम् । नन्दिग्रामे भरतादिसमागमवर्णनम् । १००.
१५	२३२	२	श्रीरामचन्द्रस्यायोध्यागमनानन्तरं राज्याभिषेकमहोत्सववर्णनम्, महादेवकृतरामचन्द्रस्तोत्रवर्णनम्, इन्द्रादिकृतनिजमहानन्दोद्गारवर्णनम् । ७५.
१६	२३९	२	रामचन्द्रे महीं शासति सति समस्तजगन्महानन्दवर्णनम्,समस्तवानरेभ्यःपारितोषिकप्रत्यर्पणम्, हनूमते चिरंजीवत्ववरप्रदानम्, सुग्रीवविभीषणादीनां स्वस्वदेशगमनानुज्ञानम्, चरित्रपठनश्रवणमहाफलवर्णनम् । ४९.

उत्तरकाण्डम् ७.

स.	प.	पृ.	विषयाः
१	२४५	१	अथ श्रीरामचन्द्रदर्शनार्थंसहसमस्तमुनिमण्डलेनागस्त्यमहामुनिसमागमः,अगस्त्यमुनिकथितरावणाद्युत्पत्तिवर्णनम् । ६३.
२	२४८	२	रावणादिकृततपस्यासंतुष्टपरमेष्ठिदत्तवरप्रदानम्,लंकातः कुबेरोत्सारणम्, रावणादीनां विवाहादि, रावणकृतत्रैलोक्यविजयवर्णनम्, रावणस्यशापपराजयादिवर्णनम्, रावणवधापेक्षयेन्द्रजिद्वधेनलक्ष्मणप्रशंसा, रामस्य सर्वशक्यत्वानुविधायकस्वरूपवर्णनम् । ७७.
३	२५३	१	अगस्त्यमुनिकथितवालिसुग्रीवजन्मवृत्तान्तवर्णनम्, रावणकृतसीताहरणेहेतूपन्यासः । ६०.
४	२५६	२	श्वेतद्वीपनिवासियोषित्कृतयोद्धुकामरावणपराभववर्णनम्, अगस्त्यस्य स्वदेशगमनम्, शूद्रमारणेन रामचन्द्रकृतब्राह्मणसुतसंजीवनम्, रहोमन्त्रितलोकापवादभीत्याजानक्यास्तपोवनपरित्यागवर्णनम् । ६३.
५	२६०	२	लक्ष्मणपृष्टरामचन्द्रकथितरामगीतापरपर्यायकतत्त्वज्ञानोपदेशवर्णनम् । ६२.
६	२७१	२	रामचन्द्रप्रेरणया शत्रुघ्नकृतलवणासुरवधमथुरानगरस्थापनवर्णनम्,कुशलवोत्पत्तिः, अश्वमेधावसरे यज्ञवाटमध्ये वाल्मीकिना कुशाय परमगुह्यतत्त्वबोधोपदेशकरणम् । ५६.
७	२७५	१	वाल्मीकिकृतपुत्रसमर्पणम्, सीतायाः स्वशुद्धये प्रतिज्ञाकरणपु-

स.	प.	पृ.	विषयाः
			रःसरं भूविवरद्वारा स्वधामगमनम्, कौसल्यायै रामचन्द्रकृततत्त्वबोधोपदेशः कौसल्यायाः सायुज्यप्राप्तिः, कैकेय्यादिराममातृणांस्वर्गगमनम् । ८४.
८	२८०	१	रामानुज्ञया भरतस्य गन्धर्वविजयार्थं गमनम्, ब्रह्मादिदेवप्रेरणया रामसमीपं प्रति कालस्यागमनम्, रहोरक्षणपुरःसरं द्वयोःसंवादः, संवादान्तेदुर्वाससोमुने रामसमीपं भोजनाशयागमनम्, प्रतिज्ञाभङ्गभिया रामकृतलक्ष्मणपरित्यागे लक्ष्मणस्य सरयूतीरे देहत्यागपुरःसरं निजधामगमनम् । ७२.
९	२८४	१	श्रीमद्रामचन्द्रस्य भरतशत्रुघ्नसहितस्य सकलायोध्यास्यमुमुक्षुनरसुग्रीवादिवानरैःसह निजधामसमासादनमहामंगलवर्णनम्। ७४.

इति श्रीमदध्यात्मरामायणस्थविषयानुक्रमणिका श्रीकृष्णदासात्मजखेमराजप्रेरितखानदेशीयरावेरग्रामनिवासिपरशुरामभट्टतनयगोविन्दशर्मशास्त्रिविरचिता सम्पूर्णतामयासीत् । पृ० २८९
शकाब्दाः१८१७ संवद् १९५२आश्विनशुक्ल २ ॥ श्रीः॥शिवम्॥

॥ इत्यध्यात्मरामायणान्तर्गतविषयानुक्रमणिका समाप्ता ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास ‘श्रीवेङ्कटेश्वर’ छापाखाना–मुंबई.

श्रीगणेशाय नमः।

दोहा—श्रीसीतावल्लभचरण, कमल अमल हिय लाय। अध्यातम भाषा रचत, पढ़त सुनत भ्रम जाय ॥ १ ॥
विघ्नहरण गिरिजातनय, गौरीपतिभगवान। वंदि व्यास गुण ज्ञाननिधि, पुनि वंदौं हनुमान ॥ २ ॥
वृक्षनिकी करि लेखनी, करि समुद्रदावात। भूपै गिरा लिखै तऊ, हरि जाने नहिं जात ॥ ३ ॥
ऐसेहि वारिधि शब्द है, अतिहि अगाध अपार। ताहि पैर जावो चहै, पार सो मंद गँवार ॥ ४ ॥
शेष महेश गणेश बुध,शारद लिखचहै शुद्ध। तेपि लिखै सब शुद्ध नहिं, तहँ किमि मेरी बुद्ध ॥ ५ ॥

उपक्रमणिकाध्याय—अप्रमेय [जिसका प्रमाण नहीं कियाजाय और यह समझमें न आवै कि यह इतनाही है] सत, रज, तम, इन तीनों गुणोंसे परे, निर्मलज्ञान मूर्तिस्वरूप, मन और वाणीसे दूर रहनेवाले दक्षिणामूर्ति शिवको मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥ सूतजी बोले, किसीसमय संसारका हितकरनेवाले महायोगी देवर्षि नारदजी समस्त लोकोंमें विचरण करतेहुए ब्रह्मलोकमें आये ॥ २ ॥ वहां पहुँचकर नारदजीने देखा कि सभामें प्रजापति ब्रह्माजी, प्रभात समयके सूर्यकी समान कांतिसे सभाको प्रकाशित कर रहेहैं; मूर्ति धारण करकै वेद ब्रह्माजीकी स्तुति कररहेहैं ॥ ३ ॥ ब्रह्मतेजकी समान कान्तिवाले, जिनका देह तपके बलसे प्रकाशित होरहाहै; ऐसे मार्कंडेय आदि मुनिगण; वाग्देवी सरस्वतीदेवीजीके साथ मिलकर सर्व पदार्थोंके जाननेवाले; सर्वान्तर्यामी ब्रह्माजीकी स्तुति कररहेहैं ॥ ४ ॥ भक्तोंकी मनोकामना पूर्ण करनेवाले; चतुर्मुख, जगन्नाथ ब्रह्माजीको साष्टाङ्ग दंडवत् प्रणाम करकै मुनियोंमें श्रेष्ठ नारदजी स्तुति करतेहुए ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त स्वयम्भू ब्रह्माजी; वैष्णवोंके शिरमौर नारदजीकी स्तुतिसे प्रसन्न

श्रीगणेशाय नमः ॥ अप्रमेयत्रयातीतनिर्मलज्ञानमूर्तये ॥ मनोगिरांविदूरायदक्षिणामूर्तयेनमः॥१॥ सूतउवाच ॥ कदाचिन्नारदोयोगीपरानुग्रहवांछया॥पर्यटन्सकलाँल्लोकान्सत्यलोकमुपागमत् ॥ २ ॥ तत्रदृष्ट्वामूर्तिमद्भिश्छंदोभिःपरिवेष्टितम् ॥ बालार्कप्रभयासम्यग्भासयंतंसभागृहम् ॥३॥ मार्कंडेयादिमुनिभिःस्तूयमानंमुहुर्मुहुः॥ सर्वार्थगोचरज्ञानंसरस्वत्यासमन्वितम् ॥४॥ चतुर्मुखंजगन्नाथंभक्ताभीष्टफलप्रदम्॥प्रणम्यदंडवद्भक्त्यातुष्टावमुनिपुंगवः॥५॥ संतुष्टस्तंमुनिंप्राहस्वयंभूर्वैष्णवोत्तमम् ॥ किंप्रष्टुकामस्त्वमसितद्वदिष्यामितेमुने ॥६॥

होकर बोले, हेबेटा ! अपना अभिप्राय प्रकट करो, जो प्रार्थनाहो, जो इच्छाहो; वह कपटरहित हृदयसे कहदो ॥ ६ ॥ मुनिश्रेष्ठ नारदजी ब्रह्माजीसे धीरजके दिलानेवाले वचन सुनकर बोले, हेदेवताओंमें श्रेष्ठ ! प्रथम मैंने आपके मुखसे जगत्के अच्छे बुरे कर्मोंके फल सुनेहैं ॥ ७ ॥ इससमय एकबात श्रवण करनेकी और अभिलाषा हुई है;—पुत्रके ऊपर अनुग्रह करकै वह गूढ़ कथाभी प्रगट करदीजिये ॥ ८ ॥ जब भयानक कलिकाल आनकर वर्तमान होगा; तब समस्त मनुष्य धर्म कर्मको छोड़कर दुराचार करने लैंगेगे, असत्य बोलैंगे ॥ ९ ॥ पराई निन्दाकरकै पराये धनको हरण करनेका अभिलाष करैंगे, पराई स्त्रीसे प्रेम लगाकर, पराई हिंसा करैंगे ॥ १० ॥ अपनी देहहीको आत्मा जानकर इसके पालन करनेमें सदा तत्पर रहैंगे; उनको कर्तव्याकर्तव्यका विचार नहीं रहैगा; अर्थात् वह यह नहीं समझसकैंगे कि कौनसा कार्य करना उचितहै और कौनसा कार्य करना अनुचित है । सबही नास्तिक होंगे; अर्थात् ईश्वरको नहीं मानेंगे । सबकी बुद्धि पशुओंकी समान होगी । कामके चेरे और स्त्रीके वश होकर माता, पिता और गुरुजनोंसे अनबनाव रक्खैंगे ॥ ११ ॥ ब्राह्मणगण सदा अयोग्य असत् दान लिया करैंगे, भयके मारे विकल रहैंगे, वेदविक्रयोपजीवी अर्थात् ग्रन्थोंको बेचबेचकर व पढ़ाकर पाई हुई वेतन [तनखाह] के द्वारा जीविका निर्वाह किया करैंगे; अर्थकरी अर्थात् जिस्से धनकी प्राप्ति हो केवल ऐसीही विद्याको पढ़कर गर्वित रहैंगे ॥ १२ ॥ अपनी जातिके कर्म छोड़देंगे; दूसरोंको ठगनेमें सदा तत्पर रहैंगे; क्षत्रिय और वैश्यगणभी अपने२ धर्मको त्यागदेंगे ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे शूद्रगण ब्राह्मणोंकेसे आचार करैंगे; बहुधा स्त्रियें भ्रष्ट हुआ करेंगी । स्वामीका निरादर करेंगी ॥ १४ ॥

इत्याकर्ण्यवचस्तस्यमुनिर्ब्रह्माणमब्रवीत् ॥ त्वत्तःश्रुतंमयासर्वंपूर्वमेवशुभाशुभम् ॥ ७ ॥ इदानीमेकमेवास्तिश्रोतव्यंसुरसत्तम ॥ तद्रह
स्यमपिब्रूहियदितेऽनुग्रहोमयि ॥ ८ ॥ प्राप्तेकलियुगेघोरेनराःपुण्यविवर्जिताः ॥ दुराचाररताःसर्वेसत्यवार्तापराङ्मुखाः ॥ ९ ॥ परापवा
दनिरताःपरद्रव्याभिलाषिणः ॥ परस्त्रीसक्तमनसःपरहिंसापरायणाः ॥ १० ॥ देहात्मदृष्टयोमूढानास्तिकाःपशुबुद्धयः ॥ मातापितृकृ
तद्वेषाःस्त्रीदेवाःकामकिंकराः ॥ ११ ॥ विप्रालोभग्रहग्रस्तावेदविक्रयजीविनः ॥ धनार्जनार्थमभ्यस्तविद्यामदविमोहिताः ॥ १२ ॥
त्यक्तस्वजातिकर्माणःप्रायशःपरवंचकाः ॥ क्षत्रियाश्चतथावैश्याःस्वधर्मत्यागशीलिनः ॥१३॥ तद्वच्छूद्राश्चयेकेचिद्ब्राह्मणाचारतत्पराः॥
स्त्रियश्चप्रायशोभ्रष्टाभर्त्रवज्ञानानिर्भयाः ॥ १४ ॥

और श्वशुरादि गुरुजनोंका बुरा चीतैंगी इसमें संदेह नहीं है। ऐसे नष्टमति मनुष्योंकी परकालमें मुक्ति होना किसप्रकारसे संभव है? ॥ १५ ॥ इस चिन्तासे सदाही मेरा मन व्याकुल रहताहै; साधारण उपायके द्वारा परलोकमें इन मनुष्योंकी गति होजाय ॥ १६ ॥ ऐसा उपाय आप बतलाइये; क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं अर्थात् सब बातोंको जानते हैं; ऋषि नारदजीके यह वचन सुनकर कमलासन ब्रह्माजी उत्तर देते हुए ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले,—हे साधो! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया; मैं इसका उत्तर देताहूं; तुम आदरसहित श्रवण करो. पूर्वकालमें त्रिपुरासुरका नाश करनेवाले, भक्तवत्सल, महादेवजीसे पार्वतीजीनें ॥ १८ ॥ अति विनय वचन कहकर जब श्रीरामचंद्रजीका यथार्थ रूप पूछा

श्वशुरद्रोहकारिण्योभविष्यंतिनसंशयः ॥ एतेषांनष्टबुद्धीनांपरलोकःकथंभवेत् ॥ १५ ॥ इतिचिंताकुलंचित्तंजायतेममसंततम् ॥ लघूपायेनयेनैषांपरलोकगतिर्भवेत् ॥ १६ ॥ तमुपायमुपाख्याहिसर्ववेत्तियतोभवान् ॥ इत्यृषेर्वाक्यमाकर्ण्यप्रत्युवाचांबुजासनः ॥ १७ ॥ साधुपृष्टंत्वयासाधोवक्ष्येतच्छृणुसादरम् ॥ पुरात्रिपुरहंतारंपार्वतीभक्तवत्सला ॥ १८ ॥ श्रीरामतत्त्वंजिज्ञासुःपप्रच्छविनयान्विता ॥ प्रियायैगिरिशस्तस्यैगूढंव्याख्यातवान्स्वयम् ॥ १९ ॥ पुराणोत्तममध्यात्मरामायणमितिस्मृतम् ॥ तत्पार्वतीजगद्धात्रीपूजयित्वादिवानिशम् ॥ २० ॥ आलोचयंतीस्वानंदमग्नातिष्ठतिसांप्रतम् ॥ प्रचरिष्यतितल्लोकेप्राण्यदृष्टवशाद्यदा ॥ २१ ॥ तस्याध्ययनमात्रेणजनायास्यंतिसद्गतिम् ॥ तावद्विजृंभतेपापंब्रह्महत्यापुरःसरम् ॥ २२ ॥ यावज्जगतिनाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ तावत्कलिमहोत्साहोनिःशंकंसंप्रवर्तते ॥ २३ ॥ यावज्जगतिनाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ तावद्यमभटाःशूराःसंचरिष्यंतिनिर्भयाः ॥ २४ ॥

तब स्वयं महादेवजीने अपनी प्यारीके निकट [अध्यात्मरामायणरूप] जिस गूढ़ [विषय] व्याख्याको कहाथा ॥ १९ ॥ वह परमरहस्य पुराणोंमें उत्तम "अध्यात्मरामायण" के नामसे प्रसिद्धहै; जगन्माता पार्वतीजी रातदिन उसी अध्यात्मरामायणका पूजन ॥ २० ॥ व पाठ करकै आनंद चित्तसे विराजमान रहतेहैं ॥ अब प्राणियोंके सौभाग्यसे उसी अध्यात्मरामायणका जगत्में प्रचार होगा ॥ २१ ॥ इस अध्यात्मरामायणका पाठ करनेसे मनुष्योंकी सद्गति होगी; तबहीतक ब्रह्महत्यादि महापापोंकी अवाई रहैगी॥ २२॥ जबतक इस जगत् संसारमें अध्यात्मरामायणका उदय नहीं होताहै; तबहीतक कलियुगका महोत्साह निःशंक होकर प्रवृत्त होताहै॥ २३ ॥ जबतक जगत्में अध्यात्मरामायण प्रकाशित नहीं होतीहै; तबहीतक

शूर यमदूत निर्भय होकर संचार करतेहैं ॥ २४ ॥ जबतक जगत्में अध्यात्मरामायणका प्रचार नहीं होताहै तबहीतक सर्व पुराण और शास्त्रोंका पृथ्वीपर परस्पर विवाद होता रहेगा प्रचार नहीं होगा ॥ २५ ॥ जबतक अध्यात्मरामायणका संसारमें उदय नहीं होताहै; तबहीतक श्रीरामचंद्रजीका स्वरूप महात्मालोग नहीं जानसकैंगे ॥ २६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यद्यपि मैं अध्यात्मरामायणके पाठ करने और श्रवण करनेका पुण्यफल भली भांतिसे वर्णन करनेको असमर्थहूं ॥ २७ ॥ तथापि; हे अनघ ! जिसको हमने प्रथम महादेवजीसे सुनाहै; उसका कुछ माहात्म्य वर्णन करताहूं तुम सावधान चित्त होकर सुनो ॥ २८ ॥ जो पुरुष अध्यात्मरामायणका एकश्लोक वा आधा भक्तिके साथ पढ़ैगा वह समस्त पापोंकी राशिको एक

यावज्जगतिनाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ तावत्सर्वाणिशास्त्राणिविवदंतेपरस्परम् ॥ २५ ॥ तावत्स्वरूपंरामस्यदुर्बोधंमहतामपि ॥ यावज्जगतिनाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ २६ ॥ अध्यात्मरामायणसंकीर्तनश्रवणादिजम् ॥ फलंवक्तुंनशक्नोमिकात्स्न्येंनमुनिसत्तम ॥ ॥ २७ ॥ तथाऽपितस्यमाहात्म्यंवक्ष्येकिंचित्तवानघ ॥ शृणुचित्तंसमाधायाशिवेनोक्तंपुरामम ॥ २८ ॥ अध्यात्मरामायणतःश्लोकंश्लोकार्धमेववा ॥ यःपठेद्भक्तिसंयुक्तःसपापान्मुच्यतेक्षणात् ॥ २९ ॥ यस्तुप्रत्यहमध्यात्मरामायणमनन्यधीः ॥ यथाशक्तिवदेद्भक्त्यासजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ३० ॥ योभक्त्याऽर्चयतेऽध्यात्मरामायणमतंद्रितः ॥ दिनेदिनेऽश्वमेधस्यफलंतस्यभवेन्मुने ॥ ३१ ॥ यदृच्छयाऽपियोऽध्यात्मरामायणमनादरात् ॥ अन्यतःशृणुयान्मर्त्यःसोऽपिमुच्येतपातकात् ॥ ३२ ॥ नमस्करोतियोऽध्यात्मरामायणमदूरतः ॥ सर्वदेवार्चनफलंसप्राप्नोतिनसंशयः ॥ ३३ ॥

क्षणभरमें भस्मकरके मुक्तिको प्राप्त करलेगा ॥ २९ ॥ जो एकाग्रचित्तसे भक्तिमान् हो प्रतिदिन यथाशक्ति अध्यात्मरामायणका पाठ करताहै वह जीवन्मुक्त होजाताहै ॥ ३० ॥ जो भक्तिके साथ आलस्यको त्याग अध्यात्मरामायण पुस्तककी पूजा करताहै, वह दिन दिन अश्वमेध यज्ञ करनेका फल पाताहै ॥ ३१ ॥ जो पुरुष ईश्वरकी इच्छाके अनुसारभी अनादरसेभी अध्यात्मरामायण किसी मनुष्यसे सुनै; उसकेभी सब पाप छूट जाते हैं ॥ ३२ ॥ जो पुरुष निकट जायकर अध्यात्मरामायणकी पुस्तकको प्रणाम करै; वहभी सर्वदेवताओंकी पूजा करनेका फल प्राप्त करलेगा; इस

जो पुरुष सावधान होकर इस राम हृदय स्तोत्रका जो अध्यात्म रामायणमें है पाठ करैगा,—वह यदि ब्रह्मघाती हो; तौभी तीन दिनमें पवित्र होजाताहै
॥ ४ ३ ॥ जो पुरुष मौन साधनकर हनुमानजीकी प्रतिमाके निकट एक दिनमें तीनवार श्रीरामहृदयका पाठ करताहै वह इच्छानुसार फल प्राप्त करलेगा
॥ ४ ४ ॥ जो तुलसी या पीपलके वृक्षकी परिक्रमा करताहुआ श्रीरामहृदय स्तोत्रका पाठ करताहै उसका छुटकारा ब्रह्महत्याके पापसे होजाताहै ॥ ४ ५ ॥
हेनारद ! श्रीरामगीताका माहात्म्य महादेव शंकरजी समस्त जानतेहैं; आधा पार्वतीजी जानती हैं; और चौथाई मैं जानताहूं ॥ ४६ ॥ यद्यपि तुमसे मैं
उस समस्त माहात्म्यके कहनेमें समर्थ नहींहूं तथापि कुछ थोड़ासा कहताहूं; जिसके जानलेनेसे एक मुहूर्त्त कालमें पुरुषका चित्त निर्मल होजाताहै ॥

तत्रश्रीरामहृदयंयःपठेत्सुसमाहितः ॥ सब्रह्मघ्नोऽपिपूतात्मात्रिभिरेवदिनैर्भवेत् ॥ ४३ ॥ श्रीरामहृदयंयस्तुहनूमत्प्रतिमांतिके ॥ त्रिः
पठेत्प्रत्यहंमौनीससर्वेप्सितभाग्भवेत् ॥ ४४ ॥ पठञ्छ्रीरामहृदयंतुलस्यश्वत्थयोर्यदि ॥ प्रत्यक्षरंप्रकुर्वीतब्रह्महत्यांनिवर्तयेत् ॥ ४५ ॥
श्रीरामगीतामाहात्म्यंकृत्स्नंजानातिशंकरः ॥ तदर्धंगिरिजावेत्तितदर्धंवेद्म्यहंमुने ॥ ४६ ॥ तत्तोकिंचित्प्रवक्ष्यामिकृत्स्नंवक्तुंनशक्यते ॥
यज्ज्ञात्वातत्क्षणाल्लोकश्चित्तशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ श्रीरामगीतायत्पापंननाशयतिनारद ॥ तन्ननश्यतितीर्थादौलोकेक्वापिकदाचन ॥
तन्नपश्याम्यहंलोकेमार्गमाणोऽपिसर्वदा ॥ ४८ ॥ रामेणोपनिषत्सिंधुमुन्मथ्योत्पादितांमुदा ॥ लक्ष्मणायार्पितांगीतासुधांपीत्वाऽमरोभवेत्
॥ ४९ ॥ जमदग्निसुतःपूर्वंकार्तवीर्यवधेच्छया ॥ धनुर्विद्यामभ्यसितुंमहेशस्यांतिकेवसन् ॥ ५० ॥ अधियमानांपार्वत्यारामगीतांप्रयतः
॥ श्रुत्वागृहीत्वाऽऽशुपठन्नारायणकलामगात् ॥ ५१ ॥

॥ ४७ ॥ हेनारद! सर्वदा समस्त ब्राह्मणोंको खोजकरभी मैं ऐसा पाप नहीं देखसक्ता; कि जिसका विध्वंस श्रीरामगीता न कर सके; जिस पाप,
का नाश श्रीरामगीताका पाठ करनेसे न होसके; वह पाप तीर्थादि पुण्य क्षेत्र या किसी पुण्यकार्यके करनेसे दूर नहीं होसक्ता ॥ ४८ ॥ हे वत्स!
पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचंद्रजीने उपनिषद् समुद्रको मथकर आनंद मनसे यह गीतारूपी अमृत निकाल अपने लघु भइय्या लक्ष्मणको दियाथा; इस
अमृतके पानकरनेसे पुरुष अमर होसक्ताहै ॥ ४९ ॥ पूर्वसमयमें जमदग्निके पुत्र परशुरामजीने कार्तवीर्यके वधकी इच्छा करके धनुर्विद्याका
अभ्यास करनेकेलिये महादेवजीके निकट रहकर ॥ ५० ॥ पार्वतीजी करकै पढ़ीजातीहुई रामगीताको श्रवण और ग्रहणकर नारायणजीके

में कुछ संशय नहीं है ॥ ३३ ॥ [हेनारद !] जो पुरुष समस्त अध्यात्मरामायणकी पुस्तकको लिखकर रामचंद्रजीके भक्तको दे उसके पुण्य फलको सुनो ॥ ३४ ॥ समस्त वेदके पढ़नेसे; या समस्त शास्त्रकी व्याख्या करनेसे जो फल होताहै और त्रिलोकीको जो फल मिलना दुर्लभहै; उसको वह समस्तही फल प्राप्त होताहै ॥ ३५ ॥ एकादशीके दिन जो रामभक्त नरोत्तम; उपवासकरकै सभाके बीच अध्यात्मरामायणकी व्याख्या करताहै ॥ ३६ ॥ हेवैष्णवमें श्रेष्ठनारद ! उसके पुण्यफलको मैं कहताहूं तुम श्रवण करो । वह [अध्यात्मरामायणकी व्याख्याकरनेवाला] प्रत्येक अक्षरका गायत्री पुरश्चरणका फल प्राप्त करताहै ॥ ३७ ॥ श्रीरामनवमीके दिन उपवास व्रतके साथ रात्रिको जागरण करे जो एकाग्रचित्तहोकर

लिखित्वापुस्तकेऽध्यात्मरामायणमशेषतः ॥ योदद्याद्रामभक्तेभ्यस्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ३४ ॥ अधीतेषुचवेदेषुशास्त्रेषुव्याकृतेषुच ॥ यत्फलंदुर्लभंलोकेतत्फलंतस्यसंभवेत् ॥ ३५ ॥ एकादशीदिनेऽध्यात्मरामायणमुपोषितः ॥ योरामभक्तःसदसिव्याकरोतिनरोत्तमः ॥ तस्यपुण्यफलंवक्ष्येशृणुवैष्णवसत्तम ॥ ३६ ॥ प्रत्यक्षरंतुगायत्रीपुरश्चर्याफलंभवेत् ॥ उपवासव्रतंकृत्वाश्रीरामनवमीदिने ॥ ३७ ॥ रात्रौजागरितोऽध्यात्मरामायणमनन्यधीः ॥ यःपठेच्छृणुयाद्वाऽपितस्यपुण्यंवदाम्यहम् ॥ ३८ ॥ कुरुक्षेत्रादिनिखिलपुण्यतीर्थेष्वनेकशः ॥ आत्मतुल्यंधनंसूर्यग्रहंणेसर्वतोमुखे ॥ ३९ ॥ विप्रेभ्योव्यासतुल्येभ्योदत्त्वायत्फलमश्नुते ॥ तत्फलंसंभवेत्तस्यसत्यंसत्यंनसंशयः ॥ ४० ॥ योगायतेमुदाऽध्यात्मरामायणमहर्निशम् ॥ आज्ञांतस्यप्रतीक्षंतेदेवाइंद्रपुरोगमाः ॥ ४१ ॥ पठन्प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनुव्रतः ॥ यद्यत्करोतितत्कर्मततःकोटिगुणंभवेत् ॥ ४२ ॥

अध्यात्मरामायणको ॥ ३८ ॥ पाठ करैगा उसको श्रवणकरै उसके पुण्य फलको कहताहूं कि वह पुरुष कुरुक्षेत्रादि निखिल पुण्य तीर्थोंमें पर्यटन करनेसे या चंद्रमा सूर्यके सर्वग्रहणहोनेके समय अपने वित्तके अनुसार ॥ ३९ ॥ वेदव्यासके समान ब्राह्मणोंको देनेसे जो फल प्राप्त होताहै; उस महात्माकोभी वही फल मिलताहै; इन बातोंके सत्य होनेमें कुछभी संशय नहींहै ॥ ४० ॥ जो जन प्रसन्न मनसे रात दिन अध्यात्मरामायणको गाया करताहै; इन्द्रादि देवता लोग यह वाट देखा करतेहैं कि यह पुरुष हमको कुछ आज्ञादे ॥ ४१ ॥ आलस्यहीन पुरुष; प्रतिदिन अध्यात्मरामायणका पाठकरकै जो धर्मके कर्म करताहै; उसका वह समस्त धर्म कर्म करोड़गुना होजाताहै ॥ ४२ ॥

ब्रह्महत्यादिपापानांनिष्कृतिंयदिवांछति ॥ रामगीतांमासमात्रंपठित्वामुच्यतेनरः ॥ ५२ ॥ दुष्प्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसंभवम् ॥
पापंयत्तत्कीर्तनेनरामगीताविनाशयेत् ॥ ५३ ॥ शालग्रामशिलाग्रेचतुलस्यश्वत्थसन्निधौ ॥ यतीनांपुरतस्तद्वद्रामगीतांपठेत्तुयः ॥
॥ ५४ ॥ सतत्फलमवाप्नोतियद्वाचोऽपिनगोचरम् ॥ रामगीतांपठन्भक्त्यायःश्राद्धेभोजयेद्द्विजान् ॥ ५५ ॥ तस्यतेपितरःसर्वेयांति
विष्णोःपरंपदम् ॥ एकादश्यांनिराहारोनियतोद्वादशीदिने ॥ ५६ ॥ स्थित्वागस्त्यतरोर्मूलेरामगीतांपठेत्तुयः ॥ सएवराघवःसाक्षात्सर्व
देवैश्चपूज्यते ॥ ५७ ॥ विनादानंविनाध्यानंविनातीर्थावगाहनम् ॥ रामगीतांनरोधीत्यतदनंतफलंभवेत् ॥ ५८ ॥ बहुनाकिमिहोक्तेन
शृणुनारदतत्त्वतः ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानिच ॥ अर्हंतिनाल्पामध्यात्मरामायणकलामपि ॥ ५९ ॥

अंशको प्राप्त किया ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य ब्रह्महत्यादि अनेक प्रकारके पापोंसे छूटनेकी वांछाकरै; वहकेवल एक महीने रामगीताका पाठकरनेंसे सर्व पापोंसे छुटकारा पाजायगा ॥ ५२ ॥ केवल एकवार रामगीताका पाठकरनेवालेका, निन्दित दानलेनें, अभोज्य भोजन करनें, असत् बोलने, इत्यादिका समस्त पाप छूट जाताहै ॥ ५३ ॥ शालग्रामशिला, तुलसी, पीपलके पेड़; या मुनिजनोंकेसन्मुख जो पुरुष रामगीताका पाठ करता है; ॥ ५४ ॥ वह अनिर्वचनीय [जो वाणीसे न कहा जाय] ऐसे फलको प्राप्त होता है, जो पार्वणादि पितृश्राद्धके दिन ब्राह्मणभोजनके समय भक्तिसहित रामगीताका पाठ करताहै ॥ ५५ ॥ उसके समस्त पितृगण विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं. एकादशीके दिन निराहार और द्वादशीके दिन [अर्थात् पारणके दिन ॥ ५६ ॥ एकाग्र मनसे जो पुरुष अगस्त्य वृक्षके नीचे बैठकर रामगीताका पाठ करता है; वह साक्षात् रामस्वरूप हो सर्व देवताओंसे पूजित होता है ॥ ५७ ॥ विनादान, विनाध्यान, विनातीर्थमें स्नान कियेभी पुरुष केवल रामगीताका पाठ करनेसे धनादिके अनन्तगुण फलको प्राप्त कर लेता है ॥ ५८ ॥ हे नारद! इसके माहात्म्यको अधिक क्या कहूं, तत्त्व तौ यह है कि-वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास, अगमादि कोई, अध्यात्म रामायण

के पाठकरनेके सोलहवें अंशकाभी फल नहीं दे सकते ॥ ५९ ॥ कमलासन भगवान् ब्रह्माजीनें अध्यात्मरामचरित्रका माहात्म्य मुनीश्वर नारदजीसे कहाथा. जो मनुष्य श्रद्धाभक्तिके साथ इसको पढता, अथवा सुनता है; वह विष्णुपदवीको प्राप्त हो देवतालोगोंसे पूजित होताहै ॥ ६० ॥ इति ब्रह्माण्डपुराणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरखंडे भाषाटीकायामे एकषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ब्रह्माजी कहते हुएः—हे नारद! जो चिन्मय अविनाशी पृथ्वीका भार उतारनेके लिये देवतालोगोंके प्रार्थना करनेंपर पृथ्वीमें अवतारले, सूर्यवंशमें मायाकेद्वारा मनुष्यभावसे जगत्-संसारके पापहर, अचल निर्मलकीर्त्तिका प्रचारकर, राक्षसश्रेष्ठ दशाननका वध करनेंके पश्चात् फिर आद्य ब्रह्मपदको प्राप्त हुएहैं; उन जानकीनाथ श्रीरामचंद्रजीका मैं

अध्यात्मरामचरितस्यमुनीश्वरायमाहात्म्यमेतदुदितंकमलासनेन ॥ यःश्रद्धयापठतिवाशृणुयात्समर्त्यःप्राप्नोतिविष्णुपदवींसुरपूज्यमानः ॥६०॥ इतिश्रीब्रह्मांडपुराणे उत्तरखंडेऽध्यात्मरामायणे बालकांडेसमायणमाहात्म्यकथनंनामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥ यःपृथ्वीभरवारणायदिविजैःसंप्रार्थितश्चिन्मयःसंजातःपृथिवीतलेरविकुलेमायामनुष्योऽव्ययः ॥ निश्चक्रंहतराक्षसःपुनरगाद्ब्रह्मत्वमाद्यंस्थिरांकीर्तिपापहरांविधायजगतांतंजानकीशंभजे ॥ १ ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयादिषुहेतुमेकंमायाश्रयंविगतमायमचिंत्यमूर्तिम् ॥ आनंदसांद्रममलंनिजबोधरूपंसीतापतिंविदिततत्त्वमहंनमामि ॥२॥ पठंतियेनित्यमनन्यचेतसःशृण्वंतिचाध्यात्मिकसंज्ञितंशुभम् ॥ रामायणंसर्वपुराणसंमतंनिर्धूतपापाहरिमेवयांतिते ॥ ३ ॥ अध्यात्मरामायणमेवनित्यंपठेद्यदीच्छेद्भवबंधमुक्तिम् ॥ गवांसहस्रायुतकोटिदानात्फलंलभेद्यःशृणुयात्सनित्यम् ॥ ४ ॥

भजन करताहूं ॥ १ ॥ जो जगत्के उत्पन्न करने, पालन करने, और संहारकरनेंके एकही कारण हैं; जो मायाके आश्रय होनेपरभी मायारहित हैं; जिनकी मूर्त्ति मन वचनके अगोचर है, जिनका रूप उपाधिकृत दोषगुणसेरहित है; अपना बोध स्वरूपत्व जिनको भली भांति विदितहै, उन असीम आनंदमय सीतापति श्रीरामचंद्रजीको मैं प्रणाम करताहूं ॥ २ ॥ एकाग्र चित्तहोकर प्रतिदिन सर्व पुराणसम्मत्त [सर्व पुराणोंके माननीय] अध्यात्मरामायणका पाठ या श्रवण जो मनुष्य करते हैं; वे पापरहित होकर वैकुंठभुवनमें चले जाते हैं ॥ ३ ॥ जिनको संसारके बन्धनसे छूटनेकी वासना हो; वे प्रतिदिन अध्यात्मरामायणका पाठ करैं; और जो नित्य इस रामायणको श्रवण करता है; वह करोडों गौदानसे भी अधिक फल पाता है ॥ ४ ॥

हिमगिरिसे उत्पन्न हुई; त्रिपथगामिनी गंगाजीके समान कैलाशशिखरसे उत्पन्न हो श्रीरामसागरके साथ मिलकर अध्यात्मरामायण गंगा त्रिलोकीको पवित्र करती है ॥ ५ ॥ एक समय कैलाशपर्वतके शिखरपर सैकडों सूर्यके समान प्रकाशमान, विमल उज्ज्वल, मन्दिरमें, रत्नसिंहासन पर अभय देनेवाले त्रिलोचन महादेवजी बैठे हुए ध्यानसे मग्न हो रहे हैं, अनेक भाँतिसे सिद्धलोग उनकी सेवाकररहेहैं; गिरिराजकुमारी; भगवती पार्वतीजी उन सर्वानन्द मूलस्वरूप देवदेव महादेवजीके वांयें अंगमें स्थित हुई भक्तिभावसे सर्वपापोंके नाशकरने वाले यह वचन पूछती हुई ॥ ६ ॥ पार्वतीजी बोलीं, " हे देव हे जगन्निवास! आपको नमस्कार है, आप सर्वात्मदर्शी (सबमेंबसनेवाले) परमेश्वरहैं ! इसी कारणसे परब्रह्म पुरुषोत्तमकी सनातन कीर्त्ति मैं आपसे पूछताहूं; कारणकि आपभी सनातन हो॥ ७॥ यद्यपि शिववाक्य अत्यन्तगोपनीय है तथापि महानुभव लोग भक्तजनोंसे प्रकाशित करही दिया कर

पुरारिगिरिसंभूताश्रीरामार्णवसंगता ॥ अध्यात्मरामगंगेयंपुनातिभुवनत्रयम् ॥ ५॥ कैलासाग्रेकदाचिद्रविशतविमलेमंदिरेरत्नपीठेसंविष्टं
ध्याननिष्ठंत्रिनयनमभयंसेवितंसिद्धसंघैः॥ देवीवामांकसंस्थागिरिवरतनयापार्वतीभक्तिनम्राप्राहेदंदेवमीशंसकलमलहरंवाक्यमानंदकंदम्
॥ ६ ॥ पार्वत्युवाच ॥ नमोऽस्तुतेदेवजगन्निवाससर्वात्मदृक्त्वंपरमेश्वरोऽसि ॥ पृच्छामितत्त्वंपुरुषोत्तमस्यसनातनंत्वंचसनातनोऽसि॥७॥
गोप्यंयदत्यंतमनन्यवाच्यंवदंतिभक्तेषुमहानुभावाः ॥ तदप्यहोऽहंतवदेवभक्ताप्रियोऽसिमेत्वंवदयत्तुपृष्टम् ॥ ८ ॥ ज्ञानंसविज्ञानमथानु
भक्तिवैराग्ययुक्तंचमितंविभास्वत् ॥ जानाम्यहंयोषिदपित्वदुक्तंयथातथाब्रूहितरंतियेन ॥ ९ ॥ पृच्छामिचान्यच्चपरंरहस्यंतदेवचाग्रे
वदवारिजाक्ष ॥ श्रीरामचंद्रेऽखिललोकसारेभक्तिर्दृढानौर्भवतिप्रसिद्धा ॥ १० ॥

हैं; कारणकि मैं भी तौ आपकी अतिभक्ति प्रियाहूं; इस कारण हे भक्तिप्रिय मेरे प्रश्नका उत्तर देना आपको सब प्रकारसे उचित है ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! यद्यपि प्रथम आपने मुझपर ज्ञानयोग, विज्ञानयोग; भक्तियोग, और वैराग्ययोग, प्रकाशित कर दिया है, और यद्यपि मैं इन चारों योगोंको जानती हूं; तथापि स्त्री जाति मुझसे आप फिर कहैं; अर्थात् समयानुसार सर्व कथा सदाही मुझको याद नहीं आती, श्रुतिरूप वाणीका श्रवण करनाही मेरा कर्तव्य है ; कारणकि [श्रुति व स्मृतिका परस्पर विरोध होनेसे श्रुतिही बलवान् होती है] जिससे मन्दबुद्धिवाले पुरुषोंका उद्धार हो जाय, ऐसे ज्ञानको मैं जानना चाहतीहूं, ॥ ९ ॥ हे कमललोचन! इस समय सबसे प्रथम मैं आपसे और एक रहस्य पूछतीहूं;—सो आप

मुझसे कहैं, समस्त लोकोंके सारभूत श्रीरामचंद्रजीमें दृढ भक्तिका होनाही भवसागर पार होनेके लिये प्रसिद्ध नौका है ॥ १० ॥ यद्यपि
भक्तिही संसारके बंधन छुडानेको प्रसिद्ध साधनहै; भक्तिके सिवाय और कुछभी नहीं है, तथापि विशुद्ध वचनोंके द्वारा मेरे मनका संदेह दूर
करना आपको उचितहै ॥ ११ ॥ अप्रमत्त सिद्ध पुरुषगण श्रीरामचंद्रजीको श्रेष्ठ अद्वितीय [एकही] आद्य [सबका कारण] और माया
गुणके प्रवाहसे रहित जानकर दिनरात भजन करकै परमपदको प्राप्त हुआ करते हैं ॥ १२ ॥ कोई कोई कहते हैं कि, रामचंद्र परब्रह्म होने परभी अपनी
माया करकै ढके हुए ब्रह्मनामक अपने रूपको नहीं जान सक्तेहैं। ब्रह्माजीके न जानेपर उन परात्मानें सबसे परेके रूपको न जान्ताथा ॥ १३॥ यदिअपने

भक्तिःप्रसिद्धाभवमोक्षणायनान्यत्ततःसाधनमस्तिकिंचित् ॥ तथाऽपिहृत्संशयबंधनंमेविभेत्तुमर्हस्यमलोक्तिभिस्त्वम् ॥ ११ ॥ वदंति
रामंपरमेकमाद्यंनिरस्तमायागुणसंप्रवाहम् ॥ भजंतिचाहर्निशमप्रमत्ताः परंपदंयांतितथैवसिद्धाः ॥ १२ ॥ वदंतिकेचित्परमोऽपिरामः
स्वाविद्ययासंवृतमात्मसंज्ञम् ॥ जानातिनात्मानमतःपरेणसंबोधितोवेदपरात्मतत्त्वम् ॥ १३ ॥ यदिस्मजानातिकुतोविलापःसीताकृतेऽ
नेनकृतःपरेण ॥ जानातिनैवंयदिकेनसेव्यःसमोहिसर्वैरपिजीवजातैः ॥ १४ ॥ अत्रोत्तरंकिंविदितंभवद्भिस्तद्ब्रूतमेसंशयभेदिवाक्यम् ॥
॥ १५ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ धन्याऽसिभक्ताऽसिपरात्मनस्त्वंयज्ज्ञातुमिच्छातवरामतत्त्वम् ॥ पुरानकेनाप्यभिचोदितोऽहंवक्तुंरहस्यं
परमंनिगूढम् ॥ १६ ॥ त्वयाऽद्यभक्त्यापरिनोदितोऽहंवक्ष्येनमस्कृत्यरघूत्तमंते ॥ रामःपरात्माप्रकृतेरनादिरानंदएकः पुरुषोत्तमोहि ॥
॥ १७ ॥ स्वमाययाकृत्स्नमिदंहिसृष्ट्वानभोवदंतर्बहिरास्थितोयः ॥ सर्वांतरस्थोपिनिगूढआत्मास्वमाययासृष्टमिदंविचष्टे ॥ १८ ॥

तत्त्वको जानते तौ वह परम पुरुष जानकीजीके लिये काहेको विलाप करते? और यदिकहो कि नहीं जानते, तौ वह समस्तजीवकुलकी समान अज्ञानी
हुए; तौ काहेको उनका कोई भजन करैगा?॥ १४ ॥ जिस्से यह मेरा संशय दूर होजाय ऐसे उपयोगी वचनोंसे मेरे इस प्रश्नका उत्तर दिजिये" ॥ १५॥
महादेवजीबोले–हेदेवी! तुमही धन्यहो, तुम परमात्मामें परमभक्तिमति हो; कारण कि आज तुमने हमसे रामतत्त्व कहनेको कहा; पहले किसी
नेभी हमसे इस परमगूढ़ रहस्यके कहनेको नहीं कहा ॥ १६ ॥ अब मैं तुम्हारी भक्तिके वशहो रघुश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको प्रणामकर तुम्हारे प्रश्नका
उत्तर देताहूं। श्रीरामचंद्रजी परमात्माहैं, प्रकृतिसे परे, अनादि, एक अद्वितीय, आनंदस्वरूप पुरषोत्तम और परब्रह्महैं ॥ १७ ॥ जो अपनी मायाके

प्रभावसे इसचराचर स्थावरजंगमादि समस्त ब्रह्माण्डको उत्पन्न करके आकाशमंडलके समान भीतर और बाहर, स्वयंप्रकाश, सर्वांतर्यामी निगूढ़ आत्मा रूपको व्याप्त होरहेहैं ॥१८॥ यह समस्त संसार, चुम्बकपत्थरके समान सदा जिसके चारों ओर भ्रमणकरता है; [अर्थात् चुम्बक पत्थरके निकट रहनेसे जिसप्रकार अचेतन जड़ पदार्थ लोहादिमें चलनेकी शक्ति उत्पन्न होजातीहै; वैसेही असाधारण मायाशक्ति युक्त विश्वभावन परमात्मा ईश्वरके निकट होनेसे, इन देहादि अचेतन जड़ पदार्थोंमें चेतनाशक्ति उत्पन्न होजातीहै] जिनके अंतःकरण अविद्यासे ढक गये हैं; जो विमूढचित्त हैं, वे इस रामतत्त्वको नहीं जानते हैं ॥ १९ ॥ इसीकारणसे मूढ मनुष्य, निर्मल ज्ञानवान्, मायारहित परमात्मा श्रीरामचंद्रजीपर अपनी अज्ञानताका दोष लगाते हैं; व स्त्री पुत्रमें चित्त लगाये, अनेक यज्ञादि कर्मोंका अनुष्ठान करके, घोर संसारमें भ्रमण करते रहते हैं ॥ २० ॥ कंठमें पड़े हुए सुवर्णके गहनेको जिसप्रकार अज्ञानी पुरुष नहीं जान सकता; इसी प्रकारसे वह मूढ मनुष्य हृदयमें स्थित हुए परमात्माको नहीं जानसक्के, और इसीकारणसे वारंवार संसारमें उनका आगमन होताहै. ज्योतिःस्वरूप सूर्यमें जिसप्रकार अन्धकार नहीं रहसकता; वैसेही विशुद्धज्ञान, प्रकाशस्वरूप परेसेपरे परमात्मा श्रीरामचंद्रजीमें अविद्याकी संभावना कहां ? ॥ २१ ॥ जिसप्रकार दोषयुक्त दृष्टिवाले मनुष्यके भ्रमण करते हुए नेत्रोंके सामने ऐसा जान पड़ता है कि जैसे गृहादि समस्त वस्तुही घूमती हैं, वैसेहीहै देहेन्द्रियकर्ता अहंकार कृत समस्त कर्मचेतन आत्मामें आरोप करके जीव मोहके वशहो “मैं करताहूं” ऐसा मनमें समझताहै ॥ २२ ॥ अथवा सूर्य जिसप्रकारसे दिन रातका कारण नहीं है; उसके ज्योतिःस्वरूपके प्रकाश और अप्रकाशके वश जैसे दिन रातकी कल्पना होतीहै; वैसेही विद्या और अविद्या, विशुद्ध ज्ञान श्रीरामचंद्रजीमें किस प्रकारसे संभव होसक्तीहै? ॥ २३ ॥

जगंतिनित्यंपरितोभ्रमंतियत्सन्निधौचुंबकलोहवद्धि ॥ एतन्नजानंतिविमूढचित्ताःस्वाविद्ययासंवृतमानसाये ॥ १९ ॥ स्वाज्ञानमप्यात्म
निशुद्धबुद्धेस्वारोपयंतीहनिरस्तमाये ॥ संसारमेवानुसरंतितेवैपुत्रादिसक्ताःपुरुकर्मयुक्ताः ॥२०॥ जानंतिनैवंहृदयेस्थितंवैचामीकरंकंठग
तंयथाज्ञाः ॥ यथाऽप्रकाशोनतुविद्यतेरवौज्योतिःस्वभावेपरमेश्वरेतथा ॥ विशुद्धविज्ञानघनेरघूत्तमेविद्याकथंस्यात्परतःपरात्मनि ॥२१॥
यथाहिचाक्ष्णाभ्रमतागृहादिकंविनष्टदृष्टेर्भ्रमतीवदृश्यते ॥ तथैवदेहेंद्रियकर्तुरात्मनःकृतंपरेऽध्यस्यजनोविमुह्याति ॥ २२ ॥ नाहर्नरात्रिः
सवितुर्यथाभवेत्प्रकाशरूपाव्यभिचारतःक्वचित् ॥ ज्ञानंतथाऽज्ञानमिदंद्वयंहरौरामेकथंस्थास्यातिशुद्धचिद्घने ॥ २३ ॥

अतएव परमानन्दमय विज्ञान कारण [अर्थात् श्रीरामचंद्रजीमें विज्ञान गुण अविरत विद्यमान होरहाहै] रघुश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीमें तमोगुण नहीं है; यद्यपि वह अज्ञानसाक्षी कमललोचन भगवान् श्रीरामचंद्रजी मायाके आश्रय हैं, तथापि उनमें मोह स्थान नहीं पासक्ता ॥ २४ ॥ हेपार्वती ! मैं तुम्हारे निकट सीता, राम, और हनुमान्का संवाद, जोकि मोक्षका साधक दुर्लभ रहस्य है, कहता हूं [तुम सावधान होकर श्रवणकरो] ॥ २५ ॥ पूर्वकालके समय रामावतारमें रणश्लाघी भगवान् श्रीरामचंद्रजी देवताओंका द्रोह करनेवाले रावणको पुत्र और दलबलके साथ संहारकर ॥ २६ ॥ हनुमान् प्रमुख, वानर वीरगणोंके सहित सीता, लक्ष्मण, और सुग्रीवको साथले अपनी राजधानी अयोध्यापुरीमें आये ॥ २७ ॥ वहांपर राजसिंहासनपर अभिषेकितहो, और वसिष्ठादि महात्माकरके युक्तहो, करोड़ सूर्यके समान प्रकाशमान प्रभाधारण करकै सिंहासनपर विराजमानहुए ॥ २८ ॥ जानकीके उद्धारका कार्य सिद्ध करकै महामति हनुमान्जी सामने हाथ जोडे खड़े हैं, इस समय केवल ज्ञानके सिवाय और कोई अभिलाष हनुमान्जीको नहीं है, इसप्रकार विनीतभावसे हनुमान्जीको खड़े देखकर श्रीरामचंद्रजी ॥ २९ ॥ [प्रियंवदाजनककुमारी] सीतासे [संकेत करके] कहते हुए “जानकि” यह हनुमान् अत्यन्त निष्पाप हैं, हम दोनोंमें इसकी अचल भक्ति है, इसकारण ज्ञान दान करनेका यह योग्य पात्रहै; इस समय तुम इनको मेरे तत्त्वका उपदेशदो ॥ ३० ॥ सर्व लोकोंकी मोहनेवाली जानकीजी ! “जो आज्ञा” कहकर अतिवशम्बद शरणागत पवनकुमारसे

तस्मात्परानंदमयेरघूत्तमेविज्ञानरूपेहिनविद्यतेतमः ॥ अज्ञानसाक्षिण्यरविंदलोचनेमायाश्रयत्वान्नहिमोहकारणम् ॥ २४॥ अत्रतेकथयिष्यामिरहस्यमतिदुर्ल्लभम् ॥ सीताराममरुत्सूनुसंवादंमोक्षसाधनम् ॥ २५ ॥ पुरारामायणेरामोरावणंदेवकंटकम् ॥ हत्वारणेरणश्लाघी सपुत्रवलवाहनम् ॥ २६ ॥ सीतयासहसुग्रीवलक्ष्मणाभ्यांसमन्वितः ॥ अयोध्यामगमद्रामोहनूमत्प्रमुखैर्वृतः ॥ २७ ॥ अभिषिक्तःपरिवृतोवसिष्ठाद्यैर्महात्मभिः सिंहासनेसमासीनःकोटिसूर्यसमप्रभः ॥ २८ ॥ दृष्ट्वातदाहनूमंतंप्रांजलिंपुरतःस्थितम् ॥ कृतकार्यंनिराकांक्षंज्ञानापेक्षंमहामतिम् ॥२९॥ रामःसीतामुवाचेदंब्रूहितत्त्वंहनूमते ॥ निष्कल्मषोऽयंज्ञानस्यपात्रंनौनित्यभक्तिमान् ॥ ३०॥ तथेतिजानकीप्राहतत्त्वंरामस्यनिश्चितम् ॥ हनूमतेप्रपन्नायसीतालोकविमोहिनी ॥ ३१ ॥

रामका तत्त्व, जैसा अपने हृदयमें निश्चितथा; कहनेलगी ॥ ३१ ॥ सीताजी बोली हे वत्स ! तुम श्रीरामचंद्रजीको अविनाशी सच्चिदानंद परब्रह्म जानो; यह स्थूल व सूक्ष्मादि सब प्रकारकी उपाधियोंसे छुटे हुए हैं; वस्तुमात्रमें विद्यमान और वाणी व मनके अगोचर हैं ॥ ३२ ॥ यह आनन्द, निर्मल, शान्त, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापी, स्वयंप्रकाश, पापरहित और परमात्मा हैं ॥ ३३ ॥ और हमें सृष्टि करने, वा पालन करने और संहार करनेकी मूल प्रकृति जानो, इन पुरुषोंमें श्रेष्ठ परमात्माके साथ मिलकर मैं आलस्यरहित हो इस समस्त संसारको उत्पन्न करतीहूं ॥ ३४ ॥ रामके सहयोगसे जिसको मैं उत्पन्न करतीहूं, पंडितलोग उसकोही श्रीरामजीमें आरोपण करतेहैं; विशेष करकै अयोध्यानगरी और अति निर्मल रघुवंशमें

सीतोवाच ॥ रामंविद्धिपरंब्रह्मसच्चिदानंदमद्वयम् ॥ सर्वोपाधिविनिर्मुक्तंसत्तामात्रमगोचरम् ॥ ३२ ॥ आनंदंनिर्मलंशांतंनिर्विकारंनिरंजनम् ॥ सर्वव्यापिनमात्मानंस्वप्रकाशमकल्मषम् ॥ ३३ ॥ मांविद्धिमूलप्रकृतिंसर्गस्थित्यंतकारिणीम् ॥ तस्यसान्निधिमात्रेणसृजामीदमतंद्रिता ॥ ३४ ॥तत्सान्निध्यान्मयासृष्टंतस्मिन्नारोप्यतेऽबुधैः ॥ अयोध्यानगरेजन्मरघुवंशेऽतिनिर्मले ॥ ३५ ॥ विश्वामित्रसहायत्वंमखसंरक्षणंततः ॥ अहल्याशापशमनंचापभंगोमहेशितुः ॥ ॥ ३६ ॥ मत्पाणिग्रहणंपश्चाद्भार्गवस्यमदक्षयः ॥ अयोध्यानगरेवासोमयाद्वादशवार्षिकः॥३७॥ दंडकारण्यगमनंविराधवधएवच॥मायामारीचमरणंमायासीताहृतिस्तथा॥३८॥ जटायुषोमोक्षलाभःकबंधस्यतथैवच॥शबर्याःपूजनंपश्चात्सुग्रीवेणसमागमः॥३९॥ वालिनश्चवधःपश्चात्सीतान्वेषणमेवच॥सेतुबंधश्चजलधौलंकायाश्चनिरोधनम् ॥ ४० ॥ रावणस्यवधोयुद्धेसपुत्रस्यदुरात्मनः ॥ विभीषणेराज्यदानंपुष्पकेणमयासह ॥ ४१ ॥

श्रीरामचंद्रजीका जन्म है ॥ ३५ ॥ महर्षिविश्वामित्रके साथ जायकर उनके यज्ञकी रक्षाकरना, अहिल्याको शापसे छुटाना, जनकपुरमें महादेवजीके धनुषका टूटना ॥ ३६ ॥ मेरे साथ विवाह, परशुरामका गर्व दूर करना, अयोध्यानगरीमें, मेरे साथ बारह वर्षतक रहना ॥ ३७ ॥ दंडकारण्यमें गमन, विराध राक्षसका वध, रावणकरकै मायाकी सीताका हरण, माया मारीचका संहार ॥ ३८ ॥ जटायु और कबन्धका मोक्षपाना; तिसके उपरान्त शबरीकी पूजा ग्रहणकरना, सुग्रीवके साथ मित्रतई ॥ ३९ ॥ वालीवध, पीछे सीताकीखोज, समुद्रमें पुल बांधना, लंकाको घेरलेना ॥ ४० ॥ युद्धमें बेटोंके साथ दुष्ट

मतिवाले रावणका माराजाना, विभीषणको राज्यदेना,फिर मेरे साथ पुष्पकविमानपर सवारहो॥ ४१ ॥अयोध्यानगरीमें लौटकर आना; और सबसे पीछे रामको राज्याभिषेकका होना,-यह सब व औरभी अनेक कार्य मेरे कियेहुए कर्म होनेपरभी निर्विकार अखिलात्मा उन रामचंद्रजीमें आरोपण कियेजातेहैं ४२॥ श्रीरामचंद्रजीका गमन नहीं, स्थिति नहीं; शंका नहीं, इनको न कुछ त्याज्यहै,न कुछ कार्य है यह आनंदस्वरूप, अचल अर्थात् कूटस्थहैं; इसकारण परिणामहीनहैं । केवल मायासे उत्पन्न हुए पदार्थोंमें आश्रयरूपसे विराजमान् होकर तैसेही तैसे जान पड़ते हैं ॥ ४३ ॥ श्रीमहादेवजी बोले, जब इस प्रकारसे जानकीजीने हनुमान्‌जीसे कहा; तब सन्मुख खड़ेहुए महामतिवान पवनकुमार हनुमानजीसे स्वयं रघुनाथजी तत्त्वज्ञान कहनेलगे ॥ और

अयोध्यागमनंपश्चाद्राज्येरामाभिषेचनम् ॥ एवमादीनिकर्माणिमयैवाचरितान्यपि ॥ आरोपयंतिरामेऽस्मिंन्निर्विकारेऽखिलात्मनि ॥४२॥
रामोनगच्छतिनतिष्ठतिनानुशोचत्याकांक्षतेत्यजतिनोनकरोतिकिंचित् ॥ आनंदमूर्तिरचलःपरिणामहीनोमायागुणाननुगतोहितथावि
भाति ॥ ४३ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ ततोरामःस्वयंप्राहहनूमंतमुपस्थितम् ॥ शृणुतत्त्वंप्रवक्ष्यामिह्यात्मानात्मपरात्मनाम् ॥ ४४ ॥
आकाशस्ययथाभेदस्त्रिविधोदृश्यतेमहान् ॥ जलाशयेमहाकाशस्तदवच्छिन्नएवहि ॥ प्रतिबिंबाख्यमपरंदृश्यतेत्रिविधंनभः ॥ ४५ ॥
बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यमेकंपूर्णमथापरम् ॥ आभासस्त्वपरंबिंबभूतमेवंत्रिधाचितिः ॥ ४६ ॥ साभासबुद्धेःकर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि ॥
साक्षिण्यारोप्यतेभ्रांत्याजीवत्वंचतथाऽबुधैः ॥ ४७ ॥

यही कथा ब्रह्माण्डभाण्डोदरी जगन्माता पार्वतीजीको देवादिदेव महादेवजी सुना रहेहैं; हे हनुमान!, हेईश्वर ! चिदाभास अर्थात् जीव और शुद्ध चैतन्यरूप परमात्माके तत्त्वको वर्णन करताहूं; उसको सुनो ॥ ४४ ॥ आकाशके तीन भेद दिखाई देतेहैं;—सोपाधिक, निरुपाधिक और प्रतिबिम्ब। जलरहित जलाशयमें अर्थात् घटादिमें जो आकाश विद्यमान रहताहै,वह सोपाधिक, नभो मंडलमें जो आकाश व्याप्तहै, वह निरुपाधिक,वही महाआकाश है, जलाशयमें उसका प्रतिबिम्ब नामहै॥ ४५॥ इन तीन प्रकारके आकाशोंमें प्रथम आकाशबुद्ध्यवच्छिन्न चैतन्य है; दूसरा पूर्ण अर्थात् महाआकाश है;तीसरा विश्वभूत बिंब आभास रूप है॥ ४६॥ज्ञान दो प्रकारका है,भ्रमात्मक और प्रमात्मक।मैंने किया, मैं कररहाहूं, मैं करूंगा, इत्यादि आत्माकी आभास बुद्धिका कर्तृक कर्म

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

त्वादि जो ज्ञानहैं, सो भ्रम ज्ञान कहा जाताहै। भ्रमभिन्नज्ञानही प्रमात्वहै, इसका कारण गुणहै। अविच्छिन्न अविकारी साक्षीमें अपण्डितोंसे भ्रांतिके कारण
जीवत्व आरोपण कियाजाता है ॥ ४७ ॥ आभासबुद्धि मिथ्या, यह मायाका कार्य है। बुद्ध्यवच्छिन्न चैतन्यकोही ब्रह्म कहा जाताहै; कारण कि
विच्छेद ज्ञान विकल्पितहै, अर्थात् यह कभी ब्रह्मपद वाच्य और कभी जीवपदवाच्य होताहै ॥ ४८ ॥ इसप्रकार वाच्य, वाचक, भावहेतु, बुद्ध्य
वच्छिन्न चैतन्य पूर्ण ज्ञानके सहित एक होनेपर "तत्त्वमसि" अर्थात् वही तुम इस महावाक्य करके आभास बुद्धि तेज प्रकाशित हुआ करताहै।
इस वाक्यमें तत् जीवात्मा, त्वं परमात्मा और असि एकत्व ज्ञानहै ॥ ४९ ॥ उक्त महावाक्यसे जब जीवात्मा और परमात्मा दोनोंका ऐक्य ज्ञान
उत्पन्न होगा, तब निश्चयही आत्मकार्यद्वारा अविद्या रूपमें अपनी २ मायाका नाश होजाताहै; इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥ ५० ॥ मेरे भक्त

आभासस्तुमृषाबुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते ॥ अविच्छिन्नंतुतद्ब्रह्मविच्छेदस्तुविकल्पतः ॥४८॥ अवच्छिन्नस्यपूर्णेनएकत्वंप्रतिपाद्यते ॥ तत्त्व
मस्यादिवाक्यैश्चसाभासस्याहमस्तथा ॥ ४९ ॥ ऐक्यज्ञानंयदोत्पन्नंमहावाक्येनचात्मनोः ॥ तदाऽविद्यास्वकार्यैश्चनश्यत्येवनसंशयः ॥
॥ ५० ॥ एतद्विज्ञायमद्भक्तोमद्भावायोपपद्यते ॥ मद्भक्तिविमुखानांहिशास्त्रगर्तेषुमुह्यताम् ॥नज्ञानंनचमोक्षःस्यात्तेषांजन्मशतैरपि॥५१॥
इदंरहस्यंहृदयंममात्मनोमयैवसाक्षात्कथितंतवानघ ॥ मद्भक्तिहीनायशठायनत्वयादातव्यमैंद्रादपिराज्यतोऽधिकम् ॥ ५२ ॥ श्रीमहादे
वउवाच ॥ एतत्तेऽभिहितंदेविश्रीरामहृदयंमया ॥ अतिगुह्यतमंहृद्यंपवित्रंपापशोधनम् ॥ ५३ ॥ साक्षाद्रामेणकथितंसर्ववेदांतसंग्रहम् ॥
यःपठेत्सततंभक्त्यासमुक्तोनात्रसंशयः ॥ ५४ ॥

इस प्रकारसे ज्ञान प्राप्त करकै मेरे पदको प्राप्त करते हैं परन्तु जो मेरी भक्तिसेहीन हैं, जो शास्त्रोंमें कहे हुए अनेक क्रियाकलापरूपी गढ़ोंमें गिरेहुए
हैं वह सौ (१००) जन्ममेंभी ज्ञान या मोक्षको प्राप्त नहीं कर सकैंगे ॥ ५१ ॥ हे पापरहित ! हे निर्मल ! ! मेरी आत्माका अर्थात् श्रीरामचंद्रजीका
रहस्यहृदय तुमसे कहा, यदि देवराज इन्द्रसेभी अधिक राज्य प्राप्त होताहो तौभी मेरी भक्तिसे हीन या शठताईके आचरण करनेवालोंको तुम यह
न देना ॥ ५२ ॥ महादेवजी बोले; हे देवि ! यह रामहृदय मैंने तुमसे वर्णन किया; यह अतिगुप्त, मनोहर पवित्र और पापोंका शोधकहै ॥ ५३ ॥
स्वयंभगवान् श्रीरामचंद्रजीने यह सर्व वेदान्तका सार संग्रहरूप तत्त्व परमभक्त हनुमान्से कहाथा; जो पुरुष भक्तिके साथ नित्त इसका पाठ करैगा

वह निश्चयही मुक्तिको प्राप्त करलेगा ॥ ५४ ॥ इसके पाठ करनेसे अनेक जन्मोंके किये हुए ब्रह्महत्यादि पाप नाशको प्राप्त होजातेहैं; इसमें कुछ संशय नहीं, क्योंकि यह रामचंद्रजीका वाक्यहै ॥ ५५ ॥ जो पुरुष अति भ्रष्ट कार्योंका करनेवालाहो; पराये धन और पराई स्त्रीमें सदा लोभी रहताहो; मित्रका मारनेवाला, ब्राह्मणका मारनेवाला, पिता माताका, रोगियोंका अनभल करनेवालाभीहो; और वह पुरुष श्रीरामचंद्रजीकी पूजाकरकै यदि भक्तिके साथ रामहृदयका पाठ करै तौ वह योगीन्द्रोंको दुर्लभ ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है; जहांपर समस्त देवता उसकी पूजा करते हैं॥ ५६॥ इस अध्यात्मरामायणके उमामहेश्वरके कथोपकथनमें बालकांडका रामहृदयनामक प्रथम सर्ग कहागया ॥ १ ॥ ॥ छ ॥ पार्वतीजी बोलीं,—

ब्रह्महत्यादिपापानिबहुजन्मार्जितान्यपि॥ नश्यन्त्येवनसंदेहोरामस्यवचनंयथा ॥ ५५ ॥ योऽतिभ्रष्टोऽतिपापीपरधनपरदारेषुनित्योद्यतो वास्तेयीब्रह्महामातापितृवधनिरतोयोगिवृंदापकारी ॥ यःसंपूज्याभिरामंपठतिचहृदयंरामचंद्रस्यभक्त्यायोगींद्रैरप्यलभ्यंपदमिहलभते सर्वदेवैःसपूज्यम् ॥ ५६ ॥ ॥ इत्यध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेबालकांडेश्रीरामहृदयंनामप्रथमःसर्गः ॥ १ ॥ ॥ पार्वत्युवाच॥ धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मिकृतार्थाऽस्मिजगत्प्रभो ॥ विच्छिन्नोमेऽतिसंदेहग्रंथिर्भवदनुग्रहात्॥ १॥त्वन्मुखाद्गलितंरामतत्त्वामृतरसायनम् ॥ पिबंत्यामेमनोदेवनतृप्यतिभवापहम् ॥२॥ श्रीरामस्यकथात्वत्तःश्रुतासंक्षेपतोमया ॥ इदानींश्रोतुमिच्छामिविस्तरेणस्फुटाक्षरम्॥ ३ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामिगुह्याद्गुह्यतरंमहत् ॥ अध्यात्मरामचरितंरामेणोक्तंपुरामम ॥ ४ ॥

हे संसारके स्वामी ! आपके अनुग्रहसे मैं धन्य और कृतार्थ हुई, आपके अनुग्रहसे आज मेरी संदेहरूप गांठ टूटगई ॥ १ ॥ हे देव ! आपके मुखसे चुएहुए श्रीरामतत्त्वरूप अमृत रसायनको पीकर मेरा चित्त तृप्त नहीं होताहै ॥ २॥ श्रीरामचंद्रजीकी जो कथा मैंने संक्षेपसे सुनी अब मेरी अत्यन्तही अभिलाषाहै कि उस कथाको आपके मुखारविन्दसे विस्तारसे सुनूं ॥ ३ ॥ पार्वतीजीमें पूर्वपक्षकी दृढ़ता जानकर श्रीमहादेवजी सिद्धान्तानुकूल विन्यासवितरण करनेको समर्थवान होते हैं; महादेवजी कहते भये; हे देवि—पार्वती ! अध्यात्मिक; [रोगादि या कामादिसे उत्पन्न हुये] आधिभौतिक [चोरादि निमित्तसे उत्पन्न हुए] आधिदैविक [ग्रहादिके कोप होनेसे] इन तीन पापोंका नाश करनेवाला गुप्तसेभी अधिक गुप्त, जो महान् अध्यात्म

रामचरित्र पूर्वकालमें मुझसे श्रीरामचंद्रजीने कहा है ॥ ४ ॥ वह मैं इस समय विस्तारसहित कहताहूं, तुम श्रवण करो, तिसके श्रवग करनेसे जीव, अज्ञान व महाभयसे छूटकर परमसम्पत्ति, दीर्घ आयुर्बल और पुत्रसन्तान प्राप्त करसकताहै ॥५॥ रावणादि सम्पूर्ण व अत्यन्त राक्षसोंके चरणभारको न सहनेसे गोरूपधारी पृथ्वी देवता व मुनिलोगोंके साथ,जब कमलासन ब्रह्माजीके निकट अपनी विपत्ति सुनाकर रोई,तब प्रजापति ब्रह्माजीने एक मुहूर्त्तभरतक ध्यानधरकै विपत्तिकी उत्पत्तिका कारण और उसके दूर होनेका उपाय जानलिया, क्योंकि वह अन्तर्यामीहैं ॥६॥ इसके उपरान्त ब्रह्माजी समस्तदेवता व पृथ्वीको साथले क्षीरसमुद्रके किनारेपर गये।और नेत्रोंमें आंसूभर भक्तिकरकै गद्गदवाणीसे, श्रुति–शुद्धविमल पदयुक्त व अनेक पुराणोंसे उत्पन्नहुई श्रुतिके

तदद्यकथयिष्यामिशृणुतापत्रयापहम् ॥ यच्छ्रुत्वामुच्यतेजंतुरज्ञानोत्थमहाभयात् ॥ प्राप्नोतिपरमामृद्धिंदीर्घायुःपुत्रसंततिम् ॥ ५ ॥
भूमिर्भारेणमग्नादशवदनमुखाशेषरक्षोगणानांधृत्वागोरूपमादौदिविजमुनिजनैःसाकमब्जासनस्य ॥ गत्वालोकंरुदंतीव्यसनमुपगतंब्रह्म
णेप्राहसर्वंब्रह्माध्यात्वामुहूर्तंसकलमपिहृदाऽवेदशेषात्मकत्वात् ॥ ६ ॥ तस्मात्क्षीरसमुद्रतीरमगमद्ब्रह्माथदेवैर्वृतोदेव्याचाखिललोकहृ
त्स्थमजरंसर्वज्ञमीशंहरिम् ॥ अस्तौषीच्छ्रुतिसिद्धनिर्मलपदैःस्तोत्रैःपुराणोद्भवैर्भक्त्यागद्गदयागिरातिविमलैरानंदबाष्पैर्वृतः ॥ ७ ॥ ततः
स्फुरन्सहस्रांशुसहस्रसदृशप्रभः ॥ आविरासीद्धरिःप्राच्यांदिशांव्यपनयंस्तमः ॥ ८ ॥ कथंचिद्दृष्टवान्ब्रह्मादुर्दर्शमकृतात्मनाम् ॥ इंद्रनी
लप्रतीकाशंस्मितास्यंपद्मलोचनम् ॥ ९ ॥ किरीटहारकेयूरकुंडलैःकटकादिभिः ॥ विभ्राजमानंश्रीवत्सकौस्तुभप्रभयान्वितम् ॥ १० ॥
स्तुवद्भिःसनकाद्यैश्चपार्षदैःपरिवेष्टितम्॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविराजितम् ॥ ११ ॥

द्वारा सबके अन्तरकी जानने वाले, सर्वज्ञ, सर्वके स्वामी, हरिकी स्तुतिं करने लगे ॥७॥ इसके पश्चात् दीप्तिमान सहस्रसूर्यके समान कान्तिसे युक्त नारायण जी अपनी ज्योतिसे अन्धकारकी राशिको दूर करकै पूर्वदिशामें प्रगटहुए ॥ ८ ॥ दर्शनकी उत्कंठा कियेहुए ब्रह्माजीने; अकृतात्मा [जिन्होंने अपने चित्तको वशमें नहीं कियाहै] जनोंको जिनके दर्शन दुःखसे भी नहीं होते,–ऐसे नारायणजीको कुछेक कष्टसे देखा; नारायणजीका वर्ण इन्द्रनील मणिके समान, वदनपर मुसकान, कमलकी पंखड़ियोंके समान नेत्रहैं ॥ ९ ॥ नारायणजी मुकुट-हार, कुंडल और कड़े आदि गहने पहने हुएहैं; श्रीवत्स और कौस्तुभमणिकी प्रभासे शोभायमानहैं ॥ १० ॥ उनके चारहाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म विराजमानहै, सनकादि मुनि

और पार्षदगण चारों ओर खड़े होकर स्तुतिकररहे है; वनमाला पहरे हुएहैं ॥ ११ ॥ सुवर्णका यज्ञोपवीत [जनेऊ] पहरे हुएहैं; पीताम्बर धारण किये हुएहैं ॥ १२ ॥ नारायणजी भगवती कमला (लक्ष्मी) और भूमिके साथ गरुड़पर स्थित होरहेहैं । लोकपितामह ब्रह्माजी नारायण जीको; ऐसी वरदाई मूर्तिसे प्रकटहुआ देख आनंदसे गद्गदवाणीहो स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी कहतेहुए“ हेदेव ! कर्मकी फाँसीसे छूटनेके लिये योगीलोग आपके जिन चरणारविन्दका नित्य ध्यान करतेहैं; मैंभी प्राण, बुद्धि व इन्द्रियादि अष्टांगोंसे आपके उन युगल चरणकमल कोमल अमलको प्रणामकरताहूं ॥ १४ ॥ आप अपनी गुणमयी मायाकी शक्तिसे जगत्को उत्पन्न, पालन, संहार करतेहो; परन्तु आप स्वानन्दानुभवात्माहो; आपका जगत्में लेप नहीं होता ॥ १५ ॥ हेशुद्धात्मन् ! आपके विमलयशसे भक्तिमान् जन जैसी चित्तशुद्धिको प्राप्तकरतेहैं; मलिन अन्तःकरणवाले दान ध्ययनादि पुण्यकार्योंसे वैसी चित्तशुद्धिको प्राप्त नहीं कर सकते ॥ १६ ॥ भक्तिसे मुनिगण तुम्हारे जिन चरणारविन्दका नित्य ध्यान कियाकरते हैं; आज हृदयमें मैंने उन चरणारविन्दका दर्शन किया; तिनके दर्शन करनेसे मेरे चित्तका दोष दूरहोवें ॥ १७ ॥ हमसे कार्यकी सिद्धिके लिये, ध्यानमें न आनेवाले आपके श्रीचरणारविन्द पहलेभी ब्रह्माकरके सेवित हुएथे, अब देवताओंके अतुल ऐश्वर्य जो आपके चरणहैं, उनका ध्यान ज्ञानीलोग अपने चित्तमें सदाही कियाकरतेहैं ॥ १८ ॥ हे विभो ! कमला [लक्ष्मी] आपके वक्षस्थलमें स्थानको

स्वर्णयज्ञोपवीतेनस्वणर्वर्णाम्बरेणच ॥ १२ ॥ श्रियाभूम्याचसहितंगरुडोपरिसंस्थितम् ॥ हर्षगद्गदयावाचास्तोतुंसमुपचक्रमे ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नतोऽस्मितेपदंदेवप्राणबुद्धींद्रियात्मभिः ॥ यच्चिंत्यतेकर्मपाशाद्धृदिनित्यंमुमुक्षुभिः ॥ १४ ॥ माययागुणमय्यात्वंसृजस्यवसिलुंपासि ॥ जगत्तेननतेलेपआनंदानुभवात्मनः ॥ १५ ॥ तथाशुद्धिर्नदुष्टानांदानाध्ययनकर्मभिः ॥ शुद्धात्मतातेयशसिसदाभक्तिमतांयथा ॥ १६ ॥ अतस्तवांघ्रिर्मेदृष्टश्चित्तदोषापनुत्तये ॥ सद्योऽतर्हृदयेनित्यंमुनिभिःसात्वतैर्वृतः ॥ १७ ॥ ब्रह्माद्यैःस्वार्थसिद्ध्यर्थमस्माभिःपूर्वसेवितः ॥ अपरोक्षानुभूत्यर्थंज्ञानिभिर्हृदिभावितः ॥ १८ ॥ तवांघ्रिपूजानिर्माल्यतुलसीमालयाविभो ॥ स्पर्धतेवक्षसिपदंलब्ध्वापिश्रीःसपत्निवत् ॥ १९ ॥

प्रातकरकेभी, आपके श्रीचरणपर पूजाके लिये चढ़ी हुई तुलसीकी मालाके साथ सवतिया डाह किया करती हैं ॥ १९ ॥ आप अपने भक्तोंके ऊपर लक्ष्मीसेभी अधिक प्रीति करतेहैं, इसीकारणसे सारवस्तुके जाननेवाले भक्तगण केवल आपकी भक्तिहीको जानतेहैं ॥ २० ॥ जो संसारकी पीड़ाको नहीं जानते, उनक़ी एकमात्र ओषधी आपके प्रति भक्तिकरनाहै, इस कारण आपके चरणकमलमें सदा हमारी एकाग्र भक्ति रहै"॥ २१॥ इसप्रकार ब्रह्माजीकी स्तुतिसे प्रसन्न हो भगवान् हरि बोले,—"हेचतुरानन! मैं तुम्हारा कौनसा कार्य करूं?" जब नारायणजीने यह कहा तब अत्यन्त प्राणियोंके रक्षाकर्त्ता विश्वके रचनेवाले ब्रह्माजी, नारायणजीके वाक्यका उत्तर देनेको साहसीहुए ॥ २२ ॥ हे भगवन्! पुलस्त्यका पोता

अतस्त्वत्पादभक्तेषुतवभक्तिःश्रियोऽधिका ॥ भक्तिमेवाभिवांछंतित्वद्भक्ताःसारवेदिनः ॥२०॥ अतस्त्वत्पादकमलेभक्तिरेवसदाऽस्तुमे॥
संसारामयतप्तानांभेषजंभक्तिरेवते॥२१॥ इतिब्रुवंतंब्रह्माणंबभाषेभगवान्हरिः॥किंकरोमीतितंवेधाःप्रत्युवाचातिहर्षितः ॥२२॥ भगवन्रा
वणोनामपौलस्त्यतनयोमहान् ॥ राक्षसानामधिपतिर्मद्दत्तवरदर्पितः ॥ २३॥ त्रिलोकींलोकपालांश्चबाधतेविश्वबाधकः ॥ मानुषेणमृ
तिस्तस्यमयाकल्याणकल्पिता ॥२४॥ अतस्त्वंमानुषोभूत्वाजहिदेवरिपुंप्रभो ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कश्यपस्यवरोदत्तस्तपसातो
षितेनमे ॥ २५ ॥याचितःपुत्रभावायतथेत्यंगीकृतंमया ॥ सइदानींदशरथोभूत्वातिष्ठतिभूतले ॥ २६॥ तस्याहंपुत्रतामेत्यकौसल्यायां
शुभेदिने ॥ चतुर्धात्मानमेवाहंसृजामीतरयोःपृथक् ॥ २७ ॥

विश्रवाका बेटा महावीर रावण राक्षसोंका राजाहै। मेरे दिये हुए वरके प्रभावसे गर्वित हो रहाहै ॥ २३ ॥ वह विश्वबाधक रावण, स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, देवराज इंद्रादि समस्त लोकपालोंको वरन सबही ब्रह्माण्डको अनन्त क्लेश देताहै। मैंने उसको यह वर दियाहै कि "मनुष्यके हाथसे तेरी मृत्यु होगी।" ॥ २४ ॥ इसकारण हे देव! हे प्रभो! आप इस समय मनुष्य अवतार लेकर उस राक्षसका संहार कीजिये" नारायणजी बोले, "पूर्व कालमें कश्यपकी तपस्यासे प्रसन्नहोकर मैंनें उनसे कहाकि बरदानमांगो ॥ २५ ॥ तब उन्होंने प्रार्थनाकी कि तुम हमारे पुत्र होवो, मैंनें उनकी प्रार्थना अंगीकारकीथी, इस समय वही कश्यप दशरथ नामसे अयोध्यानगरीमें विख्यात राजाहैं, ॥ २६ ॥ इस समय मैं उनका पुत्र होकर, कौश

ल्या, केकयी, और सुमित्राके गर्भमें पृथक् पृथक् रूपसे चार चार अंश होकर अवतार लूंगा ॥ २७ ॥ इस ओर योगमाया सीताजी मिथिला देशमें उत्पन्न हुए राजा जनकके यहां उत्पन्न होंगीं, अतएव योगमाया सीताजीके साथ पृथ्वीमें अवतारले पृथ्वीके भार हरणकरनेंका कारणहो तुम्हारे सर्व कार्य सिद्ध करूंगा" ॥ २८ ॥ यह वचन कहकर भगवान् नारायणजी अन्तर्धान होगये; इसके उपरान्त ब्रह्माजी देवता लोगोंसे बोले, "हे देवता गण! विष्णुजी मनुष्यरूपसे रघुकुलमें जन्म ग्रहण करेंगे ॥ २९ ॥ इसकारण तुम वांनर वंशमें अपने २ अंशसे पुत्र उत्पन्नकरो, और भगवान् हरि जबतक पृथ्वीमें विराजमान्रहैं तबतक तुम उनकी सहायता करते रहो" ॥ ३० ॥ प्रजानाथ ब्रह्माजीके देवताओंको यह आज्ञादेनेंके पीछे "हे मेदिनि! "त्वं मा भैः" "हे पृथ्वी तू मतडर" इसप्रकार वारंवार पृथ्वीको धीरज बंधाय सावधान चित्तसे ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त महाबलवान् पराक्रमकारी, पर्वत वृक्षोंको लेकर युद्ध करनें वाले समस्त देवता हरिकी सहायता करनेंको इधर उधर अर्थात् चारों ओर वानर रूप धारण करकै भगवान्की प्रतीक्षा करते हुए समयको विताने लगे॥ ३२॥ इस श्री अध्यात्मरामायणके उमामहेश्वरके कथोपकथनमें बालकाण्डके मध्य रामावतारकी उत्पत्ति के कहने में दूसरा सर्ग कहा गया ॥ २ ॥ ॥ छ ॥ प्रथम सूर्यवंशमें दिलीप नामक एक राजा हुए। फिर उनकेवंशमें अजनामक महाराज विख्यातथे, तिनके पुत्र श्रीमान् सत्यपराक्रमी महाबली, पराक्रमी, विख्यात् दशरथजी अयोध्याके राजाहुए ॥ १ ॥ (इनके राजकार्य

योगमायाऽपिसीतेतिजनकस्यगृहेतदा ॥ उत्पत्स्यतेतयासार्धंसर्वंसंपादयाम्यहम् ॥ २८ ॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधेविष्णुर्ब्रह्मादेवानथाब्रवीत् ॥
॥ ब्रह्मोवाच ॥ विष्णुर्मानुषरूपेणभविष्यतिरघोःकुले ॥ २९ ॥ यूयंसृजध्वंसर्वेंऽपिवानरेष्वंशसंभवान् ॥ विष्णोःसहायंकुरुतयावत्स्थास्यतिभूतले ॥ ३० ॥ इतिदेवान्समादिश्यसमाश्वास्यचमेदिनीम् ॥ ययौब्रह्मास्वभवनंविज्वरःसुखमास्थितः ॥ ३१ ॥ देवाश्चसर्वेंहरिरूपधारिणःस्थिताःसहायार्थमितस्ततोहरेः ॥ महाबलाःपर्वतवृक्षयोधिनःप्रतीक्षमाणाभगवंतमीश्वरम् ॥३२ ॥ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेबालकांडेद्वितीयःसर्गः ॥२॥ ॥ श्रीरामचंद्रायनमः ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ अथराजादशरथःश्रीमान्सत्यपरायणः ॥
अयोध्याधिपतिर्वीरःसर्वलोकेषुविश्रुतः ॥ १ ॥ सोऽनपत्यत्वदुःखेनपीडितोगुरुमेकदा ॥ वसिष्ठंस्वकुलाचार्यमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ २ ॥

सबही अनोखैथे, शूरवीर व उदारताके गुणमें, पुत्रकी समान, प्रजापालन करनेमें देवपूजन, अतिथि पूजनमें, नित्य होम करने वाले गुरुदेव, और माता पितामें भक्तिपरायणता करनेमें सुन्दर श्रौत स्मार्त क्रिया करनेमें वरन सबही बातोंमें महाराज दशरथजी पारदर्शीथे, सब गुण आय २ कर इनमें वास करतेथे,धन सम्पत्ति, व ऐश्वर्यका कुछ ठिकाना नहींथा,परन्तु केवल इन महाराजको एक पुत्र न होनेका दुःखथा।) एक समय पुत्र न होनेसे अत्यन्त दुःखित हो कुलगुरु वशिष्ठजीको प्रणाम करकै कहा ॥ २ ॥ हे भनवन् ! मेरे पुत्र नहीं है । पुत्रके विना यह राज्य यह ऐश्वर्य मुझको दुःखका कारण हो गया है, इस समय किस उपायके करनेसे मेरे सर्व लक्षण सम्पन्न पुत्र होवें ॥ ३ ॥ राजा दशरथजीके वचन सुन वसिष्ठजीने, कहा,—हे राजन् ! लोकपालोंके समान तुम्हारे चार पुत्र होंगे ॥ ४ ॥ इस समय शान्ताके पति तपोधन ऋष्यशृङ्गको बुलाय कर हमारे साथ पुत्रेष्टि यज्ञ कीजिये ॥ ५ ॥

स्वामिन्पुत्राःकथंमेस्युःसर्वलक्षणलक्षिताः ॥ पुत्रहीनस्यमेराज्यंसर्वंदुःखायकल्पते ॥ ३ ॥ ततोऽब्रवीद्वसिष्ठस्तंभविष्यंतिसुतास्तव ॥
चत्वारःसत्वसंपन्नालोकपालाइवापराः ॥४॥ शांताभर्तारमानीयऋष्यशृंगंतपोधनम् ॥ अस्माभिःसहितःपुत्रकामेष्टिंशीघ्रमाचर ॥ ५ ॥
([1]इतिश्रुत्वादशरथःपप्रच्छमुनिसत्तमम् ॥ कोवाकस्यसुतःकीदृक्प्रभावस्तस्यतद्वद ॥१॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्यमुनिःप्रोवाचसादरम् ॥
विभाण्डकस्यविप्रर्षेस्तपसाभावितात्मनः ॥ २ ॥ अमोघवीर्यस्यसुतःप्रजापतिसमद्युतिः ॥ एकदासह्यनावृष्टिकारणात्सुमहातपाः॥३॥

(इस प्रकार वसिष्ठजीके वचन सुनकर महाराज दशरथजी, उन मुनिश्रेष्ठसे अपने अभिप्रायको प्रकाशित करते हैं. भगवान् ऋष्यशृङ्ग नामक तपोधन कौन और किन महात्माके पुत्र हैं ? कैसा प्रभाव है ? ऋष्यशृङ्ग नाम क्यों हुआ इस समस्त वृत्तान्तके जाननेका मुझको बड़ी इच्छा है,सो प्रगट करकै मुझ सेवककी चिन्ताको दूर कीजिये ॥ १ ॥ इस प्रकार दशरथजीके वचन सुनकरा वसिष्ठजी,ऋष्यशृङ्गका समस्त वृत्तान्त आदर करकै राजा दशरथजीको श्रवण कराते हुए, हे नरनाथ ! ऋष्यशृङ्ग किस महात्माके पुत्र हैं,सो प्रगट करताहूं तुम श्रवण करो। तपोबलके प्रभावसे सदा परमात्माके तत्त्वको जाननेवाले विभाण्डक ब्राह्मणके ऋष्यशृङ्ग पुत्र हैं, ॥ २ ॥ यह विभाण्डक ब्रह्माजीके समान कान्तिमान हुए. एक समय वर्षा न होनेके कारण लोमपाद महाराज करकै लिवाये जाकर महातपस्वी मुनिश्रेष्ठ ऋष्यशृङ्गजी अनावृष्टिका दोष शांति करनेके लिये ॥ ३ ॥

---

[1] तीसरे सर्गमें पांचमें श्लोकसे आगे कलकत्ते और इटलीकी छपी तथा प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंमें ऋष्यशृङ्गका उपाख्यान लिखाहै; अतएव यहांपर इसउपाख्यानका लिखना कुछ असंगत नहीं ज्ञान होता ।

सब अंगोंसे पूर्ण सतयज्ञ निर्विघ्न समाप्त करचुके। तब पूर्ण हुए हैं मनोरथ जिसके ऐसे राजालोमपादने इन मुनिको दक्षिणास्वरूप अपनी शान्ता नामक कन्या दान करदीथी, ॥ ४ ॥ अब यह श्रवण करो कि इन मुनिका प्रभाव कैसा हुआ, इनका जन्म कैसे हुआ, यह पुत्र स्वरूप व्याख्यान कहता हूं, अतितेजस्वी, असाधारण प्रतापी मुनि ऋष्यशृङ्ग बालक होने परभी वृद्धों करके मानते हुए ॥ ५ ॥ हे महाराजं ! एक दिन बडे भारी कुंडमें, समाधि लगाए हुए देवर्षियोंमें श्रेष्ठ विभाण्डक मुनिका, बहुत दिनों परिश्रम करने ॥ ६ ॥ व उर्वशी नामक अप्सराके देखनेसे जलमें वीर्य गिर गया, फिर एक प्यासी मृगी उस जलको पीकर ॥ ७ ॥ गर्भवती हुईथी. हे महाराज ! यह मृगी पहले देवकन्याथी, सृष्टिके उत्पन्न करनेवाले भगवान् ब्रह्माजीने इसको किसी अपराध करनेसे यह शाप दियाकि ॥ ८ ॥ "हे देवकन्ये! तू मृगी होकर जब मुनिपुत्र जनेंगी तब इस शापसे तेरा छुटकारा होगा।" अमोघवीर्य होनेके कारण और होनहारके वश ॥ ९ ॥ उस मृगीके गर्भसे विभाण्डक ऋषिकुमार महान् ऋषि तपस्वियोंमें हाथीरूप ऋष्यशृङ्ग मुनि उत्पन्न होकर वनमें बढ़नेलगे ॥ १० ॥ हे प्रजानाथ! इसके उपरान्त मुनि जननीके मस्तकपर शृङ्ग होनेसे मुनिके मस्तक परभी अवश्य शृङ्ग होनेकी संभावना हुई, इस कारणसे पृथ्वीमें इनका ऋष्यशृङ्ग नाम हुआ ॥ ११ ॥ इन ऋष्यशृङ्गने अपने पिताके सिवाय

आनीतोलोमपादेनअनावृष्टिनिवृत्तये ॥ शान्तांकन्यांददौतस्मैदक्षिणार्थंमहीपतिः ॥ ४ ॥ शृणुपुत्रोयथाजातऋष्यशृङ्गःप्रतापवान् ॥ महार्हःसमहातेजाबालःस्थविरसम्मतः ॥ ५ ॥ महाह्रदंसमासाद्यकाश्यपस्तपसिस्थितः ॥ दीर्घकालपरिश्रान्तऋषिर्देवर्षिसत्तमः ॥ ६ ॥ तस्यरेतःप्रचस्कन्ददृष्ट्वाप्सरसमुर्वशीम् ॥ अप्सूपस्पृशतोराजन्मृगीतच्चापिबत्तदा ॥ ७ ॥ सहतोयेनतृषिता (गुर्विणी) गर्भिणीसाभवत्ततः ॥ सापुरोक्ताभगवताब्रह्मणालोककारिणा ॥ ८ ॥ देवकन्येमृगीभूत्वामुनिंसूयविमोक्ष्यसे॥अमोघत्वाद्दृषेश्चैवभावित्वाद्दैवनिर्मितैः ॥ ९ ॥ तस्यांमृग्यांसमभवत्तस्यपुत्रोमहानृषिः ॥ ऋष्यशृङ्गस्तपोनिष्ठोवनएवाभ्यवर्द्धत ॥ १० ॥ तस्यर्षेःशृङ्गंशिरसिराजन्नासीन्महात्मनः ॥ तेनर्ष्यशृङ्गइत्येवसदासप्रथितोऽभवत् ॥ ११ ॥ नतेनदृष्टःपूर्वोऽन्यःपितुरन्यत्रमानुषः ॥ तस्मात्तस्यमनोनित्यंब्रह्मचर्य्येऽभवन्नृप ॥ १२ ॥

और कोई मनुष्य नहीं देखा इस कारणसे इनका मन सदाही ब्रह्मचर्यमें लगा रहताथा ॥ १२ ॥ हे महामते ! इसी अवसरमें तुम्हारे सखा लोमपाद राजाने ब्राह्मणसम्बन्धी किसी वस्तुविचारमें जान बूझकर मिथ्या कहाथा ॥ १३ ॥ इस अपराधसे ब्राह्मणोंने राजा लोम पादको बडेभारी दोषसे दूषित जानकर कहा, “ हे महाराज ! यही नहीं कि पुरोहितका अपचार करनेके हेतु अपनी इच्छाके अधीन होनेसे समस्त ब्राह्मणों करके आप त्यागे गये ॥ १४ ॥ वरन देवराज इन्द्रभी तुम्हारे दोषोंसे नौ हजार वर्षतक तुम्हारे राज्यमें जल न वर्षायकर प्रजाको पीडा देंगे । ” हे पृथ्वीनाथ ! फिर अति शोकाकुल हुआ है मन जिसका ऐसा राजा लोमपाद ब्राह्मणोंके मुखकमलसे निकले हुए अनसुने वचन सुनकर ॥ १५ ॥ इन्द्रसे वर्षा करानेकी सामर्थ्य रखनेवाले तपस्वी ब्राह्मणोंसे पूछताभया, कि इस समय कौन उपाय करनेसे मेघ वरसे ? आप लोग कोई उपाय करके बस उपदेश कर मेरे राज्यकी रक्षाकरैं ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त वह तपस्वी ब्राह्मणगण रोमपाद राजासे बोले “ हे महाराज ! आपका यदि पहला संचय किया पुण्य होतो देवराज इन्द्र प्रजाओंको जीवदान दे सकता है । ” जब इन तपस्वियोंने यह कहा तब दयावान चित्तवाला एक मुनिश्रेष्ठ राजा लोमपादसे बोला ॥ १७ ॥ हे राजा ! तुम्हारे ऊपर समस्त ब्राह्मणोंने कोप किया है, इस समय यद्यपि महाअजान बालक हैं, तथापि बहु प्राचीन सम्मत महाराज महातपस्वी विभाण्डक मुनिके पुत्र मुनियोंमें श्रेष्ठ ऋष्यशृङ्ग यदि स्त्रियोंके भुलावादेनेसे आसक्तहो तुम्हारे राज्यमें आजावें ॥ १८ ॥ १९ ॥ तो मेघ अति शीघ्र वर्षेगा । और दुष्कृतिसे छुटकारा पाय विघ्नरहितहो अपने राज्यकी रक्षाभी आपकर सकेंगे, इसमें कोईभी संशय नहीं है ” ॥ २० ॥

एतस्मिन्नेवकालेतुसखातवमहामते ॥ तेनकामात्कृतंमिथ्याब्राह्मणस्येतिनःश्रुतम् ॥ १३ ॥ सब्राह्मणैःपरित्यक्तस्तदावैजगतीपतिः॥ पुरोहितापचाराच्चतस्यराज्ञोयदृच्छया ॥ १४ ॥ नववर्षसहस्राक्षस्ततोपीड्यन्ततत्प्रजाः ॥ सब्राह्मणान्पर्यपृच्छत्तपोयुक्तान्मनीषिणः ॥ १५ ॥ प्रवर्षणेसुरेन्द्रस्यसमर्थान्पृथिवीपते ॥ कथंप्रवर्षेत्पर्जन्यउपायःपरिदृश्यताम् ॥ १६ ॥ तमूचुश्चोदितास्तेनसुकृतानिमनीषिणः ॥ तत्रत्वेकोमुनिवरस्तंराजानमुवाचह ॥ १७ ॥ कुपितास्तवराजेन्द्रब्राह्मणानिष्कृतिंचर ॥ ऋष्यशृङ्गं मुनिसुतमानयस्वचपार्थिव ॥ १८ ॥ बालोऽयमनभिज्ञोऽपिनारीणामार्त्तवेरतः ॥ सचेदवतरेद्राजन्विषयंतेमहातपाः ॥ १९ ॥ सद्यःप्रवर्षेत्पर्जन्यइतितेनात्रसंशयः ॥ एतच्छ्रुत्वावचोराजन्कृत्वानिष्कृतिमात्मनः ॥ २० ॥

इन मुनिश्रेष्ठसे हर्षके उपजानेवाले ऐसे वचन सुनकर प्रसन्न हुआ लोमपाद राजा दोष करकै छूटनेकी वासनासे पूजा व प्रदक्षिणा द उन सब ब्राह्मणोंको संतुष्टकर अपनी राजधानी चंपानगरीको गया, राजा लोमपादको आया हुआ निहार प्रजा अति प्रसन्न हुई सब नगरनिवासी आय २ राजाको प्रणामादि करने लगे॥ २१ ॥ फिर अंगदेशका राजा लोमपाद, श्रेष्ठमंत्रके जाननेवाले मंत्रियोंको आदर सहित बुलायकर विभाण्डक मुनिके पुत्र ऋष्यशृङ्गको अपने राज्यमें लानेके लिये अतियत्नके साथ परामर्श निश्चय करताहुआ॥ २२॥ राजा लोमपाद उन मंत्रियोंके साथ रहताथा जो कि सर्व शास्त्रोंका अर्थ जाननेवालेथे, आज उन्ही मंत्रियोंसे उपायको॥ २३॥ जानकर यह राजा वेश्याओंसे इस बातको प्रगट करता हुआ। जब समस्त वारनारियें आगईं तब राजा उनसे बोला॥ २४॥ हे सुन्दरीगण! बहुत लोभ दिखाय धीरज बँधाय श्रीविभाण्डक मुनिके पुत्र ऋष्यशृङ्ग मुनिको मेरे राज्यमें लानेका तुम यथोचित यत्नकरो ॥ २५ ॥ जब राजाने इस प्रकारसे वाराङ्गनाओंको आज्ञादी तब वह राजभयसे डरकर और शाप भयसे डरकर मन मलीन तनछीन दीनहीनहो कर्तव्य कार्य करनेमें अपनेको असमर्थ बनाती हुईं, फिर इन वाराङ्गनाओंमेंसे कोई एक वारनारीराजासे कहतीहै. हे महाराज! उन तपोधनके लानेमें कृतकार्य होऊं; यदि मेरी सम्मतिको महाराज मानें तो मैं इस साहसके करनेका साहसकरूं अर्थात् यहांपर मुनिश्रेष्ठ ऋष्यशृङ्गको लाऊं" ॥ २७ ॥ यह वचनकह मौनभाव धारणकर राजाके सन्मुख वह वारनारी हाथजोड़ खड़ीहोगई; और बोली, आप इस इच्छितकार्यमें आज्ञादें ॥ २८ ॥ तब राजानें कहा; हे सुंदरि! हे भद्रे ! तुमने जो अभिप्राय प्रगट कियाहै वह उत्तम परामर्शहै।" यह कहकर

सगत्वापुनरागच्छत्प्रसन्नेषुद्विजातिषु ॥ राजानमागतंदृष्ट्वाप्रतिसंजहृषुःप्रजाः ॥२१॥ ततोऽङ्गपतिराहूयसचिवान्मंत्रकोविदान् ॥ ऋष्यशृङ्गागमेयत्नमकरोन्मंत्रनिश्चयम् ॥ २२ ॥ सोऽध्यगच्छदुपायंतुतैरमात्यैर्महीपते ॥ शास्त्रज्ञैरखिलार्थज्ञैर्नित्यंचपरिनिष्ठितैः ॥ २३ ॥ तत्रत्वाज्ञापयामासवारमुख्यामहीपतिः ॥ वेश्याःसर्वत्रनिष्क्रांतास्ताउवाचमहीपतिः ॥ २४ ॥ ऋष्यशृङ्गमृषेःपुत्रमानयध्वमुपायतः ॥ लोभयित्वासमाश्वास्यविषयंममशोभनाः ॥ २५ ॥ ताराजभयभीताश्चशापभीताश्चयोषितः ॥ अशक्यमूचुस्तत्कर्मविवर्णागतचेतसः ॥ २६ ॥ तत्रत्वेकावरयोषाराजानमिदमब्रवीत् ॥ प्रयतिष्येमहाराजतमानेतुंतपोधनम् ॥ २७ ॥ अभिप्रेतांस्तुमेकामांस्त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ ततःशक्नोम्यानयितुमृष्यशृङ्गमृषेःसुतम् ॥ २८ ॥ तस्याःसर्वमभिप्रेतमनुजानीतपार्थिवः ॥ २९ ॥

राजाने इस वेश्याकी परामर्शको स्वीकारकिया ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त नावमें फलपत्तोंसे युक्त अनेकप्रकारके कृत्रिम (नकली) वृक्षलगाय
सुरस, सुगन्ध मधुर रसभावयुक्त ॥ ३० ॥ लड्डुआदि अनेकप्रकारके खानेपीनेके पदार्थ, माला और पानादिले अनेक सुललित भैरवादि छैः राग,भैरवीआदि
छत्तीस रागनी युक्त यंत्र तंत्रसे उत्पन्नहुई निषादादि वर्तमान सप्तस्वर अलाप, तालमान सहित अनेकरस भावयुक्त नृत्यकर हावभाव कटाक्ष
दिखाय लचकतीहुई गीतगाती तीनों वारनारियोंके साथ यह रूप यौवन सम्पन्ना प्रधान वारनारी वनविचरणमें अर्थात् ऋष्यशृङ्ग मुनिकुमारके आश्रम
में शीघ्रचलीगई ॥ ३१ ॥ प्रथमतौ उस प्रधान वारनारीनें मुनिकुमारके आश्रमके समीपही कुछ दूर रहकर महाराज लोमपादकी आज्ञाके अनुसार

नाविवृक्षानथारोप्यफलकारांश्चमोदकान् ॥ सुरसांश्चसुगन्धीनिमधूनिरसवन्तिच ॥३०॥ ततोरूपेणसम्पन्नावयसाचमहीपते ॥ स्त्रियआदाय
काश्चित्साजगामवनमञ्जसा ॥३१॥ महेश्वरउवाच ॥ सातुस्थित्वाकियद्दूरंसंस्थाप्याश्रममुत्तमम् ॥ सन्देशाच्चैवनृपतेःस्वबुद्ध्याचैव
राघव ॥ ३२ ॥ नानापुष्पफलैर्वृक्षैःकृत्रिमैरुपशोभितम् ॥ कृत्वानाव्याश्रमंरम्यमद्भुतंसौम्यदर्शनम् ॥ ३३ ॥ ततोनिरूप्यतांनावम
दूरेकाश्यपाश्रमात् ॥ वाहयामासपुरुषैर्विहारंतस्यवैमुनेः ॥ ३४ ॥ ततोदुहितरंवेश्यांसमाधार्येतिकार्यताम् ॥ दृष्ट्वान्तरंकाश्यपस्यप्राहिणोद्बुद्धिसम्मताम् ॥ ३५ ॥ सातत्रगत्वाकुशलीतपोनिष्ठस्यसन्निधौ ॥ आश्रमंतुसमासाद्यददर्शतमृषेःसुतम् ॥ उवाचमधुरंवाक्यंश्लक्ष्णं
मधुरयागिरा ॥ ३६ ॥ कच्चिन्मुनेकुशलंतापसानांपिताचतेकच्चिदहीनतेजाः ॥ कच्चित्प्रियानरमतेचाश्रमेऽस्मिंस्त्वांवैद्रष्टुंसाम्प्रतं
चागतोऽस्मि ॥ ३७ ॥

और अपनीबुद्धिकी तीक्ष्णतासे ॥ ३२ ॥ अनेक प्रकारके कृत्रिम (नकली) फूल- फल- वृक्ष और पत्रादिसे अतिरमणीय, नावका आश्रमबनाया
जो बड़ा दिव्यदर्शनथा ॥ ३३ ॥ फिर उस नावके आश्रमकी नावको कश्यपसुतके आश्रमके निकटही उन मुनिके विहारस्थानमें पुरुषोंसे चलवाया ॥
॥ ३४ ॥ फिर एक वेश्याको पुरुषका भेष धारणकरा कश्यपसुतके न होनेपर उस बुद्धिमतीको ऋष्यशृङ्गके निकटभेजा ॥ ३५ ॥ वह मुनिवेष धारणकिये
चंचलताके भावको दुराय मन्द मन्द चालसे धीरे २ मुनिके निकटजाकर अति मधुरवाणींसे कहनेलगी ॥ ३६ ॥ "हे मुने ! सावधान तपस्वियोंमें
तुम्हारे पिता अत्यन्त तेजस्वीहैं!इस आश्रममें तुम्हारेसाथ तुम्हारीप्यारी रमणतौ करतीहै!इस समय तुम्हारी प्रियाको देखनेके लिये हम यहाँ आयेहैं॥ ३७ ॥

क्या तुम्हारा तप बढ़ताहै ? तुम कैसे मूलफल भोजनकरतेहो? भला नित्य होम और वेदवेदाङ्गका पाठ किया करतेहो " ॥ ३८ ॥ इस प्रकार मुनिवेषधारिणीके अति मनोहर वचन सुनकर मुनि भेषधारिणी वेश्याको साक्षात् ज्योतिस्वरूप देखकर ऋष्यशृङ्गने कहा ॥ ३९ ॥ मैं प्रणामकरताहूं, चरण धोइये; आज मेरी तपस्याका फल सिद्ध हुआ ॥४०॥ कुशासन या मृगचर्मपर आरामसे बैठिये, आपका आश्रम कहांहै? क्या नामहै? ऐसाजान पड़ताहै कि आप साक्षात् ब्राह्मण देव यहां विराजमान्हैं ॥ ४१ ॥ जब मुनिकुमार ऋष्यशृङ्गने इसप्रकारसे नाम धाम पूछा, तब इस शंकासे चित्तमें अतिव्याकुल होकर कि कहीं विभाण्डक ऋषि न आजाँय, मुनिवेषधारिणी वह वेश्या कहतीहुई । " हे कश्यपपुत्र ! हमारा आश्रम अति रमणीयहै,

कच्चित्तपोवर्द्धतेतापसानांकच्चित्तरोर्मूलफलंप्रभूतम् ॥ कच्चित्त्वयापीयतेचैवविप्रकच्चित्स्वाध्यायःक्रियतेचर्ष्यशृङ्ग ॥ ३८ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्यमुनिवेषधरस्यहि ॥ उवाचवाक्यंवाक्यज्ञोमुनिवेषविधारिणिम् ॥ ३९ ॥ ऋद्ध्याभवान्ज्योतिरिवप्रकाशतेमन्येचाहंत्वामभिवादनीयम् ॥ पाद्यंवैसंप्रदास्यामियथासिध्येत्कर्मफलानिचैव ॥ ४० ॥ कौश्यांबृस्यामासयथोपवेशंकृष्णाजिनेवास्तृतायांसुखायाम् ॥ क्वचाश्रमस्तवकिंनामचेदंब्राह्म्यंभातितदेवव्यक्तम् ॥ ४१ ॥ ततोवेश्याप्रत्युवाचद्विजेंद्रंशंकायुक्ताकाश्यपस्यागमेतु ॥ ममाश्रमःकाश्यपपुत्ररम्यास्त्रियोजनंशैलमिमंपरेण ॥ ४२ ॥ तत्रस्वधर्मोऽनभिवादनंमेनचोदकंपाद्यमुपस्पृशामि ॥ ४३ ॥ भवतानाभिवाद्योऽहमभिवाद्योभवान्मया ॥ व्रतमेतादृशंब्रह्मन्परिष्वज्योभवान्मया ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्यपुनराहतपोधनः ॥ ४४ ॥ फलानिपक्वानिददानितेऽहंभल्लातकान्यामलकानिचैव ॥ करूषकानीङ्गुदकानितावद्यथोपजोषंफलमत्रभुङ्क्ष्व ॥ ४५ ॥

इस पर्वतसे केवल तीन योजन (१२ कोस) का मार्गहै ॥४२॥ हमारा निजधर्म यहींहै कि किसीकोप्रणाम नकरें और किसीका पाद्यजलभी हम नहीं छूते ॥ ४३ ॥ परन्तु तुम हमको प्रणाम नकरो, हम तुमको प्रणाम करें । हे ब्रह्मन् ! इस समय हमारा यह व्रतहै कि तुम हमें अपने हृदयसे लगांओ, "यह वचन सुनकर तपोधन ऋष्यशृङ्गजी मुनिवेषधारिणी वेश्यासे कहतेहैं॥४४॥ बनके फल मूल देताहूं भक्षण कीजिये । विशेष करकै हरड, बहेड़ा, आँवला, हिंगोट, नागरंग, जंभीरी, निवारी, तिल, मूंग, जौं, मूली, नारियल, केला, लुचकुच, पेठा, मिरचआदि अत्युत्तम फल भोजन करनेमें अतिस्वादिष्टहैं, तब

मुनिने यह कहकर वारनारिको फलदिये ॥ ४५ ॥ तब मुनिवेषधारी वारनारीने मुनिके दिये उन सर्व फलोंको छोड़ अपने लायेहुए शोभायमानं उत्तम
स्वादयुक्त अनेक भाँतिके भोजन योग्य पदार्थ ॥ ४६ ॥ सुगन्धितहार विचित्रवस्त्र और कपूरकी सुगन्धिसे वसेहुए ताम्बूलादिसे मुनिको भली
भांतिसे तृप्तकरके और फिर मुनिके साथ कुछ समयतक हास परिहासरूप विहारकर ॥ ४७ ॥ फलोंके भारसे झुकीहुई बेल जिसप्रकार वारंवार
वृक्षको घेरतीहै, वैसेही वृक्षरूप मुनिका लतारूपवेश्या वारंवार मुखचुम्बन करनेलगी, कभी शरीर छूती कभी हृदयसे लगाती ॥ ४८ ॥ वह मलीन कभी
लज्जा रहितके समान होकर मुनिके पुत्रको लुभाने लगी, फिर ऋष्यशृङ्गको विकारमें लानेके निमित्त वारंवार इनके शरीरको निपीड़नकर इनके

सातानिसर्वाणिचवर्जयित्वाभक्ष्यंमहार्हंप्रददौततोऽस्य ॥ तान्यृष्यशृङ्गस्यमहारसानिभृशंसुरूपाणिरुचिंदधुर्हि ॥ ४६ ॥ ददौचमाल्या
निसुगन्धवन्तिचित्राणिवासांसिचभानुमन्ति॥पानानिचाग्र्याणिततोगृहीत्वामुमोदचिक्रीडजहासचोच्चैः ॥४७॥ तदाचुचुम्बामलगण्डमूले
विलज्जमानाफलितालतेव ॥ गात्रैश्चगात्राणिनिषेवमाणासमाश्लिषच्चासकृदृष्यशृङ्गम् ॥ ४८ ॥ विलज्जमानेवमलाभिभूताप्रलोभयामा
ससुतंमहर्षेः ॥ अथर्ष्यशृङ्गंविकृतंनिरीक्ष्यपुनःपुनःपीड्यचकायमस्य ॥ अवेक्ष्यमाणाशनकैर्जगामकृत्वाग्निहोत्रस्यतदापदेशम् ॥ ४९ ॥
तस्यांगतायांमदनेनचित्तविचेतनःप्रीतवदृष्यशृङ्गः ॥ तामेवचित्तेनगतेनशून्योविनिःश्वसन्नार्त्तवपुर्बभूव ॥ ५० ॥ ततोमुहूर्त्तोहरि
पिङ्गलाक्षःप्रवेष्टितोरोमभिरानखाग्रात् ॥ स्वाध्यायवान्दृष्टसमाधियुक्तोविभाण्डकःकाश्यपआविरासीत् ॥ ५१ ॥ सोऽपश्यदासीनमुपे
त्यपुत्रंध्यायंस्तमेवंविपरीतचित्तम् ॥ विनिःश्वसन्तंमुहुरूर्द्धदृष्टिंविभाण्डकःपुत्रमुवाचदीनम् ॥ ५२ ॥नैरेर्यथापूर्वमिवासिपुत्रचिन्तापर
श्चापिविचेतनश्च ॥ दीनोऽतिमात्रंत्वमिहाद्यकिन्नुपृच्छामित्वांकइहाभ्यतोऽभूत् ॥ ५३ ॥

पिता न आजाँय इसकारण अग्निहोत्रका बहानाकर शनैः २ चलीगई ॥ ४९ ॥ वेश्याके चलेजानेपर कामदेवके सताये ऋष्यशृङ्ग वारंवार
लंबे २ श्वासले अत्यन्त परिश्रम करनेकेकारण मुखसुखाये विराजमान्हैं ॥ ५० ॥ कि इतनेमें अग्निहोत्रकरनेवाले, हरिपिंगलाक्ष, वेदपढ़नेसे फलको
प्राप्तहुए, समाधिवान् कश्यपजीके पुत्र, विभाण्डक ऋषि, एक क्षणभरके मध्य आश्रममें आयकर ॥ ५१ ॥ विपरीत चित्तकिये वारंवार श्वास लेतेहुए,
ऊपरको निहारते हुए अपने पुत्र ऋष्यशृङ्गका इसप्रकारसे दुःखित मुख देखकर पूछतेहुए ॥ ५२ ॥ "हे पुत्र ! साधारण अचैत मनुष्यके समान

क्यों मैं तुमको चिन्तायुक्त देखताहूं; क्या आज यहांपर कोई आयाथा? ॥ ५३ ॥ समिधतो ले आयेहो? अग्निहोत्र हवनकर्मतो करचुकेहो? स्रुक्, स्रुवादि
[यज्ञके पात्र] तो धोडालेहैं ? वत्ससहितयज्ञधेनुकी तो टहल होगईहै"? ॥ ५४ ॥ अपने पिताके ऐसे मनोहर वचन सुनकर, करुणान्वित वचनके
जाननेवाले पिताको ऋष्यशृङ्ग उत्तर देतेहुए. ॥ ५५ ॥ "हे पिता ! यहांपर एक जटाधारी ब्रह्मचारी आयेथे। न वह अत्यन्त छोटे और न अत्यन्त
बड़े हैं। महामान्य सुवर्णके समान वर्णवाले कमलदलके समान नेत्रहैं जिनके, जिनको देखकर देवता लोगभी लुभाय जाँय ॥ ५६ ॥ चटकीले मनोहर रूप
युक्त चंद्रमाके समानकांतिवान कारे कारे चटकारे स्वच्छ सुगन्धसे सुवासित और सुवर्णकेतारसे गुंथरहीहैं बड़ी जटा जिनकी॥ ५७॥ आकाशमें बिजलीके

नकल्प्यन्तेसमिधःकिन्नुतातकच्चिद्धुतंचाग्निहोत्रंत्वयाद्य ॥ सुनिर्णिक्तंस्रुक्स्रुवंहोमधेनुःकच्चित्सवत्साचकृतात्वयाद्य ॥ ५४ ॥ इतिश्रु
त्वापितुस्तस्यवचोसुग्धाक्षरंपरम् ॥ उवाचवाक्यंवाक्यज्ञंपितरंकरुणान्वितम् ॥ ५५ ॥ इहागतोजटिलोब्रह्मचारीनवैह्रस्वोनातिदीर्घो
मनस्वी ॥ सुवर्णवर्णःकमलायताक्षःसुतंसुराणामिवलोभमानः ॥ ५६ ॥ सुस्निग्धरूपःसवितेवदीप्तःसुशुभ्रकृष्णाक्षिरतीवगौरः ॥ नीलाविवि
क्ताचजटासुगन्धिर्हिरण्यरज्जुग्रथितासुदीर्घा ॥ ५७ ॥ आलम्बमानापुनरस्यकण्ठेविद्योततेविद्युदिवान्तरिक्षे ॥ द्वौमांसपिण्डावधरेणक
ण्ठादलोमशौचापिमनोहरौच ॥ ५८ ॥ विलग्नमध्यश्चसनाभिदेशेकटिश्चतस्यापिबृहत्प्रमाणा ॥ अथास्यचीरान्तरतःप्रभातिहिरण्मयी
वममसेखलेयम् ॥ ५९ ॥ अन्यच्चतस्याद्भुतदर्शनीयंविकुञ्चितंपादयोःसंविरौति ॥ पाण्योश्चतद्वद्रुचिरंनिबद्धौकलापकैरक्षमालायथेय
म् ॥ ६० ॥ विचेष्टमानस्यचतस्यनाभिःकूजन्तिहंसाःशरदीवमत्ताः ॥ चीराणितस्याद्भुतदर्शनानिलोमानितद्वन्ममरूपवन्ति ॥ ६१ ॥

समान शोभायमान जटायें कंठमें पड़ी हुई, कल्पवृक्षको लजानेवाले अधरहैं जिनके और छातियोंपर रुओंसेहीन अति मनोहर मांसके दोपिंड विराजमान हैं ५८
कमरके छूटनेवाले उदरमें स्थित नाभिवाले बड़ेहैं नितम्ब जिनके, महीन वस्त्र पहिरे, मेरी मेखला (तगड़ी) के समान सुवर्णकी मेखला धारण करनेसे
प्रकाशवान् हुए ॥ ५९ ॥ उन ब्रह्मचारीके दोनों चरणोंमें कैसे अद्भुत क्रौंच और बगले विराजमान हैं ॥ और जिसप्रकार मेरे हाथोंमें रुद्राक्षकी माला पड़ी हैं
वैसेही उन ब्रह्मचारीके दोनों हाथोंमें दो कंकन पड़ेहैं ॥ ६० ॥ और शरदकालको प्राप्त होकर हंस जिसप्रकार सदा शब्द किया करते हैं॰ वैसेही

ब्रह्मचारीकी चेष्टारहित नाभि और हमारे रूपके समान आश्चर्यदर्शनवाले, रोम चीरवसन शब्द किया करतेहैं ॥ ६१ ॥ हृदयको आनंद देनेवाला कैसा सुन्दर उनका मुखहै, विशेष करकै कोयलके समान उनकी वाणी जबसे सुनीहै तबसे मेरे मनको पीड़ा हो रहीहै ॥ ६२ ॥ उन ब्रह्मचारीने मेरे शरीरको वारंवार चिपटाकर और जटाजूट पकड़कर मेरे मुखको झुकाकर मुखसे मुख लगाय एक ऐसा शब्द किया कि जिससे मुझको बड़ा हर्ष उत्पन्न हुआ, जिस हर्षका वर्णन करनेको मैं असमर्थहूं ॥ ६३ ॥ मेरे दियेहुए फल, मूल और चीरंवसनोंका उन तपस्वीने कुछ आदर न करके मुझसे कहा “हमारा यही व्रतहै कि तुम्हारा दिया पाद्य और फल मूलादि हम ग्रहण नहीं करते ॥ ६४ ॥ हमारे यह फल उनके फलोंके स्वादकी बराबर नहीं, फिर इसके उपरान्त उदाररूप ब्रह्मचारीने मेरे पीनेको उत्तम स्वादिष्ठ रसभरे जल अपने इकठे कियेहुए फल मूल मुझको दिये ॥ ६५ ॥ ब्रह्मचारी ऋषिने हर्षित होकर जो फल मूल और जलादि मुझको दिया उसके पान करतेही मुझको ऐसा ज्ञात हुआ मानों पृथ्वी घूमने लगी । और रेशमके डोरेसे ब्रह्मचारी करके गूंथी हुई यह समस्त पुष्पमालाहैं ॥ ६६ ॥ हेतात ! अब हम उस ब्रह्मचारीके निकट रहनेकी इच्छा करते हैं. हे पिता ! इस व्रतचर्याका क्या नामहै ? ब्रह्मचारीके साथ इस व्रतके करनेकी मुझको बड़ीही लालसाहै, क्योंकि वह ब्रह्मचारी इस व्रतको करके उग्र कर्म करनेवाले होगयेहैं ” ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त महावाक्य विशारद तप करके समस्त तत्त्व जानने वाले विभाण्डक मुनि अपने पुत्रके ऐसे वच१

वक्त्रञ्चतस्याद्भुतदर्शनीयंप्रव्याहृतंह्लादयतीवचेतः ॥ पुंस्कोकिलस्येवचतस्यवाणीतांशृण्वतोमेव्यथितोन्तरात्मा ॥ ६२ ॥ समे
समाश्लिष्यपुनःशरीरंजटासुगृह्णात्यवनम्यवक्त्रम् ॥ वक्त्रेणवक्त्रंप्रणिधायशब्दंचकारतन्मेऽजनयत्प्रहर्षम् ॥ ६३ ॥ नचापिपाद्यंबहुमन्यते
ऽसौफलानिचैलानिमयाहृतानि ॥ एवंव्रतोऽस्मीतिचमामवोचत्फलानिपाद्यानिनचाददन्मे ॥ ६४ ॥ मयोपभुक्तानिफलानितस्यने
मानितुल्यानिरसेनतेषाम् ॥ तोयानिचैवातिरसानिमह्यंप्रादात्सवैपातुमुदाररूपः ॥ ६५ ॥ पीत्वैवयान्यभ्यधिकःप्रहर्षोसमाभवद्भूश्च
लितेवचासीत् ॥ इमानिचित्राणिचगन्धवन्तिमाल्यानितस्योद्ग्रथितानिपट्टे ॥ ६६ ॥ इच्छामितस्यान्तिकमेवतातकानामसा
व्रतचर्यानुतस्य ॥ इच्छाम्यहंचरितंतेनसार्द्धंयथातपःसचरत्युग्रकर्मा ॥ ६७ ॥ इत्येववाक्यंमुनिरात्मजस्यश्रुत्वामहावाक्यवि
शारदोऽसौ ॥ उवाचवाक्यंपरिसान्त्वयन्हिविभाण्डकस्तपसाज्ञाततत्त्वः ॥ ६८ ॥

सुनकर अनेक प्रकारसे हित वाक्यरूप, जल छिड़क, कामबाणसे दग्ध होगयाहै चित्त जिसका, ऐसे पुत्रको समझा बुझायकर बोले ॥ ६८ ॥ हेपुत्र ! तुमने जो आश्चर्य देखा सो मेरे विचारमें आताहै कि इस स्थानमें राक्षसगण घूमनेके लिये आगये होंगे, क्योंकि उनकी शूरता, वीरता, उदारता, और रूप गुण ऐसा होताहै कि जिसकी उपमा नहीं है. उनका स्वभावही ऐसाहै कि वह तपमें सदाही विघ्न किया करतेहैं ॥ ६९ ॥ जिन्होंने मनको अपने वशमें करलिया है ऐसे मुनिगण कभी उनके साथ वास नहीं करते. हमारे दिये फल मूल और मधुपान जो नहीं किया, इसका धर्म शास्त्रमें विशेष निषेधहै और चित्तको अधिक चलायमान करनेवाले हारभी मुनियोंको न ग्रहण करने चाहिये ॥ ७० ॥ उनको राक्षस बताय अत्यन्त स्नेहके वश धैर्यगुणका अवलंबन करनेवाले अपने पुत्र ऋष्यशृङ्गको वारंवार निवारणकर विभांडक मुनि तप करनेके निमित्त वनसे फूल फल लानेको जब दूसरे आश्रममें गये ॥ ७१ ॥ तब ब्रह्मचारीरूपधारिणी वारनारी फिर ऋष्यशृङ्गके निकट आय पहुँची अति लुभानेकी लालसासे जिससमय वेश्या ऋष्यशृङ्गके निकट गई उसकाल हर्षित चित्तहुए ऋष्यशृङ्ग वारनारीको देखतेही चकित और भ्रांतिसे उठकर उस वेश्यासे बोले ॥ ७२ ॥ “जबतक हमारे पिता आश्रममें न आवें तबतक हम तुम्हारे आश्रममें चलें।” मुनिके ऐसे वचन सुनकर वेश्या किसी योगबलके द्वारा पर्णशालामें प्रवेशकर विभाण्डकके श्रेष्ठ पुत्र ऋषशृङ्ग मुनिकी सर्व विषयमें अनासक्त जीवात्म परमात्म तत्त्ववाली अभेद चिन्तनरूप समाधि भंग करके उनको नौकामें सवार कराती हुई ॥ ७३ ॥ फिर अनेक उपायोंके द्वारा ऋष्यशृङ्ग मुनिके साथ अत्यन्त हास परिहास करती हुई वारांगनायें

रक्षांसिचैतानिचरन्तिपुत्ररूपेणतेनाद्भुतदर्शनेन ॥ अतुल्यवीराण्यतिरूपवन्तिविघ्नंसदातपसश्चिन्तयन्ति ॥ ६९ ॥ नतानिसेवेतमुनिर्यतात्माफलानिपेयानिमधूनितानि ॥ माल्यानिचैतानिनवैमुनीनांग्राह्याणितान्युत्पलगन्धवन्ति ॥ ७० ॥ रक्षांसितानीतिनिवार्यपुत्रंविभाण्डकस्तपसेनिर्जगाम ॥ यदापुनःकाश्यपोनिर्जगामफलानिहर्त्तुंविधिनावनाद्धि ॥ ७१ ॥ तदापुनर्लोभयितुंजगामसावारयोषामुनिमृष्यशृङ्गम् ॥ दृष्ट्वैवतामृष्यशृङ्गःप्रहृष्टःसंभ्रान्तरूपोन्यपतत्तदानीम् ॥ ७२ ॥ प्रोवाचचैनांभवदाश्रमायगच्छामियावन्नपिता ममेति ॥ ततोवेश्याकाश्यपस्यैकपुत्रंप्रवेश्ययोगेनविमुच्यनावम् ॥ ७३ ॥ प्रमोदयन्त्योविविधैरुपायैराजग्मुरंगाधिपराजधानीम् ॥ अन्तःपुरेतंतुनिवेश्यराजाविभाण्डकस्यात्मजमेकपुत्रम् ॥ ७४ ॥

अंगपति लोमपादकी राजधानीमें पहुँची । तीनों वाराङ्गनाओंके साथ ऋषि विभाण्डकके पुत्र ऋष्यशृङ्ग मुनिको आया हुआ दूतके मुखसे सुन राजा लोमपादने अत्यानंदित चित्तसे ऋष्यशृङ्गको अपने रनवासमें प्रवेश कराया ॥ ७४ ॥ जैसेही ऋष्यशृङ्गने अंतःपुरमें प्रवेश किया वैसेही देवताओंने अमृत वर्षायकर जगत् संसारको परिपूर्ण करदिया इस अलौकिक कार्यको देखकर सफलकाम लोमपाद राजाने अपनी शान्तानामक कन्या ऋष्यशृङ्गको देदी ॥ ७५ ॥ इसके उपरान्त पुत्रको ढूंढ़ते हुए राज्यमें अवश्यही शुभागमन करनेवाले विभाण्डक मुनिका क्रोध शान्त करनेको कुछ सवत्सा गाय और हल जोतनेवाले बहुतसे पशु, मार्गमें राजा लोमपादने रखवाय दिये ॥ ७६ ॥ उन कृषकोंको राजा लोमपादने यह आज्ञादी कि पुत्रको खोजतेहुए यदि महर्षि विभाण्डक मुनि यहांपर आयकर पूछें कि पशु और पशुपाल किस राजाके हैं ? तब तुम हाथ जोड़कर अति विनीतभावसे कहना कि यह समस्त पशु और कर्षक गण आपके पुत्रकेहैं ॥ ७७ ॥ इसके उपरान्त पुत्रके दर्शनकी लालसासे अत्यन्त घबड़ाये, फल मूल हाथमें लिये अग्निहोत्रपरायण विभाण्डकमुनि अतिशीघ्र आश्रममें आये और वहाँ पुत्रको न देखकर इधर उधर ढूंढ़ते खोजते अत्यन्त क्रोधके वश हुए ॥ ७८ ॥ फिर क्रोधकी अग्निसे विदीर्ण हुए मुनि विभाण्डकजी लोमपाद राजाके चरित्रकी शंकाकर भ्रुकुटि चढ़ाय अंगराजके पुर नगर कसबे देखते हुए चंपानगरीकी ओर गमनकर ॥ ७९ ॥ कुछ दूर आयकर मार्गमें थककर और भूँखे होकर काश्यप वे घोष देशादि बहुतसे पशुगणोंसे विभूषित अतिसम्पत्तिवान् नगर देखकर, वहाँके गोप गोपिका और गोपबालकों

ददर्शदेवंसहसाप्रविष्टमापूर्यमाणञ्चजगज्जलेन ॥ सलोमपादःपरिपूर्णकामःसुतांददौऋष्यशृङ्गायशान्ताम् ॥ ७५ ॥ क्रोधप्रतीकारकरञ्च केगाश्चैवमार्गेषुचकर्षकाणि ॥ विभाण्डकस्याव्रजतःसराजापशून्प्रभूतान्पशुपांश्ववीरान् ॥ ७६ ॥ समादिशत्पुत्रमार्गीमहर्षिर्विभाण्डकः परिपृच्छेद्यदावः॥ सवक्तव्यःप्राञ्जलिभिर्भवद्भिःपुत्रस्यतेपशवःकर्षकश्च ॥ ७७ ॥ अथोपजातंसमुनिश्चुकोपस्वमाश्रमंफलमूलंगृहीत्वा ॥ अन्वेषमाणश्चनतत्रपुत्रंददर्शचुक्रोधततोभृशंसः ॥७८॥ ततःसकोपेनविदीर्यमाणमाशंकमानोनृपतेर्विधानम् ॥ जगामचम्पांप्रातिवीक्ष्यमाणस्तमंगराजंसपुरंसराष्ट्रम् ॥ ७९ ॥ सवैश्रान्तःक्षुधितःकाश्यपस्तान्घोषान्देशान्सादिचरान्समृद्धान् ॥ गोपैश्चतैर्विधिवत्पूज्यमानोराजेवतांरात्रिमुवासतत्र ॥ ८० ॥

करकै यथाविधि पूजितहो वहाँपर एक रात्रि विताय ॥८०॥ अतिसत्कार पायेहुए मुनि वहाँके पशुपालक लोगोंसे पूछतेभये । " अरे भइयागोपगण ! तुम किससे प्रेरित कियेगयेहो ? " यह सुनतेही गोपगण मुनिके निकट हाथ जोड़ेहुए आकर " यह समस्त धन आपके पुत्रका है "यह वाणी गोपोंने निवेदन की ॥८१॥ फिर उस देशमें इसप्रकार सर्वभांतिसे पूज्यमानहो, पशुरव और पशुपालकोंकी मीठीवाणी सुन शान्त हो अपनेइंष्टको पाय हर्षितहुए विभाण्डक मुनि चंपा नगरीमें राज्यकर्तेहुए अंगपतिको प्राप्त होगये ॥८२॥ इसके उपरान्त नरशार्दूल लोमपादराजाकरके पूजित मुनि विभाण्डक मानों देवालयमें देवराजइंद्रके समानपुत्र और रूपसे अद्भुत दीप्यमान विजलीके समान शान्तानामक अपनी पुत्रवधूका मुख देखनेसे सावधानचित्तहो. पुत्रका

अवापसत्कारमतीवतस्यप्रोवाचकस्यप्रहिताःस्थगोपाः ॥ ऊचुस्ततस्तेऽभ्युपगम्यसर्वंधनंतवेदंविहितंसुतस्य ॥ ८१ ॥ एवंसदेशेष्वभिपूज्यमानस्तांश्चैवशृण्वन्मधुरप्रलापान् ॥ प्रशान्तभूयिष्ठरजाःप्रहृष्टःसमाससादाङ्गपतिंपुरस्थम् ॥ ८२ ॥ सपूजितस्तेननरर्षभेणददर्शपुत्रांदिविदेवमिन्द्रम् ॥ शान्तांस्नुषांचैवददर्शतत्रसौदामिनीमुच्चरतींयथैव ॥ ८३ ॥ ग्रामांश्चघोषांश्चसुतस्यदृष्ट्वाशान्ताश्चशान्तश्चपरःसकोपः ॥ चकारतस्मैचपरंप्रसादंविभाण्डकोभूमिपतेर्नरेन्द्र ॥ ८४ ॥ सतत्रनिःक्षिप्यसुतंमहर्षिरुवाचसूर्याग्निसमप्रभावः ॥ जातेतुपुत्रेवनमाव्रजेथाराज्ञःप्रियाण्यस्यसर्वाणिकृत्वा ॥ ८५ ॥ सतद्वचःकृतवानृष्यशृङ्गोययौचयत्रास्यपिताबभूव ॥ शान्ताचैनंपर्यचरद्यथावैखेरोहिणीसोममेवंतथासा ॥ ८६ ॥ अरुन्धतीवसुभगावसिष्ठंलोपामुद्रावापियथाह्यगस्त्यम् ॥ तथाशान्ताऋष्यशृङ्गंवनस्थंप्रीत्यायुक्तापर्यचरन्नरेन्द्र ॥ ८७ ॥

पहला कहाहुआ ग्राम पशु घोष वर्गादि अतुल ऐश्वर्य देखकर विभाण्डकजी प्रचंड होनेपरभी राजालोमपादके प्रति परम प्रसन्नहुए॥८३॥८४॥तिसके उपरान्त लोमपाद राजाके राज्यमें पुत्र और पतोहूको रखकर सूर्य व अग्निके समान कान्तिवान् महर्षि विभाण्डकजी अपने पुत्रसे यह कहगये कि जब राजाके समस्तप्रिय कर्म सिद्ध हो जांय और तुम्हारे पुत्रोत्पत्ति होजाय तब तुम वानप्रस्थाश्रममें गमन करना।८५।जब पुत्रको इसप्रकारसे आज्ञादी तब अति विनीत ऋष्यशृङ्ग " जो आज्ञा कहकर " पिताके वचन पालन करनेंको तयारहुए, फिर विभाण्डक ऋषि अपनेस्थानको चलेगये।८६।पश्चात् वे ऋष्यशृंगभी पुत्र उत्पन्न कर जहां पिता थे वहां चलेगये वशिष्ठजीके समीप सौभाग्यवती अरुन्धती और अगस्त्य मुनिके समीपमें राजकन्या लोपामुद्रा यह जिसप्रकार अपने

पतिकी सेवामें आसक्त रहतीहैं; वैसेही आकाश मंडलमें रोहिणीके समान शान्ता, चंद्रमाके समान वनवासी ऋष्यशृङ्गकी सेवाकरतीथी८७ तिस काल वशिष्ठ मुनि राजा दशरथजीसे इसप्रकार ऋष्यशृङ्गके पराक्रमका वृत्तान्त कहकर बोले; कि हे महाराज! जो आपका यज्ञ करेंगे, उन ऋष्यशृङ्ग मुनिके लानेका यत्न कीजिये॥८८॥) इसके उपरान्त अयोध्याके महाराजा श्रीमान् दशरथजी, कुलपुरोहित वशिष्ठजीके वचन सुनकर मंत्रियोंके साथ परामर्शकर अंगपतिकी राज धानी चंपानगरीसें अतियत्नके साथ विभाण्डक मुनिके पुत्र तपस्वी तपोधन ऋष्यशृंग मुनिको अयोध्यामें लिवालाये, और परमपवित्रतासे नित्य कर्मोंका निर्वाह कर पापरहित ऊपर कहेहुए मुनियोंके साथ यथाविधिसे पुत्रेष्टि यज्ञका आरम्भ करदेते हुए ॥ ६ ॥ पश्चात् जब अति यत्नके

इतितेसर्वमाख्यातमृष्यशृङ्गपराक्रमम् ॥ तमानयमहाराजसतेयज्ञंकरिष्यति ॥ ८८ ॥) तथेतिमुनिमानीयमंत्रिभिःसहितःशुचिः ॥
यज्ञकर्मसमारेभेमुनिभिर्वीतकल्मषैः ॥ ६ ॥ श्रद्धयाहूयमानेऽग्नौतप्तजांबूनदप्रभः ॥ पायसंस्वर्णपात्रस्थंगृहीत्वोवाचहव्यवाट् ॥ ७ ॥
गृहाणपायसंदिव्यंपुत्रीयंदेवनिर्मितम् ॥ लप्स्यसेपरमात्मानंपुत्रत्वेननसंशयः ॥ ८ ॥ इत्युक्त्वापायसंदत्त्वाराज्ञेसोंऽतर्दधेऽनलः ॥ ववंदे
मुनिशार्दूलौराजालब्धमनोरथः ॥ ९ ॥ वसिष्ठऋष्यशृंगाभ्यामनुज्ञातोददौहविः ॥ कौसल्यायैसकैकेय्यैअर्धमर्धंप्रयत्नतः ॥ १० ॥
ततःसुमित्रासंप्राप्ताजगृध्नुःपौत्रिकंचरुम् ॥ कौसल्यातुस्वभागार्धंददौतस्यैमुदान्विता ॥ ११ ॥

साथ अग्निमें होम कियागया, तब तपायेहुए सुवर्णके समान कांतिवाले भगवान् अग्निदेव सुवर्णके पात्रमें पायस लिये हुए प्रगट हो राजा दशरथके निकट आयकरबोले ॥ ७ ॥ हे महाराज! पुत्र होनेके लिये देवताओंकी बनाई यह दिव्य खीर ग्रहण कीजिये। तुम निश्चयही परमात्मा हरिको पुत्ररूपसे ग्रहण करोगे, इसमें कुछ संशय नहींहै ॥ ८ ॥ राजाको खीर दे और यह वचन कहकर अग्नि अन्तर्हित होगये, महाराज दशरथजीका मनोरथ पूर्ण होगया, राजा दशरथजीने आनंद सहित वशिष्ठ और ऋष्यशृङ्गके चरणोंकी वन्दनाकी ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त राजानें वशिष्ठ ऋष्यशृङ्गकी आज्ञानुसार कौशल्या और कैकेयीको वह खीर आधी २ बाँटदी ॥ १० ॥ पुत्रकी इच्छाकरके चरुकी अत्यन्त अभिलाषा कर

रानी सुमित्राभी वहाँ आगई । तब कौशल्याने प्रीतिपूर्ण हृदयसे अपनी खीरका आधा भाग उनको देदिया ॥ ११ ॥ और कैकेयीनेभी प्रीतिसे अपने अंशका आधाभाग सुमित्राको देदिया ॥ पायसको भक्षण करकै सब स्त्रियां गर्भवती हुईं ॥ १२ ॥ और अपनी २ दीप्तिसे देवताओंकी समान उस राजमंदिरमें विराजमान होनें लगी; इसके उपरान्त दशमामहीना जब आया; तब कौशल्याजीने एक अपूर्व; पुत्र उत्पन्न किया ॥ १३ ॥ उस समय सूर्य मेषराशिमें गयेथे; अर्थात् चान्द्र चैत्रमासके शुक्लपक्षमें नवमी तिथिको कर्क लग्न पुनर्वसु नक्षत्रमें जब पांच ग्रह उच्चके हुए तब [1]मध्याह्न कालके समय सनातन परमात्मा जगन्नाथ राजा दशरथजीके गृहमें अवतार लेतेहुए । उसकाल स्वर्गसे पुष्पोंकी वर्षा होनें लगी ॥ १४ ॥ १५ ॥

कैकेयीचस्वभागार्धंददौप्रीतिसमन्विता ॥ उपभुज्यचरुंसर्वाःस्त्रियोगर्भसमन्विताः ॥ १२ ॥ देवताइवरेजुस्ताःस्वभासाराजमंदिरे ॥
दशमेमासिकौसल्यासुषुवेपुत्रमद्भुतम् ॥ १३ ॥ मधुमासेसितेपक्षेनवम्यांकर्कटेशुभे ॥ पुनर्वस्वृक्षसहितेउच्चस्थेग्रहपंचके ॥ १४ ॥ मेषंपू
षणिसंप्राप्तेपुष्पवृष्टिसमाकुले ॥ आविरासीज्जगन्नाथःपरमात्मासनातनः ॥ १५ ॥ नीलोत्पलदलश्यामःपीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ जलजारु
णनेत्रांतःस्फुरत्कुंडलमंडितः ॥ १६ ॥ सहस्रार्कप्रतीकाशःकिरीटीकुंचितालकः ॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः ॥ १७ ॥ अनु
ग्रहाख्यहृत्स्थेंदुसूचकास्मितचंद्रिकः ॥करुणारससंपूर्णविशालोत्पललोचनः ॥ श्रीवत्सहारकेयूरनूपुरादिविभूषणः ॥ १८ ॥ दृष्ट्वातंपरमा
त्मानंकौसल्याविस्मयाकुला ॥ हर्षाश्रुपूर्णनयनानत्वाप्रांजलिरब्रवीत् ॥ १९ ॥

नीले कमलकी पंखड़ियोंके समान रंगवाले, पीताम्बर पहरे, चार भुजा धारण किये, कमलकी समान ललाई लियेहुएहैं नेत्रोंका समीप जिनका, कानोंमें कांतिमान कुंडलोंसे शोभायमान ॥ १६ ॥ सहस्र सूर्यके प्रभासमान मुकुट धारण किये; घुंघुरारे केशवारे, शंख, चक्र, गदा, पद्म, और वनमालासे विराजमान ॥ १७ ॥ अनुग्रह रूपी हृदयमें विराजमान चंद्रमाको बोधन करनेंवाली मन्द मुस्कान रूप उजियारी युक्त, करुणा रस सम्पूर्ण, कमलकी पंखड़ियोंके समान नेत्रवाले, श्रीवत्स चिह्न, हार, बाजू, नूपुरादि भूषण पहरे ॥ १८ ॥ परमात्मारूप पुत्रको देखकर कौशल्याजी हर्ष और विस्मयसे व्याकुल होगई; और हाथ जोड़े हुए प्रणाम करकै नेत्रोंमें आनंदके आंसूभर भगवान्‌की स्तुति करनेलगी ॥ १९ ॥

---

[1] यद्यपि मूलमें मध्याह्नकाल नहींहै, तथापि अतितेज पुंज सूर्यवंशीय श्रीरामचंद्रजीके जन्मकालमें समस्त अंधकार दूर होगयाथा; इसकारण अनुवादमें लिखागया; क्यौंकि दूसरे पुराणोंमेंभी मध्याह्नकालका विशेष वर्णन है; " किंवा मध्याह्नजन्म भावयेत् " यह तिथि तत्वमें लिखाहै;अतएव अनुवादमें अत्यन्त विरसभावके होनेसे मध्याह्नकाल लिखागया।

कौशल्याजीने कहा;–हेदेवदेव ! तुमको नमस्कारहै ! हेशंखचक्रगदाधर ! आप परमात्मा और अच्युतहैं; अर्थात् तुम्हारा पतन नहींहै, इस कारण अच्युतहो; तुम्हारा अंत नहींहै; इसकारण अनन्तहो, तुममें अंशनहींहै; इसकारणसे पुरुषोत्तम हो ॥ २० ॥ तुम वचनके अगोचर, बुद्धि और इन्द्रियादिके अगोचर हो । वेदवादी आपको ज्ञानमय मात्र शरीर अर्थात् सच्चिदानंद मूर्त्ति सत्तामात्र जानतेहैं ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! तुमही अपनी मायासे इस जगत्को उत्पन्न करते, पालनकरते और संहार करते हो । सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, युक्त शरीरवाले साक्षात् ज्योतिःपदार्थ सूर्यके समान निर्मल हो॥ २२॥निर्विकारहो । ठीक जान पड़रहाहै कि जैसे तुम कुछ कर रहेहो; परन्तु कर्ता नहींहो; मानो जाते हो परन्तु जानेंवाले नहींहो; मानो सुनतेहो; परन्तु श्रोतानहीं हो मानो देखतेहो; पर द्रष्टा नहीं हो;॥ २३ ॥ तुमको श्रुतिसदा प्राणशून्य मनशून्य और शुद्ध कहती हैं । तुम सब भावसे सब जगह वर्तमान हो तथापि जिनके अंतःकरण अज्ञान रूपी अंधकारसे ढके हुएहैं; वे आपको नहीं देखसक्के ॥ २४ ॥ परन्तु आप तत्त्व जाननेवालोंके सन्मुख दीखते हो । आपके उदरमें ब्रह्माण्ड समूह परमाणुके समान दिखलाई देतेहैं ॥ २५ ॥ मेरे उदरमें जन्मकर लोकमें मेरे माहात्म्यको प्रकाश करते हो । हेरघुश्रेष्ठ ! मेरे ऊपर तुम्हारा यह अनुग्रह होनेसे आजभक्तके प्रति आपकी अनुगताही प्रगट होतीहै ॥ २६ ॥ यद्यपि आपकी मायासे पुत्र धनादिमें मोहित होकर संसारसागरकी तीव्र तरंगोंमें बराबर उछलती डूबती फिरतीथीं; तथापि आज तुम्हारे चरणकमलोंकी नौका पाय ली; अब

कौसल्योवाच ॥ देवदेवनमस्तेऽस्तुशंखचक्रगदाधर ॥ परमात्माऽच्युतोऽनंतःपूर्णस्त्वंपुरुषोत्तमः॥२०॥ वदंत्यगोचरंवाचांबुद्ध्यादीनामतींद्रियम् ॥ त्वांवेदवादिनःसत्तामात्रंज्ञानैकविग्रहम् ॥ २१ ॥ त्वमेवमाययाविश्वंसृजस्यवसिहंसिच ॥ सत्त्वादिगुणसंयुक्तस्तुर्यएवामलः सदा ॥ २२ ॥ करोषीवनकर्तात्त्वंगच्छसीवनगच्छसि ॥ नशृणोषिशृणोषीवपश्यसीवनपश्यसि ॥ २३ ॥ अप्राणोह्यमनाःशुद्धइत्यादिश्रुतिरब्रवीत् ॥ समःसर्वेषुभूतेषुतिष्ठन्नपिनलक्ष्यसे ॥ २४ ॥ अज्ञानध्वांतचित्तानांव्यक्तएवसुमेधसाम् ॥ जठरेतवदृश्यंतेब्रह्मांडाःपरमाणवः ॥ २५ ॥ त्वंममोदरसंभूतइतिलोकान्विडंबसे ॥ भक्तेषुपारवश्यंतेदृष्टंमेऽद्यरघूत्तम ॥ २६ ॥ संसारसागरेमग्नापतिपुत्रधनादिषु ॥ भ्रमामिमाययातेऽद्यपादमूलमुपागता ॥ २७ ॥

आशा हुई कि उद्धार हो जायगा॥ २७॥ हे देव! तुम्हारा यह रूप मेरे हृदयमें सदा विराजमान रहै कि जिसकरकै संसारकी मोहनेंवाली तुम्हारी माया मुझे न ढक सकै ॥ २८ ॥ हे विश्वात्मन्! हे महानंद! इस अलौकिक रूपको छिपायकर कोमल बालभाव दर्शन कराइये ॥ २९ ॥ आज माताके समान तुम्हैं गोदीमें लेकर तुम्हारे साथ ललित आलाप करकै भयंकर अज्ञान मूल संसारके पार हो जाऊं।तुम्हारे बालस्वरूपका मनोहर आलिंगन, और संभाषण सुनकर भयंकर संसारके पार भक्त हो जाँयगे।श्रीरामचंद्रजी बोले,हेमातः!—तुम जो कुछ चाहती हो, यह सब सिद्ध होगा, उससे अन्यथा नहीं किया जायगा॥ ३०॥ मैं पृथ्वी का भार उतारनेकी वासनासे पहले ब्रह्माकरकै प्रार्थित होकर रावणका वध करनेंको मनुष्य जन्मको प्राप्त हुआहूं ॥ ३१ ॥ हे अनिन्दिते! पहले जन्ममें तुमनें और दशरथजीनें मुझको पुत्र रूपसे प्राप्त करनेंके लिये तप करकै मेरी आराधनाकीथी इस समय मैं तुम्हारे यहाँ पुत्र होकर अवतरा ॥ ३२ ॥ पूर्व जन्मकी तपस्याके फलसेही तुमने मेरा यह रूप देखाथा, मेरा दर्शन प्राप्त करते ही,—जीव मुक्तिको प्राप्त होजाता है. पुण्यहीन इस रूपको नहीं देखसक्ता ॥ ३३ ॥ हम दोनोंका कथोपकथन जो पुरुष पाठ करेगा या श्रवण करेगा वह मरणकालमें नामले सकेगा, और मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जायगा ॥ ३४ ॥ माता कौशल्याजीसे यह वचन कह श्रीरामचंद्रजी बालकस्वभाव हो रोदन करने लगे, उस बालकपनमेंभी इस नीलमणि के समान उनका वर्ण कमलदलके समान बडी २ आंखें थीं, वास्तवमें उनका रूप अति रमणीय था ॥ ३५ ॥ उनके अद्भुत रूपसे प्रभात कालके

देवत्वद्रूपमेतन्मेसदातिष्ठतुमानसे ॥ आवृणोतुनमांमायातवविश्वविमोहिनी ॥ २८ ॥ उपसंहरविश्वात्मन्नदोरूपमलौकिकम् ॥ दर्शयस्वमहानंदबालभावंसुकोमलम् ॥ २९ ॥ ललितालिंगनालापैस्तरिष्याम्युत्कटंतमः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यद्यदिष्टंतवास्त्यंबतत्तद्भवतुनान्यथा ॥ ३० ॥ अहंतुब्रह्मणापूर्वंभूमेर्भारापनुत्तये ॥ प्रार्थितोरावणंहंतुंमानुषत्वमुपागतः ॥ ३१ ॥ त्वयादशरथेनाहंतपसाऽऽराधितः पुरा ॥ मत्पुत्रत्वाभिकांक्षिण्यातथाकृतमनिंदिते ॥ ३२ ॥ रूपमेतत्त्वयादृष्टंप्राक्तनंतपसःफलम् ॥ मद्दर्शनंविमोक्षायकल्पतेह्यन्यदुर्ल्लभम् ॥ ३३ ॥ संवादमावयोर्यस्तुपठेद्वाशृणुयादपि ॥ सयातिममसारूप्यंमरणेमत्स्मृतिंलभेत् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वामातरंरामोबालोभूत्वारुरोदह ॥ बालत्वेऽपींद्रनीलाभोविशालाक्षोऽतिसुंदरः ॥ ३५ ॥ बालारुणप्रतीकाशोलालिताखिललोकपः ॥ अथराजादशरथः श्रुत्वा पुत्रोद्भवोत्सवम् ॥ आनंदार्णवमग्नोऽसावाययौगुरुणासह ॥ ३६ ॥

अरुणके समान ज्योति निकल रहीथी नारायणजीने बालरूपसे अवतार ले समस्त लोकपालोंको संतुष्ट कियी। इसके उपरान्त राजा दशरथजी पुत्र उत्पन्न होनेसे महा उत्सवका होना सुनकर आनंदसागरमें मग्न होगये और पुत्रका मुख देखनेको गुरुजीके साथ सौरीगृहमें गये ॥ ३६ ॥ राजीवलोचन श्रीरामचंद्रजीके मुखका दर्शन करकै दशरथजीके आनंदकी सीमा न रही. राजाने वसिष्ठजीके साथ सब जातकर्म समाप्त किये ॥ ३७ ॥ इस ओर कैकेयीने कमलके समान नेत्रवाले भरतजीको उत्पन्न किया और सुमित्राके गर्भसे पूर्ण चंद्रमाके समान दो युगल कुमार उत्पन्न किये ॥ ३८ ॥ राजा दशरथजीनें इन चार पुत्रोंको प्राप्त करकै अति आनंदित हो ब्राह्मणोंका सहस्र २ ग्राम, सुवर्ण रत्न, बड़े मोलके वस्त्र, और शुभ गायें दानमें दीं ॥ ३८ ॥ अज्ञानका नाश होनेपर योगी लोग विद्याके बलसे जिसमें रमण किया करते हैं, अथवा अपने रूपकी सुन्दरताईसे जो अपने भक्तोंको आनंदित करते हैं, इस लिये गुरु वसिष्ठजीने उनका नाम “ राम ” रक्खा ॥ ४० ॥ फिर गुरुजीने प्रजाका भरण पोषण करनेमें भरत, लक्षणसम्पन्न देखकर लक्ष्मण और शत्रु विनाश करनेमें सामर्थ्यवान् देखकर शत्रुघ्न नाम रक्खा ॥ ४१ ॥ कौशल्याजीकी दी हुई पायसके अंशसे लक्षण और कैकयीकी दी हुई खीरके अंशसे शत्रुघ्न उत्पन्न हुये, इसी कारणसे लक्ष्मण रामके, और शत्रुघ्न भरतके अनुगामी हुए ॥ ४२ ॥ इस प्रकार श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मणजीके साथ बाललीला करकै विचरण करते २ मन मोहनकारी चेष्टासे और कथा वार्ता कहकर पिता माताको आनंद बढाने लगे ॥ ४३ ॥ श्रीरामचंद्रजी बालावस्थामें क्या २ वस्त्राभूषण पहरतेथे, ग्रन्थकर्ता उनका वर्णन करता है; माथेपर सुवर्णमय पींपलका पत्ता और मुक्ताफलके समान रूपमें देदीप्यमान कंठमें मणिमय हार; उसके बीचमें व्याघ्रके नखोंसे शोभित है छाती जिनकी ॥ ४४ ॥ दोनों कानोंमें अर्जुनवृक्षके फलोंके

रामंराजीवपत्राक्षंदृष्ट्वाहर्षाश्रुसंप्लुतः ॥ गुरुणाजातकर्माणिकर्तव्यानिचकारसः ॥ ३७ ॥ कैकेयीचाथभरतमसूतकमलेक्षणा ॥ सुमित्रा
यांयमौजातौपूर्णेंदुसदृशाननौ ॥ ३८ ॥ तदाग्रामसहस्राणिब्राह्मणेभ्योमुदाददौ ॥ सुवर्णानिचरत्नानिवासांसिसुरभीःशुभाः ॥ ३९ ॥ य
स्मिन्नमंतेमुनयोविद्ययाऽज्ञानविप्लुवे ॥ तंगुरुःप्राहरामेतिरमणाद्राममइत्यपि ॥ ४० ॥ भरणाद्भरतोनामलक्ष्मणंलक्षणान्वितम् ॥ शत्रुघ्नं
शत्रुहंतारमेवंगुरुरभाषत ॥ ४१ ॥ लक्ष्मणोरामचंद्रेणशत्रुघ्नोभरतेनच ॥ द्वंद्वीभूयचरंतौतौपायसांशानुसारतः ॥ ४२ ॥ रामस्तुलक्ष्मणे
नाथविचरन्बाललीलया ॥ रमयामासपितरौचेष्टितैर्मुग्धभाषितैः ॥ ४३ ॥ भालेस्वर्णमयाश्वत्थपर्णमुक्ताफलप्रभम् ॥ कंठेरत्नमणिव्रात
मध्यद्वीपिनखांचितम् ॥ ४४ ॥ कर्णयोःस्वर्णसंपन्नरत्नार्जुनसटालुकम् ॥ सिंजानमणिमंजीरकटिसूत्रांगदैर्वृतम् ॥ ४५ ॥

समान सुवर्णमय रत्नफल पडे हैं; चरणोंमें शब्द करते हुए नूपुर झनकार कर रहेहैं; कमरमें सुवर्णकी तगडी और दोनों बाहोंमें रत्न जडे बाजू पहरे हैं ॥ ४५ ॥ रामचंद्रजीका मुखारविन्द नये जमे हुए दो चार दांतोंसे युक्त और मुसकानसे शोभायमानथा, जब श्रीराम गायके बछडेकी पूंछ पकडकर आंगनमें इधर उधर दौडे हुए फिरते ॥ ४६ ॥ तब यह देखकर राजा दशरथ व रानी कौशल्याजीके आनंदकी सीमा न रहती; राजा दशरथजी भोजन करते२ अतिगाढे स्नेह सहित “ रामआओ ” “ रामआओ ” कहकर वारंवारं पुकारते॥ ४७॥ परन्तु रामचंद्र खेलमें ऐसे मग्न रहते, कि नहीं आते । तब राजा दशरथ रामके ले आनेको कौशल्याजीसे कहते॥ ४८॥ जब रानी कौशल्या हँसते २उन रामके पकडनेको जाती; जिनको योगीलोगभी मनमें नहीं देखसक्ते हैं तब रामचंद्र भागते और कौशल्याके हाथ नहीं आते।कभी कभी रामजी हँसते हुए अपने आपही चले आते और कीचलगेहुए हाथसे॥ ४९॥ एक आधाही ग्रास खायकर फिर भाग जातेथे; माताकौशल्याजी रामचंद्रजीको भलीभांति पहना ओढायकर महीने २ सुहागनोंको उत्तम २ भोजन देती; प्रतिवर्षके आरंभमें विचित्र २ खीर, पुए, लड्डु, पूरी, कचौडी, पिराक इत्यादि तैयार करतीथी ॥ ५०॥ ५१ ॥ श्रीरामचंद्रजीकी चपलताके पीछे कौशल्याजीने समस्त गृहकार्योंको त्याग दिया; एक समय रघुनाथजी माताके निकट आयकर बोले ॥ ५२॥ “ मैया ! हमें खानेको दे ” उस समय कौशिल्याजी किसी दूसरे कार्यमें लगरहीथीं इस कारण उन्होंने रामचंद्रजीकी बात न सुनी;तब श्रीरामचंद्रजीने लाठीसे बर्तन फोड डाले जोकि छींकेपर रक्खेथे और उन बर्तनोंमेंसे दूध

स्मितवक्त्राल्पदशनमिंद्रनीलमणिप्रभम् ॥ अंगणेरिंगमाणंतंतर्णकाननुसर्वतः ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वादशरथोराजाकौसल्यामुमुदेतदा ॥ भोक्ष्यमाणोदशरथोराममेहीतिचासकृत् ॥ ४७ ॥ आह्वयत्यातिहर्षेणप्रेम्णानायातिलीलया ॥ आनयेतिचकौसल्यामाहसासस्मितासुतम् ॥ ॥ ४८ ॥ धावत्यपिनशक्नोतिस्प्रष्टुंयोगिमनोगतिम् ॥ प्रहसन्स्वयमायातिकर्दमांकितपाणिना ॥ ४९ ॥ किंचिद्गृहीत्वाकवलंपुनरेवपलायते ॥ कौसल्याजननीतस्यमासिमासिप्रकुर्वती ॥ ५० ॥ वायनानिविचित्राणिसमलंकृत्यराघवम् ॥ अपूपान्मोदकान्कृत्वाकर्णशष्कुलिकास्तथा ॥ कर्णपूरांश्चविविधान्वर्षवृद्धौचवायनम् ॥ ५१ ॥ गृहकृत्यंतयात्यक्तंतस्यचापल्यकारणात् ॥ एकदारघुनाथोऽसौगतोमातरमंतिके ॥ ५२ ॥ भोजनंदेहिमेमातर्नश्रुतंकार्यसक्तया ॥ ततःक्रोधेनभांडानिलगुडेनाहनत्तदा ॥ ५३ ॥ शिक्यस्थंपातयामासगव्यंचनवनीतकम् ॥ लक्ष्मणायददौरामोभरताययथाक्रमम् ॥ ५४ ॥

मक्खन ग्रहण करकै लक्ष्मण, भरत ॥ ५४ ॥ व शत्रुघ्नको देदिया, रसोंइयेने जाकर कौशल्याजीसे कहा; कौशल्याजी यह सुनकर हँसती हुई
आने लगीं ॥ ५५ ॥ तिनको आता हुआ देखकर चारों भ्राता भागने लगे, कौशल्याजीके झपटने पर परग २ उनका पैर फिसलगे लगा ॥ ५६ ॥ इन्हों
ने रामचंद्रजीको पकड लिया । परन्तु कहा कुछ नहीं । रामचंद्र पकडे जाकर बालक स्वभाव होनेसे मन्द २ रोनेलगे ॥ ५६ ॥ उसकाल माताने डरेहुए जान स
व बालकोंको बड़े प्रेमके साथ हृदयसे लगालिया. इसप्रकार जगत्के आनंदको बढ़ानेवाले श्रीरामचंद्रजी॥५८॥मायाके प्रभावसे बालदेह धारणकर
राजदम्पति दशरथ व कौसल्याजीके मनको हरणकरने लगे, इसके उपरान्त कुछसमय व्यतीतहो राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, चारोंकुमार कुमार

शत्रुघ्नायददौपश्चाद्दधिदुग्धंतथैवच ॥ सूदेनकथितेमात्रेहास्यंकृत्वाप्रधावति ॥ ५५ ॥ आगतांतांविलोक्याथततःसर्वैःपलायितम् ॥ कौ
सल्याधावमानाऽपिप्रस्खलंतीपदेपदे ॥ ५६ ॥ रघुनाथंकरेधृत्वाकिंचिन्नोवाचभामिनी ॥ बालभावंसमाश्रित्यमंदंमंदंरुरोदह ॥ ५७ ॥
तेसर्वैलालितामात्रागाढमालिंग्ययत्नतः ॥ एवमानंदसंदोहजगदानंदकारकः ॥ ५८ ॥ मायाबालवपुर्धृत्वारक्षयामासदंपती ॥ अथकाले
नतेसर्वेकौमारंप्रतिपेदिरे ॥ ५९ ॥ उपनीतावसिष्ठेनसर्वविद्याविशारदाः ॥ धनुर्वेदेचनिरताःसर्वशास्त्रार्थवेदिनः ॥ ६० ॥ बभूवुर्जगतांना
थालीलयानररूपिणः ॥ लक्ष्मणस्तुसदारामममनुगच्छत्विसादरम्॥६१॥सेव्यसेवकभावेनशत्रुघ्नोभरतंतथा॥रामश्चापधरो नित्यंतूणीबाणा
न्वितःप्रभुः ॥ ६२ ॥ अश्वारूढोवनंयातिमृगयायसैलक्ष्मणः ॥ हत्वादुष्टमृगान्सर्वान्पित्रेसर्वन्यवेदयत् ॥ ६३ ॥ प्रातरुत्थायसुस्नातःपित
रावभिवाद्यच ॥ पौरकार्याणिसर्वाणिकरोतिविनयान्वितः ॥ ६४ ॥

अवस्थाको प्राप्तहुए ॥ ५९ ॥ तब महर्षि वसिष्ठजीने चारों कुमारोंको सर्व प्रकारसे शिक्षादी. सर्व धनुर्वेद, और सर्वशास्त्रोंके जाननेवाले ॥ ६० ॥ थो
ड़ेहीकालमें लीलाही करकै नररूपधारी वह जगन्नाथ होगये, लक्ष्मणजी सदा आदरपूर्वक श्रीरामचंद्रजीका अनुगमन करतेथे ॥ ६१ ॥ व शत्रुघ्नजी
भरतजीकी सेवाकरतेथे । रामचंद्रजी धनुषबाण धारणकर ॥ ६२ ॥ घोड़ेपर सवारहो लक्ष्मणजीके साथ शिकारखेलनेको सदा वनमें जायाकरते और
वनके दुष्टमृगोंका विनाशकर पिताजीको निवेदनकरते ॥ ६३ ॥ प्रभातही बिस्तरेपरसे उठ स्नानकरनेके पीछे पिता माताको प्रणामकर, पुरके समस्त

कार्य विनयसहित समाप्तकरते ॥ ६४ ॥ फिर भोजनकरकै बन्धुबान्धवोंके साथ प्रतिदिन मुनिलोगोंके निकट धर्मशास्त्रादिको रहस्योंके श्रवणकरकै उनकीव्याख्याकरते ॥ ६५ ॥ इसप्रकारसे परमात्मा हरि श्रीरामरूपसे मनुष्यलोकमें अवतारहो मनुष्यलोककेसे आचरणकरकै सबकार्योंको सिद्ध करते, परन्तु यदि विचारकरके देखाजाय तौ उन्होंने कुछभी नहीं किया, कारण कि वे निर्विकार और परिणामहीन हैं॥ ६६ ॥ इस अध्यात्मरामायणके उमामहेश्वरके कथोपकथनके मध्य बालकाण्डमें रामादिकी उत्पत्तिकथनरूप तीसरा सर्ग कहागया ॥ ३ ॥ ॥ चौथासर्ग ॥ महादेवजी बोले;—परमात्माहरि अपनी मायाकरके रामरूपसे दशरथजीके गृहमें अवतार लेचुकेहैं, यह जानकर निर्मलकांतिवाले महर्षि विश्वामित्रजी, उनका दर्शनकरनेके लिये अयोध्या नगरीमें आये ॥ १ ॥ उनको आयाहुआ देखकर अतिशीघ्रतासे राजादशरथजी उठे; और वसिष्ठजीके साथ आगेजाकर उनको लिवालाये, व यथा विधिसे पूजाकरके ॥ २ ॥ हाथजोड़ भक्तियुक्तहो नम्रवचनोंसे कहा, हे मुनिश्रेष्ठ ! आपके आगमनसे मैं कृतार्थ होगया ! ॥ ३ ॥ विशेष करके आप सरीखे महात्मा; जिसके गृहमें पदार्पणकरते हैं; वहांपर समस्त सम्पाति प्राप्तहोजाती हैं; अब यह बतलाइये कि यहांपर आपकाआना किसकारणसे हुआ ? मैं सत्य २ ही आपकी आज्ञाका पालन करूंगा ॥ ४ ॥ फिर महामतिमान् विश्वामित्रजी, दशरथजीके वचन सुन प्रसन्नहो उनको उत्तरदेनेका साहसकरते हैं ! कि चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पौर्णमासी, संक्रांति इन पांच पर्वोंका समय आनेपर देवता व पित्रगणोंको तृप्तकरनेके अर्थ दर्शपौर्णमास यज्ञादि पिण्डपितृयज्ञाख्य श्राद्धपदिको जिससमय ॥ ५ ॥ आरंभ करताहूं, उसकालमें मारीच, सुबाहु आदि व और जो कोई उनके सेवक

बंधुभिःसहितोनित्यंभुक्त्वामुनिभिरन्वहम् ॥ धर्मशास्त्ररहस्यानिशृणोतिव्याकरोतिच ॥६५॥ एवंपरात्मामनुजावतारोमनुष्यलोकाननुसृत्यसर्वम् ॥ चक्रेऽविकारीपरिणामहीनोविचार्यमाणेनकरोतिकिंचित् ॥६६॥ ॥ इतिश्रीमद०उमामहे०बा०तृतीयः सर्गः ॥ ॥ ३ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ कदाचित्कौशिकोऽभ्यागादयोध्यांत्वनलप्रभः ॥ द्रष्टुंरामंपरात्मानंजातंज्ञात्वास्वमायया ॥ १ ॥ दृष्ट्वा दशरथोराजाप्रत्युत्थायाचिरेणतु ॥ वसिष्ठेनसमागम्यपूजायित्वायथाविधि ॥२॥ अभिवाद्यमुनिंराजाप्रांजलिर्भक्तिनम्रधीः ॥ कृतार्थोऽस्मिमुनींद्राहंत्वदागमनकारणात् ॥३॥ त्वद्विधायद्गृहंयांति तत्रैवायांतिसंपदः ॥ यदर्थमागतोऽसित्वंब्रूहिसत्यंकरोमितत् ॥ ४ ॥ विश्वामित्रोऽपितंप्रीतःप्रत्युवाचमहामतिः॥अहंपर्वणिसंप्राप्तेदृष्ट्वायष्टुंसुरान्पितृन्॥५॥यदारभेतदादैत्याविघ्नंकुर्वंतिनित्यशः ॥ मारीचश्चसुबाहुश्चपरेचानुचरास्तयोः॥६॥

होते हैं वह समस्त राक्षसरूप दैत्यगण प्रतिदिन आकर मेरे उन यज्ञोंको नष्टकरदेते हैं ॥ ६ ॥ इसकारण उन दोनों दैत्योंका वधकरनेकेलिये भ्रातालक्ष्मणके साथ अपने बड़ेपुत्र रामचंद्रको हमेंदेदो; तुम्हारा मंगलहोगा ॥ ७ ॥ वसिष्ठजीके साथ परामर्श करके यदि उचितहोतो रामलक्ष्मणको देदो ॥ वचनको सुन चिन्ता करतेहुए राजादशरथ एकान्तमें वसिष्ठजीसे पूछतेहुए ॥ ८ ॥ हेगुरो ! अब क्या कियाजाय; मेरीइच्छा किसीप्रकारसे रामके छोड़नेकी नहोती; मैंने हज़ारोंवर्षोंमें बड़े२कष्टोंसे इनपुत्रोंको पायाहै ॥ ९ ॥ यह चारोंपुत्र देवताओंकी समानहैं; इनसबमें रामचन्द्र मुझको अधिक प्यारे हैं; जो रामयहांसे चलेजांयगे तौ मैं किसीप्रकारसे नहीं जीवूंगा ॥ १० ॥ जोविश्वामित्रजीसे मनेकरताहूं; तौ यह निश्चय शापदेंगे; फिर जिसप्रकार

अतस्तयोर्वधार्थायज्येष्ठंरामंप्रयच्छमे ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रातवश्रेयोभविष्यति ॥ ७ ॥ वसिष्ठेनसहामंत्र्यदीयतांयदिरोचते ॥ पप्रच्छगुरुमेकांतेराजाचिंतापरायणः ॥ ८ ॥ किंकरोमिगुरोरामंत्यक्तुंनोत्सहतेमनः ॥ बहुवर्षसहस्रांतेकष्टेनोत्पादिताःसुताः ॥ ९ ॥ चत्वारोऽमरतुल्यास्तेतेषांरामोऽतिवल्लभः ॥ रामस्त्वितोगच्छतिचेन्नजीवामिकथंचन ॥ १० ॥ प्रत्याख्यातोयदिमुनिःशापंदास्यत्यसंशयः ॥ कथंश्रेयोभवेन्मह्यमसत्यंचापिनस्पृशेत् ॥ ११ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ शृणुराजन्देवगुह्यंगोपनीयंप्रयत्नतः ॥ रामोनमानुषोजातःपरमात्मासनातनः ॥ १२ ॥ भूमेर्भारावतारायब्रह्मणाप्रार्थितःपुरा ॥ सएवजातोभवनेकौसल्यायांतवानघ ॥ १३ ॥ त्वंतुप्रजापतिःपूर्वंकश्यपोब्रह्मणःसुतः ॥ कौसल्याचादितिर्देवमातापूर्वंयशस्विनी ॥ भवंतौतपउग्रंवैतेपाथेबहुवत्सरम् ॥ १४ ॥ अग्राम्यविषयौविष्णुपूजाध्यानैकतत्परौ ॥ तदाप्रसन्नोभगवान्वरदोभक्तवत्सलः ॥ १५ ॥

से सत्यकापालन होजाय और मेरामंगलहो वही उपदेश आप मुझे करैं ॥ ११ ॥ वसिष्ठजीबोले;—हेराजन् ! अतियत्नके साथ इसरहस्यको सुनो कि जो देवताओंका गुप्तमत है; रामचंद्र साधारण मनुष्य नहीं, यह साक्षात् सनातनपरमात्मा हैं ॥ १२ ॥ हे पापरहित ! यह पृथ्वीकाभार उतारनेकी इच्छासे पूर्वकालमें ब्रह्माजीकरके प्रार्थना कियेजाकर कौसल्याके उदरसे जन्मेंहैं ॥ १३ ॥ पूर्वकालमें तुम ब्रह्माजीके पुत्र कश्यपनाम प्रजापतिथे; और पूर्वकालमें यशस्विनी कौसल्याभी देवताओंकीमाता अदितिथी;फिर तुम दोनोंजनोंने ब्रह्मचर्य व्रतधारणकरके बहुतवर्षोंतक उग्रतप किया ॥ १४॥ और सब संसारीकार्योंको छोड़ केवल उनपरेसेपरे परमात्मा विष्णुजीके पूजन और ध्यानमें तत्पररहे। इस तपसे प्रसन्नहोकर वरदाई,भगवान् भक्त

वत्सल ॥ १५ ॥ तुमको वरदेनेकी इच्छाकरते हुए, तब तुमने उनसे बरदानमांगा कि तुम हमारे पुत्रहोवो । भगवान् भूतभावन तुम्हारे इसवरको स्वीकारकर ॥ १६ ॥ रामनामसे रघुकुलमें तुम्हारे पुत्रहोकर जन्मेहैं; और श्रीरामचंद्रजीकी सेवाकरनेकी इच्छासे स्वयंअनन्तजी लक्ष्मणनामसे विख्यात हुएहैं ॥ १७ ॥ शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी विष्णुजीके चक्र, और गरुड़ने भरत व शत्रुघ्नरूपसे जन्मग्रहण कियाहैं । और इसओर योगमाया सीताजी विदेह राजाजनकके यहां पुत्रीहोकर जन्मी हैं ॥ १८ ॥ उनकाही विवाह रामचंद्रके साथ करानेकेलिये यहांपर विश्वामित्र आयेहैं; हेराजन् ! यह अतिगुप्त कथाहै; इसको कभी प्रकाश न करना ॥ १९ ॥ इसकारण विश्वामित्रकी पूजाकरके प्रसन्नमनसे उनके

वृणीष्ववरमित्युक्तेत्वंमेपुत्रोभवामल ॥ इतित्वयायाचितोऽसौभगवान्भूतभावनः ॥ १६ ॥ तथेत्युक्त्वाऽद्यपुत्रस्तेजातोरामःसएवहि ॥
शेषस्तुलक्ष्मणोराजन्राममेवान्वपद्यत ॥ १७ ॥ जातौभरतशत्रुघ्नौशंखचक्रगदाभृतः ॥ योगमायाऽपिसीतेतिजाताजनकनंदिनी ॥ १८॥
विश्वामित्रोऽपिरामायतांयोजयितुमागतः ॥ एतद्गुह्यतमंराजन्नवक्तव्यंकदाचन ॥ १९ ॥ अतःप्रीतेनमनसापूजयित्वाऽथकौशिकम् ॥
प्रेषयस्वरमानाथंराघवंसहलक्ष्मणम् ॥ २० ॥ वसिष्ठेनैवमुक्तस्तुराजादशरथस्तदा ॥ कृतकृत्यमिवात्मानंमेनेप्रमुदितांतरः ॥ २१ ॥
आहूयरामरामेतिलक्ष्मणेतिचसादरम् ॥ आलिंग्यमूर्ध्न्यवघ्रायकौशिकायसमार्पयत् ॥२२॥ ततोऽतिहृष्टोभगवान्विश्वामित्रःप्रतापवान्॥
आशीर्भिरभिनंद्याथआगतौरामलक्ष्मणौ ॥ २३ ॥ गृहीत्वाचापतूणीरबाणखड्गधरौययौ ॥ किंचिद्देशमतिक्रम्यराममाहूयभक्तितः ॥
॥ २४ ॥ ददौबलांचातिबलांविद्येद्वेदेवनिर्मिते ॥ ययोर्ग्रहणमात्रेणक्षुत्क्षामादिनजायते ॥ २५ ॥

साथ रमानाथ रामलक्ष्मणको भेज दो ॥ २० ॥ इसभांति वसिष्ठजीके वचन सुनकर राजादशरथ आनंदितहो अपनेको कृतार्थ समझते हुएं ॥ २१ ॥ व आदरसहित रामलक्ष्मणको बुलाय उनका शिर सूंघ, भलीभांति हृदयसेलगाय विश्वामित्रके हाथमें दोनोंभ्राताओंको समर्पण करदेते हुए ॥ २२ ॥ प्रतापवान् भगवान् विश्वामित्रजी अतिसंतुष्टहुए । जब रामलक्ष्मण, धनुष, बाण, तरकस, खड्ग धारण करके आये, तब विश्वामित्रजी दोनों भ्राताओंकी बड़ाई करकै व आशीर्वाद देकर चलते हुए, कुछ दूर चले आनेपर विश्वामित्रजीने भक्तिके साथ रामचंद्रजीको निकट बुलाय ॥ २३ ॥ २४ ॥ इनको बला और अतिबला नामक देवताओंकी निर्माणकी विद्यायें सिखाईं, इन दोनों वि

थाओंके ग्रहण करनेसे भूंख, प्यास, और दुर्बलता उत्पन्न नहीं होती ॥ २५ ॥ तिसके पश्चात् गंगापार होकर सबकोई ताड़का वनमें पहुंचे, तब महर्षि विश्वामित्रजीने सत्यपराक्रम श्रीरामचंद्रजीको निकट बुलायकर कहा ॥ २६ ॥ यहांपर ताड़का नामक एक कामरूप धारणकरनेवाली राक्षसी रहती है, वह राक्षसी सब लोकोंको सताया करतीहै; इस समय सावधान होकर विना विचारे तुम उसको मार डालो ॥ २७ ॥ "बहुत अच्छा" कह.रामचंद्रजीने रोदाचढाय धनुषको टंकोरा। तिस टंकोरके शब्दसे समस्तवन पूर्ण होगया ॥ २८ ॥ वह कानोंको व भय उपजानेवाला शब्द ताड़कापर न सहागया; वह भयंकर रूपवाली राक्षसीदारुण क्रोधसे मूर्च्छितहोकर घनेबादलकी समान घोरशब्द करतीहुई रामचंद्रजीके सन्मुख दौड़ी ॥ २९ ॥ जैसेही वहराक्षसीआई; वैसेही रामचंद्रने उसकी छातीमें एकतीखा बाण मारा। उसबाणके लगनेसे वहराक्षसी रुधिर उगलते २ बनमें गिरकर प्राणत्याग करतीहुई ॥ ३० ॥ ताड़का शापसे पिशाचयोनिको प्राप्तहुईथी; इससमय श्रीरामचंद्रजीके अनुग्रहसे उस शापसे छूट सर्वगहनोंसे शोभायमान् अतिसुन्दरी यक्षिणीके रूपको प्राप्तहुई ॥ ३१ ॥ ताड़का रामचंद्रकी प्रदक्षिणादे प्रणामकर उनकी आज्ञासे स्वर्गको गई ॥ ३२ ॥ ताड़काका संहारहोनेसे महर्षि विश्वामित्रजीने अतिहर्षितहो गोदमेंलेकर श्रीरामचंद्रजीका शिरसूंघा; व होनहार कार्योंका क्षणभरतक विचारकर प्रीतिसहित अभिराम श्रीरामचंद्रजीको, रहस्य मत्रोंके साथ सर्वअस्त्रोंका समूह देदिया ॥ ३.३॥ इस श्रीअध्यात्मरामायणके मध्य शिवपार्वतीके संवादमें बालकाण्डमें

ततउत्तीर्यगंगांतेताटकावनमागमन् ।। विश्वामित्रस्तदाप्राहरामंसत्यपराक्रमम् ।। २६ ।। अत्रास्तिताटकानामराक्षसीकामरूपिणी ।।
बाधतेलोकमखिलंजहितामविचारयन् ।। २७ ।। तथेतिधनुरादायसगुणंरघुनंदनः ।। टंकारमकरोत्तेनशब्देनापूरयद्वनम् ।। २८ ।।
तच्छ्रुत्वाऽसहमानासाताटकाघोररूपिणी ।। क्रोधसंमूर्च्छितारामममभिदुद्रावमेघवत् ।। २९ ।। तामेकेनशरेणाशुताडयामासवक्षसि ।।
पपातविपिनेघोरावमंतीरुधिरंबहु ।। ३० ।। ततोऽतिसुंदरीयक्षीसर्वाभरणभूषिता ।। शापात्पिशाचतांप्राप्तामुक्तारामप्रसादतः ।। ३१।।
नत्वारामंपरिक्रम्यगतारामाज्ञयादिवम् ।। ३२ ।। ततोऽतिहृष्टःपरिरभ्यरामंमूर्धन्यवघ्रायविचिंत्यकिंचित् ।। सर्वास्त्रजालंसरहस्यमंत्रं
प्रीत्याऽभिरामायददौमुनींद्रः ।। ३३ ।। ।। इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकांडे चतुर्थः सर्गः ।। ४ ।।

विश्वामित्रसहायता और ताड़कावधनामक चौथासर्ग कहागया ॥ ४ ॥ पांचवासर्ग—महादेवजीबोले;—हे पार्वति! विश्वामित्रजीके सहित लक्ष्मण के साथ श्रीरामचंद्रजी अतिरमणीय, कामदेवके आश्रममें एकरात्रि बिताकर दूसरे दिन प्रभातहीको मन्द २ चालसे ॥ १ ॥ सिद्धचारणों करके सेवित सिद्धाश्रम में पहुँचे। यही विश्वामित्रजीका स्थानथा; फिर विश्वामित्रजीकी आज्ञापायकर वहांके मुनिगणोंनें ॥ २ ॥ रामचंद्र व लक्ष्मणजीकी बड़ीभारी पूजा की; इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीने विश्वामित्रजीसे कहा; कि हे मुने! दीक्षामें स्थितहूजिये ॥ ३ ॥ हे महाभाग! राक्षसोंमें नीचमारीच सुबाहु आदि राक्षसकहां हैं उनको दिखाके आप स्थिरचित्तहो मैं श्रीरामचंद्रजीके वाक्यपर सम्मति जनाय विश्वामित्रजी " तथास्तु " कहकर मुनिलोगोंके साथ

॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ तत्रकामाश्रमेरम्येकाननेमुनिसंकुले॥ उषित्वारजनीमेकांप्रभातेप्रस्थिताःशनैः ॥ १ ॥ सिद्धाश्रमंगताःसर्वेसिद्ध
चारणसेवितम् ॥ विश्वामित्रेणसंदिष्टामुनयस्तन्निवासिनः ॥ २ ॥ पूजांचमहतींचक्रूरामलक्ष्मणयोर्द्रुतम् ॥ श्रीरामःकौशिकंप्राहमुनेदीक्षां
प्रविश्यताम् ॥ ३ ॥ दर्शयस्वमहाभागकुतस्तौराक्षसाधमौ ॥ तथेत्युक्त्वामुनिर्यष्टुमारेभेमुनिभिःसह ॥ ४ ॥ मध्याह्नेददृशातेतौराक्षसौ
कामरूपिणौ ॥ मारीचश्चसुबाहुश्चवर्षंतौरुधिरास्थिनी ॥ ५ ॥ रामोऽपिधनुरादायद्वौबाणौसंदधेसुधीः ॥ आकर्णांतंसमाकृष्यविसस
र्जतयोःपृथक् ॥ ६ ॥ तयोरेकस्तुमारीचंभ्रामयञ्छतयोजनम् ॥ पातयामासजलधौतदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७ ॥ द्वितीयोऽग्निमयोबाणः
सुबाहुमजयत्क्षणात् ॥ अपरेलक्ष्मणेनाशुहतास्तदनुयायिनः ॥ ८ ॥ पुष्पौघैराकिरन्देवाराघवंसहलक्ष्मणम् ॥ देवदुंदुभयोनेदुस्तुष्टुवुः
सिद्धचारणाः ॥ ९ ॥

यज्ञका आरंभ करनेलगे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त दुपहरकी वेलामें मारीच सुबाहु नामक कामरूपधारी दोनोंराक्षस रुधिर व हड्डियोंकी वर्षाकरतेहुये रामलक्ष्मण को दिखाईदिये ॥ ५ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीने शीघ्र धनुष ग्रहणकरके उसपर दो बाण एकसाथ चढ़ाये; और कानतक रोदेको खैंचकर एक बाण सुबाहुकी ओर और एकबाण मारीचकी ओर चलाया ॥ ६ ॥ तिनमेंसे एकबाणने मारीचको आकाशमें घुमाते २ शतयोजनदूरपर समुद्रके किनारे गिराया, जिससमय मारीच गिरा तौ उसका यह गिरना अत्यन्त अद्भुत ज्ञातहुआ ॥ ७ ॥ फिर दूसरे अग्निमयबाणने एकक्षणभरके बीचमें सुबाहु राक्षसको भस्मकरडाला; और सुबाहु के अनुचर राक्षसोंको लक्ष्मणजीने अतिशीघ्रकालके हवाले किया ॥ ८ ॥ देवतालोग श्रीरामलक्ष्मण पर फूलोंकी

वर्षा करनेंलगे; स्वर्गमें देवताओंके नगाड़ेबजे; और सिद्धचारणगण रामलक्ष्मणकी स्तुतिकरने लगे ॥ ९ ॥ महर्षि विश्वामित्रजीने पूजाकरनेके योग्य श्रीरामचंद्रजीकी पूजाकरके; गोदमें ले आनन्दके आंसूभर उनको हृदयसे लगालेते हुए ॥ १० ॥ और दोनों भ्राताओंको पकेहुए फल भोजन कराय पुराणोंकी मधुरकथा सुनाकर तीनदिन व्यतीतकिये ॥ ११ ॥ जब चौथा दिवस प्राप्तहुआ तब प्रातःक्रिया समाप्तकरके महर्षि विश्वामित्र मुनिबोले;- हेराम ! हम महायज्ञ देखनेकी इच्छाकरते हैं ॥ १२ ॥ विदेहराजके नगरमें महात्मा राजा जनकजीके गृहमें साक्षात् सदाशिवका दियाहुआ जो बड़ा भारी माहेश्वरधनु है ॥ १३ ॥ यदि उसको एकबार देखनेके लिये चलोगे तौ जनकराज करके तुम्हारीविशेष पूजाहोगी; मुनिजीके ऐसा कहनेपर राम

विश्वामित्रस्तुसंपूज्यपूजार्हंरघुनंदनम् ॥ अंकेनिवेश्यचालिंग्यभक्त्याबाष्पाकुलेक्षणः ॥ १० ॥ भोजयित्वासहभ्रात्रारामंपक्वफलादिभिः ॥ पुराणवाक्यैर्मधुरैर्निनायदिवसत्रयम् ॥ ११ ॥ चतुर्थेऽहनिसंप्राप्तेकौशिकोराममब्रवीत् ॥ रामराममहायज्ञंद्रष्टुंगच्छामहेवयम् ॥ १२ ॥ विदेहराजनगरेजनकस्यमहात्मनः ॥ तत्रमाहेश्वरंचापमस्तिन्यस्तंपिनाकिना ॥ १३॥ द्रक्ष्यसित्वंमहासत्वंपूज्यसेजनकेनच ॥ इत्युक्त्वामुनिभिस्ताभ्यांययौगंगासमीपगम् ॥ १४ ॥ गौतमस्याश्रमंपुण्यंयत्राहल्याऽऽस्थितातपः॥ दिव्यपुण्यफलोपेतपादपैःपरिवेष्टितम् ॥ १५ ॥ मृगपक्षिगणैर्हीनंनानाजंतुविवर्जितम् ॥ दृष्ट्वोवाचमुनिंश्रीमान्रामोराजीवलोचनः ॥ १६ ॥ कस्यैतदाश्रमपदंभातिभास्वच्छुभंमहत् ॥ पत्रपुष्पफलैर्युक्तंजंतुभिःपरिवर्जितम् ॥ १७ ॥ आह्लादयतिमेचेतोभगवन्ब्रूहितत्त्वतः ॥ १८ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ शृणु रामपुरावृत्तंगौतमोलोकविश्रुतः ॥ सर्वधर्मभृतांश्रेष्ठस्तपसाराधयन्हरिम् ॥ १९ ॥

लक्ष्मण उनकेसहित गंगाके समीपगये; जहांपै गौतमजीके पुण्यमय आश्रममें अहिल्या तपकरतीथी वह आश्रम दिव्यपुष्पफलादि शोभायमान, अनेक प्रकारके वृक्षोंसे घिराहुआ ॥ १४ ॥ वह मृगहीन, व और जीवजन्तुओंसे रहित था; कमललोचन श्रीरामचन्द्रजीं इस आश्रमको देखकर महर्षि विश्वामित्रजीसे बोले ॥ १६ ॥ पत्ते और पुष्पफलोंसे शोभायमान, जीवजन्तुओं से रहित जो सुन्दर महाआश्रम सामने दिखाई देताहै; यह किसका आश्रमहै ? ॥ १७ ॥ हे भगवन् ! इसआश्रमको देखकर मेरा चित्त अत्यन्त हर्षित हुआहै इसका वृत्तान्त आपकहैं ॥ १८ ॥ विश्वामित्रजी बोले, हेराम ! पूर्ववृत्तान्तको श्रवणकीजिये; इसआश्रममें रहकर धार्मिक लोगोंमें श्रेष्ठ और सर्वलोकविख्यात गौतममुनिने तपकरके भगवान् हरिकी

आराधना की ॥ १९ ॥ कमलयोनि ब्रह्माजीने गौतममुनिके ब्रह्मचर्यसे संतुष्टहोकर; उनकी सेवाकरनेके लिये अहिल्यानामक एक कन्यादी, जो सब लोकमें एकअधिक सुन्दरीथी ॥ २० ॥ सुन्दरताई निहार शचीके प्यारे इन्द्रको उसके भोगकरने की इच्छा अतिप्रबल हुई ॥ २१ ॥ एक दिन जब महर्षि गौतमजी कुटीसे बाहर चले,अर्थात् जब चार घड़ी रातरही तब स्नानादि प्रातःकृत्य करनेंके लिये नदीपर गये;तब गौतमजीकारूप धारणकर इन्द्र अहिल्याको लेकर भागचला ॥ २२ ॥ उससमय मुनिभी अपनेगृहमें लौटकर आये, और इन्द्रको अपने रूपसे जाताहुआ देखकर अति क्रोधके साथ पूछा, "रेपामर ! कस्त्वं ? (तूकौनहै ?) रे दुष्टात्मन् ! कथंममरूपधरः ? [किसहेतु मेरेरूपको धारण कियाहै ?] ॥ २३ ॥ यह सत्य २ बता; नहीं तौ निश्चय अभी भस्म करदूंगा !" गौतमजीके यह कहनेपर मुनिवेषधारी इन्द्रनेकहा; "कामके वशहुआ मैं देवराजइंद्रहूं; मेरी रक्षा कीजिये ॥ २४ ॥ चित्तबिगड़नेसे मैंने यह निन्दनीयकार्य कियाहै ।" जब इसप्रकारसे इन्द्र गौतमजीके वशहुआ; तब गौतमने क्रोधसे लाल २ नेत्रकर देवराज इन्द्रको यह शापदिया ॥ २५ ॥ "रे योनिलम्पट ! रे दुष्टात्मन् ! त्वंसहस्र भगवान्भव । (हे दुष्टात्मन् ! हेयोनियोंमें आसक्तहुए ! तेरे हजार भगहोजावैं)" इसप्रकारसे देवराज इन्द्रको शापदे शीघ्र अपने आश्रममें प्रवेशकरके ॥ २६ ॥ देखतेहुए कि अहिल्या हाथ जोड़ेहुए मारेभयके कांपरही है, गौतमजी उस्से बोले; हे दुष्टे ! रेदुश्चरिते ! तू शिलाहोकर मेरे इस आश्रममें रह ॥ २७ ॥ बिना आहारके, पवन,वर्षा और धूपको सहकर दिनरात परमतपकरके

तस्मैब्रह्माददौकन्यामहल्यांलोकसुंदरीम् ॥ ब्रह्मचर्येणसंतुष्टःशुश्रूषणपरायणाम् ॥२०॥ तयासार्धमिहावात्सीद्गौतमस्तपतांवरः ॥ शक्र
स्तुतांधर्षयितुमंतरंप्रेप्सुरन्वहम् ॥ २१ ॥ कदाचिन्मुनिवेषेणगौतमेनिर्गतेगृहात् ॥ धर्षयित्वाऽथनिरगात्त्वरितंमुनिरप्यगात् ॥ २२ ॥
दृष्ट्वायांतंस्वरूपेणमुनिःपरमकोपनः ॥ पप्रच्छकस्त्वंदुष्टात्मन्ममरूपधरोऽधमः ॥ २३ ॥ सत्यंब्रूहिनचेद्भस्मकरिष्यामिनसंशयः ॥ सोऽ
ब्रवीद्देवराजोऽहंपाहिमांकामकिंकरम् ॥२४॥ कृतंजुगुप्सितंकर्ममयाकुत्सितचेतसा ॥ गौतमःक्रोधताम्राक्षःशशापदिविजाधिपम् ॥२५ ॥
योनिलंपटदुष्टात्मन्सहस्रभगवान्भव ॥ शप्त्वातंदेवराजानंप्रविश्यस्वाश्रमंद्रुतम् ॥ २६ ॥ दृष्ट्वाहल्यांवेपमानांप्रांजलिंगौतमोऽब्रवीत् ॥
दुष्टेत्वंतिष्ठदुर्वृत्तेशिलायामाश्रमेमम ॥ २७ ॥ निराहारादिवारात्रंतपःपरममास्थिता ॥ आतपानिलवर्षादिसहिष्णुःपरमेश्वरम् ॥ २८ ॥

हृदयमें विराजमानहुए रामपरमेश्वर का एकाग्रमनसे ध्यानकरं; अबसे यह मेरा आश्रम अनेकप्रकारके जन्तुओंसे हीनहोजायगा ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसप्रकारसे जब हज़ार वर्ष बीत जांयगे तब वन उपवनमें अनुज लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजी आय ॥ ३० ॥ इसआश्रममें प्रवेशकर जब अपने दोनों चरणोंसे तेरी इस मलिन शिलाको छुयेंगे; तबही तू पापरहितहो श्रीरामकी अतिभक्तिसहित ॥ ३१ ॥ परिक्रमाकर और उनकी स्तुतिकर शापसे छूटजायगी, और फिर प्रथमही की नांई सुखपूर्वक मेरी सेवाकरती रहैगी ॥ ३२ ॥ इसप्रकार शापदेकर गौतमजी गिरिराजहिमालय पर्वतपर चले गये; तबसे अहिल्या सर्वप्राणियों से अदृश्य रहकर इस शुभ आश्रय में ॥ ३३॥ पवनका भक्षणकर तुम्हारेचरणोंकी रजको चाहती है । हे रघुश्रेष्ठ ! अ

ध्यायंतीराममेकाग्रमनसाहृदिसंस्थितम् ॥ नानाजंतुविहीनोऽयमाश्रमोमेभविष्यति ॥ २९ ॥ एवंवर्षसहस्रेषुह्यनेकेषुगतेषुच ॥ रामो दाशरथिःश्रीमानागमिष्यतिसानुजः ॥३०॥यदात्वदाश्रयशिलांपादाभ्यामाक्रमिष्यति ॥ तदैवधूतपापात्वंरामंसंपूज्यभक्तितः ॥ ३१ ॥ परिक्रम्यनमस्कृत्यस्तुत्वाशापाद्विमोक्ष्यसे ॥ पूर्ववन्ममशुश्रूषांकरिष्यसियथासुखम् ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वागौतमःप्रागाद्धिमवंतंनगोत्तमम् ॥ तदाद्यहल्याभूतानामदृश्यास्वाश्रमेशुभे ॥ ३३ ॥ तवपादरजःस्पर्शंकांक्षतेपवनाशना ॥ आस्तेऽद्यापिरघुश्रेष्ठतपोदुष्करमास्थिता ॥ ३४ ॥ पावयस्वमुनेर्भार्यामहल्यांब्रह्मणःसुताम् ॥ इत्युक्त्वाराघवंहस्तेगृहीत्वामुनिपुंगवः ॥ ३५ ॥ दर्शयामासचाहल्यामुग्रेणतपसास्थिताम् ॥ रामःशिलांपदास्पृष्ट्वातांचापश्यत्तपोधनाम् ॥ ३६ ॥ ननामराघवोऽहल्यांरामोऽहमितिचाब्रवीत् ॥ ततोदृष्ट्वारघुश्रेष्ठं पीतकौशेयवाससम् ॥ ३७ ॥ चतुर्भुजंशंखचक्रगदापंकजधारिणम् ॥ धनुर्बाणधरंरामंलक्ष्मणेनसमन्वितम् ॥ ३८ ॥

भीतक अहिल्या दुष्करतप कररही है ॥ ३४ ॥ इससमय तपोधन गौतममुनिकी भार्या और संसारके रचनेवाले ब्रह्माजीकी पुत्रीअहिल्या को अति शीघ्र पवित्रकरदो, यह कहकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीने रामचन्द्रजीके दोनों हाथपकड़कर ॥ ३५ ॥ एकाग्रमनसे उग्रतप करतीहुई पाषाणमयी अहिल्याको दिखादिया; श्रीरामचन्द्रजीने अपने चरणोंसे शिलाको छूकर तपस्विनीको देखा ॥ ३६ ॥ और अहल्याको प्रणामकरकै कहा "मैंरामहूं," तब रघुकुलमें श्रेष्ठरामचंद्रजीको अहिल्याने इसप्रकार देखा कि पीले रेशमके वस्त्रपहरे ॥ ३७ ॥ चारभुजाधारे,शंख, चक्र, गदा, पद्म, लिये धनुषबाण

धारणकिये, लक्ष्मणजीको साथ लिये ॥ ३८ ॥ मन्द मुसकान युक्तहै मुखजिनका, कमलकी समान नेत्रवाले, वक्षस्थल में लक्ष्मीका चिह्न धारणकिये, इन्द्रनीलमणि की कान्तिके समान अपनेरूपकी प्रभासे दशोंदिशाओं को प्रकाशकररहे हैं ॥ ३९ ॥ ऐसे लक्ष्मीके पति श्रीरामचन्द्रजीको देखकर अहिल्याके नेत्र आनन्दके नीरसे प्रफुल्लित होगये; उसीसमय अहिल्याको गौतमजीके वचनों की सुधि आयगई;इस्से श्रीरामचन्द्रजीको परमात्मा नारायण, जानकर॥ ४० ॥अर्घ्यादिद्वारा अनेकप्रकारसे पूजनकरकै आंखोंमें आनन्दके आंसूभर दण्डवत् प्रणामकरती हुई ॥ ४१ ॥ और उठकर बारम्बार रामचन्द्रजीका दर्शन और स्पर्शन करके पुलकायमान शरीरहो आनन्दके मारे गद्गद्वाणीसे स्तुतिकरने लगीं; हे मधुसूदन! तव पदकमल परानित, शत२बालारुण किरण सहस्रों भ्रमरगणोंसे सेवित, परमपवित्र शिवविरिञ्चि जिनका चाहना करें, नानानिर्भय, निर्ज्जरगण (देवता) शुक्रशिष्यगण (दैत्य) गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर, नर,नाग, यक्ष, राक्षसादि, शतसहस्र, शाण्डिल्य, कौण्डिन्य माण्डव्य, जैगीषव्य, धौम्य, शौनकादि, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, कपिलादि,

स्मितवक्त्रंपद्मनेत्रंश्रीवत्सांकितवक्षसम् ॥ नीलमाणिक्यसंकाशंद्योतयंतंदिशोदश ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वारामंरमानाथंहर्षविस्फारितेक्षणा ॥
गौतमस्यवचःस्मृत्वाज्ञात्वानारायणंपरम् ॥४०॥ संपूज्यविधिवद्राममर्घ्यादिभिरनिंदिता ॥ हर्षाश्रुजलनेत्रांतादंडवत्प्रणिपत्यसा॥४१॥
उत्थायचपुनर्दृष्ट्वारामंराजीवलोचनम् ॥ पुलकांकितसर्वांगागिरागद्गदयैलत ॥ ४२ ॥

मनु, मारीच, अत्रि, पराशर, व्यास, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, सम्वर्त्त, कात्यायन, शाकटायन, बृहस्पति, शंख, लिखित दक्ष, शातातप वसिष्ठ, जमदग्नि, कश्यप, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, अगस्त्य, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतादि, चेदिराज, वसुगण, मार्कण्डेयइत्यादि मुनिगण, नारदादि ऋषिगण;अग्निष्वात्तादि, हव्यकव्य वाहनादि पितृगण,गंगा, गोमती, गणपति, गालव, गोलोक, गोवर्द्धन, गोष्ठ, गन्धवह (पवन) गदाधर गया गंभरि गोदावरी, गायत्री, गृहगोप, गोकुल, कुल, संकुल, रविवार से आदिलेकर सातवार, अमावस्यादि पंद्रहतिथि, अश्विन्यादि सत्ताईस नक्षत्र, विष्कूंभादि सत्ताईशयोग, ववादि ग्यारह करण, मेषादि बारहराशि, राशिकालवार वेलादिसमय, गंगादिनदी, शोणादिनद, तक्षकादिनाग, सुमेरुआदि सर्वपर्वत, जलचर, स्थलचर, खेचर, (आकाशों में उड़नेवाले पक्षी) चराचर, (स्थावर, जंगमादि,) समस्तब्रह्माण्डभांडोदर, दामोदर, क्षीरसागरसुताधर, सुधारसपानचित्तविनोदन, हिरण्याक्षादि प्रबलरिपुदलदमन, दिवाकर, सुतकर, किरणविद्रावण, ध्वान्तविध्वसंन, भवदीयचरणदर्शन, हृदयसरोजविकाशन, सर

सिजासन, विशेषशेषशयन विसर, कमठ, वराह, नृसिंह, वामन, क्षत्री कुलसंहारकारी परशुराम, राम,बलराम, कृष्ण, कल्की इत्यादि दशावतार रूपधर ममचित्तभवनसदावासकर, शोकतापहर तवचरणपतित श्रुति, स्मृति, पुराण, सांख्य, पातञ्जल, मीमांसा, वैशेषिक, वेदान्त, वेदांग, वेद, तर्कशास्त्रसमूह शोभित राजराजेश्वरीप्रभृति देवीगण, शक्तिसाध्य असाध्य, साधकगण मनोभीष्टदायक, नगर स्थित, दशांश, शत २ शारदीय सुधांशुसदृश सुन्दरताईसे युक्त, शतशत मरकत मणिमय, प्रवाल, बाल, वैडूर्य वज्रहीरक, नानारत्न जड़ित खचित,सुशोभित, ध्वज, वज्र और अंकुशके चिह्नसे अंकित, मणिमय नूतन नूपुर; पुरन्दरादि जनगण सुन्दर, श्रुति सुखजनकसुखसारन, त्रिलोकपावन, अनन्तपातकीगण निस्तारन, हे भवतारन ! त्वदंगुष्ठांगुलिनिर्गत निर्मल मर्म पावक, धर्मजल हिल्लोल, सुशीतल, समंजरी तुलसीदल, गुणराशि सुशोभित, सुचारु गुल्फ, जानु जंघ, मनोहरोरु, कटित, वेष्टित, किंकिणीजाल वसन, धनुर्बाणधर, द्विभुज, आजानुलम्बित बाहु, नवनीलनीरद, विनिन्दित, नवदूर्वादलश्याम राम, नीलकमलोपमलोचन, श्रुतियुगुलकुंडल, नासिका

अहल्योवाच ॥ अहोकृतार्थोऽस्मिजगन्निवासतेपादाब्जसँल्लग्नरजःकणादहम् ॥ स्पृशामियत्पद्मजशंकरादिभिर्विमृग्यतेरंधितमानसैः
सदा॥४३॥अहोविचित्रंतवरामचेष्टितंमनुष्यभावेनविमोहितंजगत् ॥ चलस्यजस्रंचरणादिवर्जितःसंपूर्णआनंदमयोऽतिमायिकः ॥ ४४ ॥

तिलकाभरण मंडित, हार, बाजू, किरीट, कटकाद्यलंकृत, कण्ठच्छद, प्रच्छद, वनमाला विराजित, ओष्ठाधर धरजित, दाड़िमदन्तपंक्ति पलायिततर्क पंक्ति, उज्वलहास्य, परिहास्य वदन, सितचंदनचर्चित, श्रीवत्सकौस्तुभ शोभित वक्षस्थल, तिलकावलि भालविभूषित, कारेकारे घूंघरवारे बाल, हृषीकेश, माधवनिवास दिवाकर कुलचूडामणि, धन्यतैकधाम, गुणधाम, रघुवंशोत्पन्न, दशरथतनय, जय २ बीजांकुर प्ररोह, हेजानकीजीवन ! केशिनिषूदन ! यदुनंदन ! जगद्भारभंजन ! नित्यभक्तमनरंजन ! कलिकलुष नाशन ! दुरन्त कृतान्त विध्वंसन ! परमकृपामय ! हेअनाथनाथ । ” ॥ ४२ ॥

अहिल्या औरभी स्तुतिकरती है ।,“ अहो ! हेजगन्निवास ! आजतुम्हारे चरणकमलकी धूरिलगनेसे मैं कृतार्थ होकर शापसे छूटगई । ब्रह्मा और शंकरादि जिन चरणारविन्दको प्राप्त नहीं करके खिन्नमन हुए सदा जिनको ढूंढ़ते हैं; मैंने आज उन्ही चरणोंको स्पर्श किया, मेरा कैसा सौभाग्य है ! ॥४३॥आहा ! तुम्हारा चरित्र कैसा विचित्र हैं; तुम चरणादि इन्द्रियोंकरके रहितहो, सर्वप्यापी और आनन्दमय होकरभी मनुष्यबुद्धि उत्पन्नकर सं

सारको मोहितकर अति माया ग्रसितकी समान निरन्तर कार्यकरतेहो ॥ ४४ ॥ जिनके चरणकमलका पराग छूनेसे पवित्रतापाय त्रिपथगामिनी गंगाजी शिवब्रह्मादि देवताओंको पवित्रकरती हैं; वही सनातन ईश्वर जब मेरे सन्मुख प्रत्यक्ष प्रगटहुए हैं; तब मैं अपने पूर्वजन्म कृत्य भाग्यका कहां तक वर्णन करूं ? ॥ ४५ ॥ रमणीय देहधारण करके नारायणजी रामनामसे मृत्युलोकमें अवतार लियाहै इन धनुषधारी कमलदलकी समान नेत्र वाले रामचंद्रजीका मैं नित्य भजनकरूं बस और कोई इच्छानहीं है ॥ ४६ ॥ श्रुतियें जिनके चरणकमलकी रजको खोजती हैं; ब्रह्माजी जिनके नाभिकमलसे उत्पन्न हुएहैं, भगवान्शंकरजी जिनके नाम, सारमें रसिक हैं, उन्हीं श्रीरामचंद्रजीका मैं नित्य हृदयमें ध्यान करतीहूं ॥ ४७ ॥ ब्रह्मलोक

यत्पादपंकजपरागपवित्रगात्राभागीरथीभवविरिंचिमुखान्पुनाति ॥साक्षात्सएवममदृग्विषयोयदास्तेकिंवर्ण्यतेममपुराकृतभागधेयम्॥४५॥
मर्त्यावतारेमनुजाकृतिंहरिंरामाभिधेयंरमणीयदेहिनम् ॥ धनुर्धरंपद्मविशाललोचनंभजामिनित्यंनपरान्भजिष्ये ॥ ४६ ॥ यत्पादपंकज
रजःश्रुतिभिर्विमृग्यंयन्नाभिपंकजभवःकमलासनश्च ॥ यन्नामसाररसिकोभगवान्पुरारिस्तंरामचंद्रमनिशंहृदिभावयामि ॥ ४७ ॥ यस्या
वतारचरितानिविरिंचिलोकेगायंतिनारदमुखाभवपद्मजाद्याः ॥ आनंदजाश्रुपरिषिक्तकुचाग्रसीमावागीश्वरीचतमहंशरणंप्रपद्ये ॥ ४८ ॥
सोऽयंपरात्मापुरुषःपुराणएषस्वयंज्योतिरनंतआद्यः ॥ मायातनुंलोकविमोहनीयांधत्तेपुरानुग्रहएषरामः ॥ ४९ ॥ अयंहिविश्वोद्भवसंय
मानामेकःस्वमायागुणबिंबितोयः ॥ विरिंचिविष्णवीश्वरनामभेदान्धत्तेस्वतंत्रःपरिपूर्णआत्मा ॥ ५० ॥

में नारदादि ऋषिगण व शिवब्रह्मादि देवगण जिनके अवतारोंका चरित्र गायाकरते हैं; जिनके पवित्र चरित्रको गाते गाते वीणापाणि सरस्वतीके कुचोंका अग्रभाग आनन्दके आंसुओंसे भीगजाता है, मैं उनहीं रामचंद्रकी शरणहोतीहूं ॥ ४८ ॥ यह वही परमात्मा पुराण पुरुष (पूर्वकालमेंभीथे और सबके हृदयमें शयन करनेवाले) स्वयं प्रकाश, (अर्थात् इनको किसी दूसरेके प्रकाशकी आवश्यकता नहीं है) सर्वकारण स्वयंअनन्त (जिसका अन्त नहीं) मुझसरीखे भक्तजनोंका कल्याण करनेकेलिये लोकमोहिनी मायाकरके शरीर धारणकर रामरूपसे अवतरे हैं ॥ ४९ ॥ यही संसार की सृष्टि करके उसका पालन करते और फिर संहार करते हैं; केवल यही परिपूर्ण आत्मा है; यह सत, रज, तम, प्रभृति अपनी मायाके गुणोंमें प्रति

बिम्बितहो; ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि, पृथक् २ नामोंसे प्रकाश मानताहै ॥ ५० ॥ हेराम ! भगवती लक्ष्मीजी स्नेहके वशहोकर तुम्हारे इन चरणकमलों को वक्षस्थलको धारणकरके लाड़लड़ाती हैं, जिनचरणों करके पूर्वकालमें (राजाबलिके छलनेकेसमय) तीनोंलोक व्याप्त होगये थे; व अभिमान रहित मुनीश्वरगण सदा जिनका ध्यान कियाकरती है उन्हीं चरणोंमें मेराप्रणाम पहुँचे ॥ ५१ ॥ तुमही समस्त जगत्के आदिकारणहो; तुमही जगत् और जगत्के आश्रयहो; परन्तु जगत्के आश्रय होनेपरभी सर्व प्राणियोंसे अलगहो, अतएव तुमही अद्वितीय परब्रह्मरूपसे प्रकाशमान होतेहो ॥ ५२ ॥ हे राम ! तुम ॐकारवाच्यहो और वाक्यके अगोचर पुरुषहो, वाच्यवाचकभेदद्वारा समस्त जगत्रूप आपही हैं अर्थात् घटपटादिक शब्दवाचक और जललानेका पात्रविशेषवाच्य हुआ इसप्रकार लोकवेदमें जितने वाचक शब्दहैं और जितने उनशब्दोंके द्वारा बोले जाते वाच्य अर्थ हैं; वे समस्तही परमात्मारूप हैं ॥ ५३ ॥ हे राम ! तुम एकहो तौभी ब्रह्मरूप मायासे यह तत्त्वप्रभृति कार्य, मूलप्रकृतिरूपकारण उसके चलायमान करने से स्वर्गादिफल और फलसाधन यज्ञादि भेदमें पृथक् २ रूपसे प्रकाशित होरहेहो ॥ ५४ ॥ तुम्हारी मायासे मोहितहोरही है बुद्धि जिनकी ऐसे मनुष्य यथार्थ रूपसे, अर्थात् जैसेहो वैसेही रूपसे तुमको नहीं जानसक्ते; तुममायाके गुणका अवलम्बन करनेवाले परमेश्वरहो परन्तु वे तुम्हें मनुष्य जानतेहैं ॥ ५५ ॥ तुम आकाशकी समान बाहरभीतरमें सबकहीं विराजमान, निर्मल, सबसे अलग, और अचलहो । तुम नित्य, शुद्ध ज्ञानमय, सत्ता स्वरूप, और अनन्तहो ॥ ५६ ॥ हे विभो ! मैं मूढ़स्वभाव अज्ञान स्त्रीजातिहूं; सो मैं तुम्हारे तत्त्वको कैसे जानसक्तीहूं अतएव हे रामचन्द्र ! मैं एकाग्रचित्तसे शत

नमोऽस्तुतेरामतवांघ्रिपंकजंश्रियाधृतंवक्षसिलालितंप्रियात् ॥ आक्रांतमेकेनजगत्रयंपुराध्येयंमुनींद्रैरभिमानवर्जितैः ॥ ५१ ॥ जगतामादिभूतस्त्वंजगत्त्वंजगदाश्रयः॥सर्वभूतेष्वसंयुक्तएकोभातिभवान्परः ॥ ५२ ॥ ओंकारवाच्यस्त्वंरामवाचामविषयःपुमान् ॥ वाच्यवाचकभेदेनभवानेवजगन्मयः ॥ ५३ ॥ कार्यकारणकर्तृत्वफलसाधनभेदतः ॥ एकोविभासिरामत्वंमाययाबहुरूपया ॥ ५४ ॥ त्वन्मायामोहितधियस्त्वांनजानंतितत्त्वतः ॥ मानुषंत्वाभिमन्यंतेमायिनंपरमेश्वरम् ॥ ५५ ॥ आकाशवत्त्वंसर्वत्रबाहिरंतर्गतोऽमलः ॥ असंगोह्यचलो नित्यःशुद्धोबुद्धःसदव्ययः॥ ५६ ॥ योषिन्मूढाऽहमज्ञातेतत्त्वंजानेकथंविभो ॥ तस्मात्तेशतशोरामनमस्कुर्यामनन्यधीः ॥ ५७ ॥

शतवार केवल तुमको नमस्कार करतीहूं ॥ ५७॥ हे देव ! मैं जिसकिसी स्थानमेंभी रहूं; परन्तु तुम्हारे चरणकमलोंमें मेरी निरन्तर गाढ़ी भक्ति बनी रहै । यह भक्तिही सब मनकामना पूर्ण करसकती है ॥ ५८ ॥ हे निखिलपुरुष साक्षी ! तुमको नमस्कार है; हे भक्तवत्सल ! तुमको नमस्कार है; हे हृषीकेश ! तुमको नमस्कार है; हेनारायण ! तुमको नमस्कारहै ॥ ५९ ॥ संसारकाभय दूरकरनेके एकमात्र कारण, करोड़ सूर्यकी समान प्रकाशमान हाथमें धनुषबाण लिये, श्यामनीरदकी समान वर्णवाले; सुवर्णकी समान मनोहर, पीताम्बर पहिरे, रत्नजड़े कुंडल धारणकिये, कमलदलकी समान नेत्रवाले रामचन्द्रजीकी लक्ष्मणजीके साथ स्तुति करतीहूं" ॥ ६० ॥ सन्मुख खड़ेहुए साक्षात् परमपुरुष श्रीरामचन्द्रजीकी इसप्रकारसे स्तुतिकर अहिल्याने उनको प्रणाम किया और परिक्रमाकर आज्ञाले हिमाचलके ऊपर स्थितहुए, अपनेपति गौतमके पास गई ॥ ६१ ॥ जो पुरुष अहिल्या

देवमेयत्रकुत्रापिस्थितायाअपिसर्वदा ॥ त्वत्पादकमलेसक्ताभक्तिरेवसदाऽस्तुमे ॥ ५८ ॥ नमस्तेपुरुषाध्यक्षनमस्तेभक्तवत्सल ॥ नमस्तेऽस्तुहृषीकेशनारायणनमोऽस्तुते ॥ ५९ ॥ भवभयहरमेकंभानुकोटिप्रकाशंकरधृतशरचापंकालमेघावभासम् ॥ कनकरुचिरवस्त्रंरत्नवत्कुंडलाढ्यंकमलविशदनेत्रंसानुजंराममीडे ॥ ६० ॥ स्तुत्वैवंपुरुषंसाक्षाद्राघवंपुरतःस्थितम् ॥ परिक्रम्यप्रणम्याशुसानुज्ञाताययौपतिम् ॥ ६१ ॥ अहल्ययाकृतंस्तोत्रंयःपठेद्भक्तिसंयुतः ॥ समुच्यतेऽखिलैःपापैःपरंब्रह्माधिगच्छति ॥ ६२ ॥ पुत्राद्यर्थंपठेद्भक्त्यारामंहृदिनिधायच ॥ संवत्सरेणलभतेवंध्याअपिसुपुत्रकम् ॥ ६३ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोतिरामचंद्रप्रसादतः ॥ ॥ ६४ ॥ ब्रह्मघ्नोगुरुतल्पगोऽपिपुरुषःस्तेयीसुरापोऽपिवामातृभ्रातृविहिंसकोऽपिसततंभोगैकबद्धातुरः ॥ नित्यंस्तोत्रमिदंजपन्रघुपतिंभक्त्याहृदिस्थंस्मरन्ध्यायन्मुक्तिमुपैतिकिंपुनरसौस्वाचारयुक्तोनरः ॥ ६५ ॥

कृत श्रीरामस्तोत्रको भक्तिसहित पाठ करेगा; वह अनन्त पापोंसे छूटकर परमब्रह्मपदको प्राप्तहोजायगा ॥ ६२ ॥ और श्रीरामचंद्रजीको हृदयमें विराजमानकरके भक्तिसहित, बांझस्त्रीभी यदि पुत्रादिकेलिये इसस्तोत्रका पाठकरैगी तौ एकवर्षके मध्यमें उसकोभी सुपुत्र प्राप्त होजायगा ॥ ६३ ॥ विशेषकरके श्रीरामचंद्रजीके प्रसादसे समस्त कामनाही सिद्धहोसक्ती हैं ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणका मारनेवाला, गुरूकी स्त्रीसे भोगकरनेवाला, ब्राह्मणका अस्सीरत्ती सुवर्ण चुरानेवाला, मातापिता और भ्राताका मारनेवाला, निरन्तर विषयभोगमें तत्पर रहनेवाला पुरुषभी यदि अन्तर्यामी श्रीरामचंद्रजीका भक्तिसहित स्मरणकर प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठकरै और इसके अर्थको विचारै तौ उसकीभी मुक्ति होजाय । फिर धर्मपरायण पुरुषको इस

स्तोत्रका पाठकरनेसे मुक्ति प्राप्तहोजायगी तौ इसमें आश्चर्यही क्याहै ॥ ६५ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे भाषानुवादे ससैन्य मारीच-सुबाहु-निधनविवरणमहल्याशापविमोचनं तत्कृतं श्रीरामस्तोत्रकथनञ्च पंचमःसर्गः॥५॥षष्ठःसर्गः महादेवजीबोले, इसके उपरान्त महर्षि विश्वामित्रजी, लक्ष्मणजीके साहित श्रीरामचन्द्रजीसे बोले, “कि हेवत्स ! हम इससमय जनकजीसे पालीजाती हुई मिथिलापुरीको चलेंगे ॥ १ ॥ और महायज्ञको देखकर फिर अयोध्यापुरीको लौटेंगे” विश्वामित्रजी यह कहकर राम और लक्ष्मणके साथ गंगाके किनारे आये. जब यह तीनों जन नदीउतरनेके लिये तैयारहुए, तब मांझीने रामचंद्रजीको निषेध किया॥ २॥मांझीबोला;-हे प्रभो ! यह सुनाजाताहै कि आपके चरणोंमें मानुषीकरणचूर्ण रहताहै,

इतिश्रीमदध्या०उमामहेश्वरसंवादेबालकांडेअहल्योद्धरणंनामपंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ ॥सूतउवाच ॥ विश्वामित्रोऽथतंप्राहराघवंसहलक्ष्मणम् ॥ गच्छामोवत्समिथिलांजनकेनाभिपालिताम्॥१॥द्दष्ट्वाक्रतुवरंपश्चादयोध्यांगंतुमर्हसि॥इत्युक्त्वाप्रययौगंगांसुत्तर्तुंसहराघवः॥ तस्मिन्कालेनाविकेननिषिद्धोरघुनंदनः ॥ २ ॥ नाविकउवाच ॥ क्षालयामितवपादपंकजंनाथदारुदृषदोःकिमंतरम् ॥ मानुषीकरणचूर्णमस्तितेपादयोरितिकथाप्रथीयसी ॥ ३ ॥ पादांबुजंतेविमलंहिकृत्वापश्चात्परंतीरमहंनयामि ॥ नोचेत्तरीसद्युवतीमलेनस्याच्चेद्विभो विद्धिकुटुंबहानिः ॥४॥ इत्युक्त्वाक्षालितौपादौपरंतीरंततोगताः ॥ कौशिकोरघुनाथेनसहितोमिथिलांययौ ॥ ५ ॥ विदेहस्यपुरंप्रातर्ऋषिवाटंसमाविशत् ॥ प्राप्तंकौशिकमाकर्ण्यजनकोऽतिमुदान्वितः ॥ ६ ॥ पूजाद्रव्याणिसंगृह्यसोपाध्यायःसमाययौ ॥ दंडवत्प्रणिपत्याथ पूजयामासकौशिकम् ॥ ७ ॥

इसपदरजको स्पर्श करके पत्थर मनुष्यहोगया है; भला पत्थर और काठमें भेदहीक्या है? क्या जाने यदि तुम्हारे चरणोंको यह चूर्णलगनेसे मेरी नौका मनुष्यहोजाय, तौ रुजगार धंधेहीसे जातारहूं और कुटुम्ब भूंखामरे, इसकारण प्रथमआपके चरणकमल धोलूं, तब नावपर चढ़ाकर पारउतारदूंगा ॥ ३ ॥ ।।४॥यह कहकर मांझीने श्रीरामचंद्रजीके दोनों चरणधोकर इन तीनोंजनोंको नांवमें बैठालकर पारउतार दिया; यह तीनों जन पारपहुँचे,तब महर्षि विश्वामित्रजी रामलक्ष्मण दोनोंभ्राताओंको साथले मिथिलानगरीको चलेगये॥५॥और प्रभातही मिथिलानगरीमें पहुंचकर यहांआयकर ठहरे जहांऋषिलोग ठहरे हुएथे. विश्वामित्रजीका आना श्रवणकर आनंदितहो जनकजी६पूजाकरनेके लिये भेंटआदिले अपनेपुरोहित शतानन्दको साथले विश्वामित्रजीके निकटआय

दण्डवत् प्रणामकर॥ ७॥ सर्वलक्षणसपन्न रामलक्ष्मणको चंद्रमासूर्यकी समान सब दिशाओंको प्रकाशित करताहुआ देखकर बोले॥ ८॥ देवकुमारकी समान नरशार्दूल यह दोनोंबालक किसके पुत्र हैं? नरनारायणकी समान इनदोनों कुमारोंको देखकर आज मेरा अंतःकरण आनंदमें मग्नहोगया ॥ ९॥ जनकके यह वचन सुनकर महर्षि विश्वामित्रजी आनंदितहुए,और जनकजीको आनंदितकरते हुए बोले, यह राजादशरथके पुत्रहैं, इनका नाम रामलक्ष्मण हैं॥ १०॥ अपने यज्ञकी रक्षाकरनेके अर्थ मैं इनके पितासे इनको मांगकर लायाहूं; इनरामचंद्रने मार्गमें आते २ सबोंकी घात करने वाली ताड़काको ॥ ११ ॥ अति पराक्रम प्रकाशकरके मेरी आज्ञापाय एकही बाणसे मारडाला; फिर मेरे आश्रममें आयकर मेरे यज्ञमें विघ्नकरनेवाले ॥ १२ ॥ सुबाहु, व उसके अनुगामि राक्षसोंको मारीचको एकहीबाणसे शतयोजनदूर समुद्रमें फेंकदिया; फिर गंगाजीके किनारे गौतमजीके शुभ और पुण्य आश्रममें ॥ १३॥ गये, जहां शिलारूपहोकर उनकी भार्या अहिल्या स्थित होरही थी. वहां रामने अपने चरणकमलसे छूकर उसको मनुष्यरूप करदिया ॥ १४ ॥ अहिल्याको देख प्रणामकर और तिसकरके भलीभांतिसे पूजितहो यहांपर महेश्वर धनुषके देखनेको आये हैं ॥ १५ ॥ जिसकी तुम्हारे गृहमें पूजाहोती है; सुनाहै कि इस अत्युत्तम महादेवजीके धनुषको समस्त राजाहीदेखगये हैं। इससमय हे राजेंद्र! रामचंद्रको वह धनुषदिखाओ; यह उस धनुषको देखकर अपने पिता दशरथजीका दर्शनकरनेके लिये अयोध्यापुरीमें जानेकी इच्छा करते हैं; क्योंकि इन्होंने बहुत दिनोंसे पिताको नहीं देखाहै ॥ १६ ॥

पप्रच्छराघवौदृष्ट्वासर्वलक्षणसंयुतौ ॥ द्योतयंतौदिशःसर्वाश्चंद्रसूर्याविवापरौ ॥ ८ ॥ कस्यैतौनरशार्दूलौपुत्रौदेवसुतोपमौ ॥ मनःप्रीतिकरौमेऽद्यनरनारायणाविव ॥ ९ ॥ प्रत्युवाचमुनिःप्रीतोहर्षयञ्जनकंतदा ॥ पुत्रौदशरथस्यैतौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १० ॥ मखसंरक्षणार्थायमयानीतौपितुःपुरात् ॥ आगच्छन्राघवोमार्गेताटकांविश्वघातिनीम् ॥ ११ ॥ शरेणैकेनहतवान्नोदितोमेऽतिविक्रमः ॥ ततोममाश्रमंगत्वाममयज्ञविहिंसकान् ॥ १२ ॥ सुबाहुप्रमुखान्हत्वामारीचंसागरेऽक्षिपत् ॥ ततोगंगातटेपुण्येगौतमस्याश्रमेशुभे ॥ १३ ॥ गत्वातत्रशिलारूपागौतमस्यवधूःस्थिता ॥ पादपंकजसंस्पर्शात्कृतामानुषरूपिणी ॥१४॥ दृष्ट्वाऽहल्यांनमस्कृत्यतयासम्यक्प्रपूजितः ॥ इदानींद्रष्टुकामस्तेगृहेमाहेश्वरंधनुः ॥ १५ ॥ पूजितंराजभिःसर्वैर्दृष्टमित्यनुशुश्रुवे ॥ अतोदर्शयराजेंद्रशैवंचापमनुत्तमम् ॥ दृष्ट्वायोध्यांजिगमिषुःपितरंद्रष्टुमिच्छति ॥ १६ ॥

महर्षि विश्वामित्रजीके ऐसे बचन सुनकर धर्मज्ञ राजाजनकजीने पूजाकरनेकें योग्य रामलक्ष्मणकी विधि विधानसे पूजाकर ॥ १७ ॥ मंत्रीसुदास को जोकि बड़ा बुद्धिमानथा; धनुष लाने के लिये प्रेरण करते हुए कहा; जनकजी बोले,"शीघ्रमहादेवजीका धनुषलायकर रामचंद्रको दिखाओ"॥ १८॥ जब मंत्री सुदास धनुषलानेके लिये गया, तब जनकजी विश्वामित्रजीसे बोले,-"हे मुने ! रामयदि धनुषधारण करके धनुषपर रोदाचढ़ादें ॥ १९ ॥ तौ मैं अपनी कन्यासीता रामचंद्रको समर्पणकरदूं ! " "तथास्तु" कहकर विश्वामित्रजीने रामकी ओरको देखा; कि रामचंद्रकामुखमंडल मन्द मुसकानसे प्रफुल्लितहोगया है ॥ २० ॥ तत्पश्चात् विश्वामित्र बोले । "अतितेजवान् रामचंद्रको शीघ्रवह धनुष दिखाओ" विश्वामित्र यह कहही रहेथे कि

इत्युक्तोमुनिनाराजापूजार्होवितिपूजया ॥ पूजयामासधर्मज्ञोविधिदृष्टेनकर्मणा ॥ १७ ॥ ततःसंप्रेषयामासमंत्रिणंबुद्धिमत्तरम् ॥ जनकउवाच ॥ शीघ्रमानयविश्वेशचापंरामायदर्शय ॥१८॥ ततोगतेमंत्रिवरेराजाकौशिकमब्रवीत् ॥ यदिरामोधनुर्धृत्वाकोट्यामारोपयेद्गुणम् ॥ ॥ १९ ॥ तदामयाऽत्मजासीतादीयतेराघवायहि ॥ तथेतिकौशिकोऽप्याहरामंसंवीक्ष्यसस्मितम् ॥ २० ॥ शीघ्रंदर्शयचापाग्र्यंरामायामिततेजसे ॥ एवंब्रुवतिमौनीशआगताश्चापवाहकाः ॥ २१ ॥ चापंगृहीत्वाबलिनःपंचसाहस्रसंख्यकाः ॥ घंटाशतसमायुक्तंमणिवज्रादिभूषितम् ॥ २२ ॥ दर्शयामासरामायमंत्रीमंत्रवतांवरः ॥ दृष्ट्वारामःप्रहृष्टात्माबद्ध्वापरिकरंदृढम् ॥ २३॥गृहीत्वावामहस्तेनलीलयातोलयन्धनुः ॥ आरोपयामासगुणंपश्यत्स्वखिलराजसु ॥ २४ ॥ ईषदाकर्षयामासपाणिनादक्षिणेनसः ॥ बभंजाखिलहृत्सारोदिशःशब्देनपूरयन् ॥ २५ ॥ दिशश्चविदिशश्चैवस्वर्गमर्त्यंरसातलम् ॥ तदद्भुतमभूत्तत्रदेवानांदिविपश्यताम् ॥ २६ ॥

राजसेवक धनुष लियेहुए आये ॥ २१ ॥ पांचहज़ार बलवान्बीर, उसप्रचण्ड शिवजीके चापको खेंचते हुए सभामें लाये । यह धनुष मणिवज्रादि रत्नोंसे भूषितरत्न-सैकड़ों चराटे इसमें लगे हुयेथे ॥ २२ ॥ मंत्रियोंमें श्रेष्ठ सुदासने रामचंद्रको यह धनुष दिखादिया, श्रीराम इसधनुषको देकर आनंदितहुए, और कसकरफेंट बांध ॥ २३ ॥ एकखेलके साथ बांये हाथसे उसअतिभारी शंकरचापको उठाकर समस्तराजाओंके सामने उसको चढ़ादिया ॥ २४ ॥ इसप्रकार धनुषपर रोदाचढ़ाय, सबकी हृदयके जाननेवाले रामचंद्रने बाँये हाथसे थोड़ासा खैंचा और उसको तोड़डाला. धनुष टूटनेके शब्दसे सबदिशा पूर्णहोगई ॥ २५ ॥ इसधनुषके टूटनेका शब्द ऐसा फैला कि दिशा विदिशा, स्वर्ग, मृत्यु, और पाताल में छायगया; स्वर्गसे देवता

लोग धनुषको टूटाहुआ देखकर अति आश्चर्यान्वित हुए ॥ २६ ॥ यह देवतागण रामचंद्रजीके ऊपर पुष्पोंकी वर्षाकर उनकी स्तुति करनेलगे। देवताओंके नगाड़े बजनेलगे, अप्सरागण नाचनेलगीं ॥ २७ ॥ फिर राजर्षि जनकजीने महादेवके चापके दो टुकड़े देखकर रघुकुलवंशावतंस रामको अत्यन्त आनंदित होकर हृदयसे लगालिया; उधर पण्डितलोग और रानिवासकी रानियेंभी इसकार्यको देख अत्यंत विस्मितहुईं ॥ २८ ॥ इसके उपरांत सर्व आभूषण पहरेहुए; सुवर्णके समान रंगवाली मुसकाती हुई सीताजी दांयें हाथमें सुवर्णकी मालालिये हुए वहां आईं ॥ २९ ॥ जानकी जी मोतियोंके हार और कर्णफूल आदि विविधभांतिके गहने पहरे शोभायमान होरहीथी, उत्तम वस्त्रोंसे सजरहीथीं; वस्त्रके भीतरसे उनके दोनों स्तन

आच्छादयंतःकुसुमैर्देवाःस्तुतिभिरीडिरे॥देवदुंदुभयोनेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२७॥ द्विधाभग्नंधनुर्दृष्ट्वाराजालिंग्यरघूद्वहम् ॥ विस्मयं
लेभिरेसीतामातरोऽतःपुराजिरे ॥ २८ ॥ सीतास्वर्णमयींमालांगृहीत्वादक्षिणेकरे ॥ स्मितवक्त्रास्वर्णवर्णासर्वाभरणभूषिता ॥ २९ ॥
मुक्ताहारैःकर्णपत्रैःक्वणच्चरणनूपुरा ॥ दुकूलपरिसंवीतावस्त्रांतर्व्यंजितस्तनी ॥ ३० ॥ रामस्योपरिनिक्षिप्यस्मयमानामुदंययौ ॥ ततो
मुमुदिरेसर्वेराजदाराःस्वलंकृतम् ॥ ३१ ॥ गवाक्षजालरंध्रेभ्योदृष्ट्वालोकविमोहनम् ॥ ततोऽब्रवीन्मुनिंराजासर्वशास्त्रविशारदः ॥ ३२ ॥
भोःकौशिकमुनिश्रेष्ठपत्रंप्रेषयसत्वरम् ॥ राजादशरथःशीघ्रमागच्छतुसपुत्रकः ॥३३॥ विवाहार्थंकुमाराणांसदारःसहमंत्रिभिः ॥ तथेतिप्रे
षयामासदूतांस्त्वरितविक्रमान् ॥ ३४ ॥ तेगत्वाराजशार्दूलंरामश्रेयोन्यवेदयन्॥श्रुत्वारामकृतंराजाहर्षेणमहताप्लुतः॥ ३५ ॥

प्रकाशमान होरहेथे। चरणोंमें नूपुर पड़ेहुये मधुरधुनसे शब्दायमान होरहेथे ॥ ३० ॥ सीताजीने दांयें हाथसे वह सुवर्णकी माला रामके ऊपर डालतीहुई; लज्जिता और आनंदिताहुईं। शृंगार कियेहुए सब रानियां झरोंखोंके छिद्रोंमें रामचंद्रजीका भुवनमोहन रूप देखकर परमानन्दको प्राप्तहुईं। इसके उपरांत सर्वशास्त्रविशारद राजाजनकजी महर्षि विश्वामित्रजीसे बोले ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ "हे मुनिश्रेष्ठ ! कौशिक ! शीघ्र अयोध्याको पत्र भेजिये कि राजादशरथ पुत्रोंके साथ शीघ्र आवैं ॥ ३३ ॥ कुमारोंका विवाह करनेकेलिये वह मंत्रीगण बरातियोंके साथ यहां आवै" इसके उपरांत महामति विश्वामित्रजीने अतिशीघ्र चलनेवाले दूत अयोध्यापुरीको भेजे ॥ ३४ ॥ समस्त दूतोंने वहां पहुँचकर नृपतिश्रेष्ठ राजादशरथजीसे रामचंद्रजीकी

कुशल निवेदनकी; राजादशरथजी श्रीरामचंद्रजीके समस्त कार्योंको सुन अत्यानंदमें मग्नहोगये ॥ ३५ ॥ और मिथिलापुरीको चलनेके लिये शीघ्र तैयार होनेकी मंत्रियोंको आज्ञादी कि "अभी चतुरंगिणी सेना मिथिलापुरीको जाय, ॥ ३६ ॥ शीघ्र मेरा रथ लाओ; हमभी आजही जाँयगे, विलम्ब नहो; कुलगुरु भगवान् वसिष्ठजी अपनी स्त्री चारअग्नि और रामचंद्रकी माताओंको लेकर आगे २ चलें." इसप्रकारसे राजर्षि दशरथजी सबको भेजकर बड़ेभारी रथपर ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सवारहो बड़ीसेनाके साथ अतिशीघ्र मिथिलापुरीको चले। राजादशरथको आताहुआ सुन राजाजनकजी हर्षितहुए ॥ ३९ ॥ राजार्षि जनकजीने शतानंद पुरोहितको साथ लेकर राजादशरथजीको आगे जायकर लिया; और यथोचित उनकी पूजा करके भलीभांति आदर सत्कार किया ॥ ४० ॥ श्रीरामचंद्रजभी लक्ष्मणके साथ अतिशीघ्र पिताके चरणोंमें प्रणामकरते हुए। तब हर्षितहोकर दशरथजी रामचंद्रजीसे बोले ॥ ४१ ॥ "हेराम! बड़ेही भाग्यकी बातहै कि आज हमने फूलेहुए कमलकी समान तुम्हारा वदन देखा। महर्षि विश्वामित्रजीके अनुग्रहसे मेरे सर्व मंगल शोभायमान होकर सिद्धहुए" ॥ ४२ ॥ राजादशरथजी यह कह शिर सूंघ बारम्बार रामचंद्रको छातीसे लगाय मानो ब्रह्मानंदमें मग्नहोगये ॥ ४३ ॥ राजाजनकजीने दशरथजीको पुत्र और स्त्रियोंके साथ ऐसे स्थानमें टिकाया जो सबप्रकारके भोगोंसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त शोभायमानथा ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त धर्मज्ञ जनकजी शुभलग्न, शुभदिन और शुभमुहूर्त्तमें राजादशरथजीके साहित, राम, लक्ष्मण,

मिथिलागमनार्थायत्वरयामासमंत्रिणः ॥ गच्छंतुमिथिलांसर्वेगजाश्वरथपत्तयः ॥३६॥ रथमानयमेशीघ्रंगच्छाम्यद्यैवमाचिरम् ॥ वसिष्ठस्त्वग्रतोयातुसदारःसहितोऽग्निभिः ॥३७॥ राममातॄःसमादायमुनिर्मेभगवान्गुरुः ॥ एवंप्रस्थाप्यसकलंराजर्षिर्विपुलंरथम् ॥ ३८॥ महत्यासेनयासार्धमारुह्यत्वरितोययौ ॥ आगतंराघवंश्रुत्वाराजाहर्षसमाकुलः॥३९॥ प्रत्युज्जगामजनकःशतानंदपुरोधसा ॥ यथोक्तपूजया पूज्यंपूजयामाससत्कृतम् ॥४०॥ रामस्तुलक्ष्मणेनाशुववंदेचरणौपितुः ॥ ततोहृष्टोदशरथोरामंवचनमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ दिष्ट्यापश्यामितेराममुखंफुल्लांबुजोपमम् ॥ मुनेरनुग्रहात्सर्वंसंपन्नंममशोभनम् ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वाऽऽघ्रायमूर्धानमालिंग्यचपुनःपुनः ॥ हर्षेणमहताविष्टोब्रह्मानंदंगतोयथा ॥ ४३ ॥ ततोजनकराजेनमंदिरेसन्निवेशितः ॥ शोभनेसर्वभोगाढ्येसदारःससुतःसुखी ॥ ४४ ॥ ततःशुभेदिनेलग्नेसुमुहूर्तेरघूत्तमम् ॥ आनयामासधर्मज्ञोरामंसभ्रातृकंतदा ॥ ४५ ॥

भरत,और शत्रुघ्नको विवाहके स्थानमें लिवालाये ॥ ४५ ॥ इसस्थानमें विवाहका मण्डप रत्नजटितें खम्भों के ऊपर शोभायमान है; जिसके ऊपर
सुन्दर चंदोवा फैलाहुआ है ॥४६॥ वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे पूर्ण होरहाहै । और सुवर्ण धारण किये निष्ककण्ठी सुवासिनी स्त्रियेंभी इसमंडपमें
बैठी हैं ॥ ४७ ॥ जिसमें भेरी, दुन्दुभि, ढोलआदि मंगलमय बाजे बजरहे हैं; कहीं नांच और कहीं गानाहोरहा है; मिथिलाधिपति राजाजनकजीने
उस परममनोहर मंडपमें दिव्यरत्न जड़े सुवर्णके आसनपर रामचंद्रको बैठाया ॥ ४८॥ फिर शतानंद पुरोहित और राजाजनकने श्रीरामचंद्रजीके बांयें
दांयें बैठेहुए वसिष्ठ और विश्वामित्रजीकी विधिपूर्वक पूजाकरके ॥ ४९ ॥ यथाविधानसे अग्नि स्थापित करके उसको प्रज्वालित किया; फिरअनेक

रत्नस्तंभसुविस्तारेसुवितानेसुतोरणे ॥ मंडपेसर्वशोभाढ्येमुक्तापुष्पफलान्विते ॥ ४६ ॥ वेदविद्भिःसुसंबाधेब्राह्मणैःस्वर्णभूषितैः ॥
सुवासिनीभिःपरितोनिष्ककंठीभिरावृते ॥ ४७ ॥ भेरीदुंदुभिनिर्घोषैर्गीतनृत्यैःसमाकुले ॥ दिव्यरत्नांचितेस्वर्णपीठेरामंन्यवेशयत् ॥
॥ ४८ ॥ वसिष्ठंकौशिकंचैवशतानंदःपुरोहितः ॥ यथाक्रमंपूजयित्वारामस्योभयपार्श्वयोः॥ ४९ ॥ स्थापयित्वासतत्राग्निंज्वालयित्वा
यथाविधि ॥ सीतामानीयशोभाढ्यांनानारत्नविभूषिताम् ॥ ५० ॥ सभार्योजनकःप्रायाद्रामंराजीवलोचनम् ॥ पादौप्रक्षाल्यविधि
वत्तदपोमूर्ध्न्यधारयत् ॥ ५१ ॥ याधृतामूर्ध्निशर्वेणब्रह्मणामुनिभिःसदा ॥ ततःसीतांकरेधृत्वासाक्षतोदकपूर्वकम् ॥५२ ॥ रामायप्रददौ
प्रीत्यापाणिग्रहविधानतः ॥ सीताकमलपत्राक्षीस्वर्णमुक्तादिभूषिता ॥ ५३ ॥

रत्नों करके भूषितहोनेसे शोभायमान हुई सीताको मंडपमें लाय ॥ ५० ॥ अपनी रानीके साथ जनकजी,राजीवलोचन श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख आये.
इसके उपरांत रामचंद्रजीके दोनोंचरण धोकर वह धोवनका जल जनकजीने शिरपर धारणकिया ॥ ५१ ॥ कैसाहै वह जलकि जिसको ब्रह्मा,शिव,
और मुनिगण विष्णुजीका चरणोदक जोकि लोकोंका पवित्र करनेवाला जलहै सदा अपने मस्तकपर धारण कियाकरते हैं; इसप्रकारसे रामचंद्रजीके
चरण धोकर राजाजनकजी सीताजीका हाथ अपने हाथके ऊपरधरके अक्षतके सहित जलले ॥ ५२ ॥ पाणिग्रहणकी विधिके अनुसार अतिआनं

दितहो रामचंद्रके हाथ सीताको समर्पण करदिया; और बोले;–" सुवर्ण और मोतियोंको धारण किये, कमलदलकी समान नेत्रवाली अपनी कन्या सीताको मैं तुम्हारे हाथमें समर्पण करताहूं; हे रघुश्रेष्ट ! तुम प्रसन्नहोवो । " इसप्रकार प्रसन्नमनसे सीताको रामके हाथमें समर्पणकर ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ राजाजनकजी,–विष्णुजीको लक्ष्मीकादान करके क्षीरसागर जिसप्रकार आनंदको प्राप्तहुआ था; वैसेही अतुल आनंदको भोगते हुए ॥ इसप्रकार राजा जनकजीने प्रसन्नहोकर अपनी औरसकन्या ऊर्मिलाको लक्ष्मणजीके अर्थदिया॥५५॥ और इसीप्रकार अपनी दो भतीजी [भ्राताकी कन्या] भरत शत्रुघ्नको देदीं; इनदोनोंमें भरतकोश्रुतकीर्ति, और शत्रुघ्नको माण्डवीनामक कन्यादी ॥ ५६ ॥ शुभ लक्षणवाले चारोंभ्राता इसप्रकार अपनी २

दीयतेमेसुतातुभ्यंप्रीतोभवरघूत्तम ॥ इतिप्रीतेनमनसासीतांरामकरेऽर्पयन् ॥ ५४ ॥ मुमोदजनकोलक्ष्मींक्षीराब्धिरिवविष्णवे ॥ ऊर्मिं
लांचौरसींकन्यांलक्ष्मणायददौमुदा॥५५॥ तथैवश्रुतकीर्तिंचमांडवींभ्रातृकन्यके ॥ भरतायददावेकांशत्रुघ्नायापरांददौ ॥५६॥ चत्वारो
दारसंपन्नाभ्रातरःशुभलक्षणाः ॥ विरेजुःप्रभयासर्वेलोकपालाइवापरे ॥ ५७ ॥ ततोऽब्रवीद्वसिष्ठायविश्वामित्रायमैथिलः॥जनकःस्वसुतो
दंतंनारदेनाभिभाषितम् ॥ ५८ ॥ यज्ञभूमिविशुद्ध्यर्थंकर्षतोलांगलेनमे ॥ सीतामुखात्समुत्पन्नाकन्यकाशुभलक्षणा ॥ ५९ ॥ ताम
द्राक्षमहंप्रीत्यापुत्रिकाभावभाविताम् ॥ अर्पिताप्रियभार्यायैशरच्चंद्रनिभानना ॥ ६० ॥ एकदानारदोभ्यागाद्विविक्तेमयिसंस्थिते ॥ रण
यन्महतींवीणांगायन्नारायणंविभुम् ॥ ६१ ॥ पूजितःसुखमासीनोमामुवाचसुखान्वितः ॥ शृणुष्ववचनंगुह्यंतवाभ्युदयकारणम् ॥ ६२ ॥

स्त्रियोंको पाय लोकपालोंकी समान कान्तिमान्हो, विराजमान होनेलगे ॥ ५७ ॥ जब इसप्रकारसे यह शुभ बिवाह होगया तब मिथिलाधिपतिराजा जनकजीने महर्षि नारदजीसे सीताजीका जो वृत्तान्त सुनाथा; वह सब वशिष्ट और विश्वामित्रके आगे वर्णन करने लगे ॥ ५८ ॥ "यज्ञभूमि शुद्धकरने के अर्थ एकसमयमें हलजोतताथा कि इतनेमें हलके अग्रभागसे जिसकानाम सीताहै एकशुभ लक्षणवाली कन्या उत्पन्न हुई ॥ ५९ ॥ इसकन्या का मुख शरद्ऋतु के चंद्रमाकी समान मनोहर हुआ । मैंने उसकन्याको पुत्रीके भावसे ग्रहणकरके अत्यंत प्रसन्नहो अपनीरानीको दिया ॥ ६० ॥ इसके उपरांत एकसमय मैं अकेला बैठाहूं, कि इतनेमें बड़ी बीणाको बजाते, और विभुनारायणका गुणगाते हुए नारदजीआये ॥ ६१ ॥ मैंने यथा

विधिसे उनकी पूजाकी; वह नारदजी सुखसे बैठकर मुझसेबोले,—"मैं तुम्हारे मंगलके लिये एकपरम गुप्तवृत्तांत बर्णनकरताहूं तुम उसको श्रवणकरो. ॥६२॥ परमात्मा हृषीकेश भक्तके ऊपर अनुग्रह विस्तारकरने देवताओंका कार्य साधनकरने के निमित्त ॥ ६३ ॥ मायामनुष्यरूप धारणकर राम नामसे दशरथजीके ग्रहमें जन्म गृहणकरचुके हैं; और चारअंशसे उनके चारपुत्र होकर अयोध्यामें स्थित हैं ॥ ६४ ॥ और योगमाया सीतानाम धारणकर तुम्हारे गृहमें जन्मलेचुकीहैं, इसलिये तुम परमयत्नके साथ रामचंद्रजीकेही हाथमें सीताका समर्पणकरना ॥ ६५ ॥ और किसीके हाथमें समर्पण मत करियो, क्योंकि यह रामचंद्रजीकी पूर्वभार्या हैं।" यह कहकर देवर्षि नारदजीतो आकाशमार्गको चलेगये ॥ ६६ ॥ उसीदिनसे मैं इन

परमात्माहृषीकेशोभक्तानुग्रहकाम्यया ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थंरावणस्यवधायच ॥ ६३ ॥ जातोरामइतिख्यातोमायामानुषवेषधृक् ॥
आस्तेदाशरथिर्भूत्वाचतुर्धापरमेश्वरः ॥६४ ॥ योगमायाऽपिसीतेतिजातावैतववेश्मनि ॥ अतस्त्वंराघवायैवदेहिसीतांप्रयत्नतः॥६५॥
नान्येभ्यःपूर्वभार्यैषारामस्यपरमात्मनः ॥ इत्युक्त्वाप्रययौदेवगतिंदेवमुनिस्तदा ॥ ६६ ॥ तदारभ्यमयासीताविष्णोर्लक्ष्मीर्विभाव्यते ॥
कथंमयाराघवायदीयतेजानकीशुभा ॥ ६७ ॥ इतिचिंतासमाविष्टःकार्यमेकमचिंतयम् ॥ मत्पितामहगेहेतुन्यासभूतमिदंधनुः ॥ ६८॥
ईश्वरेणपुराक्षिप्तंपुरदाहादनंतरम् ॥ धनुरेतत्पणंकार्यमितिचिंत्यकृतंतथा ॥ ६९ ॥ सीतापाणिग्रहार्थायसर्वेषांमाननाशनम् ॥ त्व
त्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठरामोराजीवलोचनः ॥ ७० ॥

सीताको नारायणजीकी लक्ष्मी समझताहूं; और तबसे बराबर यही चिन्ता मेरे मनको ब्याकुल करतीथी; कि शुभ लक्षणवाली जानकीको किसप्रकारसे श्रीरामचंद्रजीके हाथमें समर्पणकरूं ॥ ६७ ॥ इसप्रकार चिंताकरते करते मैंने एक बात स्थिरकी कि मेरे पितामहके यहां यह धनुष धरो हरकी भांति ॥ ६८ ॥ त्रिपुरको भस्मकरनेके पीछे महादेवजीने रखदिया सोचविचारकर मैंने वहीधनुष सीताके बिवाहकरने में इसधनुषकाही पणकिया अर्थात् यह प्रतिज्ञाकी कि जो कोई धनुषतोड़ैगा उसीके साथ सीताका बिवाह करदिया जायगा; हेमुनिश्रेष्ठ! कौशिक इसधनुष करके समस्त राजाओंका मान नाशको प्राप्तहोगया; और तुम्हारेही प्रसादसे राजीवलोचन रामचंद्रजी ॥ ६९ ॥ ७० ॥

यहांपर इसधनुषके देखनेको आये; जिस्से मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ; हेराम ! आज मेरा जन्म सफल सीताके साथ तुमको ॥ ७१ ॥ एकासनपर सूर्य की समान विराजमान देखकर होगया । तुम्हारे चरणोदकको मस्तकपर धारणकरके ब्रह्मा सम्पूर्ण सृष्टिको उत्पन्न करनेवाला हुआ है ॥ ७२ ॥ राजाबलि तुम्हारे चरणामृतको शिरपर धारणकरके स्वर्गका स्वामी हुआहै; तुम्हारे चरणकमलकी धूरिको स्पर्श करतेही अहिल्या अपनेपतिके शाप से ॥ ७३ ॥ तत्कालही छूटगई; अतएव तुमसे श्रेष्ठ रक्षाकरनेवाला और कौन है ? ॥ ७४ ॥ तुम्हारे चरणोंमें विशेष ध्यान लगाय योगियोंने काल चक्रको जीत समस्त संसार भयको जीतलिया है; और तुम्हारे परम पवित्र गुणका कीर्तन करनेसे देवताओंके समस्त शोक दुःख दूर होजाते हैं; अतएव तुम्हारे चरणकमलकी शरणही मुझको निरंतर प्राप्तहोवै ॥ ७५ ॥ राजाजनकजीने इसप्रकार महात्मा रामचंद्रजीकी स्तुतिकर उनको सौकरोड़ दीनार [अशरफी] और दशहज़ार रथदिये ॥ ७६ ॥ एकलक्ष घोड़े, और छः शत हाथी दिये; एकलक्ष पैदल और तीन शत दासियां देकर ॥ ७७ ॥ कन्यासे अत्यन्त स्नेहकरनेवाले राजाजनकजीने दिव्यवस्त्र व मोती और रत्नोंके जड़े हार सीताको दिये ॥ ७८ ॥ फिर वसिष्ठादि और भरत लक्ष्मणादिकी और राजा दशरथजीकी यथाविधिसे व यथाक्रमसे पूजाकर ॥ ७९ ॥ राजाजनकने रघुकुलतिलक राजादशरथजीको बिदादी ।

आगतोऽत्रधनुर्द्रष्टुंफलितोमेमनोरथः ॥ अद्यमेसफलंजन्मरामत्वांसहसीतया ॥७१॥ एकासनस्थंपश्यामिभ्राजमानंरविंयथा ॥ त्वत्पा
दांबुधरोब्रह्मासृष्टिचक्रप्रवर्तकः ॥ ७२ ॥ बलिस्त्वत्पादसलिलंधृत्वाभूद्दिविजाधिपः ॥ त्वत्पादपांसुसंस्पर्शादहल्याभर्तृशापतः ॥७३ ॥
सद्यएवविनिर्मुक्ताकोऽन्यस्त्वत्तोऽधिरक्षिता ॥ ७४ ॥ यत्पादपंकजपरागसुरागयोगिवृंदैर्जितंभवभयंजितकालचक्रैः ॥ यन्नामकीर्तनपरा
जितदुःखशोकादेवास्तमेवशरणंसततंप्रपद्ये ॥७५॥ इतिस्तुत्वानृपःप्रादाद्राघवायमहात्मने॥दीनाराणांकोटिशतंरथानामयुतंतदा॥७६॥
अश्वानांनियुतंप्रादाद्गजानांषट्शतंतथा ॥ पत्तीनांलक्षमेकंतुदासीनांत्रिशतंददौ ॥ ७७ ॥ दिव्यांबराणिहारांश्चमुक्तारत्नमयोज्ज्वलान्॥
सीतायैजनकःप्रादात्प्रीत्यादुहितृवत्सलः ॥ ७८ ॥ वसिष्ठादीन्सुसंपूज्यभरतंलक्ष्मणंतथा ॥ पूजयित्वायथान्यायंतथादशरथंनृपम् ॥
॥ ७९ ॥ प्रस्थापयामासनृपोराजानंरघुसत्तमम् ॥ सीतामालिंग्यरुदतींमातरःसाश्रुलोचनाः ॥ ८० ॥

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

आंखोंमें आंसूभरेहुए समस्त माता रोती हुई जानकीजीसे मिलकर व आशीर्वाद देकर बोलीं ॥ ८० ॥ बेटी ! पतिव्रतधर्मका आचरणकर सास श्वशुरकी भलीभांति सेवाकरके समय व्यतीत करना ॥ ८१ ॥ जिससमय महाराज दशरथजीने अयोध्यापुरीकी ओर यात्राकी तिसकाल भेरी, मृदंग, नगाड़े, और तुर्रही आदिका बड़ाशब्द; देवताओंके बजाये हुए भेरी, तुर्रही आदि बाजेके शब्दसे मिलकर सर्व प्राणियोंको अत्यन्त भयदायक हुआ. (शंका) विवाह करके अयोध्या को चले तौ बाजे के शब्दों को भयदायक क्यों कहा ? (उत्तर) कविने भयदायक शब्द लिखकर यहां परशुरामजीके आनेकी सूचनादी ॥ ७२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे धनुर्भंगरामादीनांविवाहोनाम षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

श्वश्रूशुश्रूषणपरानित्यंराममनुव्रता ॥ पातिव्रत्यमुपालंब्यातिष्ठवत्सेयथासुखम् ॥ ८१ ॥ प्रयाणकालेरघुनंदनस्यभेरीमृदंगानकतूर्यघोषः ॥ स्ववासिभेरीघनतूर्यशब्दैःसंमूर्च्छितोभूतभयंकरोऽभूत् ॥८२॥ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेबालकांडेजानकीपरिणयनंनामषष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥ ॥ सूतउवाच ॥ ॥ अथगच्छतिश्रीरामेमैथिलाद्योजनत्रयम् ॥ निमित्तान्यतिघोराणिददर्शनृपसत्तमः ॥ १ ॥ नत्वावसिष्ठंपप्रच्छकिमिदंमुनिपुंगव ॥ निमित्तानीहदृश्यंतेविषमाणिसमंततः ॥ २ ॥ वसिष्ठस्तमथप्राहभयमागामिसूच्यते ॥ पुनरप्यभयंतेऽद्यशीघ्रमेवभविष्याति ॥ ३ ॥ मृगाःप्रदक्षिणंयांतिपश्यत्वांशुभसूचकाः ॥ इत्येवंवदतस्तस्यववौघोरतरोऽनिलः ॥ ४ ॥ मुष्णंश्चक्षूंषिसर्वेषांपांसुवृष्टिभिरर्दयन् ॥ ततोव्रजन्ददर्शाग्रेतेजोराशिमुपास्थितम् ॥ ५ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशंविद्युत्पुंजसमप्रभम् ॥ तेजोराशिंददर्शाथजामदग्न्यंप्रतापवान् ॥ ६ ॥

सूतजी बोले;—जब श्रीरामचंद्रजी मिथिलासे तीन योजन मार्ग चले आये तब उसकाल नृपालश्रेष्ठ दशरथजी अति भयंकर अशकुन देख ॥ १ ॥ वसिष्ठजीको प्रणाम करकै पूछते भये; "हे मुनिश्रेष्ठ ! चारों ओर भयंकर अपशकुन क्यों दिखाई देते हैं?" ॥ २ ॥ वशिष्ठजी बोले, हे राजन् ! इन अशकुनोंसे आनेवाली भयकी सूचना होती है ; परन्तु शीघ्रही तुम्हारा समस्त भय दूर होगा ॥ ३ ॥ यह देखो, मृग, झुण्ड, तुम्हारी प्रदक्षिणा करकै जताते हैं यह शुभ लक्षण है । वशिष्टजी यह कहही रहेथे कि इतनेमें अत्यन्त घोर पवन चला ॥ ४ ॥ यह पवन धूरि वर्षायकर सर्वहीकी दृष्टिको हरण करकै पीडा देने लगा; इसके उपरान्त फिर सर्व प्राणियोंके सामने प्रचंड तेजराशी दिखलाई पडी ॥ ५ ॥ कोटि सूर्यकी समान प्रकाशवान् बिजलीके

पुंजकी समान कान्तिमान् जमदग्निके पुत्र परशुरामजीको राजादशरथजीने देखा ॥ ६ ॥ इन परशुरामजीकी कांति नीले बादलकी समान है; मस्तकपर जटाएँ विराजमान हैं; हाथमें धनुष और परशालिये साक्षात् प्राणियोंका नाश करनेवाले कालही हैं ॥ ७ ॥ कार्तवीर्यका संहार करनेवाले, गर्वित क्षत्रियोंके मारनेवाले यमराजकी समान जमदग्निके पुत्र परशुरामजी दशरथजीके आगे खडे होगये ॥ ८ ॥ राजा दशरथजी दूसरे कालकी समान परशुरामजी इस प्रकारसे सन्मुख आया हुआ देखकर भयके मारे विह्वल होगये और अर्घ्यादि पूजा भूल कर " त्राहि, त्राहि " कहने लगे ॥ ९ ॥ और दंडवत् प्रणाम करके बोले कि " मेरे पुत्रका प्राणदान कीजिये । " दशरथजी वारंवार यही कहने लगे ! राजा दशरथजीके यह कहनेपर परशुराम

नीलमेघनिभंप्रांशुंजटामंडलमंडितम् ॥ धनुःपरशुपाणिंचसाक्षात्कालमिवांतकम् ॥ ७ ॥ कार्तवीर्यांतकंरामंदृप्तक्षत्रियमर्दनम् ॥ प्राप्तं
दशरथस्याग्रेकालमृत्युमिवापरम् ॥ ८ ॥ तंदृष्ट्वाभयसंत्रस्तोराजादशरथस्तदा ॥ अर्घ्यादिपूजांविस्मृत्यत्राहित्राहीतिचाब्रवीत् ॥ ९ ॥
दंडवत्प्रणिपत्याहपुत्रप्राणंप्रयच्छमे ॥ इतिब्रुवंतंराजानमनादृत्यरघूत्तमम् ॥ १० ॥ उवाचनिष्ठुरंवाक्यंक्रोधात्प्रचलितेंद्रियः ॥ त्वंरामइ
तिनाम्नामेचरसिक्षत्रियाधम ॥ ११ ॥ द्वंद्वयुद्धंप्रयच्छाशुयदित्वंक्षत्रियोऽसिवै ॥ पुराणंजर्जरंचापंभंक्त्वात्वंकत्थसेमुधा ॥ १२ ॥ अस्मिं
स्तुवैष्णवेचापेआरोपयसिचेद्गुणम् ॥ तदायुद्धंत्वयासार्धंकरोमिरघुवंशज ॥ १३ ॥ नोचेत्सर्वान्हनिष्यामिक्षत्रियांतकरोह्यहम् ॥ इति
ब्रुवतिवैतस्मिंश्चचालवसुधाभृशम् ॥ १४ ॥ अंधकारोबभूवाथसर्वेषामपिचक्षुषाम् ॥ रामोदाशरथिर्वीरोवीक्ष्यतंभार्गवंरुषा ॥ १५ ॥

जीने उनका अनादर कर अर्थात् उनकी कुछ बात न सुनकर ॥ १० ॥ मारे क्रोधके इन्द्रियोंसे चलायमान हो यह निठुर वचन बोले; " रे क्षत्रियोंमें नीच! तू हमारे रामनामसे प्रसिद्ध होकर पृथ्वीपर विचरता है ॥ ११ ॥ यदि तुझको अपने क्षत्रिय होनेका अभिमानहो तौ शीघ्र मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध कर। एक पुराने धुनेहुए धनुषको तोड़कर तू वृथा गर्वित हुआ है ॥ १२ ॥ हे रघुवंशमें उत्पन्न हुए! जो अब इस वैष्णव चापपर रोदा चढ़ासकैं तौ मैं तेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध करूंगा ॥ १३ ॥ और जो रोदा नहीं चढा तौ जितने क्षत्री तेरे साथ आये हैं मैं उन सबकोही मार डालूंगा; तू मुझे जानता नहीं कि मैं क्षत्रियोंका नाश करनेवालाहूं! परशुरामके इतना कहतेही सहसा पृथ्वी घोर कंपायमान हुई ॥ १४ ॥ सबको नेत्रोंकी दृष्टिको भयंकर अंध क

रने रोक दिया । दशरथकुमार वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीने अति क्रोधके साथ परशुरामको देखकर ॥ १५॥ उनके हाथसे वैष्णव धनुष छीन लिया; और झटपट उसपर रोदा चढ़ाय तरकससे बाण निकाल वीर्यवान् रामचंद्रजीने उस धनुषपर चढ़ाय ॥ १६ ॥ परशुरामजीसे बोले, "हे ब्रह्मन् ! मेरे वचन सुनो, यह रामबाण अव्यर्थ है; अर्थात् विफल नहीं है; इसकेलिये लक्ष्य [निशाना] कहांहै सो बताओ ॥ १७ ॥ तुमने जो तपकरकै जो परलोकमें जानेकी गति पाई है; या इस लोकमें तीर्थादिकोंमें जानेकी जो तुममें गति है; सो इनमेंसे कौनसे मार्गको रोकूं ? मैं इसलोककी या परलोककी जिस गतिको रोक दूंगा; तुम उस लोकमें किसी प्रकारसेभी नहीं जा सकोंगे॥ १८॥ सो मेरी आज्ञासे जो कर्तव्य हो वह शीघ्र कहो । " श्रीरामचंद्रजीके यह

धनुराच्छिद्यतद्धस्तादारोप्यगुणमंजसा ॥ तूणीराद्बाणमादायसंधायाकृष्यवीर्यवान् ॥ १६ ॥ उवाचभार्गवंरामंशृणुब्रह्मन्वचोमम ॥ लक्ष्यंदर्शयबाणस्यह्यमोघोममसायकः ॥ १७ ॥ लोकान्पादयुगंवापिवदशीघ्रंममाज्ञया ॥ अयंलोकःपरोवाथत्वयागंतुंनशक्यते ॥१८॥ एवंत्वांहिप्रकर्तव्यंवदशीघ्रंममाज्ञया ॥ एवंवदतिश्रीरामेभार्गवोविकृताननः ॥ १९ ॥ संस्मरन्पूर्ववृत्तांतमिदंवचनमब्रवीत् ॥ रामराममहाबाहोजानेत्वांपरमेश्वरम् ॥ २० ॥ पुराणपुरुषंविष्णुंजगत्सर्गलयोद्भवम् ॥ बाल्येऽहंतपसाविष्णुमाराधयितुमंजसा ॥ २१ ॥ चक्रतीर्थंशुभंगत्वातपसाविष्णुमन्वहम् ॥ अतोषयंमहात्मानंनारायणमनन्यधीः ॥ २२ ॥ ततःप्रसन्नोदेवेशःशंखचक्रगदाधरः ॥ उवाचमांरघुश्रेष्ठप्रसन्नमुखपंकजः ॥ २३ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ उत्तिष्ठतपसोब्रह्मन्फलितंतेतपोमहत् ॥ मच्चिदंशेनयुक्तस्त्वंजहिहैहयपुंगवम् ॥ २४ ॥

प्रभावभरे वचन सुनकर परशुरामजीका वदन मलीन होगया ॥ १९ ॥ और वह पहले वृत्तान्तको याद करकै श्रीरामचंद्रजीसे बोले, "हे राम ! हेराम ! हे महावीर ! मैं जानता हूं; तुम परमेश्वर हो ॥ २० ॥ तुमही पुराणपुरुष विष्णु; संसारकी सृष्टि, स्थिति हो और ध्वंसके एक मात्र कारण हो मैंने बालावस्थामें तप करकै विष्णुजीकी आराधना करनेकेलिये ॥ २१ ॥ मंगलकारी चक्रतीर्थमें जायकर प्रतिदिन एकाग्रमनसे तप करके महात्मा नारायणजीको संतुष्ट कियाथा ॥ २२ ॥ शंखचक्रगदाधारी, देवदेव विष्णुजी मुखपंकजको प्रसन्न करकै मुझसे बोले ॥ २३ ॥ श्रीनारायणजी बोले; "हे ब्रह्मन् ! तपकरना छोड़कर उठो, तुम्हारी बडी तपस्या सफल होगी; मेरे आश्रित हुई शक्तिके अंशसे संयुक्त होकर तुम अपने

पिताके मारनेवाले हैहयशेखर कार्तवीर्यका संहार करो, क्योंकि इसीअर्थ तुमने तप किया है. तिसके पश्चात् इक्कीस वार क्षत्रियों का वध करके ॥ २४ ॥ २५ ॥ समस्त भूमि कश्यपको दानकर तुम शान्तिको प्राप्त करना मैं। त्रेतायुगमें अविनाशी दशरथके यहां राम नाम धारण कर ॥ २६ ॥ परमशक्ति (सीता) के साथ पृथ्वीपर उत्पन्न होऊंगा। जब फिर तुम हमको देखोंगे । इस समय जो तेजपुंज मैंने तुम्हारे अधीन किया; उसकाल फिर वह समस्त तेज मेरे शरीरमें प्रवेशकर जायगा ॥ २७ ॥ तब तुम तप करते हुए पृथ्वीमें एक कल्पतक रहोगे;" यह कहकर भगवान् अन्तर्धान् होगये; तब उनकी आज्ञासे मैंने जैसा इन्होंने कहा वैसाही किया ॥ २८ ॥ हे राम! तुमही वह विष्णु हो, ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे तुमने पृथ्वीमें अवतार लिया है, आपने जो तेज मुझको दियाथा आज उसको फिर ग्रहण करलिया ॥ २९ ॥ हेप्रभो! आज मेरा जन्म सफल हुआ, आज मैंने तुमको पहिचाना । आप ब्रह्मादिकोंभी नहीं प्राप्त हो सक्के हैं; क्योंकि आप प्रकृतिसे परे हैं ॥ ३० ॥ अज्ञानसे उत्पन्न हुई छः अवस्था आपमें नहीं हैं इस कारण आप गमनादिविकाररहित हो ॥ ३१ ॥ जैसे जलमें फेन (झाग) अग्निमें धुआँ है वैसेही तुमही हो आधार जिसके और तुमही हो विषय जिसके ऐसी माया कैसे विचित्रकार्य करतीहै! ॥ ३२ ॥ जब तक तुम्हारीमायासे मनुष्यादि प्राणी मोहित रहतेहैं; तब तक तुमको नहीं जान सक्के। अविचारित अर्थात् स्वाभाविक विद्या और अविद्याकृत दोप्रकारकी सिद्धि हैं; जिसमें अविद्याकृत देहादिसमूहमें

कार्तवीर्यंपितृहणंयदर्थंतपसःश्रमः ॥ ततस्त्रिःसप्तकृत्वस्त्वंहत्वाक्षत्रियमंडलम् ॥ २५ ॥ कृत्स्नांभूमिंकश्यपायदत्त्वाशांतिमुपावह ॥
त्रेतामुखेदाशरथिर्भूत्वारामोऽहमव्ययः ॥ २६ ॥ उत्पत्स्येपरयाशक्त्यातदाद्रक्ष्यसिमांततः ॥ मत्तेजःपुनरादास्येत्वयिदत्तं
मयापुरा ॥ २७ ॥ तदातपश्चरँल्लोकेतिष्ठत्वंब्रह्मणोदिनम् ॥ इत्युक्त्वांतर्दधेदेवस्तथासर्वंकृतंमया ॥ २८ ॥ सएवविष्णुस्त्वंरा
मजातोऽसिब्रह्मणार्थितः ॥ मयिस्थितंतुत्वत्तेजस्त्वयैवपुनराहृतम् ॥ २९ ॥ अद्यमेसफलंजन्मप्रतीतोऽसिममप्रभो ॥ ब्रह्मादिभिरलभ्य
स्त्वंप्रकृतेःपारगोमतः ॥ ३० ॥ त्वयिजन्मादिषड्भावानसंत्यज्ञानसंभवाः ॥ निर्विकारोऽसिपूर्णस्त्वंगमनादिविवर्जितः ॥ ३१ ॥ यथा
जलेफेनलजालंधूमोवह्नौतथात्वयि ॥ त्वदाधारात्वद्विषयामायाकार्यंसृजत्यहो ॥ ३२ ॥ यावन्मायावृतालोकास्तावत्त्वांनविजानते ॥
अविचारितसिद्धैषाऽविद्याविद्याविरोधिनी ॥ ३३ ॥

अविद्याकृतदेहादिसंघातेप्रतिबिंबिता ॥ चिच्छक्तिर्जीवलोकेऽस्मिञ्जीवइत्यभिधीयते ॥ ३४ ॥ यावद्देहमनःप्राणबुद्ध्यादिष्वभिमानवान् ॥ तावत्कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखदुःखादिभाग्भवेत् ॥ ३५ ॥ आत्मनःसंसृतिर्नास्तिबुद्धेर्ज्ञानंनजात्विति ॥ अविवेकाद्द्वयंयुंक्त्वासंसारीतिप्रवर्तते ॥ ३६ ॥ जडस्यचित्समायोगाच्चित्त्वंभूयाच्चितेस्तथा ॥ जडसंगाज्जडत्वंहिजलाग्न्योर्मेलनंयथा ॥ ३७ ॥ यावत्त्वत्पादभक्तानांसंगसौख्यंनविंदाति ॥ तावत्संसारदुःखौघान्ननिवर्तेन्नरःसदा ॥ ३८ ॥ सत्संगलब्धयाभक्त्यायदात्वांसमुपासते ॥ तदामायाशनैर्यातितानवंप्रतिपद्यते ॥ ३९ ॥ ततस्त्वज्ज्ञानसंपन्नःसद्गुरुस्तेनलभ्यते ॥ वाक्यज्ञानंगुरोर्लब्ध्वात्वत्प्रसादाद्विमुच्यते ॥ ४० ॥ तस्मात्त्वद्भक्तिहीनानांकल्पकोटिशतैरपि ॥ नमुक्तिशंकाविज्ञानशंकानैवसुखंतथा॥४१॥अतस्त्वत्पादयुगलेभक्तिर्मेजन्मजन्मनि ॥ स्यात्त्वद्भक्तिमतांसंगोऽविद्यायाभ्यांविनश्यति॥४२॥लोकेत्वद्भक्तिनिरतास्त्वद्धर्मामृतवर्षिणः ॥ पुनंतिलोकमखिलंकिंपुनःस्वकुलोद्भवान् ॥४३॥

प्रतिबिंम्बतारूपसे रहनेवाली चित्शक्ति जीवलोकमें रहनेसे जीवीकही जाती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ जबतक देह, मन, प्राण, और बुद्धिप्रभृतिमें अभिमान अर्थात् अहंज्ञान रहता है; तबतक कर्तृत्व, भोक्तृत्वरूप अनन्त सुखदुःखादिका भागीहोना पड़ता है ॥ ३५ ॥ तबतक जीव व आत्माके स्मरण और बुद्धि ज्ञानादिसे भ्रष्टहोकर अविद्याके संयोगसे अर्थात् मैं कर्ता, मैं भोगताहूं ऐसा समझके संसारीहोजाता है ॥ ३६ ॥ मेघमें जिसप्रकार जल व अग्निके परस्पर मिलनेसे परस्परमें स्वरूपता प्राप्तहो जाती है; वैसेही ज्ञानके साथ जड़का संयोग होनेसे जड़कोभी ज्ञान उत्पन्नहो जाता है ॥ ३७ ॥ मनुष्य जबतक उन साधुओंका कि जिनको तुम्हारेही चरणोंका आश्रय है; संगसुख ग्रहण न करे;–जितने दिनतक वह संसारसागरकी दुःखरूप जलराशिसे छुटकारा नहीं पाता ॥ ३८ ॥ साधुसंग करनेंसे प्राप्तहुई भक्तिकरकै जब जीव तुम्हारी उपासना करता है तबही माया उसको छोड़कर धीरे २ चली जातीहै; इसप्रकार जीव तुमको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त यह जीव भगवज्ज्ञानसंपन्न गुरुको प्राप्तकरता है; और मुझसे उपदेश पायकर तुम्हारे प्रसाद से मुक्तहो सक्ता है ॥ ४० ॥ और तुम्हारे प्रति जिनकी भक्ति नहीं है वह सौकरोड़ कल्पमेंभी मुक्ति और ब्रह्मज्ञान नहीं प्राप्तकरसकते; इसकारण परम सुखभी उनको नहीं मिलता ॥ ४१ ॥ अतएव तुम्हारे चरणोंमें जन्म २ मेरी अकपट भक्ति रहै, क्योंकि तुम्हारे भक्तोंका संगकरनेंसे और उस संगद्वारा प्राप्तहुई भक्तिसे अविद्यारूपी माया नाशको प्राप्तहोजाती है ॥ ४२ ॥ इसजगत्में तुम्हारे प्रति

भक्तिमान् महात्मालोग तुम्हारा धर्म अर्थात् तत्वज्ञानरूप अमृत वर्षायकर समस्त लोकको पवित्र करते हैं;– फिर वे अपने कुटुम्बियोंको पवित्रकरेंगे तौ इसमें आश्चर्यही क्या है ? ॥ ४३ ॥ हे जगन्नाथ ! तुमको नमस्कार है. हे भक्तिभावन ! तुमको नमस्कार है । हेकारुणिक ! अनन्त रामचद्र ! तुमको वारंवार नमस्कार करताहूं ॥ ४४ ॥ स्वर्गादि लोकोंके जीतनेकी इच्छासे मैनें जिन पुण्यकर्मोंका अनुष्ठानकिया है, हे देव ! हेरामचंद्र ! तुम्हारे बाणसे उन समस्त कर्मोंका नाशहो जाय, क्योंकि जबकर्म जाल जांयगे तो मेरी मुक्ति हो जायगी । तुमको नमस्कार है । ” जबपरशुरामजीनें इतनी स्तुति की तब करुणामय भगवान् श्रीरामचंद्रजी प्रसन्नहोकरबोले । “ हे ब्रह्मन् ! मैं तुमपर प्रसन्नहुआहूं; और जो कुछ तुम्हारे मनमें वर्तरही है;वह तुम्हारी सर्व मनकामना पूर्ण होगी इसमें कुछ भी संदेह मतकरो ” ।यह सुनकर परशुरामजी प्रीतियुक्त मनसे रामचंद्रजीसे बोले–“ हेराम ! ॥४७॥हे

नमोऽस्तुजगतांनाथनमस्तेभक्तिभावन ॥ नमःकारुणिकानंतरामचंद्रनमोऽस्तुते ॥ ४४ ॥ देवयद्यत्कृतंपुण्यमयालोकजिगीषया ॥ तत्सर्वंतवबाणायभूयाद्रामनमोस्तुते ॥ ४५ ॥ ततःप्रसन्नोभगवाञ्छ्रीरामःकरुणामयः ॥ प्रसन्नोऽस्मितवब्रह्मन्यत्तेमनासिवर्तते ॥ ४६ ॥ दास्येतदखिलंकामंमाकुरुष्वात्रसंशयम् ॥ ततःप्रीतेनमनसाभार्गवोराममब्रवीत् ॥ ४७॥ यदिमेऽनुग्रहोरामतवास्तिमधुसूदन ॥ त्वद्भक्तसंगस्त्वत्पादेदृढाभक्तिःसदास्तुते॥४८॥स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तुभक्तिहीनोऽपिसर्वदा ॥ त्वद्भक्तिस्तस्यविज्ञानंभूयादंतेस्मृतिस्तव॥४९॥ तथेतिराघवेणोक्तःपरिक्रम्यप्रणम्यतम् ॥ पूजितस्तदनुज्ञातोमहेंद्राचलमन्वगात् ॥ ५० ॥ राजादशरथोहृष्टोरामंमृतमिवागतम् ॥ आलिंग्यालिंग्यहर्षेणनेत्राभ्यांजलमुत्सृजत् ॥ ५१ ॥ ततःप्रीतेनमनसास्वस्थचित्तःपुरंययौ ॥ रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरतादेवसंमिताः ॥ ५२ ॥

मधुसूदन ! यदि मेरे पर तुम्हारा अनुग्रह हुआ है तौ यह दीजिये कि, तुम्हारे चरणारविन्दोंमे मेरी भक्तिदृढ बनीरहै; और तुम्हारे भक्तोंका संगमुझको सदा प्राप्त हुआकरै ॥ ४८ ॥ और भक्तिहीन मनुष्यभीमेरे किये इस स्तोत्रका पाठकरे तौ वह भी तुम्हारी भक्तिको पाय तुम्हारे स्वरूपको जान जाय अर्थात् उसको विज्ञान प्राप्तहो जाय; और अन्तसमय वह आपका नामस्मरणकरसके ” ॥ ४९ ॥ रामचंद्रजीनें ‘ तथास्तु ’ (ऐसाहीहो) कहा और सम्मतिदी, तब परशुराम प्रणामकर रामचंद्रजीकी प्रदक्षिणा दे; उनकरकै पूजितहो और उनकी आज्ञापाय महेंद्रपर्वतपरचलेगये ॥ ५० ॥ राजादशरथजीने मानों श्रीरामचंद्रजीको मृत्युके मुखसे फिर प्राप्त करलिया । उनके आनंदकी सीमा न रही; उनके नेत्रोंसे आनंदके आंसुओंकी धार लगातार वहनें लगी; वे वारंवार रामचंद्रजीको हृदयसे लगाने लगे ॥ ५१ ॥ और सावधानहो प्रसन्न मनसे अयोध्या नगरीको गमन करतेहुए देवता

ओंकी समान राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न ॥ ५२ ॥ अपनी २ स्त्रियोंके साथ अपने २ गृहमें परमसुखसे समय विताने लगे । श्रीरामचंद्रजी माता पिताका हर्ष बढ़ातेहुए जानकीजीके साथ ॥ ५३ ॥ इसप्रकारसे अत्यानंदके साथ समय वितानेलगे; जैसे, वैकुंठधाममें विष्णुजी लक्ष्मीजीके साथ आनंद पूर्वक समय विताते हैं । इसप्रकार कुछदिन बीतनेपर युधाजित नामक कैकेयीके भ्राता भरतजीके मामा ॥ ५४ ॥ प्रीतिसहित अपनी राजधानीमें भानजे भरतको ले जानेके लिये आये । शत्रुओंका दमन करनेवाले, स्नेह हृदययुक्त राजा दशरथजीनें यथाविधानसे युधाजितकी पूजाकर भरत और शत्रुघ्नको उनके साथ भेजदिया ॥ ५५ ॥ शोभायमान कौशिल्याजी सीता-रामकी शोभासे शोभित होकर, इन्द्र और शची (इन्द्राणी) युक्त देवमाता अदितिकी समान शोभायमान होनें लगीं ॥ ५६ ॥ जिनके अतुलगुणग्राम अर्थात् ब्रह्मादिदेवताओंके मध्य प्रसिद्ध हैं; समस्त लोकोंमें जिनकी कीर्तिका गान होता है;जो समस्त मनुष्यवृन्दके आनंदोंका सन्दोहस्वरूप हैं. जो नित्यपराशक्ति सम्पन्न अर्थात् श्रीशोभावाले हैं; विकार रहित हैं; जिनके ऐश्वर्यका अन्त नहीं है; आचरण शक्तिरूपी माया जिनसे पराजितहुई है; वह सबके ईश्वर देवदेव नारायण रामचंद्रजी भगवती सीताके साथ मायामय कार्यको करतेहुए साधारण मनुष्यकी समान अयोध्याधाममें शोभायमान होनेलगे ॥ ५७ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकांडे भाषानुवादे पंडितबलदेवप्रसादमिश्रकृते परशुरामस्य पराजयविवरणेरामादीनामयोध्याधिवासो नाम सप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥

स्वांस्वांभार्यामुपादायरेमिरेस्वस्वमंदिरे ॥ मातापितृभ्यांसंहृष्टोरामःसीतासमन्वितः ॥५३॥ रेमेवैकुंठभवनेश्रियासहयथाहरिः ॥ युधाजिन्नामकैकेयीभ्राताभरतमातुलः ॥ ५४ ॥ भरतंनेतुमागच्छत्स्वराज्यंप्रीतिसंयुतः ॥ प्रेषयामासभरतंराजास्नेहसमन्वितः ॥ शत्रुघ्नंचापि संपूज्ययुधाजितमरिंदमः ॥ ५५ ॥ कौसल्याशुशुभेदेवीरामेणसहसीतया ॥ देवमातेवपौलोम्याशच्याशक्रेणशोभना ॥ ५६ ॥ साकेते लोकनाथप्रथितगुणगणोलोकसंगीतकीर्तिःश्रीरामःसीतयास्तेऽखिलजननिकरानंदसंदोहमूर्तिः ॥ नित्यश्रीर्निर्विकारोनिरवधिविभवोनित्यमायानिरासोमायाकार्यानुसारीमनुजइवसदाभातिदेवोऽखिलेशः ॥ ५७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेबालकांडेपरशुरामपराभववर्णनंनामसप्तमःसर्गः॥७॥अध्यात्मबालकांडेचसर्गाःसप्तैवशंभुना ॥ दिष्टाःषष्ट्युत्तरत्रिंशच्छ्लोकामोक्षप्रदानृणाम् ॥ ३६० ॥

॥ समाप्तश्चेदम्बालकाण्डम् ॥ शुभम् ॥

इदमध्यात्मरामायणबालकाण्डं मुम्बय्यां श्रीकृष्ण
दासात्मजेन खेमराजेन स्वकीये ‘श्रीवेङ्कटेश्वर’
यन्त्रालयेऽङ्कित्वा प्रकाशितम्. संवत् १९५२,
शके १८१७, सन् १८९५.

इति श्रीमदध्यात्मरामायणेभाषाटीकासमेते बालकांडः समाप्तः।

॥ अथ श्रीमद्ध्यात्मरामायणेभाषाटीकासमेतेऽयोध्याकाण्डप्रारंभः ॥

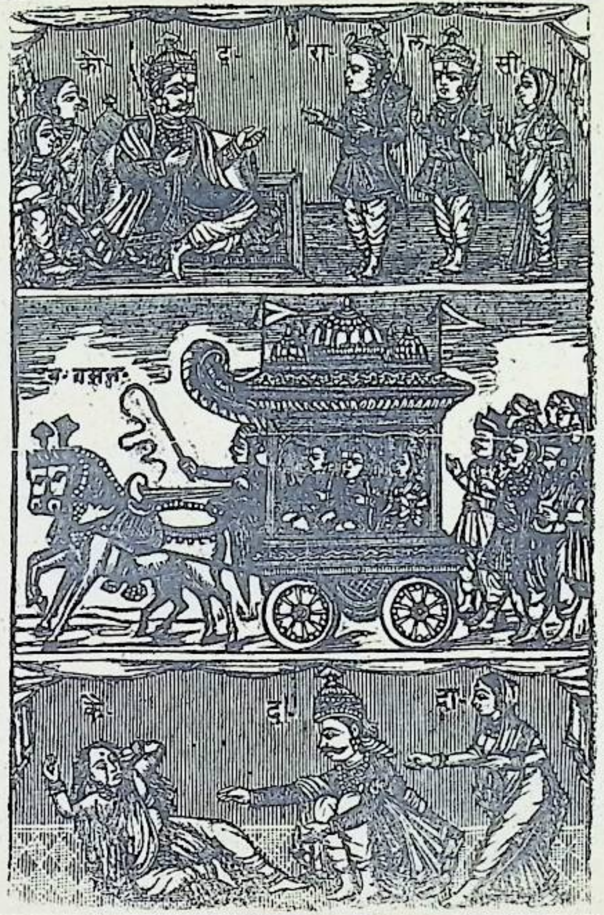
कौ.
द.
रा.
ल.
सी.
सु. मन्त्र.
कै.
द.
दा.

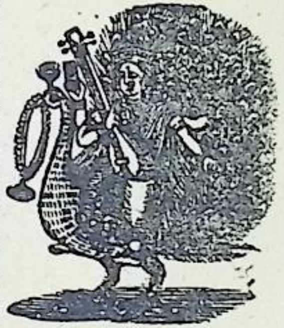

श्रीगणेशाय नमः।

दोहा—गुरु गणेश अरु सरस्वति, सुमिरि होय अहलाद ॥ अध्यातम भाषा करत, जन बलदेवप्रसाद ॥ १ ॥
पार्वती शंकर जपत, लहत सदा विश्राम ॥ आठयाम यहि नामको, रहत हृदय बिचधाम ॥ २ ॥
आदि अनादि जुगाइ है, ताहि जपै सबकोय ॥ रामचरित अद्भुत कथा, सुने पुण्य फल होय ॥ ३ ॥
आदिपुरुष परमात्मा, निरंकार है सोय ॥ भक्तहेत सरगुण भयो, राम कहत सबकोय ॥ ४ ॥
मातभवानी शारदा, पुनि प्रणवतहौं तोहिं ॥ उक्तयुक्त अक्षर सरस, देहि कृपाकर मोहिं ॥ ५ ॥

श्री महादेवजी बोले कि हेपार्वती! एकसमय अति सुखसहित अपने रनवासमें श्रीरामचंद्रजी सर्वप्रकारके भूषण पहिने रत्नसिंहासनपर बैठे थे ॥ १ ॥

श्रीमहादेवउवाच ॥ एकदासुखमासीनंरामंस्वांतःपुराजिरे ॥ सर्वाभरणसंपन्नंरत्नसिंहासनेस्थितम् ॥ १ ॥ नीलोत्पलदलश्यामंकौस्तु
भामुक्तकंधरम् ॥ सीतयारत्नदंडेनचामरेणाथवीजितम् ॥ २ ॥ विनोदयंतंतांबूलचर्वणादिभिरादरात्॥ नारदोऽवतरद्द्रष्टुमंबराद्यत्रराघवः
॥ ३ ॥शुद्धस्फटिकसंकाशःशरच्चंद्रइवामलः ॥ अतर्कितमुपायातोनारदोदिव्यदर्शनः ॥४ ॥ तंदृष्ट्वासहसोत्थायरामःप्रीत्याकृतांजलिः।
ननामशिरसाभूमौसीतयासहभक्तिमान् ॥ ५ ॥ उवाचनारदंरामःप्रीत्यापरमयायुतः ॥ संसारिणांमुनिश्रेष्ठदुर्लभंतवदर्शनम् ॥ अस्माकं
विषयासक्तचेतसांनितरांमुने ॥ ६ ॥

नीले कमलदलके समान श्यामरंग वाले, गलेमें कौस्तुभमणि पहरेहुए। जिसमें रत्नजडित डण्डीलगी है ऐसे चँवरको जानकीजी श्रीरामचंद्रजीके
ऊपर डुलारहीं हैं ॥ २ ॥ इसप्रकार श्रीरामचंद्रजी ताम्बूल चर्वणादिकार्य करतेहुये राजभोग्य द्वारा सुखभोग कररहे हैं,-कि—इसीसमय परम भागवत
देवर्षि नारदजी उन श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करनेके लिये आकाशमार्गसे उस स्थानमें उतरते हुए ॥ ३ ॥ शरदऋतुके विमल अर्थात् स्वच्छ चंद्रमा
के समान निर्मलकांति वाले; और शुद्ध स्फटिक मणिके समान उन दिव्यदर्शन मुनिको अचानक आयाहुआ ॥ ४ ॥ देख श्रीरामचंद्रजी अतिशीघ्र
अपने आसनसे हाथ जोड़कर उठखड़े हुए। और सीताजीके सहित प्रीति व भक्तिके साथ पृथ्वीमें शिरनवाय प्रणामकर ॥ ५ ॥ नारदजीसे परम

प्रसन्नताके साथ श्रीरामचंद्रजीने कहा "हे मुनियोंमें श्रेष्ठ ! संसारी लोगोंको तुम्हारे दर्शन दुर्लभ हैं ॥ ६ ॥ और हे मुने ! विशेषकरके विषय अर्थात् माया मोहमें जिनका चित्त आसक्त होरहा है; ऐसे हमलोगों को तौ आपका दर्शन होना निरन्तरही असम्भव है; क्योंकि अवकाश न होने से धर्म की चिंता हमलोगोंके मनोंसे सम्पूर्णतः दूरहोगई है । तौभी पहले जन्मके कियेहुए महापुण्यके फलसे आपका दर्शन पाया ॥ ७ ॥ हे मुने ! संसारी मनुष्यभी पुण्यसमूहके फलसे साधुओंके संगको प्राप्त होतेहैं; हेमुनीश्वर ! आज मैं आपके दर्शनोंसे कृतार्थ होगया ॥ ८ ॥ इससमय आपका कौनसा कार्य करनाहोगा; सो आज्ञा कीजिये;मैं उसको सिद्ध करताहूं । " परमज्ञानी नारदजी; भक्तवत्सल श्रीरामचंद्रजीका यह मनुष्य व्यवहार देखकर बोले ॥ ९ ॥ हेराम! मनुष्योंके समान वचन कहकर हमें काहेको मोहित करते हो ?आपके प्रसाद से हम सब कुछ जानते हैं । हे प्रभो ! आपने जो

अवाप्तंमेपूर्वजन्मकृतपुण्यमहोदयैः ॥ संसारिणाऽपिहिमुनेलभ्यतेसत्समागमः ॥ ७ ॥ अतस्त्वद्दर्शनादेवकृतार्थोऽस्मिमुनीश्वर ॥ किंकार्यंतेमयाकार्यंब्रूहितत्करवाणिभोः ॥ ८ ॥ अथतंनारदोऽप्याहराघवंभक्तवत्सलम् ॥ किंमोहयसिमांरामवाक्यैर्लोकानुसारिभिः ॥ ९ ॥ संसार्यहमितिप्रोक्तंसत्यमेतत्त्वयाविभो ॥ जगतामादिभूतायासामायागृहिणीतव ॥ १० ॥ त्वत्सान्निकर्षाज्जायंतेतस्यांब्रह्मादयःप्रजाः ॥ त्वदाश्रयासदाभातिमायायात्रिगुणात्मिका ॥११॥ सूतेऽजस्रंशुक्लकृष्णलोहिताःसर्वदाप्रजाः ॥ लोकत्रयमहागेहेगृहस्थस्त्वमुदाहृतः ॥ ॥ १२ ॥ त्वंविष्णुर्जानकीलक्ष्मीःशिवस्त्वंजानकीशिवा ॥ ब्रह्मात्वंजानकीवाणीसूर्यस्त्वंजानकीप्रभा ॥ १३॥ भवाञ्छशांकःसीतातुरोहिणीशुभलक्षणा ॥ शक्रस्त्वमेवपौलोमीसीतास्वाहाऽनलोभवान् ॥ १४ ॥

अपने को संसारी बताया यह कहनाभी आपका सत्य है ॥ १० ॥ कारण कि इस त्रिलोकरूप बड़े भारी घरमें केवल आपही एक गृहस्थ हैं; और समस्त संसार की आदि कारण यह माया आपकी घरवाली है । इसमहामायारूप प्रकृतिके साथ आपका संगहोने से ब्रह्मादिपुत्र पैदाहुए हैं ॥ ११ ॥ सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुणवाली माया जो आपके आधीन है; उसके ही गुणानुसार विष्णुजी सतोगुण, ब्रह्माजी रजोगुण, और महादेवजी तमोगुणको प्राप्तहुए हैं ॥ १२ ॥ सब लोक तुम्हारा गृहहैं; आप प्रधान गृहस्थ हैं । आप विशुद्ध पुरुष, सीतादेवी परम प्रकृति, प्रकृति और पुरुषके सिवाय संसार में कुछभी नहीं है आप विष्णु, सीता लक्ष्मी है; आप शिव, सीता साक्षात् भगवती है ॥ १३ ॥ आप ब्रह्माहैं, जानकीजी सरस्वती हैं; आप

यमस्त्वंकालरूपश्चसीतासंयमिनीप्रभो ॥ निर्ऋतिस्त्वंजगन्नाथतामसीजानकीशुभा ॥ १५ ॥ रामत्वमेववरुणोभार्गवीजानकीशुभा ॥
वायुस्त्वंरामसीतातुसदागतिरितीरिता ॥ १६ ॥ कुबेरस्त्वंरामसीतासर्वसंपत्प्रकीर्तिता ॥ रुद्राणीजानकीप्रोक्तारुद्रस्त्वंलोकनाशकृत् ॥
॥ १७ ॥ लोकेस्त्रीवाचकंयावत्तत्सर्वंजानकीशुभा ॥ पुन्नामवाचकंयावत्तत्सर्वंत्वंहिराघव ॥ १८ ॥ तस्माँल्लोकत्रयेदेवयुवाभ्यांनास्ति
किंचन ॥ १९ ॥ त्वदाभासोदिताज्ञानमव्याकृतमितीर्यते ॥ तस्मान्महांस्ततःसूत्रंलिंगंसर्वात्मकंततः ॥ २० ॥ अहंकारश्चबुद्धिश्चपं
चप्राणेंद्रियाणिच ॥ लिंगमित्युच्यतेप्राज्ञैर्जन्ममृत्युसुखादिमत् ॥ २१ ॥ सएवजीवसंज्ञश्चलोकेभातिजगन्मयः ॥ अवाच्यानाद्यविद्यै
वकारणोपाधिरुच्यते ॥ २२ ॥

जगत् में प्रकाश करनेवाले सूर्य हैं, सीताजी प्रभा हैं; आप चंद्रमा हैं; सीताजी सर्व शुभलक्षणयुक्त रोहिणी हैं ॥ १४ ॥ आप इन्द्र हैं; सीता शचीहैं; आप अग्निहैं; सीताजी स्वाहा हैं; । हे जगदीश्वर ! आप समस्त प्राणियोंके कालरूपी यमहैं; सीता संयमनी हैं ॥ १५ ॥ हे जगन्नाथ ! आप निर्ऋति हैं; सीताजी तामसी हैं, आप वरुण, सीताजी भार्गवी हैं ॥ १६ ॥ आप पवनहैं, जानकीजी सदा गति हैं, हेराम ! आप कुबेर हैं,तौ सीताजी सर्व सम्पत्ति रूपहैं ॥ १७ ॥ आप साक्षात् सर्व संहारक रुद्रदेव हैं, सीताजी रुद्राणीहैं हेनाथ ! अधिक क्या कहूं; संसार में स्त्रीवाचक जो कुछभी हैं; वह समस्त ही भगवती जानकीजी हैं ॥ १८ ॥ और पुरुष वाचक जो कुछ दिखलाई देता है; वह सब आपही हैं। हे देवदेव! इसत्रिलोकी में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है; जो आप दोनों जनोंसे अलगहो ॥ १९ ॥ हे परमात्मन् ! आपके साथ सम्बन्ध होने से जगत्की उत्पन्न करनेवाली माया "अव्याकृत (अज्ञान)" कही जातीहै; इसमायासे बुद्धितत्त्व; बुद्धितत्त्व से अहंकार, अहंकार से सर्व मय लिंगशरीर[+] उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥ पण्डितलोग इस अहंकार बुद्धि पञ्च प्राण, पंचतन्मात्र और पांच ज्ञानेन्द्रियोंकोही जन्म मृत्यु सुख दुःखादि युक्त "लिंगदेह" कहते हैं ॥ २१ ॥ इस लिंगशरीरमें मिलाहुआ आत्मा ही जीवरूप है । यही हिरण्यगर्भरूपसे प्रकाशितहोरहा है । यही अनिर्वचनीय (जो कहनेमें न आसके) अनादि, अविद्या, संसार का कारणरूप,

---

[+] पंचतन्मात्र, और सब इंद्रियें अहंकार से उत्पन्नहैं;लिंगशरीर सम्बन्धीय दश पदार्थ अहंकार से उत्पन्न होनेके कारण, लिंगशरीरको अहंकार से उत्पन्न कहागया ॥

और गूढ़ब्रह्मकी उपाधिहै॥२२॥स्थूलदेह, सूक्ष्मदेह—लिंगदेह, और कारण इन तीन उपाधियों से संयुक्त होकर आप जीवसंज्ञाधारण करते हैं। जब
आप इन उपाधियोंसे अलग होजाते हैं; तब शुद्ध परमेश्वर कहलाते हैं ॥२३॥ हे सर्वसाक्षिन् ! इससमस्त जगत् में जागृत्, स्वप्न, और सुषुप्त अवस्थामें
समस्त प्राणी जो कार्य करते हैं; उन सबको आप जानते हैं;आप इन सबकामोंको बड़ेभारी साक्षी और फल देनेवाले हैं;आपसेही यह जगत् उत्पन्न हुआ
है आपमेंही स्थित होरहा है; और अंत समय आपमेंही लीन हो जायगा,—इसलिये आपही सबके मूलकारण हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ भ्रमके वश होकर
रस्सीको सांप समझनेके समान आत्माको जीव समझकर देहही संसारको प्राप्त होता है; तब तत्कालही समस्त भय दूर हो जाते हैं ॥ २६ ॥ आप

स्थूलंसूक्ष्मंकारणाख्यमुपाधित्रितयंचितेः ॥ एतैर्विशिष्टोजीवःस्याद्वियुक्तःपरमेश्वरः ॥ २३ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यासंसृतिर्याप्रवर्तते
॥ तस्याविलक्षणःसाक्षीचिन्मात्रस्त्वंरघूत्तम ॥ २४ ॥ त्वत्तएवजगज्जातंत्वयिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ त्वय्येवलीयतेकृत्स्नंतस्मात्त्वंसर्वकारणम्
॥ २५ ॥ रज्जावहिमिवात्मानंजीवंज्ञात्वाभयंभवेत् ॥ परात्माऽहमितिज्ञात्वाभयदुःखैर्विमुच्यते ॥ २६ ॥ चिन्मात्रज्योतिषासर्वाः
सर्वदेहेषुबुद्धयः ॥ त्वयायस्मात्प्रकाश्यंतेसर्वस्यात्मातततोभवान् ॥ २७ ॥ अज्ञानान्न्यस्यतेसर्वंत्वयिरज्जौभुजंगवत् ॥ त्वज्ज्ञानाल्लीयतेसर्वं
तस्माज्ज्ञानंसदाभ्यसेत् ॥ २८ ॥ त्वत्पादभक्तियुक्तानांविज्ञानंभवतिक्रमात् ॥ तस्मात्त्वद्भक्तियुक्तायेमुक्तिभाजस्तएवहि ॥२९ ॥
अहंत्वद्भक्तभक्तानांतद्भक्तानांचकिंकरः ॥ अतोमामनुगृह्णीष्वमोहयस्वनमांप्रभो ॥ ३० ॥

ही चिन्मात्र ज्योतिःस्वरूप हैं; सर्व देहमें वर्तमान; अंतःकरणादि बुद्धि समूहके चलानेवाले आपही हैं; इस कारण आपही अंतर्यामी हैं
॥ २७ ॥ अज्ञानके वश होकर लोग जिस प्रकार रस्सीमें साँपका भ्रम करते हैं; वैसेही मूढ लोग आपके स्वरूपको न जानकर, आपमें इस समस्त
संसारका आरोप करते हैं। परन्तु आपके स्वरूपका ज्ञान होतेही उनका वह भ्रम दूर होजाता है; इस कारण सदा उस ज्ञानका अभ्यास करना उचित
है ॥ २८ ॥ हे जगदीश्वर ! उस ज्ञानके प्राप्त करनेका और कोई उपाय नहीं है; केवल आपके चरणकमलमें एकान्त भक्ति होनेसे यह
ज्ञान मिल सकता है; और ज्ञान मिलजानेसे मुक्ति हो जाती है ॥ २९ ॥ मैं आपके भक्तानुभक्त और उनकेभी भक्तोंका दास हूं; इस कारण मुझ

पर अनुग्रह कीजिये; अपनी मायासे वारंवार मुझको मोहित न कीजिये ॥ ३० ॥ हे प्रभो! आपके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजी मेरे पिता है; सो मैं आपका पोता हुआ; इस समय मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३१ ॥इस प्रकार स्तुति करते २ नारदजीको दोनों नेत्रोंमें आनंदके आंसूभर आये ।श्रीरामचंद्रजीको वारंवार प्रणाम करकै नारदजी फिर बोले हे रघुनाथ! पिता ब्रह्माजीनें हमको आपके पास भेजा है ॥ ३२ ॥ रावणका वध करनेंके लिये आपने पृथ्वीपर अवतार लिया है, इस समय राजा दशरथजी राज्यकी रक्षाकरनेंके अर्थ आपको युवराजपदवी देना चाहते हैं ॥ ३३ ॥ हे प्रभो! जो आप राज्यका पालन करनेमें आसक्त हो जाँयगे तौ रावणनहीं मारा जायगा, भूभारके उतारनेंकी प्रतिज्ञा करकै आपने पृथ्वीपर

त्वन्नाभिकमलोत्पन्नोब्रह्मामेजनकःप्रभो ॥ अतस्तवाहंपौत्रोऽस्मिभक्तंमांपाहिराघव ॥ ३१ ॥ इत्युक्त्वाबहुशोनत्वास्वानंदाश्रुपरिप्लुतः॥ उवाचवचनंरामब्रह्मणानोदितोऽस्म्यहम् ॥ ॥ ३२ ॥ रावणस्यवधार्थायजातोऽसिरघुसत्तम ॥ इदानींराज्यरक्षार्थंपितात्वामभिषेक्ष्यति ॥ ३३ ॥ यदिराज्याभिसंसक्तोरावणंनहनिष्यसि ॥ प्रतिज्ञातेकृताराभभूभारहरणायवै ॥३४॥ तत्सत्यंकुरुराजेंद्रसत्यसंधस्त्वमेवहि ॥ श्रुत्वैतद्गदितंरामोनारदंप्राहसस्मितम् ॥ ३५ ॥ शृणुनारदमेकिंचिद्विद्यतेऽविदितंक्वचित् ॥ प्रतिज्ञातंचयत्पूर्वंकरिष्येतन्नसंशयः॥३६॥ किंतुकालानुरोधेनतत्तत्प्रारब्धसंक्षयात् ॥ हरिष्येसर्वभूभारंक्रमेणासुरमंडलम् ॥३७॥ रावणस्यविनाशार्थंश्वोगंतादंडकावनम् ॥ चतुर्दशसमास्तत्रह्युषित्वामुनिवेषधृक् ॥ ३८ ॥ सीतामिषेणतंदुष्टंसकुलंनाशयाम्यहम् ॥ एवंरामेप्रतिज्ञातेनारदःप्रमुमोदह ॥ ३९ ॥

अवतार लिया है; आप सत्यप्रतिज्ञा करनेवाले हैं; इस कारण उस सत्यको पालन कीजिये; नारदजीके ऐसे वचन सुन श्रीरामचंद्रजीनें हँसकर कहा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ सुनो नारद! मैं सब जानता हूं किसी देशमें किसीकालमें ऐसी कौन बात हुई है जो हमैं ज्ञात न हुई हो ? हमने जो कुछ प्रतिज्ञाकी है; उसको अवश्यही पालन किया जायगा; इसमें कुछभी संशय नहीं ॥ ३६ ॥ जब भोगते २ राक्षसोंका सौभाग्य क्षय होजायगा, तब मैं असुरमंडलरूप, पृथ्वीका भार उतारूंगा; इसके लिये समयकी वाट देख रहाहूं ॥ ३७ ॥ रावणका वध करनेके लिये मैं कलको मुनिवेष धारण करकै दंडक वनमें जाय वहाँपर चौदह वर्षतक वास करकै ॥३८॥ सीताका उद्धार करनेके मिससे दुष्टराक्षसका वंशके सहित नाश कर डालूंगा

जब इस प्रकार श्रीरामचंद्रजीनें अपनी पहली प्रतिज्ञाके रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा की तौ देवर्षि नारदजी आनंदित मनसे ॥ ३९ ॥ उन भगवान जीकी तीनवार परिक्रमा करते हुए फिर दंडवत् प्रणाम कर श्रीरामचंद्रजी की आज्ञानुसार आकाशमार्गसे स्वर्गको चलेगये ॥४०॥ जो पुरुष नित्यभक्तिके सहित श्रीराम और नारदजीका यह संवाद पढ़े, सुनै, या याद करैगा, वह संसारसे संबन्ध छोड़ धीरे२देवताओंकोभी दुर्लभ पदवीको प्राप्त करलेगा॥४१॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकांडे भाषाटीकायां प्रथमःसर्गः ॥१॥ वशिष्ठजीके साथ दशरथ और कैकयीके साथ मन्थराकी मंत्रणा॥ महादेवजी बोले—कि एक समय राजा दशरथजीने कुलगुरु वशिष्ठजीको एकान्तके समय अपने विश्राम भवनमें बुलाकर कहा॥१॥

प्रदक्षिणत्रयंकृत्वादंडवत्प्रणिपत्यतम् ॥ अनुज्ञातश्चरामेणययौदेवगतिंमुनिः ॥ ४० ॥ संवादंपठतिशृणोतिसंस्मरेद्वायोनित्यंमुनिवररामयोःसभक्त्या ॥ संप्राप्नोत्यमरसुदुर्लभंविमोक्षंकैवल्यंविरतिपुरःसरंक्रमेण ॥ ४१ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेअयोध्याकांडेप्रथमःसर्गः ॥ १ ॥ ॥श्रीमहादेवउवाच ॥ अथराजादशरथःकदाचिद्रहसिस्थितः ॥ वसिष्ठंस्वकुलाचार्यमाहूयेदमभाषत ॥ १ ॥ भगवन्राममखिलाःप्रशंसंतिमुहुर्मुहुः ॥ पौराश्चनैगमावृद्धामंत्रिणश्चविशेषतः ॥ २ ॥ ततःसर्वगुणोपेतंरामंराजीवलोचनम् ॥ ज्येष्ठंराज्येऽभिषेक्ष्यामिवृद्धोऽहंमुनिपुंगव॥ ३ ॥ भरतोमातुलंद्रष्टुंगतःशत्रुघ्नसंयुतः ॥ अभिषेक्ष्येऽश्वएवाशुभवांस्तत्रानुमोदताम् ॥ ४ ॥ संभाराःसंभ्रियंतांचगच्छमंत्रयराघवम् ॥ उच्छ्रीयंतांपताकाश्चनानावर्णाःसमंततः ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! समस्त प्रजा सदाही श्रीरामचंद्रजीकी प्रशंसा करती हैं;विशेष करकै पुरवासी लोग और शास्त्रके जाननेवाले वृद्ध मंत्रीलोग श्रीरामचंद्रजीके गुणोंको बहुतही बखानते हैं ॥ २ ॥ अब मैं वृद्ध होगयाहूं, इस कारण अभिलाष करताहूं कि सर्वगुणयुक्त, कमलदलके समान नेत्रवाले श्रीरामचंद्रजीको युवराज पर अभिषेक करदूं ॥ ३ ॥ विशेष करकै इस समय भरत, शत्रुघ्नके साथ अपने मामाके यहाँ गया है; इस अवसरमें कलही यह शुभकार्य पूरा करूंगा; क्योंकि भरतके यहाँ आजानेपर इसकार्यमें विघ्न पड़जानाभी संभव नहीं, आप इस कार्यमें सम्मति देदीजिये ॥ ४ ॥ हे महर्षे ! आप रामचंद्रजीके पास जायकर परामर्श कीजिये; आपही की आज्ञानुसार अभिषेककी समस्त सामग्री मँगाई जायगी । अयोध्यानगरीमें

अनेक प्रकारके रंगोंकी शोभायमान झंडियां उड़ाई जाँय ॥ ५ ॥ और सुवर्ण व मोतियोंकी विचित्र वंदनवारें इस नगरीको शोभायमान करैं, यह कहकर राजा दशरथजीनें मंत्रियोंमें श्रेष्ठ सुमंत्रको बुलाकर कहा ॥ ६ ॥ हम कल प्रभात रामचंद्रको यौवराजपर अभिषेक करैंगे; इस कारण गुरु वशिष्ठजी जो कुछ आज्ञा दें उसहीके अनुसार कार्य किया जाय ॥ ७ ॥ सुमंत्रनें अति हर्षमें भरकर " जो आज्ञा " कह वशिष्ठजीसे पूछा " हेभगवन्! आज्ञा कीजिये, मैं कौन कार्य करूं? " तब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी वशिष्ठजी बोले ॥ ८ ॥ कल प्रभातही सुवर्णके गहने पहने हुए पुरवासियोंकी सोलह कन्या बीचकी ड्यौढीपर बैठी रहैं; और सुवर्णसे भूषित एक हाथीभी खड़ा रहै ॥ ९ ॥ जो चार दांतवाला हो; ऐरावत कुलमें उत्पन्न हुआ हो। और अनेक तीर्थोंके जलसे भरे हुए हजारों सुवर्णके घड़े तयार रहैं ॥ १० ॥ और नौ या तीन व्याघ्रके चर्म लाने होंगे रत्नकी डंडीवाला मणि मोतियोंसे विराजमान् श्वेत छत्र वहाँपर लायाजाय ॥ ११ ॥ सुगन्धि युक्त हजारों माला, द्रिव्य वस्त्र, और दिव्य गहने वहांपर रखने चाहिये। और मुनिलोग सन्मानित होकर कुश हाथोंमें लिए हुए वहाँपर टिके रहैं ॥ १२ ॥ नटी, वाराङ्गना; गायक, बांसुरी बजानेवाले औरभी अनेक भांतिके बाजोंके बजानेमें चतुर पुरुष राजभवनके आगेमें खडे रहकर बाजा बजाते वा गाते रहैं ॥ १३ ॥ हाथी, घोडे, रथ, पैदल, अस्त्र शस्त्रोंसे सजेस जाये रहकर बाहर खड़े रहैं। नगरमें जो देवमंदिर हैं अति यत्नसहित ॥ १४ ॥ उनमें अनेक प्रकारके उपहार देकर पूजा कीजाय; जो आधीन

तोरणानिविचित्राणिस्वर्णमुक्तामयानिवै ॥ आहूयमंत्रिणंराजासुमंत्रंमंत्रिसत्तमम् ॥ ६ ॥ आज्ञापयतियद्यत्त्वांमुनिस्तत्तत्समानय ॥ यौवराज्येऽभिषेक्ष्यामिश्वोभूतेरघुनंदनम् ॥ ७ ॥ तथेतिहर्षात्समुनिंकिंकरोमीत्यभाषत ॥ तमुवाचमहातेजावसिष्ठोज्ञानिनांवरः ॥ ८ ॥ श्वःप्रभातेमध्यकक्षेकन्यकाःस्वर्णभूषिताः ॥ तिष्ठंतुषोडशगजःस्वर्णरत्नादिभूषितः ॥९॥ चतुर्दंतःसमायातुऐरावतकुलोद्भवः ॥ नानातीर्थोदकैःपूर्णाःस्वर्णकुंभाःसहस्रशः ॥ १० ॥ स्थाप्यंतांनववैयाघ्रचर्माणित्रीणिचानय ॥ श्वेतच्छत्रंरत्नदंडंमुक्तामणिविराजितम् ॥११॥ दिव्यमाल्यानिवस्त्राणिदिव्यान्याभरणानिच ॥ मुनयःसत्कृतास्तत्रातिष्ठंतुकुशपाणयः ॥ १२ ॥ नर्तक्योवारमुख्याश्चगायकावेणुकास्तथा ॥ नानावादित्रकुशलावादयंतुनृपांगणे ॥ १३ ॥ हस्त्यश्वरथपादाताबहिस्तिष्ठंतुसायुधाः ॥ नगरेयानितिष्ठंतिदेवतायतनानिच ॥ १४ ॥ तेषुप्रवर्ततांपूजानानाबलिभिरावृता ॥ राजानःशीघ्रमायांतुनानोपायनपाणयः ॥ १६ ॥

के राजा लोग हैं, वह विविध भांतिकी भेंटे लेकर अति शीघ्रतासे यहा आवैं ॥ १५ ॥ श्रीमान् मुनि वशिष्ठजी राजमंत्री सुमंत्रको यह आज्ञा देकर, आप अति शोभायमान श्रीरामचंद्रजीके भवनको गये ॥ १६ ॥ रथपर चढ़े हुए मुनिश्रेष्ठ भगवान् वशिष्ठजी तीन ड्योढ़ियोंको नांघकर रथसे पृथ्वीपर उतरे ॥ १७ ॥ कुलके आर्य आचार्य होनेसे बिना रोक टोकके वशिष्ठजी, श्रीरामचंद्रजीके अंतःपुर [जनाने] में प्रवेश करते हुए; गुरुजीका आना जानकर रामचंद्रजी शीघ्रतासे हाथ जोडे हुए ॥ १८ ॥ उनको आगे जायकर लिवालाये; और भक्ति भावसे साष्टांग प्रणाम किया; जानकीजी अति शीघ्र सुवर्णके पात्रमें जल ले आईं ॥ १९ ॥ तब रामचंद्रजी सीताजी दोनोंनें, वशिष्ठजीको रत्नसिंहासन पर बैठाकर उनके दोनों

इत्यादिश्यमुनिःश्रीमान्सुमंत्रंनृपमंत्रिणम् ॥ स्वयंजगामभवनंराघवस्यातिशोभनम् ॥ १६ ॥ रथमारुह्यभगवान्वसिष्ठोमुनिसत्तमः ॥ त्रीणिकक्षाण्यतिक्रम्यरथात्क्षितिमवातरत् ॥ १७ ॥ अंतःप्रविश्यभवनंस्वाचार्यत्वादवारितः ॥ गुरुमागतमाज्ञायरामस्तूर्णंकृतांजलिः ॥ १८ ॥ प्रत्युद्गम्यनमस्कृत्यदंडवद्भक्तिसंयुतः ॥ स्वर्णपात्रेणपानीयमानिनायाशुजानकी ॥ १९ ॥ रत्नासनेसमावेश्यपादौप्रक्षाल्यभक्तितः ॥ तदपःशिरसाधृत्वासीतयासहराघवः ॥ २० ॥ धन्योऽस्मीत्यब्रवीद्रामस्तवपादांबुधारणात् ॥ श्रीरामेणैवमुक्तस्तुप्रहसन्मुनिरब्रवीत् ॥ २१ ॥ त्वत्पादसलिलंधृत्वाधन्योऽभूद्गिरिजापतिः ॥ ब्रह्माऽपिमत्पितातेहिपादतीर्थहताशुभः ॥२२॥ इदानींभाषसेयत्त्वंलोकानामुपदेशकृत् ॥ जानामित्वांपरात्मानंलक्ष्म्यासंजातमीश्वरम् ॥ २३ ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थंभक्तानांभक्तिसिद्धये ॥ रावणस्यवधार्थायजातंजानामिराघव ॥ २४ ॥

चरण धोये; और फिर उस चरणामृतको मस्तकपर धारणकरके ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजीनें कहाः—“आपका चरणामृत मस्तकपर धारण करनेसे मैं धन्य हुआ । ” श्रीरामचंद्रजीके यह भक्तिगर्भ वचन कहनेपर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी हँसकर बोले ॥ २१ ॥ तुम्हारे चरणोंका जल धारणकरके पार्वतीपति महादेवजी धन्य हुए हैं, तुम्हारे चरणसे उत्पन्न हुए तीर्थसे हमारे पिता ब्रह्माजीके समस्त अशुभ विनाशको प्राप्त होगये हैं ॥ २२ ॥ इससमय जो आप कहतेहो, “ गुरुके प्रति ऐसा व्यवहार करना चाहिये । ” लोगोंको सिखानेके लिये आप ऐसा कहतेहो; हेराघव! मैं जानताहूं; कि आप लक्ष्मीके साथ अवतार लियेहुए परमात्मा ईश्वरहो ॥ २३ ॥ हेराघव ! यद्यपि मैं जानताहूं कि आप देवता लोगोंका कार्य सिद्धकरनें और

भक्तोंकी भक्ति सिद्ध करनेंके लिये रावणका वध करनेको अवतरेहो ॥ २४ ॥ तौभी देवकार्य सिद्ध होनेंके लिये उन गुप्त वातोंको नहीं उघाडूंगा । हे रघुनंदन ! मायाके बलसे जिसप्रकार तुम सर्व व्यवहार करतेहो ॥ २५ ॥ मैं भी उसकेही अनुसार "तुम शिष्य मैं गुरु" का व्यवहार करूंगा । हेदेव ! तुम गुरु लोगोंके भी गुरु; तुम पितृगणोंके भी पितामहहो ॥ २६ ॥ तुम अन्तर्यामी; संसारयात्राके निर्वाह करनेवाले और वाणी व मनसे परेहो; तुम अपनी इच्छाके अनुसार उत्पन्न हुए शुद्ध और सतोगुण युक्त शरीरको धारण करकै ॥ २७ ॥ मायाके बलसे इस जगत्में मनुष्यके समान प्रकाशमान होरहेहो; मैं जानताहूं कि पुरोहताई करना निन्दनीय, और जीविका निर्वाह करनेका असत् उपाय है ॥ २८ ॥

तथाऽपिदेवकार्यार्थंगुह्यंनोद्घाटयाम्यहम् ॥ यथात्वंमायथासर्वंकरोषिरघुनंदन ॥ २५ ॥ तथैवानुविधास्येऽहंशिष्यस्त्वंगुरुरप्यहम् ॥
गुरुर्गुरूणांत्वंदेवपितॄणांत्वंपितामहः ॥ २६ ॥ अंतर्यामीजगद्यात्रावाहकस्त्वमगोचरः ॥ शुद्धसत्वमयंदेहंधृत्वास्वाधीनसंभवम् ॥ २७ ॥
मनुष्यइवलोकेऽस्मिन्भासित्वंयोगमायया ॥ पौरोहित्यमहंजानेविगर्ह्यंदूष्यजीवनम् ॥ २८ ॥ इक्ष्वाकूणांकुलेरामःपरमात्माजनिष्यते ॥
इतिज्ञातंमयापूर्वंब्रह्मणाकथितंपुरा ॥ २९ ॥ ततोऽहमाशयारामतवसंबंधकांक्षया ॥ अकार्षंगर्हितमपितवाचार्यत्वसिद्धये ॥ ३० ॥
ततोमनोरथोमेऽद्यफलितोरघुनंदन ॥ त्वदधीनामहामायासर्वलोकैकमोहिनी ॥ ३१ ॥ मांयथामोहयेन्नैवतथाकुरुरघूद्वह ॥ गुरुनिष्कृ
तिकामस्त्वंयदिदेह्येतदेवमे ॥ ३२ ॥ प्रसंगात्सर्वमप्युक्तंनवाच्यंकुत्रचिन्मया ॥ राज्ञादशरथेनाहंप्रेषितोऽस्मिरघूद्वह ॥ ३३ ॥

बहुत दिन पहले ब्रह्माजीने मुझसे यह कहाथा कि साक्षात् परमात्मा इक्ष्वाकु कुलमें अवतार लेंगे; इसप्रकार मैं पहलेसेही इस वृत्तान्तको जानताहूं ॥ २९ ॥ हेराम ! तुम्हारा गुरु होसकूंगा; इससम्बन्धकी आशा करकैही पुरोहितका निन्दनीय कार्य भी मैंने स्वीकार किया है ॥ ३० ॥ हेरघुनंदन ! आज हमारा वह मनोरथ सफल होगया; जो अकेलेही सब लोकको मोहित करदेती है; वह महा माया तुम्हारे वशमें है ॥ ३१ ॥ हेरघुवर ! जिस्से यह माया मुझको मोहित न करै; ऐसा आप कीजिये । यदि गुरुका प्रत्युपकार करनेकी इच्छाहो तौ मेरी यह प्रार्थना पूरी की जाय ॥ ३२ ॥ प्रसंग आजानेसे समस्त गुप्त वार्ताकही, और किसी स्थानमें यह वार्ता न कहूंगा । हेरघुश्रेष्ठ ! राजादशरथजीने हमें यहांपर भेजा है ॥ ३३ ॥

हेराघव! कल वह तुमको राज्यपर अभिषेकित करैंगे; तुमपर यह प्रगट करनाही मेरा अभिप्राय है;हेराम ! आज तुम सीताके सहित विधिविधानसे उपवासकरो ॥ ३४ ॥ और पवित्र व जितेन्द्रिय होकर पृथ्वीमें सोओ । मैं इससमय राजाके निकट जाताहूं, तुम कल प्रभातको जाना ॥ ३५ ॥ राजगुरु वसिष्ठजी यह वचन कह रथपर सवार हो अति शीघ्रतासे चलेगये । रामचंद्रजीभी लक्ष्मणजीकी ओर देखकर हँसते २ बोले ॥ ३६ ॥ हेलक्ष्मण ! कुलगुरु वसिष्ठजीसे सुनाहै कि पिताजी कल हमको यौवराज्यपर अभिषेक करैंगे हे भइया ! तुम हमारे अंतरके प्राणोंसेभी प्यारेहो; प्राणके स्वरूपहो; क्योंकि सदा तुमको देखकर संतोष होता है, इसकारण पिताजीके दियेहुए राज्यके सब कुछ करनेवाले; और भोगनेवाले तुमही होगे ।

त्वामामंत्रयितुंराज्येश्वोऽभिषेक्ष्यतिराघव ॥ अद्यत्वंसीतयासार्धमुपवासंयथाविधि ॥ ३४ ॥ कृत्वाशुचिर्भूमिशायीभवरामाजितेंद्रियः ॥ गच्छामिराजसान्निध्यंत्वंतुप्रातर्गमिष्यसि ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वारथमारुह्यययौराजगुरुर्द्रुतम् ॥ रामोऽपिलक्ष्मणंदृष्ट्वाप्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ॥ ३६ ॥ सौमित्रेयौवराज्येमेश्वोऽभिषेकोभविष्यति ॥ निमित्तमात्रमेवाहंकर्ताभोक्तात्वमेवाहि ॥ ३७ ॥ ममत्वंहिबाहिःप्राणोनात्रकार्याविचारणा ॥ ततोवसिष्ठेनयथाभाषितंतत्तथाऽकरोत् ॥ ३८ ॥ वसिष्ठोऽपिनृपंगत्वाकृतंसर्वंन्यवेदयत् ॥ वसिष्ठस्यपुरोराज्ञाह्युक्तंरामाभिषेचनम् ॥ ३९ ॥ यदातदैवनगरेश्रुत्वाकश्चित्पुमाञ्जगौ ॥ कौसल्यायैराममात्रेसुमित्रायैतथैवच ॥ ४० ॥ श्रुत्वातेहर्षसंपूर्णेददतुर्हारमुत्तमम् ॥ तस्मैततःप्रीतमनाःकौसल्यापुत्रवत्सला ॥ ४१ ॥ लक्ष्मींपर्यचरद्देवींरामस्यार्थप्रसिद्धये ॥ सत्यवादीदशरथःकरोत्येवप्रतिश्रुतम् ॥ ४२ ॥

इस विषयमें कोई बात विचारनेकी आवश्यकता नहीं है । इसके उपरान्त वशिष्ठजीने जैसा कुछ करनेको कहाथा, रामचंद्रजीने वैसाही किया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इधर वसिष्ठजीनेभी राजा दशरथजीके पास आयकर श्रीरामचंद्रजीकी गुरुभक्ति , सद्विचारिता इत्यादि अनेक गुणोंका वृत्तान्त कहा; जिससमय वसिष्ठजीके सन्मुख राजा दशरथजी रामचंद्रजीके अभिषेककी वार्ता कह रहेथे ॥ ३९ ॥ उसी समय किसी पुरुषने उस वार्ताको सुनकर नगरमें यह खबर करदी और रामचंद्रजीकी माता कौशल्या व सुमित्राकोभी यह समाचार दिया ॥ ४० ॥ दोनों रानियोंने सुनकर आनंदपूर्णहो समाचार देनेवालेको एक उत्तम हार देदिया; इसके उपरान्त पुत्रवत्सला कौशल्याजीने प्रसन्नमनसे ॥ ४१ ॥ रामचंद्रजीकी इष्ट सि

द्धिके लिये देवीलक्ष्मीजीकी पूजा की " दशरथजी सत्यवादी हैं; प्रतिज्ञाका पालन करतेंहींहैं; ॥ ४२ ॥ परंतु वे कामी और कैकेयीके वश हैं, क्या इस प्रतिज्ञाको पूरा करैंगे ? " इसप्रकारकी चिन्तासे व्याकुलहो कौशल्याजी दुर्गा देवीको पूजनेलगीं ॥ ४३ ॥ इसी अवसरमें देवता लोगोंने देवताओंका उपकार करनेवाली दुष्ट सरस्वतीसे कहा; "हेदेवी ! पृथ्वीके अयोध्यानगरमें अतियत्नसे जाओ ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजीकी आज्ञासे तुम रामचंद्रजीके अभिषेकमें विघ्नकरो। पहले मन्थरामें प्रवेशकरना, फिर कैकेयीपर टिकना ॥ ४५ ॥ हे शुभे ! तिसके पीछे विघ्न होजानेपर फिर तुम स्वर्गमें चली आवोगी " यह कहकर सरस्वतीको भेजदिया सरस्वतीनेभी " जो आज्ञा " कहकर उसकेंही अनुसार कार्य किया था। फिर

कैकेयीवशगःकिंतुकामुकःकिंकरिष्यति ॥इतिव्याकुलचित्तासाद्दुर्गांदेवीमपूजयत् ॥४३॥ एतस्मिन्नंतरेदेवादेवींवाणीमचोदयन्॥ गच्छ
देविभुवोलोकमयोध्यायांप्रयत्नतः ॥ ४४ ॥ रामाभिषेकविघ्नार्थंयतस्वब्रह्मवाक्यतः ॥ मंथरांप्रविशस्वादौकैकेयींचततःपरम् ॥ ४५ ॥
ततोविघ्नेसमुत्पन्नेपुनरेहिदिवंशुभे ॥ तथेत्युक्त्वातथाचक्रेप्रविवेशाथमंथराम् ॥ ४६ ॥ साऽपिकुब्जात्रिवक्रातुप्रासादाग्रमथारुहत् ॥
नगरंपरितोदृष्ट्वासर्वतःसमलंकृतम्॥४७॥नानातोरणसंबाधंपताकाभिरलंकृतम्॥ सर्वोत्सवसमायुक्तंविस्मितापुनरागमत् ॥ ४८॥ धात्रीं
पप्रच्छमातःकिंनगरंसमलंकृतम् ॥ नानोत्सवसमायुक्ताकौसल्याचातिहर्षिता॥४९॥ददातिविप्रमुख्येभ्योवस्त्राणिविविधानिच ॥ तामुवा
चतदाधात्रीरामचंद्राभिषेचनम् ॥ ५० ॥ श्वोभविष्यतितेनाद्यसर्वतोऽलंकृतंपुरम् ॥ तच्छ्रुत्वात्वरितंगत्वाकैकेयींवाक्यमब्रवीत् ॥५१॥

सरस्वतीने मंथरामें प्रवेश किया ॥४६॥ वह तीन जगहसे टेढ़ी कुबरी महलके ऊपरचढ़ी; और देखतीहुई कि सब कहीं नगर सज धज रहा है ॥ ४७ ॥ बहुत बन्दनवारें बँधी हैं; ध्वजा पताका शोभायमान हो रहीहैं सब जगह उत्सव होरहे हैं; यह देखकर कुबरी बड़ी विस्मित होकर नीचे उतर आई ॥ ४८ ॥ और धाईसे पूछा;—"मइया ! इसप्रकारसे नगर काहेको सजाया जाता है ? और कौशल्या रानी काहेको अनेक उत्सवों से परिपूर्ण होकर अति हर्षितमनसे ॥ ४९ ॥ श्रेष्ठ २ ब्राह्मणोंको विविध भांतिके वस्त्रादि दान कररहीहैं ?" तब धाईने मंथरासे कहा " कल रामचंद्र जीको राज्याभिषेक होगा ॥ ५० ॥ इसीलिये आज समस्त नगर सजाया गया है। " यह सुनकर अति शीघ्र जाय मंथराने कैकेयीसे

कहा ॥ ५१ ॥ बड़े नेत्रवाली कैकेयी उससमय अकेलेमें पलँगपर बैठीथी उससे मंथरा बोली । " अरी कुभागी मूढ़े ! क्या लेट रही है; बड़ाभारी भय आन पहुँचा ॥ ५२ ॥ तू अपने सुन्दरताईके मानसेही मतवाली होरही है, अय डगमगी चालसे चलनेवाली ! तू कुछ नहीं जानती ॥ ५३ ॥ राजाके अनुग्रहसे कल रामको राज्याभिषेक होगा । " प्रियवचन कहनेंवाली कैकेयी यह सुनतेही तत्काल उठी ॥ ५४ ॥ और मंथराको रत्न जड़ाहुआ सुवर्णका दिव्य नूपुर (पायजेब) देकर कहा;-यह तौ मेरे आनंदका स्थान है; इसमें भयका आना काहेको कहती है ?॥ ५५ ॥ रामचंद्र तौ हमें भरतसेभी अधिक प्यारे हैं; उन्होंने कभी ऐसा कार्य नहीं किया जो हमें बुरा लगाहो; उन्होंने कभी प्यारी बातके सिवाय कुप्यारी बात नहीं कही कौशल्याको और हमें बराबर देखतेहुए राम हमारी शुश्रूषा करते हैं ॥ ५६ ॥ हेमूढ़े! फिर तुझे रामचंद्रसे कौनसा भय आनकर प्राप्तहुआ; सो मुझे बता । " दुष्ट सरस्वतीकी प्रेरीहुई वैर बांधे मन्थरा यह सुनकर शोकित हुई और बोली ॥ ५७ ॥ देवि ! मेरी बात सुनों ! यथार्थही तुम्हें बड़ाभारी भय आन पहुँचाहै राजा दशरथ सदा तुमको प्रसन्न करनेके लिये प्रियवचन कहा करते हैं ॥ ५८ ॥ वही कामी और मिथ्या बोलनेवाले राजा केवल तुमको बातोंसे प्रसन्न रखकर; उस रामकी माता कौशल्याकाही चहिता; हितकारी कार्य सिद्धकरते हैं ॥ ५९ ॥ इसकार्यका करना विचारकर उन्होंने आगेसेही तुम्हारे पुत्र भरतको मामाके यहाँ भेजदिया है; और उनके छोटे भाईकोभी उनके

पर्यंकस्थांविशालाक्षीमेकांतेपर्यवस्थिताम् ॥ किंशेषेदुर्भगेमूढेमहद्भयमुपस्थितम् ॥ ५२ ॥ नजानीषेऽतिसौंदर्यमानिनीमत्तगामिनी ॥
॥ ५३ ॥ रामस्यानुग्रहाद्राज्ञःश्वोऽभिषेकोभविष्यति ॥ तच्छ्रुत्वासहसोत्थायकैकेयी प्रियवादिनी ॥ ५४ ॥ तस्यैदिव्यंददौस्वर्ण
नूपुरंरत्नभूषितम् ॥ हर्षस्थानेकिमितिमेकथ्यतेभयमागतम् ॥ ५५ ॥ भरतादधिकोरामःप्रियकृन्मेप्रियंवदः ॥ कौसल्यांमांसमं
पश्यन्सदाशुश्रूषतेहिमाम् ॥ ५६ ॥ रामाद्भयंकिमापन्नंतवमूढेवदस्वमे ॥ तच्छ्रुत्वाविषसादाथकुब्जाकारणवैरिणी ॥ ५७ ॥ शृणु
मद्वचनंदेवियथार्थंतेमहद्भयम् ॥ त्वांतोषयन्सदाराजाप्रियवाक्यानिभाषते ॥ ५८ ॥ कामुकोऽतथ्यवादीचत्वांवाचापरितोषयन् ॥
कार्यंकरोतितस्यावैराममातुःसुपुष्कलम् ॥ ५९ ॥ मनस्येतन्निधायैवप्रेषयामासतेसुतम् ॥ भरतंमातुलकुलेप्रेषयामाससानुजम् ॥ ६० ॥

साथ भेजदियाहै ॥ ६० ॥ इसमेंभी संदेह नहीं कि सुमित्राकाभी भलाहोगा; लक्ष्मणजी रामके अनुगामी हैं इसकारण वहभी राज्यको भोगेंगे ॥ ६१ ॥ यह नहीं कहा जासक्ता कि भरत रामके पास सेवक होकर रहैंगे; या नगरसे निकाले जांयगे ॥ ६२ ॥ दासीके समान सदाही कौशल्याजीकी सेवा—तुम्हैं करनी पड़ैगी; सौतसे अपमानपानेकी अपेक्षा मरना कहीं अच्छा है ॥ ६३ ॥ इसलिये अतिशीघ्र, वरन् आजही भरतका अभिषेक; और रामको चौदहवर्ष वनवास देनेका यत्न करो ॥ ६४ ॥ हे रानी! इसकार्यके होनेसे तुम्हारे पुत्रका राज्य निर्भय और दृढ़ होजायगा। इस कार्यके सम्बन्धमें अपना पहला विचाराहुआ एक उपाय मैं तुमसे कहती हूं ॥ ६५ ॥ पूर्वकालके समय देवासुर संग्राममें इन्द्रने धनुर्द्धर महारथी राजा दशरथजीसे सहायता करनेके लिये प्रार्थनाकी ॥ ६६ ॥ हे श्रेष्ठसुखवाली! महाराज दशरथजी इन्द्रके प्रार्थनाकरनेपर तुमको साथ ले सब सेनाके साथ युद्धमें गमन करतेहुए; धनुर्द्धर राजा राक्षसोंके साथ युद्धकरते थे ॥ ६७ ॥ इसी अवसरमें उनके रथकी धुरेकी कील टूटकर गिरपड़ी; राजाने कीलका निकलना नहीं जाना किन्तु तुमने अतिधीरजसे ॥ ६८ ॥ स्वामीके जीवकी रक्षाकरनेको कीलके छेदकी जगह अपनाहाथ डालदिया; तुम्हारे नेत्रोंमें स्वाभाविक कालावर्णतक दिखाई नहीं दिया। इसके उपरान्त उन शत्रुओंके मारनेवाले राजाने समस्त असुरोंको मार तुमको उसप्रकारसे बैठाहुआ देखा ॥ ६९ ॥ वह देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ; राजा हर्षसहित तुमको भेंटकर अपने आपही बोले। " जो तुम्हारे मनकी अभिलाषाहो सो

सुमित्रायाःसमीचीनंभविष्यतिनसंशयः ॥ लक्ष्मणोराममन्वेतिराज्यंसोऽनुभविष्यति ॥ ६१ ॥ भरतोराघवस्याग्रेकिंकरोवाभविष्यति॥ विवास्यतेवानगरात्प्राणैर्वाहाप्यतेऽचिरात् ॥ ६२ ॥ त्वंतुदासीवकौसल्यांनित्यंपरिचरिष्यासि ॥ ततोऽपिमरणंश्रेयोयत्सपत्न्याःपराभवः ॥ ६३ ॥ अतःशीघ्रंयतस्वाद्यभरतस्याभिषेचने ॥ रामस्यवनवासार्थंवर्षाणिनवपंचच ॥ ६४ ॥ ततोरूढोऽभयेपुत्रस्तवराज्ञिभविष्यति ॥ उपायंतेप्रवक्ष्यामिपूर्वमेवसुनिश्चितम् ॥ ६५ ॥ पुरादेवासुरेयुद्धेराजादशरथःस्वयम् ॥ इंद्रेणयाचितोधन्वीसहायार्थमहारथः॥ ॥ ६६ ॥ जगामसेनयासार्द्धंत्वयासहशुभानने ॥ युद्धंप्रकुर्वतस्तस्यराक्षसैःसहधन्विनः॥६७॥ तदाक्षकीलोन्यपतच्छिन्नस्तस्यनवेदसः ॥ त्वंतुहस्तंसमावेश्यकीलरंध्रेऽतिधैर्यतः ॥ ६८ ॥ स्थितवत्यसितापांगीपतिप्राणपरीप्सया ॥ ततोहत्वाऽसुरान्सर्वान्ददर्शत्वामरिंदमः ॥६९॥ आश्चर्यपरमंलेभेत्वामालिंग्यमुदान्वितः ॥ वृणीष्वयत्तेमनसिवांछितंवरदोऽस्म्यहम् ॥७० ॥

मांगो मैं तुमको वरदेताहूं; ॥ ७० ॥ "दो वरमांगो" उसकाल तुमने वरदान देनेके लिये तैयारहुए राजासे कहाथा कि " यदि आप प्रसन्न होके मुझे दो वर
दान देना चाहतेहो॥ ७१ ॥ तौ धरोहरकी भांति यह दोनों वर तुम्हारेही पास रहैं; हेपापरहित ! इसके उपरान्त जब समय आवैगा तब यह दोनों वर हमैं
देदेना" ॥ ७२ ॥ महाराजने "तथास्तु" कहकर कहा "हे सुव्रते ! अब घरको चलो " पहले मैंने यह बात तुमसेही सुनीथी; अब याद आई ॥
॥ ७३ ॥ हे भामिनी ! इसकारण आज अतिशीघ्र तुम क्रोधसहित कोपभवनमें जाय सब गहने उतार चारों ओर फेंकदो; और पृथ्वीपर पड़ रहो ॥ ७४ ॥
और जबतक राजादशरथ तुम्हारे कार्यके पूरे करनेकी सत्यप्रतिज्ञा न करें तबतक अति क्रोधकरेहुए मौन रहना। तीन जगहसे टेढ़ी कुबरीके यह वचन

वरद्वयंवृणीष्वत्वमेवंराजाऽवदत्स्वयम् ॥ त्वयोक्तोवरदोराजन्यदिदत्तंवरद्वयम् ॥ ७१ ॥ त्वय्येवतिष्ठतुचिरंन्यासभूतंममानघ ॥ यदामेऽ
वसरोभूयात्तदादेहिवरद्वयम् ॥ ७२ ॥ तथेत्युक्त्वास्वयंराजामंदिरंव्रजसुव्रते ॥ त्वत्तःश्रुतंमयापूर्वमिदानींस्मृतिमागतम् ॥ ७३ ॥
अतःशीघ्रंप्रविश्याद्यक्रोधागारंरुषान्विता ॥ विमुच्यसर्वाभरणंसर्वतोविनिकीर्यच ॥ भूमावेवशयानात्वंतूष्णीमातिष्ठभामिनी ॥ ७४ ॥
यावत्सत्यंप्रतिज्ञायराजाऽभीष्टंकरोतिते ॥ श्रुत्वात्रिवक्रयोक्तंतत्तदाकेकयनंदिनी ॥ ७५ ॥ तथ्यमेवाखिलंमेनेदुःसंगाहितविभ्रमा ॥
तामाहकैकयीदुष्टाकुतस्तेबुद्धिरीदृशी ॥ ७६ ॥ एवंत्वांबुद्धिसंपन्नांनजानेवक्रसुंदरि ॥ भरतोयदिराजामेभविष्यतिसुतःप्रियः ॥ ७७ ॥
ग्रामाञ्छतंप्रदास्यामिममत्वंप्राणवल्लभा ॥ इत्युक्त्वाकोपभवनंप्रविश्यसहसारुषा ॥७८॥ विमुच्यसर्वाभरणंपरिकीर्यसमंततः ॥ भूमौ
शयानामलिनामलिनांबरधारिणी ॥ ७९ ॥ प्रोवाचशृणुमेकुब्जेयावद्रामोवनंव्रजेत् ॥ प्राणांस्त्यक्ष्येऽथवावक्रेशयिष्येतावदेवहि ॥८०॥

सुनकर कैकेयीने ॥७५॥ बुरेसङ्गके दोषसे मतिमें भ्रम आजानेके कारण यह सब बात सत्य२मानी। दुष्टस्वभावको प्राप्तहुई कैकेयी मंथरासे बोली—
"तुझमें ऐसी बुद्धि कहांसे आई ? ॥ ७६ ॥ हे टेढ़ी सुन्दरी ! हम नहीं जानतीथीं कि तुम ऐसी बुद्धिमती हो; जो मेरा प्यारा पुत्र भरत राजाहो
॥७७॥ तौ मैं तुझको एकशत (१००)गांव दूंगी तू हमको प्राणोंके समान प्यारीहै" यह कहकर अचानक क्रोधमें भर कैकेयी कोपभवनको चलीगई
॥७८॥ वहाँपर सब गहने उतारकर चारों ओर फैलादिये; मलीनहुई और मलीन कपड़े पहरकर पृथ्वीमें लेटकर ॥ ७९ ॥ बोली; "कुब्जे ! मेरी

बातसुन; जबतक राम वनको नहीं जांयगे—तबतक शयन किये रहूंगी; और यदि नहींजाँयगे तौ प्राण छोड़दूंगी" ॥८०॥ "बहुतठीक! स्थिरमति रखियो हे कल्याणि! ऐसा कहनेसे तुम्हारा मंगलहोगा।" यह समझाय कुबरी घरको गई; और कैकेयीनेभी वही किया जो मन्थराने समझाया था ॥ ८१ ॥ अत्यन्तदयालु, गुणवान् श्रेष्ठ आचारयुक्त नीतिका जाननेवाला, विधिनिषेधके मर्मको समझानेवाला; और विद्यायुक्त ज्ञानवान् पुरुषभी; पापभरे हुये हृदयवाले दुष्टोंका जो सदा सङ्ग करै; तौ उनदुष्टोंकी बुद्धिके दोषसे घिरकर फिर सहज २ से उनकेही समान होजाता है। यह बात स्पष्ट देखीजाती है ॥ ८२ ॥ इसकारणसे दुष्टोंका सङ्ग सदा छोड़ने योग्यहै; इस कैकेयी राजरानीके समान प्रत्येक कुसंगी अपने पुरुषार्थसे भ्रष्ट होजाता है ॥ ८३ ॥ इति श्रीमदध्यात्म

निश्चयंकुरुकल्याणिकल्याणंतेभविष्यति ॥ इत्युक्त्वाप्रययौकुब्जागृहंसाऽपितथाऽकरोत् ॥ ८१ ॥ धीरोऽत्यंतदयान्वितोऽपिसुगुणाचारान्वितोवाऽथवानीतिज्ञोविधिवाददेशिकपरोविद्याविवेकोऽथवा ॥ दुष्टानामतिपापभावितधियांसंगंसदाचेद्भजेत्तद्बुद्ध्यापरिभावितोव्रजाति तत्साम्यंक्रमेणस्फुटम् ॥ ८२ ॥ अतःसंगःपरित्याज्योदुष्टानांसर्वदैवहि ॥ दुःसंगीच्यवतेस्वार्थाद्यथेयंराजकन्यका ॥ ८३ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेअयोध्याकांडेद्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ ततोदशरथोराजारामाभ्युदयकारणात् ॥ आदिश्यमंत्रिप्रकृतीःसानंदोगृहमाविशत् ॥१॥ तत्रादृष्ट्वाप्रियांराजाकिमेतदितिविह्वलः ॥ यापुरामंदिरंतस्याःप्रविष्टेमयिशोभना ॥२॥ ॥ हसंतीमामुपायातिसाकिंनैवाद्यदृश्यते ॥ इत्यात्मन्येवसंचिंत्यमनसाऽतिविदूयता ॥ ३ ॥ पप्रच्छदासीनिकरंकुतोवःस्वामिनीशुभा ॥ नायातिमांयथापूर्वंमत्प्रियाप्रियदर्शना ॥ ४ ॥

रामायणे उमामहेश्वरसम्वादे अयोध्याकांडे भाषाटीकायां द्वितीयस्सर्गः ॥ २ ॥ सुमंत्रका रामजीको बुलालाना ॥ इस ओर राजा दशरथजी मङ्गलकार्यार्थ प्रजा और मंत्रियोंको आज्ञादे आनन्दसाहित विश्राम करनेकी इच्छासे कैकेयीके घरमें आये ॥ १ ॥ वहाँपर अपनी प्यारीको न देखपायकर राजा दशरथजी बहुत व्याकुलहुए, और "यह क्या! हमारे घरमें प्रवेश करतेही जो सुन्दरी ॥ २ ॥ हँसते २ मेरे सन्मुख आतीथी वह आज मेरी आंखोंके सामने क्यों नहीं हुई।" राजा मनही मन यह विचारकर अति व्याकुलमनसे ॥ ३ ॥ दासियोंसे पूछने लगे कि "तुम्हारी मङ्गलमयी स्वामिनी कहाँ है।

---

१ वरुभल वास नरककर ताता। दुष्टसंग जन देंहि विधाता ॥

ताऊचुःक्रोधभवनंप्रविष्टानैवविद्महे ॥ कारणंतत्रदेवत्वंगत्वानिश्चेतुमर्हसि ॥ ५ ॥ इत्युक्तोभयसंत्रस्तोराजातस्याःसमीपगः ॥ उपविश्यशनैर्देहंस्पृशन्वैपाणिनाऽब्रवीत् ॥ ६ ॥ किंशेषेवसुधापृष्ठेपर्यंकादीन्विहायच ॥ मांत्वंखेदयसेभीरुयतोमांनावभाषसे ॥ ७ ॥ अलंकारंपरित्यज्यभूमौमलिनवाससा ॥ किमर्थंब्रूहिसकलंविधास्येतववांछितम् ॥ ८ ॥ कोवातवाहितंकर्तानारीवापुरुषोऽपिवा ॥ समेदंड्यश्चवध्यश्चभविष्यतिनसंशयः ॥ ९ ॥ ब्रूहिदेवियथाप्रीतिस्तदवश्यंममाग्रतः ॥ तदिदानींसाधयिष्येसुदुर्लभमपिक्षणात् ॥ १० ॥ जानासित्वंममस्वांतंप्रियंमांस्ववशेस्थितम् ॥ तथाऽपिमांखेदयसेवृथातवपरिश्रमः ॥ ११ ॥ ब्रूहिकंधनिनंकुर्यांदरिद्रंतेप्रियंकरम् ॥ धनिनंक्षणमात्रेणनिर्धनंचतवाहितम् ॥१२॥ ब्रूहिकंवावधिष्यामिवधार्होवाविमोक्ष्यते ॥ किमत्रबहुनोक्तेनप्राणान्दास्यामितेप्रिये ॥१३॥

हमारी प्रियदर्शना प्यारी पहलेके समान आज तौ हमारे पास नहीं आती है।" ॥ ४ ॥ दासियां बोलीं;– "वे कोपभवनको गई हैं; हम कोप भवनमें प्रवेश करनेके कारणको नहीं जानती हैं; हे देव! वहाँपर जायकर आपको कारण निश्चय करना उचित है।" ॥ ५ ॥ दासियोंके यह कहनेपर राजा अति डरतेहुए कैकेयीके समीप जाय पहुँचे; और उसके शरीरपर सहज २ हाथ सहरातेहुए बोले ॥ ६ ॥ "हे भीरु! पलँगइत्यादि छोड़कर पृथ्वीमें क्यों लेटरहीहो? तुम हमसे बात नहीं करतीहो, इस्से हम बड़े दुःखी हैं ॥ ७ ॥ गहनोंको छोड़कर मलीन वस्त्र पहरे पृथ्वीपर क्यों पड़ीहो? कहो; मैं तुम्हारी सब अभिलाष पूर्ण करूंगा ॥ ८ ॥ स्त्री या पुरुष, किसने तुम्हारा अनभल किया है? वह मुझसे दण्डपानेके योग्य है; बरन् मैं उसको वधभी कर सकताहूं? इसमें कुछसन्देह नहीं ॥ ९ ॥ हे देवि! जिस्से तुम प्रसन्न होवो, वह हमसे कहो, अत्यन्त दुर्लभहोनेपरभी क्षणभरमें अवश्य सब कार्य सिद्ध करदूंगा ॥ १० ॥ तुम मेरे हृदयको जानोहो; और यहभी जानोहो; कि मैं तुम्हारा स्वामी तुम्हारे वशहूं, तथापि हमें कष्ट दे रहीहो; तुम्हारा परिश्रम केवल निरर्थक है संकेतसे कहदिया कि जब तुम यह जानतीहो कैसाही कठिन कार्यहो उसकोभी करदूंगा; तब इतना परिश्रमकरके हमें काहेको कष्ट देतीहो? (यहभावार्थ है) ॥ ११ ॥ कहो;–तुम्हारा प्यारा कार्य करनेवाले किस दरिद्रकूं धनीकरदूं? या तुम्हारे अपकारी किस धनीको एकक्षणभरमें निर्धन करदूं ॥१२॥ कहो;–किसीको वधकरूं; या किसी मारडालने योग्य पुरुषको छोड़दूं? हे प्रिये! इसविषयमें और अधिक क्याकहूं; मैं

अपने प्राणभी तुम्हारे हाथमें सौंपसकताहूं (इच्छाहो मुझे मारसकतीहो या जीवित रखसकतीहो) ॥ १३ ॥ कमलके समान नेत्रवाले रामचंद्र हमको प्राणसेभी अधिकप्यारे हैं; उन रामकी सौगन्ध करताहूं तुम बताओ कि तुम्हारा कौनसा हितकारी कार्य करनाहोगा सो मैं उसको करता हूं ॥ १४ ॥ जब राजादशरथजीने रामचंद्रजीकी सौगन्ध करके यह वचनकहे तब कैकेयी धीरे २ आंसू पोंछकर राजादशरथजीसे बोली ॥ १५ ॥ जब कि सौगन्ध करतेहो, और यदि सच्ची प्रतिज्ञा करनेवाले हो तो शीघ्रही मेरी प्रार्थनाको पूरा करना तुम्हें उचित है ॥ १६ ॥ पूर्वकालके समय जब देवता और दैत्योंमें युद्ध हुआथा तब हमने तुम्हारी रक्षाकीथी तब तुमने प्रसन्न होकर हमको दो वर दियेथे ॥ १७ ॥ हे सुव्रत ! वह दोनों वर मैंने

ममप्राणात्प्रियतरोरामोराजीवलोचनः ॥ तस्योपरिशपेब्रूहित्वद्धितंतत्करोम्यहम् ॥ १४ ॥ इतिब्रुवाणंराजानंशपंतंराघवोपरि ॥ शनैर्विमृज्यनेत्रेसाराजानंप्रत्यभाषत ॥ १५ ॥ यदिसत्यप्रतिज्ञोऽसिशपथंकुरुषेयदि ॥ याच्ञांमेसफलांकर्तुंशीघ्रमेवत्वमर्हसि ॥ १६ ॥ पूर्वं देवासुरेयुद्धेमयात्वंपरिरक्षितः ॥ तदावरद्वयंदत्तंत्वयामेतुष्टचेतसा ॥ १७ ॥ तद्द्वयंन्यासभूतंमेस्थापितंत्वयिसुव्रत ॥ तत्रैकेनवरेणाशुभरतंमेप्रियंसुतम् ॥ १८ ॥ एभिःसंभृतसंभारैर्यौवराज्येऽभिषेचय ॥ अपरेणवरेणाशुरामोगच्छतुदंडकान् ॥ १९ ॥ मुनिवेषधरःश्रीमाञ्जटावल्कलभूषणः ॥ चतुर्दशसमास्तत्रकंदमूलफलाशनः ॥ २० ॥ पुनरायातुतस्यांतेवनेवातिष्ठतुस्वयम् ॥ प्रभातेगच्छतुवनंरामोराजीवलोचनः ॥ २१ ॥ यदिकिंचिद्विलंबेतप्राणांस्त्यक्ष्येतवाग्रतः ॥ भवसत्यप्रतिज्ञस्त्वमेतदेवममप्रियम् ॥ २२ ॥

तुम्हारेपास थाती रखदिये हैं; उनमेंसे एकवर से हमारे प्यारे भरतको ॥ १८ ॥ इस सब सामग्रीके द्वारा यौवराज्यपर अभिषेक किया जावै, और दूसरे वरसे राम अतिशीघ्र दण्डकवनको जांय ॥ १९ ॥ श्रीमान् रामचंद्रजी जटा बढ़ाये वल्कलके चीरपहरे कन्द मूल फलखाते मुनिवेष धारण किये चौदहवर्षतक वनमें टिकेरहैं ॥ २० ॥ तिसके पीछे यहाँ आवें तौ आभीसकते हैं; और इच्छा हो तौ वनमेंभी रहसकते हैं; कमल लोचनराम सबेरे ही वनको चलेजांय ॥ २१ ॥ जो जानेमें कुछभी विलम्ब करैंगे, तो मैं तुम्हारे सामनेही प्राण छोड़दूंगी; बस यही कार्य हमको प्यारा है; इससमय तुम

अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करो ॥ २२ ॥ कैकेयीके यह दारुण लोमहर्षण वचन सुनकर राजादशरथजी पृथ्वीपर ऐसे गिरे जैसे वज्रके मारे पर्वतगिरे थे ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त हमने क्या दुःस्वप्न देखा; या हमारी मति में भ्रम आगया; यह विचारकर राजाने आंसू पोंछकर धीरे २ नेत्र खोले ॥ २४ ॥ और सामनेही व्याघ्रीके समान बैठीहुई अपनी स्त्रीको देखकर भय सहित बोले, "भद्रे ! यह क्या कहतीहो ? यह वचन मेरे प्राणोंका नाश करनेवालाहै ॥ २५ ॥ कमलके समान नेत्रवाले रामने तुम्हारा क्या अपराध कियाहै ? तुमतौ सदाही हमारे सामने रामके शुभगुणोंका वर्णन किया करतीथी, और कहतीथी कि ॥ २६ ॥ "राम" कौशल्याको और हमें समान नेत्रोंसे देखकर सदा हमारी सेवा किया करते हैं ॥ तुम सदाही पहले ऐसा कहाकरती थी; अब क्यों वृथा कहतीहो ॥ २७ ॥ अपने पुत्र के लिये राज्य ग्रहणकर; परन्तु राम हमारे घरमें रहैं। हे वामे ! मेरे ऊपर अनुग्रहकर, रामसे तुझको कुछ भय नहींहै" ॥ २८ ॥ यह कहकर नेत्रों में आंसूभर उसके चरणोंपर गिरपड़े तब वह कैकेयी लाल २ आंखेंकर उत्तर देतीहुई ॥ २९ ॥ "हे राजेंद्र ! क्या तुम्हारी मतिमें भ्रमहोगया ? जो प्रतिज्ञा की है उसके विपरीत वचन कहतेहो; यदि अपनी प्रतिज्ञाको मिथ्या करोगे तौ तुमको नरकभोगना पड़ेगा ॥ ३० ॥ जो राम प्रभातही चीरवस्त्र पहरकर वनको नहीं जांयगे तौ मैं फांसी लगाकर या विष खाकर तुम्हारे

श्रुत्वैतद्दारुणंवाक्यंकैकेय्यारोमहर्षणम् ॥ निपपातमहीपालोवज्राहतइवाचलः ॥ २३ ॥ शनैरुन्मील्यनयनेविमृज्यपरयाभिया ॥ दुः
स्वप्नोवामयादृष्टोह्यथवाचित्तविभ्रमः ॥ २४ ॥ इत्यालोक्यपुरःपत्नींव्याघ्रीमिवपुरःस्थिताम् ॥ किमिदंभाषसेभद्रेममप्राणहरंवचः ॥
॥ २५ ॥ रामःकमपराधंतेकृतवान्कमलेक्षणः ॥ ममाग्रेराघवगुणान्वर्णयस्यनिशंशुभान् ॥ २६ ॥ कौसल्यांमांसमंपश्यञ्छुश्रूषांकुरुते
सदा ॥ इतिब्रुवंतीत्वंपूर्वमिदानींभाषसेऽन्यथा ॥ २७ ॥ राज्यंगृहाणपुत्रायरामस्तिष्ठतुमंदिरे ॥ अनुगृह्णीष्वमांवामेरामान्नास्तिभयंतव॥
॥ २८ ॥ इत्युक्त्वाऽश्रुपरीताक्षःपादयोर्निपपातह ॥ कैकेयीप्रत्युवाचेदंसाऽपिरक्तांतलोचना ॥ २९ ॥ राजेंद्रकिंत्वंभ्रांतोऽसिउक्तं
तद्भाषसेऽन्यथा ॥ मिथ्याकरोषिचेत्स्वीयंभाषितंनरकोभवेत् ॥ ३० ॥ वनंनगच्छेद्यदिरामचंद्रःप्रभातकालेऽजिनचीरयुक्तः ॥ उद्बंधनं
वाविषभक्षणंवाकृत्वामरिष्येपुरतस्तवाहम् ॥ ३१ ॥

सामनेही प्राण छोड़दूंगी ॥ ३१ ॥ तुम संसारमें सब सभाओंके बीच सत्यप्रतिज्ञ कहकर अपनी बड़ाई किया करतेहो; परन्तु तुमने रामचंद्रकी सौगन्ध करके जो प्रतिज्ञा की,उसकोभी पूरा न किया; अब तुम नरकमें जाओगे । ” ॥ ३२ ॥ प्यारीरानी कैकेयी के यह वचन कहनेपर दुःखसमुद्रमें डूबेहुए व्याकुलहो महाराज दशरथ मूर्च्छितहो मृतकके समान चेतना रहितहो पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ३३ ॥ इसप्रकार से महाराज दशरथजीको एक वर्षके समान वह कालरात्रि अतिकष्टसे बीती, सूर्योदय होनेके समय वंदी और गायक गानेलगे ॥३४॥ कैकेयीने उनको रोकदिया, और अति क्रोधितहुई । इधर प्रभातहोतेही बीचके द्वारपर आनकर ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ऋषिगण, ऋषिकन्यागण, श्वेतछत्र, दिव्यचँवर, हाथी और घोड़े ॥ ३६ ॥ और बारमुखीगण, पुरवासी, जनपदवासी लोग सब वहाँ आये, जो कुछ आज्ञा वशिष्ठजीने दीथी वह सब वहाँ आये ॥ ३७ ॥ उस रात्रिमें बालक, वृद्ध, स्त्री, युवा,किसीकोभी नींद नहीं आईथी, पीलेरेशमक वस्त्रपहरे रामचंद्रको कब देखेंगे ? ॥ ३८ ॥ सर्व भूषण पहिरे हुए, किरीट और खण्डुए पहरनेसे उज्ज्वल हुए कौस्तुभ गहनेसे भूषित,श्यामवर्ण, सैकड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर ॥ ३९ ॥ अभिषेकित होनेके पीछे हाथीपर चढ़कर आतेहुए, मन्द मुसकाते हुए, श्वेतछत्र धारणकिये शुभलक्षणवाले लक्ष्मणजी जिनकेपास बैठेहोंगे ॥ ४० ॥ ऐसे रामचंद्रजीको कब देखेंगे ?

सत्यप्रतिज्ञोऽहमितीहलोकेविडंवसेसर्वसभांतरेषु ॥ रामोपरित्वंशपथंचकृत्वामिथ्याप्रतिज्ञोनरकंप्रयाहि ॥ ३२ ॥ इत्युक्तःप्रियया दीनोमग्नोदुःखार्णवेनृपः ॥ मूर्च्छितःपतितोभूमौविसंज्ञोमृतकोयथा ॥ ३३ ॥ एवंरात्रिर्गतातस्यदुःखात्संवत्सरोपमा ॥ अरुणोदयकालेतुवंदिनोगायकाजगुः ॥ ३४ ॥ निवारयित्वातान्सर्वान्कैकेयीरोषमास्थिता ॥ ततःप्रभातसमयेमध्यकक्षमुपस्थिताः ॥ ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याऋषयः कन्यकास्तथा ॥ छत्रंचचामरंदिव्यंगजोवाजीतथैवच ॥ ३६ ॥ अन्याश्ववारमुख्यायाःपौरजानपदास्तथा ॥ वसिष्ठेनयथाऽऽज्ञप्तंतत्सर्वंतत्रसंस्थितम् ॥ ३७ ॥ स्त्रियोबालाश्चवृद्धाश्चरात्रौनिद्रांनलेभिरे ॥ कदाद्रक्ष्यामहेरामंपीतकौशेयवाससम् ॥ ३८ ॥ सर्वाभरणसंपन्नंकिरीटकटकोज्ज्वलम् ॥ कौस्तुभाभरणंश्यामंकंदर्पशतसुंदरम् ॥ ३९ ॥ अभिषिक्तंसमायातंगजारूढंस्मिताननम् ॥ श्वेतच्छत्रधरंतत्रलक्ष्मणंलक्षणान्वितम् ॥ ४० ॥ रामंकदावाद्रक्ष्यामःप्रभातंवाकदाभवेत् ॥ इत्युत्सुकाधियःसर्वेबभूवुःपुरवासिनः ॥ ४१ ॥

जाने प्रभात कब होगा? इसप्रकार से सब पुरवासी उत्कण्ठायुक्त बुद्धिवाले हुए ।। ४१ ।। “अबतक राजा क्यों नहीं उठे ?” इसप्रकार से चिन्ताकरते हुए सुमंत्रजी, धीरे२ वहाँपर आये जहाँपर राजादशरथजी विराजमान थे ।। ४२ ।। सुमन्त्रने वहाँ जायकर “महाराजकी जयहो ।” कहकर प्रणाम किया राजाने कुछ उत्तर नहीं दिया । सुमंत्रने अवस्था देखकर राजाको अति व्याकुल विचार कैकेयीसे पूँछा ।। ४३ ।। हेदेवि ! आज उत्सव केसमय राजादशरथजी मलीन क्यों हैं ? तब कैकेयी बोली कि “रात में महाराजको नींद नहीं आई ।। ४४ ।। ‘राम राम राम’ यह शब्द करके रामहीकी चिन्ता करते रहेहैं । बस जागनेहीके कारण राजा असावधान और मलीनसे दिखाई देते हैं । रामको शीघ्र यहाँपर लेआओ, राजा उनके देखनेकी इच्छा करते हैं ” ।। ४५ ।। सुमंत्रबोले;—“हे भामिनि ! बिना महाराजकी आज्ञापाये मैं कैसे जासकताहूं ?” मंत्रीके यह वचन सुनकर राजाने मंत्रीसे कहा ।। ४६ ।। “सुमंत्र ! सुन्दर मूर्ति रामको देखूंगा—जल्दीलिवालाओ ।” इसप्रकार कहेजानेपर रामचंद्रके भवनको सुमंत्र अति शीघ्रगया ।। ४७ ।। सुमंत्र बिना किसीके रोके टोकेहुए रामचंद्रजीके गृहमें अति शीघ्र जायकर कहतेहुए, “हेकमललोचनराम ! तुम्हारा मंगलहो शीघ्रही चलो ॥ ४८ ॥ पिताजीके घरको मेरे साथ चलो, महाराज आपको देखा चाहते हैं।” यह सुनकर रथपर सवारहो घबड़ाते हुए अतिशीघ्रता से चले ॥ ४९ ॥ सारथी और लक्ष्मणजीके साथ रामचंद्रजी चले । बीचकी ड्योढीपर विराजमान हुए वशिष्ठादिके प्रति शीघ्रताके वश केवल एक विशेष

नेदानीमुत्थितोराजाकिमर्थंचेतिचिंतयन् ॥ सुमंत्रःशनकैःप्रायाद्यत्रराजाऽवतिष्ठते ॥ ४२ ॥ वर्धयञ्जयशब्देनप्रणमञ्छिरसानृपम् ॥
अतिखिन्नंनृपंदृष्ट्वाकैकेयींसमपृच्छत ॥ ४३ ॥ देविकैकेयिवर्धस्वकिंराजादृश्यतेऽन्यथा ॥ तमाहकैकयीराजारात्रौनिद्रांनलब्धवान् ॥
॥ ४४ ॥ रामरामेतिरामेतिराममेवानुचिंतयन् ॥ प्रजागरेणवैराजाह्यस्वस्थइवलक्ष्यते ॥ राममानयशीघ्रंत्वंराजाद्रष्टुमिहेच्छति ॥ ४५ ॥
सुमंत्रउवाच ॥ अश्रुत्वाराजवचनंकथंगच्छामिभामिनि ॥ तच्छ्रुत्वामंत्रिणोवाक्यंराजामंत्रिणमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ सुमंत्ररामंद्रक्ष्यामिशीघ्र
मानयसुंदरम् ॥ इत्युक्तस्त्वरितंगत्वासुमंत्रोराममंदिरम् ॥ ४७ ॥ अवारितःप्रविष्टोऽयंत्वरितंराममब्रवीत् ॥ शीघ्रमागच्छभद्रंतेरामरा
जीवलोचन ॥ ४८ ॥ पितुर्गेहंमयासार्धंराजात्वांद्रष्टुमिच्छति ॥ इत्युक्तोरथमारुह्यसंभ्रमात्त्वरितोययौ ॥ ४९ ॥ रामःसारथिनासार्धंल
क्ष्मणेनसमन्वितः ॥ मध्यकक्षेवासिष्ठादीन्पश्यन्नेवत्वरान्वितः ॥ ५० ॥

दृष्टिसेही शिष्टाचार दिखाया ॥ ५० ॥ पिताजीके समीप जायकर उनके चरणों में प्रणाम किया घबड़ाहटके साथ उठकर रामचंद्रजीको भेंटनेके
लिये ज्योंही राजादशरथजीने ॥ ५१ ॥ बाँह पसारी वैसेही "हाराम !" कहकर दुःखके मारे, वह बीचही में गिरपड़े । श्रीरामचंद्रजीने हाय २ कर-
के अति शीघ्रता से उनको भेंटकर अपनी गोदमें बैठायालिया ॥ ५२ ॥ राजादशरथजीको मूर्छित देखकर सब स्त्रियां रोय उठी । "इतना रोना क्यों
होताहै ?" यह विचारकर वशिष्ठजीभी वहाँ आये ॥ ५३ ॥ रामचंद्रजीने पूछा, "राजाके इसप्रकार दुःख करनेका कारण क्या है ?" श्रीरामचंद्रजीके
यह पूछनेपर कैकेयी उनसे बोली ॥ ५४ ॥ "हे राम ! राजाके ऐसे दुःखके कारण तुमहीहो; दुःखकी शांति करनेके लिये तुमको राजाका कुछ हितकारीकार्य
करना होगा ॥ ५५ ॥ तुम सत्यप्रतिज्ञा करनेवालेहो; राजा को सत्यवादी करो । राजाने प्रसन्नचित्त होकर हमको दोवर दिये हैं
॥ ५६ ॥ परन्तु उन दोनों वरोंकी सफलता तुम्हारे आधीन है; राजा उसको तुमसे कहते हुए लजाते हैं; अतएव सत्यकी फाँसीसे दृढ़ बँधे हुए पिता
का उद्धारकरना तुमको उचितहै ॥ ५७ ॥ पिताका नरकसे उद्धारकरे; यही पुत्र शब्दका अर्थहै । " कैकेयीके वचन सुनकर शूललगनेके समान,
व्यथित होकर श्रीरामजी कैकेयीसे बोले ॥—"मैया ! हमसे इतना क्यों कहतीहो? पिताके लिये मैं प्राण छोड़ सकताहूं; तीक्ष्ण विष पान कर सकता
हूं ॥ ५८ ॥ ॥ ५९ ॥ सीताको अथवा माता कौशल्याजीको त्यागकर सकताहूं; राज्य छोड़ने कोभी तैयारहूं । जो पुरुष पिताके मुखसे आज्ञा न

पितुःसमीपंसंगम्यननामचरणौपितुः ॥ राममालिंगितुंराजासमुत्थायससंभ्रमः ॥ ८१ ॥ वाहूप्रसार्यरामेतिदुःखान्मध्येपपातह ॥
हाहेतिरामस्तंशीघ्रमालिंग्यांकेन्यवेशयत् ॥ ८२ ॥ राजानंमूर्च्छितंदृष्ट्वाचुक्रुशुःसर्वयोषितः ॥ किमर्थंरोदनमितिवसिष्ठोऽपिसमा
विशत् ॥ ८३ ॥ रामःपप्रच्छकिमिदंराज्ञोदुःखस्यकारणम् ॥ एवंपृच्छतिरामेसाकैकेयीराममब्रवीत् ॥ ८४ ॥ त्वमेवकारणंह्यत्रराज्ञो
दुःखोपशांतये ॥ किंचित्कार्यंत्वयारामकर्तव्यंनृपतेर्हितम् ॥ ८५ ॥ कुरुसत्यप्रतिज्ञस्त्वंराजानंसत्यवादिनम् ॥ राज्ञावरद्वयंदत्तं
ममसंतुष्टचेतसा ॥ ८६ ॥ त्वदधीनंतुतत्सर्वंवक्तुंत्वांलज्जतेनृपः ॥ सत्यपाशेनसंवद्धंपितरंत्रातुमर्हसि ॥ ८७ ॥ पुत्रशब्देनचैतद्धिनरका
त्रायतेपिता ॥ रामस्तयोदितंश्रुत्वाशूलेनाभिहतोयथा ॥ ८८ ॥ व्यथितःकैकयींप्राहकिंमामेवंप्रभाषसे ॥ पित्रर्थेजीवितंदास्येपिवे
यंविषमुल्बणम् ॥ ८९ ॥ सीतांत्यक्षेऽथकौसल्यांराज्यंचापित्यज़ाम्यहम् ॥ अनाज्ञप्तोऽपिकुरुतेपितुःकार्यंसउत्तमः ॥ ६० ॥

पाकरभी उसके अभिप्रायका कार्य करै, वह उत्तम है ॥ ६० ॥ आज्ञा पायकर जो उस कार्यको करताहै, वह मध्यम कहाजाता है,और जो आज्ञा पायकरभी उसकार्यको न करै, वह सन्तान विष्ठादिके समान केवल पिता का मलही है ॥६१॥ इस्से पिताजी हमें जो कुछ आज्ञा देंगे, उसके करने को मैं तैयारहूं; यह सत्यहै,राम एक मुखसे दो बात नहीं कहता!"॥६२॥ रामचंद्रजीकी यह प्रतिज्ञा सुनकर कैकेयीने कहना आरम्भ किया । "हे राम! तुम्हारे अभिषेकके लिये जो सामग्री इकठ्ठी हुई है ॥६३॥ उसही सामग्रीसे हमारे प्यारेपुत्र भरतका अभिषेक होना चाहिये । और दूसरे वरसे चीर वसन पहर, जटा धारणकर ॥ ६४ ॥ पिताकी आज्ञा से तुम अतिशीघ्र वनको जाओ । और वहाँपर फल मूलादि मुनियोंके खानेयोग्य भोजनकरके चौदह

उक्तःकरोतियःपुत्रःसमध्यमउदाहृतः ॥ उक्तोऽपिकुरुतेनैवसपुत्रोमलउच्यते ॥ ६१ ॥ अतःकरोमितत्सर्वंयन्मामाहपितामम ॥ सत्यं
सत्यंकरोम्येवरामोद्विर्नाभिभाषते ॥ ६२ ॥ इतिरामप्रतिज्ञासाश्रुत्वावक्तुंप्रचक्रमे ॥ रामत्वदभिषेकार्थंसंभाराःसंभृताश्चये ॥ ६३ ॥
तैरेवभरतोऽवश्यमभिषेच्यःप्रियोमम ॥ अपरेणवरेणाशुचीरवासाजटाधरः ॥ ६४ ॥ वनंप्रयाहिशीघ्रंत्वमद्यैवपितुराज्ञया ॥ चतुर्द
शसमास्तत्रवसमुन्यन्नभोजनः ॥ ६५ ॥ एतदेवपितुस्तेऽद्यकार्यंत्वंकर्तुमर्हसि ॥ राजातुलज्जतेवक्तुंत्वामेवंरघुनंदन ॥ ६६ ॥
श्रीरामउवाच ॥ भरतस्यैवराज्यंस्यादहंगच्छामिदंडकान् ॥ किंतुराजानवक्तीहमांनजानेऽत्रकारणम् ॥ ६७ ॥ श्रुत्वैतद्रामवचनं
दृष्ट्वारामंपुरःस्थितम् ॥ प्राहराजादशरथोदुःखितोदुःखितंवचः ॥ ६८ ॥ स्त्रीजितंभ्रांतहृदयमुन्मार्गपरिवर्तिनम् ॥ निगृह्यमांगृहाणे
दंराज्यंपापंनतद्भवेत् ॥ ६९ ॥ एवंचेदनृतंनैवमांस्पृशेद्रघुनंदन ॥ इत्युक्त्वादुःखसंतप्तोविललापनृपस्तदा ॥ ७० ॥

वर्ष वनमें वासकरो ॥ ६५ ॥ आज यही तुम्हारे पिताका कार्य है; तुमको इसका करना उचितहै । हे रघुनंदन ! तौभी महाराज अपनेमुहसे यह बात तुमसे कहते हुए लजाते हैं" ॥ ६६ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले, "भरतकोही राज्य होवै, हम दण्डकवनको जाते हैं; परन्तु राजा अपने मुखसे इस विषय में हमसे कुछभी नहीं कहते हैं; इसका कारण कुछ समझमें नहीं आता " ॥६७॥ रामचंद्रजीके यह वचन सुनकर राजादशरथजी सन्मुख खड़ेहुए श्रीरामचंद्रजीको देख दुःखित भावसे दुःखसूचक वचन कहने लगे ॥६८॥ "मैं स्त्रीके वश होनेसे भ्रान्त बुद्धिवाला और कुमार्गपर चलनेवाला हूं;मुझको बांधकर बलकरके यह राज्य ग्रहण करो जिस्मे तुमको पाप न होगा और॥६९॥ हे रघुनंदन! ऐसा करनेसे मुझकोभी सत्यभ्रष्ट होना न पड़ैगा"

उसकाल यह कहकर राजा अति दुःखसे विलाप करने लगे ॥ ७० ॥ हाराम ! हा जगन्नाथ! तुम त्रिलोकके पालन करने योग्य हो; और हमें प्राणोंके समान प्यारे हो हाय ! हाय! ! हमको छोड़कर तुम किस प्रकारसे घोर वनमें जावोगे! ॥ ७१ ॥ ऐसे २ वचन कह रामको हृदयसे लगाय विविध भाँतिसे पुक्का छोडकर रोने लगे; वह नीतिविशारद श्रीरामचंद्रजी जलयुत हाथसे पिताके दोनों नेत्र पोछ॥७२॥ धीरे २ समझाने बुझानेलगे' " प्रभो!इस्से दुःख काहेको करते हो! हमारे छोटे भाई भरत राज्य पालन करैं ॥७३॥ मैं प्रतिज्ञापालन करके फिर आपके नगरमें लौट आऊंगा।हे राजन् वनमें रहनेसे मुझे राज्यसे करोड गुणा सुख मिलैगा ॥७४॥ हेदेव! और इस्से आपका सत्यपालनरूपकार्यभी सिद्ध होगा[1] हे राजन्! मेरे वनवास करनेमें कैकेयीकीभी सम्मति है; और इसमें गुणभी अनेक हैं ॥ ७५ ॥ माता कैकेयीके मनकी व्यथा दूर होवे, और अभिषेकके लिये इकठी कीहुई सामग्री दूर की जावै ॥ ७६ ॥ माता कौशल्याको सावधानकर ढांढस बँधाय जानकीकी, विनयकर फिर यहाँ आय मैं आपके चरणोंकी वंदना करूंगा; फिर सुखपूर्वक वनको चला जाऊँगा " ॥ ७७ ॥ यह कहकर श्रीरामचंद्रजी पिताकी परिक्रमाकर मैयाके देखनेको गये तिसकाल कौशल्याजी भी रामके मंगलार्थ विष्णुजीका जप करतीथीं ॥ ७८ ॥ होमभी करायाथा, ब्राह्मणोंको धन दिया एकाग्र चित्तहोकर मौन धारण किये कौशल्याजी

हारामहाजगन्नाथहाममप्राणवल्लभ ॥ मांविसृज्यकथंघोरंविपिनंगंतुमर्हसि ॥ ७१ ॥ इतिरामंसमालिंग्यमुक्तकंठोरुरोदह ॥ विसृज्यनयने
रामःपितुःसजलपाणिना ॥ ७२ ॥ आश्वासयामासनृपंशनैःसनयकोविदः ॥ किमत्रदुःखेनविभोराज्यंशासतुमेऽनुजः ॥ ७३ ॥ अहंप्रति
ज्ञांनिस्तीर्यपुनर्यास्यामितेपुरम् ॥ राज्यात्कोटिगुणंसौख्यंममराजन्वनेसतः ॥ ७४ ॥ त्वत्सत्यपालनंदेवकार्यंचापिभविष्यति ॥ कैकेय्या
श्चप्रियोराजन्वनवासोमहागुणः ॥ ७५ ॥ इदानींगंतुमिच्छामिव्येतुमातुश्चहृज्ज्वरः ॥ संभाराश्चोपह्रीयंतामभिषेकार्थमागताः ॥ ७६ ॥
मातरंचसमाश्वास्यअनुनीयचजानकीम् ॥ आगत्यपादौवंदित्वातवयास्येसुखंवनम् ॥ ७७ ॥ इत्युक्त्वातुपरिक्रम्यमातरंद्रष्टुमाययौ ॥
कौसल्याऽपिहरेःपूजांकुरुतेरामकारणात्॥७८॥होमंचकारयामासब्राह्मणेभ्योददौधनम् ॥ ध्यायतेविष्णुमेकाग्रमनसामौनमास्थिता ॥७९॥

---

[1] आपका सत्यपालन और देवताओंका कार्यभी सिद्धहोगा। यह गूढअर्थभी मूलसंमतहै परंतु इस अर्थमें "हे देव !"यह संबोधन नहीं रहेगा ।

विष्णुजीका ध्यान कर रहींथीं ॥ ७९ ॥ वे अन्तरमें विराजमान हुए, अनन्त चैतन्यप्रकाश, सर्वमय, सर्वान्तर्यामी, सदा आनंदमें रहनेवाले विष्णुजीकोही हृदयकमलमें ध्यान करतीथीं, इस कारण उन्होंने सम्मुख खडे हुए रामजीको नहीं देखपाया ॥ ८० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकांडे भाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ रामचंद्रजीका माता कौशल्यादिको समझायकर पिताके पास आना ॥

अंतःस्थमेकंघनचित्प्रकाशेनिरस्तसर्वातिशयस्वरूपम् ॥ विष्णुंसदानंदमयंहृदब्जेसाभावयंतीनददर्शरामम् ॥ ८० ॥ इतिश्रीमदध्या० अयोध्याकांडेतृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ ततःसुमित्रादृष्ट्वैनंरामंराज्ञींससंभ्रमा ॥ कौसल्यांबोधयामासरामोऽयंसमुपस्थितः ॥ १ ॥ श्रुत्वैवरामनामैषावहिर्दृष्टिप्रवाहिता ॥ रामंदृष्ट्वाविशालाक्षमालिंग्यांकेन्यवेशयत् ॥ २ ॥ मूर्ध्न्यवघ्रायपस्पर्शगात्रंनीलोत्पलच्छवि ॥ भुंक्ष्वपुत्रेतिचप्राहमिष्टमन्नंक्षुधार्दितः ॥ ३ ॥ रामःप्राहनमेमातर्भोजनावसरःकृतः ॥ दंडकागमनेशीघ्रंममकालोऽद्यनिश्चितः ॥ ४ ॥ कैकेयीवरदानेनसत्यसंधःपितामम ॥ भरतायददौराज्यंममाप्यारण्यमुत्तमम् ॥ ५ ॥ चतुर्दशसमास्तत्रह्युषित्वामुनिवेषधृक् ॥ आगमिष्येपुनःशीघ्रंनचिंतांकर्तुमर्हसि ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वासहसोद्विग्नामूर्च्छितापुनरुत्थिता ॥ आहरामंसुदुःखार्ताःदुःखसागरसंप्लुता ॥ ७ ॥

इसके उपरान्त सुमित्रा देवीने श्रीरामचंद्रजीको देखकर संभ्रमके साथ कौशल्याजीको जताती हुईः– " कि रामचंद्र सन्मुख खड़े हैं" ॥ १ ॥ राम नाम सुनतेही नेत्र खोल श्रीकौशल्याजीनें बड़ी बड़ी आंखोंवाले श्रीरामचंद्रजीको देख हृदयसे लगायकर गोदमें बैठाया ॥ २ ॥ और शिर सूंघकर नीलकमलके समान कांतिवाले उनके शरीरपर हाथ फेरकर कहा " बेटा ! कल उपवास किया है; निश्चय क्षुधालगी होगी, कुछ मिठाई खालो । " ॥ ३ ॥ रामचंद्रजी बोले " मैया हमें भोजन करनेका अवसर नहीं है; आज अतिशीघ्र हमारे दंडकवनमें जानेका नियतदिवस है ॥ ४ ॥ हमारे सत्यप्रतिज्ञा करनेवाले पिताजीने कैकेयीको दो वर दियेहैं जिसमें एक वरसे भरतको राज्य और दूसरे वरसे मुझको वनवासकी आज्ञा मिली है ॥ ५ ॥ मुनियोंकासा वेष धारणकर वहाँपर चौदह वर्षबस फिर शीघ्र आताहूं; तुम चिन्ता न करियो! वर्ष चारिदश वास वन,! करि पितु वचन प्रमान ॥ आय पाँय पुनि देखि हौं, मन जन करसि मलान " ॥ ६ ॥ यह सुनतेही तत्काल कौशल्याजी भयभीत हो मूर्च्छित होगईं;

दुःखसे अतिशय कातर हुईं; दुःखसमुद्रमें डूबी हुई;—राममाता कौशल्या कुछ देरके पीछे फिर उठीं और श्रीरामचंद्रजीसे बोलीं॥ ७॥ “ पुत्र रामचंद्र ! यदि सत्य सत्यही तुम वनको जाओ तो हमेंभी साथ ले चलो; बेटा ! तुम्हें छोड़कर मैं आधे क्षणभी किस प्रकारसे जीवन रख सकतीहूं ॥ ८ ॥ जिस प्रकार गाय अपने अति छोटे बछड़ेको छोड़कर किसी स्थानमें नहीं रह सकती; ऐसेही मैंभी प्राणसे अधिक प्यारे पुत्र—तुम्हें नहीं छोड़ सकती ॥ ९ ॥ जो महाराज भरतसे प्रसन्न हुए हैं; उनको राज्य दें, परन्तु वह हमारे प्रियपुत्र तुमको किस कारणसे वनमें जानेकी आज्ञा देते हैं ॥ १० ॥ महाराज कैकेयीको वर देकर सर्वस्वही उसको क्यों नदेदें ? कैकेयी या महाराजका तुमने बेटा! कौन अपराध किया है? जो राजा तुमको वनवास देते हैं ॥ ११ ॥ राम ! जिस प्रकारसे पिता तुम्हारे गुरु हैं; मैंभी तौ वत्स ! उनसे अधिक तुम्हारी गुरु हूं; तुम्हारे पिताने तुमको वन जानेकी आज्ञा दी है, मैं तुम्हें रोकतीहूं क्योंकि तुम हमारे पुत्रभीतौ हो ॥ १२ ॥ और जो मेरे वचनोंको लांघकर तुम राजाके वचनोंसे वनको जाओगे; तौ मैं तत्काल प्राणत्याग कर यमराजके गृहको चली जाऊंगी ” ॥ १३ ॥ तब लक्ष्मणजीभी कौशल्याजीके वचनको सुनकर क्रोध सहित निहार त्रिभुवनको दग्ध करते हुए श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगे ॥ १४ ॥ “ उन्मत्त (पागल) भ्रान्तचित्त कैकेयीके वशमें हुए भरतको बांधकर उनकी सहायता करनेवाले उनके मामाको मार डालूंगा ॥ १५ ॥ पूर्वकालमें सब लोकके भस्म करनेवाले अग्निके समान हमारे पराक्रमको सब

यदिरामवनंसत्यंयासिचेन्नयमामपि ॥ त्वद्विहीनाक्षणार्धंवाजीवितंधारयेकथम् ॥ ८ ॥ यथागौर्बालकंवत्संत्यक्त्वातिष्ठेन्नकुत्रचित् ॥ तथै
वत्वांनशक्नोमित्यक्तुंप्राणात्प्रियंसुतम् ॥ ९ ॥ भरतायप्रसन्नश्चेद्राज्यंराजाप्रयच्छतु ॥ किमर्थंवनवासायत्वामाज्ञापयतिप्रियम् ॥ १० ॥
कैकेय्यावरदोराजासर्वस्वंवाप्रयच्छतु ॥ त्वयाकिमपराद्धंहिकैकेय्यावानृपस्यवा ॥ ११ ॥ पितागुरुर्यथारामतवाहमधिकाततः ॥ पि
त्राज्ञप्तोवनंगंतुंवारयेयमहंसुतम् ॥१२॥ यदिगच्छसिमद्वाक्यमुल्लंघ्यनृपवाक्यतः ॥ तदाप्राणान्परित्यज्यगच्छामियमसादनम् ॥१३॥
लक्ष्मणोऽपिततःश्रुत्वाकौसल्यावचनंरुषा ॥ उवाचराघवंवीक्ष्यदहन्निवजगत्त्रयम् ॥ १४ ॥ उन्मत्तंभ्रांतमनसंकैकेयीवशवर्तिनम् ॥
बद्ध्वानिहन्मिभरतंतद्बंधून्मातुलानपि ॥ १५ ॥ अद्यपश्यंतुमेशौर्यंलोकान्प्रदहतःपुरा ॥ रामत्वमभिषेकायकुरुयत्नमरिंदम ॥ १६ ॥

कोई दख। हे शत्रुओंके मारनेवाले रामचंद्रजी! आप अभिषेकके लिये यत्न कीजिये ॥ १६ ॥ तिसमें जो कोई विघ्न करैगा; उसको हम धनुष
हाथमें लेकर मार डालेंगे!" लक्ष्मणजीके इस प्रकार कहनेपर रामचंद्र जीनें उनको हृदयसे लगायकर कहा ॥ १७ ॥ "हे रघुकुल
श्रेष्ठ! तुम वीर और हमारे अत्यन्त हितकारी हो; हम तुम्हारे विक्रमको भलीभाँति जानते हैं; परन्तु इस समय विक्रम प्रगट करनेका समय
नहीं है ॥ १८ ॥ यह राज्य और देहादि जो कुछ दिखाई देता है, जो यह समस्त सत्य होता तब तौ तुम्हारा यह परिश्रम कुछ एक सफल
होता; अर्थात् इन झूंठी वस्तुओंके लिये परिश्रम करना मिथ्या है ॥ १९ ॥ यह समस्त भोग बादलोंके समूहमें चमकनेवाली बिजलीकी रे
खाके समान चंचल हैं; और आयुभी आगसे तपाये लोहेकी शलाकापर गिरीहुई बूंदके समान क्षणभंगुर है ॥ २० ॥ सर्पके गलेमें जाते जातेभी भोजनके लिये डांसोंकी राह परखना मेंढ़कके लिये जैसाहै; कालरूप महासर्पके ग्रास किये हुए मनुष्योंको भोगोंकी राह परखनाभी वैसाही है ॥
॥ २१ ॥ इस कारण व्यर्थ संसारी विषयवासनामें मोहित होकर गुरुजनोंकी आज्ञाका लंघन करना बहुतही अनुचित कार्य है; मनुष्यगण अपने
शरीरको सुख देनेकी वासनासे दिन रात अति कष्ट करकै धनोपार्जनका व्यवहारकर आत्माको कलंकित करते हैं. कैसा मोह है? शरीर जड़ पदा
र्थक्या वह कभी सुखादिका भोगनेवाला होसकता है? सुखादिका भोक्ता पुरुष; इस पुरुषसे देहकी पृथक्ता साफ साफही ज्ञात होती है;। शरीर
स्थित पुरुषका सुखादि भोगनाभी असंभवहीहै; क्योंकि पुरुष विशुद्धस्वभाव है-अतएव समस्त वासनाही अलीक हैं ॥ २२ ॥ पिता, माता, पुत्र

धनुष्पाणिरहंतत्रनिहन्यांविघ्नकारिणः ॥ इतिब्रुवंतंसौमित्रिमालिंग्यरघुनंदनः ॥ १७ ॥ शूरोऽसिरघुशार्दूलममात्यंतहितेरतः ॥ जाना
मिसर्वंतेसत्यंकिंतुतत्समयोनहि ॥ १८ ॥ यदिदंदृश्यतेसर्वंराज्यंदेहादिकंचयत् ॥ यदिसत्यंभवेत्तत्रआयासःसफलश्चते ॥ १९ ॥
भोगामेघवितानस्थविद्युल्लेखेवचंचलाः ॥ आयुरप्यग्निसंतप्तलोहस्थजलबिंदुवत् ॥ २० ॥ यथाव्यालगलस्थोऽपिभेकोदंशानपेक्षते ॥
तथाकालाहिनाग्रस्तोलोकोभोगानशाश्वतान् ॥ २१ ॥ करोतिदुःखेनहिकर्मतंत्रंशरीरभोगार्थमहर्निशंनरः ॥ देहस्तुभिन्नःपुरुषा
त्समीक्ष्यतेकोवात्रभोगःपुरुषेणभुज्यते ॥ २२ ॥ पितृमातृसुतभ्रातृदारबंध्वादिसंगमः ॥ प्रपायामिवजंतूनांनद्यांकाष्ठौघवच्चलः ॥ २३ ॥

भ्राता, स्त्री और बन्धु आदिका सम्बन्ध, पौशालामें बहुतसे यात्रोंकि इकठा होनेके समान और नदीकी धारमें बहते होनेसे बहुतसे काठोंके मिलनेके समान स्थिरहै ॥ २३ ॥ निश्चित है कि सम्पत्ति छायाके समान चंचल; यौवन जलतरंगके समान चपल; स्त्रीसंभोग करनेका सुख स्वप्नके समान, और आयु अल्प है, तौभी प्राणियोंको इतना अभिमान है ॥ २४ ॥ निरन्तर रोगादियुक्त संसार, स्वप्न और गंधर्व[1] नगरके समान है; मूढ़ पुरुषही उसपर अनुराग करते हैं ॥ २५ ॥ सूर्यका उदय अस्त होनेके समय समस्त प्राणियोंकी आयु क्षय होती है। क्या यह दूसरोंका बुढ़ापा और मृत्यु देखकर अनुभव नहीं होता? ॥ २६ ॥ रात्रि वीतनेके पीछे दिवस होनेपर दिनके भोगेहुए सुखका अनुभव करकै,

छायेवलक्ष्मीश्चपलाप्रतीतातारुण्यमंबूर्मिवदध्रुवंच ॥ स्वप्नोपमंस्त्रीसुखमायुरल्पंतथाऽपिजंतोरभिमानएषः ॥ २४ ॥ संसृतिःस्वप्नसदृशीसदारोगादिसंकुला ॥ गंधर्वनगरप्रख्यामूढस्तामनुवर्तते ॥ २५ ॥ आयुष्यंक्षीयतेयस्मादादित्यस्यगतागतैः ॥ दृष्ट्वाऽन्येषां जरामृत्यूकथंचिन्नैवबुद्ध्यते ॥ २६ ॥ सएवदिवसःसैवरात्रिरित्येवमूढधीः ॥ भोगाननुपतत्येवकालवेगंनपश्यति ॥ २७ ॥ प्रतिक्षणं क्षरत्येतदायुरामघटांबुवत् ॥ सपत्नाइवरोगौघाःशरीरंप्रहरंत्यहो ॥ २८ ॥ जराव्याघ्रीवपुरतस्तर्जयंत्यवतिष्ठते ॥ मृत्युःसहैवयात्येषसमयंसंप्रतीक्षते ॥ २९ ॥ देहेऽहंभावमापन्नोराजाऽहंलोकविश्रुतः ॥ इत्यस्मिन्मनुतेजंतुःकृमिविड्भस्मसंज्ञिते ॥ ३० ॥

दिनके अन्तमें रात्रिका सुख आनेसे मनुष्यगण कितनाही अनुराग करते हैं ?। आश्चर्य! कालके सोतेको देखकर क्या उन्हें क्षणभरके लियेभी परमायुके क्षय होनेकी शंका नहीं होती? ॥ २७ ॥ और कच्चे घड़ेमें रक्खे हुए जलके समान प्रतिक्षण परमायु क्षीण हो रही है; रोगोंका समूह बलवान् शत्रुके समान शरीरपर बराबर प्रहार करता है; ॥ २८ ॥ वृद्धावस्था, व्याघ्रीके समान सन्मुख खड़ी होकर भय दिखाती है; मृत्यु संग २ ही चल रही है; केवल समयको परख रही है कि कब चुंगलमारूं ॥ २९ ॥ तौभी मनुष्यगण कृमिविष्ठाभस्ममय (सड़कर देहमें कीड़े पड़ जाते हैं; कोई इसको भक्षणकरले तो विष्ठा होजाता है, जलनेपर भस्म होजाता है) देहमें "अहं" ज्ञानकर अपनेको " लोक विख्यात

---

[1] शून्यमें भ्रमसे दिखाई देनेवाली अटा अटारियोंका नाम गंधर्वनगर है।

राजा समझता है ॥ ३० ॥ परन्तु त्वचा, (खाल) अस्थि, (हड्डी) मांस, विष्ठा, मूत्र, वीर्य, इत्यादि युक्त परिणाममें विकारयुक्त होनेवाला देह; आत्मा किस प्रकारसे होगा? ॥ ३१ ॥ हेलक्ष्मण! जिस रागादिदोषका अवलंबन करकै तुम त्रिलोकीको भस्म करनेकी इच्छा करतेहो यह देहाभिमान अतितुच्छ, और सर्वदोषोंकी खानि है; इस प्रकारका दोष देहाभिमानी पुरुषको होता है ॥ ३२ ॥ हे लक्ष्मण! देहमें आत्म बुद्धि छोड़ो, " मैंही देहहूं " इस प्रकारकी देहका नाम अविद्या है, "मैं देहसे अलग चिन्मय आत्माहूं " इस प्रकारकी बुद्धिका नाम विद्या है ॥ ३३ ॥ पहली अविद्या संसारका कारण है; विद्या केवल संसारसे निवृत्ति करनेवाली है, इस कारणसे मुक्ति पानेके अभिलाषी पुरुषोंको

त्वगस्थिमांसविण्मूत्ररेतोरक्तादिसंयुतः ॥ विकारीपरिणामीचदेहआत्माकथंवद ॥ ३१ ॥ यमास्थायभवाँल्लोकंदग्धुमिच्छतिलक्ष्मण ॥ देहाभिमानिनःसर्वेदोषाःप्रादुर्भवंतिहि ॥ ३२ ॥ देहोऽहमितियाबुद्धिरविद्यासाप्रकीर्तिता ॥ नाहंदेहश्चिदात्मेतिबुद्धिर्विद्येतिभण्यते ॥ ३३ ॥ अविद्यासंसृतेर्हेतुर्विद्यातस्यानिवर्तिका ॥ तस्माद्यत्नःसदाकार्योविद्याभ्यासेमुमुक्षुभिः ॥ कामक्रोधादयस्तत्रशत्रवःशत्रुसूदन ॥ ३४ ॥ तत्रापिक्रोधएवालंमोक्षविघ्नायसर्वदा ॥ येनाविष्टःपुमान्हंतिपितृभ्रातृसुहृत्सखीन् ॥ ३५ ॥ क्रोधमूलोमनस्तापःक्रोधःसंसारबंधनम् ॥ धर्मक्षयकरःक्रोधस्तस्मात्क्रोधंपरित्यज ॥ ३६ ॥ क्रोधएषमहाञ्छत्रुस्तृष्णावैतरणीनदी ॥ संतोषोनंदनवनंशांतिरेवहिकामधुक् ॥ ३७ ॥ तस्मात्क्षांतिंभजस्वाद्यशत्रुरेवंभवेन्नते ॥ देहेंद्रियमनःप्राणबुद्ध्यादिभ्योविलक्षणः ॥ ३८ ॥

सदाही विद्याके अभ्यास करनेका यत्न करना चाहिये ॥ ३४ ॥ इस विद्याका अभ्यास करनेमें काम, क्रोधादि प्रबल रिपु (शत्रु) बाधा डालते हैं. इन शत्रुओंमें सबसे बढकर क्रोधही मुक्तिप्राप्तिमें विघ्न करनेवाला है; कि जिस क्रोधकें प्रभावसे मनुष्य आविष्ट होकर, पिता, माता, भ्राता, सुहृद और सखा इन सबको मारडालते हैं ॥ ३५ ॥ मनके संतापका मूल क्रोधही है; क्रोधही संसारका बन्धन है; और क्रोधसे धर्मक्षय होता है; इसलिये क्रोध त्याग करना उचित है ॥ ३६ ॥ हे लक्ष्मण! परमशत्रु क्रोध वैतरणी नदीके समान कठिनतासे पार जानेके योग्य है; और सन्तोष, नन्दनवनके समान फल दिया करता है, शान्ति कामधेनुका स्वरूप है ॥ ३७ ॥ इस कारण शांतिका भजन करो, ! तौ कोई तुम्हारा

शत्रु न होगा ॥ ३८ ॥ आत्मा शुद्ध, स्वयंज्योतिःस्वरूप, निर्विकार, और निराकार है; इसकारण वह, इन्द्रिय, मन, प्राण, बुद्धि इत्यादिसे अलग है। जबतकं आत्माको देह, इन्द्रिय, और प्राणसे अलग नहीं समझते हैं ॥ ३९ ॥ तबतक वारंवार संसारके दुःखसमुद्रमें और मृत्युके मुखमें गिरते हैं; इसकारण तुम सदा ही आत्माको बुद्ध्यादिसे अलग समझो ॥ ४० ॥ किन्तु इन बुद्धि इत्यादिका आश्रय करकै ही लोकव्यवहार के अनुरागी होकर चलो। सुख दुःख जो कुछभी प्रारब्धसे होवे, उसको भोगलो; किसी प्रकारसे खेद नकरो ॥ ४१ ॥ संसारके प्रवाहमें गिरकर कर्म करते रहने परभी कर्मफल लोप नहीं होगा। हे राघव ! सो पाप पुण्यके द्वारा बाह्य इन्द्रियादिकोंमे कर्तव्य धर्म विचारते और अंतःस्वभाव

आत्माशुद्धःस्वयंज्योतिरविकारीनिराकृतिः ॥ यावद्देहेंद्रियप्राणैर्भिन्नत्वंनात्मनोविदुः ॥ ३९ ॥ तावत्संसारदुःखौघैःपीड्यंतेमृत्युसंयुताः ॥ तस्मात्त्वंसर्वदाभिन्नमात्मानंहृदिभावय ॥ ४० ॥ बुद्ध्यादिभ्योबहिःसर्वमनुवर्तस्वमाखिदः ॥ भुंजन्प्रारब्धमखिलंसुखंवादुःखमेववा॥४१॥प्रवाहपतितःकार्यंकुर्वन्नपिनलिप्यसे ॥ बाह्येसर्वत्रकर्तृत्वमावहन्नपिराघव ॥४२॥ अंतःशुद्धस्वभावस्त्वंलिप्यसेनचकर्मभिः ॥ एतन्मयोदितंकृत्स्नंहृदिभावयसर्वदा॥४३॥ संसारदुःखैरखिलैर्बाध्यसेनकदाचन ॥ त्वमप्येवंमयादिष्टंहृदिभावयनित्यदा ॥४४॥ समागमंप्रतीक्षस्वनदुःखैःपीड्यसेचिरम् ॥ नसदैकत्रसंवासःकर्ममार्गानुवर्तिनाम् ॥ ४५ ॥ यथाप्रवाहपतितप्लवानांसरितांतथा ॥ चतुर्दशसमासंख्याक्षणार्धमिवजायते ॥ ४६ ॥ अनुमन्यस्वमामंबदुःखंसंत्यज्यदूरतः ॥ एवंचेत्सुखसंवासोभविष्यतिवनेमम ॥ ४७ ॥

वास्तवमें शुद्ध रखनेसे तुम कर्मफलमें लिपटे नहीं रहोगे। ” मेरा कहा हुआ यह उपदेश सदा हृदयमें ध्यान करो ॥४२ ॥ ४३ ॥ तौ फिर कभी किसी संसारी दुःखसे दुःखित नहीं होगे। (अब मातासे कहते हैं) “ हे मैया ! मेरे कहे हुएको तुमभी सदा मनमें विचार किया करना ॥ ४४ ॥ हमारे लौटआनेके समयकी वाट जोहती रहना; दुःखसे बहुत दिनतक कातर न होना पड़ेगा। कर्ममार्गमें चलनेवाले प्राणियोंका बहुत कालतक एक जगह वास नहीं होता ॥ ४५ ॥ जैसे नदीकी धारमें चलती हुई छोटी २ नावें एकस्थानपर नहीं ठहर सक्तीं। चौदह वर्ष, आधे क्षणके समान बीत जांयगे ॥ ४६ ॥ मैया! हृदयसे दुःखको दूर करकै हमें वन जानेकी आज्ञा दे दो; तुम्हारी आज्ञा पानेसे वनमें जाकर मुझे कुछभी

कष्ट न होगा”॥४७॥ इस प्रकार श्रेष्ठ वचन कहकर श्रीरामचंद्रजी माताके चरणोंमें गिरपड़े। देवी कौशल्याजीनेंभी श्रीरामचंद्रजीको गोदमें लेकर उनको आशीर्वाद दिया ॥ ४८ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादि देवता, गन्धर्व, तुम्हारी चलते फिरते, शयन करते, और सोते हुए सदा रक्षा करें ॥ ४९ ॥ कौशल्याजीने यह कहकर वारंवार श्रीरामचंद्रजीको हृदयसे लगाकर विदा कर दिया; तब लक्ष्मणजीने भी श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करकै आनंदके आँसुओंसे गद्गदहुई वाणीसे कहा ॥५०॥ “हे राम आज आपने मेरे मनका संदेह दूर किया; हेराम ! मैं आपकी सेवाकरनेके लिये पीछे २ चलूंगा, आप आज्ञा दीजिये ॥ ५१ ॥ हेराम ! मेरेपर अनुग्रह कीजिये, नहीं तौ मैं प्राण छोड़दूंगा। ” रामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा। “ अच्छा चलो, विलम्ब न करो, ” ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजी माताके भवनसे चले गये; और विभु सीतापति, सीताजीको समझाने बुझानेके लिये अपने गृहको आये, मन्द मुसक्यान सहित बोलनेवाली जानकीजी अपने स्वामिको आता हुआ देखकर ॥ ५३ ॥ सुवर्णके पात्रमें रक्खेहुए जल करके भक्तिभावसे उनके चरण धोतीहुई। इसके उपरान्त स्वामीको देखकर पूछा कि “हे देव ! बिना सेनाके ॥५४॥ कहां गयेथे ? उसको साथलेकर क्यों न आये ? तुम्हारा श्वेतच्छत्र कहां है ? बाजे क्यों नहीं बजते ? किरीटादि राजोचित भूषण क्योंनहीं हैं ? ॥ ५५ ॥ अपने अधीन हुए राजाओंके साथ सबको संभ्रम करतेहुए क्यों नहीं आये। ” सीताजीके ऐसा

इत्युक्त्वादंडवन्मातुःपादयोरपतच्चिरम् ॥ उत्थाप्यांकेसमावेश्यआशीर्भिरभिनंदयत् ॥ ४८ ॥ सर्वेदेवाःसगंधर्वाब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥
रक्षंतुत्वांसदायांतंतिष्ठंतंनिद्रयायुतम् ॥ ४९ ॥ इतिप्रस्थापयामाससमालिंग्यपुनःपुनः ॥ लक्ष्मणोऽपितदारामंनत्वाहर्षाश्रुगद्गदः ॥
॥५० ॥ आहराममम्मांतस्थःसंशयोऽयंत्वयाहृतः ॥ यास्यामिपृष्ठतोरामसेवांकर्तुंतदादिश ॥ ५१ ॥ अनुगृह्णीष्वमांरामनोचेत्प्राणां
स्त्यजाम्यहम् ॥ तथेतिराघवोऽप्याहलक्ष्मणंयाहिमाचिरम् ॥ ५२ ॥प्रतस्थेतांसमाधातुंगतःसीतापतिर्विभुः ॥ आगतंपतिमालोक्यसी
तासुस्मितभाषिणी ॥ ५३ ॥ स्वर्णपात्रस्थसलिलैःपादौप्रक्षाल्यभक्तितः ॥पप्रच्छपतिमालोक्यदेवकिंसेनयाविना ॥ ५४ ॥ आगतोऽ
सिगतःकुत्रश्वेतच्छत्रंचतेकुतः ॥ वादित्राणिनवाद्यंतेकिरीटादिविवर्जितः ॥ ५५ ॥ सामंतराजसहितःसंभ्रमान्नागतोऽसिकिम् ॥ इति
स्मसीतयापृष्टोरामःसस्मितमब्रवीत् ॥ ५६ ॥

पूछनेपर श्रीरामचंद्रजीने मुसकाय कर कहा ॥ ५६ ॥ हे शुभे ! महाराजने हमको दण्डकवनका सम्पूर्ण राज्य दे दिया । हे भामिनि ! इसकारण इस राज्यका पालन करनेके लिये मैं शीघ्रही वहाँपर जाताहूं ॥५७॥ मैं आजही वनको जाऊंगा, तुम गुरुजनोंके निकट रहकर हमारी माता और अपनी श्वश्रूकी सेवा करना;इस बातको हँसी मत समझियो,क्योंकि हम मिथ्यावादी नहीं हैं ॥५८॥ श्रीरामचंद्रजीके यह कहनेपर जानकीजी भयभीत होकर बोलीं "तुम्हारे महात्मा पिताजीने तुम्हें किसकारणसे वनका राज्य दिया? ॥ ५९ ॥ श्रीरामचंद्रजीने उनसे कहा, "हे पुण्यवति ! महाराजने प्रसन्न होकर वर दियाहै, तिस्से भरतको राज्य और मुझको बनवास देना स्थिर हुआ है ॥ ६० ॥ मेरे चौदह वर्षतक वनमें वसनेकी प्रार्थना देवी कैकेयीने राजासे की; दयालु सत्यवादी राजाने उस प्रार्थनाको पूर्णकिया ॥६१॥हे भामिनी ! इसलिये शीघ्रही जाऊंगा विघ्न मतकरियो " श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर जानकीजी प्रीतिसहित ॥६२॥ बोलीं कि, " पहले मैं वनको जाऊंगी, मेरे पीछे तुम चलियो; हेराघव ! हमें छोड़कर वनजाना तुम्हें उचित नहीं है ।" ॥ ६३ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी प्रसन्न होकर प्यारे वचन कहनेवाली, अपनी प्यारी स्त्री जानकीजीसे बोले;–"व्याघ्रादि विविध हिंसक जन्तुपूर्ण वनमें हम तुमको किसप्रकारसे लेजांय ॥ ६४ ॥वहाँपर मनुष्योंको खानेवाले विकटाकार राक्षस रहते हैं, सिंह, व्याघ्र, और वराहगण (सुअर) चारों ओर घूमतेहैं ॥ ६५ ॥ हे श्रेष्ठ कमरवाली ! वहाँपर कड़वे, खट्टे फल मूल भोजन करने पड़ते हैं; किसी समयभी, पुए, या

राज्ञामेदंडकारण्येराज्यंदत्तंशुभेऽखिलम् ॥ अतस्तत्पालनार्थायशीघ्रंयास्यामिभामिनि ॥ ५७ ॥ अद्यैवयास्यामिवनंत्वंतुश्वश्रूसमी
पगा ॥ शुश्रूषांकुरुमेमातुर्नमिथ्यावादिनोवयम् ॥ ५८ ॥ इतिब्रुवंतंश्रीरामंसीताभीताऽब्रवीद्वचः ॥ किमर्थंवनराज्यंतेपित्रादत्तंमहा
त्मना ॥ ५९ ॥ तामाहरामःकैकेय्यैराजाप्रीतोवरंददौ ॥ भरतायददौराज्यंवनवासंममानघे ॥ ६० ॥ चतुर्दशसमास्तत्रवासोमेकिलया
चितः ॥ तयादेव्याददौराजासत्यवादीदयापरः ॥ ६१ ॥ अतःशीघ्रंगनिष्यामिमाविघ्नंकुरुभामिनि ॥ श्रुत्वातद्रामवचनंजानकीप्री
तिसंयुता ॥ ६२ ॥ अहमग्रेगमिष्यामिवनंपश्चात्त्वमेष्यसि ॥ इत्याहमांविनागंतुंतवराघवनोचितम् ॥ ६३ ॥ तामाहराघवःप्रीतःस्व
प्रियांप्रियवादिनीम् ॥ कथंवनंत्वांनेष्येऽहंवहुव्याघ्रमृगाकुलम् ॥ ६४ ॥ राक्षसाघोररूपाश्चसंतिमानुषभोजिनः ॥ सिंहव्याघ्रवराहाश्चसं
चरंतिसमंततः ॥ ६५ ॥ कट्वम्लफलमूलानिभोजनार्थंसुमध्यमे ॥ अपूपानिव्यंजनानिविद्यंतेनकदाचन ॥ ६६ ॥

अनेकप्रकारके व्यंजन नहीं मिलते॥६६॥ हे सुन्दरि ! समय २ पर वहांपर फलभी नहीं पाये जाते, कहींपरही पायेजाते हैं; मार्गका चिह्नभी दिखाई नहीं देता, जो कहीं दिखाईभी देताहै तौ उसपर कांटे पड़े होते हैं ।।६७।।यह वन गुहा व गढ़ोंसे भराहुआ, झिल्ली और डासोंसे परिपूर्ण है; इसप्रकार से इस दण्डकवनमें ऐसे अनेक दोष हैं ॥६८ ॥ ऐसे वनमें तुम्हें पैदल चलना पड़ैगा; शीत, बयार, और घामका न सहने योग्य कष्ट सहना होगा । स्वामीके पास रहनेसे पतिव्रता स्त्रीके समस्त कष्ट नाशको प्राप्त होजाते हैं; परन्तु उसघोर भयंकर वनमें तुम अतिभीत स्वभाव होनेके कारण, भयंकर मूर्तिवाले राक्षसादिको देखकर निश्चयही प्राण छोड़दोगी ॥ ६९ ॥हे भद्रे ! इस्से तुम घरमें रहो; हमको फिर शीघ्रही देखपाओगी ।

कालेकालेफलंवाऽपिविद्यतेकुत्रसुंदरि ॥ मार्गोनदृश्यतेक्कापिशर्कराकंटकान्वितः ॥ ६७ ॥ गुहागह्वरसंबाधंझिल्लीदंशादिभिर्युतम् ॥
एवंबहुविधंदोषंवनंदंडकसंज्ञितम् ॥ ६८ ॥ पादचारेणगंतव्यंशीतवातातपादिमत् ॥ राक्षसादीन्वनेदृष्ट्वाजीवितंहास्यसेऽचिरात् ॥६९॥
तस्माद्भद्रेगृहेतिष्ठशीघ्रंद्रक्ष्यसिमांपुनः ।। रामस्यवचनंश्रुत्वासीतादुःखसमन्विता ॥७०॥ प्रत्युवाचस्फुरद्वक्त्राकिंचित्कोपसमन्विता ॥
कथंमामिच्छसेत्यक्तुंधर्मपत्नींपतिव्रताम् ॥ ७१ ॥ त्वदनन्यामदोषांमांधर्मज्ञोऽसिदयापरः ॥ त्वत्समीपेस्थितांरामकोवामांधर्षये
द्वने ॥७२॥ फलमूलादिकंयद्यत्तवभुक्तावशेषितम् ॥ तदेवामृततुल्यंमेतेनतुष्टाऽऽरमाम्यहम् ॥ ७३ ॥ त्वयासहचरंत्यामेकुशाःकाशाश्च
कंटकाः ॥ पुष्पास्तरणतुल्यामेभविष्यंतिनसंशयः ॥ ७४ ॥ अहंत्वांक्लेशयेनैवभवेयंकार्यसाधिनी ॥ बाल्येमांवीक्ष्यकाश्चिद्द्विज्योतिः
शास्त्रविशारदः ॥ ७५ ॥

श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर सीताजी अतिदुःखित हुईं ॥ ७० ॥ कोपभी कुछ आगया; कोप व दुःखसे उनके अधर-होठ कांपनेलगे । जानकीजीने उत्तरदिया कि-"तुम पतिव्रता और अपनी धर्मपत्नीको छोड़नेकी इच्छा क्यों करतेहो ? ॥ ७१ ॥ तुम तौ धर्मके जाननेवाले और दयालुहो; सो मुझ दोषरहितको कैसे छोड़ोगे ? हेराम ! बनमें तुम्हारे निकट रहनेपर कौन मेरा तिरस्कार करसकता है ? ॥ ७२ ॥ तुम्हारे भोजनकरनेपर जो कुछ बचे बचाये फल मूल रहैंगे; वही मुझे अमृतके समान जानपड़ेंगे, तिनसेही मैं संतुष्ट होकर आनन्दसे रहूंगी ॥ ७३ ॥ तुम्हारे साथ विचरण करते रहनेसे, कुश, कांस, कांटे हमको फूलोंके समान जानपड़ैंगे; इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ७४ ॥ मैं तुम्हें क्लेश नहीं दूंगी; वरन् कार्य सिद्धकरदू

गी (यहांपर गूढ़ आशयसे रावणादिका वध होना जताती हैं) “ बालकपनमें एकज्योतिषीने जो कि बड़ा निपुणथा मुझको देखकर कहा ॥ ७५ ॥ कि-“पतिके साथ तुम्हैं बनवास होगा।”ब्राह्मणका वाक्य सत्यहो, मैं तुम्हारे साथ चलूंगी ॥ ७६ ॥ और भी कुछ कहतीहूं, कि जिसको सुनकर मुझे भी अपनेसाथ वनको लेचलो, अनेकवार अनेक ब्राह्मणोंके मुखसे रामायण सुनी है ॥ ७७ ॥ क्या किसी रामायण में भी यह लिखा है कि बिन जानकीके रामचंद्र वनको गयेहैं ! बताओ ? विशेषकरके मैं सब कार्योंमें तुम्हारी सहायता करनेवालीहूं इसकारण तुम्हारे साथ वनको चलूंगी ॥ ७८ ॥ जो मुझको छोड़कर जाना चाहतेहो, तौ मैं तुम्हारे सामनेही प्राण छोड़दूंगी । ” सीताजीका यह दृढ़ निश्चय जानकर ॥ ७९ ॥ रामचंद्र

प्राहतेविपिनेवासःपत्यासहभविष्यति ॥ सत्यवादीद्विजोभूयाद्गमिष्यामित्वयासह ॥ ७६ ॥ अन्यत्किंचित्प्रवक्ष्यामिश्रुत्वामांनयकाननम् ॥ रामायणानिबहुशःश्रुतानिबहुभिर्द्विजैः ॥ ७७ ॥ सीतांविनावनंरामोगतःकिंकुत्रचिद्वद ॥ अतस्त्वयागमिष्यामिसर्वथात्वत्सहायिनी ॥ ७८ ॥ यदिगच्छसिमांत्यक्त्वाप्राणांस्त्यक्ष्यामितेऽग्रतः ॥ इतितंनिश्चयंज्ञात्वासीतायारघुनंदनः ॥ ७९ ॥ अब्रवीद्देविगच्छत्वं वनंशीघ्रंमयासह ॥ अरुंधत्यैप्रयच्छाशुहारानाभरणानिच ॥८०॥ ब्राह्मणेभ्योधनंसर्वंदत्त्वागच्छामहेवनम् ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणेनाशु द्विजानाहूयभक्तितः ॥ ८१ ॥ ददौगवांवृंदशतंधनानिवस्त्राणिदिव्यानिविभूषणानि ॥ कुटुंबवद्भ्यःश्रुतशीलवद्भ्योमुदाद्विजेभ्योरघुवशकेतुः ॥ ८२ ॥ अरुंधत्यैददौसीतामुख्यान्याभरणानिच ॥ रामोमातुःसेवकेभ्योददौधनमनेकधा ॥ ८३ ॥ स्वकांतःपुरवासिभ्यः सेवकेभ्यस्तथैवच ॥ पौरजानपदेभ्यश्चब्राह्मणेभ्यःसहस्रशः ॥ ८४ ॥ लक्ष्मणोऽपिसुमित्रांतुकौसल्यायैसमर्पयत् ॥ धनुष्पाणिःसमागत्यरामस्याग्रेव्यवस्थितः ॥ ८५ ॥

जी बोले; “देवि ! शीघ्र हमारे साथ वनको चलो; हार इत्यादि समस्त आभूषण अरुन्धती (वशिष्ठजीकी स्त्रीका नाम है) को देदो ॥ ८० ॥ मैं अपना समस्त धन ब्राह्मणोंको दान देकर वनको चलताहूं।” यह कहकर भक्तिभावसे सब ब्राह्मणोंको लक्ष्मणजीसे बुलवाया ॥ ८१ ॥ उन ब्राह्मणोंको बुलाय रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीनें सुशील, गृहस्थ, पण्डित, ब्राह्मणोंको आनन्दचित्तसे शतवृन्द गाय, बहुतसाधन, दिव्यवस्त्र, और भूषणादि दान करदिये ॥ ८२ ॥ बड़े और अच्छे २ गहने जानकीजीने अरुन्धतीको दानकिये । माताके सेवकलोगोंकोभी श्रीरामचंद्रजीने अनेक प्रकारसे धन दिया ॥ ८३ ॥ और अपने अन्तःपुरमें रहनेवाले सेवक लोगोंको व नगर, जनपदके रहनेवाले ब्राह्मणोंको सहस्रों धन दिया ॥ ८४ ॥ धनुष

धारण करनेवाले श्रीमान् लक्ष्मणजीभी अपनी माता सुमित्राको कौशल्याके समर्पणकर वहाँपर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख आये ॥ ८५ ॥ श्रीरामचन्द्र, सीता, लक्ष्मण—यह सबही राजभवनको चले ॥८६॥ सहस्रों कामदेवके समान सुन्दर मूर्तियुक्त श्यामवर्णवाले श्रीरामचंद्रजी; अपनीकांति की छटासे सब दिशाओंको प्रकाशमान करतेहुए, सीता और लक्ष्मणजीकेसाथ राजमार्गमें गमन करनेलगे । पुरवासी व अनेक देशोंके रहनेवाले, कुतूहलके सहित उनको देखने लगे; आनन्दचित्तसे श्रीरामचंद्रजी उनको दर्शन देतेहुए; अपने चरणधरनेसे समस्त पृथ्वी, लोकको पवित्र करतेहुए अपने पिताजीके भवनको प्राप्तहुए ॥ ८७ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंम्वादे अयोध्याकाण्डे भाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

रामःसीतालक्ष्मणश्चजग्मुःसर्वेनृपालयम् ॥ ८६ ॥ श्रीरामःसहसीतयानृपपथेगच्छञ्छनैःसानुजःपौराञ्जानपदान्कुतूहलदृशःसानंदमुद्रीक्षयन् ॥ श्यामःकामसहस्रसुंदरवपुःकांत्यादिशोभासयन्पादन्यासपवित्रिताऽखिलजगत्प्रापालयंतत्पितुः ॥ ८७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेअयोध्याकांडेचतुर्थःसर्गः ॥४॥ ॥श्रीमहादेवउवाच ॥ आयांतंनगराद्दृष्ट्वामार्गेरामंसजानकिम् ॥ लक्ष्मणेनसमंवीक्ष्यऊचुःसर्वेपरस्परम् ॥ १ ॥ कैकेय्यावरदानादिश्रुत्वादुःखसमावृताः ॥ बतराजादशरथःसत्यसंधंप्रियंसुतम् ॥ २ ॥ स्त्रीहेतोरत्यजत्कामीतस्यसत्यवताकुतः ॥ कैकेयीवाकथंदुष्टारामंसत्यंप्रियंकरम् ॥ ३ ॥ विवासयामासकथंक्रूरकर्माऽतिमूढधीः ॥ हेजनानात्रवस्तव्यंगच्छामोऽद्यैवकाननम् ॥ ४ ॥

लक्ष्मण व सीताजीके साथ श्रीरामचंद्रजीका वनमें जाना । श्रीमहादेवजी बोले;—सीता और लक्ष्मणजीके साथ राजमार्गमें जातेहुए श्रीरामचंद्रजीको देख नगरवासी लोग परस्पर एक दूसरेको निहार बात चीत करनेलगे ॥ १ ॥ कैकेयीके वरदानादि पानेका वृत्तान्त सुनकर अति दुःखित हुये और बोले "हाय ! राजादशरथजीने सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले अपने प्यारे पुत्रको ॥ २ ॥ कामके वश होकर स्त्रीके हेतुसे त्यागदिया । उनकी सत्यशीलता कहां रही? कैकेयीभी तो प्रथम श्रीरामचंद्रजीमें प्रीति करतीथी ॥३॥ फिर वह क्यों रामचंद्रजीको बनवास देतीहै? वह कैसे क्रूरकर्मकारी और मूढ़बुद्धिवाली हुई? हे भइया! इस बातमें हमलोग कुछ विचार नहीं करते;जिस बनमें सीता और

लक्ष्मणके साथ श्रीरामचंद्रजी वसनेकी इच्छा करते हैं; वहींपर हम सब मिलकर रहेंगे; देखो तो; जानकीजी पैदल चल रही हैं ॥४॥५॥ जिन भुवनसुन्दरी जानकीजीको कभी किसी पुरुषने नहीं देखा, वही जानकीजी सबके बीचमें होकर प्रगटभावसे गमन कर रही हैं ॥ ६ ॥ यह देखो ! सब लोगोंके बीचमें होकर अद्वितीय सुन्दर प्रभु श्रीरामचंद्रजीभी हाथी घोड़े आदिकी सवारी छोड़कर पैदल गमन कर रहे हैं ॥ ७ ॥ तुम लोग देखो कि, कैकेयी नामक एक सबका नाश करनेवाली राक्षसी पैदा हुई है ! सीताजीके पैदल चलनेसे श्रीरामचंद्रजीको दुःख होता है ॥ ८ ॥ इस बातमें दैवही बलवान् है; पुरुषका यत्न दुर्बल है ” जब भले आदमी इस प्रकारसे दुःख कर रहेथे तब मुनि श्रेष्ठ वामदेवमुनि ॥ ९ ॥ उन

यत्ररामःसभार्यश्चसानुजोगंतुमिच्छति ॥ पश्यंतुजानकींसर्वेपादचारेणगच्छतीम् ॥ ५ ॥ पुंभिःकदाचिद्दृष्टावाजानकीलोकसुंदरी ॥ साऽपिपादेनगच्छंतीजनसंवेष्वनावृता ॥ ६ ॥ रामोऽपिपादचारेणगजाश्वादिविवर्जितः ॥ गच्छतिद्रक्ष्यथविभुंसर्वलोकैकसुंदरम् ॥ ७ ॥ राक्षसीकैकयीनाम्नीजातासर्वविनाशिनी ॥ रामस्यापिभवेद्दुःखंसीतायाःपादयानतः ॥ ८ ॥ बलवान्विधिरेवात्रपुंप्रयत्नोहिदुर्बलः ॥ इतिदुःखाकुलेवृंदेसाधूनांमुनिपुंगवः ॥ ९ ॥ अब्रवीद्वामदेवोऽथसाधूनांसंघमध्यगः ॥ मानुशोचथरामंवासीतांवावच्मितत्त्वतः ॥ १० ॥ एषरामःपरोविष्णुरादिनारायणःस्मृतः ॥ एषासाजानकीलक्ष्मीर्योगमायेतिविश्रुता॥ ११ ॥असौशेषस्तमन्वेतिलक्ष्मणाख्यश्चसांप्रतम्॥ एषमायागुणैर्युक्तस्तत्तदाकारवानिव ॥ १२ ॥ एषएवरजोयुक्तोब्रह्माऽभूद्विश्वभावनः ॥ सत्त्वाविष्टस्तथाविष्णुस्त्रिजगत्प्रतिपालकः॥ १३॥ एषरुद्रस्तामसोंऽतेजगत्प्रलयकारणम् ॥ एषमत्स्यःपुराभूत्वाभक्तंवैवस्वतंमनुम् ॥ १४ ॥

भले पुरुषोंके बीचमें आकर कहने लगे कि “ राम, या सीताके लिये कुछभी शोक न करना, मैं सार वचन कहताहूं सुनो ॥ १० ॥ यह श्रीरामचंद्रजी आदि नारायण परम विष्णु कहाते हैं. यह जानकीजी; योगमायारूपी प्रसिद्ध वह लक्ष्मीजी हैं ॥ ११ ॥ और अनन्त देव इस समय लक्ष्मण नाम धारण करके उन विष्णुजीके अनुगामी हुए हैं ॥ यह (राम) मायाके गुणयोगसे उस आकारमें मिले हुएके समान प्रकाशमान होते हैं ॥ १२ ॥ इन्होंनेही रजोगुणके मेलसे “ ब्रह्म ” रूप होकर संसारकी सृष्टि की है, सतोगुणके मेलसे यही विष्णुरूप होकर त्रिलोकका पालन करते हैं ॥ १३ ॥ और अन्तमें यही तमोगुणके मिश्रसे रुद्ररूपी होकर जगत्का संहार कर डालते हैं। इन्होंनेही पूर्वकालमें मत्स्यरूपी होकर

भक्त वैवस्वत मनुको ॥ १४ ॥ नावपर सवार कराकर प्रलयकाल पूर्णहोने तक दिन दिन रक्षाकी थी। पूर्वकालमें समुद्र मथते २ जब मंदर पर्वत पातालको चलने लगा ॥ १५ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीने कूर्मरूपी होकर इस पर्वतको अपनी पीठपर धारण किया। जब पृथ्वी पातालमें डूब गईथी; उस प्रलयके समयमें शूकरमूर्ति धारणकर ॥ १६ ॥ रामचंद्रजीनें पृथ्वीको दांतकी नोकपर उठा लिया। पहले समयमें नरसिंह मूर्ति धारणकर प्रह्लादको वर दिया ॥ १७ ॥ और त्रिलोकीके कांटेरूप हिरण्यकश्यपको नखोंसे चीर फाड डाला। पूर्वकालमें अदितिने पुत्रोंका राज्य हराहुआ देखकर जैसे प्रार्थना की ॥ १८ ॥ उसके अनुसार वामनरूप धार याचना कर उस राज्यको फिर उवार लिया; दुष्ट क्षत्रियों करकै उत्पन्न हुए पृथ्वीका भार उतारनेको भृगुवंशमें जमदग्निके यहां जन्म ले परशुराम हुए, और क्षत्रियोंका संहार किया ॥ १९ ॥ उन्हीं जगदीश्वरमें इस समय रामरूपसे अवतार लिया है; रावणादि करोड़ों राक्षसोंका संहार करैंगे ॥ २० ॥ उस दुरात्मा रावणकी मृत्यु मनुष्यके हाथसे बदी है। राजा दशरशजीनेभी तप करके नारायणकी आराधना की ॥ २१ ॥ इस कारणसे कि, विष्णुजी मेरे पुत्र हों; उनके यहांपर नारायणजीनें पुत्ररूपसे अवतार लिया है वही विष्णुरूपी श्रीरामचंद्रजी रावणका संहार करनेके लिये ॥ २२ ॥ सहायवान् लक्ष्मणके साथ आजही वनको जांयगे। यह सीताजी, सृष्टि, स्थिति, संहार करनेवाली विष्णुजीकी भार्या हैं ॥ २३ ॥ रामचंद्रजीके इस वनवासमें राजा और कैकेयी तो साधारण कारणभी

नाव्यारोप्यलयस्यांतंपालयामासराघवः ॥ समुद्रमथनेपूर्वंमंदरेसुतलंगते ॥ १५ ॥ अधारयत्स्वपृष्ठेऽद्रिंकूर्मरूपीरघूत्तमः॥महीरसातलं याताप्रलयेसूकरोऽभवत् ॥ १६ ॥ तोलयामासदंष्ट्राग्रेतांक्षोणींरघुनंदनः ॥ नारसिंहंवपुःकृत्वाप्रह्लादवरदःपुरा ॥ १७ ॥ त्रिलोककंटकंरक्षःपाटयामासतन्नखैः ॥ पुत्रराज्यंहृतंदृष्ट्वाह्यदित्यायाचितःपुरा ॥ १८ ॥ वामनत्वमुपागम्ययाच्ञयाचाहरत्पुनः ॥ दुष्टक्षत्रियभूभारनिवृत्त्यैभार्गवोऽभवत् ॥ १९ ॥ सएवजगतांनाथइदानींरामतांगतः ॥ रावणादीनिरक्षांसिकोटिशोनिहनिष्यति ॥ २० ॥ मानुषेणैवमरणंतस्यदृष्टंदुरात्मनः ॥ राज्ञादशरथेनापितपसाराधितोहरिः ॥ २१ ॥ पुत्रत्वाकांक्षयाविष्णोस्तदापुत्रोऽभवद्धरिः ॥ सएवविष्णुःश्रीरामोरावणादिवधायहि ॥ २२ ॥ गंताऽद्यैववनंरामोलक्ष्मणेनसहायवान् ॥ एषासीताहरेर्मायासृष्टिस्थित्यंतकारिणी ॥ २३ ॥ राजावाकैकयीवाऽपिनात्रकारणमण्वपि ॥ पूर्वेद्युर्नारदःप्राहभूभारहरणायच ॥ २४ ॥

नहीं है।पहले दिन नारदजीभी भूभार हरण करनेको कहने आयेथे ॥ २४ ॥ स्वयं श्रीरामचंद्रजीने उनके सन्मुख कहा है कि "मैं कल प्रातःकालही वनको जाऊंगा।" हे अनबूझ लोगो! रामचंद्रके लिये चिन्ता मतकरो ॥२५॥ पृथ्वीपर जो मनुष्य सदाही "राम राम" कहकर जप करतेहैं; उनको कदापि मृत्युके भयादि नहीं होते ॥ २६ ॥ इस कारण उन परमात्मा रामचंद्रजीको दुःखकी शंका कैसे हो सकती है; कलियुगमें केवल रामसेही मुक्ति होती है; और किसी प्रकारसे नहीं होती ॥ २७ ॥ लोककी शिक्षाके अर्थ श्रीरामचंद्रजी अपनी मायाकरकै मनुष्यअवतार ग्रहण कर लोकव्यवहारकी रक्षा करते हैं; और अलग २ रुचिवाले लोगोंकी उपासनाके लिये उपासनायोग्य मूर्ति ग्रहण किये हुए हैं, इससे राजा दशरथ

रामोऽप्याहस्वयंसाक्षाच्छ्वोगमिष्याम्यहंवनम् ॥ अतोरामंसमुद्दिश्यचिंतांत्यजतबालिशाः ॥ २५ ॥ रामरामेतियेनित्यंजपंतिमनुजाभुवि ॥ तेषांमृत्युभयादीनिनभवंतिकदाचन ॥ २६ ॥ कापुनस्तस्यरामस्यदुःखशंकामहात्मनः ॥ रामनाम्नैवमुक्तिःस्यात्कलौनान्येनकेनचित् ॥ २७ ॥ मायामानुषरूपेणविडंवयातिलोककृत् ॥ भक्तानांभजनार्थायरावणस्यवधायच ॥ २८ ॥ राज्ञश्चाभीष्टसिद्ध्यर्थंमानुषंवपुराश्रितः ॥ इत्युक्त्वाविररामाथवामदेवोमहामुनिः ॥ २९ ॥ श्रुत्वातेऽपिद्विजाःसर्वेरामंज्ञात्वाहरिंविभुम् ॥ जहुर्हृत्संशयग्रंथिंराममेवान्वचिंतयन् ॥ ३० ॥ यइदंचिंतयेन्नित्यंरहस्यंरामसीतयोः ॥ तस्यरामेदृढाभक्तिर्भवेद्विज्ञानपूर्विका ॥ ३१ ॥ रहस्यंगोपनीयंवोयूयंवैराघवप्रियाः ॥ इत्युक्त्वाप्रययौविप्रस्तेऽपिरामंपरंविदुः ॥ ३२ ॥ ततोरामःसमाविश्यपितृगेहमवारितः ॥ सानुजःसीतयागत्वाकैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ ३३ ॥

जीकी इष्टसिद्धि और देवताओंसे सदा द्रोह करनेवाले रावणके वधका कार्य पूरा हो जायगा।" यह गुप्त वृत्तान्त कहकर महामुनि वामदेवजी मौन होगये ॥ २८ ॥ २९ ॥ यह गुप्त वृत्तान्त सुनकर वह समस्त ब्राह्मण श्रीरामचंद्रजीको साक्षात् प्रभु विष्णु जानते हुए; मनके संदेहकी गांठको दूर करकै श्रीरामचंद्रजीकाही ध्यान करने लगे ॥ ३० ॥ जो पुरुष नित्य इस रामगीताके रहस्यका ध्यान करैगा; उसको ब्रह्मज्ञानकी मूलरूप श्रीरामचंद्रजीके प्रति दृढभक्ति हो जायगी ॥ ३१ ॥ "तुम लोग श्रीरामचंद्रजीके प्यारे हो; यह भेद साधारणमें प्रगट मत करना;" तब उन सबने रामजीको ईश्वर समझा ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त लक्ष्मण और जानकीजीके साथ स्वच्छन्दतासे श्रीरामचंद्रजी पिताके गृहमें प्रवेश क

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

रके कैकयीसे यह बोले ॥ ३३ ॥ "मैया! जिसकी तुमने अभिलाषा की है उस वनगमनमें हम तीनजनोंने जानेका विचार किया है; पिताजी हमको शीघ्रतासे आज्ञा देदें" ॥ ३४ ॥ रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर कैकेयीने तत्काल अपने आप उठकर, रामजी, लक्ष्मण, और सीताजीको अलग २ चीर वसन दिये ॥ ३५ ॥ श्रीरामचंद्रजीने अपने वस्त्र उतारकर वनवास करनेके योग्य चीर वसन पहिरे, लक्ष्मणजीनेभी उन वस्त्रोंको धारण किया; सीताजी इन वस्त्रोंको पहरना नहीं जानतीथीं ॥ ३६ ॥ इस कारण यह चीर हाथमें लेकर लाजके मारे श्रीरामचंद्रजीकी ओर देखने लगीं; रामचंद्रजीनें उस चीरको ग्रहण करकै सीताके वस्त्रोंपर लपेट दिया ॥ ३७ ॥ यह देख सब राजरानियें चारों ओरसे रोने लगीं; उस रोनेकी

आगताःस्मोवयंमातस्त्रयस्तेसंमतंवनम् ॥ गंतुंकृतधियःशीघ्रमाज्ञापयतुनःपिता ॥३४॥ इत्युक्तासहसोत्थायचीराणिप्रददौस्वयम् ॥ रामायलक्ष्मणायाथसीतायैचपृथक्पृथक् ॥ ३५ ॥ रामस्तुवस्त्राण्युत्सृज्यवन्यचीराणिपर्यधात् ॥ लक्ष्मणोऽपितथाचक्रेसीतातन्नविजानती ॥ ३६ ॥ हस्तेगृहीत्वारामस्यलज्जयामुखमैक्षत ॥ रामोगृहीत्वातच्चीरमंशुकेपर्यवेष्टयत् ॥ ३७ ॥ तद्दृष्ट्वारुरुदुःसर्वेराजदाराःसमंततः ॥ वसिष्ठस्तुतदाकर्ण्यरुदितंभर्त्सयन्रुषा ॥ ३८ ॥ कैकेयींप्राहदुर्वृत्तेरामएवत्वयावृतः ॥ वनवासायदुष्टेत्वंसीतायैकिंप्रयच्छसि ॥ ३९ ॥ यदिरामंसमन्वेतिसीताभक्त्यापतिव्रता ॥ दिव्यांबरधरानित्यंसर्वाभरणभूषिता ॥४०॥ रमयत्वनिशंरामंवनदुःखनिवारिणी॥ राजादशरथोऽप्याहसुमंत्रंरथमानय ॥ ४१ ॥ रथमारुह्यगच्छंतुवनंवनचरप्रियाः ॥ इत्युक्त्वाराममालोक्यसीतांचैवसलक्ष्मणम् ॥४२॥ दुःखान्निपतितोभूमौरुरोदाश्रुपरिप्लुतः ॥ आरुरोहरथंसीताशीघ्रंरामस्यपश्यतः ॥ ४३ ॥

ध्वनिको सुनकर वशिष्टजी क्रोधसे ललकारते हुए ॥ ३८ ॥ कैकेयीसे बोले; "रेदुश्चरित्रे! [खोटे आचरणकरने वाली] तैंनें केवल रामचंद्रजीकेही वनवासका वर लिया है; दुष्टे! फिर सीताको वनवासियोंके योग्य चीर वसन पहरनेको क्यों दिया? ॥ ३९ ॥ जो पतिव्रता सीताजी भक्तिके वश होकर रामचंद्रजीके साथ जाय तौ इस बातसे तुझे क्या काम? वह निरन्तर दिव्य वस्त्रभूषणोंसे भूषित होकर ॥ ४० ॥ रामचंद्रजीके दुःखोंको जो उनपर वनवास करनेमें पडेंगे, दूर करकै, उनको सब समयमें आनंदकी देनें वाली होवैं." राजा दशरथजीने सुमंत्रसे कहा कि "रथ लावो ॥ ४१ ॥ मुनिगणप्रिय रथपर चढ़कर वनको जांय" यह कहकर रामचंद्र लक्ष्मण सीताको देख राजा दशरथजी ॥ ४२ ॥ दुःखके

CSU-Jaipur Campus Collection

वेगसे पृथ्वीपर गिर पड़े और आंसुओंकी धारासे सींचे जायकर रोने लगे। श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख सीताजी शीघ्र रथपर चढ़ीं ॥ ४३ ॥ रामचंद्रजी पिताकी प्रदक्षिणा करकै शीघ्र रथपर चढे। लक्ष्मण दो खड्ग, दो धनुष और दो तरकश ॥ ४४ ॥ लेकर रथपर चढकर सारथीको रथ चलानेकी आज्ञा देते हुए; तब राजा दशरथजी कहने लगे,-- 'सुमंत्र ! ठहरो ! ठहरो !' ॥ ४५ ॥ 'चलो' चलो-- ' यह कहकर श्रीरामचंद्रजी सुमंत्रको शीघ्रता कराने लगे; सुमंत्रने रथ चलाया; रामचंद्रजीके दूर चले जानेपर राजा दशरथजी मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े ॥ ४६ ॥ पुरवासी, बालक वृद्ध, और ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणगण, "हे राम ! मत जाओ, खडे रहो।" ऐसा कहकर चिल्लाते हुए रामचंद्रजीके रथके पीछे चलने लगे ।। ४७ ॥ राजादशरथजी बहुत देरतक रोते रहकर सेवकलोगोंसे बोले; कि "हमको तुम रामकी माता कौशल्याके घरमें ले चलो ॥ ४८ ॥ दुःखमें डूबा हुआ मैं वहाँपर रहनेसे कुछ कालतक बच जाऊंगा, परन्तु रामके विरहमें इसके पीछे बहुत समयतक मैं किसी प्रकारसेभी न जीता रह सकूंगा" ॥ ४९ ॥ इसके उपरान्त राजा दशरथजी कौशल्याके गृहमें प्रवेश करतेही मूर्च्छित होकर गिरपड़े; फिर बहुत देरके पीछे चैतन्यता प्राप्त करकै चुप रहगये ॥ ५० ॥ इस ओर तमसानदीके किनारेपर गमन करकै श्रीरामचंद्रजी वहाँ सुखसे टिके रहे निराहार रहकर केवल जल पीकर धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी वृक्षकी जड़में सीताजीके सहित शयन करते हुए और सुमंत्रके साथ धनुषबाण हाथमें लेकर लक्ष्मणजी रामचंद्रजीकी

रामःप्रदक्षिणंकृत्वापितरंरथमारुहत् ॥ लक्ष्मणःखड्गयुगलंधनुस्तूणीयुगंतथा ॥ ४४ ॥ गृहीत्वारथमारुह्यनोदयामाससारथिम् ॥
तिष्ठतिष्ठसुमंत्रेतिराजादशरथोऽब्रवीत् ॥ ४५ ॥ गच्छगच्छेतिरामेणनोदितोऽचोदयद्रथम् ॥ रामेदूरंगतेराजामूर्च्छितःप्रापतद्भुवि ॥
॥ ४६ ॥ पौरास्तुबालवृद्धाश्चवृद्धाब्राह्मणसत्तमाः ॥ तिष्ठतिष्ठेतिरामेतिक्रोशंतोरथमन्वयुः ॥ ४७ ॥ राजारुदित्वासुचिरंमांनयंतुगृहं
प्रति ॥ कौसल्यायाराममातुरित्याहपरिचारकान् ॥ ४८ ॥ किंचित्कालंभवेत्तत्रजीवनंदुःखितस्यमे ॥ अतऊर्ध्वंनजीवामिचिरंरामं
विनाकृतः ॥४९॥ ततोगृहंप्रविश्यैवकौसल्यायाःपपातह ॥ मूर्च्छितश्चचिराद्बुद्ध्वातूष्णीमेवावतास्थिवान् ॥ ५० ॥ रामस्तुतमसाती
रंगत्वातत्रावसत्सुखी ॥ जलंप्राश्यनिराहारोवृक्षमूलेऽस्वपद्विभुः ॥ ५१ ॥ सीतयासहधर्मात्माधनुष्पाणिस्तुलक्ष्मणः ॥ पालयामास
धर्मज्ञःसुमंत्रेणसमन्वितः ॥ ५२ ॥

चौकीदेने लगे ॥५१॥५२॥ समस्त पुरवासीभी आयकर श्रीरामचंद्रजीके अतिनिकट शयन करते हुए । " यातौ रामचंद्रजीको अयोध्यापुरीमें लौटायकर ले चलेंगे; नहीं तौ हमभी वनको चले जांयगे । " ॥ ५३ ॥ऐसा उन पुरवासियोंने निश्चय किया था। यह जानकर श्रीरामचंद्रजी अंत्यन्त विस्मित हुए और "मैं तौ नगरको जाऊंगा नहीं;—यह वृथा क्लेश पावेगें" ॥ ५४ ॥ यह विचार मनही मन एक उपाय सोचकर सुमंत्रसे कहा; " सुमंत्र ! हम अभी चलेंगे—रथलेआओ " ॥ ५५ ॥ सुमंत्रने यह आज्ञा पायकर रथमें घोड़े जोड़े। इसके उपरान्त राम, सीता,और लक्ष्मण रथपर सवार होकर अतिशीघ्र चले ॥ ५६ ॥ रामचंद्रजीकी आज्ञानुसार पहले तौ सुमंत्रने रथ अयोध्याकी ओरको चलाया;फिर आगे वनको

पौराःसर्वेसमागत्यस्थितास्तस्याविदूरतः ॥ शक्तारामंपुरंनेतुंनोचेद्गच्छामहेवनम् ॥ ८३ ॥ इतिनिश्चयमाज्ञायतेषांरामोऽतिविस्मितः॥
नाहंगच्छामिनगरमेतेवैक्लेशभागिनः ॥ ८४ ॥ भविष्यंतीतिनिश्चित्यसुमंत्रमिदमब्रवीत् ॥ इदानीमेवगच्छामःसुमंत्ररथमानय ॥८५॥
इत्याज्ञप्तःसुमंत्रोऽपिरथंवाहैरयोजयत् ॥ आरुह्यरामःसीताचलक्ष्मणोऽपिययुर्द्रुतम् ॥ ८६ ॥ अयोध्याभिमुखंगत्वाकिंचिद्दूरंततोययुः॥
तेऽपिराममदृष्ट्वैवप्रातरुत्थायदुःखिताः ॥ ८७ ॥ रथनेमिगतंमार्गंपश्यंतस्तेपुरंययुः ॥ हृदिरामंससीतंतेध्यायंतस्तस्थुरन्वहम् ॥८८॥
सुमंत्रोऽपिरथंशीघ्रंनोदयामाससादरम् ॥ स्फीताञ्जनपदान्पश्यन्रामःसीतासमन्वितः ॥ ८९ ॥ गंगातीरंसमागच्छच्छृंगवेराविदूरतः ॥
गंगांदृष्ट्वानमस्कृत्यस्नात्वासानंदमानसः ॥ ९० ॥

चले. प्रातःकाल उठकर श्रीरामचंद्रजीको न देखकर पुरवासी गण अतिदुःखित होकर ॥ ५७ ॥ रथ[1]नेमि । (रथके पहियों) के मार्गको देखकर नगरको चलेगये । अयोध्याको लौटनेका कारण यह था कि सुमंत्रने ऐसा खोज छिपाकर रथ हाँका था कि पुरवासियोंने आगेजाने को मार्ग न पाया; इसकारण वे अयोध्याको लौट गये । पुरवासी वहाँपर श्रीरामचंद्रजीके दर्शन न पायकर निरन्तर सीतारामका मनमें ध्यान करके नगरमें टिके रहे ॥ ५८॥ सुमंत्रनेभी आदरके साथ शीघ्रही रथको चलाया । श्रीरामजी सीतासहित बड़े २ देश देखतेहुए ॥ ५९ ॥ शृङ्गवेरपुरके

---

[1] चक्रकी धारको नेमि कहतेहैं।

अतिनिकट गङ्गाके किनारेपर पहुंचे। गङ्गाजीको देख नमस्कार कर उनमें आनन्दचित्तसे नहाये ॥ ६० ॥ शीशमके पेड़की जड़में अर्थात् इस वृक्ष के तले रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी बैठे। इसके उपरान्त गुहने मनुष्योंसे उत्सवमय श्रीरामजीका आना सुना ॥ ६१ ॥ वह भक्तिके सहित फल शहत, पुष्पादि ग्रहणकरकै सखा और राजारामको देखनेके लिये अति आनन्दसे शीघ्र रामजीके निकट आया ॥ ६२ ॥ रामचंद्रजीके सामने वह समग्र सामग्री रखकर साष्टाङ्ग दण्डवत् कर पृथ्वीपर गिरताहुआ। रामचन्द्रजीने अतिशीघ्रतासे गुहको उठाकर अपने हृदयसे लगाया ॥ ६३ ॥ श्रीरामचंद्रजीके कुशल पूछनेपर निषाद हाथ जोड़कर बोला; "हे लोकपावन! (लोकोंके पवित्र करनेवाले) आज मैं धन्यहुआ; आज मेरा निषाद

शिंशपावृक्षमूलेसनिषसादरघूत्तमः ॥ ततोगुहोजनैःश्रुत्वारामागममहोत्सवम् ॥ ६१ ॥ सखायंस्वामिनंद्रष्टुंहर्षात्तूर्णंसमापतत् ॥ फला
निमधुपुष्पादिगृहीत्वाभक्तिसंयुतः ॥ ६२ ॥ रामस्याग्रेविनिक्षिप्यदंडवत्प्रापतद्भुवि ॥ गुहमुत्थाप्यतंतूर्णंराघवःपरिषस्वजे ॥ ६३ ॥
संपृष्टकुशलोरामंगुहःप्रांजलिरब्रवीत् ॥ धन्योऽहमद्यमेजन्मनैषादंलोकपावन ॥ ६४ ॥ बभूवपरमानंदःस्पृष्ट्वातेऽगंरघूत्तम ॥ नैषाद
राज्यमेतत्तेकिंकरस्यरघूत्तम ॥ ६५ ॥ त्वदधीनंवसन्नत्रपालयास्मान्रघूद्वह ॥ आगच्छयामोनगरंपावनंकुरुमेगृहम् ॥ ६६ ॥ गृहाणफ
लमूलानित्वदर्थंसंचितानिमे ॥ अनुगृह्णीष्वभगवन्दासस्तेऽहंसुरोत्तम ॥ ६७ ॥ रामस्तमाहसुप्रीतोवचनंशृणुमेसखे ॥ नवेक्ष्यामिगृहं
ग्रामंनववर्षाणिपंचच ॥ ६८ ॥ दत्तमन्येननोभुंजेफलमूलादिकिंचन ॥ राज्यंममैतत्तेसर्वंत्वंसखामेऽतिवल्लभः ॥ ६९ ॥

जन्म धन्य हुआ! ॥ ६४ ॥ हे रघुवर! आपका अङ्गस्पर्शकर मुझको परमानन्द हुआ; हेरघुवर! आपके किंकरका यह निषादराज्य ॥ ६५ ॥ आपहीके अधीन है; हे रघुवर! यहांपर विराजमान होकर हमको पालन करो! आइये! नगरमें चलिये, मेरे गृहको पवित्र कीजिये ॥ ६६ ॥ मैंने आपके लिये जो फल मूल संग्रह कियेहैं; उनको ग्रहण कीजिये! भगवन्! अनुग्रह करो; हे सुरश्रेष्ठ! मैं तुम्हारा दास हूं" ॥ ६७ ॥ गुहके भक्ति और प्रेमसाने वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजीने गुहसे अति प्रसन्न होकर कहा; "हे मित्र! सुनो, हम चौदहवर्षतक ग्राम या गृहमें प्रवेश नहीं करैंगे ॥ ६८ ॥ औरके दियेहुए फलमूलभी भक्षण नहीं करैंगे; ऐसी मेरी प्रतिज्ञा है; तुम्हारा यह समस्त राज्य हमाराही है; तुमभी मेरे परमप्रिय मित्रहो ॥ ६९ ॥

इसके उपरान्त वटका दूध मँगवाकर श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी जटाजूट बाँधतेहुए ॥ ७० ॥ लक्ष्मणजीने कुश और पत्तोंका बिछौना बिछादिया पहले जिसप्रकार अयोध्यामें महलपर शयन करते थे; वैसेही आनन्दसे केवल जलही पानकर श्रीरामचन्द्र सीताके साथ उस बिछौनेपर विराजमान हुए। और सजेहुए पलंगके समान उसपर सीताजीके सहित नींदके वशहो गये ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ रामचन्द्रजीके अति निकट धनुष, बाण, तरकश धारण कियेहुए लक्ष्मणजी धनुष उठाय चारोंओर देखते भालते धनुषधारी गुहके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी चौकी देनेलगे ॥ ७३ ॥ इति श्रीमदध्यात्म रामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकांडे भाषाटीकायां पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ वाल्मीकिजीके आश्रममें श्रीरामचन्द्रजीका आना ॥

वटक्षीरंसमानाय्यजटामुकुटमादरात् ॥ बबंधलक्ष्मणेनाथसहितोरघुनंदनः ॥ ७० ॥ जलमात्रंतुसंप्राश्यसीतयासहराघवः ॥ आस्तृतं कुशपर्णाद्यैःशयनंलक्ष्मणेनहि ॥ ७१ ॥ उवासतत्रनगरप्रासादाग्रेयथापुरा ॥ सुष्वापतत्रवैदेह्यापर्यंकइवसंस्कृते ॥ ७२ ॥ ततोविदूरे परिगृह्यचापंसबाणतूणीरधनुःसलक्ष्मणः ॥ ररक्षरामंपरितोविपश्यन्गुहेनसार्धंसशरासनेन ॥ ७३ ॥ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादेअयोध्याकांडेपंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ ॥ सुप्तंरामंसमालोक्यगुहःसोऽश्रुपरिप्लुतः ॥ लक्ष्मणंप्राहविनयाद्भ्रातःपश्य सिराघवम् ॥ १ ॥ शयानंकुशपत्रौघसंस्तरेसीतयासह ॥ यःशेतेस्वर्णपर्यंकेस्वास्तीर्णेभवनोत्तमे ॥ २ ॥ कैकेयीरामदुःखस्यकारणं विधिनाकृता ॥ मंथराबुद्धिमास्थायकैकेयीपापमाचरत् ॥ ३ ॥ तच्छ्रुत्वालक्ष्मणःप्राहसखेशृणुवचोमम ॥ कःकस्यहेतुर्दुःखस्य कश्चहेतुःसुखस्यवा ॥ ४ ॥ स्वपूर्वार्जितकर्मैवकारणंसुखदुःखयोः ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको शयन कियेहुए देखकर, आंसुओंकी धार बहातेहुए गुहने विनयसहित लक्ष्मणजीसे कहा।हे भैय्या! देखतेहो ॥ १ ॥ उत्तम महलमें, सुवर्णके पलँगपर उत्तम शय्यापर शयनकरनेका जिनको अभ्यास है वही रामचन्द्रजी आज कुशके बिछौनेपर सीताजीके सहित शयन कर रहेहैं ॥ २ ॥ विधाताने कैकेयीको रामचन्द्रजीके दुःखका कारण किया है;मंथराकी बुद्धि पायकर कैकेयीने ऐसे पापका कार्य किया! ॥ ३ ॥ यह सुनकर लक्ष्मण जी बोले,–"सखे! हमारी बात सुनो; कौन किसको दुःख देसकता है? कौन किसको सुख देसकता है? ॥ ४ ॥ अपने पूर्वजन्मका इकठा किया

हुआ कर्मफलही सुखदुःखका कारण है ॥५॥ अन्य कोईभी सुख दुःख नहीं देसकता; दूसरा कोई सुख दुःख देसक्ता है, यह ज्ञान भ्रमात्मक है,“ मैं करताहूं ” यहभी वृथाअभिमान है; क्योंकि लोग अपने २ कर्मकी डोरीमें गूंथेहुए हैं; जिसप्रकार धागा पकड़ने वाला पुरुष डोरा लगीहुई काठकी पुतलीको डोराचलायकर अनेकभाँतिसे नाच नचाताहै; वैसेही परमेश्वर कर्मके डोरेमें बँधेहुए लोगोंको कनेक कार्यमें घुमाता है ॥ ६ ॥ जिसप्रकार मनुष्य अपने कर्मके वशसे शत्रुता या मित्रता प्राप्त कर लिया करताहै, सुखदुःखादिमेंभी वैसेही देखना होगा; अर्थात् सुखजनक कार्य करनेसे सुख और दुःखजनककार्य करनेसे अवश्यही दुःख होगा ॥ ७ ॥ अपने कर्मके अधीन हुआ मनुष्य सुख या दुःख जिससमय जो कुछभी आनपड़ैगा तत्कालही उसको भोगकर स्वस्थमन होताहै ॥ ८ ॥ संसारमें जो पुरुष भोगके अधीन नहीं है, वह मुझको भोग प्राप्तकरनेकी अभिलाषा नहीं है

सुखस्यदुःखस्यनकोऽपिदातापरोददातीतिकुबुद्धिरेषा ॥ अहंकरोमीतिवृथाऽभिमानःस्वकर्मसूत्रग्रथितोहिलोकः ॥ ६ ॥ सुहृन्मित्रायुदासीनद्वेष्यमध्यस्थबांधवाः ॥ स्वयमेवाचरन्कर्मतथातत्रविभाव्यते ॥ ७ ॥ सुखंवायदिवादुःखंस्वकर्मवशगोनरः ॥ यद्यद्यथागतंतत्तद्भुक्त्वास्वस्थमनाभवेत् ॥ ८ ॥ नमेभोगागमेवांछानमेभोगविवर्जने ॥ आगच्छत्वथमागच्छत्वभोगवशगोभवे ॥ ९ ॥ यस्मिन्देशेचकालेचयस्माद्वायेनकेनवा ॥ कृतंशुभाशुभंकर्मभोज्यंतत्तत्रनान्यथा ॥ १० ॥ अलंहर्षविषादाभ्यांशुभाशुभफलोदये ॥ विधात्राविहितंयद्यत्तदलंघ्यंसुरासुरैः ॥ ११ ॥ सर्वदासुखदुःखाभ्यांनरःप्रत्यवरुद्ध्यते ॥ शरीरंपुण्यपापाभ्यामुत्पन्नंसुखदुःखवत् ॥ १२ ॥ सुखस्यानंतरंदुःखंदुःखस्यानंतरंसुखम् ॥ द्वयमेतद्धिजंतूनामलंघ्यंदिनरात्रिवत् ॥ १३ ॥ सुखमध्येस्थितंदुःखंदुःखमध्येस्थितंसुखम् ॥ द्वयमन्योन्यसंयुक्तंप्रोच्यतेजलपंकवत् ॥ १४ ॥

न मुझको भोगत्यागनेकी आकांक्षा है; भोग, आवै आओ न आवै न आवो इसप्रकार मनमें समझताहै ॥ ९ ॥ जिस देशमें; जिसकालमें चाहै जिसकारणसे हो—जो कोईभी अच्छा बुरा कार्य करैगा; उसको निःसन्देह उसकार्यका फल भोगना पड़ैगा ॥ १० ॥ इसलिये शुभफल होनेसे हर्ष या विषाद करना अनुचित है; जो कुछ विधाताने लिखदिया है उसको देवता या असुर कोईभी लंघन नहीं करसकता ॥ ११ ॥ सदाही मनुष्य सुख या दुःखसे घिरारहता है; सुखदुःखमय शरीरही पापपुण्यके फलसे उत्पन्न है; सुखके बाद दुःख; दुःखके पीछे सुख; दिन और रात्रि की समान प्राणियोंको व्यापता रहता है; उसको उल्लंघन करनेकी किसीमें सामर्थ्य नहीं ॥१२॥१३॥ हे भैय्या ! जिसप्रकार जलस्थित पंक(कीच-

ड़) में जल है-इस जलमें पंकके इस प्रकार रहनेसे बराबर संबन्ध देखाजाता है; वैसेही सुख दुःखकाभी सदाही संबन्ध है; अर्थात् सुखके बीचमें दुःख और दुःखमेंभी सुख रहता है। दुःखरहित सुख मनुष्यदेहमें संभवनहीं होसक्ता ॥ १४ ॥ जिस प्रकार इन्द्रजाल विद्या करके इष्टानिष्टकी प्राप्तिसे किसीको हर्ष या विषाद नहीं होता; वैसेही पंडितलोग "सबही माया है ऐसा समझकर धीरहो इष्टानिष्टकी प्राप्तिसे हर्षित या मोहित नहीं होते हैं" ॥ १५ ॥ इस प्रकार गुह और लक्ष्मणजीकी बातचीत होते २ आकाश निर्मल होगया । रामचंद्रजीने सावधानहो जल स्पर्शकर प्रातःक्रिया की ॥ १६ ॥ और बोले;—" हे सखे! हमारे लिये शीघ्र दृढ़ नौका लेआओ।" निषादराज गुह रामचंद्रजीके वचन सुनकर ॥ १७॥ अपने आप

तस्माद्धैर्येणविद्वांसइष्टानिष्टोपपत्तिषु॥ नहृष्यंतिनमुह्यंतिसर्वंमायेतिभावनात् ॥ १५॥ गुहलक्ष्मणयोरेवंभाषतोर्विमलंनभः॥बभूवरामः सलिलंस्पृष्ट्वाप्रातःसमाहितः ॥ १६ ॥ उवाचशीघ्रंसुदृढांनावमानयमेसखे ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंनिषादाधिपतिर्गुहः ॥ १७ ॥ स्वयमेवदृढांनावमानिनायसुलक्षणाम् ॥ स्वामिन्नारुह्यतांनौकासीतयालक्ष्मणेनच ॥ १८ ॥ वाहयेज्ञातिभिःसार्धमहमेवसमाहितः ॥ तथेतिराघवःसीतामारोप्यशुभलक्षणाम् ॥ १९ ॥ गुहस्यहस्तावालंब्यस्वयंचारुहदच्युतः ॥ आयुधादीन्समारोप्यलक्ष्मणोऽप्यारुरोहच ॥ २० ॥ गुहस्तान्वाहयामासज्ञातिभिःसहितःस्वयम् ॥ गंगामध्येगतागंगांप्रार्थयामासजानकी ॥ २१ ॥देविगंगेनमस्तुभ्यंनिवृत्ता वनवासतः ॥ रामेणसहिताऽहंत्वांलक्ष्मणेनचपूजये ॥ २२ ॥ सुरामांसोपहारैश्चनानाबलिभिरादृता ॥ इत्युक्त्वापरकूलंतौशनैरुत्तीर्यजग्मतुः ॥ २३ ॥

ही सब लक्षणोंसे युक्त मजबूत नाव लेआया। और बोला, " हे स्वामिन् ! सीता और लक्ष्मणके साथ नावपर चढ़िये ॥ १८ ॥ मैं आपही जातिवालोंके साथ मिलकर सावधानीसे नाव चलाताहूं । अच्युत श्रीरामचंद्रजी " अच्छा "कहकर शुभ लक्षणवाली सीताजीको नावपर चढ़ाय ॥ १९ ॥ गुहका हाथ पकड़कर आपभी नावपर चढ़गये; और अस्त्रशस्त्रादि नावमें रखकर लक्ष्मणजीभी चढ़े ॥ २० ॥ जातिवालोंके साथ, गुह आपही उनको पार उतारने लगा । बीच धारमें पहुँचकर श्रीजानकीजीने गंगाजीसे प्रार्थना की ॥२१॥ "हे देवि गंगे ! तुमको नमस्कार है ! मैं वनवाससे लौटकर राम और लक्ष्मणके सहित तुम्हारी पूजा करूंगी ॥ २२ ॥ मैं अनेक प्रकारके फल पुष्पोपहार बलि देकर तुम्हें पूजूंगी।" इसप्रकार प्रार्थना करने

के पश्चात् धीरे २ दूसरेपार उतरकर, रामजी सीता लक्ष्मणके साथ चले ॥ २३ ॥ फिर गुहने रामचंद्रसे कहा, हे राजेन्द्र ! आज्ञा दीजिये मैंभी आपके साथ वनको चलूंगा; नहीं तौ मैं प्राण छोडूंगा ॥ २४ ॥ निषादके वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजीने उस्से कहा। “ चौदह वर्ष वनमें रहकर मैं फिर यहाँपर आताहूं ॥ २५ ॥ जो कुछेक कहा वह सत्यही है; राम मिथ्या कभी नहीं कहता। ” यह कह भक्तको वारंवार हृदयसे लगा य धीरज बँधाय ॥ २६ ॥ उसको लौटादिया। गुह बड़े कष्टसे अपनेघरको आया। गुहके चले जानेपर, रामचंद्रजीने एक पवित्र मृगको मारा, उसके मांसको पकाय व होमकर तीनोंजन ॥ २७ ॥ बचेहुए मांसको भोजन करतेहुए। और पत्तोंके बिछौनेपर शयन करकै वृक्षके नीचे

गुहोऽपिराघवंप्राहगमिष्यामित्वयासह ॥ अनुज्ञांदेहिराजेंद्रनोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥२४॥ श्रुत्वानैषादिवचनंश्रीरामस्तमथाब्रवीत् ॥
चतुर्दशसमाःस्थित्वादंडकेपुनरप्यहम् ॥ २५ ॥ आयास्याम्युदितंसत्यंनासत्यंरामभाषितम् ॥ इत्युक्त्वालिंग्यतंभक्तंसमाश्वास्यपुनः
पुनः ॥ २६ ॥ निवर्तयामासगुहंसोऽपिकृच्छ्राद्ययौगृहम् ॥ तत्रमेध्यंमृगंहत्वापहुक्त्वात्वाचतेत्रयः ॥ २७ ॥ भुक्त्वावृक्षदलेसुप्त्वा
सुखमासततांनिशाम् ॥ ततोरामस्तुवैदेह्यालक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ २८ ॥ भरद्वाजाश्रमपदंगत्वाबहिरुपास्थितः ॥ तत्रैकंवटुकंदृष्ट्वा
रामःप्राहचहेवटो ॥ २९ ॥ रामोदाशरथिःसीतालक्ष्मणाभ्यांसमन्वितः ॥ आस्तेबहिर्वनस्येतिह्युच्यतांमुनिसन्निधौ ॥ ३० ॥ तच्छ्रु
त्वासहसागत्वापादयोःपतितोमुनेः ॥ स्वामिन्रामःसमागत्यवनाद्बहिरवस्थितः ॥ ३१ ॥ सभार्यःसानुजःश्रीमानाहमांदेवसन्निभः ॥
भरद्वाजायमुनयेज्ञापयस्वयथोचितम् ॥ ३२ ॥

वह रात्रि वहाँ सुखसे बिताई। इसके उपरान्त प्रभात होनेपर जानकीजी व लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचंद्रजी ॥ २८ ॥ भरद्वाज ऋषिके आश्रमके समीप पहुँचकर बाहर खड़े होगये। वहाँपर बाहर खड़ेहो-एक ऋषिकुमार विद्यार्थीको देखकर श्रीरामचंद्रजी बोले, “ हेबेटा ! ॥ २९ ॥ मुनिजीके समीप जाकर कहो कि–‘दशरथकुमार रामचंद्र सीता और लक्ष्मणके साथ तपोवनके बाहर खड़े हुएहैं’ यह कहो” ॥ ३० ॥ बटु यह सुनकर तत्काल जाय भरद्वाज मुनिके चरणोंमें गिरा, और बोला “ हे प्रभो ! ‘श्रीरामचंद्रजी अपनी भार्या और छोटे भ्राताके सहित आयकर तपोवनके बाहर खड़े हैं ॥ ३१ ॥ यह बात उचितरीतिसे तुम मुनियोंमें श्रेष्ठ भरद्वाज मुनिसे निवेदन करो।’ उन देवतुल्य पुरुषने

ऐसा हमसे कहा है ” ॥ ३२ ॥ मुनियोंमें श्रेष्ठ भरद्वाजजी यह सुनतेही तत्काल उठे और अर्घ्य व पाद्य ग्रहणकर श्रीरामचंद्रजीके समीप गये ॥ ॥ ३३ ॥ राम लक्ष्मणको निहार और यथाविधिसे उनकी पूजा कर भरद्वाजजी बोले,–“ हेराम ! हे कमललोचन ! आज हमारी पर्णकुटीमें चलो ॥ ॥ ३४ ॥ हे रघुनंदन ! चरणरजसे उसको पवित्र करो । ” यह कहकर सीताके साथ उन दोनों रघुवंशियोंको पर्णकुटीमें ले आये ॥ ३५ ॥ और भक्तिके सहित फिर उनकी पहुनई भलीभांतिसे की और कहा;–“तुम्हारा समागम होनेसे आज मैं तपस्याके पार चलागया ॥ ३६ ॥ हेराम ! मैं तुम्हारे भूत (जो हो चुका है) भविष्यत् (जो होनहार है) वृत्तान्तको जानताहूं; माया करकै मनुष्य हुएहो ॥ ३७ ॥ पहले समयमें की हुई ब्रह्माजीकी प्रार्थनाके अनुसार जिसकारण तुम्हारा पृथ्वीपर अवतार हुआ है और जिसलिये तुमको वनवास हुआ; आगेको आप जो कुछ करैंगे ॥ ॥ ३८ ॥ आपकी उपासना करनेसे उत्पन्न हुई ज्ञानकी दृष्टिसे यह सब वृत्तान्त मैं जानताहूं । हे रघुवर ! इसके उपरान्त और अधिक मैं क्या कहूं कि आपके दर्शन पायकर मैं कृतार्थ होगया ॥ ३९ ॥ क्योंकि प्रकृतिसे परे पुरुष काकुत्स्थवंशमें उत्पन्न हुए आपको मैं निहारताहूं ” ॥ महर्षि भरद्वाजजीके ऐसे ज्ञानगर्भ वचन सुनकर सीता और लक्ष्मणजीके साथ रामचंद्रजीने उनको प्रणामकर कहा ॥ ४० ॥ “हे ब्रह्मन् ! हम क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न हुए हैं आप हमपर अनुग्रह करैं । ” इस प्रकार परस्पर वार्तालापकर श्रीरामचंद्रजीने मुनिके निकट वह रात्रि बिताई ॥ ४१ ॥

तच्छ्रुत्वासहसोत्थायभरद्वाजोमुनीश्वरः॥ गृहीत्वार्घ्यंचपाद्यंचरामसामीप्यमाययौ ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वारामंयथान्यायंपूजयित्वासलक्ष्मणम् ॥
आहमेपर्णशालांभोरामराजीवलोचन ॥ ३४ ॥ आगच्छपादरजसापुनीहिरघुनंदन ॥ इत्युक्त्वोटजमानीयसीतयासहराघवौ ॥ ३५ ॥
भक्त्यापुनःपूजयित्वाचकारातिथ्यमुत्तमम् ॥ अद्याहंतपसःपारंगतोऽस्मितवसंगमात् ॥ ३६ ॥ ज्ञातंरामतवोदंतंभूतंचागामिकंचयत् ॥
जानामित्वांपरात्मानंमाययाकार्यमानुषम् ॥३७॥ यदर्थमवतीर्णोऽसिप्रार्थितोब्रह्मणापुरा ॥ यदर्थंवनवासस्तेयत्करिष्यसिवैपुरः॥३८॥
जानामिज्ञानदृष्ट्याऽहंजातयात्वदुपासनात् ॥ इतःपरंत्वांकिंवक्ष्येकृतार्थोऽहंरघूत्तम ॥ ३९ ॥ यस्त्वांपश्यामिकाकुत्स्थंपुरुषंप्रकृतेः
परम् ॥ रामस्तमभिवाद्याहसीतालक्ष्मणसंयुतः ॥ ४० ॥ अनुग्राह्यास्त्वयाब्रह्मन्वयंक्षत्रियवांधवाः ॥ इतिसंभाष्यतेऽन्योन्यमुषित्वामु
निसन्निधौ ॥ ४१ ॥

प्रातःकाल उठकर मुनि बालकोंकी सहायतासे घन्नई पर यमुनाके पार उतर मुनिजीके दिखाये हुए मार्गके अनुसार ॥ ४२ ॥ चित्रकूट पर्वतपर गये; जहांपर वाल्मीकि मुनिका आश्रम है ऋषियोंसे युक्त उस वाल्मीकिजीके आश्रममें रामचंद्रजी गये ॥ ४३ ॥ विविध भाँतिके पशु पक्षियोंसे युक्त ऐसे वृक्ष लगे हुए कि जिनमें सदाही फूल और फल आमें; ऐसे आश्रममें मुनियोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकिजीको विराजमान देखकर ॥ ४४ ॥ सीता और लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचंद्रजीने शिरनवाया । इसके उपरान्त वाल्मीकिजीने लक्ष्मीके पति, लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दर, सीता और लक्ष्मणके सहित, जटाके मुकुट धारण करनेसे शोभायमान, कामदेवके समान स्वरूपवान् कमलदलके समान नेत्रवाले श्रीरामचंद्रजीको देखा ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उनको देखकर विस्मय युक्त हो एकटक नेत्रोंसे निहारते हुए सहसा उठकर वाल्मीकिजीने इनको हृदयसे लगाया; नेत्रोंमें आनंदके आंसू भर आये ॥ ४७ ॥ जगत्पूज्य रामचंद्रजीकी भक्ति आदर और अर्घ्यादिसे पूजा कर वाल्मीकिजीने उनको मधुर फल मूल भोजन कराये; और बड़ा प्यार किया ॥ ४८ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी हाथ जोड़ कर विनयके साथ वाल्मीकिजीसे बोले; “ पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये दंडकवनको आये हैं; ॥ ४९ ॥ आप तौ जानतेही हैं फिर इसका और कारण क्या बताऊं ? जहाँपर मैं सुखसे रह सकूं वह स्थान मुझको बता दीजिये ॥५०॥ वहाँ पर मैं सीताके सहित रहकर कुछ समय विताऊंगा। ” रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर मुनि मुसकाकर बोले ॥५१॥

प्रातरुत्थाययमुनामुत्तीर्यमुनिदारकैः ॥ कृताप्लवेनमुनिनादृष्टमार्गेणराघवः ॥ ४२ ॥ प्रययौचित्रकूटाद्रिंवाल्मीकेर्यत्रचाश्रमः ॥ गत्वा रामोऽथवाल्मीकेराश्रमंऋषिसंकुलम् ॥ ४३ ॥ नानामृगद्विजाकीर्णंनित्यपुष्पफलाकुलम् ॥ तत्रदृष्ट्वासमासीनंवाल्मीकिंमुनिसत्तमम् ॥ ॥ ४४ ॥ ननामशिरसारामोलक्ष्मणेनचसीतया ॥ दृष्ट्वारामंरमानाथंवाल्मीकिर्लोकसुंदरम् ॥ ४५ ॥ जानकीलक्ष्मणोपेतंजटामुकुटमंडितम् ॥ कंदर्पसदृशाकारंकमनीयांबुजेक्षणम् ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वैवसहसोत्तस्थौविस्मयानिमिषेक्षणः ॥ आलिंग्यपरमानंदंरामंहर्षाश्रुलोचनः ॥ ४७ ॥ पूजयित्वाजगत्पूज्यंभक्त्याऽर्घ्यादिभिरादृतः ॥ फलमूलैःसमधुरैर्भोजयित्वाचलालितः ॥ ४८ ॥ राघवःप्रांजलिःप्राह वाल्मीकिंविनयान्वितः ॥ पितुराज्ञांपुरस्कृत्यदंडकानागतावयम् ॥ ४९ ॥ भवंतोयदिजानंतिकिंवक्ष्यामोऽत्रकारणम् ॥ यत्रमेसुखवासायभवेत्स्थानंवदस्वतत् ॥ ५० ॥ सीतयासहितःकालंकिंचित्तत्रनयाम्यहम् ॥ इत्युक्तोराघवेणासौमुनिःसस्मितमब्रवीत् ॥ ५१ ॥

तुमही सर्व लोकके श्रेष्ठ निवासस्थानहो; और सर्व प्राणियोंमें तुम्हारा वासस्थान है ॥ ५२ ॥ हे रघुनंदन! यह तौ तुम्हारा साधारण स्थान कहा; परन्तु तुमने सीताके सहित विशेष करकै अपने रहनेका स्थान पूछा है ॥ ५३ ॥ हेरघुश्रेष्ठ ! इसकारण जहाँपर सीताके सहित तुम्हारा नित्य निवास है वह स्थान बताताहूं,—जो मनुष्य शान्त स्वभाव सबको एकसा देखनेवाले हैं; जो किसी प्राणीसे द्वेष नहीं करते; और तुम्हारा भजन करतेहैं; उन मनुष्योंके हृदयमेंही तुम्हारा नित्य वास है ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य धर्मअधर्मको छोडकर सदाही तुम्हारा भजन करता है; हे राम! उसहीके हृदयमें सीताजीके साथ तुम्हारा आराममंदिर है ॥ ५५ ॥ जो पुरुष तुम्हारा मंत्र जपता है; तुम्हारे

त्वमेवसर्वलोकानांनिवासस्थानमुत्तमम् ॥ तवापिसर्वभूतानिनिवाससदनानिहि ॥ ५२ ॥ एवंसाधारणंस्थानमुक्तंतेरघुनंदन ॥ सीतयासहितस्येतिविशेषंपृच्छतस्तव ॥ ५३ ॥ तद्वक्ष्यामिरघुश्रेष्ठयत्तेनियतमंदिरम् ॥ शांतानांसमदृष्टीनामद्वेष्टॄणांचजंतुषु ॥ त्वामेवभजतांनित्यंहृदयंतेऽधिमंदिरम् ॥ ५४ ॥ धर्माधर्मान्परित्यज्यत्वामेवभजतोऽनिशम् ॥ सीतयासहतेरामतस्यहृत्सुखमंदिरम् ॥ ५५ ॥ त्वन्मंत्रजापकोयस्तुत्वामेवशरणंगतः ॥ निर्द्वंद्वोनिःस्पृहस्तस्यहृदयंतेसुमंदिरम् ॥ ५६ ॥ निरहंकारिणःशांतायेरागद्वेषवर्जिताः ॥ समलोष्टाश्मकनकास्तेषांतेहृदयंगृहम् ॥ ५७ ॥ त्वयिदत्तमनोबुद्धिर्यःसंतुष्टःसदाभवेत् ॥ त्वयिसंत्यक्तकर्मायस्तन्मनस्तेशुभंगृहम् ॥५८॥ योनद्वेष्टयप्रियंप्राप्यप्रियंप्राप्यनहृष्यति ॥ सर्वमायेतिनिश्चित्यत्वांभजेत्तन्मनोगृहम् ॥ ५९ ॥ षड्भावादिविकारान्योदेहेपश्यतिनात्मनि ॥ क्षुत्तृट्सुखंभयंदुःखंप्राणबुद्ध्योर्निरीक्षते ॥ ६० ॥

ही शरणमें रहता है, द्वन्द्वका[1] सहनेवाला, और लोभरहित है उसकेही हृदयमें तुम्हारा श्रेष्ठ गृह है ॥ ५६ ॥ जो पुरुष अहंकाररहित है; शान्त स्वभाव और रागद्वेषको अलग किये हुए है, मट्टीके डले, पत्थर और सुवर्णको बराबर समझते हैं; उन्हींके हृदयमें तुम्हारा निवासस्थान है ॥ ५७ ॥ जो पुरुष तुममें मन बुद्धि लगायकर सदा संतुष्ट रहै; और जिसने तुमको कर्मफल अर्पण कर दिया है; ऐसे पुरुषके चित्तमें तुम्हारा शुभ मंदिर है ॥ ५८ ॥ जो पुरुष ऐसा समझकर कि "सबही माया है" अप्रिय वस्तुको पायकर द्वेष न करै, और प्रियवस्तुको पायकर हर्षित न हो; केवल तुम्हाराही भजन करै; उसके मनमें तुम्हारा गृह है ॥ ५९ ॥ जन्म, सत्ता, विनाश, घटना,बढना, रूपबदलना इन छेः विकारोंको जो पुरुष दे-

---

[1] सुख, दुःख. शीत, गरमी. इत्यादि परस्पर विरुद्ध दो वस्तुओंको "द्वन्द्व" कहते है।

हका धर्म जानकर देखता है, आत्मधर्म जानकर नहीं देखता; भूंख, प्यास, सुख, दुःख, और भयको प्राण बुद्धिका धर्म समझ कर देखे, संसारी धर्म पाप पुण्यादिसे छूट गया हो; उस मनुष्यके चित्तमें तुम्हारा वास है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ हे जगदीश्वर ! सर्वव्यापी, अनन्त, सत्य चैतन्यस्वरूप, निर्लेप, और अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमय, मनोमय, आनंदमय स्वरूप नित्यस्थानमें विराजमान परमात्माको जो पुरुष तुमसे अलग नहीं मानते हैं उनके हृदयकमलमें तुम सीताके साथ परमसुखसे वास करो ॥ ६२ ॥ जिन्होंने ध्यानके अभ्यास करके तुममें मनको दृढ़ताईसे लगाय दिया है; जो सदा तुम्हारेही चरणोंकी सेवा किया करते हैं; और तुम्हारा नाम कीर्तन करकै सब पापोंसे छूट गया है; उन पुरुषोंके हृदयमें सीताजीके सहित वास करो ॥ ६३ ॥ हे राम ! तुम्हारे नामका माहात्म्य कौन पुरुष, किस प्रकारसे वर्णन करै ? हे राम ! मैं उस नामके प्रभावसेही ब्रह्मर्षिहुआ हूं ॥६४॥ पूर्वकालके समय मैं किरातोंके साथ रहा करताथा; और किरातोंकेही साथ रहकर बढ़ाथा,--केवल जन्माथा ब्राह्मण कुलमें, परन्तु सदा शूद्रके समान आचरण करताथा ॥६५॥ कुछ समय वीतनेपर शूद्रीके गर्भमें मुझसे कई पुत्र उत्पन्न हुए । इसके उपरान्त उनका पालन पोषण करनेके लिये चोरोंके साथ मिलकर चोरीकी जीविका ग्रहण करता हुआ॥६६॥ सर्वदा धनुष बाण धारण करकै अनेक पशु पक्षियोंकी हिंसा करनाही मेरा कामथा। एक समय महावनमें सप्तऋषि देखे ॥६७॥ साक्षात् अग्नि और सूर्यके समान प्रभावान् उनको देखतेही मैं मारे लोभके उनकी सब चीज

संसारधर्मैर्निर्मुक्तस्तस्यतेमानसंगृहम् ॥ ६१ ॥ पश्यंतियेसर्वगुहाशयस्थंत्वांचिद्घनंसत्यमनंतमेकम् ॥ अलेपकंसर्वगतंवरेण्यंतेषांहृदब्जेसहसीतयावस ॥ ६२ ॥ निरंतराभ्यासदृढीकृतात्मनांत्वत्पादसेवापरिनिष्ठितानाम् ॥ त्वन्नामकीर्त्याहतकल्मषाणांसीतासमेतस्यगृहंहृदब्जे ॥ ६३ ॥ रामत्वन्नाममहिमावर्ण्यतेकेनवाकथम् ॥ यत्प्रभावादहंरामब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान् ॥ ६४ ॥ अहंपुराकिरातेषुकिरातैःसहवर्धितः ॥ जन्ममात्रद्विजत्वंमेशूद्राचाररतःसदा ॥ ६५ ॥ शूद्रायांबहवःपुत्राउत्पन्नामेऽजितात्मनः ॥ ततश्चौरैश्चसंगम्यचौरोऽहमभवंपुरा ॥ ६६ ॥ धनुर्बाणधरोनित्यंजीवानामंतकोपमः ॥ एकदामुनयःसप्तदृष्टामहतिकानने ॥ ६७ ॥ साक्षान्मयाप्रकाशंतोज्वलनार्कसमप्रभाः ॥ तानन्वधावंलोभेनतेषांसर्वपरिच्छदान् ॥ ६८॥

वस्तु छीननेको उनके पीछे दौड़ा ॥ ६८ ॥ और मैंने वहां “ खड़े रहो ! खडे रहो ! ” कहा । मुनिलोगोंने मुझको देखकर पूछा । “ रे ब्राह्मणोंमें नीच ! क्यों आता है ? ” ॥ ६९ ॥ मैंने उनसे कहा “ हे मुनि श्रेष्ठ गण ! मैं कुछ हरण करनेके लिये आता हूं; स्त्री पुत्रादि मेरे परिवारके अनेक लोग भूंखे हैं ॥ ७० ॥ उनका पालन करनेकेलिये मैं पर्वत और वनमें घूमताहूं । इसके उपरान्त उन्होंने निर्भय होकर मुझसे कहाकि “ जाय कर कुटुम्बसे पूछ ॥७१॥ कि ‘ मैं जो कुछ पाप प्रतिदिन एकत्र करताहूं; तुम सब उस पापका भाग लोगे या नहीं ?’ यह बात एक २ से पूछिये ॥ ७२ ॥ जबतक तू लौटकर नहीं आवेगा तबतक निश्चय हम यहाँ खड़े रहैंगे । ” मैनें “ अच्छा ” कहकर घर जाय मुनियोंने जो कुछ कहाथा वह स्त्री पुत्रादिसे पूछा ॥ ७३ ॥ हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ! उन्होंने मुझसे कहा;-- “ वह सब पाप तेराही है, परन्तु पाप करके जो धन तू बटोरता है, उसका फल भोगनेवाले हम हैं ॥ ७४ ॥ यह सुनकर मुझको वैराग्य हुआ; और विचार करताहुआ वहाँ आया जहाँपर मुनि लोग करुणा पूर्ण हृदयसे विराजमान थे ॥ ७५ ॥ उन मुनिजनोंको देखतेही मेरा चित्त शुद्ध होगया । धनुष इत्यादि छोड़कर उन मुनियोंके चरणोंमें दंडके समान गिरपडा ॥ ७६ ॥ और यह बोला कि “ हे मुनीश्वरों ! नरकरूपी समुद्रमें बहे जातेहुएकी रक्षा कीजिये ॥ ” मुनि लोग मुझको आगे पड़ा हुआ देखकर कहने लगे ॥ ७७ ॥ उठ, तेरा मंगल होवे—सज्जनोंका संग अवश्यही सफल होता है; हे वत्स ! हम तुझे कुछ उपदेश देंगे; जिस कर

ग्रहीतुकामस्तत्राहंतिष्ठतिष्ठेतिचाब्रुवम् ॥ दृष्ट्वामांमुनयोऽपृच्छन्किमायासिद्विजाधम ॥ ६९ ॥ अहंतानब्रुवंकिंचिदादातुंमुनिसत्तमाः ॥
पुत्रदारादयःसंतिबहवोमेबुभुक्षिताः ॥ ७० ॥ तेषांसंरक्षणार्थायचरामिगिरिकानने ॥ ततोमामूचुरव्यग्राःपृच्छगत्वाकुटुंबकम् ॥ ७१ ॥
योयोमयाप्रतिदिनंक्रियतेपापसंचयः ॥ यूयंतद्भागिनःकिंवानेतिवेतिपृथक्पृथक् ॥ ७२ ॥ वयंस्थास्यामहेतावदागमिष्यसिनिश्चयः ॥
तथेत्युक्त्वागृहंगत्वामुनिभिर्यदुदीरितम् ॥ ७३॥ आपृच्छंपुत्रदारादींस्तैरुक्तोऽहंरघूत्तम ॥ पापंतवैवतत्सर्वंवयंतुफलभागिनः ॥ ७४ ॥
तच्छ्रुत्वाजातनिर्वेदोविचार्यपुनरागमम् ॥ मुनयोयत्रतिष्ठंतिकरुणापूर्णमानसाः ॥ ७५ ॥ मुनीनांदर्शनादेवशुद्धांतःकरणोऽभवम् ॥
धनुरादीन्परित्यज्यदंडवत्पतितोऽस्म्यहम् ॥ ७६ ॥ रक्षध्वंमांमुनिश्रेष्ठागच्छंतंनिरयार्णवम् ॥ इत्यग्रेपतितंदृष्ट्वामामूचुर्मुनिसत्तमाः ॥
॥७७॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रंतेसफलःसत्समागमः ॥ उपदेक्ष्यामहेतुभ्यंकिंचित्तेनैवमोक्ष्यसे ॥ परस्परंसमालोच्यदुर्वृत्तोऽयंद्विजाधमः ॥७८॥

के तू पापसे छूट जायगा. इसके उपरान्त महर्षिगण परस्पर निहार बातचीत करने लगे कि "यह ब्राह्मण बड़ा दुराचारी है ॥ ७८ ॥ सत्पुरुषोंको इसका त्यागनाही योग्य है;--परन्तु शरण आया है; इस कारण मोक्षमार्गका उपदेश करकै इसकी रक्षा करनी चाहिए" ॥ ७९ ॥ उन महर्षियों ने यह कहा; हे राम ! तुम्हारे नामको उलटाकर " मरा " एकाग्रचित्तसे सदा जप करनेको उन्हौंने मुझसे कहा ॥ ८० ॥ और जबतक हम यहाँ पर लौटकरं न आवैं; तब तक सदांही--हमारा बताया हुआ जप करना । यह कहकर वह समस्त दिव्यदर्शन मुनि चले गये ॥ ८१ ॥ उन्होंने जिस प्रकारसे उपदेश कियाथा, यथार्थ २ मैंने ऐसाही किया । एकाग्र चित्तसे जपकरता हुआ मैं इन्द्रियोंके बाहिरी विषयको भूलगया ॥ ८२ ॥ इस प्रकार बहुत समय वीतने पर; सब संग छोड़े हुए निश्चल देहवाले--मेरे ऊपर वामी उत्पन्न हो गई ॥ ८३ ॥ इसके उपरान्त हजार युग वीत जाने पर ऋषि लोगोंने वहाँ आयकर मुझसे कहा, " निकल आओ " । यह वचन सुनकर मैं शीघ्रही उठा ॥ ८४ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् कुहरेसे निकलकर प्रकाशित होते हैं । ऐसेही मैं वमईसे निकला. तब वे मुनिजन मुझसे बोले, "हे मुनि ! तुम वाल्मीकि हो ॥ ८५ ॥ क्योंकि वमईसे तुम्हारी उत्पत्ति--तुम्हारे दूसरे जन्मका स्वरूप हुई ।" हे रघुकुलमें श्रेष्ठ यह कहकर वह सप्तर्षि दिव्य लोकको चले गये ॥८६॥ हे राम ! मैं तुम्हारे नामके प्रभावसे ऐसा होगयाहूं; तुम वही कमललोचन रामचंद्रहो; आज तुम्हैं सीता और लक्ष्मणके साथ देखताहूं; इस कारण मेरी मुक्ति हुई; इस

उपेक्ष्यएवसद्वृत्तैस्तथाऽपिशरणंगतः ॥ रक्षणीयःप्रयत्नेनमोक्षमार्गोपदेशतः ॥ ७९ ॥ इत्युक्त्वारामतेनामव्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम् ॥ एकाग्रमनसाऽत्रैवमरेतिजपसर्वदा ॥ ८० ॥ आगच्छामःपुनर्यावत्तावदुक्तंसदाजप ॥ इत्युक्त्वाप्रययुःसर्वेमुनयोदिव्यदर्शनाः ॥ ८१ ॥ अहंयथोपदिष्टंतैस्तथाऽकरवमंजसा ॥ जपन्नेकाग्रमनसाबाह्यंविस्मृतवानहम् ॥ ८२ ॥ एवंबहुतिथेकालेगतेनिश्चलरूपिणः ॥ सर्वसंगविहीनस्यवल्मीकोऽभून्ममोपरि ॥ ८३ ॥ ततोयुगसहस्रांतेऋषयःपुनरागमन् ॥ मामूचुर्निष्क्रमस्वेतितच्छ्रुत्वातूर्णमुत्थितः ॥ ८४ ॥ वल्मीकान्निर्गतश्चाहंनीहारादिवभास्करः ॥ मामप्याहुर्मुनिगणावाल्मीकिस्त्वंमुनीश्वर ॥ ८५ ॥ वल्मीकात्संभवोयस्माद्द्वितीयंजन्मतेऽभवत् ॥ इत्युक्त्वातेययुर्दिव्यगतिंरघुकुलोत्तम ॥ ८६ ॥ अहंतेरामनाम्नश्चप्रभावादीदृशोऽभवम् ॥ अद्यसाक्षात्प्रपश्यामिससीतंलक्ष्मणेनच ॥ ८७ ॥ रामंराजीवपत्राक्षंत्वांमुक्तोनात्रसंशयः ॥ आगच्छरामभद्रंतेस्थलंवैदर्शयाम्यहम् ॥ ८८ ॥

में कोई संशय नहीं। हे राम ! आओ; तुम्हारा मंगलहो; मैं तुमको वासस्थान दिखाये देताहूं ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ यह वचन कह परम शोभायमान मुनिजी राम, लक्ष्मण, और अपने शिष्योंके साथ गंगा और पर्वतके बीचमें गये ॥ ८९ ॥ वहाँपर अति सुन्दर विशाल शाला बनवाई ! और दो मंदिर--एक पूर्व पश्चिम, और दूसरा उत्तर दक्षिणको बनवाते हुए ॥ ९० ॥ देवताके समान रामचंद्रजी व जानकीजी और लक्ष्मणजीके साथ उस उत्तम गृहमें रहने लगे ॥ ९१ ॥ जिस प्रकार स्वर्गमें इन्द्रजी, इन्द्राणी और देवताओंके साथ आनंदके साथ विराजमान होरहे हैं; वैसेही श्रीरामचंद्रजी

एवमुक्त्वामुनिःश्रीमाँल्लक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ शिष्यैःपरिवृतोगत्वामध्येपर्वतगंगयोः॥ ८९ ॥ तत्रशालांसुविस्तीर्णांकारयामासवासभूः ॥ प्राक्पश्चिमंदक्षिणोदक्छोभनंमंदिरद्वयम् ॥ ९० ॥ जानक्यासहितोरामोलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ तत्रतेदेवसदृशाह्यवसन्भवनोत्तमे॥९१॥ वाल्मीकिनातत्रसुपूजितोऽयंरामःससीतःसहलक्ष्मणेन ॥ देवैर्मुनींद्रैःसहितोमुदाऽऽस्तेस्वर्गेयथादेवपतिःसशच्या ॥ ९२ ॥ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेअयोध्याकांडेषष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ सुमंत्रोऽपितदायोध्यांदिनांतेप्रविवेशह ॥ वस्त्रेणमुखमाच्छाद्यबाष्पाकुलितलोचनः ॥ १ ॥ बहिरेवरथंस्थाप्यराजानंद्रष्टुमाययौ ॥ जयशब्देनराजानंस्तुत्वातंप्रणनामह ॥ २ ॥ ततोराजानमंतंतंसुमंत्रंविह्वलोऽब्रवीत् ॥ सुमंत्ररामःकुत्रास्तेसीतयालक्ष्मणेनच ॥ ३ ॥

वाल्मीकिजीसे सन्मान पाय, सीता लक्ष्मण और मुनिश्रेष्ठोंके साथ आनंदसे वहाँ रहने लगे ॥ ९२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वर संवादे अयोध्याकांडे भाषाटीकायां षष्ठः सर्गः ॥६॥ राजादशरथजीका स्वर्गमें जाना ॥ इसके उपरान्त सन्ध्याकालके समय रोते हुए सुमंत्रजी; वस्त्रसे अपने मुखको ढक नेत्रोंमें आंसू भरेहुए अयोध्यामें प्रवेश करते हुए ॥ १ ॥ इसके पीछे रथको बाहरही रखकर आप भीतर जनानेमें राजा दशरथजीके देखनेको गये । राजभवनमें प्रवेश करके ‘ जय ’ शब्द कह राजाको प्रणाम किया ॥ २ ॥ फिर विह्वलहुए राजादशरथजी प्रणामकरते हुए सुमंत्रसे

---

१ बहुतेरोंका यह मत है कि वाल्मीकि रामायणके बनानेवाले प्रचेतोंके वंशमें उत्पन्न हुए, और चित्रकूटवाले वाल्मीकि एक नहीं हैं। परन्तु हमारा मत ऐसा नहीं है, वरन् आनंदरामायणके मतसे यह दोनों वाल्मीकि एक हैं।

बोले;—"हेसुमंत्र ! सीता और लक्ष्मणके साथ हमारे राम कहां हैं ? ॥ ३ ॥ रामको कहां छोड़ आये ? मुझ पापीके लिये श्रीरामचंद्रने क्या कहा है ? मुझ निर्दयीके लिये सीता या लक्ष्मणने क्या कहा है ? ॥ ४ ॥ हाराम ! हा गुणनिधान ! हासीते ! हाय प्रियवादिनि ! मैं दुःखके समुद्रमें डूबताहूं; निकटआई है मृत्यु जिसकी ऐसे मुझको तुम क्यों नहीं देखतेहो ? " ॥५॥ इसप्रकार बहुत देरतक विलाप करके राजा दुःखसमुद्रमें डूबगये और रोने लगे । इसप्रकार रोतेहुए राजादशरथजीसे मंत्री सुमंत्रने हाथ जोड़कर कहा ॥ ६ ॥ राम, सीता, लक्ष्मणको मैं रथपर चढ़ाकर लेगया; वे शृङ्गवेरपुरके निकट गङ्गाके तीरपर विराजमान हुए ॥ ७ ॥ इसीसमय निषादोंका राजा गुह, परमभक्तियुक्त हो फल मूलादि लाया और परमभक्तिके साथ भोजन करनेके लिये वह फल श्रीरामचन्द्रजीको अर्पण किये; श्रीरामचन्द्रजीने परमप्रसन्न होकर इन फल मूलादिको स्पर्श किया परन्तु उन्हें भोजन नहीं किया, सबको फेरदिया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! इसके उपरान्त निषादसे बटका दूध मँगाया; श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजीने जटाके मुकुटमें बांधे, और मुझे आज्ञाकी ॥ ९ ॥ हेसुमंत्र ! राजासे हमारा प्रणाम जनायकर कहना, कि वे हमारे लिये शोक न करें । अयोध्यासे अधिक सुख हमको वनमें रहनेसे होगा ॥ १० ॥ माता कौशल्याजीसे हमारा प्रणाम निवेदन करके कहियो कि वे हमारे लिये शोक न करें; और शोकसे व्याकुलहुए राजाको धीरज बँधाय सावधान करें" ॥ ११ ॥ हेनृपश्रेष्ठ ! इसके उपरान्त अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे रामजीकी ओर कुछेक निहारकर सीताजीने

कुत्रत्यक्तस्त्वयारामःकिंमांपापिनमब्रवीत् ॥ सीतावालक्ष्मणोवाऽपिनिर्दयंमांकिमब्रवीत् ॥४॥ हारामहागुणनिधेहासीतेप्रियवादिनि ॥
दुःखार्णवेनिमग्नंमांम्रियमाणंनपश्यसि ॥ ५ ॥ विलप्यैवंचिरंराजानिमग्नोदुःखसागरे ॥ एवंमंत्रीरुदंतंतंप्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥
रामःसीताचसौमित्रिर्मयानीतारथेनते ॥ शृंगवेरपुराभ्याशेगंगाकूलेव्यवस्थिताः ॥ ७ ॥ गुहेनकिंचिदानीतंफलमूलादिकंचयत् ॥ स्पृ
ष्ट्वाहस्तेनसंप्रीत्यानाग्रहीद्विससर्जतत् ॥ ८ ॥ वटक्षीरंसमानाय्यगुहेनरघुनंदनः ॥ जटामुकुटमाबद्ध्यमामाहनृपतेस्वयम् ॥ ९ ॥ सुमं
त्रब्रूहिराजानंशोकस्तेऽस्तुनमत्कृते ॥ साकेतादधिकंसौख्यंविपिनेनोभविष्यति ॥ १० ॥ मातुर्मेवंदनंब्रूहिशोकंत्यजतुमत्कृते ॥ आ
श्वासयतुराजानंवृद्धंशोकपरिप्लुतम् ॥ ११ ॥ सीताचाश्रुपरीताक्षीमामाहनृपसत्तम ॥ दुःखगद्गदयावाचारामंकिंचिदवेक्षती ॥ १२ ॥

दुःख मिली वाणीसे मुझसे कहा ॥ १२ ॥ सास ससुरके चरणकमलमें हमारा साष्टाङ्ग प्रणाम कहियो । सीता यह कहकर शिरझुकाय रोती
हुईं वहांसे अलग चलीगईं ॥ १३ ॥ इसके पश्चात् वे तीनोंजन रोतेहुए नावपर चढ़े । जबतक वे गङ्गाजीके दूसरीपार नहीं पहुंचगये तबतक मैं
उसीस्थानमें खड़ा रहकर इकटक नेत्रोंसे उनकी ओर देखतारहा ॥१४॥ जब वह नेत्रोंकी ओट होगये, तब मैं हताश होकर लौटा । इसके पीछे
कौशल्याजीने सुमंत्रके वचन सुन रोयकर राजादशरथजीसे कहा ॥१५॥ "महाराज! आपने प्रसन्न होकर कैकेयीको राज्य दिया है। अच्छा इसको
समस्त राज्य देदीजिये—परन्तु मेरे रामको आपने किसकारणसे बनवासी किया ? ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! आपही इनसमस्त अनर्थोंके आदि कारण
होकर अब किसकारणसे रोदन करतेहो ? ।" कौशल्याजीके वचन सुनकर मानों राजाके घावमें अग्नि छूगई ॥ १७ ॥ शोकके आंसुओंसे पूर्ण हैं नेत्र
जिनके ऐसे राजादशरथजी कौशल्याको देखकर बोले; हेप्रिये ! मैं तो आपहीदुःखके मारे मरणतुल्यहो रहाहूं; फिर मुझको अतिदुःखी क्यों करती
हो ? ॥ १८ ॥ निश्चय जान लियाहै कि इससमय हमारे प्राण निकलजाँयगे । पूर्वकालमें एक ऋषिकुमारने मुझको शाप दियाथा, जान पड़ताहै कि
वही शाप इतनेदिन पीछे फला, शापका कारण कहताहूं, सुनो ॥ १९ ॥ मैं पूर्वकालके समय जवानीके मदसे मदवालाहो मृगयामें आसक्ति होनेके
कारण; रात्रिकालके समयभी नदीके तीर महावनमें धनुषबाण धारण करके घूमा करताथा ॥ २० ॥ एकसमय कोई मुनि स्वयं प्यासे होनेपर और

साष्टांगंप्रणिपातंमेब्रूहिश्वश्र्वोःपदांबुजे ॥ इतिप्ररुदतीसीतागताकिंचिदवाङ्मुखी ॥ १३ ॥ ततस्तेऽश्रुपरीताक्षानावमारुरुहुस्तदा ॥
यावद्गंगांसमुत्तीर्यगतास्तावदहंस्थितः ॥ १४ ॥ ततोदुःखेनमहतापुनरेवाहमागतः ॥ ततोरुदंतीकौसल्याराजानमिदमब्रवीत् ॥ १५ ॥
कैकेय्यैप्रियभार्यायैप्रसन्नोदत्तवान्वरम् ॥ त्वंराज्यंदेहितस्यैवमत्पुत्रःकिंविवासितः ॥ १६ ॥ कृत्वात्वमेवतत्सर्वमिदानींकिंनुरोदिषि ॥
कौसल्यावचनंश्रुत्वाक्षतेस्पृष्टइवाग्निना ॥ १७ ॥ पुनःशोकाश्रुपूर्णाक्षःकौसल्यामिदमब्रवीत् ॥ दुःखेनम्रियमाणंमांकिंपुनर्दुःखय
स्यलम् ॥ १८ ॥ इदानीमेवमेप्राणाउत्क्रमिष्यंतिनिश्चयः ॥ शप्तोऽहंबाल्यभावेनकेनचिन्मुनिनापुरा ॥ १९ ॥ पुराहंयौवनेदृप्तश्चा
पबाणधरोनिशि ॥ अचरंमृगयासक्तोनद्यास्तीरेमहावने ॥ २० ॥ तत्रार्धरात्रसमयेमुनिःकश्चित्तृषार्दितः ॥ पिपासार्दितयोःपित्रोर्ज
लमानेतुमुद्यतः ॥ अपूरयज्जलेकुंभंतदाशब्दोऽभवन्महान् ॥ २१ ॥

प्यासे पिता माताके लिये आधीरातके समयही जल ले जानेको तैयार हुए; और उस नदीपर आयकर घड़ेमें जल भरने लगे; तिसकाल महागंभीर शब्द हुआ ॥ २१ ॥ हाथी जलपीता है ऐसा निश्चयकरके उस घोर अँधियारी रात्रिके समय मैंने धनुषपर शब्दवेधी बाण चढ़ायकर छोड़ा ॥ २२ ॥ तब वहाँपर आरतवाणीसे "हाय ! मैं मारागया " शब्द हुआ । तब मैं समझा कि कोई मनुष्य मारागया । इसके उपरान्त "हा विधि ! मैंने किसीका कोई अपराध नहीं किया किसने मुझको मारा ? ॥ २३ ॥ पिता माता जलकी इच्छासे मेरी बाट देखरहेहोंगे; " यह वचनसुन मनुष्यवाणीका निश्चयकर मारेभयके त्रासको प्राप्तहो मैं ॥ २४ ॥ धीरे २ उस मुनिके निकट जायकर बोला;– "हे स्वामिन् ! मैं राजा दशरथहूं; अज्ञानके वश होकर यह कुकार्य किया है–मैं क्षमाकरनेके योग्यहूं" ॥ २५ ॥ मैं गद्गदवाणी से यह कहकर उन मुनिके चरणोंमें गिरगया । उन ऋषिकुमारने मुझको व्याकुल देखकर कहा कि, "हेनृपश्रेष्ठ ! तुम भय न करो ॥ २६ ॥ आपको ब्रह्महत्या नहीं होगी; क्योंकि मैं तपपरायण वैश्यहूं; परन्तु वृद्ध माता पिता प्यासके मारे व्याकुलहो मेरे आनेकी आश कर रहेहैं ॥ २७ ॥ तुम दुविधा छोड़कर शीघ्रतासे उनोंको पानी पिलाओ । नहीं तो पिताजी क्रोधित होकर आपको भस्म करडालेंगे ॥ २८ ॥ हेमहाराज ! तुम जल देकर उनको प्रणाम करनेके पीछे अपने कियेहुए कार्यको बतलादेना; तब तुम इस अज्ञानसे कियेहुए पापसे छुटकारा पाओगे । हेमहाराज ! मेरे हृदयसे बाणको निकालो, मैं प्राण छोड़ताहूं–बहुत कालतक पीड़ा नहीं सह

गजःपिबतिपानीयमितिमत्वामहानिशि ॥ बाणंधनुषिसंधायशब्दवेधिनमाक्षिपम् ॥ २२ ॥ हाहतोऽस्मीतितत्राभूच्छब्दोमानुषसूचकः ॥ कस्यापिनकृतोदोषोमयाकेनहतोविधे॥ २३ ॥प्रतीक्षतेमांमाताचपिताचजलकांक्षया ॥ तच्छ्रुत्वाभयसंत्रस्तस्ततोऽहंपौरुषंवचः ॥२४॥ शनैर्गत्वाऽथतत्पार्श्वंस्वामिन्दशरथोऽस्म्यहम् ॥ अजानतामयाविद्धस्त्रातुमर्हसिमांमुने ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वापादयोस्तस्यपतितोगद्गदाक्षरः ॥ तदामामाहसमुनिर्माभैषीर्नृपसत्तम ॥ २६ ॥ ब्रह्महत्यास्पृशेन्नत्वांवैश्योऽहंतपसिस्थितः ॥ पितरौमांप्रतीक्षेतेक्षुत्तृड्भ्यांपरिपीडितौ ॥ २७ ॥ तयोस्त्वमुदकंदेहिशीघ्रमेवाविचारयन् ॥ नचेत्त्वांभस्मसात्कुर्यात्पितामेयदिकुप्यति ॥ २८ ॥ जलंदत्त्वातुतौनत्वा कृतंसर्वंनिवेदय ॥ शल्यमुद्धरमेदेहात्प्राणांस्त्यक्ष्यामिपीडितः ॥ २९ ॥

सकता ” ॥ २९ ॥ मुनिकुमारकी देहसे बाण निकाल जलसे भराहुआ कलश ग्रहण करके वहाँपर आया जहाँ यह स्त्री पुरुष ॥ ३० ॥ अति वृद्ध, अन्धे, और भूंखप्याससे व्याकुलथे। वे दोनों यह बातें कर रहेथे कि “यह रात्रिकाल है , पुत्र जल लेकर क्यों नहीं आया ? न जाने क्या कारण है ? ॥ ३१ ॥ हमारी गति और कोईभी नहीं है; हम वृद्ध शोचनीय अवस्थावाले भूंख प्याससे व्याकुल हैं, हमारा भक्त पुत्र हमको क्यों त्यागेहुए है ? ” ॥ ३२ ॥ इसप्रकार चिन्ताकरते हुए उन दोनों स्त्री पुरुषने मेरी पगाहट सुनी, और पिता बोले,—“पुत्र विलम्ब क्यों किया ? ॥ ३३ ॥ हमको उत्तम जलदो; हे वत्स ! तुमभी पानकरो । ” मैं उनकी करुणासहित कातरवाणी श्रवण करनेके पीछे दुःखित और भीत होकर धीरे २ जाय

इत्युक्तोमुनिनाशीघ्रंबाणमुत्पाट्यदेहतः ॥ सजलंकलशंधृत्वागतोऽहंयत्रदंपती ॥३०॥ अतिवृद्धावंधदृशौक्षुत्पिपासार्दितौनिशि ॥ नाया
तिसलिलंगृह्यपुत्रःकिंवाऽत्रकारणम् ॥ ३१ ॥ अनन्यगतिकौवृद्धौशोच्यौतृट्परिपीडितौ ॥ आवामुपेक्षतेकिंवाभक्तिमानावयोःसुतः
॥ ३२ ॥ इतिचिंताव्याकुलौतौमत्पादन्यासजंध्वनिम् ॥ श्रुत्वाप्राहपितापुत्रकिंविलंबःकृतस्त्वया ॥ ३३ ॥ देह्यावयोःसुपानीयंपिब
त्वमपिपुत्रक ॥ इत्येवंलपतोर्भीत्यासकाशमगमंशनैः ॥ ३४ ॥ पादयोःप्रणिपत्याहमब्रुवंविनयान्वितः ॥ नाहंपुत्रस्त्वयोध्यायाराजाद
शरथोऽस्म्यहम् ॥ ३५ ॥ पापोऽहंमृगयासक्तोरात्रौमृगविहिंसकः ॥ जलावताराद्दूरेऽहंस्थित्वाजलगतंध्वनिम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वाऽहंशब्द
वेधित्वादेकंबाणमथात्यजम् ॥ हतोऽस्मीतिध्वनिंश्रुत्वाभयात्तत्राहमागतः ॥ ३७ ॥ जटाविकीर्यपतितंदृष्ट्वाऽहंमुनिदारकम् ॥ भीतो
गृहीत्वातत्पादौरक्षरक्षेतिचाब्रुवम् ॥ ३८ ॥ माभैषीरितिमांप्राहब्रह्महत्याभयंनते ॥ मत्पित्रोःसलिलंदत्त्वानत्वाप्रार्थयजीवितम् ॥३९॥

उनके चरणोंपर गिरपड़ा; और विनयके साथ बोला; हेमहात्मन् ! मैं आपका पुत्र नहींहूं; अयोध्याका राजाहूं दशरथ मेरा नाम है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ मैंने पापका कार्य किया है, क्षमा कीजिये । आज रात्रिमें मृगयामें चित्त लगाय मृगवध करनेको घाटके कुछ दूरपर घूमताहूं; कि इतनेमें मैंने जलका शब्द ॥ ३६ ॥ सुना. जलपान करनेके लिये आयेहुए मृगके शब्दका भ्रम होनेसे, मैंने उस शब्दके अनुसार शब्दवेधी बाणछोड़ा । बाणके छोड़तेही “ हाय मैं मारागया ” ! इसप्रकारका मर्मभेदी शब्द सुनकर परमभीत हो मैंने घाटके निकट आयकर ॥ ३७ ॥ देखा कि एकऋषिकुमार जटा बखेरहुऐ पृथ्वीपर पड़े लोटते हैं । मैं यह देखमारे डरके उनके चरणोंपर गिरकर बोला कि ‘ रक्षाकीजिये, रक्षाकीजिये’ ॥ ३८ ॥ उन परम दयामय मुनि

कुमारने कहा। "तुम्हैं भय नहीं है;—ब्रह्महत्याका पाप तुम्हैं नहीं लगेगा। परन्तु हमारे पिताको जल पिलानेके पीछे नमस्कार करके अपने प्राण बचानेकी प्रार्थना करना"॥ ३९॥ हेमुने ! मैं वही मुनिघातक नराधमहूं। ऋषि कुमारके वचनसुनकर यहाँ आयाहूं; दया करके शरणागत जान मेरी रक्षा कीजिये"॥ ४०॥ यह सुनकर वे दोनों अत्यन्त दुःखित हुए पृथ्वीपर गिरकर अपने पुत्रके लिये बहुतसा शोक और विलाप करकै बोले, "जहांपर हमारा पुत्र है; वहींपर अति शीघ्र हमको ले चलो॥ ४१॥ मैं उनकी आज्ञासे उसी समय उन दोनों अंधे दम्पतिको घाटके निकट ले आया; इसके उपरान्त अपने पुत्रको दोनों हाथोंसे पकड़कर बहुतसा विलाप करने लगे॥ ४२॥ वे दोनों बहुतसा रोयकर हाय ! हाय ! ! पुत्र !

इत्युक्तोमुनिनातेनह्यागतोमुनिहिंसकः॥ रक्षेतांमांदयायुक्तौयुवांहिशरणागतम् ॥ ४० ॥ इतिश्रुत्वातुदुःखातौंविलप्यवहुशोच्यतम् ॥
पतितौनौसुतोयत्रनयतत्राविलंबयन् ॥ ४१ ॥ ततोनीतौसुतोयत्रमयातौवृद्धदंपती॥ स्पृष्ट्वासुतंतौहस्ताभ्यांवहुशोऽथविलेपतुः ॥४२॥
हाहेतिक्रंदमानौतौपुत्रपुत्रेत्यवोचताम् ॥ जलंदेहीतिपुत्रेतिकिमर्थंनददास्यलम् ॥ ४३ ॥ ततोमामूचतुःशीघ्रंचितिंरचयभूपते ॥ मया
तदैवरचिताचितिस्तत्रनिवेशिताः ॥ त्रयस्तत्राग्निरुत्सृष्टोदग्धास्तेत्रिदिवंययुः॥ ४४॥ तत्रवृद्धःपिताआहत्वमप्येवंभविष्यासे ॥ पुत्र
शोकेनमरणंप्राप्स्यसेवचनान्मम ॥ ४५॥ सइदानींममप्राप्तःशापकालोऽनिवारितः॥ इत्युक्त्वाविललापाथराजाशोकसमाकुलः ॥४६॥
हारामपुत्रहासीतेहालक्ष्मणगुणाकर ॥ त्वद्वियोगादहंप्राप्तोमृत्युंकैकेयिसंभवम् ॥ ४७॥

पुत्र ! जल दो पुत्र ! जल क्यों नहीं देते ? "इत्यादि कहने लगे॥ ४३॥ इस प्रकार बहुतसा विलाप करकै मुझसे कहा। "हेमहाराज ! अति शीघ्र चिता बनादो।" उनके कहनेसे हमने बहुत शीघ्र चिता बनादी; वृद्ध माता पिता, मृतक पुत्रको गोदमें रखकर चितामें बैठ गये। मैंने अग्नि लगादी, वे भस्महोकर स्वर्गको चले गये॥ ४४॥ चितामें बैठनेके समय मुनिकुमारके वृद्धपिताने हमसे कहाथा " तुमभी ऐसेही होगे; अर्थात् हमारे शापसे तुमभी पुत्रशोकको पाय प्राण छोड़ोगे "॥ ४५॥ इस समय हमारे उस शापके फलनेका समय आयपहुँचाहै; यह निवारण नहीं होसकता। यह कह राजा शोकसे व्याकुल होकर विलाप करने लगे॥ ४६ ॥ हा ! पुत्रराम ! हासीते ! हा गुणाकर ल

क्ष्मण ! तुम्हारे वियोगमें हमको प्राण छोड़ना पड़ा। मेरी मृत्युकी कारण कैकेयी हुई ॥ ४७ ॥ यह कहते २ राजा दशरथजी प्राण छोड़कर स्वर्गको चले गये। कौशल्या, सुमित्रा, और सब रानियें ॥ ४८ ॥ छाती पीटती हुई आरत वाणीसे विलाप कलाप करने लगीं। प्रातःकाल होतेही सब मंत्रियोंको साथ लिये हुए वशिष्टजी वहाँपर आये ॥ ४९ ॥ इसके उपरान्त राजा दशरथजीका मृतक देह तेलभरीहुई नावमें रखकर दूतोंसे कहा कि " दूतों ! तुम घोड़ोंपर सवार होकर अतिशीघ्र युधाजित राजाके नगरकी ओर जाओ ॥ ५० ॥ श्रीमान् प्रभु भरत शत्रुघ्नके सहित वहाँ विराजमान हैं। मेरी आज्ञासे तुम शीघ्र उनसे जायकर कहोकि शीघ्र आइये। ॥ ५१ ॥ अयोध्यामें आयकर कैकेयी और राजाको देखिये।" इसके उपरान्त वशिष्टजीकी आज्ञापाय दूतगण अतिशीघ्रतासे जायकर भरतजीके मामा ॥ ५२ ॥ युधाजितको प्रणामकर व भरत शत्रुघ्नको प्रणाम करकै बोले हे राजन् ! वशिष्टजीनें आपसे कह दिया है कि, " शत्रुघ्नके सहित राजकुमार भरतजी ॥ ५३ ॥ अति शीघ्र अयोध्यामें चले आवें; मनमें कुछ द्विविधा न करैं;" वशिष्ठजीकी आज्ञा सुनकर भरतजी अतिभीतहो अति शीघ्र ॥ ५४ ॥ गुरु जनोंकी अनुमति ग्रहण करकै अनुज शत्रुघ्नको साथ लें, दूतोंके सहित आने लगे. " राजाको या रामको कुछ विपत्ति हुई है।" चिन्ताकुल भरत मार्गमें इस प्रकारसे चिन्ता करते हुए नगरमें पहुँचे; मनुष्योंके समूहसे हीन, शोभाविहीन ॥ ५५॥ ५६ ॥ विना उत्सववाले नगरको देखकर औरभी चिंतित हुए; इसके उपरान्त

वदन्नेवंदशरथःप्राणांस्त्यक्त्वादिवंगतः ॥ कौसल्याचसुमित्राचतथाऽन्याराजयोषितः ॥ ४८ ॥ चुक्रुशुश्चविलेपुश्चउरस्ताडनपूर्वकम् ॥
वसिष्ठःप्रययौतत्रप्रातर्मंत्रिभिरावृतः ॥ ४९॥ तैलद्रोण्यांदशरथंक्षिप्त्वादूतानथाब्रवीत् ॥ गच्छतत्वरितंसाश्वायुधाजिन्नगरंप्रति ॥ ५०॥
तत्रास्तेभरतःश्रीमाञ्छत्रुघ्नसहितःप्रभुः ॥ उच्यतांभरतःशीघ्रमागच्छेतिममाज्ञया ॥ ५१ ॥ अयोध्यांप्रतिराजानंकैकेयींचापिपश्यतु ॥
इत्युक्तास्त्वरितंदूतागत्वाभरतमातुलम् ॥ ५२ ॥ युधाजितंप्रणम्योचुर्भरतंसानुजंप्रति ॥ वसिष्ठस्त्वाऽब्रवीद्राजन्भरतःसानुजःप्रभुः ॥
॥ ५३ ॥ शीघ्रमागच्छतुपुरीमयोध्यामविचारयन् ॥ इत्याज्ञप्तोऽथभरतस्त्वरितंभयविह्वलः ॥ ५४ ॥ आययौगुरुणादिष्टःसहदूतैस्तु
सानुजः ॥ राज्ञोवाराघवस्यापिदुःखंकिंचिदुपस्थितम् ॥ ५५ ॥ इतिचिंतापरोमार्गेचिंतयन्नगरंययौ ॥ नगरंभ्रष्टलक्ष्मीकंजनसंबाधवर्जितम् ॥ ५६ ॥ उत्सवैश्चपरित्यक्तंदृष्ट्वाचिंतापरोऽभवत् ॥ प्रविश्यराजभवनंराजलक्ष्मीविवर्जितम् ॥ ५७ ॥

राजश्रीहीन राजभवनमें प्रवेश करकै ॥ ५७ ॥ वहाँपर अकेली आसनपर बैठी हुई कैकेयीको देखा; और भक्तिभावसे माताके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ५८ ॥ भरतजीको आता हुआ देख कैकेयीने स्नेहके वेगसे उठकर अतिशीघ्र उनको अपने हृदयसे लगाया और अपनी गोदीमें बैठाला ॥ ५९ ॥ इसके उपरान्त कैकेयी शिर सूंघकर अपने महकेकी कुशल पूछने लगी "हे वत्स! हमारे पिता, माता और भ्राता सब अच्छे तौ हैं? ॥ ६० ॥ हे पुत्र! आज बड़े भाग्यसे तुमको कुशल देखा!" माताके इस प्रकार पूछनेपर चिन्ताकुलचित्त भरत उन बातोंका उत्तर विनाही दिये व्याकुल होकर मातासे बोलै;– "मैया! हमारे पिता कहाँ है? तुम अकेली यहाँपर क्यों बैठीहो? ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ हमारे पिता तुम्हारे विना कभी निर्जन अर्थात् एकान्तमें नहीं रहते; परन्तु इससमय वह दिखाई नहीं देते इस कारण वह कहाँ हैं–यह हमें बताओ ॥ ६३ ॥ पिताको न देख पायकर आज हमको भय और दुःख होता है।" इसके उपरान्त कैकेयीने पुत्रसे कहा "हे पापरहित! तुम काहेको दुःखकरतेहो? ॥ ६४ ॥ अश्वमेधादि यज्ञ करनेवाले धर्मशील पुरुषोंको जो गति प्राप्त होतीहै; हे पितृवत्सल! इस समय तुम्हारे पिता उसही पारलौकिक श्रेष्ठगतिको प्राप्त हुए हैं" ॥ ६५ ॥ भरतजी यह सुनतेही शोकसे विह्वलहो पृथ्वीमें गिर पड़े; हा पिता। तुम हमें दुःखसागरमें छोड़कर कहाँ चले गये? ॥ ॥ ६६ ॥ हे पिता! हमको विना राजा रामके हाथमें सौंपे तुम कहाँ गये?। इस प्रकार रोते हुए पृथ्वीपर गिरे केश वखेरे हुए पुत्रको ॥ ६७ ॥

अपश्यत्कैकयींतत्रएकामेवासनेस्थिताम् ॥ ननामशिरसापादौमातुर्भक्तिसमन्वितः ॥ ५८ ॥ आगतंभरतंदृष्ट्वाकैकेयीप्रेमसंभ्रमात् ॥ उत्थायालिंग्यरभसात्स्वांकमारोप्यसंस्थिता ॥ ५९ ॥ मूर्ध्न्यवघ्रायपप्रच्छकुशलंस्वकुलस्यसा ॥ पितामेकुशलीभ्रातामाताचशुभलक्षणा ॥ ६० ॥ दिष्ट्यात्वमद्यकुशलीमयादृष्टोऽसिपुत्रक ॥ इतिपृष्टःसभरतोमात्राचिंताकुलेंद्रियः ॥ ६१ ॥ दूयमानेनमनसामातरंसमपृच्छत ॥ मातःपितामेकुत्रास्तेएकात्वमिहसंस्थिता ॥ ६२ ॥ त्वयाविनानमेतातःकदाचिद्रहसिस्थितः ॥ इदानींदृश्यतेनैवकुत्रातिष्ठतिमेवद ॥ ६३ ॥ अदृष्ट्वापितरंमेऽद्यभयंदुःखंचजायते ॥ अथाहकैकयीपुत्रंकिंदुःखेनतवानघ ॥ ६४ ॥ यागतिर्धर्मशीलानामश्वमेधादियाजिनाम् ॥ तांगतिंगतवानद्यपितातेपितृवत्सल ॥ ६५ ॥ तच्छुत्वानिपपातोर्व्यांभरतःशोकविह्वलः ॥ हातातक्वगतोऽसित्वंत्यक्त्वामांवृजिनार्णवे ॥ ६६ ॥ असमर्प्यैवरामायराज्ञेमांक्वगतोऽसिभोः ॥ इतिविलपितंपुत्रंपतितंमुक्तमूर्धजम् ॥ ६७ ॥

उठाय और उसके नेत्र पोंछकर रानी कैकेयी पुत्रसे बोली। "सावधानहो,तुम्हारा मंगल है; मैंने सब कार्य सिद्ध कर रक्खा है" ॥ ६८ ॥
तब भरतजीने मातासे कहा;– "पिताजीने मृत्युके समय क्या कहाथा ?" देवी कैकेयीने भय रहित होकर भरतजीसे कहा;– ॥ ६९ ॥
"बार २ हाराम ! राम सीता ! लक्ष्मण ! यह कह बहुत देरतक विलाप करके देह छोड़ स्वर्गको गये" ॥ ७० ॥ भरतजीने कैकेयीसे कहा–,
"मैया ! क्या उस समय राम, सीता, या लक्ष्मण कोईभी उनके निकट नहीं थे वे कहाँ गयेथे ?" ॥ ७१ ॥ कैकेयी बोली;–"तुम्हारे पिताने राम
चंद्रको युवराजपर अभिषेक करनेके लिये शीघ्रता की; तब मैंने तुमको राज्य दिलानेके लिये उस कार्यमें विघ्न किया ॥ ७२ ॥ पहले

उत्थाप्यामृज्यनयनेकैकेयीपुत्रमब्रवीत् ॥ समाश्वसिहिभद्रंतेसर्वंसंपादितंमया ॥ ६८ ॥ तामाहभरतस्तातोम्रियमाणःकिमब्रवीत् ॥
तमाहकैकयींदेवीभरतंभयवर्जिता ॥ ६९ ॥ हारामरामसीतेतिलक्ष्मणेतिपुनःपुनः ॥ विलपन्नेवसुचिरंदेहंत्यक्त्वादिवंययौ ॥ ७० ॥
तामाहभरतोहेंऽत्ररामःसन्निहितोनकिम् ॥ तदानींलक्ष्मणोवाऽपिसीतावाकुत्रतेगताः ॥ ७१ ॥ ॥ कैकेय्युवाच ॥ रामस्ययौवराज्या
र्थंपित्रातेसंभ्रमःकृतः ॥ तवराज्यप्रदानायतदाऽहंविघ्नमाचरम् ॥ ७२ ॥ राज्ञादत्तंहिमेपूर्वंवरदेनवरद्वयम् ॥ याचितंतदिदानींमेतयो
रेकेनतेऽखिलम् ॥ ७३ ॥ राज्यंरामस्यचैकेनवनवासोमुनिव्रतम् ॥ ततःसत्यपरोराजाराज्यंदत्त्वातवैवहि ॥ ७४ ॥ रामंसंप्रेषयामासव
नमेवपितातव ॥ सीताऽप्यनुगतारामंपातिव्रत्यमुपाश्रिता ॥ ७५ ॥ सौभ्रात्रंदर्शयन्राममनुयातोऽपिलक्ष्मणः ॥ वनंगतेषुसर्वेषुराजाता
नेवचिंतयन् ॥ ७६ ॥ प्रलपन्रामरामेतिममारनृपसत्तमः ॥ इतिमातुर्वचःश्रुत्वावज्राहतइवद्रुमतः ॥ ७७ ॥

वरदानी राजा दशरथजीने मुझको दो वर देने चाहेथे; उससमय मैंने नहीं लिये। इस समय वही दोनों वर मांगे उनमेंसे एक वरसे समस्त ॥ ७३ ॥
राज्य तुम्हारे लिये; और दूसरे वरसे मुनिव्रत धारण करकै रामचंद्रको वनवास मांगा। इसके उपरान्त सत्यपरायण राजाने तुमको राज्य
देकर ॥ ७४ ॥ रामचंद्रजीको तुम्हारे पिताने वनमें भेज दिया; पतिव्रता सीताजी रामचंद्रजीके साथ गई हैं ॥ ७५ ॥ लक्ष्मणजीभी भ्रातृपनके
स्नेहको दिखाते हुए श्रीरामचंद्रजीके साथ गये हैं। इस प्रकार उन सबके वन जानेपर राजा उनकीही चिन्ता करते हुए ॥ ७६ ॥ राजाओंमें श्रेष्ठ
राजा प्रलाप बकते हुए "राम, राम" कहकर मरे हैं।" माताके यह दारुण वचन सुनकर वज्रसे मारे हुए वृक्षके समान ॥ ७७ ॥

पृथ्वीपर गिरकर भरतजी मूर्च्छित होगये;तिसकाल भरतजीकी ऐसी अवस्था देख कैकेयी दुःखित होकर फिर बोली,—"बेटा तुम शोक क्यों करतेहो?७८ तुमने विशाल राज्य पाया है ! यह क्या तुम्हारे दुःख करनेका समय है " मंताके यह कहनेपर भरतजी दृष्टिद्वारा मानो माताको भस्मही करते हुए ॥ ७९ ॥ बोले। " रे दारुण पाप करनेवाली ! हे घोरे ! तू स्वामीको मारनेवाली है; इस कारण मुझसे संभाषण करने योग्य नहीं है ! रे पापी यसी ! मैं तेरे गर्भसे उत्पन्न हुआहूं; इसलिये मैं भी पापीहूं यह इस समय समझताहूं, मैं अग्निमें प्रवेश करूंगा; अथवा विष घोलकरपियूंगा;॥ ८० ॥ या खड्गके प्रहारसे आत्महत्या कर यमराजके यहाँ जाऊंगा । रे पतिघातिनि ! रे दुष्टे ! तू कुम्भीपाक नरकमें जायगी " ॥ ८१ ॥ इस प्रकार कैकेयीका अति तिरस्कार करके भरतजी कौशल्यारानीके भवनमें गये; कौशल्याजी भरतजीको देखकर बड़े जोरसे रोईं॥ ८२॥ तिसकाल भरतजीभी रोते हुए कौशल्याजीके चरणोंमें गिरपडे; तब पतिपरायण यशस्विनी रामचंद्रजीकी माता कौशल्यारानीने भरतजीको हृदयसे लगाय लिया ॥ ८३ ॥ स्वामी और पुत्रके विरहसे महादुर्बल, दीन वदन कौशल्याजी, आँखोंमें आंसू भरकर बोलीं; " हे बेटा ! तुम्हारे विदेशमें रहनेसे यह सब अनर्थ हुए हैं; तुमने अपनी माताके मुखसे उनकी सब करनी सुनीही होगी ? ॥ ८४ ॥ हमारे पुत्र रघुनंदन रामचंद्र, चीर वस्त्र पहर, जटाभार बांध, दुःखसागरमें

पपातभूमौनिःसंज्ञस्तंदृष्ट्वादुःखितातदा ॥ कैकेयीपुनरप्याहवत्सशोकेनकिंतव ॥ ७८ ॥ राज्येमहतिसंप्राप्तेदुःखस्यावसरःकुतः ॥ इति
ब्रुवंतीमालोक्यमातरंप्रदहन्निव ॥ ७९ ॥ असंभाष्याऽसिपापेमेघोरेत्वंभर्तृघातिनी ॥ पापेत्वद्गर्भजातोऽहंपापवानस्मिसांप्रतम् ॥ अहम
ग्निंप्रवेक्ष्यामिविषंवाभक्षयाम्यहम् ॥८० ॥ खड्गेनवाऽथचात्मानंहत्वायामियमक्षयम् ॥ भर्तृघातिनिदुष्टेत्वंकुंभीपाकंगमिष्यसि ॥ ८१ ॥
इतिनिर्भर्त्स्यकैकेयींकौसल्याभवनंययौ ॥ सापितंभरतंदृष्ट्वामुक्तकंठारुरोदह ॥ ८२ ॥ पादयोःपतितस्तस्याभरतोऽपितदारुदत् ॥
आलिंग्यभरतंसाध्वीराममातायशस्विनी ॥ ८३ ॥ कृशाऽतिदीनवदनासाश्रुनेत्रेदमब्रवीत् ॥ पुत्रत्वयिगतेदूरमेवंसर्वमभूदिदम् ॥ उक्तं
मात्राश्रुतंसर्वंत्वयातेमातृचेष्टितम् ॥ ८४ ॥ पुत्रःसभार्योवनमेवयातःसलक्ष्मणोमेरघुरामचंद्रः ॥ चीरांबरोबद्धजटाकलापःसंत्यज्यमां
दुःखसमुद्रमग्नाम् ॥ ८५ ॥

डूबी हुई मुझको छोड़कर भार्या सीता और लक्ष्मणके साथ वनको गये हैं ॥ ८५ ॥ हा हमारे राम ! हा रघुनाथ ! तुम परेसे परे परमात्मा मेरे गर्भमें उत्पन्न हुए हो; तौभी दुःख मुझको नहीं छोड़ता । इस कारण मैंने निश्चय किया है कि विधाताही बलवान् है । ” ॥ ८६ ॥ इस प्रकार विलाप करती हुई, और शोकसे संतापित कौशल्याके चरण पकड कर फिर भरतजी बोले;– “ मैया ! हमारी बात सुनो ॥ ८७ ॥ श्रीरामचंद्रजीका राज्याभिषेक होनेके समय कैकेयीने जो व्यवहार किये हैं – वह; अथवा उसका और कुछ प्रबंध मेरे जानतेमें हुआहो; या मैंने अपनी कुछभी सम्मति उसमें दी हो ॥ ८८ ॥ तो हे मैया ! मुझको शत (१००) ब्रह्महत्याका पाप हो; खड्गके प्रहारसे अरुन्धती समेत वसिष्ठजीके मारनेसे जो पाप होवे ॥ ८९ ॥ वह मुझको हो, यदि इस बातका होना कुछभी मुझे विदितहुवा होतौ यह सब पाप मुझेहोवें।” तिसकाल भरतजी यह कहकर रोने लगे ॥ ९० ॥ कौशल्याजी भरतको हृदयसे लगायकर बोलीं । “ पुत्र मैं सब जानतीहूं शोक मत करो ” इसी अवसरमें भरतजीका आना सुनकर ॥ ९१ ॥ वसिष्ठजी मंत्रियोंको साथ ले राजभवनमें आये । भरतजीको रोता हुआ देखकर वसिष्ठजी आदरसहित बोले ॥ ९२ ॥ “ हे वत्स ! भरत ! अति वृद्ध, परमज्ञानी और सत्यपराक्रमकारी राजा दशरथजी मृत्यु लोकके सर्व सुख भोग करके बहुतसी दक्षिणा देकर ॥ ९३ ॥ अश्वमेधादि यज्ञ करनेसे साक्षात् विष्णुरूपी रामचंद्रको पुत्र पायकर अंतसमय स्वर्गको सिधारे हैं; वहाँपर भी उन्होंने इन्द्रका आधा आसन पाया है ॥ ९४ ॥

हारामहामेरघुवंशनाथजातोऽसिमेत्वंपरतःपरात्मा ॥ तथाऽपिदुःखंनजहातिमांवैविधिर्बलीयानितिमेमनीषा ॥ ८६ ॥ सएवंभरतोवीक्ष्य विलपंतींभृशंशुचा ॥ पादौगृहीत्वाप्राहेदंशृणुमातर्वचोमम ॥ ८७ ॥ कैकेय्यायत्कृतंकर्मरामराज्याभिषेचने ॥ अन्यद्वायदिजानामिसामयानोदितायदि ॥ ८८ ॥ पापंमेऽस्तुतदामातर्ब्रह्महत्याशतोद्भवम् ॥ हत्वावसिष्ठंखड्गेनअरुंधत्यासमन्वितम् ॥ ८९ ॥ भूयात्तत्पापमखिलंममजानामियद्यहम् ॥ इत्येवंशपथंकृत्वारुरोदभरतस्तदा ॥ ९० ॥ कौसल्यातमथालिंग्यपुत्रजानामिमाशुचः ॥ एतस्मिन्नंतरेश्रुत्वाभरतस्यसमागमम् ॥ ९१ ॥ वसिष्ठोमंत्रिभिःसार्धंप्रययौराजमंदिरम् ॥ रुदंतंभरतंदृष्ट्वावसिष्ठःप्राहसादरम् ॥ ९२ ॥ वृद्धोराजादशरथोज्ञानीसत्यपराक्रमः ॥ भुक्त्वामर्त्यसुखंसर्वमिष्ट्वाविपुलदक्षिणैः ॥ ९३ ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्लब्ध्वारामंसुतंहरिम् ॥ अंतेजगामत्रिदिवंदेवेंद्रार्धासनंप्रभुः ॥ ९४ ॥

उस मोक्षके भागी शोचनेके अयोग्य राजाके लिये तुम वृथा शोक करते हो ! आत्मा;—अविनाशी, शुद्ध, और उत्पत्ति नाशादि रहित नित्य हैं ॥९५॥ शरीर;—जड अतिशय अपवित्र और नाशवान् है; इस प्रकार आत्मा और अनात्माके सम्बन्धमें विचार करनेसे किसी प्रकारभी शोकका अवकाश नहीं रहता ॥ ९६ ॥ पिता या पुत्रके मरने पर मूर्ख लोगही अपने शरीरको कूटकर उसके लिये शोक किया करते हैं ॥ ९७ ॥ हे भरत ! देखो इस असार संसारमें ज्ञानी मनुष्य बंधुजनोंके वियोगकी कामना किया करते हैं । क्योंकि बंधुजनोंका वियोग वैराग्य, और शान्ति सुखका कारण हुआ करता है ॥ ९८ ॥ हे भरत ! जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु अवश्यही होगी, बस जातमात्रकी मृत्युही स्वाभाविक धर्म है; अपने कर्मानुसार नियमित समयपर उनकी मृत्यु होगी,— इसको कोई अन्यथा नहीं कर सकता है । वत्स ! तुम सब जान बूझ करभी अज्ञानीकी

तंशोचसिवृथैवत्वमशोच्यंमोक्षभाजनम् ॥ आत्मानित्योऽव्ययःशुद्धोजन्मनाशादिवर्जितः ॥९५॥ शरीरंजडमत्यर्थमपवित्रंविनश्वरम् ॥ विचार्यमाणेशोकस्यनावकाशःकथंचन॥९६॥पितावातनयोवाऽपियदिमृत्युवशंगतः ॥ मूढास्तमनुशोचंतिस्वात्मताडनपूर्वकम्॥९७॥ निःसारेखलुसंसारेवियोगोज्ञानिनांयदा ॥ भवेद्वैराग्यहेतुःसशांतिसौख्यंतनोतिच ॥ ९८ ॥ जन्मवान्यदिलोकेऽस्मिस्तर्हितंमृत्युरन्वगात् ॥ तस्मादपरिहार्योऽयंमृत्युर्जन्मवतांसदा ॥ ९९ ॥ स्वकर्मवशतःसर्वजंतूनांप्रभवाप्ययौ ॥ विजानन्नप्यविद्वान्यःकथंशोचतिबांधवान् ॥ १०० ॥ ब्रह्मांडकोटयोनष्टाःसृष्टयोबहुशोगताः ॥ शुष्यंतिसागराःसर्वेकैवास्थाक्षणजीविते ॥ १ ॥ चलपत्रांतलग्नांबुबिंदुवत्क्षणभंगुरम् ॥ आयुस्त्यजत्यवेलायांकस्तत्रप्रत्ययस्तव॥२॥ देहीप्राक्तनदेहोत्थकर्मणादेहवान्पुनः ॥ तद्देहोत्थेनचपुनरेवंदेहःसदात्मनः ॥३॥

समान बन्धुजनके वियोगसे उत्पन्न हुए शोक करकै कातर होते हो ॥ ९९ ॥ १०० ॥ देखो ! बहुधा करोडों ब्रह्माण्ड नाशको प्राप्त हो गये हैं; वारंवार यह सृष्टि उत्पन्न होती है; समय पर सब समुद्रभी सूख जाते हैं, फिर भला प्राणियोंके क्षणमें विध्वंस होनेवाले जीवनका क्या विश्वास किया जाय ? ॥ १०१ ॥ चंचल पत्तेके किनारेपर लगी हुई जलकी बुंदके समान, क्षणभरलो स्थायी रहने वाली आयु असमयभी अर्थात् बालावस्थामेंभी निकल जाती है, इस कारण इसमें तुम्हारा स्थायी विश्वास क्यों है ॥ १०२ ॥ पहले जन्ममें किये हुए कर्मवश करकै आत्माका सम्बन्ध दूसरे देहसे होता है; और उस देहके किये हुए कर्मोंके प्रवाहसे दूसरा देह पाता है; इस प्रकार आत्माको सदाही देहका बंधन

रहता है ॥१०३॥ जिस प्रकार पुराने वस्त्रको छोडकर नया वस्त्र पहर लिया जाता है, वैसेही देही, क्रमसे प्राप्त किये हुए पुराने शरीरकोछोड़कर नया उत्पन्न हुआ शरीर ग्रहण करलेताहै॥१०४॥ भला फिर इस शरीरके कारण शोक किस प्रकारसे किया जाय–और आत्मा न कभी, मरता, न कभी उत्पन्न होता; और न कभी बढ़ता है ॥ १०५ ॥ आत्मा;–जन्मादि छैःविकारसे रहित है; अनन्त, सत्य, निर्विकल्पक, ज्ञानस्वरूप, आनंदमय, बुद्धिप्रभृतिका साक्षी और लयरहित है ॥ १०६ ॥ आत्मा;– एक; प्रकृतिसे परे अद्वितीय और सबकहीं सम भावसे विराजमान है; आत्मामें इस प्रकार दृढ़ विश्वासकर शोक छोड़कर कार्य करो ॥ १०७ ॥ हे कुलानन्द ! मंत्रियोंके साथ तेलकी नावसे पिताके देहको निकालकर अपने

यथात्यजतिवैजीर्णंवासोगृह्णातिनूतनम् ॥ तथाजीर्णंपरित्यज्यदेहीदेहंपुनर्नवम् ॥ ४ ॥ भजत्येवसदातत्रशोकस्यावसरःकुतः ॥ आत्मानम्रियतेजातुजायतेनचवर्धते ॥ ५ ॥ षड्भावरहितोऽनंतःसत्यप्रज्ञानविग्रहः ॥ आनंदरूपोबुद्ध्यादिसाक्षीलयविवर्जितः ॥ ६ ॥ एकएवपरोह्यात्माह्यद्वितीयःसमास्थितः ॥ इत्यात्मानंदृढंज्ञात्वात्यक्त्वाशोकंकुरुक्रियाम् ॥ ७ ॥ तैलद्रोण्याःपितुर्देहमुद्धृत्यसचिवैःसह ॥ कृत्यंकुरुयथान्यायमस्माभिःकुलनंदन ॥ ८ ॥इतिसंबोधितःसाक्षाद्गुरुणाभरतस्तदा॥ विसृज्याज्ञानजंशोकंचक्रेसविधिवत्क्रियाम् ॥९॥ गुरुणोक्तप्रकारेणआहिताग्नेर्यथाविधि ॥ संस्कृत्यसपितुर्देहंविधिदृष्टेनकर्मणा ॥ १० ॥ एकादशेऽहनिप्राप्तेब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ भोजयामासविधिवच्छतशोऽथसहस्रशः ॥ ११ ॥ उद्दिश्यपितरंतत्रब्राह्मणेभ्योधनंबहु ॥ ददौगवांसहस्राणिग्रामान्रत्नांबराणिच ॥ ११२ ॥

आप और हम लोगोंके सहित पिताकी मृतक क्रिया करो" ॥१०८॥ साक्षात् गुरु वसिष्ठजीने जब इस प्रकारसे समझाया बुझाया; तब भरतजीनें अज्ञानके मूल शोकको छोड़कर विधि विधानसे पिताजीकी क्रियाकी ॥१०९॥ गुरुजीकी बताई हुई विधिके अनुसार आहिताग्नि अर्थात् अग्निहोत्रयज्ञ करनेकी विधिसे शास्त्रकी आज्ञावत् पिताकी देहका संस्कारकर॥ ११०॥ ग्यारहवें दिनमें सैकड़ों हजारों वेदपाठी ब्राह्मणोंको विधिसे भोजन कराया ॥१११॥ फिर पिताजीकी स्वर्गप्राप्तिके अर्थ ब्राह्मणोंको बहुतसा धन, सहस्रों गाय, बहुतसे गाँव, विविध रत्न, और वस्त्रदान किये ॥११३॥

रामचंद्रजीकीही चिन्ता करते हुए, तिसकाल भरतजी वसिष्ठ, भइया शत्रुघ्न, और मंत्रियोंके साथ अपने गृहमें वास करते हुए ॥ ११३ ॥ भ्रातृवत्सल भरतजीने अयोध्याके भवनमें वास करके राजकार्यको छोड़ दिया; वह सदा अनिवार चिन्ता किया करते कि राक्षसीके समान कैकयीको देखकर हमारा हृदय जला जाता है; इस कराण मैं यहाँपर वास नहीं करूंगा; आजही राज्य छोड़कर उस वनमें चला जाऊंगा कि जिस वनमें राम, सीता और लक्ष्मण वास करते हैं; वहाँ जायकर स्थिर चित्त और सहास्य वदनसे सीताके सहित श्रीरामचंद्रजीके चरणों की सेवा किया करूंगा ॥ ११४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे भाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ भरत मिलाप ॥

अवसत्स्वगृहेतत्ररामसेवानुचिंतयन् ॥ वसिष्ठेनसहभ्रात्रामंत्रिभिःपरिवारितः ॥११३॥ रामेऽरण्यंप्रयातेसहजनकसुतालक्ष्मणाभ्यांसुघोरं मातामेराक्षसीवप्रदहतिहृदयंदर्शनादेवसद्यः ॥ गच्छाम्यारण्यमद्यस्थिरमतिरखिलंदूरतोऽपास्यराज्यंरामंसीतासमेतंस्मितरुचिरमुखंनित्यमेवानुसेवे ॥११४ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेअयोध्याकांडेसप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ वसिष्ठोमुनिभिःसार्धंमंत्रिभिःपरिवारितः ॥ राज्ञःसभांदेवसभासन्निभामविशद्विभुः ॥ १ ॥ तत्रासनेसमासीनश्चतुर्मुखइवापरः ॥ आनीयभरतंतत्र उपवेश्यसहानुजम् ॥ २ ॥ अब्रवीद्वचनंदेशकालोचितमरिंदमम् ॥ वत्सराज्येऽभिषेक्ष्यामस्त्वामद्यपितृशासनात् ॥ ३ ॥ कैकेय्यायाचितंराज्यंत्वदर्थेपुरुषर्षभ ॥ सत्यसंधोदशरथःप्रतिज्ञायददौकिल ॥ ४ ॥ अभिषेकोभवत्वद्यमुनिभिर्मंत्रपूर्वकम् ॥ तच्छ्रुत्वाभरतोऽप्याहममराज्येनकिंमुने ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले,– इसके उपरान्त कुलगुरु वसिष्ठजी, मुनिगण और कईएक राजमंत्रियोंको साथ लिये हुए देवसभाके समान राजसभामें आये ॥ १ ॥ दूसरे ब्रह्माजीके समान वशिष्ठ मुनिने आसन पर बैठकर शत्रुघ्नके साथ भरतजीको वहाँपर बिठाया ॥ २ ॥ इसके उपरान्त शत्रुओंके मारनेवाले भरतजीसे वशिष्ठजी देशकालके अनुसार वचन बोले । “ हे वत्स ! तुम्हारे पिताकी आज्ञासे हम तुमको आज राज्यपर अभिषेक करेंगे ॥ ३ ॥ हे पुरुष हे श्रेष्ठ ! हम जानते हैं कि कैकेयीने तुम्हारे लिये राज्यकी प्रार्थना की; पहले प्रतिज्ञामें बँधनेके कारण सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले राजा दशरथजीने तुमको यह राज्य दिया है ॥ ४ ॥ मुनिलोग मन्त्र पढ़कर आज तुम्हारा अभिषेककार्य सिद्धकरें । ” यह सुनकर भरत

जी बोले;—"मुनिश्रेष्ठ ! राज्यसे हमको कौन प्रयोजन है ? ॥ ५ ॥ हमतौ केवल राजाधिराज श्रीरामचन्द्रजीके दास हैं; इसलिये उनका दास होकर
इस असार देहको पवित्र करूंगा; इसकारण कल प्रभातही रामचन्द्रजीको लेनेके लिये जाऊंगा ॥ ६ ॥ हम व आपलोग; राक्षसीके विना सब माता
भी चलेंगी। माताहोनेपर कैकेयीको हम अभी वध करसकते हैं ॥ ७ ॥ परन्तु इसके मारडालनेसे रामचन्द्रजी हमें स्त्रीघातक जानकर क्षमा नहीं
करेंगे । परन्तु जो कुछभीहो मैंतो प्रभातकालही पैदल दण्डकवनको जाऊंगा ॥ ८ ॥ आप सब आवें या न आवें, मैंतो शीघ्रही शत्रुघ्नके साथ
जाऊंगा; जिसप्रकार रामचन्द्रजी वनमें गयेहैं; वैसेही मैं छालके वस्त्र पहरूंगा ॥ ९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! शत्रुघ्नके साथ फल मूलको भोजनकर और

रामोराजाधिराजश्चवयंतस्यैवकिंकराः ॥ श्वःप्रभातेगमिष्यामोराममानेतुमंजसा ॥ ६ ॥ अहंयूयंमातरश्चकैकेयींराक्षसींविना ॥ हनिष्या
म्यधुनैवाहंकैकेयींमातृगंधिनीम् ॥ ७ ॥ किंतुमांनोरघुश्रेष्ठःस्त्रीहंतारंसहिष्यते ॥ तच्छ्वोभूतेगमिष्यामिपादचारेणदंडकान् ॥८॥ शत्रुघ्न
सहितस्तूर्णंयूयमायांतुवानवा ॥ रामोयथावनेयातस्तथाऽहंवल्कलांबरः ॥ ९ ॥ फलमूलकृताहारःशत्रुघ्नसहितोमुने ॥ भूमिशायीज
टाधारीयावद्रामोनिवर्तते ॥ १० ॥ इतिनिश्चित्यभरतस्तूष्णीमेवावतस्थिवान् ॥ साधुसाध्वितितंसर्वेप्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥ ११ ॥
ततःप्रभातेभरतंगच्छंतंसर्वसैनिकाः ॥ अनुजग्मुःसुमंत्रेणनोदिताःसाश्वकुंजराः ॥ १२ ॥ कौसल्याद्याराजदारावसिष्ठप्रमुखाद्विजाः ॥
छादयंतोभुवंसर्वेपृष्ठतःपार्श्वतोऽग्रतः ॥ १३ ॥ शृंगवेरपुरंगत्वागंगाकूलेसमंततः ॥ उवासमहतीसेनाशत्रुघ्नपरिचोदिता ॥ १४ ॥

पृथ्वीपर शयनकर जटा धारण किये रहूंगा कि जबतक रामचन्द्रजी लौट कर नहीं आवेंगे" ॥ १० ॥ भरतजी ऐसा स्थिरकरके मौनहो बैठ रहे।
तब सबही आनन्दितहो "साधु साधु बहुत अच्छा, बहुत अच्छा" कहकर उनकी बड़ाई करनेलगे ॥ ११ ॥ दूसरेदिन प्रभातको भरतजी राम
लिवानेके लिये गमनकरते हुए, सुमंत्रजीकी भेजीहुई सब सेना हाथी घोड़ोंके सहित उनके पीछे २ चली ॥ १२ ॥ कौशल्यादि रानियें वसिष्ठ प्र
मुख ब्राह्मण गण सबही पृथ्वीको ढककर भरतजीके आगे पीछे और अगल बगलको यथायोग्य भावसे गमन करने लगे ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त
शत्रुघ्नजी करके पालित सुविशाल सेनादल गंगाजीके किनारेपर वसे हुए शृङ्गवेरपुरमें जायकर उसके चारोंओर डेरे डालता हुआ ॥ १४ ॥

भरतजीका आना सुनकर गुहके मनमें शंका हुई कि "भरत बड़ीभारी सेनालेकर आये हैं ॥ १५ ॥ कहीं यह वृत्तान्त न जाननेवाले (अर्थात् जिनको भरतके आनेका कुछभी समाचार नहीं ज्ञात है) रामचन्द्रजीका कुछ अनिष्ट करने तौ नहीं जाते? जो कुछभीहो; जायकर इनका मन बूझूं; जो शुद्ध मन होंगे पार उतरने दूंगा ॥ १६ ॥ नहींतौ मेरी जातिके लोग शस्त्रबांध सावधानहो चारोंओर देखतेहुए; सब नाव खैंच लावेंगे; और उनको गङ्गा पार न होने देंगे " ॥ १७ ॥ इसप्रकारसे सबको आज्ञादे, गुह भरतजीके पास गया। गुह अनेक प्रकारकी भेंट लेकर आयुधबांधे, बहुत जातिवाले मनुष्यों केसाथ भरतजीके निकटगया था; भरतजीके आगे वह समस्त भेंट रखकर चारों ओर निहारनेपर देखता हुआ कि अनुजके साथ भरतजी मन्त्रियोंके बीचमें बैठेहुए हैं; वे चीर वस्त्र पहर रहेहैं; वर्ण मेघके समान श्याम, मस्तक पर जटा-भार-रूप किरीट विराजमानहैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ वे वारंवार "राम राम" ध्वनि और रामचन्द्रके अर्थही शोक करते हैं; निषादने पृथ्वीपर गिरकर भरतजीको दण्डवत् प्रणामकरके कहा ॥ २१ ॥ "हेसखे ! मैं गुहक आयाहूं।" भरतजीने उसको भलीभांति भेंटकर कुशल प्रश्नकिया; और फिर धीरे २ सखासे यह वचन बोले ॥ २२ ॥ "हे भइया ! यहींपर रामचन्द्रजीके साथ मिलकर तुम विराजमानथे; और निर्मल हृदय श्रीरामचंद्रजीने तुम्हें नेत्रोंमें जल भरकर हृदयसे लगाया था ॥ २३ ॥ जबकि तुम

आगतंभरतंश्रुत्वागुहःशंकितमानसः ॥ महत्यासेनयासार्धमागतोभरतःकिल ॥ १५ ॥ पापंकर्तुंनवायातिरामस्याविदितात्मनः ॥
गत्वातद्धृदयंज्ञेयंयदिशुद्धस्तारिष्याति ॥ १६ ॥ गंगांनोचेत्समाकृष्यनावस्तिष्ठंतुसायुधाः ॥ ज्ञातयोमेसमायत्ताःपश्यंतःसर्वतोदिशम्
॥ १७ ॥ इतिसर्वान्समादिश्यगुहोभरतमागतः ॥ उपायनानिसंगृह्यविविधानिबहून्यपि ॥ १८ ॥ प्रययौज्ञातिभिःसार्धंबहुभिर्विविधायु
धैः ॥ निवेद्योपायनान्यग्रेभरतस्यसमंततः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वाभरतमासीनंसानुजंसहमंत्रिभिः ॥ चीरांबरंघनश्यामंजटामुकुटधारिणम् ॥ २० ॥
राममेवानुशोचंतंरामरामेतिवादिनम् ॥ ननामशिरसाभूमौगुहोऽहमितिचाब्रवीत् ॥ २१ ॥ शीघ्रमुत्थाप्यभरतोगाढमालिंग्यसादरम् ॥
पृष्ट्वाऽनामयमव्यग्रःसखायमिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥ भ्रातस्त्वंराघवेणात्रसमेतःसमवास्थितः ॥ रामेणालिंगितःसार्द्रनयनेनामलात्मना ॥ २३ ॥
धन्योऽसिकृतकृत्योऽसियत्त्वयापरिभाषितः ॥ रामोराजीवपत्राक्षोलक्ष्मणेनचसीतया ॥ २४ ॥

ने सीता लक्ष्मणके संगी, कमलदललोचन श्रीरामचंद्रजीसे वार्तालाप किया है तब तुमही धन्य और तुमही कृतार्थहुएहो॥ २४ ॥ हे सुव्रत ! तुमने प्रथमही रामचन्द्रजीको देखाथा हमकोभी वहांपर लेचलो; और जिस स्थानमें सीताजीके सहित रामचन्द्रजी सोयेथे वह स्थानभी हमको दिखाओ ॥ २५ ॥ हे भइया ! तुम अति भाग्यवान्हो जो भाग्यबलसे श्रीरामचन्द्रजीके प्रति एकान्तभक्ति और उनकी प्रियबन्धुता तुमने पाईहै। ” भरतजी इसप्रकार से श्रीरामचंद्रजीका स्मरणकरके नेत्रोंमें आंसूभर ॥ २६ ॥ गुहके सहित वहाँपर गये कि जहाँ रात्रिको श्रीरामचंद्रजीने शयन कियाथा; वहांपर कुशोंसे बिछेहुए शयनस्थानको देखा ॥ २७ ॥ भरतजीने देखा कि कठोर सेजपर करवट लेनेसे जानकीजीके पहरेहुए गहनोंके छोटे २ सुवर्ण विन्दु

यत्ररामस्त्वयादृष्टस्तत्रमांनयसुव्रत ॥ सीतयासहितोयत्रसुप्तस्तद्दर्शयस्वमे ॥२५॥ त्वंरामस्यप्रियतमोभक्तिमानसिभाग्यवान् ॥ इतिसं स्मृत्यसंस्मृत्यरामंसाश्रुविलोचनः ॥ २६ ॥ गुहेनसहितस्तत्रयत्ररामःस्थितोनिशि ॥ ययौददर्शशयनस्थलंकुशसमास्तृतम् ॥ २७ ॥ सीताभरणसँल्लग्नस्वर्णविंदुभिरंचितम् ॥ दुःखसंतप्तहृदयोभरतःपर्यदेवयत् ॥ २८ ॥ अहोऽतिसुकुमारीयासीताजनकनंदिनी ॥ प्रासादे रत्नपर्यंकेकोमलास्तरणेशुभे ॥ २९ ॥ रामेणसहिताशेतेसाकथंकुशविष्टरे ॥ सीतारामेणसहितादुःखेनममदोषतः ॥ ३० ॥ धिङ्मांजातो ऽस्मिकैकेय्यांपापराशिसमानतः ॥ मन्निमित्तमिदंक्लेशंरामस्यपरमात्मनः ॥ ३१ ॥ अहोऽतिसफलंजन्मलक्ष्मणस्यमहात्मनः ॥ राममे वसदाऽन्वेतिवनस्थमपिहृष्टधीः ॥ ३२ ॥ अहंरामस्यदासायेतेषांदासस्यकिंकरः ॥ यदिस्यांसफलंजन्ममसभूयान्नसंशयः ॥ ३३ ॥

उस बिछौनेपर पड़े हैं, यह देखकर भरतजी दुःखितचित्तसे विलाप करने लगे ॥ २८ ॥ हाय ! अति सुकुमारी जनककी पुत्री सीता; जोकि महलोंमें रत्नजड़े पलँगपर बिछे हुवे सुंदर बिछोनेमें ॥ २९ ॥ रामचन्द्रजीके साथ शयन करतींथीं; वे मेरेही दोषसे रामजीकेसाथ अति क्लेश देनेवाली कुशकी सेज पर किसप्रकारसे शयन करतीहैं ? ॥ ३० ॥ मुझको धिक्कार है; मैं मूर्तिमान् पापराशिके समान कैकेयीके गर्भमें उत्पन्न हुआहूं; मेरेहीलिये परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीको यह क्लेशहै ॥ ३१ ॥ अहो ! महात्मा लक्ष्मणजीका जन्म ही अतिसफलहै कारण कि वे प्रसन्न चित्तसे सदाही श्रीरामचन्द्रजीके पीछे चलते हैं ॥ ३२ ॥ जो लोग रामजीके दासहैं मैं यदि उनके दासोंकादास होजाऊं तौभी मेरा जन्म सफल होजाय इसमें संशय नहीं है ॥ ३३ ॥

भाई जहाँपर रामचन्द्रजी हैं; यदि उस स्थानको जानतेहो; तौ वह समस्त वृत्तांत हमसे कहो ॥ ३४ ॥ मैं शीघ्रतासे उनके लौटानेको जाऊं।" भरतजीको अकपट चित्त जानकर स्नेहसहित गुह बोला। "हे देव! तुम धन्यहो, जो तुम्हारी ऐसी भक्ति! ॥ ३५ ॥ कमलदलनेत्र रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण के प्रति है। चित्रकूट पर्वतके निकट मन्दाकिनी नदींके किनारे ॥ ३६ ॥ मुनिजनोंके आश्रमके समीप लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचन्द्रजी रहते हैं। फल मूलादिके अधिक होनेसे श्रीरामचन्द्रजी वहाँ सुखसे वास करते हैं ॥ ३७ ॥ हम वहाँपर शीघ्रही चलेंगे इससमय गंगापार जाना होगा।" यह कहकर तिसकाल सेनाके सहित भरतजीको गङ्गापार करनेके लिये; अतिशीघ्र जायकर निषादने पांचसौ नाव मँगवाई। और गुह अपने आप ही जायकर एक राजाओंके बैठने योग्य नाव ले आया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तिस नावमें भरत, शत्रुघ्न, कौशल्या और वसिष्ठजीको व दूसरी नावमें कैकेयी व दूसरी राजरानियोंको चढ़ायकर ॥ ४० ॥ नावको गङ्गाजीके पार करनेलगा। सेनाके सहित शीघ्रही गंगाजीके पारहो, भरद्वाजके आश्रमकी ओर भरतजी चले। इसके उपरान्त बड़ीभारी सेनाको दूर टिकायकर अनुज अर्थात् शत्रुघ्नके साथ भरतजी आश्रममें प्रवेश करते हुए। आश्रममें प्रकाशमान अग्निके समान मुनिजीको विराजमान देखकर भरतजीने अतिभक्तिभावसे उनको साष्टांग दण्डवत् और प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ मौन धारणकरनेवालोंमें श्रेष्ठ भरद्वाजजी दशरथकुमार जानकर भरतजीका भलीभांति सन्मान करके प्रसन्नहुए; उनको जटावल्कलधारी देखकर

भ्रातर्जानासियदितत्कथयस्वममाखिलम् ॥ यत्रतिष्ठातितत्राहंगच्छाम्यानेतुमंजसा ॥ ३४ ॥ गुहस्तंशुद्धहृदयंज्ञात्वासस्नेहमब्रवीत् ॥ दे
वत्वमेवधन्योऽसियस्यतेभक्तिरीदृशी ॥ ३५ ॥ रामेराजीवपत्राक्षेसीतायांलक्ष्मणेतथा ॥ चित्रकूटाद्रिनिकटेमंदाकिन्याविदूरतः ॥३६॥
मुनीनामाश्रमपदेरामास्तिष्ठतिसानुजः ॥ जानक्यासहितोनंदात्सुखमास्तेकिलप्रभुः ॥ ३७ ॥ तत्रगच्छामहेशीघ्रंगंगांतर्तुमिहार्हसि ॥
इत्युक्त्वात्वरितंगत्वानावःपंचशतानिह ॥ ३८ ॥ समानयत्ससैन्यस्यतर्तुंगंगांमहानदीम् ॥ स्वयमेवानिनायैकांराजनावंगुहस्तदा ॥
॥ ३९ ॥ आरोप्यभरतंतत्रशत्रुघ्नंराममातरम् ॥ वसिष्ठंचतथाऽन्यत्रकैकेयींचान्ययोषितः ॥ ४० ॥ तीर्त्वागंगांययौशीघ्रंभरद्वाजाश्रमंप्र
ति ॥ दूरेस्थाप्यमहासैन्यंभरतःसानुजोययौ ॥ ४१ ॥आश्रमेमुनिमासीनंज्वलंतमिवपावकम् ॥ दृष्ट्वाननामभरतःसाष्टांगमतिभक्तितः
॥ ४२ ॥ ज्ञात्वादाशरथिंप्रीत्यापूजयामासमौनिराट् ॥ पप्रच्छकुशलंदृष्ट्वाजटावल्कलधारिणम् ॥ ४३ ॥

कुशलप्रश्न किया ॥ ४३ ॥ भरद्वाजजी बोले “तुमतौ राज्यपालन करते हो ? तुमको जटा वल्कलादि धारण करने कैसे ? तुम मुनिसेवितवनमें किस कारणसे आयेहो ?” ॥ ४४ ॥ भरद्वाजजीके वचन सुनकर भरतजी नेत्रोंमें नीर भरकर बोले;– “हे भगवन् ! आप सब जानते हो क्योंकि सर्व प्राणियोंके अन्तरमें वास करते हो–॥ ४५ ॥ तथापि जो कुछ पूछतेहो वह मेरे पर अनुग्रह है। कैकेयीने जो कर्म रामचंद्रजीके राज्यमे बाधा डालनेके लिये किया ॥ ४६ ॥ या उनको वनवासादि देनेमें जो कुछ किया उसको मैं कुछभी नहीं जानता। हे मुनिश्रेष्ठ ! आपके चरणयुगलही इस विषयमें आज मेरे प्रमाण हैं” ॥ ४७ ॥ यह कहकर दुःखित चित्तसे मुनिके दोनों चरण छूकर भरतजी बोले। “हे देव मेरा दोषी या निर्दोषी

राज्यंप्रशासतस्तेऽद्यकिमेतद्वल्कलादिकम् ॥ आगतोऽसिकिमर्थंत्वंविपिनंमुनिसेवितम् ॥४४॥ भरद्वाजवचःश्रुत्वाभरतःसाश्रुलोचनः ॥
सर्वंजानासिभगवन्सर्वभूताशयस्थितः ॥ ४५ ॥ तथाऽपिपृच्छसेकिंचित्तदनुग्रहएवमे॥कैकेय्यायत्कृतंकर्मरामराज्यविघातनम् ॥ ४६ ॥
वनवासादिकंवापिनहिजानामिकिंचन ॥ भवत्पादयुगंमेऽद्यप्रमाणंमुनिसत्तम ॥ ४७ ॥ इत्युक्त्वापादयुगलंमुनेःस्पृष्ट्वाऽर्तमानसः ॥ ज्ञा
तुमर्हसिमांदेवशुद्धोवाऽशुद्धएववा ॥ ४८ ॥ ममराज्येनकिंस्वामिन्रामेतिष्ठतिराजनि ॥ किंकरोऽहंमुनिश्रेष्ठरामचंद्रस्यशाश्वतः ॥ ४९ ॥
अतोगत्वामुनिश्रेष्ठरामस्यचरणांतिके ॥ पतित्वाराज्यसंभारान्समर्प्यात्रैवराघवम् ॥ ५० ॥ अभिषेक्ष्येवसिष्ठाद्यैःपौरजानपदैःसह ॥
नेष्येऽयोध्यांरमानाथंदासःसेवेऽतिनीचवत् ॥ ५१ ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्यभरतस्यवचोमुनिः ॥ आलिंग्यमूर्ध्न्यवघ्रायप्रशशंससविस्मयः॥
॥ ५२ ॥ वत्सज्ञातंपुरैवैतद्भविष्यंज्ञानचक्षुषा ॥ माशुचस्त्वंपरोभक्तःश्रीरामेलक्ष्मणादपि ॥ ५३ ॥

होना आपही स्थिर कीजिये ॥ ४८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! श्रीरामचंद्रजीसे राजा रहते हुए हमको राज्यसे क्या काम? हमतौ रामचंद्रजीके दास हैं ॥ ४९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ हम जायकर श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें गिरें। राज्यका भार सौंपकर ॥ ५० ॥ पुरवासी और जनपदवासियोंके साथ, मैं रामचंद्रजीका अभिषेक वसिष्ठादि महर्षियोंसे यहींपर कराऊंगा; उन रमानाथको अयोध्यापुरीमें लेजाऊंगा;– और मैं दास होकर विनीतभावसे उनके चरणोंकी सेवा करूंगा।” ॥ ५१ ॥ भरतजीके ऐसे वचन सुनकर भरद्वाज मुनिने उनको हृदयसे लगाया, और विस्मयको प्राप्त हो शिर सूंघ उनकी बड़ाई करने लगे; और बोले ॥ ५२ ॥ “हे वत्स ! हमने ज्ञानके नेत्रोंसे प्रथमही इस होनहार वृत्तान्तको जान लिया

है; तुम शोच मत करो; तुम्हारी भक्ति रामचंद्रजीमें लक्ष्मणजीसे भी अधिक है ॥ ५३ ॥ हे पापरहित! मैं सेनाके सहित तुम्हारी पहुनई करनेकी इच्छा करताहूं । आज सेनाके साथ भोजनादि करके कल श्रीरामचंद्रजीके समीप जाना ।" ॥ ५४ ॥ यह सुनकर भरतजी बोले । "आप जैसी आज्ञा करते हैं वैसाही होगा" । मुनि भरद्वाजजी आचमन कर मौनहो होमगृहमें बैठे ॥ ५५ ॥ वहाँपर बैठकर कामना पूर्णकरने वाले मुनिजीनें सर्व कामना पूर्णकरनेवाली कामधेनुका ध्यान किया, उस कामधेनुने भरद्वाजजीकी कामनाके अनुसार अलौकिक पदार्थोंको उत्पन्न किया ॥ ५६ ॥ सेनाके सहित भरतजीकी जो कुछ अभिलाषा हुई उस सब अभिलाषाकी कामधेनुने वर्षा करदी जिस्से सब सेना तृप्त होगई ॥ ५७ ॥

आतिथ्यंकर्तुमिच्छामिससैन्यस्यतवानघ ॥ अद्यभुक्त्वाससैन्यस्त्वंश्वोगंतारामसान्निधिम् ॥ ५४ ॥ यथाज्ञापयतिभवांस्तथेतिभरतोऽब्रवीत् ॥ भरद्वाजस्त्वपःस्पृष्ट्वामौनीहोमगृहेस्थितः ॥ ५५ ॥ दध्यौकामदुघांकामवर्षिणींकामदोमुनिः ॥ असृजत्कामधुक्सर्वंयथाकाममलौकिकम् ॥ ५६ ॥ भरतस्यससैन्यस्ययथेष्टंचमनोरथम् ॥ तथाववर्षसकलंतृप्तास्तेसर्वसैनिकाः ॥ ५७ ॥ वसिष्ठंपूजयित्वाऽग्रेशास्त्रदृष्टेनकर्मणा ॥ पश्चात्ससैन्यंभरतंतर्पयामासयोगिराट् ॥ ५८ ॥ उषित्वादिनमेकंतुआश्रमेस्वर्गसन्निभे ॥ अभिवाद्यपुनःप्रातर्भरद्वाजं सहानुजः ॥ ५९ ॥ भरतस्तुकृतानुज्ञःप्रययौरामसन्निधिम् ॥ चित्रकूटमनुप्राप्यदूरेसंस्थाप्यसैनिकान् ॥ रामसंदर्शनाकांक्षीप्रययौभरतः स्वयम् ॥ ६० ॥ शत्रुघ्नेनसुमंत्रेणगुहेनचपरंतपः ॥ तपस्विमंडलंसर्वंविचिन्वानोन्यवर्तत ॥ ६१ ॥ अदृष्ट्वारामभवनमपृच्छदृषिमंडलम् ॥ कुत्रास्तेसीतयासार्धंलक्ष्मणेनरघूत्तमः ॥ ६२ ॥

शास्त्रमें कहीहुई रीतिके अनुसार सबसे पहले योगिराज भरद्वाजजीने वसिष्ठजीकी पूजा करके फिर सेनाके सहित भरतजीको संतुष्ट किया ॥ ५८ ॥ उस स्वर्गके समान आश्रममें एक दिन वास करके प्रातःकाल होतेही भरतजीने शत्रुघ्नके साथ मुनिको दंडवत् प्रणाम किया, और फिर उनकी आज्ञा लेकर रामचंद्रजीके निकट चले ॥ ५९ ॥ चित्रकूट पर्वतके निकट पहुँच सेनाको दूरही टिकाय, भरतजी आपही श्रीरामचंद्रजीके दर्शनकी अभिलाषासे जाते हुए ॥ ६० ॥ शत्रुओंको तपानेवाले भरतजी, शत्रुघ्न, सुमंत्र, और गुहको साथ ले; तपस्वियोंके सब स्थान खोजते २ निवृत्त हुए ॥ ६१ ॥ श्रीरामचंद्रजीके भवनको नहीं देखकर ऋषिलोगोंसे बूझने लगे;—"कि रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी सीता और

लक्ष्मणजीके साथ कहांपर हैं । ” ॥ ६२ ॥ वे ऋषि लोग बोले , “ यह देखो सामनेही पर्वतके पीछे मन्दाकिनीके उत्तरकिनारे पर श्रीरामचंद्रजीने विचित्र काननमंडित रमणीय और अति एकान्तमें अपना आश्रम बनाया है ॥६३॥ जिनके चारों ओर, आम, कटहर, केला, चंपा, कोविदार, पुन्नागादि वृक्ष फलोंके भारसे झुककर विचित्र शोभा दे रहे हैं ” ॥ ६४ ॥ इस प्रकार मुनि लोगोंके दिखाये हुए रामाश्रमके सामनेका स्थान देखकर मंत्रियोंके साथ भरतजी आनंदसहित रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीके आश्रमकी ओर जाने लगे ॥ ६५ ॥ शत्रुघ्नजीके साथ भरतजीने कुछ दूर पर जायकर मुनि लोगोंसे व्याप्त अति उज्ज्वल श्रीरामचंद्रजीके भवनको देखकर समीपही वृक्षकी शाखामें लटकते हुए श्रीरामचंद्रजीके वल्कल

ऊचुरग्रेगिरेःपश्चाद्गंगायाउत्तरेतटे ॥ विविक्तंरामसदनंरम्यकाननमंडितम् ॥ ६३ ॥ सफलैराम्रपनसैःकदलीखंडसंवृतम् ॥ चंपकैःकोवि
दारैश्चपुन्नागैर्विपुलैस्तथा ॥ ६४ ॥ एवंदर्शितमालोक्यमुनिभिर्भरतोऽग्रतः ॥ हर्षाद्ययौरघुश्रेष्ठभवनंमंत्रिणासह ॥ ६५ ॥ ददर्शदूराद
तिभासुरंशुभंरामस्यगेहंमुनिवृंदसेवितम् ॥ वृक्षाग्रसँल्लग्नसुवल्कलाजिनंरामाभिरामंभरतःसहानुजः ॥ ६६ ॥ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामा
यणेउमामहेश्वरसंवादेअयोध्याकांडेऽष्टमःसर्गः॥८॥ ॥अथगत्वाऽऽश्रमपदसमीपंभरतोमुदा॥सीतारामपदैर्युक्तंपवित्रमतिशोभनम्॥१॥
सतत्रवज्रांकुशवारिजांचितध्वजादिचिह्नानिपदानिसर्वतः ॥ ददर्शरामस्यभुवोऽतिमंगलान्यचेष्टयत्पादरजःसुसानुजः ॥ २ ॥ अहोसुध
न्योऽहममूनिरामपादारविंदांकितभूतलानि ॥ पश्यामियत्पादरजोविमृग्यंब्रह्मादिदेवैःश्रुतिभिश्चनित्यम् ॥ ३ ॥

और मृगचर्मादिको नेत्रोंमे नीर भरकर वारंवार देखा ॥ ६६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकांडे भाषाटीकायामष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥ भरतजीका खडाऊ पायकर लौटना ॥ श्रीमहादेवजी बोले;—इसके उपरान्त भरतजी आनंदसे—सीतारामके चरणचिह्नयुक्त पवित्र और अति शोभायमान ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजीके आश्रमके समीप जायकर, यहाँपर पृथ्वीमें अति मंगलकारी, धनु, वज्र, अंकुश, पद्म, रेखायुक्त श्रीरामचंद्रजीके चरणचिह्न सबही जगह निहारते हुए । इसके उपरान्त उन सब पदधूरियोंमें शत्रुघ्नके सहित भरतजी लोटने लगे ॥ २ ॥ और बोले,—“अहो ! ब्रह्मादि देवगण और मुनि लोग जिनके चरणधूरिके कणोंको सदा खोजते हैं; उन्हीं श्रीरामचंद्रजीके च

---

१ कहीं २ मूल ६४ श्लोकके दूसरे चरणमें “ कदलीखंडसंवृतम् ” की जगह “ कदलीखंडमंडितम् ” पाठभी दिखाई देता है ।

रणारविन्दोंसे चिह्नित पृथ्वीको देखकर मैं अति धन्य होगया ” ॥ ३ ॥ इस प्रकार अद्भुत प्रेमरससे अंतःकरणको भिगोये, रघुनाथजीकी चिन्तामें डूबे हुए भरतजी आनंदके आंसुओंसे अपनी छातीको सींचते हुए धीरे २ श्रीरामचंद्रजीके आश्रमके निकट पहुँचकर ॥ ४ ॥ देखते हुए कि;—नये दूर्वादलके समान श्याम, विशाललोचन श्रीरामचंद्रजी वहाँपर बैठे हुए हैं; जटायें मुकुटके समान शोभित हो रहीं हैं;– नये वल्कल पहरनेके वस्त्र हैं वदनमंडल प्रसन्न है; तरुण सूर्यके समान कान्ति झलक रही है॥ ५ ॥ वे अति सौभाग्यवाली जानकीजीकी ओर देख रहे हैं, और लक्ष्मणजी उनके पाँव दाब रहे हैं; भरतजी तत्कालही शोक और हर्षके वश हो श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडे; और अतिशीघ्र उनके दोनों चरण पकड़ लेते हुए ॥ ६ ॥ बड़ी बाहोंवाले श्रीरामचंद्रजीने भरतजीको उठायकर दोनों बाहोंसे पकड़ हृदयसे लगाया, और आंसुओंसे उनको भिगोने लगे इसके उपरान्त भरतजीको गोदमें बैठाय श्रीरामचंद्रजी वारंवार हृदयसे लगाने लगे ॥ ७ ॥ फिर प्यासी गायें जलको देखकर जिस प्रकार अति शीघ्रतासे दौड़ती हैं, वैसेही कौशल्यादि मातायें श्रीरामचंद्रजीको देखनेके लिये अतिशीघ्र उस स्थानमें आईं ॥ ८ ॥ अपनी माता कौशल्याको देखतेही सहसा श्रीरामचंद्रजी उठ खडे हुए, और उनके चरणोंकी वन्दना की। दुःखसे अति आरत हुई देवी कौशल्याजीभी श्रीरामचंद्रजीको हृदयसे लगाय रोने लगीं ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीने अपनी दूसरी माताओंको भी प्रणाम किया. फिर मुनियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी

इत्यद्भुतप्रेमरसाप्लुताशयोविगाढचेतारघुनाथभावने ॥ आनंदजाश्रुस्नापितस्तनांतरःशनैरवापाश्रमसन्निधिंहरेः ॥ ४ ॥ सतत्रदृष्ट्वारघुना
थमास्थितंदूर्वादलश्यामलमायतेक्षणम् ॥ जटाकिरीटंनववल्कलांबरंप्रसन्नवक्रंतरुणारुणद्युतिम् ॥ ५ ॥ विलोकयंतंजनकात्मजांशुभां
सौमित्रिणासेवितपादपंकजम् ॥ तदाऽभिदुद्रावरघूत्तमंशुचाहर्षाच्चतत्पादयुगंत्वराऽग्रहीत् ॥ ६ ॥ रामस्तमाकृष्यसुदीर्घवाहुदोर्भ्यांप
रिष्वज्यसिषिंचनेत्रजैः ॥ जलैरथांकोपरिसंन्यवेशयत्पुनःपुनःसंपरिषस्वजेविभुः ॥ ७ ॥ अथतामातरःसर्वाःसमाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥
राघवंद्रष्टुकामास्तास्तृषार्तागौर्यथाजलम् ॥ ८ ॥ रामःस्वमातरंवीक्ष्यद्रुतमुत्थायपादयोः ॥ ववंदेसाश्रुसापुत्रमालिंग्यातीवदुःखिता ॥
॥ ९ ॥ इतराश्चतथानत्वाजननीरघुनंदनः ॥ ततःसमागतंदृष्ट्वावसिष्ठंमुनिपुंगवम् ॥ १० ॥

को आते हुए देख ॥ १० ॥ साष्टांग प्रणाम कर वारंवार कहने लगे । “हे गुरो ! मैं धन्य होगया, क्योंकि इस विजन वनमें मुझको आपका दर्शन मिला । ” इसके उपरान्त रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी गुरुजन व और सबकोही आसन पर बैठालकर पूछते हुए– ॥ ११ ॥ “ हमारे पिताजी तौ कुशलसे हैं। दुःखसे आर्त्त हो क्या उन्होंने हमैं कुछ आज्ञा दीहै ?”--वसिष्ठजी बोले “ हे रघुनंदन ! तुम्हारे पिता राजा दशरथजी ॥ १२ ॥ तुम्हारे विरहमें अति दुःखितहो गद्गदचित्तसे“ हाराम! हालक्ष्मण ! हासीते !” इसप्रकारसे अनेक विलाप करतेहुए मृत्युके ग्रासहुए हैं” ॥ १३ ॥ कानोंमें शूलके समान लगनेवाले अचानक गुरूजीके वचन सुनकर राम और लक्ष्मण“हाय ! हम मारेगये ” कहकर बहुतसा विलाप करतेहुए पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ १४ ॥

साष्टांगंप्रणिपत्याहधन्योऽस्मीतिपुनःपुनः ॥ यथाऽर्हमुपवेश्याहसर्वानेवरघूद्वहः ॥ ११ ॥ पितामेकुशलीकिंवामांकिमाहातिदुःखितः ॥
वसिष्ठस्तमुवाचेदंपितातेरघुनंदन ॥ १२ ॥ त्वद्वियोगाभितप्तात्मात्वामेवपरिचिंतयन् ॥ रामरामेतिसीतेतिलक्ष्मणेतिममारह ॥ १३ ॥
श्रुत्वातत्कर्णशूलाभंगुरोर्वचनमंजसा ॥ हाहतोऽस्मीतिपतितोरुदन्रामःसलक्ष्मणः ॥ १४ ॥ ततोऽनुरुरुदुःसर्वामातरश्चतथाऽपरे ॥
हाताततमांपरित्यज्यक्कगतोऽसिघृणाकर॥१५॥अनाथोऽस्मिमहाबाहोमांकोवालालयेदितः॥सीताचलक्ष्मणश्चैवविलेपतुरतोभृशम्॥१६॥
वसिष्ठःशांतवचनैःशमयामासतांशुचम् ॥ ततोमंदाकिनींगत्वास्नात्वातेवीतकल्मषाः ॥ १७॥ राज्ञेददुर्जलंतत्रसर्वेतेजलकांक्षिणे ॥ पिंडा
न्निर्वापयामासरामोलक्ष्मणसंयुतः ॥ १८ ॥ इंगुदीफलपिण्याकरचितान्मधुसंप्लुतान् ॥ वयंयदन्नाःपितरस्तदन्नाःस्मृतिनोदिताः॥१९॥

श्रीरामचन्द्रजीके रोनेको सुनकर सब मातायें और सब कोई भी रोने लगे। रामचन्द्रजी कहतेहुए “हा पिता ! हा दयासागर ! हमको छोड़कर तुम कहाँ गये ? ॥ १५ ॥ हे महाबाहु ! हम अनाथहोगये !” सीता और लक्ष्मणजीभी बहुत विलाप करते हुए ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त शान्त वचन कहकर वसिष्ठजीने सबके शोकको दूरकिया; फिर सब मन्दाकिनीपर जाय नहायकर पवित्रहुए ॥ १७ ॥ और सबनेही जलकी अभिलाषा किये राजा दशरथजीको जलदान किया । लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामजीने “जो हमारा अन्नहै अर्थात् जो भोजन हम करते हैं; वही हमारे पितृओंको अन्नहै–यह स्मृतिशास्त्रमें कहा है । ” यह कहकर दुःखसे नेत्रोंमें नीरभरके इंगुदीफलके पिण्ड बनाय उनपर शहद डालकर पिताजीको पिण्डदान किया; इसके

उपरान्त फिर स्नान किया और आश्रममें आये; और दूसरे लोगभी बहुत देरतक रोयकर स्नानकरनेके पीछे आश्रममें आतेहुए ॥ १८॥ १९ ॥ २० ॥ उस दिन सबने उपवास किया; अर्थात् किसीने कुछ न खाया। इसके उपरान्त दूसरेदिन मन्दाकिनीके निर्मल जलमें स्नानकर ॥ २१ ॥ श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें बैठे हैं, कि इतनेमें भरतजीने उस आश्रममे आयकर कहना आरंभ किया,–"हेराम ! हेमहाभाग राम ! आप अपना अभिषेक कराइये ॥ २२ ॥ अपने राज्यको जोकि आपको पिताजीसे प्राप्तहुआहै; आप पालनकीजिये । आप हमारे ज्येष्ठ भ्राताहैं; इसलिये पिताके समान हैं। और देखिये प्रजाका पालन करनाही क्षत्रियोंका धर्म है ॥ २३ ॥ वनजानेके लिये जो आपकी बहुतही अभिलाषाहो तौ यहभी क्षत्रियोंका धर्म है,– परन्तु इसका विशेष समय नियत किया है--हेमहावीर ! कुछ कालतक प्रजा पालनकर बहुतसे यज्ञोंका अनुष्ठानकर, वंशकी रक्षाके अर्थ पुत्र जन्माय और राज्यपर पुत्रको प्रतिष्ठित कीजिये। यह सब कार्य करके फिर वनको जाइये ॥ २४ ॥ इससमय आपके वनजानेका समयनहीं है। हेदयामय ! आप हमारे ऊपर प्रसन्न होकर मैया कैकेयीके कुकार्यको याद न कीजिये । हेप्रभो ! हमारी रक्षाकरो " ॥ २५ ॥ यह कहकर भक्तिसहित भ्राताके चरणोंमें शिर रखकर, भरतजी साक्षात् श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख दण्डेके समान गिरपड़े ॥ २६ ॥ भरतजीको अति अनुरागसे उठाकर श्रीरामचन्द्रजीने अपनी गोदीमें बैठाया । इसके उपरान्त नेत्रोंमें आंसूभर धीरे २ कहनेलगे ॥ २७ ॥ "वत्स ! तुमने जो कुछ कहा वह

इतिदुःखाश्रुपूर्णाक्षःपुनःस्नात्वागृहंययौ ॥ सर्वैरुदित्वासुचिरंस्नात्वाजग्मुस्तथाऽऽश्रमम् ॥ २० ॥ तस्मिंस्तुदिवसेसर्वेउपवासंप्रचक्रिरे ॥
ततःपरेद्युर्विमलेस्नात्वामंदाकिनीजले ॥ २१ ॥ उपविष्टंसमागम्यभरतोराममब्रवीत् ॥ रामराममहाभागस्वात्मानमभिषेचय ॥ २२ ॥
राज्यंपालयपित्र्यंतेज्येष्ठस्त्वंमेपितातथा ॥ क्षत्रियाणामयंधर्मोयत्प्रजापरिपालनम् ॥२३॥ इष्ट्वायज्ञैर्बहुविधैःपुत्रानुत्पाद्यतंतवे ॥ राज्ये
पुत्रंसमारोप्यगमिष्यसिततोवनम् ॥ २४ ॥ इदानींवनवासस्यकालोनैवप्रसीदमे ॥ मातुर्मेदुष्कृतंकिंचित्स्मर्तुंनार्हसिपाहिनः ॥ २५ ॥
इत्युक्त्वाचरणौभ्रातुःशिरस्याधायभक्तितः ॥ रामस्यपुरतःसाक्षाद्दंडवत्पतितोभुवि॥२६॥उत्थाप्यराघवःशीघ्रमारोप्यांकेऽतिभक्तितः॥
उवाचभरतंरामःस्नेहार्द्रनयनःशनैः ॥ २७ ॥ शृणुवत्सप्रवक्ष्यामित्वयोक्तंयत्तथैवतत् ॥ किंतुमामब्रवीत्तातोनववर्षाणिपंचच ॥ २८ ॥

सब सत्य है परन्तु पिताजी हमसे कह गये हैं कि–"चौदहवर्ष तक ॥ २८॥ वनमें वासकरके फिर अयोध्यापुरीमें प्रवेश करना। इससमय हमने समस्त राज्य भरतको देदिया है"॥ २९ ॥ इस्से पिताजीका स्पष्ट अभिप्रायहै कि तुम करके राज्यपालन, और मुझ करके दण्डकवनकी रक्षाहो ॥ ३० ॥ पिताजीके वचन हमलोगोंके शिरमाथे हैं; हमको अति यत्नसे पिताजीके वचनोंका पालन करना चाहिये। जो पुरुष पिताका वचन उल्लंघन करके स्वतंत्र रहता है ॥ ३१ ॥ वह जीवन्मृत है। वह शरीर छूटे पीछे नरकको जाताहै। इसलिये तुम राज्यका पालनकरो; और मैं दण्डकवनका पालन करताहूं" ॥ ३२ ॥ भरतजी बोले; "हेप्रभो! हमारे पिता, कामान्ध और स्त्रैण (स्त्रियोंमें आसक्त) होनेके कारण भ्रान्तहृदय थे; यदि उन्मत्तहोकर महाराजने कोई बात कहदीहो तौ आप उसको परमार्थ जानकर ग्रहण न करें; क्या पण्डितजन कभी भ्रान्तजनके वचनको यथार्थ जानकर ग्रहण करते हैं?" ॥ ३३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले;–"पिताजीने स्त्रीके वश होकर कामी अथवा मूढ़ बुद्धि होकर यह नहीं किया। वे सत्यवादीथे; इसलिये पहली प्रतिज्ञाभंग होनेके डरसे कैकेयीको दोवरदान दियेथे ॥ ३४ ॥ क्योंकि महान् पुरुष नरकसे अधिक असत्यसे डरतेहैं। पिताजीसे हमनेभी उनकी आज्ञा पालनकरनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ३५ ॥ हे वत्स! रघुकुलमें जन्मग्रहणकरके मैं पहली प्रतिज्ञाको किसप्रकारसे भंगकरूं?" श्रीरामचन्द्रजी

उषित्वादंडकारण्येपुरंपश्चात्समाविश ॥ इदानींभरतायदंराज्यंदत्तंमयाऽखिलम् ॥ २९ ॥ ततःपित्रैवसुव्यक्तंराज्यंदत्तंतवैवाहि ॥ दंडकारण्यराज्यंदेदत्तंपित्रातथैवच ॥ ३० ॥ अतःपितुर्वचःकार्यमावाभ्यामतियत्नतः ॥ पितुर्वचनमुल्लंघ्यस्वतंत्रोयस्तुवर्तते ॥ ३१ ॥ सजीवन्नेवमृतकोदेहांतेनिरयंव्रजेत् ॥ तस्माद्राज्यंप्रशाधित्वंवयंदंडकपालकाः ॥ ३२ ॥ भरतस्त्वब्रवीद्रामंकामुकोमूढधीःपिता ॥ स्त्रीजितोभ्रांतहृदयउन्मत्तोयदिवक्ष्यति ॥ तत्सत्यमितिनग्राह्यंभ्रांतवाक्यंयथासुधीः ॥ ३३ ॥ रामउवाच ॥ नस्त्रीजितःपिताब्रूयान्नकामीनैवमूढधीः ॥ पूर्वंप्रतिश्रुतंतस्यैसत्यवादीददौभयात् ॥ ३४ ॥ असत्याद्भीतिरधिकामहतांनरकादपि ॥ करोमीत्यहमप्येतत्सत्यंतस्यैप्रतिश्रुतम् ॥ ३५ ॥ कथंवाक्यमहंकुर्यामसत्यंराघवोहिसन् ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्यरामस्यभरतोऽब्रवीत् ॥ ३६ ॥

के यह दारुण वचन सुनकर भरतजी बोले[1]॥ ३६ ॥ " रघुवंशावतंस ! मैं आपके बदलेमें चौदहवर्षतक जटा धारण और वल्कलके वस्त्र पहरकर वनमें वास करूंगा; आप परमसुख से राज्यभोगिये" श्रीरामचन्द्रजी बोले; "पिताजीने तुमको राज्य और हमको वनवास दियाहै; । जो हम दोनों जने इसमें उलट पुलट करेंगे, तौ मिथ्यावचनसे हमारा निस्तारनहीं होगा।" ॥३७॥ ३८ ॥ भरतजी बोले;—"हे रघुनंदन! जो आपने वनमें वास करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा करली है तौ हमभी लक्ष्मणजीके समान साथ चलकर आपके चरणोंकी सेवाकरेंगे; जो आप इसमें अनुमति न देंगे तौ हम प्रायोपवेशन (अन्नजल त्याग) करके इस शरीरको छोड़देंगे" ॥ ३९ ॥ मनहीमन इसप्रकारसे निश्चयकर और यह निश्चय कियेहुए वचन प्रगटकर

तथैवचीरवसनोवनेवत्स्यामिसुव्रत ॥ चतुर्दशसमास्त्वंतुराज्यंकुरुयथासुखम् ॥ ३७ ॥ रामउवाच ॥ पित्रादत्तंतवैवैतद्राज्यंमह्यंवनंददौ ॥ व्यत्ययंयद्यहंकुर्यामसत्यंपूर्ववत्स्थितम् ॥ ३८ ॥ भरतउवाच ॥ अहमप्यागमिष्यामिसेवेत्वांलक्ष्मणोयथा ॥ नोचेत्प्रायोपवेशेनत्यजाम्येतत्कलेवरम् ॥ ३९ ॥ इत्येवंनिश्चयंकृत्वादर्भानास्तीर्यचातपे ॥ मनसापिविनिश्चित्यप्राङ्मुखोपविवेशसः ॥ ४० ॥ भरतस्यापिनिर्बंधंदृष्ट्वारामोऽतिविस्मितः ॥ नेत्रांतसंज्ञांगुरवेचकाररघुनंदनः ॥ ४१ ॥ एकांतिभरतंप्राहवसिष्ठोज्ञानिनांवरः ॥ वत्सगुह्यंशृणुष्वेदंममवाक्यात्सुनिश्चितम् ॥ ४२ ॥ रामोनारायणःसाक्षाद्ब्रह्मणायाचितःपुरा ॥ रावणस्यवधार्थायजातोदशरथात्मजः ॥ ४३ ॥ योगमायाऽपिसीतेतिजाताजनकनंदिनी ॥ शेषोऽपिलक्ष्मणोजातोराममन्वेतिसर्वदा ॥ ४४ ॥

भरतजीने धूपमें कुश विछाये और पूर्वकी ओर मुखकरके बैठे ॥ ४०॥ भरतजीकी यह महाहठ देखकर श्रीरामचन्द्रजीने वशिष्ठजीको नेत्रसे संकेत किया (अर्थात् भरतकी यह हठ छुटाओ यह कहा) ॥ ४१ ॥ ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी, भरतजीको एकान्तमें बुलायकर बोले,—"हे वत्स ! अतिगुप्त वृत्तान्त तुम मुझसे सुनो ॥ ४२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् वैकुंठनाथ नारायण हैं; रावणका वधकरनेके लिये कमलयोनि ब्रह्माजी करके प्रार्थना किये जानेपर यह दशरथजीके यहाँ पुत्र होकर जन्मे हैं ॥ ४३ ॥ योगमायानेभी सीताजीके स्वरूपसे राजा जनकजीके घरमें शरीर धारण

---

[1] रामस्यभरतोऽ (पुरतोऽ इत्यादि पाठः) ब्रवीत् ॥ ३६ ॥

किया है। शेषजीभी लक्ष्मणरूपसे जन्म ग्रहण करके सदा श्रीरामचन्द्रजीके अनुगामी रहते हैं ॥ ४४ ॥ इसकारण रावणका वधकरनेकी इच्छासे यह तीनोंजन वनको जांयगे; इसमें कोई संशय नहीं। कैकेयीके वरदानादिक और निठुर वचन कहना ॥ ४५ ॥ सबही देवताओंका कियाहुआ कार्य है। नहींतौ धर्मवान् कैकेयी किसप्रकारसे ऐसा निठुर व्यवहार करती। इस कारण हेभरत! रामचन्द्रजीके अयोध्या लौटानेका हठ छोड़दो ॥ ४६ ॥ तुम सब सेनाके साथ अयोध्या लौटजाओ; शीघ्रही श्रीरामचन्द्रजी रावणको सवंश ध्वंश करके भ्राता और भ्रातृतुल्य कुछ बन्धुओंके साथ नगर में प्रवेश करेंगे"॥४७॥ गुरु वसिष्ठजीके यह वचन सुनकर भरतजी विस्मित हुए; और आश्चर्ययुक्तहो श्रीरामचन्द्रजीके समीप जायकर बोले ॥४८॥ "हे

रावणंहंतुकामास्तेगमिष्यंतिनसंशयः ॥ कैकेय्यावरदानादियद्यन्निष्ठुरभाषणम् ॥ ४५ ॥ सर्वंदेवकृतंनोचेदेवंसाभाषयेत्कथम् ॥ तस्मा
त्त्यजाग्रहंतातरामस्यविनिवर्तने ॥ ४६ ॥ निवर्तस्वमहासैन्यैर्भ्रातृभिःसहितःपुरम् ॥ रावणंसकुलंहत्वाशीघ्रमेवागमिष्यति ॥ ४७ ॥
इतिश्रुत्वागुरोर्वाक्यंभरतोविस्मयान्वितः ॥ गत्वासमीपंरामस्यविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ४८ ॥ पादुकेदेहिराजेंद्रराज्यायतवपूजिते ॥
तयोःसेवांकरोम्येवयावदागमनंतव ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वापादुकेदिव्येयोजयामासपादयोः॥रामस्यतेददौरामोभरतायातिभक्तितः ॥५०॥
गृहीत्वापादुकेदिव्येभरतोरत्नभूषिते ॥ रामंपुनःपरिक्रम्यप्रणनामपुनःपुनः ॥ ५१ ॥भरतःपुनराहेदंभक्त्यागद्गदयागिरा ॥ नवपंचसमां
तेतुप्रथमेदिवसेयदि ॥ ५२ ॥ नागमिष्यसिचेद्रामप्रविशामिमहानलम् ॥ बाढमित्येवतंरामोभरतंसंन्यवर्तयत् ॥ ५३ ॥

राजेन्द्र राज्य पालन करनेकी सामर्थ्य प्राप्तकरनेके लिये जगत्पूजित अपनी दोनों खड़ाऊं मुझको देदीजिये; जबतक आप आवेंगे तबतक मैं इनकी सेवा करूंगा" ॥ ४९ ॥ इसके उपरान्त भरतजीने श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें दो दिव्य खड़ाऊं पहरादीं; श्रीरामचंद्रजीने भरतजीकी भक्ति देख अत्यन्त प्रसन्नहो वह खड़ाऊं भरतजीको देदीं ॥ ५० ॥ वह रत्नजड़ी हुईं दिव्य खड़ाऊं भक्तिभावसे ग्रहण करकै भरतजीने फिर रामचंद्रजीकी प्रदक्षिणा की और वारंवार उनको प्रणाम करने लगे ॥ ५१ ॥ भरतजी फिर गद्गद वाणीसे बोले; "चौदहवर्ष वीतनेके पीछे पन्द्रहवें वर्षके आरंभमे पहलेही दिन ॥ ५२ ॥ जो आप नहीं आवेंगे तौ हेराम! हम निश्चयही अग्निमें प्रवेश करैंगे।" श्रीरामचंद्रजीनें भरतजीकी प्रार्थनाको

स्वीकार करकै उन्हें विदादी ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त सुबुद्धिमान् भरतजीने, वसिष्ठ, शत्रुघ्न, मंत्रिगण, सैन्यगण, और सब माताओंके साथ अयोध्याको लौट चलनेकी तैयारी की ॥ ५४ ॥ तब कैकेयीनें एकान्त स्थानमें श्रीरामचंद्रजीको बुलाय नेत्रोंमें आंसूभर हाथ जोड़कर श्रीरामचंद्रजीसे कहा; " हे राम! तुम्हारे राज्यमें विघ्न ॥ ५५ ॥ मुझ दुष्टबुद्धिने तुम्हारी मायासे मोहित चित्त होकर किया; इस समय अपने गुणसे तुम मेरी पहली कीहुई दुष्टता क्षमाकरो । क्षमाशील साधु पुरुष शत्रुको क्षमा करनेमें भी विमुख नहीं होते ॥ ५६ ॥ हे गुणाकर! तुम साक्षात् परमात्मा सनातन विष्णु-सतोगुणमय अपनी मूर्तिको छिपायकर मायामनुष्यरूपसे सब संसारको मोहित करतेहो । जगत् तुम करकै ही प्रेरित हो अच्छे बुरे समस्तही कार्य करता है ॥ ५७ ॥ यह जगत् तुम्हारे अधीन है; नहीं तौ स्वभावसेही पराधीन हुआ यह जगत् क्या कर सक्ता है ? जैसे वाजीगरकी इच्छासे छिपे हुए डोरेके चलनेसे नाचनेकी पुतली नाचती है; ॥ ५८ ॥ वैसेही विचित्र धारण करनेवाली माया तुम्हारे अधीन होकर नाचती है । हे प्रभो! देवताओंका कार्य सिद्ध करनेको तुम करकै प्रेरितहो ॥ ५९ ॥ मैने पापका बड़ा भारी कार्य किया हैं; हे शत्रुदमन! आज मैं भलीभांतिसे जानी कि तुम देवताओंके मन वचनसे परे पदार्थहो ॥ ६० ॥ हे विश्वेश्वर! हे अनन्त! हे जगन्नाथ! मैं तुमको नमस्कार करतीहूं; पहले कियेहुए पापसे मेरा उद्धारकरो मैं तुम्हारी शरण आई, ब्रह्मज्ञानरूप खड्गसे मेरी धन पुत्रादि स्नेहरूप डोरी

ससैन्यःसवसिष्ठश्चशत्रुघ्नसहितःसुधीः ॥ मातृभिर्मंत्रिभिःसार्धंगमनायोपचक्रमे ॥ ५४ ॥ कैकेयीराममेकांतेस्रवन्नेत्रजलाकुला ॥ प्रांजलिःप्राहहेरामतवराज्यविघातनम् ॥ ५५ ॥ कृतंमयादुष्टधियामायामोहितचेतसा ॥ क्षमस्वममदौरात्म्यंक्षमासाराहिसाधवः ॥ ५६ ॥ त्वंसाक्षाद्विष्णुरव्यक्तःपरमात्मासनातनः ॥ मायामानुषरूपेणमोहयस्यखिलंजगत् ॥ त्वयैवप्रेरितोलोकःकुरुतेसाध्वसाधुवा ॥ ५७ ॥ त्वदधीनमिदंविश्वमस्वतंत्रंकरोतिकिम् ॥ यथाकृत्रिमनर्तक्योनृत्यंतिकुहकेच्छया ॥ ५८ ॥ त्वदधीनातथामायानर्तकीबहुरूपिणी ॥ त्वयैवप्रेरिताऽहंचदेवकार्यंकरिष्यता ॥ ५९ ॥ पापिष्ठंपापमनसाकर्माचरमरिंदम ॥ अद्यप्रतीतोऽसिममदेवानामप्यगोचरः ॥ ६० ॥ पाहिविश्वेश्वरानंतजगन्नाथनमोऽस्तुते ॥ छिंधिस्नेहमयंपाशंपुत्रवित्तादिगोचरम् ॥ ६१ ॥ त्वज्ज्ञानामलखड्गेनत्वामहंशरणंगता ॥ कैकेय्यावचनंश्रुत्वारामःसस्मितमब्रवीत् ॥ ६२ ॥

को काट डालो ” । कैकेयीके इसप्रकार ज्ञानसे भरे हुए वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने मुसकाय कर कहा– ॥६१॥६२॥ “हे महाभागे ! तुमने जो कुछ कहा; वह मिथ्या नहीं, सत्यही है । मेरेही द्वारा प्रेरित वाणी तेरे मुखसे निकली ॥ ६३ ॥ देवताओंका कार्य सिद्ध करनेको; इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? हे मैया ! मुझसे तुम्हें क्षमा मांगनेकी कुछ आवश्यकता नहीं; इस समय जाओ । हृदयमें दिन रात मेरा ध्यानकर ॥ ६४ ॥ सबसे स्नेह छोड़ मेरी भक्ति करनेके कारण शीघ्रही मुझको प्राप्त होजाओगी । मैं सब जगह एकसा देखनेवालाहूं; मेरा शत्रु मित्र कोई नहीं ॥६५॥ जैसे मायावी पुरुष अपनी मायासे बनाये हुए किसी पदार्थमें द्वेष या प्रीति नहीं करता ऐसेही मेरे मनकी वृत्ति है; परन्तु जो पुरुष केवल मुझमें चित्त लगायकर सदा मेरा भजन करता है; मैं भी उसके ऊपर अनुग्रह किया करताहूं। हे मैया ! जो पुरुष मेरीही मायासे मोहित होकर मुझको साधारण मनुष्य जानते हैं ॥ ६६ ॥ वे मुझको यथार्थरूपसे नहीं जान सकते । जो कुछ भी हो यह बड़े भाग्यकी बात है, कि मेरे स्वरूपका ज्ञान तुमको उत्पन्न हुआ है ॥ ६७ ॥ इस समय अयोध्यामें जाय सदा मेरा ध्यानकर गृहमें विराजो; तब संसारबंधनसे तुम्हारी मुक्ति हो जायगी । ” जब श्री रामचंद्रजीने इस प्रकार कहा तौ कैकेयी आनंद और विस्मयके सहित रामचंद्रजीकी प्रदक्षिणा करनेलगी ॥६८॥ और पृथ्वीपर गिरकर उनको वारंवार प्रणामकर आनंदसहित गृहको गई । भरतजी, माता, मंत्री, और गुरु वसिष्ठजीको साथ लेकर ॥ ६९ ॥ रामचंद्रजीका ध्यान करते हुए

यदाहमांमहाभागेनानृतंसत्यमेवतत् ॥ मयैवप्रेरितावाणीतववक्त्राद्विनिर्गता ॥ ६३ ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमत्रदोषःकुतस्तव ॥ गच्छत्वं हृदिमांनित्यंभावयंतीदिवानिशम् ॥ ६४ ॥ सर्वत्रविगतस्नेहामद्भक्त्यामोक्ष्यसेऽचिरात् ॥ अहंसर्वत्रसमदृग्द्वेष्योवाप्रियएववा ॥ ६५ ॥ नास्तिमेकल्पकस्यैवभजतोऽनुभजाम्यहम् ॥ मन्मायामोहितधियोमामंबमनुजाकृतिम् ॥ ६६ ॥ सुखदुःखाद्यनुगतंजानंतिनतुतत्त्वतः ॥ दिष्ट्यामद्गोचरंज्ञानमुत्पन्नंतेभवापहम् ॥ ६७ ॥ स्मरंतीतिष्ठभवनेलिप्यसेनचकर्मभिः ॥ इत्युक्तासापरिक्रम्यरामंसानंदविस्मया ॥६८॥ प्रणम्यशतशोभूमौययौगेहंमुदान्विता ॥ भरतस्तुसहामात्यैर्मातृभिर्गुरुणासह ॥६९॥ अयोध्यामगमच्छीघ्रंराममेवानुचिंतयन् ॥ पौरजानपदान्सर्वानयोध्यायामुदारधीः ॥ ७० ॥

शीघ्र अयोध्यामें आये; उदारबुद्धिवाले भरतजी; पुरवासी और अवधदेशके मनुष्योंको ॥ ७० ॥ जहाँ जिसका स्थान था वहाँ उसको भिजवाय आप नन्दिग्रामको चले गये। वहाँपर दोनों खड़ाऊं सिंहासनपर स्थापित करकै रामजीके समान उनकोभी गंध, पुष्प, व अक्षतादिसे नित्य पूजन करते हुए ॥ ७१ ॥ व और भी राजभोगादि उपचारोंसे भक्तिसहित नित्य पूजा करने लगे। सदा व्रत सहित रहकर ॥ ७२ ॥ फल मूल खाय, इन्द्रियोंको वशकर जटावल्कलधारी, पृथ्वीपर शयन, ब्रह्मचारी होकर भरतजी शत्रुघ्नके साथ रहे ॥ ७३ ॥ पृथ्वीके जितने राजकार्य होते उन सब कार्योंको राघव भरतजी पादुकाओंके निकट निवेदन करते ॥ ७४ ॥ श्रीरामचंद्रजीके आगमनकी आकांक्षामें दिन गिनते हुए

स्थापयित्वायथान्यायंनंदिग्रामंययौस्वयम् ॥ तत्रसिंहासनेनित्यंपादुकेस्थाप्यभक्तितः ॥७१॥पूजयित्वायथारामंगंधपुष्पाक्षतादिभिः ॥
राजोपचारैरखिलैःप्रत्यहंनियतव्रतः ॥ ७२ ॥ फलमूलाशनोदांतोजटावल्कलधारकः॥ अधःशायीब्रह्मचारीशत्रुघ्नसहितस्तदा ॥ ७३ ॥
राजकार्याणिसर्वाणियावंतिपृथिवीतले ॥ तानिपादुकयोःसम्यङ्निवेदयतिराघवः ॥७४॥ गणयन्दिवसान्येवरामागमनकांक्षया ॥ स्थितो
रामार्पितमनाःसाक्षाद्ब्रह्ममुनिर्यथा ॥७५॥ रामस्तुचित्रकूटाद्रौवसन्मुनिभिरावृतः ॥ सीतयालक्ष्मणेनापिकिंचित्कालमुपावसत्॥७६ ॥
नागराश्वसदायांतिरामदर्शनलालसाः ॥ चित्रकूटस्थितंज्ञात्वासीतयालक्ष्मणेनच ॥ ७७ ॥ दृष्ट्वातज्जनसंबाधंरामस्तत्याजतंगिरिम् ॥
दंडकारण्यगमनेकार्यमप्यनुचिंतयन् ॥ ७८ ॥ अन्वगात्सीतयाभ्रात्राह्यत्रेराश्रममुत्तमम् ॥ सर्वत्रसुखसंवासंजनसंबाधवर्जितम् ॥ ७९ ॥

श्रीरामचंद्रजीमें चित्त लगाय साक्षात् ब्रह्मर्षिके समान भरतजी जप करते हुए ॥ ७५ ॥ इस ओर मुनिजनोंके साथ रहकर श्रीरामचंद्रजीनें सीता और लक्ष्मणके सहित चित्रकूट पर्वतपर वास करते हुए; कुछ दिन बिताए ॥ ७६ ॥ परन्तु रामचंद्रजी सीता और लक्ष्मणजीके साथ चित्रकूट पर्वतपर हैं; यह जानकर नगरवासीगण, रामदर्शनके प्रबल अभिलाषसे सदा वहाँपर आया जाया करते ॥ ७७ ॥ बहुत लोगोंके आने जानेसे आश्रमको पीड़ित होते देखकर और दंडकवनमें जानेका प्रयोजन विचार (राक्षसोंका वध करनेको) उस चित्रकूट पर्वतको रामजीने त्याग दिया ॥ ७८ ॥ सीता और भ्राता लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचंद्रजी अत्रिऋषिके मनुष्यशून्य श्रेष्ठ आश्रममें आये; इस

आश्रममें सब समय सुखसे वास किया जाता है ॥ ७९ ॥ तपोवनको प्रकाशमान करते हुए विराजमान् मुनि अत्रिजीको रामचंद्रजीने वहाँ जाय दंडवत् प्रणामकरके कहा, कि "मैं राम आपको नमस्कार करता हूं,॥ ८० ॥ पिताजीकी आज्ञा माथेपर चढ़ाय मैं दंडकारण्यको आयाहूं; इस वनवासके मिससे भी आपका दर्शन पायकर मैं धन्य होगया।" ॥८१॥ मुनिजीने श्रीरामचंद्रजीके वचन सुने और श्रीरामचंद्रजीको परेसे परे नारायण जान परमभक्तिके सहित यथाविधि उनकी पूजा की ॥ ८२ ॥ वनफलमूलादि द्वारा पहुनई पायकर आसनपर बैठे हुए श्रीरामचंद्रजीमें परम संतुष्ट होकर मुनिजीने कहा ॥ ८३ ॥ "हमारी भार्या अनुसूया नामसे विख्यात हैं; वह अत्यन्त वृद्ध हुई हैं; बहुत कालतक तप किये हुए हैं;

गत्वामुनिमुपासीनंभासयंतंतपोवनम् ॥ दंडवत्प्रणिपत्याहरामोऽहमभिवादये ॥ ८० ॥ पितुराज्ञांपुरस्कृत्यदंडकानहमागतः ॥
वनवासमिषेणापिधन्योऽहंदर्शनात्तव ॥ ८१ ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंरामंज्ञात्वाहरिंपरम् ॥ पूजयामासविधिवद्भक्त्यापरमयामुनिः ॥ ८२ ॥
वन्यैःफलैःकृतातिथ्यमुपविष्टंरघूत्तमम् ॥ सीतांचलक्ष्मणंचैवसंतुष्टोवाक्यमब्रवीत् ॥ ८३ ॥ भार्यामेऽतीवसंवृद्धाह्यनसूयेतिविश्रुता ॥
तपश्चरंतीसुचिरंधर्मज्ञाधर्मवत्सला॥८४॥ अंतस्तिष्ठतितांसीतापश्यत्वरिनिषूदन ॥ तथेतिजानकींप्राहरामोराजीवलोचनः ॥८५॥ गच्छ
देवींनमस्कृत्यशीघ्रमेहिपुनःशुभे ॥ तथेतिरामवचनंसीताचापितथाऽकरोत् ॥ ८६ ॥ दंडवत्पतितामग्रेसीतांदृष्ट्वाऽतिहृष्टधीः ॥
अनसूयासमालिंग्यवत्सेसीतेतिसादरम् ॥ ८७ ॥ दिव्येददौकुंडलेद्वेनिर्मितेविश्वकर्मणा ॥ दुकूलेद्वेददौतस्यैनिर्मलेभक्तिसंयुता ॥ ८८ ॥
अंगरागंचसीतायैददौदिव्यंशुभानना ॥ नत्यक्ष्यतेंऽगरागेणशोभात्वांकमलानने ॥ ८९ ॥

वह धर्मकी जाननेवाली और धर्ममेंही प्रसन्नतासे उनकी मति है ॥ ८४ ॥ हे शत्रुदमन ! वह मंदिरके भीतर बैठी है सीताको उनकेपास जाना चाहिये।" तब राजीवलोचन रामचंद्रजी जानकीजीसे बोले॥ ८५॥ "हे शुभे ! जाओ देवीको नमस्कार करकै यहाँपर शीघ्र लौट आओ।" सीताजीने "अवश्य" कह श्रीरामचंद्रजीके वचनको स्वीकारकर वही किया॥८६॥सीताजीने आश्रमके भीतर जाय अनुसूया देवीको दंडवत् प्रणाम किया।सीताजीको दंडवत् प्रणाम करते देखकर अनुसूया देवीने अति हर्षके सहित उनको भेंटकर आदर करकै कहा "वत्से ! सीते उठो" ॥ ॥ ८७ ॥ अनुसूयाने भक्तिभावसे विश्वकर्माजीके बनाये हुए दो कुंडल, दो निर्मल वस्त्र जानकीको दिये ॥ ८८ ॥ दिव्य अंगरागभी श्रेष्ठ मुखवाली

अनुसूयाने सीताजीको दिया और बोलीं– " हे कमलानने ! (कमलके समान मुखवाली) इस अंगरागके प्रभावसे तुम कभी शोभाहीन नहीं होगी ॥ ८९ ॥ हे जानकि ! पतिव्रतका आदर करती हुई तुम श्रीरामचंद्रजीके साथ जाओ तुम्हारे साथ कुशल सहित श्रीरामचंद्रजी फिर गृहको लोट आमें " ॥ ९० ॥ राम, सीता, और लक्ष्मणजीको यथायोग्य भोजन कराय फिर अत्रिमुनि हाथ जोड़कर श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ९१ ॥

पातिव्रत्यंपुरस्कृत्यराममन्वेहिजानकि ॥ कुशलीराघवोयातुत्वयासहपुनर्गृहम् ॥ ९० ॥ भोजयित्वायथान्यायंरामंसीतासमन्वितम् ॥ लक्ष्मणंचतदारामंपुनःप्राहकृतांजलिः ॥ ९१ ॥ रामत्वमेवभुवनानिविधायतेषांसंरक्षणायसुरमानुषतिर्यगादीन् ॥ देहान्बिभार्षिनचदेहगुणैर्विलिप्तस्त्वत्तोबिभेत्यखिलमोहकरीचमाया ॥ ९२ ॥ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेऽयोध्याकांडेनवमःसर्गः ॥ ९ ॥ ॥ श्रीः ॥ अयोध्याकांडेनवसर्गाणांसप्तशतश्लोकाः ॥ ७०० ॥

हेराम ! तुमही सब लोकोंको निर्माण करकै उनकी रक्षाके निमित्त वारंवार देवदेह (वामनादि) मनुष्यदेह (राम कृष्णादि) और तिर्यगादि (मत्स्यवाराहादि) देह धारण करते हो परन्तु काम क्रोधादिरूप देहगुण तुमको स्पर्श नहीं कर सकते । और सब लोकोंको मोहनेवाली मायाभी तुमसे भीत होकर दूर भागतीहै ॥ ९२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकांडे श्रीबलदेवप्रसादमिश्रकृतौ भाषाटीकायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इदमध्यात्मरामायणायोध्याकाण्डं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन
खेमराजेन स्वकीये 'श्रीवेंकटेश्वर' यन्त्रालयेऽङ्कित्वा प्रकाशितम्.
संवत् १९५२, शके १८१७, सन् १८९५.

इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणेभाषाटीकासमेतेऽयोध्याकाण्डः समाप्तः ।

अथ श्रीमदध्यात्मरामायणे भाषाटीकासमेतेऽरण्यकांड प्रारम्भः ।

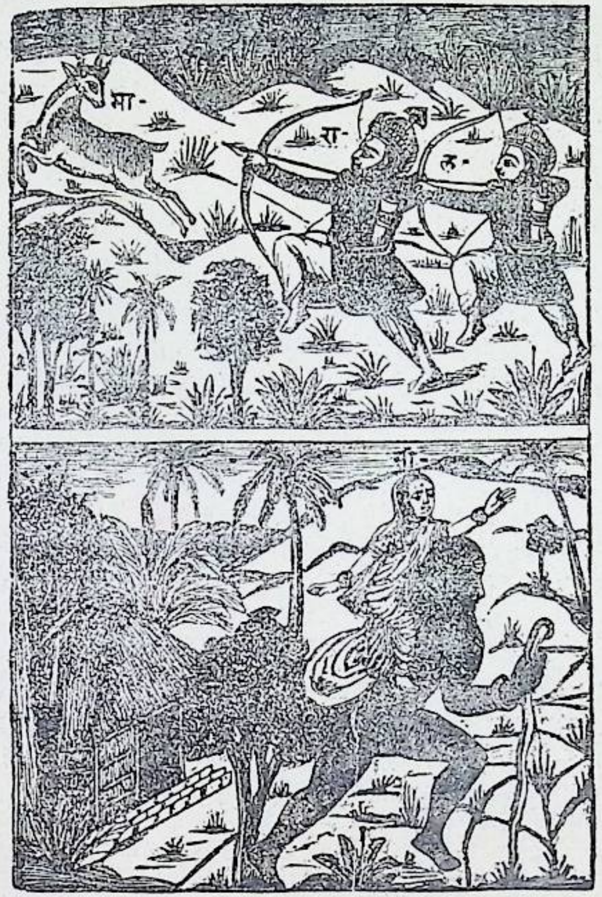
मा-
रा-
ल-

श्रीगणेशाय नमः ।

दोहा—छत्र चमर प्रहसित वदन, राजतिलक छबि माथ । राजतराज सिंहासनै, जयति जानकीनाथ ॥ १ ॥
पीतवसन जिमि तडितघन, मुखजिमि निर्मल चन्द । रमासहित शोभित सदा, वन्दहुँ श्रीरघुनंद ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी बोले, कि श्रीरामचंद्रजी, सीता और लक्ष्मणजीके साथ उस दिन अत्रि मुनिके आश्रममें वास करके प्रातःकालही स्नान करनेके पीछे महर्षिजीको प्रणामकर जानेके लिये तैयारहो मुनिजीसे बोले ॥ १ ॥ "हे मुनिश्रेष्ठ ! मुनिजनोंके मण्डलसे शोभायमान दण्डकवनमें जातेहैं; सो आप जानेकी आज्ञा दीजिये; ॥ २ ॥ अजाना मार्ग हमको दिखानेके लिये अपने शिष्योंको आज्ञा दीजिये ।" श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुनकर महायशवान् अत्रिजी हँसकर रघुश्रेष्ठ रामचन्द्रजीसे बोले, "हेराम ! आप सब देवताओंके आश्रयहो ॥ ३ ॥ तुमहीं सबके मार्ग दिखानेवालेहो, भला फिर तुम्हारा मार्ग दिखानेवाला कौन होगा? परन्तु इससमय तुम लोकव्यवहारके अनुगामी हुएहो; इसकारण हमारे शिष्यगण तुम्हें मार्ग दिखाने जांयगे ।" ॥ ४ ॥ शिष्यों को मार्ग दिखानेकी आज्ञा देकर, अत्रिभी कुछ दूर श्रीरामचंद्रजीके साथ चले गये; इसके पीछे जब प्रसन्नमनसे श्रीरामचन्द्रजीने अत्रिजीसे लौटजानेको कहा; तब वह अपने आश्रमको लौटे ॥ ५ ॥ वहाँसे एक कोश मार्ग चलकर एक बड़ीभारी नदी देखी । इसनदीको देखकर कमल दलके समान नेत्रवाले रामजीने अत्रिके शिष्योंसे कहा ॥ ६ ॥ "नदीके पार उतरनेका कोई मार्ग है या नहीं?" उन्होंने कहा "हे रघुनंदन! दृढ़ नाव है ॥ ७ ॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ अथतत्रदिनंस्थित्वाप्रभातेरघुनंदनः ॥ स्नात्वामुनिंसमामंत्र्यप्रयाणायोपचक्रमे ॥ १ ॥ मुनेगच्छामहेसर्वैमु
निमंडलमंडितम् ॥ विपिनंदंडकंयत्रत्वमाज्ञातुमिहार्हसि ॥ २ ॥ मार्गप्रदर्शनार्थायशिष्यानाज्ञप्तुमर्हसि ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंप्रहस्यात्रि
र्महायशाः॥प्राहतत्ररघुश्रेष्ठंरामरामसुराश्रय ॥३॥ सर्वस्यमार्गद्रष्टात्वंतवकोमार्गदर्शकः ॥ तथापिदर्शयिष्यंतितवलोकानुसारिणः ॥४॥
इतिशिष्यान्समादिश्यस्वयंकिंचित्तमन्वगात् ॥ रामेणवारितःप्रीत्याअत्रिःस्वभवनंययौ ॥ ५ ॥ क्रोशमात्रंततोगत्वाददर्शमहतींनदीम्॥
अत्रेःशिष्यानुवाचेदंरामोराजीवलोचनः ॥ ६ ॥ नद्याःसंतरणेकश्चिदुपायोविद्यतेनवा ॥ ऊचुस्तेविद्यतेनौकासुदृढारघुनंदन ॥ ७ ॥

एक क्षणभरके बीचमें यह नदी हम तुमसे पार करादेंगे।" इसके उपरान्त लक्ष्मण व सीताके सहित श्रीरामचंद्रजी नावपर चढ़े ॥ ८ ॥ मुनिकुमारोंने एकक्षणभरमें श्रीरामचन्द्रजीको नदीके पार उतारदिया;फिर श्रीरामचन्द्रजीके निकटसे आनन्द सहित बिदाले; वे सबही अत्रिजीके आश्रमको लौट आए ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त घोर वनमें, जहाँ कि झिल्लियां झनकार कररहींथीं; अनेक मृगोंसे व्याप्त सिंह व्याघ्रादि जन्तुओंसे भयंकर होरहाहै ॥ १० ॥ जोकि विकट आकार राक्षस लोगोंके खेलनेका स्थान है; ऐसे घोरवनमें प्रवेशकरके रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ११ ॥ "यहांसे अति यत्नके सहित हमारे साथ तुमको चलना पड़ैगा।धनुषपर रोदा चढ़ाय, बाणोंको हाथमें ले ॥ १२ ॥ हम आगे २ चलते हैं; और धनुष धारण कियेहुए पीछे तुम चले आओ। जैसे माया, जीवात्मा और परमात्माके बीचमें रहतीहै;वैसेही सीता हम दोनोंके बीचमें होकर चलें ॥ १३ ॥ चारों ओर दृष्टि करो, जानतेहो कि यहाँपर राक्षसोंका बड़ाभारी डरहै। हे शत्रुदमन ! यह बात हमने पहलेभी सुनी है, कि दण्डकारण्यमें राक्षसोंका भयहै।" ॥ १४ ॥ इसप्रकार परस्पर बातचीत करतेहुए, श्रीराम और लक्ष्मण डेढ़योजन अर्थात् छः कोश मार्ग चलेगये; । वहांपर एक पुष्करिणी, जिसमें कल्हार कमल बबूले ।। १५ ।। और कमलवन शोभायमान होकर खिलरहाहै, शीतलजलसे पूर्ण है इन्होंने देखी, पुष्करिणीके निकट जायकर उसके निर्मल जलको पान किया ॥ १६ ॥ फिर जलके निकट किनारेपर लगेहुए वृक्षकी छायामें क्षणभरतक बैठेरहे वहाँपर इन्होंने

तारयिष्यामहेयुष्मान्वयमेवक्षणादिह ॥ ततोनाविसमारोप्यसीतांराघवलक्ष्मणौ ॥८॥ क्षणात्संतारयामासुर्नदींमुनिकुमारकाः ॥ रामाभिनंदिताःसर्वेजग्मुरत्रेरथाश्रमम् ॥ ९ ॥ तावेत्यविपिनंघोरंझिल्लीझंकारनादितम् ॥ नानामृगगणाकीर्णंसिंहव्याघ्रादिभीषणम् ॥ १० ॥ राक्षसैर्घोररूपैश्चसेवितंरोमहर्षणम् ॥ प्रविश्यविपिनंघोरंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ११ ॥ इतःपरंप्रयत्नेनगंतव्यंसहितेनमे ॥ धनुर्गुणेन संयोज्यशरानपिकरेदधत् ॥ १२ ॥ अग्रेयास्याम्यहंपश्चात्त्वमन्वेहिधनुर्धरः ॥ आवयोर्मध्यगासीतामायेवात्मपरात्मनोः ॥ १३ ॥ चक्षुश्चारयसर्वत्रदृष्टंरक्षोभयंमहत् ॥ विद्यतेदंडकारण्येश्रुतपूर्वमरिंदम ॥ १४ ॥ इत्येवंभाषमाणौतौजग्मतुःसार्धयोजनम् ॥ तत्रैकापुष्करिण्यास्तेकह्लारकुमुदोत्पलैः ॥ १५ ॥अंबुजैःशीतलोदेनशोभमानाव्यदृश्यत ॥ तत्समीपमथोगत्वापीत्वातत्सलिलंशुभम्॥ १६ ॥ ऊषुस्तेसलिलाभ्याशेक्षणंछायामुपाश्रिताः ॥ ततोददृशुरायांतंमहासत्त्वंभयानकम् ॥ १७ ॥

महाबलवान् पराक्रमी विकटाकार एक भयानक राक्षसको आते हुए देखा ॥ १७ ॥ उसका वदन—भयंकर दांतोंसे परिपूर्ण है; वह अपनी गर्जनासे समस्त प्राणियोंको डरारहाथा; उसके बांये कंधेपर रक्खेहुए शूलमें बहुतसे मनुष्य विंधरहे थे ॥ १८ ॥ वह राक्षस, वनचारी, हस्ती, व्याघ्र, और भैंसोंको भक्षण कररहाथा;तब रोदा चढ़ाहुआ धनुष धारण करके श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ १९ ॥ “ देखो भइया ! डरपोकलोगोंको भयका उत्पन्न करानेवाला, बड़ेडील डौल वाला, यह राक्षस हमारे सामने चलाआता है । देखो अब यह आपहुँचा ॥ २० ॥ तुम धनुषपर बाण चढ़ाकर तैयाररहो । जानकि ! डरना नहीं । ” यह कह बाण ग्रहण कर श्रीरामचन्द्रजी पर्वतके समान उठकर खड़े होगये ॥ २१ ॥ तिस

करालदंष्ट्रवदनंभीषयंतंस्वगर्जितैः ॥ वामांसेन्यस्तशूलाग्रग्रथितानेकमानुषम् ॥ १८ ॥ भक्षयंतंगज़व्याघ्रमहिषंवनगोचरम् ॥ ज्यारोपितंधनुर्धृत्वारामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥१९॥ पश्यभ्रातर्महाकायोराक्षसोऽयमुपागतः ॥ आयात्यभिमुखंनोऽग्रेभीरूणांभयमावहन् ॥२०॥
सज्जीकृतधनुस्तिष्ठमाभैर्जनकनंदिनि ॥ इत्युक्त्वावाणमादायस्थितोरामइवाचलः ॥ २१ ॥ सतुदृष्ट्वारमानाथंलक्ष्मणंजानकींतदा ॥
अट्टहासंततःकृत्वाभीषयन्निदमब्रवीत् ॥ २२ ॥ कौयुवांवाणतूणीरजटावल्कलधारिणौ ॥ मुनिवेषधरौवालौस्त्रीसहायौसुदुर्मदौ ॥ २३ ॥
सुंदरौवतमेवक्त्रप्रविष्टकवलोपमौ ॥ किमर्थमागतौघोरंवनंव्यालनिषेवितम् ॥ २४ ॥ श्रुत्वारक्षोवचोरामःस्मयमानउवाचतम् ॥ अहं
रामस्त्वयंभ्रातालक्ष्मणोममसंमतः ॥ २५ ॥ एषासीताममप्राणवल्लभावयमागताः ॥ पितृवाक्यंपुरस्कृत्यशिक्षणार्थंभवादृशाम् ॥२६॥
श्रुत्वातद्रामवचनमट्टहासमथाकरोत् ॥ व्यादायवक्त्रंबाहुभ्यांशूलमादायसत्वरः ॥ २७ ॥

काल वह राक्षस, रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीताजीको देख ठट्ठाकरके हँसनेलगा; और भयंकर भावसे यह वचन बोला ॥ २२ ॥ “अरेगर्वित बालकों! तुम्हारा नाम क्याहै? मैं तुमको बाण तरकस और जटा वल्कल धारण किये देखताहूं । मुनिवेष धारणकियेहो, परन्तु साथमें स्त्रीहै ॥ २३ ॥ आहा ! तुम कैसे सुन्दरहो मेरे मुखमें प्रवेश करने योग्य ग्रासके समानहो ! हत्यारे जन्तुओंसे भरेहुए इसघोर वनमें तुम कैसे आये ? ” ॥ २४ ॥ राक्षसके ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र मुसकातेहुए उस्से बोले “मेरा नाम रामहै; यह मेरे प्यारे भ्राता लक्ष्मण हैं ॥ २५ ॥ और यह हमारी प्राणप्रिया सीता है. हम पिताके वचनोंका सन्मानकर; तुझसे दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये वनमें आये हैं”। ॥ २६ ॥ विराध श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर ठठाय

कर हँसने लगा। और मुख फैलाय दोनों हाथोंमें शूल धारणकर अति शीघ्रतासे कहने लगा ॥२७॥ "हा राम ! तुम मुझको जानते नहींहो;--मैं संसारमें प्रसिद्ध हुआ विराधनाम राक्षसहूं, । मेरे डरसे सब मुनिगण वनको छोड़ दूसरे स्थानमें चलेगये हैं ॥ २८ ॥ यदि जीवित रहनेकी इच्छा है तौ सीताको छोड़कर हथियार डाल शीघ्रही तुम दोनों जने भाग जाओ; नहींतौ मैं शीघ्रही तुमको भक्षण करडालूंगा ॥ " ॥ २९ ॥ यह कहकर वह राक्षस सीताजीको ग्रहण करनेके लिये उनके सामने दौड़ा। रामचन्द्रजीने हँसते २ लीलासेही बाण चलाय उस राक्षसकी दोनों बाँहें काटडालीं ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त बड़े क्रोधके साथ विकट वदन फैलाय विराध राक्षस रामजीके सन्मुख दौड़ा। तब श्रीरामचंद्रजीने विराधके दोनों पांव काटडाले ॥३१॥ उसके पैरोंका काटना बड़ाही अद्भुत चरित्र ज्ञात हुआ फिर मुखसे ग्रास करनेके लिये; सर्पके समान विराध राक्षस श्रीरामचंद्रजीकी ओर आने लगा। तब श्रीरामचंद्रजीने अर्द्धचंद्राकार बाणसे उसराक्षसका बड़ाभारी शिर काटडाला ॥ ३२॥३३ ॥ वह कटा हुआ मस्तक बहुतसा रुधिर गिराता हुआ पृथ्वीपर गिरा; इसके उपरान्त सीताजी रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजीको भेंटकर उनकी बड़ाई करने लगीं ॥ ३४ ॥ उस काल हर्षित होकर देवतागण आकाशमें नगाड़े बजाने लगे; अप्सरायें हर्षित होकर नाचने लगीं। गंधर्व, किन्नर गाना गाने लगे ॥ ३५ ॥ आकाशमंडलमें सूर्यके समान विराजमान निर्मल वस्त्र और तपाये हुए सुवर्णके सुन्दर गहनोंसे सजा विराधके शरीरसे निकला हुआ अति सुन्दर

मांनजानासिरामत्वंविराधंलोकविश्रुतम् ॥ मद्भयान्मुनयःसर्वेंत्यक्त्वावनमितोगताः ॥ २८ ॥ यदिजीवितुमिच्छास्तित्यक्त्वासीतांनि
रायुधौ ॥ पलायतंनचेच्छीघ्रंभक्षयामियुवामहम् ॥२९॥ इत्युक्त्वाराक्षसःसीतामादातुमभिदुद्रुवे ॥ रामश्चिच्छेतद्बाहूशरेणप्रहसन्निव
॥ ३० ॥ ततःक्रोधपरीतात्माव्यादायविकटंमुखम् ॥ राममभ्यद्रवद्रामश्चिच्छेदपरिधावतः ॥ ३१ ॥ पदद्वयंविराधस्यतदद्भुतमिवाभ
वत् ॥ ३२ ॥ ततःसर्पइवास्येनग्रसितुंराममापतत् ॥ ततोऽर्धचंद्राकारेणबाणेनास्यमहच्छिरः ॥ ३३ ॥ चिच्छेदरुधिरौघेणपपातधरणी
तले ॥ ततःसीतासमालिंग्यप्रशशंसरघूत्तमम् ॥ ३४ ॥ ततोदुंदुभयोनेदुर्दिविदेवगणेरिताः ॥ ननृतुश्चाप्सराहृष्टाजगुर्गंधर्वकिन्नराः ॥
॥ ३५ ॥ विराधकायादतिसुंदराकृतिर्विभ्राजमानोविमलांबरावृतः ॥ प्रतप्तचामीकरचारुभूषणोव्यदृश्यताग्रेगगनेरविर्यथा ॥ ३६ ॥

एक पुरुष दिखाई दिया ॥ ३६ ॥ उस पुरुषने प्रसन्न चित्तसे भक्तजनाका दुःखहरनेवाले, जन्ममरणरूप संसारसे निस्तार करनेवाले, दयालु रामचंद्रजीको वारंवार प्रणाम करकै शरणागत जनोंके समस्त क्लेशोंका नाश करनेवाले रामचंद्रजीको फिरभी प्रणाम किया । विराधके शरीरसे निकलेहुए उस पुरुषने कहा ॥ ३७ ॥ "हेकमलदल-विशाल-लोचन श्रीरामचंद्रजी ! मैं विमल प्रकाशवाला विद्याधर हूं, मैंने पहले समयमें मूर्तिमान्, अकारण क्रोध करनेवाले ऋषि दुर्वासाजीसे शाप पाया है, आज आपने उस शापसे मुझको छुड़ादिया ॥ ३८ ॥ हेदयामय ! अब मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूं कि-आजसे मेरा मन सदाही आपके चरणयुगलमें अनुरागी रहै, किसी समय इन चरणोंका ध्यान न भुलावै; और मेरी वाणी आपके नामका जपना छोड़कर कभी वृथा बकवादमें समय न वितावै । हे राम ! मेरे दोनों कान, आपका कथारूपी अमृतके पीनेके लिये सदा रत रहैं ॥ ३९ ॥ यह दोनों हाथ आपके चरणोंकी पूजा करनेसे कभी अलग न रहैं; और मेरा मस्तक सदा आपके चरणयुगल प्रणाम करता रहै; हे भक्तकी इच्छा पूर्ण करने वाले ! दया करके यह मेरा अभिलाष पूर्ण कर दीजिये ॥ ४० ॥ हे भगवन् ! आपको नमस्कार करताहूं; क्यों कि आप आत्माराम विशुद्ध ज्ञानमय पदार्थ हो; इस समय रामरूपसे जन्म लेकर सीतारूपी प्रकृतिके साथ मिले हुए हो ॥ ४१ ॥ हे राम ! मैं आपकी शरणमें आया हूं; इस कारण मेरी रक्षा कीजिये. हे रघुश्रेष्ठ ! अब देवलोकको जानेके लिये मैं आपकी आज्ञाको चाहता हूं, हे प्रभो ! कातर होकर मैं वारंवार आपसे प्रार्थना करता हूं, कि फिर आपकी संसारको मोहनेवाली माया कहीं मेरे ज्ञानमार्गको न ढकले" ॥ ४२ ॥

प्रणम्यरामंप्रणतार्तिहारिणंभवप्रवाहोपरमंघृणाकरम् ॥ प्रणम्यभूयःप्रणनामदंडवत्प्रपन्नसर्वार्तिहरंप्रसन्नधीः ॥ ३७ ॥ विराधउवाच ॥
श्रीरामराजीवदलायताक्षविद्याधरोऽहंविमलप्रकाशः ॥ दुर्वाससाऽकारणकोपमूर्तिनाशप्तःपुरासोऽद्यविमोचितस्त्वया ॥ ३८ ॥ इतःपरं
त्वच्चरणारविंदयोःस्मृतिःसदामेऽस्तुभवोपशांतये ॥ त्वन्नामसंकीर्तनमेववाणीकरोतुमेकर्णपुटंत्वदीयम् ॥ ३९ ॥ कथामृतंपातुकरद्व
यंतेपादारविंदार्चनमेवकुर्यात् ॥ शिरश्चतेपादयुगप्रणामंकरोतुनित्यंभवदीयमेवम् ॥ ४० ॥ नमस्तुभ्यंभगवतेविशुद्धज्ञानमूर्तये ॥ आ
त्मारामायरामायसीतारामायवेधसे ॥ ४१ ॥ प्रपन्नंपाहिमांरामयास्यामित्वदनुज्ञया ॥ देवलोकंरघुश्रेष्ठमायामांमावृणोतुते ॥ ४२ ॥

जब महामति रघुनंदनजीसे इस प्रकार अपना दुःख निवेदन किया; तब रामचंद्रजीने प्रसन्न हो विराधको वर दिया ॥ ४३ ॥ और बोले "हे विद्याधर! जाओ; अब फिर तुम मेरी मायाके गुणसे नहीं बँधोगे; क्योंकि तुमने मेरे दर्शनसे मायाके अशेषदोषगुणोंको जीत लिया; तुम ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ होकर मुक्तिको प्राप्त करोगे ॥ ४४ ॥ मुक्तिकी देनेवाली मेरी भक्ति संसारमें बड़ीही दुर्लभ है । जो किसी प्रकारसेभी भक्ति उत्पन्न हो जाय तौ वही मुक्ति देहीदेती है;इस कारणसे जब कि तुम भक्तिसम्पन्न हुए हो, तब मेरी आज्ञासे मोक्षको प्राप्त करो" ॥ ४५ ॥ रामचंद्रजीका किया हुआ इस घोर राक्षसका वध इस प्रकार वर पाना; विराधका उन वीर विद्याधरत्वको प्राप्त होना जो कोई सुनेगा वह सब अभिलाषाओंको प्राप्त होकर अंतसमय रामचंद्रजीमें मिल जाता है ॥ ४६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकांडे भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

इतिविज्ञापितस्तेनप्रसन्नोरघुनंदनः ॥ ददौवरंतदाप्रीतोविराधायमहामतिः ॥ ४३ ॥ गच्छविद्याधराशेषमायादोषगुणाजिताः ॥ त्वया
मद्दर्शनात्सद्योमुक्तोज्ञानवतांवरः ॥ ४४ ॥ मद्भक्तिर्दुर्ल्लभालोकेजाताचेन्मुक्तिदायतः ॥ अतस्त्वंभक्तिसंपन्नःपरंयाहिममाज्ञया ॥ ४५ ॥
रामेणरक्षोनिधनंसुघोरंशापाद्विमुक्तिर्वरदानमेवम् ॥ विद्याधरत्वंपुनरेवलब्धंरामंगृणन्नेतिनरोऽखिलार्थान् ॥ ४६ ॥ ॥ इति श्रीमदध्या
त्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेऽरण्यकांडेप्रथमःसर्गः ॥१॥ ॥ विराधेस्वर्गतेरामोलक्ष्मणेनचसीतया ॥ जगामशरभंगस्यवनंसर्वसुखा
वहम् ॥ १ ॥ शरभंगस्ततोदृष्ट्वारामंसौमित्रिणासह ॥ आयातंसीतयासार्धंसंभ्रमादुत्थितःसुधीः ॥ २ ॥ अभिगम्यसुसंपूज्यविष्टरेषूपवे
शयत् ॥ आतिथ्यमकरोत्तेषांकंदमूलफलादिभिः॥३॥प्रीत्याऽऽहशरभंगोऽपिरामंभक्तपरायणम्॥बहुकालमिहैवासंतपसेकृतनिश्चयः ॥४॥

शरभंगका देह छोड़कर मुक्ति पाना ॥ विराधके स्वर्गमें चले जानेपर लक्ष्मण और सीताजीके सहित श्रीरामचंद्रजी, समस्त सुखोंके देनेवाले शरभंग ऋषिके परम रमणीय तपोवनको गये ॥ १ ॥ लक्ष्मण और सीताजीके सहित श्रीरामचंद्रजीको आया हुआ देख श्रेष्ठ बुद्धिवाले शरभंगजी अति शीघ्रतासे उठे ॥ २ ॥ शरभंगने उनके निकट जाय, उत्तम, प्रकारसे पूजा कर उनको आसनपर बैठाया, और कंद मूल फलादिसे उनकी पहुनाई की ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त भक्तपरायण रामचंद्रजीसे प्रसन्न होकर शरभंगने कहा । "मैं तपस्याका

संकल्प किये हुए बहुत कालसे यहांपर रहता हूं ॥४॥ हे राम ! आपके दर्शनकी अभिलाषासे मैं यहांपर रहा । तुम परमेश्वर हो ! तप करकै प्राप्त हुआ जो बहुतसा पुण्य मेरे पास है मैं आज वह समस्त पुण्य आपके अर्पण करताहूं । फिर मुक्तिको प्राप्त करूंगा ॥५॥ परम योगी शरभंगजी वैराग्ययुक्त होकर उत्तम धर्मका महाफल श्रीरामचंद्रजीको सौंप सीताजीके सहित अप्रमेय श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करकै तत्कालही चितापर बैठते हुए॥६॥सर्वान्तर्यामी दूर्वादलके समान श्याम चीर वसन धारण किये हुए, सुन्दर जटा कलाप युक्त, कमललोचन, श्रीरामचंद्रजीका सीता और लक्ष्मणजीके सहित शरभंग मुनि ध्यान करने लगे ॥७॥ शरभंगजीने यह कहा " अहो! इस जगत्में रघुनाथजीके सिवाय; स्मरण करतेही कामधेनुके समान सम्पूर्ण मनोरथोंका पूर्ण करनेवाला दयालु और कौन हें? हमने नित्य ही एकाग्रचित्तसे इनका स्मरण किया है। मेरे उस स्मरणको जानकर अपने आपसेही श्रीरामचंद्रजी मेरे निकट आये हैं ॥ ८ ॥ हे दशरथ कुमार राम। देखिये अब मैं अपने शरीरको दाहकर निर्मलहो ब्रह्मलोक को चला जाताहूं ॥ ९ ॥ जिनके वाम अंकमें जलधरके अंकमें चपलाके समान सीताजी विराजमान हैं;—वह अयोध्यानाथ श्रीरामचंद्रजी सदा मेरे हृदयमें वास करें" ॥१०॥शरभंगजीने इस प्रकार बहुत देरतक श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करके और सन्मुखही विराजमान देखकर तत्काल अग्नि जलाय अपने पंचभूतमय देहको भस्म कर डाला ॥११॥ शरीर जलाय दिव्य देह धारणकर साक्षात् लोकनाथके धामको शरभंगजी चले गये।

तवसंदर्शनाकांक्षीरामत्वंपरमेश्वरः ॥ अद्यमत्तपसासिद्धंयत्पुण्यंबहुविद्यते ॥ तत्सर्वंतवदास्यामिततोमुक्तिंव्रजाम्यहम् ॥ ५ ॥ समर्प्य
रामस्यमहत्सुपुण्यफलंविरक्तःशरभंगयोगी ॥ चितिंसमारोहयदप्रमेयंरामंससीतंसहसाप्रणम्य ॥ ६ ॥ ध्यायंश्चिरंराममशेषहृत्स्थंदूर्वा
दलश्यामलमंबुजाक्षम् ॥ चीरांबरंस्निग्धजटाकलापंसीतासहायंसहलक्ष्मणंतम् ॥ ७ ॥ कोवादयालुःस्मृतकामधेनुरन्योजगत्यांरघुना
यकादहो ॥ स्मृतोमयानित्यमनन्यभाजाज्ञात्वास्मृतिंमेस्वयमेवयातः ॥ ८ ॥ पश्यत्विदानींदेवेशोरामोदाशरथिःप्रभुः ॥ दग्ध्वास्वदेहं
गच्छामिब्रह्मलोकमकल्मषः ॥ ९ ॥ अयोध्याधिपतिर्मेऽस्तुहृदयेराघवःसदा ॥ यद्वामांकेस्थितासीतामेघस्येवतडिल्लता ॥ १० ॥ इति
रामंचिरंध्यात्वादृष्ट्वाचपुरतःस्थितम् ॥ प्रज्वाल्यसहसावह्निंदग्ध्वापंचात्मकंवपुः ॥ ११ ॥ दिव्यदेहधरःसाक्षाद्ययौलोकपतेःपदम् ॥
ततोमुनिगणाःसर्वेदंडकारण्यवासिनः ॥ आजग्मूराघवंद्रष्टुंशरभंगनिवेशनम् ॥ १२ ॥

इसके उपरान्त दंडकारण्यके रहनेवाले सब मुनिलोग श्रीरामचंद्रजीके देखनेको शरभङ्गऋषिके आश्रममें आये ॥ १२ ॥ मायासे मनुष्यरूप धारण कियेहुए सीता, राम और लक्ष्मणने इन समस्त मुनियोंको देखकर तत्काल शिर नवाय प्रणाम किया ॥१३॥ तब वे समस्त मुनिजन, सर्वान्तर्यामी श्रीरामचंद्रजीको आशीर्वाद द्वारा सन्मानितकर उन धनुषबाण धारण कियेहुए हरिसे हाथ जोड़ बोले ॥ १४ ॥ " आपने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर पृथ्वीमें अवतार लिया है। हम जानते हैं आप साक्षात् नारायण, जानकी लक्ष्मी, और लक्ष्मण ॥१५॥ शेषजीके अंशहैं। भरत शत्रुघ्न, शंख और चक्र हैं; इस कारण सबसे पहले ऋषि लोगोंका दुःख छुटाना आपको उचित है ॥ १६ ॥ हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ! आइये;

दृष्ट्वामुनिसमूहतंजानकीरामलक्ष्मणाः ॥ प्रणेमुःसहसाभूमौमायामानुषरूपिणः ॥ १३ ॥ आशीर्भिरभिनंद्याथरामंसर्वहृदिस्थितम् ॥
ऊचुःप्रांजलयःसर्वेधनुर्बाणधरंहरिम् ॥ १४ ॥ भूमेर्भारावतारायजातोऽसिब्रह्मणाऽर्थितः ॥ जानीमस्त्वांहरिंलक्ष्मींजानकींलक्ष्मणंतथा ॥
॥ १५ ॥ शेषांशंशंखचक्रेद्वेभरतंसानुजंतथा ॥ अतश्चादौऋषीणांत्वंदुःखंमोक्तुमिहार्हसि ॥ १६ ॥ आगच्छयामोमुनिसेवितानिवनानि
सर्वाणिरघूत्तमक्रमात् ॥ द्रष्टुंसुमित्रासुतजानकीभ्यांतदादयास्मासुदृढाभविष्यति ॥ १७ ॥ इतिविज्ञापितोरामःकृतांजलिपुटैर्विभुः ॥
जगाममुनिभिःसार्धंद्रष्टुंमुनिवनानिसः ॥ १८ ॥ ददर्शतत्रपतितान्यनेकानिशिरांसिसः ॥ अस्थिभूतानिसर्वत्ररामोवचनमब्रवीत् ॥१९॥
अस्थीनिकेषामेतानिकिमर्थंपतितानिवै ॥ तमूचुर्मुनयोरामऋषीणांमस्तकानिहि ॥ २० ॥ राक्षसैर्भक्षितानीशप्रमत्तानांसमाधितः ॥
अंतरायंमुनीनांतेपश्यंतोऽनुचरंतिहि ॥ २१ ॥

एक २ करकै मुनि जनोंसे सेवित समस्त वन देखनेके लिये; सुमित्राके पुत्र लक्ष्मण और जानकीजीके साथ आप चलें; जो आप चलेंगे तौ हमारे ऊपर बड़ी करुणा होगी "॥ १७ ॥ मुनि लोगोंने हाथ जोड़कर जब विभु रामचंद्रजीसे ऐसी प्रार्थना की तब रामजी उनके साथ मुनिजनों करके सेवित वनके स्थान देखनेको चले ॥ १८ ॥ वहाँपर बहुत स्थानोंमें बहुतसी सूखी खोपड़ियें पड़ी हुई देखकर श्रीरामचंद्रजीने यह वचन कहे ॥ १९ ॥ " हे मुनीश्वरो! यह सब हड्डियें किनकी हैं? और यहाँपर क्यों पड़ी हैं।" तब मुनिजनोंने उनसे कहा, " हे राम! यह मुनिजनोंके मस्तक हैं॥ २० ॥ जो कि राक्षसों करकै खाये गये हैं। हे ईश्वर! असावधान ऋषियोंको अपवित्रता खोजते हुए राक्षसगण विचरते हैं।" ॥ २१ ॥

भय और कातरता प्रगट करनेवाले मुनिजनोंके वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजीने समस्त राक्षसोंका वध करनेके लिये प्रतिज्ञा की. ॥ दोहा ॥ “ निश्चर हीनकरौं महि, भुज उठाय प्रण कीन। सकल मुनिनके आश्रमन, जाय जाय सुखदीन। ” ॥ २२ ॥ वहाँपर वनवासी मुनिजन सदा उनकी पूजा करने लगे। जानकी और लक्ष्मणजीके साथ ॥ २३ ॥ कई वर्ष तक वहांपर श्रीरामचंद्रजीने वास किया. इस प्रकार एक २ करके सब ऋषियोंके आश्रम देखते हुए विभु ॥ २४ ॥ श्रीरामचंद्रजी, सुतीक्ष्ण ऋषिके प्रसिद्ध आश्रममें आये। यह ऋषियुक्त आश्रम, सम्पूर्ण ऋषियोंका गुण रखनेसे सब कालमें सुखका देनेवालाथा ॥ २५ ॥ अगस्त्यजीके शिष्य; रामनामका मंत्र जप करनेवाले सुतीक्ष्ण रामचंद्रजीका आना सुन अतिशीघ्र वहाँ

श्रुत्वावाक्यंमुनीनांसभयदैन्यसमन्वितम् ॥ प्रतिज्ञामकरोद्रामोवधायाशेपरक्षसाम् ॥ २२ ॥ पूज्यमानःसदातत्रमुनिभिर्वनवासिभिः ॥ जानक्यासहितोरामोलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ २३ ॥ उवासकतिचित्तत्रवर्षाणिरघुनंदनः ॥ एवंक्रमेणसंपश्यन्नृषीणामाश्रमान्विभुः ॥२४॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमंप्रागात्प्रख्यातमृषिसंकुलम् ॥ सर्वर्तुगुणसंपन्नंसर्वकालसुखावहम् ॥ २५ ॥ राममागतमाकर्ण्यसुतीक्ष्णःस्वयमागतः ॥ अगस्त्यशिष्योरामस्यमंत्रोपासनतत्परः ॥ विधिवत्पूजयामासभक्त्युत्कंठितलोचनः ॥ २६ ॥ ॥ सुतीक्ष्णउवाच ॥ त्वन्मंत्रजाप्यहमनंतगुणाप्रमेयसीतापतेशिवविरिंचिसमाश्रितांघ्रे ॥ संसारसिंधुतरणामलपोतपादरामाभिरामसततंतवदासदासः ॥ २७ ॥ मामद्यसर्वजगतामविगोचरस्त्वंत्वन्माययासुतकलत्रगृहांधकूपे ॥ मग्नंनिरीक्ष्यमलपुद्गलपिंडमोहपाशानुबद्धहृदयंस्वयमागतोऽसि ॥ २८॥ त्वंसर्वभूतहृदयेषुकृतालयोऽपित्वन्मंत्रजाप्यविमुखेषुतनोषिमायाम्॥त्वन्मंत्रसाधनपरेष्वपयातिमायासेवानुरूपफलदोऽसियथामहीपः ॥२९॥

पर आये। और भक्तिके वशसे वारंवार देखनेकी उत्कंठा कर यथाविधिसे उनकी पूजा की ॥ २६ ॥ सुतीक्ष्णने कहा, “ हे परमसुन्दर ! सीतापति राम ! हे अनन्तगुण ! हे अप्रमेय ! ब्रह्मा और महेश तुम्हारेही श्रीचरणका आश्रय लिये हुए हैं। तुम्हारे दोनों चरण, संसारसागरके पार होने के लिये निर्मल नावरूप हैं, मैं तुम्हारा ही मंत्र जपताहूं; और सदाँ तुम्हारा दासानुदास हूं ॥ २७ ॥ हेराम ! मैं तुम्हारीही मायाके प्रभावसे स्त्रीपुत्र गृहादि स्वरूप अंधे कुएमें गिरा हुआहूं; और मल मूत्रादि तुच्छ शरीरसे सदा आत्माभिमान (अहंकार) उद्धार करनेके अर्थही मनुष्यका अवतार धारण कर आप इस स्थानमें आये हैं ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! तुम समस्त प्राणियोंके अंतःकरणमें जाग रहे हो। जो तुम्हारा मंत्र जपनेसे विमुख हैं;

उनके प्रति तुम माया विस्तार करतेहो;—और जो तुम्हारे मंत्रके सिद्धि करनेमें तत्पर हैं; उनको माया छोड़ देती है, प्रजा जिस प्रकार राजासे सेवानुरूप फल प्राप्त करती है; वेसैही मनुष्यभी तुमसे सेवानुरूप फल प्राप्त करते हैं ॥ २९ ॥ अकेले तुमही संसारकी सृष्टि, स्थिति, और संहार करनेके कारणहो; केवल सतोगुण, रजोगुण, तमोगुणमयी मायारूप उपाधिभेदसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश यह तीन प्रकारकी मूर्ति धारण करके इस संसारमें पृथक् भावसे आप प्रकाशित होते हैं । हे ईश्वर! मूढ़चित्तके पुरुष तुम्हारा पृथक् २ आकार देखकर ईश्वरको अनेक प्रकारका जानते हैं; जैसे सूर्यकी परछाईं अनेक जलके बरतनोंमें अनेक प्रकारसे पड़ती है ॥ ३० ॥ हे राम! तुम अंधकारके पार विराजमानहो, तुम्हारे चरणारविन्दोंका दर्शन करताहूं; अतएव तुम असत पुरुषोंकी दृष्टिसे परे होने परभी; तुम्हारा मंत्र जप करनेसे जिनका हृदय पवित्र हुआ है—उनके

विश्वस्यसृष्टिलयसंस्थितिहेतुरेकस्त्वंमाययात्रिगुणयाविधिरीशविष्णू ॥ भासीशमोहितधियांविविधाकृतिस्त्वंयद्वद्रविःसलिलपात्रगतो ह्यनेकः ॥ ३० ॥ प्रत्यक्षतोऽद्यभवतश्चरणारविंदंपश्यामिरामतमसःपरतःस्थितस्य ॥ दृग्रूपतस्त्वमसतामविगोचरोऽपित्वन्मंत्रपूतहृदयेषुसदाप्रसन्नः ॥ ३१ ॥ पश्यामिरामतवरूपमरूपिणोऽपिमायाविडंबनकृतंसुमनुष्यवेषम् ॥ कंदर्पकोटिसुभगंकमनीयचापबाणंदयार्द्रहृदयंस्मितचारुवक्रम् ॥ ३२ ॥ सीतासमेतमजिनांबरमप्रधृष्यंसौमित्रिणानियतसेवितपादपद्मम् ॥ नीलोत्पलद्युतिमनंतगुणंप्रशांतंतद्भागधेयमनिशंप्रणमामिरामम् ॥ ३३ ॥ जानंतुरामतवरूपमशेषदेशकालाद्युपाधिरहितंघनचित्प्रकाशम् ॥ प्रत्यक्षतोऽद्यममगोचरमेतदेवरूपंविभातुहृदयेनपरंविकांक्षे ॥ ३४ ॥

ऊपर सदा प्रसन्न रहतेहो ॥ ३१ ॥ हे परमात्मन्! मैं भली भांतिसे जानताहूं कि तुम रूपादिके विषयसे रहितहो; परन्तु आज तुम्हारा, धनुष बाणधारी, मृगछाला वस्त्र शोभित सुहास्य वदन ॥ ३२ ॥ और करोड़ों कामदेवसे सुन्दर रूप युक्त नीलेकमलके समान प्रभावाला, और अनन्त गुण दयायुक्त मूर्ति, लक्ष्मण सेवित दोनोंचरण कमल, और तुम्हारे वाम भागमें विराजमान सीता देवीका दर्शन करताहूं; इस कारण पूर्वजन्मके किये हुए मेरे भाग्यकोही प्रणाम है ॥ ३३ ॥ हेपरमात्मन्! और योगीजन तुम्हें मन और वाणीसे परे शुद्ध चैतन्य स्वरूप और देशकालादि द्वारा अपरिच्छिन्न समझकर (अर्थात् इतने बीचमें इतने समयमें यह रूप है; फिर नहीं रहैगा इस व्यवहारसे रहित) उससेही प्रसन्न होंवे

परन्तु मेरी प्रसन्नता इसमें नहीं—केवल दृश्यमान यह तुम्हारा रामरूप सदा मेरे हृदयमें विराजमान रहै । हे नाथ ! इसके सिवाय मैं आपसे कुछ वाञ्छा नहीं करता । ” ॥ ३४ ॥ जब महर्षिने इस प्रकारसे स्तुति की तब श्रीरामचंद्रजी हँसकर बोले; “ हे मुने ! हमारी उपासना करनेसे तुम्हारा चित्त शुद्ध हुआ जानकर ॥ ३५ ॥ मैं तुम्हारा दर्शन करनेके अर्थ यहाँपर आयाहूं । मेरे प्रति भक्ति करनेके विना जगत्में दूसरा साधन नहीं है; जो किसीका आश्रय न लेकर केवल मेरेही मंत्रका जप करते; और मेरीही शरणमें आकर ॥ ३६ ॥ और मूर्तिकी उपासना नहीं करते हैं मैं सदाही उनको दर्शन देता रहताहूं । जो पुरुष; हमको प्रसन्नकरने वाला तुम्हारा किया हुआ स्तोत्र सदा पढ़ैगा ॥ ३७ ॥ उस पुरुषकी मुझमें स्थाई भक्ति हो जायगी और वह निर्मल ज्ञान प्राप्त करैगा; हे मुने ! तुम मेरी उपासना करनेसे सब प्रकारके बन्धनसे छूटगये ॥ ३८ ॥ शरीर छोड़नेके पीछे निश्चयही मेरे सायुज्यको प्राप्त होवोगे। अब मैं तुम्हारे गुरु, मुनियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यजीके देखनेकी इच्छा करताहूं, और उनके निकट कुछ कालतक रहनेको भी मेरा मन चाहता है । ” ॥ ३९ ॥ सुतीक्ष्णने “ जो आज्ञा ” कहकर कहा—“ हे राघव ! कलके दिन आप उस स्थानसे चले जांय; मैंने बहुत दिनसे उनका दर्शन नहीं किया है; इस कारण मैंभी आपके साथ चलूंगा । ” ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त दूसरे दिन प्रातःकालको अगस्त्य मुनिके दर्शनोंकी उत्कंठा कियेहुए श्रीरामचंद्रजी, सीता, लक्ष्मण, और सुतीक्ष्णको साथ लिये हुए अगस्त्यजीके छोटे भाई अग्निजिह्व ऋषिके आश्रमको चले ॥ ४१ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकांडे भाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इत्येवंस्तुवतस्तस्यरामःसस्मितमब्रवीत् ॥ श्रीरामउवाच ॥ मुनेजानामितेचित्तंनिर्मलंमदुपासनात् ॥ ३५ ॥ अतोऽहमागतोद्रष्टुंमदृतेनान्यसाधनम् ॥ मन्मन्त्रोपासकालोकेमामेवशरणंगताः ॥ ३६ ॥ निरपेक्षानान्यगतास्तेषांदृश्योऽहमन्वहम् ॥ स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तुत्वत्कृतंमत्प्रियंसदा ॥ ३७ ॥ सद्भक्तिर्मेभवेत्तस्यज्ञानंचविमलंभवेत् ॥ त्वंममोपासनादेवविमुक्तोऽसीहसर्वतः ॥ ३८ ॥ देहांतेममसायुज्यंलप्स्यसेनात्रसंशयः ॥ गुरुंतेद्रष्टुमिच्छामिह्यगस्त्यंमुनिनायकम् ॥ किंचित्कालंतत्रवस्तुंमनोमेत्वरयत्यलम्॥३९॥सुतीक्ष्णोऽपितथेत्याहश्वोगमिष्यसिराघव ॥ अहमप्यागमिष्यामिचिराद्दृष्टोमहामुनिः ॥ ४० ॥ अथप्रभातेमुनिनासमेतोरामःससीतःसहलक्ष्मणेन ॥ अगस्त्यसंभाषणलोलमानसःशनैरगस्त्यानुजमंदिरंययौ ॥४१॥ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेऽरण्यकांडेद्वितीयःसर्गः ॥२॥

अगस्त्यजीका मिलाप॥श्रीमहादेवजी बोले;—इसके पीछे सुतीक्ष्ण,जानकी और लक्ष्मणजीके साथ दुपहरके समय श्रीरामचन्द्रजी; अगस्त्यजीके लघुभ्राता अग्निजिह्वके आश्रममें पहुँचे ॥ १ ॥ अग्निजिह्वसे पूजितहो उनके दिये फल मूलादि भोजनकर उसदिन वहींपर रहगये। दूसरे दिन भोरही उठकर वे अगस्त्यजीके तपोवनमें गये॥ २॥नन्दनवनके समान इस तपोवनमें सबसमयके फल मूल भर रहेहैं, अनेकप्रकारके मृग इसवनमें व्याप्तहैं; भाँति २ के पक्षियोंका शब्द इस वनमें गुंजार रहाहै, ॥ ३ ॥ ब्रह्मर्षि देवर्षियोंकरके सेवित मुनिजनोंके स्थानोंसे सब जगह भूषित और दूसरे ब्रह्मलोकके समान यह वन है ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने आश्रमके बाहरही खड़े होकर सुतीक्ष्ण मुनिसे कहा। "हे सुतीक्ष्ण! शीघ्र जाकर तुम हमारा आना निवेदन करो ॥ ५ ॥ कि सीता लक्ष्मण सहित रामचन्द्र आये हैं" सुतीक्ष्ण मुनि "महा अनुग्रह हुआ" यह कहकर शीघ्र गुरुजीके आश्रममें आये ॥ ६ ॥ सुतीक्ष्णजीने अति निकटही देखा कि आसनपर बैठेहुए महर्षि अगस्त्यजी श्रीरामभक्त महर्षियोंकरके युक्तहो ॥ ७ ॥ अपने शिष्योंसे भक्तिसहित श्रीराममंत्रकी व्याख्या कररहे हैं, इसके उपरान्त गुरुजीके निकट जाय सुतीक्ष्ण मुनिने ॥ ८ ॥ दण्डवत् प्रणाम करनेके पीछे विनययुक्त वचनोंसे कहा, "हे ब्रह्मन्! दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी, सीता, और लक्ष्मणजीके साथ ॥ ९ ॥ आयकर आपका दर्शनकरनेके लिये आश्रमके बाहर हाथ

श्रीमहादेवउवाच ॥ अथरामःसुतीक्ष्णेनजानक्यालक्ष्मणेनच ॥ अगस्त्यस्यानुजस्थानंमध्याह्नेसमपद्यत ॥ १ ॥ तेनसंपूजितःसम्यग्भुक्त्वामूलफलादिकम् ॥ परेद्युःप्रातरुत्थायजग्मुस्तेऽगस्त्यमंडलम् ॥ २ ॥ सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यंनानामृगगणैर्युतम् ॥ पक्षिसंघैश्चविविधैर्नादितंनंदनोपमम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मर्षिभिर्देवर्षिभिःसेवितंमुनिमंदिरैः ॥ सर्वतोऽलंकृतंसाक्षाद्ब्रह्मलोकमिवापरम् ॥ ४ ॥ बहिरेवाश्रमस्याथस्थित्वारामोऽब्रवीन्मुनिम् ॥ सुतीक्ष्णागच्छत्वंशीघ्रमागतंमांनिवेदय ॥ ५ ॥ अगस्त्यमुनिवर्यायसीतयालक्ष्मणेनच ॥ महाप्रसादइत्युक्त्वासुतीक्ष्णःप्रययौगुरोः ॥ ६ ॥ आश्रमंत्वरयातत्रऋषिसंघसमावृतम् ॥ उपविष्टंरामभक्तैर्विशेषेणसमायुतम् ॥ ७ ॥ व्याख्यातराममंत्रार्थंशिष्येभ्यश्चातिभक्तितः ॥ दृष्ट्वागस्त्यंमुनिश्रेष्ठंसुतीक्ष्णःप्रययौमुने: ॥ ८ ॥ दंडवत्प्रणिपत्याहविनयावनतःसुधीः ॥ रामोदाशरथिर्ब्रह्मन्सीतयालक्ष्मणेनच ॥ ९ ॥ आगतोदर्शनार्थंतेबहिस्तिष्ठतिसांजलिः ॥ अगस्त्यउवाच ॥ शीघ्रमानयभद्रंतेराममममहृदिस्थितम् ॥ तमेवध्यायमानोऽहंकांक्षमाणोऽत्रसंस्थितः ॥ १० ॥

जोड़े खड़ेहैं।” अगस्त्यजी बोले “तुम्हारा मंगलहो,जिनके दर्शनकी अभिलाषा करके, ध्यान धरता हुआ यहाँ वास करताहूं; इससमय मेरे हृदयमें विराजमान हुए उन श्रीरामचन्द्रजीको शीघ्र यहांपर लेआओ” ॥ १० ॥ यह कहकर अगस्त्यजी शीघ्रताके वश आपभी ऋषिगणोंके साथ परम भक्तिसे श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर बोले ॥ ११ ॥ “हेराम! आओ, आज हमने बड़े भाग्यसे तुम्हारा समागम पायाहै। सदाके अभिलाषित पाहुनेका सत्कारकर इससमय मैं अपने दिन सफल करूंगा।” ॥ १२ ॥ अगस्त्यजी मुनिको आया हुआ देखकर सीता और लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचन्द्रजीने पृथ्वीमें गिरकर मुनिजीको दण्डवतकिया ॥ १३ ॥ मुनिराज अगस्त्यजीने श्रीरामचन्द्रजीको अतिशीघ्र पृथ्वीपरसे उठाय भक्तिकेसहित हृदयसे लगाया। और रामचन्द्रजीके अङ्गस्पर्शसे उत्पन्नहुए आनन्दके आंसुओंसे अगस्त्यजीके नेत्र पूर्ण होगये ॥ १४ ॥ फिर अपने एक हाथसे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीका हाथ पकड़कर प्रसन्नमनसे उनको अपने आश्रममें मुनिश्रेष्ठ लिवालाये ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त महर्षि अगस्त्यजीने श्रीरामचंद्रजीको आसनपर बैठाय उनकी बड़ी भारी पूजाकर यथोचित भावसे बहुत प्रकारके बनैले फल मूलादि उनको भोजन कराये ॥ १६ ॥ और सीता व लक्ष्मणजीकोभी ऐसेही यथायोग्य भोजन कराय श्रीरामचंद्रजीको निजस्थानमें लायकर आसनपर बैठाला। जब पूर्णचन्द्रमाके समान श्रीरामचन्द्रजी आसनपर बैठगये तब अगस्त्यमुनिने हाथ जोड़कर उनसे कहा ॥ १७ ॥ “पहले जब ब्रह्माजीने भूभारहरण और रावणका वध

इत्युक्त्वास्वयमुत्थायमुनिभिःसहितोद्रुतम् ॥ अभ्ययात्परयाभक्त्यागत्वाराममथाब्रवीत् ॥ ११ ॥ आगच्छरामभद्रंतेदिष्ट्यातेऽद्यसमागमः ॥ प्रियातिथिर्ममप्राप्तोऽस्यद्यमेसफलंदिनम् ॥ १२ ॥ रामोऽपिमुनिमायांतंदृष्ट्वाहर्षसमाकुलः ॥ सीतयालक्ष्मणेनापिदंडवत्पतितोभुवि ॥ १३ ॥ द्रुतमुत्थाप्यमुनिराड्राममालिंग्यभक्तितः ॥ तद्गात्रस्पर्शजाह्लादस्रवन्नेत्रजलाकुलः ॥ १४ ॥ गृहीत्वाकरमेकेनकरेणरघुनंदनम् ॥ जगामस्वाश्रमंहृष्टोमनसामुनिपुंगवः ॥ १५ ॥ सुखोपविष्टंसंपूज्यपूजयाबहुविस्तरम् ॥ भोजयित्वायथान्यायंभोज्यैर्वन्यैरनेकधा ॥ १६ ॥ सुखोपविष्टमेकांतेरामंशशिनिभाननम् ॥ कृतांजलिरुवाचेदमगस्त्योभगवानृषिः ॥ १७ ॥ त्वदागमनमेवाहंप्रतीक्षन्समवस्थितः ॥ यदाक्षीरसमुद्रांतेब्रह्मणाप्रार्थितःपुरा ॥ १८ ॥

करनेके लिये क्षीरसागरके किनारे जायकर आपकी प्रार्थना की थी तबसेही मैं तुम्हारे दर्शनोंकी आकांक्षा कियेहुए एकांतचित्तसे तपस्या करता हुआ, इसवनमें मुनिजनोंके साथ रहताहूं ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे परमात्मन् सृष्टिके पहिले तुममें मायारूप उपाधिका सम्बन्ध न रहनेसे इस जगत् में प्रपंच उत्पन्न नहीं हुआथा; तिसकालमें तुमही गुणोंसे परे अकेले पदार्थ थे; और कोईभी पदार्थ नहीं था ॥ २० ॥ जब सृष्टिकालमें तुम्हारी शक्तिरूप माया तुमको ढकलेती है। वेदांती लोग इसशक्तिको तब तुम्हारी "अव्याकृत" शक्ति कहते हैं ॥ २१ ॥ सांख्य जाननेवाले उस शक्तिको मूलप्रकृति कहते हैं; कोई२ पण्डितलोग अविद्या संसार और बंधन इसप्रकारके अनेक नामोंसे उस शक्तिको पुकारते हैं ॥ २२ ॥ मूलप्रकृतिसे बुद्धितत्त्व उत्पन्न हुआ; उस बुद्धितत्त्वका दूसरा नाम महत्तत्त्वहै, महत्तत्त्वसे अहंकार उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ अहंकार तीनप्रकारका है; सात्विक, राजस, तामस; (अर्थात्) मूल प्रकृतिमें सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण होनेसे उससे उत्पन्न हुए महत्तत्त्वमेंभी यह तीनप्रकारके गुण लग जाते हैं। क्रमशः महत्तत्त्वमें होनेके कारण अहंकारमेंभी कारणके गुणानुसार यह तीनों गुण उत्पन्न होते हैं ॥ २४ ॥ तामस अहंकारसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह पांच सूक्ष्म तन्मात्र उत्पन्न हुए, सूक्ष्मतन्मात्रसे स्थूल पंचभूत उत्पन्न हुए—अर्थात् शब्दसे आकाश; शब्द और स्पर्शसे वायु; शब्द,स्पर्श और रूपसे तेज;शब्द,स्पर्श, रूप,रससे जल;शब्द,स्पर्श, रूप, रस, और गंध इनपांचोंसे पृथ्वी उत्पन्न हुई ॥ २५ ॥ राजसअहंकारसे

भूमेर्भारापनुत्त्यर्थंरावणस्यवधायच ॥ तदादिदर्शनाकांक्षीतवरामतपश्चरन् ॥ वसामिमुनिभिःसार्धंत्वामेवपरिचिंतयन् ॥ १९ ॥ सृष्टेः
प्रागेकएवासीर्निर्विकल्पोऽनुपाधिकः ॥ त्वदाश्रयात्वद्विषयामायातेशक्तिरुच्यते ॥ २० ॥ त्वामेवनिर्गुणंशक्तिरावृणोतियदातदा ॥
अव्याकृतमितिप्राहुर्वेदांतपरिनिष्ठिताः ॥ २१ ॥ मूलप्रकृतिरित्येकेप्राहुर्मायेतिकेचन ॥ अविद्यासंसृतिर्बंधइत्यादिबहुधोच्यते ॥ २२ ॥
त्वयासंक्षोभ्यमाणासामहत्तत्त्वंप्रसूयते ॥ महत्तत्त्वादहंकारस्त्वयासंचोदितादभूत् ॥ २३ ॥ अहंकारोमहत्तत्त्वसंवृतास्त्रिविधोऽभवत् ॥
सात्त्विकोराजसश्चैवतामसश्चेतिभण्यते ॥ २४ ॥ तामसात्सूक्ष्मतन्मात्राण्यासन्भूतान्यतःपरम् ॥ स्थूलानिक्रमशोरामक्रमोत्तरगुणा
निह ॥ २५ ॥ राजसानींद्रियाण्येवसात्त्विकादेवतामनः ॥ तेभ्योऽभवत्सूत्ररूपंलिंगंसर्वगतंमहत् ॥ २६ ॥

इन्द्रियें उत्पन्न हुईं--तिनमें, नाक, हाथ, पाँव, गुदा, लिंग, यह पांच कर्मेन्द्रियहैं; आंख, कान, त्वचा, रसना, घ्राण, यह पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं;--सात्विक अहंकारसे नेत्रोंका अधिष्ठाता सूर्य,श्रोत्रके दिशा,त्वचाका पवन, रसनाका वरुण, और घ्राणके अश्विनीकुमार हैं । वाक्येन्द्रियका देवता अग्नि, हाथका इन्द्र, पांवके विष्णु, गुदाका मित्र, और लिंगका देवता ब्रह्मा है । इन्द्रियोंके यह देवता और मनोरूप अन्तरिन्द्रिय उत्पन्न हुईं; सूक्ष्म तन्मात्र रूप अहंकारके कार्यसे सूक्ष्म समष्टिरूप हिरण्यगर्भनामक, लिङ्गशरीर जिसका दूसरा नाम सूत्रहै उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ इससूत्रसे स्थूल समष्टि रूप विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ; विराट्पुरुषसे स्थावर जंगम सबही उत्पन्नहुएहैं ॥ २७ ॥ तिनमें देवता, तिर्यक् योनि और मनुष्यरूप जंगम पदार्थ कालकी सहायतासे भाग्यके वशहोकर उत्पन्न हुआ है; हे जगदीश्वर ! इसजगत्में तुम्हारे सिवाय कुछभी नहीं है; कभी तुम रजोगुणरूप उपाधिके

ततोविराट्समुत्पन्नःस्थूलाद्भूतकदंबकात् ॥ विराजःपुरुषात्सर्वंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ २७ ॥ देवतिर्यङ्मनुष्याश्चकालकर्मक्रमेणतु ॥
त्वंरजोगुणतोब्रह्माजगतःसर्वकारणम् ॥ २८ ॥ सत्त्वाद्विष्णुस्त्वमेवास्यपालकःसद्भिरुच्यते ॥ लयेरुद्रस्त्वमेवास्यत्वन्मायागुणभे
दतः ॥ २९ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यावृत्तयोबुद्धिजैर्गुणैः ॥ तासांविलक्षणोरामस्त्वंसाक्षीचिन्मयोऽव्ययः ॥ ३० ॥ सृष्टिलीलां
यदाकर्तुमीहसेरघुनंदन ॥ अंगीकरोषिमायांत्वंतदावैगुणवानिव ॥ ३१ ॥

संयोगसे ब्रह्मा होकर सब जगत्को निर्माण करतेहो ॥ २८ ॥ कभी सतोगुणके योगसे विष्णुरूपसे पण्डितोंकरके जगत्के पालक होजातेहो; प्रलयकालमें तमोगुणमय रुद्ररूपी होकर सर्वसंसारका संहार करतेहो ॥ २९ ॥ जब प्राणियोंकी बुद्धिमें सतोगुणका अवलंबन होताहै, तब उनकी जाग्रदवस्था; जब रजोगुण अवलम्बन होताहै तब स्वप्नावस्था; और जब तमोगुणका अवलंबन होताहै तब उनकी सुषुप्त्यवस्था होतीहै । हेराम ! तुम साक्षीस्वरूप होकर उनकी यह सब अवस्था देखतेहो; तुम्हारी अवस्था किसीकालमें नहीं बदलती; क्योंकि तुम नित्य चैतन्यस्वरूपहो ॥ ३० ॥ हे रघुनंदन ! जब तुम जगत्में सृष्टिरूप लीला करनेका अभिलाष करते हो; तिसकालमें माया तुम्हारा अवलंबन करती है;

हे परमात्मन् ! तुम निर्गुण हो; परन्तु मायामें मिलजानेंसे सगुणके समान तुम्हारा प्रकाश होताहै ॥ ३१ ॥ हेराम ! तुम्हारी माया दो प्रकारकी है; एकका नाम अविद्या—दूसरीका नाम विद्याहै । अविद्याके वशहुए लोग प्रवृत्तिमार्गमें रत रहतेहैं; इसकारण उनकी मुक्ति नहीं होती; धीरे धीरे संसारी बंधन उनको लग जाताहै । विद्याके वश हुए लोग निवृत्तिमार्गमें रत रहकर तुममें दृढ़भक्ति प्राप्त करलेतेहैं, इस कारण उनकी मोक्ष हो जाती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जो लोग भक्तिके सहित तुम्हारे मंत्रका जप करते हैं, वही विद्याके वश होतेहैं, दूसरे नहीं ॥ ३४ ॥ इसकारण तुम्हारे मंत्रकी उपासना करनेवाले भक्तोंकी निश्चयही मुक्ति होगी; जिन पुरुषोंकी तुममें भक्ति नहीं है उनकी मुक्ति स्वप्नमेंभी नहीं होती ॥ ३५ ॥ हे राम !

रामसायाद्विधाभातिविद्याविद्येतितेसदा ॥ प्रवृत्तिमार्गनिरताअविद्यावशवर्तिनः ॥ निवृत्तिमार्गनिरतावेदांतार्थविचारकाः ॥ ३२ ॥ त्वद्भक्तिनिरतायेचतेवैविद्यामयाःस्मृताः ॥ अविद्यावशगायेतुनित्यंसंसारिणश्चते ॥ विद्याभ्यासरतायेतुनित्यमुक्तास्तएवहि ॥ ३३ ॥ लोकेत्वद्भक्तिनिरतास्त्वन्मंत्रोपासकाश्चये ॥ विद्याप्रादुर्भवेत्तेषांनेतरेषांकदाचन ॥ ३४ ॥ अतस्त्वद्भक्तिसंपन्नामुक्ताएवनसंशयः ॥ त्वद्भक्त्यमृतहीनानांमोक्षःस्वप्नेऽपिनोभवेत् ॥ ३५ ॥ किंरामबहुनोक्तेनसारंकिंचिद्ब्रवीमिते ॥ साधुसंगतिरेवात्रमोक्षहेतुरुदाहृता ॥ ३६ ॥ साधवःसमचित्तायेनिःस्पृहाविगतैषिणः ॥ दांताःप्रशांतास्त्वद्भक्तानिवृत्ताखिलकामनाः ॥ ३७ ॥ इष्टप्राप्तिविपत्त्योश्चसमाःसंगविवर्जिताः ॥ संन्यस्ताखिलकर्माणःसर्वदाब्रह्मतत्पराः ॥ ३८ ॥ यमादिगुणसंपन्नाःसंतुष्टायेनकेनचित् ॥ सत्संगमोभवेद्यर्हित्वत्कथाश्रवणेरतिः ॥ ३९ ॥

अधिक क्या कहा जाय ? कुछ थोड़ासा सारही कहताहूं; कि साधु पुरुषों का संगही केवल मोक्षका कारणहै ॥ ३६ ॥ जो सम्पदविपदमें बराबर चित्तवाले हैं तिनको किसी बातकी इच्छा नहीं. तपके क्लेशको सहने वाले, शान्तिके गुणका आश्रय करनेवाले, इन्द्रियोंको जीतनेवाले, मनको वशमें करनेवाले जो तुम्हारे भक्त हैं;जिन्होंने समस्त कामना त्यागदी हैं, वेही साधु हैं ॥ ३७ ॥ जो हर्ष या विषादके समयमें हर्षित या शोकित नहीं हैं; सदा निर्जन स्थानमें कामनारहित होकर ब्रह्मकी चिन्ता करते हैं ॥ ३८ ॥ और संयमादि अनेक गुणसे युक्त हैं; जो कैसेही सन्तुष्ट हो जाते हैं। हे राम ! ऐसे साधु पुरुषोंका सत्संग जब कभी मिलजाता है, तब तुम्हारी कथाके श्रवण करनेमें प्रीति उपजती है ॥ ३९ ॥

हे सनातन राम ! अनुराग होनेसे तुममें दृढ़ भक्ति होती है; भक्ति होनेसे फिर निर्मल ज्ञान मिलता है ॥ ४० ॥ ज्ञान होनेसे अवश्यही मुक्ति मिल जाती है; पंडित लोग इस प्रधान मुक्तिमार्गकाही सेवन किया करते हैं; हे राघव ! हे हरि ! मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूं; कि तुम मेरी प्रेमरूप भक्ति ॥ ४१ ॥ और साधुओंका विशेष करकै तुम्हारे भक्तोंका संग हो । आज तुम्हारे दर्शनसे मेरा जन्म सफल हुआ ॥ ४२ ॥ आज मेरे किये हुए याग यज्ञादिभी सफल हुए; बहुत कालसे एकान्त चित्तसे जो तप मैंने कियाथा उस तपका फल, आज आपकी प्रत्यक्ष पूजा करता हूं ॥ ४३ ॥ हे राम ! तुमसे यह प्रार्थना करताहूं कि तुम देवी सीताजीके सहित मेरे हृदयमें सदा वास करो । और मुझको चलते फिरते और बैठते, हृदयमें बराबर तुम्हारा स्मरण रहै " ॥ ४४ ॥ इस प्रकारसे स्तुतिकर अगस्त्यजीने श्रीरामचंद्रजीको वह धनुष दिया; जो कि इन्द्रने पूर्व कालमें रामचंद्रजीके देनेको अगस्त्यजीके पास रक्खाथा ॥ ४५ ॥ बाणोंसे भरे हुए दो अक्षय तरकश, कि चलाते २ जिनके बाण कभी नहीं घटैं; और रत्नजडित खड्ग रामचंद्रजीको दिया, यह शस्त्र देकर अगस्त्य मुनि बोले; हे राम ! इस समय पृथ्वीके भाररूप हुए राक्षसोंका मूलसहित संहार कीजिये ॥ ४६ ॥ क्योंकि तुमने पृथ्वीका भार उतारनेकोही अवतार लिया है. यहाँसे दो योजन अर्थात् ८ कोसपर पुण्यमय वनसे युक्त ॥ ४७ ॥ गौतमी नदीके किनारे पंचवटी नाम आश्रम है । हे राम ! वहाँपर रहकर बचेहुए वनवासके समयको व्यतीत कीजिये ॥ ४८ ॥

समुदेतिततोभक्तिस्त्वयिरामसनातने ॥ त्वद्भक्तावुपपन्नायांविज्ञानंविपुलंस्फुटम् ॥ ४० ॥ उदेतिमुक्तिमार्गोऽयमाद्यश्चतुरसेवितः ॥
तस्माद्राघवसद्भक्तिस्त्वयिमेप्रेमलक्षणा ॥ ४१ ॥ सदाभूयाद्धरेसंगस्त्वद्भक्तेषुविशेषतः ॥ अद्यमेसफलंजन्मभवत्संदर्शनादभू
त् ॥ ४२ ॥ अद्यमेक्रतवःसर्वेबभूवुःसफलाःप्रभो ॥ दीर्घकालंमयातप्तमनन्यमतिनातपः ॥ तस्येहतपसोरामफलंतवयदर्चनम् ॥ ४३ ॥
सदामेसीतयासार्धंहृदयेवसराघव ॥ गच्छतस्तिष्ठतोवापिस्मृतिःस्यान्मेसदात्वयि ॥ ४४ ॥ इतिस्तुत्वारमानाथमगस्त्योमुनिसत्तमः ॥
ददौचापंमहेंद्रेणरामार्थेस्थापितंपुरा ॥ ४५ ॥ अक्षय्यौबाणतूणीरौखड्गोरत्नविभूषितः ॥ जहिराघवभूभारभूतंराक्षसमंडलम् ॥ ४६ ॥
यदर्थमवतीर्णोऽसिमाययामनुजाकृतिः ॥ इतोयोजनयुग्मेतुपुण्यकाननमंडितः ॥ ४७ ॥ अस्तिपंचवटीनाम्नाआश्रमोगौतमीतटे ॥
नेतव्यस्तत्रतेकालःशेषोरघुकुलोद्वह ॥ ४८ ॥

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

हे साधुजनप्रतिपालक ! वहांपर देवताओंके बहुतसे कार्यसिद्धि कीजिये ॥ ४९ ॥ श्रीरामचंद्रजी, अगस्त्यजीके वचन और उनका किया हुआ श्रेष्ठ अर्थपूर्ण स्तोत्र सुनकर आनंदसहित मुनिजीसे संभाषण करके उनके दिखाये हुए मार्गका आश्रय ले पंचवटीकी ओर चले ॥ ५० ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकांडे भाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ जटायुसे मिलकर पंचवटीमें बसना ॥ श्रीमहादेवजी बोले;–इसके उपरान्त मार्गमें जाते २ पर्वतके शिखरके समान विराजमान वृद्ध जटायुको श्रीरामचंद्रजीने देखा । उसको देखतेही " यह क्या है ! " विचार कर विस्मित हुए ॥ १ ॥ और लक्ष्मणजीसे बोले;–"लक्ष्मण! सामने एक राक्षस है; धनुष लाओ; ऋषियोंके खानेवाले

तत्रैवबहुकार्याणिदेवानांकुरुसत्पते ॥ ४९॥ श्रुत्वातदागस्त्यसुभाषितंवचःस्तोत्रंचतत्त्वार्थसमन्वितंविभुः ॥ मुनिंसमाभाष्यमुदान्वितो ययौप्रदर्शितंमार्गमशेषविद्धरिः ॥५०॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेऽरण्यकांडेतृतीयःसर्गः॥३॥ ॥श्रीमहादेव उवाच॥ मार्गेव्रजन्ददर्शाथशैलशृंगमिवस्थितम् ॥ वृद्धंजटायुषंरामःकिमेतदितिविस्मितः ॥ १ ॥ धनुरानयसौमित्रेराक्षसोऽयंपुरःस्थितः ॥ इत्याहलक्ष्मणंरामोहनिष्याम्यृषिभक्षकम् ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वारामवचनंगृध्रराड्भयपीडितः ॥ वधार्होऽहंनतेरामपितुस्तेहंप्रियःसखा ॥ ३ ॥ जटायुर्नामभद्रंतेगृध्रोऽहंप्रियकृत्तव ॥ ४ ॥ पंचवट्यामहंवत्स्येतवैवप्रियकाम्यया ॥ मृगयायांकदाचित्तुप्रयातेलक्ष्मणेऽपिच ॥ ५ ॥ सीता जनककन्यामेरक्षितव्याप्रयत्नतः ॥ श्रुत्वातद्गृध्रवचनंरामःसस्नेहमब्रवीत् ॥६॥ साधुगृध्रमहाराजतथैवकुरुमेप्रियम् ॥ अत्रैवमेसमीपस्थो नातिदूरेवनेवसन् ॥ ७ ॥

इस राक्षसको मार डालूंगा ! " ॥ २ ॥ श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुन गृध्रराजने भयसे व्याकुल होकर कहा; "हे राम ! मैं तुमसे अवध्यहूं, मैं तुम्हारे पिताका प्रियसखा ॥ ३ ॥ जटायु नामक गृध्रहूं; तुम्हारा मंगल होवै; मैं तुम्हारा हितकारी कार्य करनेवालाहूं ॥ ४ ॥ तुम्हारेही हितकी कामना करके पंचवटी वनमें रहताहूं । जब कभी लक्ष्मणजीभी मृगया करनेको चले जाँयगे ॥ ५ ॥ तब मैं परम यत्नके सहित जनककन्या जानकीजीकी रक्षा करूंगा ! " गृध्रके वचन सुनकर स्नेहसहित श्रीरामचंद्रजी बोले ॥ ६ ॥ " हे गृध्रराज! महाराज ! तुम धन्य हो ! अच्छा इस वनके निकट

CSU-Jaipur Campus Collection

ही रहकर तुम हमारा प्रियकार्य भलीभांतिसे सिद्ध करो ” ॥ ७ ॥ इस प्रकार अपना अभिप्राय प्रगटकर रघुनंदन राम गृध्रको हृदयसे लगाय लक्ष्मण और सीताके सहित पंचवटीको गये ॥ ८ ॥ गौतमी नदीके तीरपर पंचवटीमें पहुँच, बुद्धिवान लक्ष्मणजीसे रामजीने विस्तारयुक्त सुन्दर भवन बनवाया ॥ ९ ॥ श्रीराम, जानकी, व लक्ष्मणजीके सहिथ गोदावरी नदीके तीरपर आय कर, कटहल, आम, इत्यादि वृक्षोंसे युक्त गोदावरीके उत्तर किनारेपर रहने लगे ॥ १० ॥ मनुष्योंके समूहसे रहित, रोगहीन आश्रमके एकान्त देशमें सीताजीको प्रसन्न करते हुए ज्ञानवान् लक्ष्मणजी के साथ श्रीरामचंद्रजी ॥ ११ ॥ देवलोकमें देवताओंके समान सुख सहित रहने लगे; प्रतिदिन कंद मूल फल लाकर लक्ष्मणजी ॥ १२ ॥

इत्यामंत्रितमालिंग्ययययौपंचवटींप्रभुः ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रासीतयारघुनंदनः ॥ ८ ॥ गत्वातेगौतमीतीरेपंचवट्यांसुविस्तरम् ॥ मंदिरं कारयामासलक्ष्मणेनसुबुद्धिना ॥ ९ ॥ तत्रतेन्यवसन्सर्वेंगंगायाउत्तरेतटे ॥ कदंबपनसाम्रादिफलवृक्षसमाकुले ॥ १० ॥ विविक्तेजनसंबाधवर्जितेनीरुजस्थले ॥ विनोदयञ्जनकजांलक्ष्मणेनविपाश्चिता ॥ ११ ॥ अध्युवाससुखंरामोदेवलोकइवामरः ॥ कंदमूलफलादीनि लक्ष्मणोऽनुदिनंतयोः ॥ १२ ॥ आनीयप्रददौरामसेवातत्परमानसः ॥ धनुर्बाणधरोनित्यंरात्रौजागर्तिसर्वतः ॥ १३ ॥ स्नानंकुर्वंत्यनुदिनंत्रयस्तेगौतमीजले ॥ उभयोर्मध्यगासीताकुरुतेचगमागमौ ॥ १४ ॥ आनीयसलिलंनित्यंलक्ष्मणःप्रीतमानसः ॥ सेवतेऽहरहःप्रीत्याएवमासन्सुखंत्रयः ॥ १५ ॥ एकदालक्ष्मणोराममेकांतेसमुपस्थितम् ॥ विनयावनतोभूत्वापप्रच्छपरमेश्वरम् ॥ १६ ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामिमोक्षस्यैकांतिकींगतिम् ॥ त्वत्तःकमलपत्राक्षसंक्षेपाद्वक्तुमर्हसि ॥ १७ ॥

रामचंद्रजीको निवेदन करते रहते। श्रीरामचंद्रजीकी सेवामें मनको तत्पर किये लक्ष्मणजी रात्रिमें धनुष बाण धारण कर चारों ओर घूमकर रक्षा कर जागते रहें ॥१३॥ यह तीनों जने गोदावरीके निर्मल नीरमें दिन २ नहाया करते । और सीताजी, राम, व लक्ष्मणजीके बीचमें होकर चला फिरा करतीं ॥ १४ ॥ लक्ष्मणजी प्रसन्न मनसे गौतमी नदीसे जल लायकर सदा श्रीराम और जानकीजीकी सेवा किया करते ॥१५॥ एक दिन परमेश्वर राम, निर्जनमें बैठे हैं कि इसी अवसरमें विनयसहित प्रणाम कर लक्ष्मणजीने उनसे पूंछा ॥ १६ ॥ हे “ भगवन् । मैं आपसे

मोक्षका एकान्तिक कारण श्रवण करनेकी इच्छा करताहूं; हे कमलदललोचन ! इसको आप संक्षेपसे कहिये ॥१७॥ हे रघुकुलश्रेष्ठ ! भक्ति और वैराग्यद्वारा बढे हुए नियमादिरूप ज्ञान, और निदिध्यासनजनित, आत्मसाक्षात्कारस्वरूप विज्ञानकी वार्ता भलीभांति मुझसे कहिये। आपके सिवाय भूमंडलमें और कोई वक्ता नहीं है " ॥ १८ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले, " हे वत्स ! जिसके जाननेसे मनुष्यमात्रही झूंठे संसारके सत्य स्वरूपकी प्रतीतिसे अतिशीघ्र छुटकारा प्राप्त करलेताहै; उसकाही गूढ़विषय वर्णन करताहूं तुम सुनो ॥ १९ ॥ प्रथम माया के स्वरूपको कहूंगा–इसके पीछे ज्ञानका साधन–फिर उसके पीछे विज्ञानसंयुक्त ज्ञानका विषय वर्णन किया जायगा ॥ २० ॥ फिर अन्तमें जानने योग्य परमात्माका वृत्तान्त कहा जायगा–इन बातोंके जानतेही संसारी भयका लेशमात्र नहीं रहता। शरीर आदि समस्त पदार्थ आत्मा नहीं है; परंतु इन सब वस्तुओंमें आत्मा बुद्धिका नाम ॥ २१ ॥ माया है और उससेही संसार काल्पित किया जाता है। हे रघुकुलनंदन ! इस माया के दो रूप नियत हैं ॥ २२ ॥ विक्षेपशक्ति; और आवरणशक्ति; इनमें पहली विक्षेपशक्ति महत्तत्त्वादि, ब्रह्मात्मक, स्थूल, और सूक्ष्मके भेदसे विश्व को प्रकाश करतीहै ॥ २३ ॥ दूसरी समस्तज्ञानको आवरण करके स्थित है; इसभांति माया केवल परमात्मामेंही ज्ञानको आवरण कर जगद्रूपकी कल्पना करती है ॥ २४ ॥ रस्सीमें जिसप्रकार सर्पका भ्रम होताहै; वैसेही अधिष्ठान विचार करनेसे कुछभी नहींहै। मनुष्यगण जो कुछ श्रवण

ज्ञानंविज्ञानसहितंभक्तिवैराग्यबृंहितम् ॥ आचक्ष्वमेरघुश्रेष्ठवक्तानान्योऽस्तिभूतले ॥ १८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ शृणुवक्ष्यामितेवत्सगुह्याद्गुह्यतरंपरम् ॥ यद्विज्ञायनरोजह्यात्सद्योवैकल्पिकंभ्रमम् ॥१९॥ आदौमायास्वरूपंतेवक्ष्यामितदनंतरम् ॥ ज्ञानस्यसाधनंपश्चाज्ज्ञानंविज्ञानसंयुतम् ॥ २० ॥ ज्ञेयंचपरमात्मानंयज्ज्ञात्वामुच्यतेभयात् ॥ अनात्मनिशरीरादावात्मबुद्धिस्तुयाभवेत् ॥ २१ ॥ सैवमायातयैवासौसंसारःपरिकल्प्यते ॥ रूपेद्वेनिश्चितेपूर्वंमायायाःकुलनंदन॥२२॥विक्षेपावरणेतत्रप्रथमंकल्पयेज्जगत्॥ लिंगाद्यब्रह्मपर्यंतंस्थूलसूक्ष्मविभेदतः ॥ २३ ॥ अपरंत्वखिलंज्ञानरूपमावृत्यतिष्ठति॥माययाकल्पितंविश्वंपरमात्मनिकेवले ॥ २४॥ रज्जौभुजंगवद्भ्रांत्याविचारेनास्तिकिंचन ॥ श्रूयतेदृश्यतेयद्यत्स्मर्यतेवानरैःसदा ॥ २५ ॥

करते, दर्शन करते, अथवा स्मरणकरते हैं ॥ २५ ॥ वह समस्तही स्वप्नमें देखीहुई वस्तुके समान मिथ्याहै । संसार वनस्पतिकी दृढ़मूलस्वरूप यह देहही है ॥ २६ ॥ और यह देहही पुत्रदारादिकी उत्पत्तिका मूलहै; अतएव यह देह न रहनेसे आत्माका कुछभी बिगाड़ नहीं; अर्थात् पुत्रादिकी उत्पत्ति नहीं होती ॥ २७ ॥ देह दोप्रकारका है स्थूल और सूक्ष्म । स्थूल देह स्थूलपंचभूत (अर्थात् क्षिति जल पावक, गगन समीर इनपदार्थों से बनाहै)-मयहै; सूक्ष्म शरीरका नाम लिंगदेह है (अर्थात् रूप, रस,गंध, स्पर्श, शब्द,) और अहंकार, बुद्धि और पांच कर्मेन्द्रिय, और पांचज्ञानेन्द्रिय ॥ २८ ॥ और मनरूप अन्तरिन्द्रिय इन अठारह पदार्थका स्वरूप है; इसदेहमें मनुष्यगण अहंबुद्धि कियाकरते हैं । हे भ्रातः ! मनुष्यादि शरीर विकृति [अर्थात् कारण] ईश्वर शरीरमूलप्रकृति (अर्थात् नित्य) यह शरीर जडपदार्थ है इसकारणसे पण्डितलोग इसको क्षेत्र कहते हैं, ॥ २९ ॥

असदेवहितत्सर्वंयथास्वप्नमनोरथौ ॥ देहएवहिसंसारवृक्षमूलंदृढंस्मृतम् ॥ २६ ॥ तन्मूलःपुत्रदारादिबंधःकिंतेऽन्यथात्मनः ॥ २७ ॥ देहस्तुस्थूलभूतानांपंचतन्मात्रपंचकम् ॥ अहंकारश्चबुद्धिश्चइंद्रियाणितथादश ॥ २८ ॥ चिदाभासोमनश्चैवमूलप्रकृतिरेवच ॥ एतत्क्षेत्रमितिज्ञेयंदेहइत्यभिधीयते ॥ २९ ॥ एतैर्विलक्षणोजीवःपरमात्मानिरामयः ॥ तस्यजीवस्यविज्ञानेसाधनान्यपिमेशृणु ॥ ३० ॥ जीवश्चपरमात्माचपर्यायोनात्रभेदधीः ॥ मानाभावस्तथादंभहिंसादिपरिवर्जनम् ॥ ३१ ॥ पराक्षेपादिसहनंसर्वत्रावक्रतातथा ॥ मनोवाक्कायसद्भक्त्यासद्गुरोःपरिसेवनम् ॥ ३२ ॥ बाह्याभ्यंतरसंशुद्धिस्थिरतासत्क्रियादिषु ॥ मनोवाक्कायदंडश्चाविषयेषुनिरीहता ॥ ३३ ॥ निरहंकारताजन्मजराद्यालोचनंतथा ॥ असक्तिःस्नेहशून्यत्वंपुत्रदारधनादिषु ॥ ३४ ॥

जीव देहसे अलग है; जीवसे निरामय परमात्माकी पृथक्ता नहीं. मैं वही जीवका विज्ञान साधन कुछएक कहताहूं; श्रवणकरो ॥ ३० ॥ मुमुक्षु लोग जीवसे परमात्माको कभी अलग नहीं समझेंगे; और अभिमान, दम्भहिंसादि मानासिक वृत्ति छोड़देंगे ॥ ३१ ॥ पराई कीहुई निंदाका सहलेना, मन, वचन, कायसे तीनप्रकारकी हिंसा छोड़ै, भक्तिसहित सद्गुरुकी सेवाकरना ॥ ३२ ॥ और सर्व प्राणियोंके साथ सरल व्यवहार करै और बाहर व भीतरकी पवित्रता अवलंबन करके सत्कर्मोंमें स्थिरता करना अर्थात् ऐसी बुद्धि कि, यह कार्य हमको अवश्य करना चाहिये; पराया बुरा चीतना, परनिंदा, दूसरेको हस्तादिद्वारा प्रहार न करै, इच्छारहितहो ॥ ३३ ॥ अहंकार छोड़, देहकी, जन्म, जरा, मरणका विचार करै;

स्नेहरहित हो स्त्री पुत्र धनादिकी आसक्ति छोड़दे ॥ ३४ ॥ प्यारी कुप्यारी वस्तुके समागमसे चित्तको एकसा रखना, सब विषय छोड़ केवल मुझमें चित्त लगादे; अर्थात् सर्वसे अधिक प्रीति करे ॥ ३५ ॥ मनुष्योंके समूहसे रहित शुद्धस्थानमें वासकरके संसारी मनुष्योंका संग छोड़दे ॥ ३६ ॥ सदाही आत्मज्ञानमें उद्योग करना, और समयसमयपर वेदांत शास्त्रका अर्थविचार करै; हे वत्स ! ज्ञानकी इच्छा रखनेवाले पुरुष सरलताईसे यह ज्ञान प्राप्त करसक्ते हैं; इसके विपरीत आचरण करनेसे विपरीत फल मिलताहै ॥ ३७ ॥ आत्मा, बुद्धि, प्राण, मन, देह और अहंकारसे अलग शुद्ध बुद्ध चिदात्मा मैंहीहूं; इसप्रकारका निश्चय ॥ ३८ ॥ जिस ज्ञानसे हो वही ज्ञान है, ऐसा मुझे निश्चय है; परमात्माके साक्षात्कारका नाम विज्ञानहै ॥ ३९ ॥ हे लक्ष्मण ! आत्मा सब जगह छाय रहाहै; और चित्तरूप आनंदस्वरूप अविनाशी बुद्ध्यादिसे अलगहै; व परिणामादि विकारसे रहित है, परिणाम नाम यहांपर अनेक २ रूप बदलनेका है ॥ ४० ॥ अपने प्रकाशसे देहादिका प्रकाशकहै; इसलिये आपही प्रकाशयुक्त अद्वितीय (जिसके समान दूसरा कोई नहीं है,) सत्य ज्ञानस्वरूप और अनन्त है॥ ४१ ॥ संगरहित, स्वयंप्रकाश, और अपनी प्रभा करके समस्त जगत्को देखने वालाहै; जो परमात्माहै वह विज्ञानके द्वारा जानाजाताहै; जब मनुष्यगण आश्चर्य व उपदेशके अनुसार जीवात्मा परमात्मामें कुछभेद नहीं समझते हैं ॥ ४२ ॥ तब उनकी मूल अविद्या, स्थूल और इंद्रियादिरूप सूक्ष्म पदार्थके साथ परमात्मामें लीन होतीहै ॥ ४३ ॥

इष्टानिष्टागमेनित्यंचित्तस्यसमतातथा ॥ मयिसर्वात्मगेरामेह्यनन्यविषयामतिः ॥ ३५ ॥ जनसंबाधरहितशुद्धदेशनिषेवणम् ॥ प्राकृतैर्जनसंघैश्चह्यरतिःसर्वदाभवेत् ॥ ३६ ॥ आत्मज्ञानेसदोद्योगोवेदांतार्थावलोकनम् ॥ उक्तैरेतैर्भवेज्ज्ञानंविपरीतैर्विपर्ययः ॥ ३७ ॥ बुद्धिप्राणमनोदेहाऽहंकृतिभ्योविलक्षणः ॥ चिदात्माऽहंनित्यशुद्धबुद्धएवेतिनिश्चयम् ॥ ३८ ॥ येनज्ञानेनसंविन्तेतज्ज्ञानंनिश्चितंचमे ॥ विज्ञानंचतदैवतत्साक्षादनुभवेद्यदा ॥ ३९ ॥ आत्मासर्वत्रपूर्णःस्याच्चिदानंदात्मकोऽव्ययः ॥ बुद्ध्याद्युपाधिरहितःपरिणामादिवर्जितः ॥ ४० ॥ स्वप्रकाशेनदेहादीन्भासयन्ननपावृतः ॥ एकएवाद्वितीयश्चसत्यज्ञानादिलक्षणः ॥ ४१ ॥ असंगःस्वप्रभोद्रष्टाविज्ञानेनावगम्यते ॥ आचार्यशास्त्रोपदेशादैक्यज्ञानंयदाभवेत् ॥ ४२ ॥ आत्मनोर्जीवपरयोर्मूलाविद्यातदैवाहि ॥ लीयतेकार्यकरणैःसहैवपरमात्मनि॥ ४३ ॥

अविद्याकी इसलयावस्थाको पण्डितलोग मोक्षावस्था कहते हैं। हेरघुनंदन! तुमसे इसप्रकार ज्ञान विज्ञान, और वैराग्य से मिलाहुआं मोक्षपदार्थ कहा। परन्तु मेरी भक्तिसे रहित मनुष्योंके लिये यह मोक्ष अति दुर्लभहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ जिसप्रकार नेत्रवाले पुरुषभी रात्रिमें भलीभांति नहीं देखपाते; और दीपकके संयोगसे सरलतापूर्वक देखसकते हैं ॥ ४६ ॥ वैसेही मेरी भक्तिका मेल रहनेसे आत्माको मनुष्य सुगमतासे देखतेहैं। इस क्षणमें मनुष्यगण सप्रकार मुझमें भक्ति प्राप्त करसक्ते हैं, उसका यथार्थ उपाय कहताहूं, सो तुम सुनो ॥ ४७ ॥ जो लोग निरंतर मेरे भक्तोंके साथ और हमारे भक्तों की सेवाकरता, एकादशीमें उपवास और नवमी आदिका उत्सव करता ॥ ४८ ॥ मेरी कथा रामायणका पाठकरता, व उसकी व्याख्या श्रवण

सावस्थामुक्तिरित्युक्ताह्युपचारोऽयमात्मनि ॥ इदंमोक्षस्वरूपंतेकथितंरघुनंदन ॥४४॥ ज्ञानविज्ञानवैराग्यसहितंमेपरात्मनः ॥ किंत्वेतद्दुर्लभंमन्येमद्भक्तिविमुखात्मनाम् ॥ ४५ ॥ चक्षुष्मतामपियथारात्रौसम्यङ्गदृश्यते ॥ पदंदीपसमेतानांदृश्यतेसम्यगेवहि ॥ ४६ ॥ एवं मद्भक्तियुक्तानामात्मासम्यक्प्रकाशते ॥ मद्भक्तेःकारणंकिंचिद्वक्ष्यामिशृणुतत्त्वतः ॥ ४७ ॥ मद्भक्तसंगोमत्सेवामद्भक्तानांनिरंतरम् ॥ एकादश्युपवासादिममपर्वानुमोदनम् ॥ ४८ ॥ मत्कथाश्रवणेपाठेव्याख्यानेसर्वदारतिः ॥ मत्पूजापरिनिष्ठाचममनामानुकीर्तनम् ॥ ४९ ॥ एवंसततयुक्तानांभक्तिरव्यभिचारिणी ॥ मयिसंजायतेनित्यंततःकिमवशिष्यते ॥ ५० ॥ अतोमद्भक्तियुक्तस्यज्ञानंविज्ञानमेवच ॥ वैराग्यंचभवेच्छीघ्रंततोमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ कथितंसर्वमेतत्तेतवप्रश्नानुसारतः ॥ अस्मिन्मनःसमाधाययस्तिष्ठेत्सतुमुक्तिभाक् ॥ ५२ ॥ नवक्तव्यमिदंयत्नान्मद्भक्तिविमुखायाहि ॥ मद्भक्तायप्रदातव्यमाहूयापिप्रयत्नतः ॥ ५३ ॥

करनेमें अनुरागी रहना, मेरे नामका कीर्तन करना, और मेरी पूजाकरना; मुझमेंही विश्वासकरके केवल मेराही अवलम्बन करना ॥ ४९ ॥ हे लक्ष्मण! जो पुरुष निरन्तर इसप्रकारके साधनोंसे युक्त हैं; उन योगी पुरुषोंको अव्यभिचारिणी (कभी नहीं छूटनेवाली) भक्ति उत्पन्न होतीहै; भक्ति उत्पन्न होनेसे फिर किसी वस्तुकी कमी नहीं रहती ॥ ५० ॥ क्योंकि भक्ति से ज्ञान, विज्ञान वैराग्य अति शीघ्र उत्पन्न; होजातेहैं तिसके पीछे मुक्ति प्राप्तहोती है ॥ ५१ ॥ हे वत्स ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार यह समस्त गोपनीय वार्ता कही; जो पुरुष हमारे इन समस्त उपदेशवाक्योंमें मन लगावैगा उसको मुक्ति प्राप्त होगी ॥ ५२ ॥ इसकारण हे लक्ष्मण! मेरीभक्तिसे रहित पुरुषोंके निकट हमारे इस उपदेशको यत्नके साथ छिपाना, और

हमारे भक्त पुरुषोंको बुलायकर यह समस्त कहना ॥५३॥ हेभइया ! जो पुरुष मेरा कहा हुआ उपदेश श्रद्धाभक्तिके सहित प्रतिदिन पाठ करताहै; वह
पुरुष अज्ञानरूप अंधकारसे छूट जाता है ॥५४॥ जो पुरुष मेरी सेवाकरनेमें एकाग्र बुद्धि होकर मेरे भक्त, निर्मल अंतःकरण शान्तस्वभाव और मेरी
सेवा करनेवाले परमज्ञानी योगियोंका संग करते हैं; मैं सदा उनकी दृष्टिके सोही विराजमान रहताहूं; और दुर्लभ मुक्ति पदार्थ उन लोगोंकी हथे
लीपर धरा रहता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकांडे भाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥४॥ शूर्पणखाके नाक कान
कटना, खर दूषणादिका माराजाना ॥ उस समय उस स्थानमें जनस्थानकी रहनेवाली, कामरूपिणी, एक महाबलवान् राक्षसी उस महावनमें घूमाक

यइदंतुपठेन्नित्यंश्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥ अज्ञानपटलध्वांतंविधूयपरिमुच्यते ॥ ५४ ॥ भक्तानांममयोगिनांसुविमलस्वांतातिशांतात्मनां
मत्सेवाभिरतात्मनांचविमलज्ञानात्मनांसर्वदा ॥ संगंयःकुरुतेसदोद्यतमतिःसत्सेवनानन्यधीर्मोक्षस्तस्यकरस्थितोऽहमनिशंदृश्योभवे
नान्यथा ॥ ५५ ॥ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेऽरण्यकांडेचतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥ ॥ तस्मिन्कालेमहारण्येराक्षसी
कामरूपिणी ॥ विचचारमहासत्त्वाजनस्थाननिवासिनी ॥ १ ॥ एकदागौतमीतीरेपंचवट्याःसमीपतः ॥ पद्मवज्रांकुशांकानिपदानिजग
तीपतेः ॥ २ ॥ दृष्ट्वाकामपरीतात्मापादसौंदर्यमोहिता ॥ पश्यंतीसाशनैरायाद्राघवस्यनिवेशनम् ॥ ३ ॥ तत्रसातंरमानाथंसीत
यासहसंस्थितम् ॥ कंदर्पसदृशंरामंदृष्ट्वाकामविमोहिता ॥ ४ ॥ राक्षसीराघवंप्राहकस्यत्वंकःकिमाश्रमे ॥ युक्तोजटावल्कलाद्यैःसाध्यं
किंतेऽत्रमेवद ॥५॥ अहंशूर्पणखानामराक्षसीकामरूपिणी ॥ भगिनीराक्षसेंद्रस्यरावणस्यमहात्मनः ॥ ६ ॥

रतीथी ॥ १ ॥ एक समय वह राक्षसी, पंचवटीके समीप गौतमी नदीके किनारे, वज्र और अंकुशादि चिह्नों करके युक्त श्रीरामचंद्रजीके चरणचिह्न पृथ्वी
में ॥ २ ॥ देख चित्तको कामदेवसे अन्धा करती हुई, चरणोंकी सुन्दरताई देखते२ उन चरणचिह्नोंकी पहँचानसे रामचंद्रजीके आश्रम में आय पहुँची
॥ ३ ॥ इसके उपरान्त देवी सीताजीके साथ एक आसनपर बैठे हुए, कामदेवके समान श्रीरामचंद्रजीको देख कामसे मोहित हुई ॥ ४ ॥
राक्षसीने श्रीरामचंद्रजीसे पूछा " तुम किसके पुत्रहो ? तुम्हारा नाम क्या है ?—और किसकारणसे जटा वल्कल धारण करके आश्रममें वास करते
हो—यहांपर रहनेसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? सो कहो ॥ ५ ॥ मैं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी (इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली) हूं,

राक्षसोंके राजा महात्मा रावणकी बहनहूं ॥ ६ ॥ खर नामक एक दूसरे भइयाके साथ इस वनमें रहा करतीहूं; राजाने हमको समस्त वनका राज्य दिया है; मैं यहाँपर रहकर मुनि लोगोंको खाया करतीहूं ॥ ७ ॥ इस समय तुमको जान लेनेकी इच्छा है; हे वचन बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! अपना नाम धाम बताओ ।” श्रीरामचंद्रजीबोले ! “हे सुन्दरि ! जनककुमारी सीता हमारी भार्या है, और मुझसेभी अति सुन्दर लक्ष्मण हमारे भइया हैं—वहभी इसी स्थानमें हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे भुवनमोहिनी! हमसे तुम अपना कौन कार्य कराया चाहतीहो सोकहो ” ॥ १० ॥ “ हेराम ! आगमन करके हमारे साथ पर्वत और वनमें रमण करो; हे कमललोचन! मैं इस समय कामसे अति कातर हुईहूं । इस कारण तुमको किसी

खरेणसहिताभ्रात्रावसाम्यत्रैवकानने ॥ राज्ञादत्तंचमेसर्वंमुनिभक्षावसाम्यहम् ॥ ७ ॥ त्वांतुवेदितुमिच्छामिवदमेवदतांवर ॥ तामाहराम
नामाहमयोध्याधिपतेःसुतः ॥ ८ ॥ एषामेसुंदरीभार्यासीताजनकनंदिनी ॥ सतुभ्राताकनीयान्मेलक्ष्मणोऽतीवसुंदरः ॥ ९ ॥ किंकृत्यंते
मयाब्रूहिकार्यंभुवनसुंदरि ॥ इतिरामवचःश्रुत्वाकामार्तासाऽब्रवीदिदम् ॥ १० ॥ एहिराममयासार्धंरमस्वगिरिकानने ॥ कामार्ताऽहंनश
क्नोमित्यक्तुंत्वांकमलेक्षणम् ॥ ११ ॥ रामःसीतांकटाक्षेणपश्यन्सस्मितमब्रवीत् ॥ भार्याममैषाकल्याणीविद्यतेह्यनपायिनी ॥ १२ ॥
त्वंतुसापत्न्यदुःखेनकथंस्थास्यसिसुंदरि ॥ बहिरास्तेममभ्रातालक्ष्मणोऽतीवसुंदरः ॥१३॥ तवानुरूपोभवितापतिस्तेनैवसंचर ॥ इत्यु
क्तालक्ष्मणंप्राहपतिर्मेभवसुंदर ॥ १४ ॥ भ्रातुराज्ञांपुरस्कृत्यसंगच्छावोऽद्यमाचिरम् ॥ इत्याहराक्षसीघोरालक्ष्मणंकाममोहिता ॥ १५ ॥

प्रकारसे नहीं छोड़ सकतीहूं ।” ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त सीताजीकी ओर सैन दे मन्द मुसकाय, श्रीरामचंद्रजीने राक्षसीसे कहा—“हे सुन्दरि ! हमारी यह मंगलदायिनी भार्या विद्यमान हैं; इनको किसी प्रकारसे त्यागना उचित नहीं है ॥ १२ ॥ तुम हमको पति बनायकर काहेको जन्मभर सवतिया डाहके दुःखसे जरोहो । इस समय तुमको अच्छा उपदेश देताहूं सुनो, हमारे भ्राता परम सुन्दर लक्ष्मणजी बाहर विराजमान हैं ॥ १३ ॥ वही तुम्हारे योग्य पति होंगे; उनके साथ इस वनमें विचरणकरो ।” श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुन बाहर जायकर राक्षसी लक्ष्मणजीसे बोली; “हे सुन्दर । तुम हमारे पति होवो ॥ १४ ॥ और भ्राताकी आज्ञानुसार शीघ्र हमारे संग चलो; इस समय हम तुम दोनों मिलें, देर न करो ॥ ”

घोर और कामसे मोहित हुई राक्षसीने ऐसा लक्ष्मणजीसे कहा ॥ १५ ॥ तब लक्ष्मणजी बोले;—“हे साध्वी ! मैं उन बुद्धिमान् श्रीरामचंद्रजीका दासहूं; जो तुम मुझको अपना पति बनाओगी तो तुझेभी उनकी दासी बनना होगा; भला फिर इससे अधिक दुःखकी और क्या बात होगी ? ॥ ॥ १६ ॥ हे भद्रे ! तुम श्रीरामचंद्रजीके निकट चली जाओ; वे समस्त ब्रह्माण्डके ईश्वर हैं, उनसे तुम्हारा मंगल होगा। ” दुष्टमनवाली राक्षसी लक्ष्मणजीके ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजीके निकट आयकर ॥ १७ ॥ क्रोधसे बोली, “ हे राम! तुम चल विचल चित्तके समान किसलिये झूंठी बातैं कहकर हमको घुमातेहो; इससे तुमसे पहलेही सीताको भक्षण करडालूं। ” ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त विकटरूप धारण करके जानकीके ऊपर राक्षसी दौड़ी। तब रामचंद्रजीकी आज्ञासे बड़े पराक्रमवालेलक्ष्मणजीने तीखा खड्ग निकालकर ॥ १९ ॥ उस राक्षसीके नाक कान काट डाले; इसके पीछे रुधिरसे भीजी हुई वह राक्षसी घोर ध्वनि करके शीघ्रजाय ॥ २० ॥ रोती हुई खरके सामने गिर पड़ी; और कठोर वचन कहती हुई तब तीक्ष्ण बोलनेवाले खरने कहा ॥ २१ ॥ “यह क्या ! किस पुरुषने मृत्यु मुखमें प्रवेश करनेकी इच्छा करके तुम्हारी ऐसी दशा की है ? तुम उसका नाम बताओ; जो वह कालके समान होगा तब भी क्षण भरमें उसको मार डालूंगा। ” ॥ २२ ॥ राक्षसीनें खरसे कहा;—“ सीता और लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचंद्रजी, दंडकवनमें राक्षसभय दूर करते हुए गोदावरीके तीरपर वास करते हैं ॥ २३ ॥ रामचंद्रजीके छोटे भइया लक्ष्मणजीने अपने बड़े भाईकी आज्ञासे मेरा यह हाल किया है; जो तुमने राक्षसकुलमें जन्म ग्रहण किया हो; जो वास्तवमें

तामाहलक्ष्मणःसाध्विदासोऽहंतस्यधीमतः ॥ दासीभविष्यसित्वंतुततोदुःखतरंनुकिम् ॥ १६ ॥ तमेवगच्छभद्रेतंसतुराजाऽखिलेश्वरः ॥
तच्छ्रुत्वापुनरप्यागाद्राघवंदुष्टमानसा ॥ १७ ॥ क्रोधाद्रामकिमर्थंमांभ्रामयस्यनवस्थितः ॥ इदानीमेवतांसीतांभक्षयामितवाग्रतः॥१८॥
इत्युक्त्वाविकटाकाराजानकीमनुधावती ॥ ततोरामाज्ञयाखड्गमादायपरिगृह्यताम् ॥ १९ ॥ चिच्छेदनासांकर्णौचलक्ष्मणोऽलघुविक्रमः॥
ततोघोरध्वनिंकृत्वारुधिराक्तवपुर्द्रुतम् ॥ २० ॥ क्रंदमानापपाताग्रेखरस्यपरुषाक्षरा ॥ किमेतदितितामाहखरःखरतराक्षरः ॥२१॥ केनै
वंकारिताऽसित्वंमृत्योर्वक्रानुवर्तिना ॥ वदमेतंवधिष्यामिकालकल्पमपिक्षणात् ॥ २२ ॥ तमाहराक्षसीरामःसीतालक्ष्मणसंयुतः ॥
दंडकंनिर्भयंकुर्वन्नास्तेगोदावरीतटे ॥ २३ ॥ मामेवंकृतवांस्तस्यभ्रातातेनैवचोदितः ॥ यदित्वंकुलजातोऽसिवीरोसिजहितौरिपू ॥२४॥

वीरहो, तौ उन दोनों शत्रुओंका नाशकरो ॥ २४ ॥ मैं उनका रुधिर पीकर मांस खाऊंगी; और जो तुम उनको न मारोगे तौमैं प्राण छोड़कर यमराजके यहां चली जाऊंगी " ॥ २५ ॥ खर यह सुन क्रोधसे अधीर होकर बाहर निकला और श्रीरामचंद्रजीका विनाश करनेकी वासनासे भयंकर कर्म करनेवाले चौदह हज़ार राक्षस भेजे। खर, दूषण, और त्रिशिरा राक्षस ॥ २६ ॥ २७ ॥ अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारणकर सबही श्रीरामचंद्रजीके निकट गये; उनका कुलाहल सुनकर श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ २८ ॥ "यह भयंकर कुलाहल सुनाई आता है; निश्चय राक्षसगण चले आते हैं; आज इन राक्षसोंका हमारे साथ घोर युद्ध होगा ॥ २९ ॥ हे महाबल! तुम सीताको साथ लेकर पर्वतकी

तयोस्तुरुधिरंपास्येभक्षयैतौसुदुर्मदौ ॥ नोचेत्प्राणान्परित्यज्ययास्यामियमसादनम् ॥ २५ ॥ तच्छ्रुत्वात्वरितंप्रागात्खरःक्रोधेनमूर्च्छितः ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥२६॥ चोदयामासरामस्यसमीपंवधकांक्षया ॥ खरश्चत्रिशिराश्चैवदूषणश्चैवराक्षसः ॥२७॥ सर्वेरामंययुःशीघ्रंनानाप्रहरणोद्यताः ॥ श्रुत्वाकोलाहलंतेषांरामःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ २८ ॥ श्रूयतेविपुलःशब्दोनूनमायांतिराक्षसाः ॥ भविष्यतिमहद्युद्धंनूनमद्यमयासह ॥ २९ ॥ सीतांनीत्वागुहांगत्वातत्रतिष्ठमहाबल ॥ हंतुमिच्छाम्यहंसर्वान्राक्षसान्घोररूपिणः ॥ ३० ॥ अत्रकिंचिन्नवक्तव्यंशापितोऽसिममोपरि ॥ तथेतिसीतामादायलक्ष्मणोगह्वरंययौ ॥ ३१ ॥ रामःपरिकरंबद्ध्वाधनुरादायनिष्ठुरम् ॥ तूणीरावक्षयशरौबद्ध्वायत्तोऽभवत्प्रभुः ॥ ३२ ॥ ततआगत्यरक्षांसिरामस्योपरिचिक्षिपुः ॥ आयुधानिविचित्राणिपाषाणान्पादपानपि ॥३३॥ तानिचिच्छेदरामोऽपिलीलयातिलशःक्षणात् ॥ ततोबाणसहस्रेणहत्वातान्सर्वराक्षसान् ॥ ३४ ॥

गुफामें चले जाओ, मैं घोररूपी सब राक्षसोंका नाश करूंगा ॥ ३० ॥ तुम इस विषयमें कुछ उत्तर न देना; तुम्हें हमारी शपथ है।" लक्ष्मणजी रामजीके वचन अंगीकारकर सीताजीके सहित पर्वतकी गुहामें चलेगये ॥ ३१ ॥ रामचंद्रजीने कठोर धनुष, दो तरकश, जिनके बाण कभी नहीं कमती होते; धारण किये और कमर बाँध सावधानीसे तैयार हो बैठे ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त राक्षसगण आयकर रामचंद्रजीके ऊपर विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र, शिलाके टुकड़े और वृक्ष चलाने लगे ॥ ३३ ॥ क्षणभरमें कौतुकके साथही श्रीरामचंद्रजीनें उन सब अस्त्रादिकोंको तिल २ करकै कांट डाला; फिर हजारों बा

णोंसे उन सब राक्षसोंको मार ॥ ३४ ॥ खर, त्रिशिरा, व दूषण राक्षसका संहार किया। रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीनें आधेही पहरमें सर्व
राक्षसोंका नाश कर दिया ॥ ३५ ॥ फिर लक्ष्मणजी गुफाके बीचमेंसे जानकीजीको साथ लाय रामचंद्रजीके निकट सौंप दिया। और सर्व
राक्षसोंका संहार देखकर विस्मित हुए ॥ ३६ ॥ जनककुमारी जानकीजीनें प्रसन्नमुखसे रामचंद्रजीको भेंट; जहाँ उनके शरीरमें बाण लगने
से घाव हो गयेथे; वहाँ हाथसे सहरानें लगीं ॥ ३७ ॥ उनसमस्त श्रेष्ठ राक्षसोंका संहार देखकर रावणकी बहन शूर्पणखा भागी; और लंकामें
जाय सभाके बीच रावणके चरणोंके निकट गिरकर ॥ ३८ ॥ रोनेलगी। रावण अपनी रोती हुई बहनको भयसे विह्वल देखकर बोला ॥ ३९ ॥

खरंत्रिशिरसंचैवदूषणंचैवराक्षसम् ॥ जघानप्रहरार्द्धेनसर्वानेवरघूत्तमः ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणोऽपिगुहामध्यात्सीतामादायराघवे ॥ समर्प्य
राक्षसान्दृष्ट्वाहतान्विस्मयमाययौ ॥ ३६ ॥ सीतारामंसमालिंग्यप्रसन्नमुखपंकजा ॥ शस्त्रव्रणानिचांगेषुममार्जजनकात्मजा ॥ ३७ ॥
साऽपिदुद्रावदृष्ट्वातान्हतान्राक्षसपुंगवान् ॥ लंकांगत्वासभामध्येक्रोशंतीपादसन्निधौ ॥ ३८ ॥ रावणस्यपपातोर्व्यांभगिनीतस्यरक्षसः ॥
दृष्ट्वातांरावणःप्राहभगिनींभयविह्वलाम् ॥ ३९ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठवत्सेत्वंविरूपकरणंतव ॥ कृतंशक्रेणवाभद्रेयमेनवरुणेनवा ॥ ४० ॥
कुबेरेणाथवाब्रूहिभस्मीकुर्यांक्षणेनतम् ॥ राक्षसीतमुवाचेदंत्वंप्रमत्तोविमूढधीः ॥ ४१ ॥ पानासक्तःस्त्रीविजितःषंढःसर्वत्रलक्ष्यसे ॥
चारचक्षुर्विहीनस्त्वंकथंराजाभविष्यसि ॥ ४२ ॥ खरश्चनिहतःसंख्येदूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ चतुर्दशसहस्राणिराक्षसानांमहात्मनाम् ॥
॥ ४३ ॥ निहतानिक्षणेनैवरामेणासुरशत्रुणा ॥ जनस्थानमशेषेणमुनीनांनिर्भयंकृतम् ॥ नजानासिविमूढस्त्वमतएवमयोच्यते ॥ ४४ ॥

"हेवत्से! उठो, उठो, भद्रे! बताओ तौ तुम्हें किसने विरूप किया? इन्द्र, यम, या वरुणने ऐसाकिया ॥४०॥ अथवा कुबेरका यह कामहै? बताओ
तो सही; मैं क्षणभरमें उसको भस्मकर डालूंगा"। रावणसे राक्षसीनें कहा, "तुम मतवाले, मूढ़बुद्धि ॥ ४१ ॥ सुरापानकरनेमें आसक्त और स्त्रि
योंके वशहो तू सदाही नपुंसक (हीजड़े) के समान दिखाई देताहै; तेरे चररूप नेत्र नहीं हैं; अर्थात् दूत भी राजाके नेत्र होतेहैं, सो तेरे नहीं हैं,
अर्थात् तैंने राज्यकी देख भालके लिये दूत नहीं नियत कियेहैं फिर किस प्रकारसे राज्यकी रक्षा करगो? ॥ ४२ ॥ युद्धमें खर दूषण त्रिशि
रा और महाबली चौदह हज़ार राक्षस मारेगये ॥ ४३ ॥ राक्षसोंके शत्रु रांमने क्षणभरमें उन समस्त राक्षसोंको मारडाला; अब जनस्थानमें

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

मुनिलोग निडर होकर घूमतेहैं;–तू इसका कुछभी वृत्तान्त नहीं जानता; इसी कारणसे तुमको विमूढ़ कहतीहूं। ” ॥ ४४ ॥ रावण बोला;– “ राम कौनहैं? उसने किसलिये और किस प्रकारसे राक्षसोंको मारडाला? यह बात तू विस्तारसहित कह । मैं जड़ मूलसे उनका नाश करडालूंगा । ” ॥ ४५ ॥ शूर्पणखा बोली;– “ मैं एक समय जनस्थानसे गोदावरी नदीके तीरपर गईथी; वहाँपर पंचवटी स्थानमें; जहाँपर पहले मुनि लोग रहा करतेथे ॥ ४६ ॥ उस स्थानमें, राजीवलोचन रामको मैंनें देखा; धनुष बाणधारण किये जटा वल्कलके वस्त्र पहिरे, बड़े शोभायमान रामको मैंने निहारा ॥ ४७ ॥ उनके छोटेभाई लक्ष्मणभी उनहींके समान सुन्दरहैं; बड़े नेत्रवाली उनकी स्त्री मूर्तिमान् लक्ष्मीजीके समान सुन्दरी है

रावणउवाच ॥ कोवारामःकिमर्थंवाकथंतेनासुराहताः ॥ सम्यक्कथयमेतेषांमूलघातंकरोम्यहम् ॥ ४५ ॥ शूर्पणखोवाच ॥ जनस्थानादहं याताकदाचिद्गौतमीतटे ॥ तत्रपंचवटीनामपुरामुनिजनाश्रया ॥ ४६ ॥ तत्राश्रमेमयादृष्टोरामोराजीवलोचनः ॥ धनुर्बाणधरःश्रीमाञ्जटावल्कलमंडितः ॥ ४७ ॥ कनीयाननुजस्तस्यलक्ष्मणोऽपितथाविधः ॥ तस्यभार्याविशालाक्षीरूपिणीश्रीरिवापरा ॥ ४८ ॥ देवगंधर्वनागानांमनुष्याणांतथाविधा ॥ नदृष्टानश्रुताराजन्द्योतयंतीवनंशुभा ॥ ४९ ॥ आनेतुमहमुद्युक्तातांभार्यार्थंतवानघ ॥ लक्ष्मणोनामतद्भ्राताचिच्छेदममनासिकाम् ॥ ५० ॥ कर्णौचनोदितस्तेनरामेणसमहाबलः ॥ ततोऽहमतिदुःखेनरुदतीखरमन्वगाम् ॥ ५१ ॥ सोऽपिरामंसमासाद्ययुद्धंराक्षसयूथपैः ॥ ततःक्षणेनरामेणतेनैवबलशालिना ॥ ५२ ॥ सर्वेतेनविनष्टावैराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ यदिरामोमनःकुर्यात्त्रैलोक्यंनिमिषार्धतः ॥ ५३ ॥

॥ ४८ ॥ देवलोक, गंधर्वलोक, मनुष्य लोकमें वैसी सुन्दरी स्त्री हमनें कभी नहीं देखी सुनी; हेराजन्! वह उपवनको प्रकाशमान करकै विराजमान हो रही है ॥ ४९ ॥ हे पापरहित! जब मैंने उस स्त्रीको तुम्हारी भार्या बनानेके लिये उद्योग किया; तब उसके छोटे भ्राता लक्ष्मणनें मेरी नाक कान काटडाली ॥ ५० ॥ उस महाबलवान् लक्ष्मणनें अपने भाईकी आज्ञासे मेरे दोनों कानभी काटडाले। तबमैं अति दुःखित होकर रोती हुई खरके पास गई ॥ ५१ ॥ राक्षस सेनापतियोंके साथ खरनेंभी श्रीरामचंद्रजीके साथ युद्ध कियाथा; तब उन महाबलशाली रामचंद्रनें एक क्षणभरमेंही ॥ ५२ ॥ उन भयंकर विक्रम प्रकाश करने वाले सब राक्षसों को मारडाला; यदि रामचाहैं तो आधेही क्षणमें त्रिलोकीको ॥ ५३ ॥

भस्म कर डालें इसमें कुछभी संदेह नहीं है; हे प्रभो ! ऐसा हमें जान पड़ताहै; जो रामकी भार्या तुम्हारी स्त्री हो जाय तब तुम्हारा जन्म सफल हो ॥ ५४ ॥ हे राजेंद्र ! इस कारण कमलदलके समान नेत्रवाली सर्वलोकसुन्दरी सीता तुम्हारी स्त्री हो जाय ऐसी चेष्टा तुम करो ॥ ५५ ॥ हे प्रभो ! तुम साक्षात् रामके सामने ठहर नहीं सकोगे, मायाजालसे रामको मोहित कर तुम्हें जानकीको प्राप्त करना चाहिए " ॥ ५६ ॥ रावण यह सुनकर दान सन्मान कर बहनको धीरज बँधाय शयनभवनमें चलागया वहांपर करने योग्य कार्यकी चिन्ता करते रातके समय नींदके सुखको प्राप्त न करता हुआ (अर्थात् रातके समय नींद न आई) ॥ ५७ ॥ अकेले रामने साधारण मनुष्य होकरभी किस प्रकारसे मेरे भ्राता महागर्वयुक्त खरको सेना सहित मार डाला ! ॥ ५८ ॥ अथवा राम मनुष्य नहींहैं; सर्वेश परमात्मा हमारा नाश करनेके लिये ब्रह्माकी प्रार्थना करके मनुष्यरूपसे रघुवंशमें अवतार लिये हुए हैं ॥ ५९ ॥ जो परमात्मा राम मेरा विनाश कर डालें; तौ मैं सदाके लिये वैकुंठका राज्य पालन करूंगा अर्थात् सायुज्यरूप मोक्ष पाऊंगा । और नहीं तौ सदाही राक्षसोंका राजा रहूंगा । इस कारण विरोधबुद्धिसेही रामके पास जाऊं ॥ ६० ॥ इस प्रकार राक्षसोंके राजा रावणनें सोच विचार कर रामको जगदीश्वर माना और रावणने यहभी निश्चय किया कि रामके निकट विरोधबुद्धिसे जानाही उचित है क्योंकि जगदीश्वर भक्तिसे शीघ्र प्रसन्न नहीं होते ॥ ६१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकांडे भाषाटीकायां पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

भस्मीकुर्यान्नसंदेहइतिभातिममप्रभो ॥ यदिसातवभार्यास्यात्सफलंतवजीवितम् ॥ ५४ ॥ अतोयतस्वराजेंद्रयथातेवल्लभाभवेत् ॥ सीताराजीवपत्राक्षीसर्वलोकैकसुंदरी॥५५॥साक्षाद्रामस्यपुरतःस्थातुंत्वंनक्षमःप्रभो ॥ माययामोहयित्वातुप्राप्स्यसेतांरघूत्तमम् ॥५६॥ श्रुत्वातत्सूक्तवाक्यैश्चदानमानादिभिस्तथा ॥ आश्वास्यभगिनींराजाप्रविवेशस्वकंगृहम् ॥ तत्रचिंतापरोभूत्वानिद्रांरात्रौनलब्धवान् ॥ ॥ ५७ ॥ एकेनरामेणकथंमनुष्यमात्रेणनष्टःसबलःखरोमे ॥ भ्राताकथंमेबलवीर्यदर्पयुतोविनष्टोबतराघवेण ॥ ५८ ॥ यद्वानरामोमनुजःपरेशोमांहंतुकामःसबलंबलौघैः॥ संप्रार्थितोऽयंद्रुहिणेनपूर्वंमनुष्यरूपोऽद्यरघोःकुलेऽभूत्॥५९॥वध्योयदिस्यांपरमात्मनाऽहंवैकुंठराज्यंपरिपालयेऽहम् ॥ नोचेदिदंराक्षसराज्यमेवभोक्ष्येचिरंराममतोव्रजामि ॥६०॥ इत्थंविचिंत्याखिलराक्षसेंद्रोरामंविदित्वापरमेश्वरंहरिम्॥विरोधबुद्ध्यैवहरिंप्रयामिद्रुतंनभक्त्याभगवान्प्रसीदेत् ॥६१॥ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेऽरण्यकांडेपंचमःसर्गः ॥५॥

रावणका मारीचके पास जाना। बुद्धिमान् रावणने रात्रिके समय इस प्रकारकी चिन्ता करके, रामके हाथसेही मृत्यु उत्तम है। यह निश्चय कर प्रभात होतेही रथपर चढ समुद्रके दूसरी पार मारीचके स्थानको गया; वहाँ जटा वल्कल धारण किये मुनियोंकासा वेष बनाये मारीच ॥ १ ॥ २ ॥ हृदयमें निर्गुण गुण भासक परमात्माका ध्यान कर रहाथा, मारीचनें समाधि पूर्ण करकै अपने गृहमें रावणको आये हुए देखा ॥ ३ ॥ तत्कालही उठकर रावणको भेंटा; और यथाविधिसे पूजा व सत्कार किया। जब रावण सुखसे बैठ गया तब मारीच बोला ॥ ४ ॥ "हे रावण ! आप अकेलेही रथपर चढ़कर यहांपर आये हैं, और हृदयमें मानो किसी बड़े भारी कार्यका विचार कर रहे हैं ॥ ५ ॥ जो छिपाने योग्य न होवे तौ प्रगट कर दीजिये। हे राजेन्द्र ! जो उस कार्यके करनेसे मुझको पाप न लगैगा; जो वह कार्य न्यायानुसार होगा; तौ मैं आपका प्रियकार्य सिद्ध करूंगा।" ॥ ६ ॥ रावण बोला; "अयोध्याके महाराज दशरथ नामक एक राजाथे, सत्यपराक्रमी राम उनका ज्येष्ठ पुत्र है ॥ ७ ॥ राजाने उन मुनियोंके प्यारे रामचन्द्रको भार्या और उनके भ्राता लक्ष्मणके साथ उनको निकालदिया ॥ ८ ॥ वही राम घोर पंचवटीवनमें आश्रम बनायकर विराजमान हैं। संसारको मोहनेवाली विशाल नेत्रयुक्त सीता उनकी भार्या है ॥ ९ ॥ राम विनाअपराधही मेरे भयंकर विक्रमकारी

विचिंत्यैवंनिशायांसप्रभातेरथमास्थितः ॥ रावणोमनसाकार्यमेकंनिश्चित्यबुद्धिमान् ॥ १ ॥ ययौमारीचसदनंपरंपारमुदन्वतः ॥ मारीचस्तत्रमुनिवज्जटावल्कलधारकः ॥ २ ॥ ध्यायन्हृदिपरात्मानंनिर्गुणंगुणभासकम् ॥ समाधिविरमेऽपश्यद्रावणंगृहमागतम् ॥ ३ ॥ द्रुतमुत्थायचालिंग्यपूजयित्वायथाविधि ॥ कृतातिथ्यंसुखासीनंमारीचोवाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥ समागमनमेतत्तेरथेनैकेनरावण ॥ चिंतापरइवाभासिहृदिकार्यंविचिंतयन् ॥ ५ ॥ ब्रूहिमेनहिगोप्यंचेत्करवाणितवप्रियम् ॥ न्याय्यंचेद्ब्रूहिराजेंद्रवृजिनंमांस्पृशेन्नहि ॥ ६ ॥ रावणउवाच ॥ अस्तिराजादशरथःसाकेताधिपतिःकिल ॥ रामनामासुतस्तस्यज्येष्ठःसत्यपराक्रमः ॥ ७ ॥ विवासयामाससुतंवनंवनजनप्रियम् ॥ भार्ययासहितंभ्रात्रालक्ष्मणेनसमन्वितम् ॥ ८ ॥ सआस्तेविपिनेघोरेपंचवट्याश्रमेशुभे ॥ तस्यभार्याविशालाक्षीसीतालोकविमोहिनी ॥ ९ ॥ रामोनिरपराधान्मेराक्षसान्भीमविक्रमान् ॥ खरंचहत्वाविपिनेसुखमास्तेऽतिनिर्भयः ॥ १० ॥

चौदहहजार राक्षसोंको खरके सहित मारकर निडरहो वनमें रहतेहैं ॥ १० ॥ मेरी बहन शूर्पणखानेभी उनका कोई अनभल नहींकिया; तौभी दुरात्मा रामने उसके नाक कान काटडाले, अब निडरहो वनमें रहताहै ॥ ११ ॥ जो तुम हमारी सहायता करोगे तौ मैं वनमें जायकर–जिससमय राम वनमें नहीं होगा उससमय उनकी प्राणप्यारी जानकी हर लेआऊंगा ॥ १२ ॥ जब तुम मायामृग बनकर राम और लक्ष्मणको आश्रमसे दूर लेजाओगे, तब मैं सीताको हरण करूंगा ॥ १३ ॥ तुम हमारी सहायता करके पहले के समान फिर अपने आश्रममें रहना । ” रावणको यह कहता हुआ देख कर मारीच विस्मयसहित बोला ॥ १४ ॥ “यह सत्यानाशी बात तुम्हें किसने सिखाई है ? जो पुरुष इसप्रकारसे तुम्हारे नाश करानेकी वासना करता है, वह तुम्हारा निश्चय शत्रु होनेसे वध करने योग्यहै ॥ १५ ॥ हे रावण ! रामचंद्रका पराक्रम याद करके अबभी मेरा चित्त विकलहै। बालकपनमें विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाकरनेको तपोवनमें श्रीरामचंद्रजीने ॥ १६ ॥ आकर एकही बाणसे मुझको शतयोजन (४०० कोश) पर समुद्रमें फेंक दिया। तबसेही भयके मारे विह्वलहो ॥ १७ ॥ हे रावण रामके उसकार्यको सदा याद करके चारों ओर रामहीराम देखताहूं ॥ १८ ॥ एकसमय मैं पहला वैर सँभार अपने समान राक्षसोंको साथ ले तीखे शींगवाले मृगका रूप धारणकर दण्डकवनमें गयाथा ॥ १९ ॥ जब मैं बड़ी जल्दबाजीसे

भगिन्यामेशूर्पणख्यानिर्दोषायाश्चनासिकाम् ॥ कर्णौचिच्छेददुष्टात्मावनेतिष्ठतिनिर्भयः ॥ ११ ॥ अतस्त्वयासहायेनगत्वातत्प्राणवल्लभाम् ॥ आनयिष्यामिविपिनेरहितेराघवेणताम् ॥ १२ ॥ त्वंतुमायामृगोभूत्वाह्याश्रमादपनेष्यसि ॥ रामंचलक्ष्मणंचैवतदासीतांहराम्यहम् ॥ १३ ॥ त्वंतुतावत्सहायंमेकृत्वास्थास्यासिपूर्ववत् ॥ इत्येवंभाषमाणंतंरावणंवीक्ष्यविस्मितः ॥ १४ ॥ केनेदमुपदिष्टंतेमूलघातकरंवचः ॥ सएवशत्रुर्वध्यश्चयस्त्वन्नाशंप्रतीक्षते ॥ १५ ॥ रामस्यपौरुषंस्मृत्वाचित्तमद्यापिरावण ॥ बालोऽपिमांकौशिकस्ययज्ञसंरक्षणायसः ॥ १६ ॥ आगतस्त्विषुणैकेनपातयामाससागरे ॥ योजनानांशतंरामस्तदादिभयविह्वलः ॥ १७ ॥ स्मृत्वास्मृत्वातदेवाहंरामंपश्यामिसर्वतः ॥ १८ ॥ दंडकेऽपिपुनरप्यहंवनेपूर्ववैरमनुचिंतयन्हादि ॥ तीक्ष्णशृंगमृगरूपमेकदामादृशैर्बहुभिरावृतोऽभ्ययाम् ॥ १९ ॥ राघवंजनकजासमन्वितंलक्ष्मणेनसहितंत्वरान्वितः ॥ आगतोऽहमथहंतुमुद्यतोमांविलोक्यशरमेकमाक्षिपत् ॥ २० ॥

सीता और लक्ष्मणके सहित रामको मारडालनेके लिये तैयार हुआ तब रामचंद्रने मेरे ऊपर बाण चलाया ॥ २० ॥ हे राक्षसनाथ ! उस बाणसे मेरा हृदय विंधगया, और मैं रुधिर उगलता हुआ समुद्रमें गिरा । तबसे भय पीड़ित अंतःकरण हो मैं;—इस निर्भय स्थान में आश्रम बनायकर समय विताताहूं ॥ २१ ॥ भोगकरनेके योग्य, राज्य, रत्न, रमणी, रथादिका नाम श्रवणकरतेही रामचंद्रका पहला अक्षर " र." मनमें याद आजानेंसे महाभीत हो मैं रामहीका ध्यान करताहूं ॥ २२ ॥ "राम इसस्थानमें आये हैं " इस शंकासे मैंने बाहरी समस्त कार्योंको छोड़दिया है; निद्रित होने पर स्वप्नमें रामको देखताहूं ॥ २३ ॥ जागनेपर डरके मारे स्वप्नमें देखे रामचंद्रका ध्यान नहीं विसरता, इसकारण हे रावण ! आपभी रामचन्द्रके प्रति क्रोध छोड़कर घरको लौटजाओ; बहुतकालसे बढ़कर आतेहुए राक्षसोंके कुलकी रक्षाकरो, रामसे वैर न करो, वैर करोगे तौ सबका नाश हो जायगा ॥ २४ ॥ मेरे हित वचन मानो, परमात्मा रामचंद्रमें विरोधबुद्धि न करो; वरन भक्तिभावसे उनका भजन करो; वे रघुनंदन परम करुणामय हैं ॥२५॥ मैंने महामुनि नारदजीके मुखसे सुनाहै कि "सत्ययुगमें ब्रह्माजीनें विष्णुके निकट प्रार्थना करनेसे भगवान् हरिने कहा,"तुम्हारी क्या वाञ्छा है सो कहो मैं उसको पूर्ण करूंगा" ॥ २६ ॥ ब्रह्माजीने कहा " हे हरे ! हे अरविन्दलोचन ! आप मनुष्यरूप धारणकरके दशरथजीके यहाँ पुत्रहो,

तेनविद्धहृदयोऽहमुद्भ्रमन्राक्षसेंद्रपतितोऽस्मिसागरे ॥ तत्प्रभृत्यहमिदंसमाश्रितःस्थानमूर्जितमिदंभयार्दितः ॥२१॥ राममेवसततंविभावयेभीतभीतइवभोगराशितः ॥ राजरत्नरमणीरथादिकंश्रोत्रयोर्यदिगतंभयंभवेत् ॥ २२ ॥ रामआगतइहेतिशंकयाबाह्यकार्यमपिसर्वमत्यजम् ॥ निद्रयापरिवृतोयदास्वपेराममेवमनसाऽनुचिंतयन् ॥ २३ ॥ स्वप्नदृष्टिगतराघवंतदाबोधितोविगतनिद्रआस्थितः ॥ तद्भवानपिविमुच्यचाग्रहंराघवंप्रतिगृहंप्रयाहिभो ॥ रक्षराक्षसकुलंचिरागतंतत्स्मृतौसकलमेवनश्यति॥२४॥ तवहितंवदतोममभाषितंपरिगृहाणपरात्मनिराघवे ॥ त्यजविरोधमतिंभजभक्तितःपरमकारुणिकोरघुनंदनः ॥ २५ ॥ अहमशेषमिदंमुनिवाक्यतोऽशृणवमादियुगेपरमेश्वरः॥ ब्रह्मणाऽर्थितउवाचतंहरिःकिंतवेप्सितमहंकरवाणितत् ॥ २६ ॥ ब्रह्मणोक्तमरविंदलोचनत्वंप्रयाहिभुविमानुषंवपुः ॥ दशरथात्मजभावमंजसाजहिरिपुंदशकंधरंहरे ॥ २७ ॥

पृथ्वीपर अवतार ले शीघ्र हमारे शत्रु रावणका नाश कीजिये ॥ २७ ॥ इससे राम मनुष्य नहीं, साक्षात् अविनाशी नारायण हैं; मायासे मनुष्यरूप धारणकर निर्भयहो वनमें आए हैं ॥ २८ ॥ उन्होंनें पृथ्वीका भार उतारने को अवतार लियाहै । इसकारण, हे तात ! तुम भले २ घरको लौटजाओ" मारीचके वचन सुनकर रावणने कहा,–॥ २९ ॥ "जो राम परमात्मा ईश्वरहो, और मेरा विनाश करनेके लिये ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर मनुष्य अवतार ले यत्न सहित यहाँपर आये हैं ॥ ३० ॥ तौ वह शीघ्रही अपना संकल्प सिद्ध करैंगे । इसकारण मैं यत्नके सहित श्रीरामचन्द्रजीके निकटसे सीताको लाऊंगा ॥ ३१ ॥ हे वीर ! जो रामके साथ संग्राम करनेमें मेरी मृत्यु होजाय; तौ मैं श्रेष्ठ पदको प्राप्त करूंगा । नहीं तौ रामको रणमें

अतोनमानुषोरामःसाक्षान्नारायणोऽव्ययः ॥ मायामानुषवेषेणवनंयातोऽतिनिर्भयः ॥ २८ ॥ भूभारहरणार्थायगच्छताततगृहंसुखम् ॥ श्रुत्वामारीचवचनंरावणःप्रत्यभाषत ॥ २९ ॥ परमात्मायदारामःप्रार्थितोब्रह्मणाकिल ॥ मांहंतुंमानुषोभूत्वायत्नादिहसमागतः ॥३०॥ करिष्यत्यचिरादेवसत्यसंकल्पईश्वरः ॥ अतोऽहंयत्नतःसीतामानेष्याम्येवराघवात् ॥ ३१ ॥ वधेप्राप्तेरणेवीरप्राप्स्यामिपरमंपदम् ॥ यद्वारामंरणेहत्वासीतांप्राप्स्यामिनिर्भयः ॥ ३२ ॥ अतोत्तिष्ठमहाभागविचित्रमृगरूपधृक् ॥ रामंसलक्ष्मणंशीघ्रमाश्रमादतिदूरतः ॥ ॥ ३३ ॥ आक्रम्यगच्छत्वंशीघ्रंसुखंतिष्ठयथापुरा ॥ अतःपरंचेद्यत्किंचिद्भाषसेमद्विभीषणम् ॥ ३४ ॥ हनिष्याम्यसिनाऽनेनत्वामत्रैवनसंशयः ॥ मारीचस्तद्वचःश्रुत्वास्वात्मन्येवानुचिंतयत् ॥ ३५ ॥ यदिमांराघवोहन्यात्तदामुक्तोभवार्णवात् ॥ मांहन्याद्यदिचेद्दुष्टस्तदामेनिरयोध्रुवम् ॥ ३६ ॥ इतिनिश्चित्यमरणंरामादुत्थायवेगतः ॥ अब्रवीद्रावणंराजन्करोम्याज्ञांतवप्रभो ॥ ३७ ॥

संहारकर निर्भयहो जानकीको पाऊंगा ॥ ३२ ॥ इसकारण हे महाभाग ! उठो, चित्र विचित्र मृगरूप धारण करके राम और लक्ष्मणको आश्रमसे दूर ले जाओ ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त फिर पूर्वकालके समान अपने आश्रममें विराजमान होवो । इसके आगे जो मुझे भयका उपजानेवाला वचन कहोगे ॥ ३४ ॥ तौ इस खड्गसे अभी तुमको मार डालूंगा; इसमें कोईभी सन्देह नहीं है । " रावणके वचन सुनकर मारीचने मनही मन विचारा ॥ ३५ ॥ जो रामचन्द्र हमको मार डालेंगे तौ भवसागरसे हमारी मुक्ति होजायगी; और जो रावण मुझको मारडालेगा तौ हमें निश्चय नरककी प्राप्ति होगी ॥ ३६ ॥ इसप्रकार रामके हाथसे मृत्युहोनाही श्रेष्ठ निश्चयकर अति शीघ्रतासे उठ मारीचने रावणसें कहा, " हेराजन् ! हे प्रभो ! मैं

इत्युक्त्वारथमास्थायगतौरामाश्रमंप्रति ॥ शुद्धजांबूनदप्रख्योमृगोऽभूद्रौप्यबिंदुकः ॥ ३८ ॥ रत्नशृंगोमणिखुरोनीलरत्नविलोचनः ॥
विद्युत्प्रभोविमुग्धास्योविचचारवनांतरे ॥ ३९ ॥ रामाश्रमपदस्यांतेसीतादृष्टिपथेचरन् ॥ ४० ॥ क्षणंचधावत्यवतिष्ठतेक्षणंसमी
पमागत्यपुनर्भयावृतः ॥ एवंसमायामृगवेषरूपधृक्चचारसीतांपरिमोहयन्खलः ॥ ४१ ॥ ॥इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसं
वादेऽरण्यकांडेषष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥ ॥ अथरामोऽपितत्सर्वंज्ञात्वारावणचेष्टितम् ॥ उवाचसीतामेकांतेशृणुजानकिमेवचः ॥ १ ॥
रावणोभिक्षुरूपेणआगमिष्यतितेंऽतिकम् ॥ त्वंतुच्छायांत्वदाकारांस्थापयित्वोटजेविश ॥ २ ॥ अग्नावदृश्यरूपेणवर्षंतिष्ठममाज्ञया ॥
रावणस्यवधांतेमांपूर्ववत्प्राप्स्यसेशुभे ॥ ३ ॥ श्रुत्वारामोदितंवाक्यंसाऽपितत्रतथाकरोत् ॥ मायासीतांबहिःस्थाप्यस्वयमंतर्दधेऽनले
॥ ४ ॥ मायासीतातदापश्यन्मृगंमायाविनिर्मितम् ॥ हसंतीराममभ्येत्यप्रोवाचविनयान्विता ॥ ५ ॥

आपकी आज्ञाका पालन करूंगा” ॥ ३७ ॥ यह कहकर रथपर सवारहो रावण और मारीच दोनों श्रीरामचंद्रजीके आश्रममें गये । फिर मारीचने एक अद्भुत मृगका रूप धारण किया, इसमृगका वर्ण सुवर्णके समान, शरीरपर चांदीके बिंदु विराजमान ॥ ३८ ॥ रत्नोंके सींग, मणियोंके खुर, नेत्र नीले रत्नके बनेहुए, उसकी प्रभा बिजलीके समान, और वदन अत्यन्त सुन्दर है; इसप्रकार मृगका रूप धारणकर वनके बीच विचरण करताहुआ ॥ ३९ ॥ इसप्रकार वनमें घूमताहुआ वह मृग सीताके दृष्टिमें पड़ रामाश्रमके समीप घूमने लगा ॥ ४० ॥ यह मृग कभी दौड़ताहै, कभी निकट आन कर ठिटक रहताहै, इसप्रकार खल मारीच राक्षस सीताजीको मोह उपजानेलगा ॥ ४१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वर संवादे आरण्यकांडे भाषाटीकायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ सीताहरण और गृध्रमरण । इसके उपरांत श्रीरामचंद्रजीभी रावणका सब कर्म जानकर एकान्तमें जानकीजीसे बोले, “हे जानकि! हमारी बात सुनो ॥ १ ॥ रावण भिक्षुकका रूप धारणकरके तुम्हारे निकट आवैगा; परन्तु तुम अपने आकारकी समान छाया कुटीमें विराजमान करो ॥ २ ॥ मेरी आज्ञासे तुम अग्निमें प्रवेशकरके वहाँ एकवर्षतक गुप्तभावसे रहो; हे शुभे! रावणका वध करनेके पीछे तुम फिर पहलेके समान हमको प्राप्तहोगी । ” ॥ ३ ॥ रामचंद्रके वचन सुनकर जानकीने वैसाही किया । मायाकी सीता बाहर रखकर आप अग्निमें अन्तर्हित होगई ॥ ४ ॥ उसीसमय मायाकी सीताने एक मायाका बना मृग देखकर हँसते २ श्रीरामचंद्रजीके निकट

आयकर विनयके सहित कहा ॥ ५ ॥ "हे राम ! देखिये ! कैसा अद्भुत रत्नविभूषित कनकमृग निडर होकर घूम रहा है; इसके शरीरमें चित्र विचित्र विन्दुभी विराजमान हैं ॥ ६ ॥ आप इस मृगको बांधकर मुझेदे दीजिये। इस सुन्दर मृगके साथ मैं खेला करूंगी।" रामचंद्र यह बात अंगीकारकर धनुषबाण हाथमें ले चलनेके समय लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ७ ॥ "तुम यत्नके सहित हमारी प्राणप्रिया सीताकी रक्षा करना; क्योंकि इस वनमें घोररूपी माया जाननेवाले राक्षस रहते हैं ॥ ८ ॥ इस कारण इस स्थानमें सावधान होकर अनिन्दिता पतिव्रता सीताकी रक्षा करना।" लक्ष्मणजी बोले; "देव ! जो देखतेहो यह मृग नहीं, मृगरूपधारी मारीच है इसमें कोई संदेह नहीं; रत्नविभूषित सुवर्णका मृग कहांसे आया ?" ॥ ९ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले; "जो यह मृग मारीच होगा, तौ निश्चयही इसका विनाश करूंगा, और जो यथार्थ मृग होगा तौ उसे सीताके खेलनेको ले आऊंगा ॥ १० ॥ मैं अतिशीघ्रतासे जाय मृगको बांधकर ले आऊंगा; तुम यत्नके साथ सीताकी रक्षामें कमर बांध यहाँपर ठहरे रहो।" श्रीरामचंद्रजी यह कहकर मृगके पीछे गये। लोकविमोहनी जगत्‌मोहिनी माया जिनके आश्रयमें रहती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ वही निर्विकार ज्ञानमय पूर्णब्रह्म हरिणके पीछे गये;—इससे यह बात प्रमाण हुई कि "भगवान हरि भक्तवत्सल हैं"॥ १३ ॥ क्योंकि "यह मृग नहीं मारीच है" इस बातको जानकरभी सीताका प्रियकार्य करनेको मृगके पीछे श्रीरामचंद्रजी धाये। जो ऐसा न होता तौ पूर्णमनोरथ वि

पश्यराममृगंचित्रंकानकंरत्नभूषितम् ॥ विचित्रविंदुभिर्युक्तंचरंतमकुतोभयम् ॥ ६ ॥ बद्ध्वादेहिममक्रीडामृगोभवतुसुंदरः ॥ तथेति धनुरादायगच्छँल्लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ७ ॥ रक्षत्वमतियत्नेनसीतांमत्प्राणवल्लभाम् ॥ मायिनःसंतिविपिनेराक्षसाघोरदर्शनाः ॥ ८ ॥ अतोऽत्रावहितःसाध्वींरक्षसीतामनिंदिताम् ॥ लक्ष्मणोराममाहेदंदेवायंमृगरूपधृक् ॥ मारीचोऽत्रनसंदेहएवंभूतोमृगःकुतः ॥ ९ ॥ श्रीराम उवाच ॥ यदिमारीचएवायंतदाहन्मिनसंशयः॥मृगश्चेदानयिष्यामिसीताविश्रामहेतवे॥ १०॥गमिष्यामिमृगंबद्ध्वाह्यानयिष्यामिसत्वरः॥ त्वंप्रयत्नेनसंतिष्ठसीतासंरक्षणोद्यतः॥ ११॥इत्युक्त्वाप्रययौरामोमायामृगमनुद्रुतः॥मायायदाश्रयालोकमोहिनीजगदाकृतिः॥ १२॥निर्विकारश्चिदात्माऽपिपूर्णोऽपिमृगमन्वगात् ॥ भक्तानुकंपीभगवानितिसत्यंवचोहरिः॥ १३॥कर्तुंसीताप्रियार्थायजानन्नपिमृगंययौ ॥ अन्यथा पूर्णकामस्यरामस्याविदितात्मनः ॥ १४ ॥

दितस्वरूप ॥ १४ ॥ परमात्मा रामचंद्रजीको मृग या स्त्री में क्या प्रयोजन?। इसके उपरान्त कभी मायामृग निकट चला आता है, कभी उनकी दृष्टिसे छिपजाता है ॥ १५ ॥ और कभी दूरसे दिखाई देता है; इस प्रकारसे रामचंद्रजीको बहुत दूरतक लिवा लेगया;—इसके उपरान्त रामनेंभी यह जानकर कि "यह निश्चय राक्षस है" ॥ १६ ॥ यह विचार बाण ग्रहणकर मृगरूपी राक्षसको वींध डाला; तब मारीचने मृगरूप छोड़ अपना पहला राक्षसीरूप बनाय लिया ॥ १७ ॥ उसके मुखसे रुधिर निकलने लगा, इसके उपरान्त मारीचने ऊंचे स्वरसे "हाय मैं मारा गया ! हे महावीर लक्ष्मण ! हमारी शीघ्र रक्षाकरो।" यह वचन रामचंद्रजीकी तरह कहकर प्राण छोड़ दिया ॥ १८ ॥ पार्वतीजीसे शिवजी कहते हैं; कि मूर्ख पुरुषभी मरणके समय रामका नाम लेनेसे रामसमान रूपको प्राप्त होता है; मारीच रामचंद्रजीको देखते २ उनके बाणसे मृतकहो, जो रामरूपको प्राप्त कर लेगा तौ इसमें कहनाही क्या है? ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त उसकी देहसे एक तेज निकलकर श्रीरामचंद्रजीके शरीरमें प्रवेश करगया। देवता लोग इस चरित्रको देखकर बड़े विस्मित हुए ॥ २० ॥ "मुनिहिंसक पापीको किस कार्यके करनेसे क्या पद प्राप्त हुआ है! अथवा रामचंद्रजीकी महिमाही ऐसी है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २१ ॥ पहले रामचंद्रजीके बाणसे विद्ध हो मारीच, डरके मारे गृह वित्तादि समस्तको छोड़कर सदा रामचंद्रजीका स्मरण करते २ ॥ २२ ॥ हृदयमें सदाही रामजीका ध्यान

मृगेणवास्त्रियावाऽपिकिंकार्यंपरमात्मनः ॥ कदाचिद्दृश्यतेऽभ्याशेक्षणंधावतिलीयते ॥ १५ ॥ दृश्यतेचततोदूरादेवंराममपाहरत् ॥ ततो
रामोऽपिविज्ञायराक्षसोऽयमितिस्फुटम् ॥ १६ ॥ विव्याधशरमादायराक्षसंमृगरूपिणम् ॥ पपातरुधिराक्तास्योमारीचःपूर्वरूपधृक् ॥ १७ ॥
हाहतोऽस्मिमहावाहोत्राहिलक्ष्मणमांद्रुतम् ॥ इत्युक्त्वारामवद्वाचापपातरुधिराशनः ॥ १८ ॥ यन्नामाज्ञोपिमरणेस्मृत्वातत्साम्यमाप्नुयात् ॥
किमुताग्रेहरिंपश्यंस्तेनैवनिहतोऽसुरः ॥ १९ ॥ तद्देहादुत्थितंतेजःसर्वलोकस्यपश्यतः ॥ राममेवाविशद्देवाविस्मयंपरमंययुः ॥ २० ॥
किंकर्मकृत्वाकिंप्राप्तःपातकीमुनिहिंसकः ॥ अथवाराघवस्यायंमहिमानात्रसंशयः ॥ २१ ॥ रामवाणेनसंविद्धःपूर्वंराममनुस्मरन् ॥ भया
त्सर्वंपरित्यज्यगृहवित्तादिकंचयत् ॥ २२ ॥ हृदिरामंसदाध्यात्वानिर्धूताशेषकल्मषः ॥ अंतेरामेणनिहतःपश्यन्राममवापसः ॥ २३ ॥

करनेसे पापरहित होगया था; इसकारण अंतकालमें रामचंद्रजीके द्वारा मारा जायकर रामको देखते २ रामकी समानताको प्राप्त हुआहै ॥ २३ ॥ ब्राह्मण हो, राक्षस हो, पापी हो, वा धार्मिक हो, रामका नाम लेकर शरीर त्याग करनेसे वह अवश्यही मुक्तिको प्राप्त करैगा।" ॥ २४ ॥ देवता लोग परस्पर इस प्रकारसे बात चीत कर स्वर्गको चलेगये; राक्षसोंमें नीच मारीचने मृत्युकालमें, "हा लक्ष्मण" कहकर मेरीसी पुकार कैसे की? इस प्रकारसे रामचंद्रजी विचारने लगे। जानकीजी हमारी वाणीके समान यह करुणासहित स्वर श्रवण करके न जाने कितनी व्याकुल होगी? ॥ २५ ॥ २६ ॥ रामचंद्रजी इस प्रकारकी चिन्ता करते २ लौटते हुए; इस ओर सीताजीने दुरात्मा मारीचका यह वचन

द्विजोवाराक्षसोवापिपापीवाधार्मिकोऽपिवा ॥ त्यजन्कलेवरंरामंस्मृत्वायातिपरंपदम् ॥२४॥ इतितेऽन्योन्यमाभाष्यततोदेवादिवंययुः ॥ रामस्तांचिंतयामाससम्रियमाणोऽसुराधमः ॥ २५ ॥ हालक्ष्मणेतिमद्वाक्यमनुकुर्वन्ममारकिम् ॥ श्रुत्वामद्वाक्यसदृशंवाक्यंसीताऽपिकिंभवेत् ॥ २६ ॥ इतिचिंतापरीतात्मारामोदूराद्न्यवर्तत ॥ सीतातद्भाषितंश्रुत्वामारीचस्यदुरात्मनः ॥ २७ ॥ भीताऽतिदुःखसंविग्नालक्ष्मणंत्विदमब्रवीत् ॥ गच्छलक्ष्मणवेगेनभ्राताते‌ऽसुरपीडितः ॥ २८ ॥ हालक्ष्मणेतिवचनंभ्रातुस्तेनशृणोषिकिम् ॥ तामाहलक्ष्मणोदेविरामवाक्यंनतद्भवेत् ॥ २९ ॥ यःकश्चिद्राक्षसोदेविम्रियमाणोऽब्रवीद्वचः ॥ रामस्त्रैलोक्यमपियःक्रुद्धोनाशयतिक्षणात् ॥ ३० ॥ सकथंदीनवचनंभाषतेऽमरपूजितः ॥ क्रुद्धालक्ष्मणमालोक्यसीतावाष्पविलोचना ॥ ३१ ॥ प्राहलक्ष्मणदुर्बुद्धेभ्रातुर्व्यसनमिच्छसि ॥ प्रेषितोभरतेनैवरामनाशाभिकांक्षिणा ॥ ३२ ॥ मांनेतुमागतोऽसित्वंरामनाशउपस्थिते ॥ नप्राप्स्यसेत्वंमामद्यपश्यप्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥३३॥

सुनकर ॥ २७ ॥ भीत और दुःखित हो लक्ष्मणजीसे कहा;—"हेलक्ष्मण! शीघ्र जाओ; तुम्हारे भइया राक्षससे पीड़ित हुएहैं ॥ २८ ॥ क्या तुम उनका "हा लक्ष्मण!" वाक्य नहीं सुनते। लक्ष्मणजी बोले,—"हे देवि! वह कभी रामका वाक्य नहीं है ॥ २९ ॥ किसी राक्षसने मृत्युकालमें यह वचन कहा है; जो रामचंद्रजी क्रोध करके एक क्षणभरमें त्रिलोकीका विनाश करनेकी सामर्थ्य रखते हैं ॥ ३० ॥ वह देवपूजित रामचंद्र कातर वचन काहेको कहैंगे?" लक्ष्मणजीके वचन सुन आंखोंमें आंसूभर क्रोधित हो जानकीजी ॥ ३१ ॥ बोलीं, "रे दुर्बुद्धे लक्ष्मण! तुम भ्राताके विपदमें पड़नेकी कामना करतेहो? तुम रामका विनाश चाहनेवाले भरतके भेजे हुएहो ॥ ३२ ॥ रामका नाश होनेके पीछे हम

को ग्रहण करनेके लिये तुम वनमें आएहो; परन्तु यह निश्चय जानो कि विपद आनेपर तुम कभी हमें ग्रहण नहीं कर सकते,–यह देखो ! मैं अभी प्राण छोड़तीहूं ॥ ३३ ॥ श्रीराम नहीं जानते हैं कि तुम उनकी भार्याको हरण करना चाहतेहो। तुम यह भी जान रक्खो कि मैं रामके सिवाय तुम्हें या भरतको किसीको नहीं छुऊंगी ॥ ३४ ॥ यह कहकर वह अपने दोनों हाथोंसे छाती कूट २ कर रोने लगीं । लक्ष्मणजीने यह सुन दोनों हाथोंसे अपने दोनों कान मूंद लिये,– और दुःखित हो ॥ ३५ ॥ कहा, " हे चंडि ! तुम हमको ऐसे दुर्वाक्य कहरहीहो; तुमको धिक्कार है ! मैं जानताहूं कि तुम्हारी बुद्धिका इस प्रकार भ्रष्ट होना किसी अनभलके हेतु होगा " यह कह वनदेवी और वनदेवताओंके निकट जानकीको

नजानातीदृशंरामस्त्वांभार्याहरणोद्यतम् ॥ रामादन्यंनस्पृशामित्वांवाभरतमेववा ॥३४॥ इत्युक्त्वावध्यमानासास्वबाहुभ्यांरुरोदह ॥
तच्छ्रुत्वालक्ष्मणःकर्णौपिधायातीवदुःखितः ॥ ३५ ॥ मामेवंभाषसेचंडिधिक्त्वांनाशमुपैष्यसि ॥ इत्युक्त्वावनदेवीभ्यःसमर्प्यजनकात्मजाम् ॥३६॥ ययौदुःखातिसंविग्नोराममेवशनैःशनैः ॥ ततोऽतरंसमालोक्यरावणोभिक्षुवेषधृक् ॥ ३७ ॥ सीतासमीपमगमत्स्फुरद्दंडकमंडलुः ॥ सीतातमवलोक्याशुनत्वासंपूज्यभक्तितः ॥ ३८ ॥ कंदमूलफलादीनिदत्त्वास्वागतमब्रवीत् ॥ मुनेभुंक्ष्वफलादीनिविश्रमस्वयथासुखम् ॥ ३९ ॥ इदानीमेवभर्तामेह्यागमिष्यतितेप्रियम् ॥ करिष्यतिविशेषेणतिष्ठत्वंयदिरोचते ॥ ४० ॥ भिक्षुरुवाच ॥
कात्वंकमलपत्राक्षिकोवाभर्तातवानघे ॥ किमर्थमत्रतेवासोवनेराक्षससेविते ॥ ब्रूहिभद्रेततःसर्वंस्ववृत्तांतंनिवेदये ॥ ४१ ॥

सौंप ॥ ३६ ॥ अत्यन्तदुःखितचित्तसे धीरे २ रामजीके समीप गये । इसके उपरान्त अवसर पाय संन्यासीका वेष धारण किये रावण ॥ ३७ ॥ दंडकमंडलु चमकाय सीताजीके समीप गया, सीताजीने भिखारीको आयाहुआ देख शीघ्रही नमस्कार व पूजन करकै ॥ ३८ ॥ भक्तिपूर्वक कंद मूल फलादि दे पूंछा कि " तुम्हारा भला आगमन हुआ । " फिर यह कहा " हे मुने ! आप यह फलादि भोजन करैं; और इच्छा हो तौ सुखसहित इस स्थानमें विश्राम करो ॥ ३९ ॥ शीघ्रही हमारे स्वामी आयकर आपका विशेष प्रिय करैंगे अब जबतक आपकी रुचिहो तब तक इस स्थानमें ठहरिये" ॥ ४० ॥ भिखारी बोला; "हे कमलदललोचने ! तुम कौन हो ? तुम्हारे स्वामी कौन हैं ? हे अनघे ! तुम किस कारणसे

इस राक्षसयुक्त वनमें वास करतीहो ? हे भद्रे ! अपना यह सब वृत्तान्त विस्तार सहित मुझसे वर्णन करो। " ॥ ४१ ॥ सीताजीने कहा " अयोध्याके महाराज श्रीमान् दशरथजीके बड़े पुत्र सर्वगुणाकर श्रीरामचंद्रजीकी ॥ ४२ ॥ मैं जनककुमारी भार्या हूं, उनके छोटे भ्राता लक्ष्मण हैं; जो कि अपने बड़े भ्राताको प्यारे हैं ॥ ४३ ॥ हमारे स्वामी अपने पिताकी आज्ञासे चौदह वर्षतक दंडकवनमें वास करनेके लिए आये हैं ?आप कौनहैं यह जाननेकी मुझको बड़ी इच्छा हुई है; इस कारण आप अपना नाम धाम बतावें" ॥ ४४ ॥ भिखारीने उत्तर दिया कि। " मैं पौलस्त्यका पुत्र राक्षसोंका राजा रावणहूं—तुम्हारी सुन्दरताईसे मोहित होकर तुमको अपने नगरीमें ले जानेके लिये आयाहूं ॥ ४५ ॥

सीतोवाच ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमान्राजादशरथोमहान् ॥ तस्यज्येष्ठःसुतोरामःसर्वलक्षणलक्षितः ॥ ४२ ॥ तस्याहंधर्मतःपत्नीसीताजनकनंदिनी ॥ तस्यभ्राताकनीयांश्चलक्ष्मणोभ्रातृवत्सलः ॥ ४३ ॥ पितुराज्ञांपुरस्कृत्यदंडकेवस्तुमागतः ॥ चतुर्दशसमास्त्वांतु ज्ञातुमिच्छामिमेवद ॥ ४४ ॥ भिक्षुरुवाच ॥ पौलस्त्यतनयोऽहंतुरावणोराक्षसाधिपः ॥ त्वत्कामपरितप्तोऽहंत्वांनेतुंपुरमागतः ॥४५॥ मुनिवेषेणरामेणकिंकरिष्यसिमांभज ॥ भुंक्ष्वभोगान्मयासार्धंत्यजदुःखंवनोद्भवम् ॥ ४६ ॥ श्रुत्वातद्वचनंसीताभीताकिंचिदुवाचतम् ॥ यदेवंभाषसेमांत्वंनाशमेष्यसिराघवात् ॥ ४७ ॥ आगमिष्यतिरामोऽपिक्षणंतिष्ठसहानुजः ॥ मांकोधर्षयितुंशक्तोहरेर्भार्यांशशोयथा ॥ ॥ ४८ ॥ रामबाणैर्विभिन्नस्त्वंपतिष्यसिमहीतले ॥ इतिसीतावचःश्रुत्वारावणःक्रोधमूर्च्छितः ॥ ४९ ॥ स्वरूपंदर्शयामासमहापर्वतसन्निभम् ॥ दशास्यंविंशतिभुजंकालमेघसमद्युति ॥ ५० ॥

मुनिवेषधारी रामको लेकर तुम क्या करोगी ? तुम मेरा भजन करके मेरे साथ २ सब भोगोंको भोगो महाक्लेशके देनेवाले वनवासको छोड दो " ॥ ४६ ॥ भिखारीके वचन सुनकर जानकीजी अति डरीं और बोली " जब कि तुम हमको ऐसे कुवचन कहते हो; तब राम अवश्यही तुम्हारा विनाश करेंगे— ॥ ४७ ॥ एक क्षणभर ठहरो; रामजी लक्ष्मणके साथ अतिशीघ्र आते हैं; तुम मेरे ऊपर बलप्रकाश करनेकी इच्छा दूर रक्खो। सिंहकी सिंहनीपर साधारण पशु कभी अत्याचार करनेकी सामर्थ्य नहीं रखता॥ ४८ ॥ तू रामके बाणसे छिन्न भिन्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़ैगा ! " सीताजीके वचन सुनकर रावण क्रोधसे मूर्छित हो गया ॥ ४९ ॥ पर्वतके समान ऊँचे दशशिर, और वीस बांहोंसे शोभायमान काले मे

घके समान कांतिमान् अपनी देह रावणने सीताजीको दिखाई ॥ ५० ॥ रावणकी उस कराल मूर्तिको देखकर वनदेवता और समस्त वनैले जीव त्रासित होगये;भयानक मूर्तिवाले रावणने नखोंसे पृथ्वीको चीर ॥ ५१ ॥ (पृथ्वीपर सीताजीके रहतेहुए किसकी सामर्थ्य थी जो उनको उठा ले जाता) उस मट्टीके सहित दोनों बाहोंसे सीताजीको उठाय रथमें चढाय, वह रावण शीघ्र आकाशमार्गको ले उठा; जनककुमारी सीताजी " हाराम ! लक्ष्मण ! " कह कर रोनेलगीं ॥ ५२ ॥ जनककुमारी भयके मारे अत्यन्त अधीर और दीन हीन हो मनमें व्याकुल हो पृथ्वीको देखनेलगीं। सीताजीका हृदयविदारी रोना सुनकर पक्षियोंमें श्रेष्ठ ॥ ५३ ॥ जटायु शीघ्र पर्वतपरसे उतरा; तिसकी चोंच अत्यन्त तीक्ष्ण थी। वह बोला

तद्दृष्ट्वावनदेव्यश्चभूतानिचवितत्रसुः ॥ ततोविदार्यधरणींनखैरुद्धृत्यबाहुभिः ॥ ६१ ॥ तोलयित्वारथेक्षिप्त्वाययौक्षिप्रंविहायसा ॥ हारा
महालक्ष्मणेतिरुदंतीजनकात्मजा ॥ ६२ ॥ भयोद्विग्नमनादीनापश्यंतीभुवमेवसा ॥ श्रुत्वातत्क्रंदितंदीनंसीतायाःपक्षिसत्तमः ॥ ६३ ॥
जटायुरुत्थितःशीघ्रंनगाग्रात्तीक्ष्णतुंडकः ॥ तिष्ठतिष्ठेतितंप्राहकोगच्छतिममाग्रतः ॥ ६४ ॥ मुषित्वालोकनाथस्यभार्यांशून्याद्वना
लयात् ॥ शुनकोमंत्रपूतंत्वंपुरोडाशमिवाध्वरे ॥ ६५ ॥ इत्युक्त्वातीक्ष्णतुंडेनचूर्णयामासतद्रथम् ॥ वाहान्बिभेदपादाभ्यांचूर्णया
मासतद्धनुः ॥ ६६ ॥ ततःसीतांपरित्यज्यरावणःखड्गमाददे ॥ चिच्छेदपक्षौसामर्षःपक्षिराजस्यधीमतः ॥ ६७ ॥ पपातकिंचिच्छेषे
णप्राणेनभुविपक्षिराट् ॥ पुनरन्यरथेनाशुसीतामादायरावणः ॥ ६८ ॥

अरे पामर ! खड़ा रह ! खड़ा रह ! कौन मेरे आगेसे चला जाता है ? ॥ ५४ ॥ शून्य वनसे रामचंद्रजीकी भार्याको हरण करके कौन जाय सकता है ? कुत्ता क्या कभी मंत्र पढी हुई यज्ञकी पुरोडाश खा सकता है ! ॥ ५५ ॥ यह कहकर तीक्ष्ण चोंचसे रावणके रथका चूरा कर दिया; और पंजे चलाय धनुष तोडा; व घोड़ोंको मार डाला ॥ ५६ ॥ तब रावणने क्रोधित हो सीताजीको छोड़ खड्ग चलाय बुद्धिमान पक्षिराज जटायुके दोनों पंख काट डाले ॥ ५७ ॥ पक्षियोंका राजा घायल होकर गिरा परन्तु उसके प्राण न निकले। रावण सीताजीको ले[1] दूसरे रथपर सवार होकर

---

[1] यहाँ यह शंका हुई कि रावणने केवल एकही रथ साथ लायाथा फिर यहाँ दूसरा रथ कहाँसे आया ! उत्तरही होगा कि वह मायाका रथ बनाय उस पर चढ़ आकाशको चला।

क्रोशंतीरामरामेतित्रातारंनाधिगच्छती॥हारामहाजगन्नाथमांनपश्यसिदुःखिताम्॥५९॥ रक्षसानीयमानांस्वांभार्यांमोचयराघव॥हालक्ष्मणमहाभागत्राहिमामपराधिनीम् ॥ ६० ॥ वाक्छरेणहतस्त्वंमेक्षंतुमर्हसिदेवर ॥ इत्येवंक्रोशमानांतांरामागमनशंकया ॥ ६१॥ जगामवायुवेगेनसीतामादायसत्वरः ॥ विहायसानीयमानासीताऽपश्यदधोमुखी ॥ ६२ ॥ पर्वताग्रस्थितान्पंचवानरान्वारिजानना ॥उत्तरीयार्धखंडेनविमुच्याभरणादिकम् ॥६३॥ बद्ध्वाचिक्षेपरामायकथयंत्वितिपर्वते ॥ ततःसमुद्रमुल्लंघ्यलंकांगत्वासरावणः॥६४॥ स्वांतःपुरेरहस्यतामशोकविपिनेऽक्षिपत्॥राक्षसीभिःपरिवृतांमातृबुद्ध्याऽनुपालयत्॥६५॥कृशाऽतिदीनापरिकर्मवर्जितादुःखेनशुष्यद्वदनातिविह्वला॥हारामरामेतिविलप्यमानासीतास्थिताराक्षसवृंदमध्ये॥६६॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेऽरण्यकांडेसप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥

चला ॥ ५८ ॥ सीताजी “ राम राम” कहकर वारंवार विलाप करनेलगीं । उसकाल उन्होने किसीकोभी अपना रक्षक न पाया! “ हाराम ! हा जगन्नाथ ! मुझ दुःखिनीका दुःख तुम नहीं देखते हो ॥ ५९ ॥ हे राघव ! आपकी भार्याको राक्षस हरण करकै लिये जाता है; शीघ्र छुडाओ, हा महाभाग लक्ष्मण ! मुझ अपराधिनीको छुडाओ ॥ ६० ॥ मैंने तुमको वचनबाणसे वेधा है; हे देवर ! इस अपराधको क्षमा कर दो ” इस प्रकारसे जानकीजी विलाप संताप करती रही । रामचंद्रकी आनेकी शंकासे ॥ ६१ ॥ सीताजीको लेकर रावण पवनके समान वेगसे शीघ्रही चला । हरण की हुई जानकीजीने नीचेको मुख किये हुए देखा कि ॥ ६२ ॥ पर्वतके शिखरपर पांच वानर विराजमान हैं, सीताजीने कुछ गहने निकाल अपने डुपट्टे में ॥ ६३ ॥ बांध “ रामचंद्रजीसे हमारा वृत्तान्त कहना ” इस अभिप्रायसे यह गहने पर्वतपर छोड़े, इसके उपरान्त समुद्र उलांघ लंकामें जाय रावणने ॥ ६४ ॥ अपने रनवासके निर्जन अशोकवनमें जानकीजीको रक्खा; और राक्षसियोंको उनकी रक्षाका भार दे माताके समान उनका पालन करने लगा॥६५॥ सीताजी राक्षसोंमें रहनेलगीं, वे अत्यन्त दुर्बला और दीनहुई; शरीरके मांजने धोने इत्यादिसे कुछ काम नहीं । मारे दुःखके वह मुखमंडल सूखने लगा भयसे विह्वल होगई और सदाही “ हाराम हाराम ” कहकर विलाप करने लगीं ॥ ६६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे आरण्यकांडे भाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ छ ॥ ॥

रामचंद्रजीके द्वारा जटायुका संस्कार होना। श्रीमहादेवजी बोले,–कामरूपधारी मायावी राक्षसका संहार करके श्रीरामचंद्रजी अपने आश्रमकी ओर चले आते हैं। इतनेमें ॥ १ ॥ मलीन वदन मन दुःखाये महामति लक्ष्मणजीको दूरसे मार्गमें आताहुआ देखकर मनही मनमें श्रीरामचंद्रजी चिन्ता करने लगे ॥ २ ॥ मैं मायाकी सीताको पर्णशालामें रख आयाहूं, तिस्से राक्षसादि करकै यथार्थ सीतामें किसी प्रकारका विघ्न होना संभव नहीं। मैं भूत, भविष्यत् और वर्तमान वा समस्त वृत्तान्त जानकरभी, लक्ष्मणके निकट साधारण मनुष्यके समान छल करके शोक प्रगट करूं ॥ ३ ॥ जो इस समयमें सीताके लिये शोक प्रगट न करकै मौनहो आश्रममें बठा रहूं; तब फिर और किस छलसे राक्षसकुल विनाश करूंगा ? ॥ ४ ॥ यदि इस समयसे कामी पुरुषोंके समान दुःखसे संतापित हो शोक करना आरंभ करूं तौ धीरे २ सीताके खोजनेके मिससे राक्षसोंके स्थानमें पहुंचजाऊंगा; और कुलसहित रावणका संहार कर अग्निमें स्थापित हुई सीताको ॥ ५ ॥ जिनको मैंनेही अग्निमें स्थापित किया है–फिर अग्निसे ग्रहण करकै अयोध्यामें ले आऊंगा; मैंने ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर मनुष्यावतार लिया है ॥ ६ ॥ इस कारण पृथ्वीपर मनुष्यभाव प्रगट कर कुछ काल तक रहूंगा। जब इस जगतमें मेरे मनुष्यचरित्र प्रकाशित हो जायँगे, फिर भक्तिके मार्गपर चलकर जो उन चरित्रोंको सुनेंगे ॥ ७ ॥ वह सरलतासे मुक्तिको प्राप्तकर लेंगे, मनहीं मन इस प्रकार निश्चय कर समीप आयेहुए लक्ष्मणजीसे श्रीरामचंद्रजी बोले ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! तुम हमारी प्यारी जनककुमारी जा

श्रीमहादेव उवाच ॥ रामोमायाविनंहत्वाराक्षसंकामरूपिणम् ॥ प्रतस्थेस्वाश्रमंगंतुंततोदूराद्ददर्शतम् ॥ १ ॥ आयांतंलक्ष्मणंदीनंमुखेनपरिशुष्यता ॥ राघवश्चिंतयामासस्वात्मन्येवमहामतिः ॥ २ ॥ लक्ष्मणस्तन्नजानातिमायासीतांमयाकृताम् ॥ ज्ञात्वाप्येनंवंचयित्वाशोचामिप्राकृतोयथा ॥ ३ ॥ यद्यहंविरतोभूत्वातूष्णींस्थास्यामिमंदिरे ॥ तदाराक्षसकोटीनांवधोपायःकथंभवेत् ॥ ४ ॥ यदिशोचामितांदुःखसंतप्तःकामुकोयथा ॥ तदाक्रमेणानुचिन्वन्सीतांयास्येऽसुरालयम् ॥ रावणंसकुलंहत्वासीतामग्नौस्थितांपुनः ॥५॥ मयैवस्थापितांनीत्वायाताऽयोध्यामतंद्रितः ॥ अहंमनुष्यभावेनजातोऽस्मिब्रह्मणाऽर्थितः ॥ ६ ॥ मनुष्यभावमापन्नःकिंचित्कालंवसामिकौ ॥ ततोमायामनुष्यस्यचरितंमेऽनुशृण्वताम् ॥ ७ ॥ मुक्तिःस्यादप्रयासेनभक्तिमार्गानुवर्तिनाम् ॥ निश्चित्यैवंतदादृष्ट्वालक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥ किमर्थमागतोऽसित्वंसीतांत्यक्त्वाममप्रियाम् ॥ नीतावाभक्षितावाऽपिराक्षसैर्जनकात्मजा ॥ ९ ॥

नकीको छोड़कर किस कारणसे आये ? हे भइया! अब राक्षस लोग जानकीको खागये होंगे, या हरण करकै लेगये होंगे। " ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त लक्ष्मणजीने हाथ जोड़कर रोते२जानकीके कहे हुए वचन रामचंद्रजीको सुनातेहुए " हे राम जनककुमारी सीताजीने " हा लक्ष्मण " इस प्रकार आपके वचनके समान राक्षसके कपटभरे वचन सुनकर रोते २ मुझसे बोलीं, "हेलक्ष्मण! तुम शीघ्र आर्यपुत्रके निकट जायकर उनको विपदसे छुटाओ "। इसके उपरान्त मैंने आर्या जानकीजीसे कहा, " हे देवि! आपने जो वाक्य सुना ॥ १० ॥ वह कभीभी श्रीरामचन्द्रजीका वाक्य नहीं है; उस मायामृग रूपधारी राक्षसोंमें नीच कपटी राक्षसका वाक्य है। हे शुचिस्मिते! धीरज धरो, किसी प्रकारकी चिन्ता न करो। " ॥ ११ ॥ मैंने इसप्रकारसे देवीजीको

लक्ष्मणःप्रांजलिःप्राहसीतायादुर्वचोरुदन् ॥ हालक्ष्मणेतिवचनंराक्षसोक्तंश्रुतंतया ॥१०॥ त्वद्वाक्यसदृशंश्रुत्वामांगच्छेतित्वराब्रवीत् ॥ रुदतीसामयाप्रोक्तादेविराक्षसभाषितम् ॥ नेदंरामस्यवचनंस्वस्थाभवशुचिस्मिते ॥ ११ ॥ इत्येवंसांत्वितासाध्वीमयाप्रोवाचमांपुनः ॥ यदुक्तंदुर्वचोरामनवाच्यंपुरतस्तव ॥ १२ ॥ कर्णौपिधायनिर्गत्ययातोऽहंत्वांसमीक्षितुम् ॥ रामस्तुलक्ष्मणंप्राहतथाऽप्यनुचितंकृतम् ॥ १३ ॥ त्वयास्त्रीभाषितंसत्यंकृत्वात्यक्त्वाशुभाननाम् ॥ नीतावाभक्षितावाऽपिराक्षसैर्नात्रसंशयः ॥ १४॥ इतिचिंतापरोरामःस्वाश्रमंत्वरितोययौ ॥ तत्राहृष्ट्वाजनकजांविललापातिदुःखितः ॥ १५ ॥ हाप्रियेक्कगताऽसित्वंनासिपूर्ववदाश्रमे ॥ अथवामद्विमोहार्थंलीलयाक्वविलीयसे ॥ १६ ॥

बहुत समझाया बुझाया, साध्वी जानकीजीने मेरी बातोंका विश्वास न कर के जो दुर्वचन हमसे कहेहैं; वह लाजके भरे वचन आपसे कहने योग्य नहीं हैं ॥ १२ ॥ " हे देव! मैं उसीसमय दोनोंहाथोंसे कानोंको ढक पर्णशालासे निकल आपके देखनेको आयाहूं। " श्रीरामचंद्रजीने कहा; हे भइया! तुमने अत्यन्त अनुचित कार्य कियाहै ॥ १३ ॥ क्योंकि स्त्रीकी बात सची मानकर उन श्रेष्ठमुखवाली जानकीको छोड़ तुम यहाँपर चले आये, निश्चयही सीताको राक्षसोंने भक्षण किया होगा, या हरण किया होगा ॥ १४ ॥ इसप्रकारसे चिन्तायुक्त हो श्रीरामचंद्रजीने अतिशीघ्र आश्रममें जा वहाँपर जानकीको न देखा; तब अत्यन्त दुःखितचित्त हो विलाप करने लगे ॥ १५ ॥ "हा प्रिये! तुम कहां चलीगई ? पहलेकी स

मान अब तुमको हम आश्रममें क्यों नहीं देखते हैं? हेप्रिये ! क्या तुम हमें मोहित करनेके लिये, खेल २ में किसी स्थानके बीच छिपरहीहो ?" इसप्रकार समस्तवन खूंदडाला परन्तु किसी स्थानमेंभी जानकीजीको न देख पाया। फिर वनदेवता और वनवासी प्राणियोंसे जानकीको पूंछनेलगे "हे वनदेवतागण! हमारी प्यारी जानकीजी कहाँ हैं बता तो दो ॥१६॥१७॥ हे मृगगण ! हेपक्षीगण ! हेवृक्षगण ! हमारी प्यारी जानकीजी किसस्थानमें हैं सो तुम हमको दिखाओ;" इसप्रकार रामचंद्रने विलाप किया; परन्तु जानकीजीको कहींपर न देखा ॥१८॥ सबकुछ जाननेवाले श्रीरामचंद्रजीने सब कहीं सीताको ढूंढ़ा, परन्तु कहीं न पाया; श्रीरामचंद्रजी आनन्दमय होकरभी शोककरनेलगे और अचल[1] होकरभी अनेकस्थानमें घूमने लगे ॥ १९ ॥ निरहंकार पूर्णानंद स्वरूप होकरभी "हमारी सीता कहाँ गई" कहकर अति दुःखसे विलाप करनेलगे ॥ २० ॥ रघुनंदन रामचंद्रजीके वास्तवमें असक्त होनेपरभी मूढ़ोंको विषयमें आसक्त हुए जानपड़ते हैं; और ब्रह्मज्ञानियोंको ऐसा नहीं बोध होता है ॥२१॥ इसके उपरांत श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीके साथ सारे वनको ढूंढते२देखा कि एक टूहुआ रथ, एक टूटाहुआ छत्र, और टूटाहुआ धनुष पृथ्वीपर पड़ाहै ॥२२॥ ऐसे विस्मय करनेवाले चिह्न देखकर श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा," भइया! देखो इन रणचिह्नोंसे निश्चयही जानपड़ताहै कि कोई दुरात्मा जानकीको लेकर भागा जारहा था; तब दूसरे किसी वीरपुरुषने उसको युद्धमें जीतकर सीताको ग्रहण कियाहै ॥ २३ ॥ इसके उपरांत श्रीरामचंद्रजीने दूसरे किसी

इत्याचिन्वन्वनंसर्वंनापश्यज्जानकींतदा ॥ वनदेव्यःकुतःसीतांब्रुवंतुममवल्लभाम् ॥ १७ ॥ मृगाश्चपक्षिणोवृक्षादर्शयंतुममप्रियाम् ॥ इत्ये
वंविलपन्नेवरामःसीतांनकुत्रचित् ॥ १८ ॥ सर्वज्ञःसर्वथाक्कापिनापश्यद्रघुनंदनः ॥ आनंदोऽप्यन्वशोचत्तामचलोऽप्यनुधावाति ॥ १९ ॥
निर्ममोनिरहंकारोऽप्यखंडानंदरूपवान् ॥ ममजायेतिसीतेतिविललापातिदुःखितः ॥ २० ॥ एवंमायामनुचरन्नसक्तोऽपिरघूत्तमः ॥ आ
सक्तएवमूढानांभातितत्त्वविदांनाहि ॥ २१ ॥ एवंविचिन्वन्सकलंवनंरामःसलक्ष्मणः ॥ भग्नंरथंछत्रचापंकूबरंपतितंभुवि ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा
लक्ष्मणमाहेदंपश्यलक्ष्मणकेनाचित् ॥ नीयमानांजनकजांतंजित्वान्योजहारताम् ॥ २३ ॥ ततःकंचिद्भुवोभागंगत्वापर्वतसन्निभम् ॥
रुधिराक्तवपुर्दृष्ट्वारामोवाक्यमथाब्रवीत् ॥ २४ ॥

---

[1] अचल–धीर और गति–शक्ति हीन।

मार्गमें जाय पक्षियोंके राजा जटायुका रुधिरसे भीगा पर्वतके समान ऊंचा शरीर देखकर लक्ष्मणजीसे कहा ॥२४॥ “हे भइया! देखो, यह दुरात्मा शुभदर्शनवाली जानकीजीको भक्षण करके अतितृप्ति पाय निर्जन स्थानमें शयन करताहै, इस्से मैं इसी घड़ी इस निशाचरका नाश करूंगा ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण शीघ्र मेरा धनुष बाण लेआओ।” जटायुने श्रीरामचंद्रजीके वचन सुन भीतहोकर कहा ॥२६॥ “हे महावीर! हमारा नाश न कीजिये;—मैं अपने कर्मसेही नाशको प्राप्त हुआहूं। हेराम! तुम्हारा मंगलहो। मैं अति क्रोधकरके तुम्हारी भार्याके हरनेवाले रावणके पीछे दौड़ा था ॥२७॥ हे शत्रुओंके नाश करनेवाले! मार्गमें मेरे साथ उसका युद्धहुआ,—मैंनें संग्राम भूमिमें चोंचके प्रहारसे उसके रथ और धनुषको तोड़ घोड़ोंको मारडाला।

एषवैभक्षयित्वातांजानकींशुभदर्शनाम् ॥ शेतेविविक्तेऽतितृप्तःपश्यहन्मिनिशाचरम् ॥२५॥ चापमानयशीघ्रंमेबाणंचरघुनंदन ॥ तच्छुत्वारामवचनंजटायुःप्राहभीतवत् ॥ २६ ॥ मांनमारयभद्रंतेम्रियमाणंस्वकर्मणा ॥ अहंजटायुस्तेभार्याहारिणंसमनुद्रुतः ॥ २७ ॥ रावणंतत्रयुद्धंमेवभूवारिविमर्दन ॥ तस्यवाहान्रथंचापंछित्त्वाऽहंतेनघातितः ॥ २८ ॥ पतितोऽस्मिजगन्नाथप्राणांस्त्यक्ष्यामिपश्यताम् ॥ तच्छुत्वारावघोदीनंकंठप्राणंददर्शह ॥ २९ ॥ हस्ताभ्यांसंस्पृशन्रामोदुःखाश्रुवृतलोचनः ॥ ३० ॥ जटायोब्रूहिमेभार्याकेननीताशुभानना ॥ मत्कार्यार्थंहतोऽसित्वमतोमेप्रियबांधवः ॥ ३१ ॥ जटायुःसन्नयावाचावक्राद्रक्तंसमुद्वमन् ॥ उवाचरावणोरामराक्षसोभीमविक्रमः ॥ ३२ ॥ आदायमैथिलींसीतांदक्षिणाभिमुखोययौ ॥ इतोवक्तुंनमेशक्तिःप्राणांस्त्यक्ष्यामितेऽग्रतः ॥ ३३ ॥

इसके उपरांत महाबलवान् पराक्रमकारी राक्षसने दारुणप्रहार करके मुझको पृथ्वीपर डालदिया ॥ २८ ॥ हे जगन्नाथ! इससमय मैं प्राण छोड़ताहूं; आप सामने खड़े होकर मुझको देखें।” श्रीरामचंद्रजीने यह सुनकर कण्ठगतप्राण जटायुको देखा ॥ २९ ॥ और दुःखके आंसू छोड़ दोनों हाथोंसे जटायुके शरीरको छूकर कहा ॥ ३० ॥ “हेजटायो! तुम बताओ कि हमारी श्रेष्ठ मुखवाली भार्याको किसने हरणकिया है? तुम हमारेही कार्यके अर्थ शरीर छोड़तेहो; इसकारण तुम हमारे प्यारे कुटुम्बी हो ॥ ३१ ॥ जटायु मुखसे रुधिर उगलताहुआ झीनीवाणी से बोला ॥ हे राम! भयंकर विक्रम करनेवाले राक्षसोंका राजा रावण ॥ ३२ ॥ जानकीजोको हरण करके दक्षिणकी ओर चलागया है; अब अधिक बोलनेकी शक्ति मुझ

में नहीं है। इससमय तुम्हारे आगेही प्राणोंको छोड़ताहूं ॥ ३३ ॥ हे पापरहित ! तुम माया करके मनुष्यरूप धारण कियेहुए साक्षात् परमात्मा विष्णुहो, बड़े भाग्यहैं, जो मरनेके समय तुम्हारा दर्शनपाया ॥ ३४ ॥ हे रघुनंदन ! अन्तकालमें आपके दर्शन प्राप्तकर मैं मुक्तहोगया । हेराम ! अपने करकमलसे मुझको छुवो; तब मैं तुम्हारे परमपदको प्राप्तकरूंगा । ” श्रीरामचंद्रजीने जटायुके वचन अंगीकारकर विस्मितहो हाथोंसे जटायुके अंग स्पर्श किये, तत्काल जटायुभी प्राण छोड़कर तत्काल परमपदको चला गया । केवल उसका शरीर पृथ्वीपर पड़ारहा ॥ ३५॥ ३६ ॥ श्रीरामचंद्रजीने परमबन्धुके समान जटायुके लिये शोकके आंसू छोड़; लक्ष्मणजीसे काठ मँगाय उसको भस्म किया ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त लक्ष्मणजीके साथ

दिष्ट्यादृष्टोऽसिरामत्वंम्रियमाणेनमेऽनघ ॥ परमात्माऽसिविष्णुस्त्वंमायामनुजरूपधृक् ॥३४॥अंतकालेऽपिदृष्ट्वात्वांमुक्तोऽहंरघुसत्तम॥ हस्ताभ्यांस्पृशमांरामपुनर्यास्यामितेपदम् ॥ ३५ ॥ तथेतिरामःपस्पर्शतदंगंपाणिनास्मयन् ॥ ततःप्राणान्परित्यज्यजटायुःपतितोभुवि ॥ ३६ ॥ रामस्तमनुशोचित्वाबंधुवत्साश्रुलोचनः ॥ लक्ष्मणेनसमानाय्यकाष्ठानिप्रददाहतम् ॥३७॥ स्नात्वादुःखेनरामोऽपिलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ हत्वावनेमृगंतत्रमांसखंडान्समंततः ॥ ३८ ॥ शाद्वलेप्राक्षिपद्रामःपृथक्पृथगनेकधा ॥ भक्षंतुपक्षिणःसर्वेतृप्तोभवतुपक्षिराट् ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वाराघवःप्राहजटायोगच्छमत्पदम् ॥ मत्सारूप्यंभजस्वाद्यसर्वलोकस्यपश्यतः ॥ ४० ॥ ततोऽनंतरमेवासौदिव्यरूपधरःशुभः ॥ विमानवरमारुह्यभास्वरंभानुसन्निभम् ॥४१॥ शंखचक्रगदापद्मकिरीटवरभूषणैः ॥ द्योतयन्स्वप्रकाशेनपीतांबरधरोऽमलः॥४२॥चतुर्भिःपार्षदैर्विष्णोस्तादृशैरभिपूजितः॥स्तूयमानोयोगिगणैराममाभाष्यसत्वरः॥कृतांजलिपुटोभूत्वातुष्टावरघुनंदनम्॥४३॥

दुःखित चित्तहो श्रीरामचंद्रजीने स्नानकरके वनमें एकमृग मारा । श्रीरामचन्द्रजीने उस मृगके मांसको टुकड़े २ कर ॥ ३८ ॥ दूबलगीहुई पृथ्वीपर अलग २ डालकर कहा, इन मांसके टुकड़ोंको पक्षिगण खाजांय, इस्से पक्षिराज जटायु तृप्त होगा– ॥ ३९ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीने जटायुसे कहा “हे जटायो ! सबलोक देखें; तुम आज मेरे स्वरूपको धारणकरके हमारे लोकको जाओ” ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त यह वचन कहतेही जटायुने दिव्यरूप धारण किया । और पीताम्बर पहरकर सूर्यके समान प्रकाशमान विमानपर सवार हुआ ॥ ४१ ॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म, और किरीटादि जो भूषण जटायु पहर रहाथा; उनकी असाधारण कान्तिसे दशोंदिशा उजेलीहोगईं ॥ ४२ ॥ और ऐसेही सर्वप्रकारके गहने पहिनेहुए चार विष्णु

दूत आयकर जटायुकी सेवा करने लगे; योगीलोगभी उसस्थानमें आय अनेकभाँतिसे स्तुतिकर दिव्यरूपधारी जटायुका स्तोत्र करने लगे । इसके उपरान्त पक्षिराज जटायु हाथ जोड़कर श्रीरामचंद्रजीकी स्तुति करने लगा ॥ ४३ ॥ जटायु बोला,–“ जिसमें अनन्तशक्ति है; और देशकालादिके द्वारा जिसका परिच्छेद नहीं करसक्ता (अर्थात् जो सब देश और सर्वकालमें हैं;) जो सर्व के आदि; और समस्त जगत्के उत्पन्न पालन और नाश करनेवाले हैं; उन शांति गुणयुक्त परमात्मा स्वरूप श्रीरामचंद्रजीको मैं सदाही प्रणाम करताहूं ॥ ४४ ॥ और मनुष्यगण नित्यही जिनसे सुखको प्राप्त कर सकते हैं; और जो कमलादेवीकेही कटाक्षके स्थान हैं; और ब्रह्मा इन्द्रादि देवगण विपदके समय जि

जटायुरुवाच ॥ अगणितगुणमप्रमेयमाद्यंसकलजगत्स्थितिसंयमादिहेतुम् ॥ उपरमपरमंपरात्मभूतंसततमहंप्रणतोऽस्मिरामचंद्रम् ॥ ॥ ४४ ॥ निरवधिसुखमिंदिराकटाक्षंक्षपितसुरेंद्रचतुर्मुखादिदुःखम् ॥ नरवरमनिशंनतोऽस्मिरामंवरदमहंवरचापबाणहस्तम् ॥ ४५ ॥ त्रिभुवनकमनीयरूपमीड्यंरविशतभासुरमीहितप्रदानम् ॥ शरणदमनिशंसुरागमूलेकृतनिलयंरघुनंदनंप्रपद्ये ॥ ४६ ॥ भवविपिनदवाग्निनामधेयंभवमुखदैवतदैवतंदयालुम् ॥ दनुजपतिसहस्रकोटिनाशंरवितनयासदृशंहरिंप्रपद्ये ॥ ४७ ॥ अविरतभवभावनातिदूरंभवविमुखैर्मुनिभिःसदैवदृश्यम् ॥ भवजलधिसुतारणांघ्रिपोतंशरणमहंरघुनंदनंप्रपद्ये ॥ ४८ ॥

नकी शरणागतहो समस्तदुःखोंसे छूट जाते हैं उन वरदायी धनुष्बाणधारी माया मनुष्यरूपी श्रीरामचंद्रजीको मैं सदाही प्रणाम करताहूं ॥ ४५ ॥ जो तीनों लोकमें एकही सुन्दर हैं;और उस सुन्दररूपकी सैकड़ोंसूर्यके समान उजली शोभासे जगत्को प्रकाशमान करतेहैं, और भक्तोंके चित्तमें वास करके उनके सब मनोरथ पूरे किया करते हैं । उन स्तुति करने योग्य रघुनंदनजीकी मैं शरण हुआ ॥ ४६ ॥ जिनकी नाम रूप अग्निसे, संसार रूप भयंकर वन भस्म होता है; जो महादेवादि देवताओंके भी देवतास्वरूप हैं; और जिन्होंने सहस्रों करोड़ों दैत्योंका नाश करकै पृथ्वीका भार उतारा है; यमुनाके जलके समान नील कांतिसे शोभायमान परमदयामय उन हरिकीमैं शरण हुआ ॥ ४७ ॥ संसारमें वासना लगाये हुए–पुरुषोंको जो

अति दुर्लभ है; और संसारसे विमुख हुए मुनि लोगोंके जो सदा दर्शन देते रहते हैं; जिनकी चरणरूप असाधारण नाव, भवसागर पार होनेका केवल एकही उपाय है, मैं उन्हीं रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीकी शरण हुआ ॥ ४८ ॥ जो हर पार्वतीके मानसमन्दिरमें सदाही वास करते हैं; और सुरपति व असुरपतिगण सदा जिनके चरणोंकी सेवा करते हैं, मैं उन्हीं गोवर्द्धनधारी, देवताओंको भी वर देनेवाले रघुनाथजीकी शरण हुआ ॥ ४९ ॥ जो लोग पराये धन और पराई स्त्रीका लोभ नहीं करते, पराये गुणोंका बखान करने और पराये विभवको देखकर जिनका चित्त संतुष्ट होता है ऐसे पराये हितमें लगे हुए मनुष्यही उनकी सेवा कर सकते हैं; मैं उन्हीं कमलदलके समान नेत्रवाले श्रीरामचंद्रजीकी शरण हुआ ॥ ५० ॥ जिन रामचंद्रजीका वदनकमल सदाही मुसकानसे खिला रहता है; जिनके दोनों नेत्र श्वेत कमलके समान शोभा धारण करते हैं; उन इन्द्रनील मणिके समान कांतिवाले भक्तोंको अति सुलभ और ब्रह्माजीके गुरु श्रीरामचंद्रजीकी शरणको मैं प्राप्त होताहूं ॥ ५१ ॥ हे राम! जिस प्रकार जलसे भरे हुए पात्रोंमें एकही सूर्यकी छाया पड़नेसे अलग २ भांतिके सूर्य दिखाई देते हैं, वैसेही तुम सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण के भेदसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यह तीन मूर्ति धारण करके जगत्में पृथक् रूपसे प्रकाशमानहो—वास्तवमें तुम एकही हो। हे भगवन्! देवराज इन्द्र भी तुम्हारी स्तुति करता है, मैं तुम्हारी स्तुति करताहूं ॥ ५२ ॥ जो सौ करोड़ कामदेवके समान परमसुन्दर मूर्तिसे समस्त संसारको मोहित करते हैं; अनेक मार्गोंपर चलनेमें चित्त लगाये हुए पुरुषोंको जो अति दुर्लभ वस्तु हैं, परन्तु यति लोगोंके चित्तमें सदाही विराजमान रहाकरते

गिरिशगिरिसुतामनोनिवासंगिरिवरधारिणमीहिताभिरामम् ॥ सुरवरदनुजेंद्रसेवितांघ्रिंसुरवरदंरघुनायकंप्रपद्ये ॥ ४९ ॥ परधनपरदारव
र्जितानांपरगुणभूतिषुतुष्टमानसानाम् ॥ परहितनिरतात्मनांसुसेव्यंरघुवरमंबुजलोचनंप्रपद्ये ॥ ५० ॥ स्मितरुचिरविकासिताननाब्ज
मतिसुलभंसुरराजनीलनीलम् ॥ सितजलरुहचारुनेत्रशोभंरघुपतिमीशगुरोर्गुरुंप्रपद्ये ॥ ५१ ॥ हरिकमलजशंभुरूपभेदात्त्वमिहविभा
सिगुणत्रयानुवृत्तः ॥ रविरिवजलपूरितोदपात्रेष्वमरपतिस्तुतिपात्रमीशमीडे ॥ ५२ ॥ रतिपतिशतकोटिसुंदरांगंशतपथगोचरभावनाऽ
विदूरम् ॥ यतिपतिहृदयेसदाविभातंरघुपतिमार्तिहरंप्रभुंप्रपद्ये ॥ ५३ ॥

हैं, मैं उन्ही सर्व दुःखहारी महाप्रभु श्रीरामचंद्रजीकी शरण होताहूं" ॥ ५३ ॥ जटायुकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर श्रीरामचंद्रजी बोले– "हे जटायो ! तुम्हारा मंगल होवै; इस समय विष्णुजीके परमधामको चले जाओ ॥ ५४ ॥ जो पुरुष इस जटायुकृत स्तोत्रको श्रवण करैगा या लिखैगा, अथवा नियम सहित प्रति दिन पाठ करैगा; वह पुरुष मरनेके समय मेरे नामका स्मरणपायकर अंतमें मेरे स्वरूपको प्राप्त होगा " ॥ ५५ ॥ परमानंदको प्राप्त हुआ पक्षियोंका राजा जटायु श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकरउनकी समताको प्राप्तहो वैकुंठ धाममें चलागया ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकांडे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ कबन्धका माराजाना ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजी दुःखित मनसे सीताजीको ढूँढते लक्ष्मणजीके साथ दूसरे वनको गये ॥ १ ॥ उस स्थानमें श्रीरामचंद्रजीने एक विचित्र रूपका राक्षस देखा; इस राक्षसकी छातीमें एक बड़ा भारी मुख, नेत्रादि करकै रहित है ॥ २ ॥ इस राक्षसकी बांहें चार कोशकी लम्बी हैं; यह सर्व प्राणियोंका मारनेवाला दैत्योंमें श्रेष्ठ कबन्ध नामसे विख्यात था ॥ ३ ॥ उसकी बड़ी भारी दोनों बांहोंके बीचमें श्रीराम और लक्ष्मण दोनों जने विचरण करने लगे; उसकी दोनों बांहोंके लपेटमें आकर श्रीरामचंद्रजीने उस महाबलवान् राक्षसकी ओर देखा तब लक्ष्मणजीसे हँसते २ ॥ ४ ॥ श्रीरामचंद्रजीने कहा–हे लक्ष्मण ! इस राक्षसका विचित्ररूप देखो; न इसके मस्तक है, न चरण हैं, छातीमें एक बड़ा भारी मुख है, ॥५॥ यह योजनभरकी लंबी दोनों बाहोंसे जो इकठा करता है; वही

इत्येवंस्तुवतस्तस्यप्रसन्नोऽभूद्रघूत्तमः ॥ उवाचगच्छभद्रंतेममविष्णोःपरंपदम् ॥ ५४ ॥ शृणोतियइदंस्तोत्रंलिखेद्वानियतःपठेत् ॥ सयातिममसारूप्यंमरणेमत्स्मृतिंलभेत् ॥ ५५ ॥ इतिराघवभाषितंतदाश्रुतवान्हर्षसमाकुलोद्विजः ॥ रघुनंदनसाम्यमास्थितःप्रययौब्रह्मसुपूजितंपदम् ॥५६॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेऽरण्यकांडेऽष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥ ॥ ततोरामोलक्ष्मणेनजगामविपिनांतरम् ॥ पुनर्दुःखंसमाश्रित्यसीतान्वेषणतत्परः ॥ १ ॥ तत्राद्भुतसमाकारोराक्षसःप्रत्यदृश्यत ॥ वक्षस्येवमहावक्त्रश्चक्षुरादिविवर्जितः ॥ ॥ २ ॥ वाहूयोजनमात्रेणव्यापृतौतस्यरक्षसः ॥ कवंधोनामदैत्येंद्रःसर्वसत्वविहिंसकः ॥ ३ ॥ तद्वाह्वोर्मध्यदेशेतौचरंतौरामलक्ष्मणौ ॥ ददर्शतुमहासत्त्वंतद्वाहुपरिवेष्टितौ ॥ ४ ॥ रामःप्रोवाचविहसन्पश्यलक्ष्मणराक्षसम् ॥ शिरःपादविहीनोऽयंयस्यवक्षसिचाननम् ॥ ५ ॥ वाहुभ्यांलभ्यतेयद्यत्तत्तद्भक्षन्स्थितोध्रुवम् ॥ आवामप्येतयोर्वाह्वोर्मध्येसंकलितौध्रुवम् ॥ ६ ॥

भक्षणकरकै इस वनमें रहता है; हम दोनों भी इसकी बाहोंमें फँसे हैं ॥ ६ ॥ हे रघुनंदन ! राक्षसकी बाहोंसे निकलनेका कोई मार्ग नहीं दिखाई देता, इस समय हम क्या करें, यह दुरात्मा इसी घड़ी हमको भक्षण कर लेगा " ॥ ७ ॥ लक्ष्मणजी बोले,—हे राघव ! " आप इस विषयमें क्या विचार करकै विलंब कर रहे हैं ? हम दोनों जने सावधानहो इस राक्षसकी एक २ बांह काट डालें; अब विलंब न कीजिये " ॥ ८ ॥ रामचंद्रजीने लक्ष्मणजीकी बात मान तीखे खड्गसे राक्षसका दहिना हाथ काटडाला और लक्ष्मणजीनेभी तत्काल उसका बायां हाथ काटडाला ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त दैत्येन्द्र राक्षसने अति विस्मित होकर कहा—तुम दोनों जनोंका नाम क्या है ? तुमने कहाँसे आयकर हमारी दोनों बाँहैं काटडालीं ? बड़े आश्चर्यकी बात है कि देवलोकमें वा देवताओंमें हमारी भुजाओंके काटनेवाले कौन हो ? " ॥ १० ॥ इसके उपरान्त राजीवलोचन श्री रामचंद्रजी हँसकर बोले, " अयोध्याके राजा श्रीमान् महाराज दशरथजीके ॥ ११ ॥ हम पुत्र हैं; हमारा नाम राम है; यह श्रेष्ठ बुद्धिवाले लक्ष्मण हमारे छोटे भ्राता हैं, त्रिलोकीमें अति सुन्दरी जनककुमारी सीता हमारी भार्या हैं ॥ १२ ॥ हम तीनों जने इस वनमें आयेथे; एक दिन हम दोनों जने मृगयाको गयेथे ; उसी अवसरमें किसी दुरात्मा राक्षसने उनको हरण कर लिया । हम उनकोही ढूंड़ते हुए इस घोर वनमें आ येहैं ॥ १३ ॥ हे दैत्येंद्र ! हमने तुम्हारी बाहोंमें पड़कर अपने प्राणोंकी रक्षा करनेको तुम्हारी दोनों बांहैं काट डाली हैं । हे महाबलवान् ! तुम्हारा

गंतुमन्यत्रमार्गोनदृश्यतेरघुनंदन ॥ किंकर्तव्यमितोऽस्माभिरिदानींभक्षयेत्सनौ ॥७॥ लक्ष्मणस्तमुवाचेदंकिंविचारेणराघव ॥ आवामे
कैकमव्यग्रौछिंद्यांरक्षोभुजौध्रुवम् ॥ ८ ॥ तथेतिरामःखड्गेनभुजंदक्षिणमच्छिनत् ॥ तथैवलक्ष्मणोवामंचिच्छेदभुजमंजसा ॥ ९ ॥ ततो
ऽतिविस्मितोदैत्यःकौयुवांसुरपुंगवौ ॥ मद्बाहुच्छेदकौलोकेदिविदेवेषुवाकुतः ॥ १० ॥ ततोऽब्रवीद्धसन्नेवरामोराजीवलोचनः ॥ अयो
ध्याधिपतिःश्रीमान्राजादशरथोमहान् ॥ ११ ॥ रामोऽहंतस्यपुत्रोऽसौभ्रातामेलक्ष्मणःसुधीः ॥ ममभार्याजनकजासीतात्रैलोक्यसुं
दरी ॥ १२ ॥ आवांमृगययायातौतदाकेनापिरक्षसा ॥ नीतांसीतांविचिन्वंतौचागतौघोरकानने ॥ १३ ॥ बाहुभ्यांवेष्टितावत्रतवप्राण
रिरक्षया ॥ छिन्नौतवभुजौत्वंचकोवाविकटरूपधृक् ॥ १४ ॥

विकटरूप देखकर हम विस्मित होगये हैं, इस समय अपना पता बताकर हमारी अभिलाषा पूर्ण करो। " ॥ १४ ॥ कबन्ध बोला,—" हे राम! आज तुमने मेरे सन्मुख आयकर दर्शन दिये हैं, इससें मैं धन्य होगया। मेरा वृत्तान्त सुनो, पूर्वकालमें रूपयौवनसे गर्वित मैं गन्धर्वोंका राजाथा॥ १५॥ मैं श्रेष्ठ स्त्रियोंके मनोंका हरनेवाला सब लोकोंमें घूमा करताथा; हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ! मेरे घोर तप करनेसे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने मुझे अमर किया ॥ १६ ॥ हे रघुनंदन! महा प्रतापी अष्टावक्र मुनिको देखकर मैं हँसाथा । महातपस्वी अष्टावक्रजीने क्रोधित होकर मुझको शाप दिया " रे दुर्मते! दुष्टस्वभाव ! तू राक्षस होकर समय विता! " ॥ १७ ॥ मैंनें उनका वचन सुनतेही व्याकुल होकर भाँति २ से विनय वंदनाकर मुनिको प्रसन्न किया; इसकें उपरान्त दया स्वभाव वाले तपसे प्रकाशमान हुए ऋषिश्रेष्ठने मेरे शापका अंत इस प्रकारसे कहा कि ॥ १८ ॥ " त्रेता युगमें भगवान् नारायण साक्षात् दशरथजीके यहाँ पुत्ररूप होकर इस वनमें आवेंगे; और योजन भरकी लंबी इन तेरी बांहोंको काट डालेंगे ॥ १९॥ तब तू शापसे छूटकर अपने पहले रूपको प्राप्त होगा। " जैसेही यह शापदेकर महर्षि अंतर्ध्यान हो गये; ऐसेही मैं अपनेको राक्षसके आकारमें देखने लगा ॥ २० ॥ हे रघुनंदन! एक दिन मैं क्रोधके सहित राक्षसरूपसें देवराज इन्द्रके ऊपर दौड़ाथा; तब देवराज इन्द्रने क्रोधित होकर मेरे शिरपर वज्र मारा ॥ २१ ॥ हे रघुनंदन! इस वज्रके लगनेसे मेरा मस्तक और दोनों पाँव कोशमें घुस गये; केवल ब्रह्माजीके दिये हुए वरके प्रभावसे वज्र लगनेपरभी मेरी मृत्यु न हुई ॥ २२ ॥ मुझको मुखरहित देख सब देवता दयाके वशहो देवराज इन्द्रसे बोले कि—" हे देवराज! यह

कवंधउवाच ॥ धन्योऽहंयदिरामस्त्वमागतोऽसिममांतिकम् ॥ पुरागंधर्वराजोऽहंरूपयौवनदर्पितः ॥ १५ ॥ विचरँल्लोकमखिलंवरनारी मनोहरः ॥ तपसाब्रह्मणोलब्धमवध्यत्वंरघूत्तम ॥ १६ ॥ अष्टावक्रंमुनिंदृष्ट्वाकदाचिदहसंपुरा ॥ क्रुद्धोऽसावाहदुष्टत्वंराक्षसोभवदुर्मते ॥ ॥ १७ ॥ अष्टावक्रःपुनःप्राहवंदितोमेदयापरः ॥ शापस्यांतंचमेप्राहतपसाद्योतितप्रभः ॥ १८ ॥ त्रेतायुगेदाशरथिर्भूत्वानारायणःस्वयम् ॥ आगमिष्यतितेबाहूछिद्येतेयोजनायतौ ॥१९ ॥ तेनशापाद्विनिर्मुक्तोभविष्यसियथापुरा ॥ इतिशप्तोऽहमद्राक्षंराक्षसींतनुमात्मनः ॥ २० ॥ कदाचिद्देवराजानमभ्यद्रवमहंरुषा ॥ सोऽपिवज्रेणमांरामशिरोदेशेऽभ्यताडयत् ॥ २१ ॥ तदाशिरोगतंकुक्षिंपादौचरघुनंदन॥ ब्रह्मदत्तवरान्मृत्युर्नाभून्मेवज्रताडनात्॥२२॥ मुखाभावेकथंजीवेदयमित्यमराधिपम्॥ ऊचुःसर्वेदयाविष्टामांविलोक्यास्यवर्जितम्॥२३ ॥

राक्षस विना मुखके कैसे जीवन धारण कर सकैगा " ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त इन्द्रने मुझसे कहाकि " हे राक्षस ! तेरा शिर पेटमें जमजायगा; और तेरी दोनों बांहैं चार कोशकी लंबी हो जांयगी । अब यहाँसे चलाजा " ॥ २४ ॥ हे पापरहित ! देवराज इन्द्रसे इस प्रकार कहा जाकर मैं तबसे लेकर इसी स्थानमें रहताहूं और इन दोनों बड़ी बांहोंसे बनैले जीवोंको ग्रहणकर भक्षण किया करताहूं । मेरे जीवनकी उपाय यह दोनोंबांहैं इस समय आप करके काट डालीं गईं ॥ २५ ॥ करुणामय ! विलम्ब न करो अति शीघ्र एक गढेके भीतर जिसमें अग्नि जलती हो मुझे डाल दो । हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ ! आपके द्वारा अग्निमें दग्ध होनेसे मैं तुमसे ॥ २६ ॥ अपने पहिलेको प्राप्त रूप होकर सीताका समस्त वृत्तान्त कहूंगा। " जब राक्षस

ततोमांप्राहमघवाजठरेतेमुखंभवेत् ॥ बाहूतेयोजनायामौभविष्यतइतोव्रज ॥ २४ ॥ इत्युक्तोऽत्रवसन्नित्यंबाहुभ्यांवनगोचरान् ॥ भक्ष
याम्यधुनाबाहूखंडितौमेत्वयाऽनघ ॥ २५ ॥ इतःपरंमांश्वभ्रास्येनिक्षिपाग्नींधनावृते ॥ अग्निनादह्यमानोऽहंत्वयारघुकुलोत्तम ॥ २६ ॥
पूर्वरूपमनुप्राप्यभार्यामार्गंवदामिते ॥ इत्युक्तेलक्ष्मणेनाशुश्वभ्रंनिर्मायतत्रतम् ॥ २७ ॥ निक्षिप्यप्रादहत्काष्ठैस्ततोदेहात्समुत्थितः ॥
कंदर्पसदृशाकारःसर्वाभरणभूषितः ॥ २८ ॥ रामंप्रदक्षिणंकृत्वासाष्टांगंप्रणिपत्यच ॥ कृतांजलिरुवाचेदंभक्तिगद्गदयागिरा ॥ २९ ॥
गंधर्वउवाच ॥ ॥ स्तोतुमुत्सहतेमेऽद्यमनोरामातिसंभ्रमात् ॥ त्वामनंतमनाद्यंतंमनोवाचामगोचरम् ॥ ३० ॥ सूक्ष्मंतेरूपमव्यक्तंदेह
द्वयविलक्षणम् ॥ दृग्रूपमितरत्सर्वंदृश्यंजडमनात्मकम् ॥ तत्कथंत्वांविजानीयाद्व्यतिरिक्तंमनःप्रभो ॥ ३१ ॥

यह कह चुप हो रहा तब लक्ष्मणजीने अति शीघ्र एक बड़ा गढ़ा खोदा, और उसमें कबन्धका शरीर डालकर काठसे जलाने लगे तब उस राक्षसकी देहसे कामदेवके समान एक पुरुष सर्व भूषण पहिरे हुए निकला ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ रामचंद्रकी प्रदक्षिणा और साष्टांग प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए वह गद्गद होकर बोला ॥ २९ ॥ गंधर्वने कहा;— " हे राम ! तुम्हैं सर्वव्यापी, अनादि, अनन्त, और वाक्य वा मनके अगोचर जानकरभी मेरा मन अत्यन्त प्रीतिके हेतु करकै तुम्हारी स्तुति करनेका उत्साह करता है ॥ ३० ॥ हे भगवन् ! वह सब स्तुतिके वाक्य केवल विफलही हैं, तुम्हारी हिरण्यगर्भ मूर्ति और विराट् मूर्तिसे अलग जो तुम्हारी ज्ञानस्वरूप मूर्ति है, उसको योगी लोगभी नहीं जान सकते इसके सिवाय दृश्य

वस्तु समस्तही जड़ पदार्थ हैं अतएव तुमसे अलग हुआ मन तुमको किसप्रकारसे जानेगा ? ॥ ३१ ॥ चित्त और चित्तमें आत्मप्रतिबिम्ब; इन दोनोंको अभेद जाननेका पदार्थही जीव है । यह जीव इन समस्त जड़ पदार्थोंका साक्षी नहीं है; शुद्ध चैतन्यस्वरूप ब्रह्मपदार्थही समस्त जड़ जगत्का साक्षी और अन्तर्यामी है, क्योंकि वाणी और मनके परे वह ब्रह्म पदार्थही इस समस्त ब्रह्माण्डमें विराजमान रहता है । हे रघुनंदन ! मनुष्य गण आपको वही निर्विकार, सर्वस्वरूप ब्रह्म पदार्थ जानकर आपमें ॥ ३२ ॥ अज्ञानके वश होकर—समस्त लिंग देह, समष्टिरूप, हिरण्यगर्भ मूर्त्तिका और स्थूल देह समष्टिरूप विराट् मूर्त्तिका आरोप किया करते हैं ॥ ३३ ॥ हे राम ! आप निश्चिन्त नहीं हैं—क्योंकि जो लोग आपका स्मरण करते हैं; उनको अपने लोकके देनेकोही मंगल समझते हैं यह चिन्ता आपके हृदयकमलमें सदा जागती रहती है; भूत, भविष्य, वर्तमान सब इस चिन्ताहीसे मिले हुए हैं ॥ ३४ ॥ हे भगवन् ! महदादि सात आवरणसे आवृत जो आपका स्थूल विराट् देह है उस विराट् देहमें विश्वधारणकी शक्ति है ॥ ३५॥हे जगदीश्वर ! आपही सबको मुक्ति देनेवाले हैं; और सब लोग आपहीकी विराट् मूर्त्तिके अंगोंमें वास करते हैं, क्योंकि पाताल लोक इस देहके पाँवोंका तलुवा है, महातल लोक एड़ी है ॥ ३६ ॥ रसातल लोक पांवकी गांठे हैं, तलातल लोक आपके विराट् देहकी पिंडली हैं; सुतल लोक घुटने हैं, वितल लोक जांघें हैं ॥ ३७ ॥ अतल लोक जांघके नीचेका भाग; और पृथ्वी जांघके ऊपरका भाग है । भुवर्लोक नाभिमें है, उर स्थलमें अर्थात् छातीमें स्वर्गलोक और गर्दनमें महर्लोक है॥ ३८ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! इस देहके मुखमंडलमें जनलोक, ललाटमें तपलोक है । हे

बुद्ध्यात्माभासयोरैक्यंजीवइत्यभिधीयते ॥ बुद्ध्यादिसाक्षीब्रह्मैवतस्मिन्निर्विषयेऽखिलम् ॥ ३२ ॥ आरोप्यतेज्ञानवशान्निर्विकारेऽखिलात्मनि ॥ हिरण्यगर्भस्तेसूक्ष्मंदेहंस्थूलंविराट्स्मृतम् ॥ ३३ ॥ भावनाविषयोरामसूक्ष्मंतेध्यातृमंगलम् ॥ भूतंभव्यंभविष्यच्चयत्रेदंदृश्यतेजगत् ॥ ३४ ॥ स्थूलेंऽडकोशेदेहेतेमहदादिभिरावृते ॥ सप्तभिरुत्तरगुणैर्वैराजोधारणाश्रयः ॥ ३५ ॥ त्वमेवसर्वकैवल्यंलोकास्तेऽवयवाःस्मृताः ॥ पातालंतेपादमूलंपार्ष्णिस्तवमहातलम् ॥ ३६ ॥ रसातलंतेगुल्फौतुतलातलमितीर्यते ॥ जानुनीसुतलंरामऊरूतेवितलंतथा ॥ ३७ ॥ अतलंचमहीरामजघनंनाभिगंनभः ॥ उरःस्थलंतेज्योतींषिग्रीवातेमहरुच्यते ॥ ३८ ॥ वदनंजनलोकस्तेपतस्तेशंखदेशगम् ॥ सत्यलोकोरघुश्रेष्ठशीर्षण्यास्तेसदाप्रभो ॥ ३९ ॥

प्रभो ! इस शरीरके मस्तकमें सत्यलोक है ॥ ३९ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! इन्द्रादि लोकपाल गण आपकी बांहोंमें वास करते हैं; दोनों कानोंमें दशों दिशा, अश्विनीकुमार नासिकाके दोनों स्वरोंमें, अग्नि मुखमें ॥ ४० ॥ दोनों नेत्रोंमें सूर्य, मनमें चंद्रमा, भ्रुवोंके बीचमें निमिषादि काल, बुद्धिमें बृहस्पति ॥ ४१ ॥ अहंकारमें रुद्र, । और हे अमर ! वाक्यमें सब वेद वास करते हैं । हे राम ! डाढ़में यमराज, दांतोंमें नक्षत्रगण ॥ ४२ ॥ हँसनेमें सबको मोहनेवाली माया, कटाक्षमें सृष्टि, सामने धर्म, पीछे अधर्म रहा करता है ॥ ४३ ॥ नेत्रोंमें पलक लगनेके समय रात्रि, पलक खोलनेमें दिन है । हे रघुवर ! सात समुद्र इस देहकी कोख हैं, हे प्रभो ! नाडियोंमें सब नदिये हैं ॥ ४४ ॥ वृक्ष और दवाइयें इस देहके रुँवे हैं; वीर्य

इंद्रादयोलोकपालाबाहवस्तेदिशःश्रुती ॥ अश्विनौनासिकेरामवक्त्रंतेऽग्निरुदाहृतः ॥ ४० ॥ चक्षुस्तेसवितारामनश्चंद्रउदाहृतः ॥ भ्रू
भंगएवकालस्तेबुद्धिस्तेवाक्पतिर्भवेत् ॥४१॥ रुद्रोऽहंकाररूपस्तेवाचश्छंदांसितेऽव्यय ॥ यमस्तेदंष्ट्रदेशस्थोनक्षत्राणिद्विजालयः॥४२॥
हासोमोहकरीमायासृष्टिस्तेऽपांगमोक्षणम् ॥ धर्मःपुरस्तेऽधर्मश्चपृष्ठभागउदीरितः ॥ ४३ ॥ निमिषोन्मेषणेरात्रिर्दिवाचैवरघूत्तम ॥
समुद्राःसप्ततेकुक्षिर्नाड्योनद्यस्तवप्रभो ॥ ४४ ॥ रोमाणिवृक्षौषधयोरेतोवृष्टिस्तवप्रभो ॥ महिमाज्ञानशक्तिस्तेएवंस्थूलंवपुस्तव॥४५॥
यदस्मिन्स्थूलरूपेतेमनःसंधार्यतेनरैः ॥ अनायासेनमुक्तिःस्यादतोऽन्यन्नहिकिंचन ॥ ४६ ॥ अतोऽहंरामरूपंतेस्थूलमेवानुभावये ॥
यस्मिन्ध्यातेप्रेमरसःसरोमपुलकोभवेत् ॥ ४७ ॥ तदैवमुक्तिःस्याद्रामयदातेस्थूलभावकः ॥ तदप्यास्तांतवैवाहमेतद्रूपंविचिंतये॥४८॥

वृष्टि और इस देहकी महिमा ज्ञानशक्ति है; यह आपका स्थूल शरीर है ॥ ४५ ॥ हे राम ! इस प्रकार आपके ऐसे स्थूल शरीरमें जो लोग मन लगाए हैं उनको सरलतासे मुक्ति मिल जाती है; हे राम ! आपकी विराट् मूर्त्तिसे अलग कोईभी पदार्थ इस जगत्में नहीं है ॥ ४६ ॥ इस कारण नित रामरूपका ध्यान करनेसे प्रेमरस, और प्रेमरससे सर्व शरीर रोमाञ्चित हो जाय है, इस रामरूपकोही विराट् देह समझताहूं ॥ ४७ ॥ हे भगवन् ! जो विराट् रूपको रामरूप समझ कर मनुष्यगण मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकें; और केवल उस विराट् मूर्त्तिका ध्यानही मुक्तिका कारण होवे, तौभी मैं रामरूप छोड़कर मुक्तिके लिये केवल विराट्रूप ध्यान करनेकी इच्छा नहीं करता; परंतु यह प्रार्थना करताहूं कि मेरे नेत्रोंके आगे ॥४८॥

धनुषबाणधारी, जटा वल्कलसे शोभायमान नयी दूवके समान श्यामरूप, सीताजीको खोजनेके लिये जैसी अवस्थाको प्राप्त हुआ है; उसी अवस्थामें लक्ष्मणजीके सहित ॥ ४९ ॥ आपका यह रामरूप सदा जागता रहै । हे रघुनंदन ! साक्षात् सर्वज्ञ शंकरजी भवानीजीके साथ मिलकर ॥ ५० ॥ सदा आपके इस रामरूपका ध्यानकरते रहते हैं। और काशीक्षेत्रमें मरतेहुए पुरुषके कानमें ब्रह्मवाचक रामनाम स्वरूप तारकमन्त्र उपदेश करके ॥ ५१ ॥ परमानंद लाभ करते हैं, हेजानकीनाथ ! उन सब कारणोंसे मैं आपको परमात्मा निश्चय किये हुए हूं ॥ ५२ ॥ मूढ़लोक आपकी संसार मोहनेवाली मायासे मोहित होकर आपको नहीं जान सक्के; इसप्रकारसबके रचनेवाले परमात्मा रामभद्र आप

धनुर्वाणधरंश्यामंजटावल्कलभूषितम् ॥ अपीच्यवयसंसीतांविचिन्वंतंसलक्ष्मणम् ॥ ४९ ॥ इदमेवसदामेस्यान्मानसेरघुनंदन ॥ सर्वज्ञः शंकरःसाक्षात्पार्वत्यासहितःसदा ॥ ५० ॥ त्वद्रूपमेवंसततंध्यायन्नास्तेरघूत्तम ॥ मुमूर्षूणांसदाकाश्यांतारकंब्रह्मवाचकम् ॥ ५१ ॥ रामरामेत्युपदिशन्सदासंतुष्टमानसः ॥ अतस्त्वंजानकीनाथपरमात्मासुनिश्चितः ॥ ५२ ॥ सर्वेतेमायया मूढास्त्वांनजानंतितत्त्वतः ॥ नमस्तेरामभद्रायवेधसेपरमात्मने ॥ ५३ ॥ अयोध्याधिपतेतुभ्यंनमःसौमित्रिसेवित ॥ त्राहित्राहिजगन्नाथमांमायानावृणोतुते ॥ ५४ ॥ रामउवाच ॥ तुष्टोऽहंदेवगंधर्वभक्त्यास्तुत्याचतेऽनघ ॥ याहिमेपरमंस्थानंयोगिगम्यंसनातनम् ॥ ५५ ॥ जपंतियेनित्यमनन्यबुद्ध्या भक्त्यात्वदुक्तंस्तवमागमोक्तम् ॥ तेज्ञानसंभूतभवंविहायमांयांतिनित्यानुभवानुमेयम् ॥ ५६ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेऽरण्यकांडेनवमःसर्गः ॥ ९ ॥

को मेरा नमस्कारहै ॥ ५३ ॥ हे अयोध्यानाथ ! लक्ष्मणजीसे सेवित हुए तुमको नमस्कार है ! हे जगन्नाथ ! मेरी रक्षा कीजिये । आपकी सर्वलोक मोहिनी माया मुझको न ढकले । " ॥ ५४ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले " हे गन्धर्वराज ! मैं तुम्हारी ऐसी भक्ति और स्तुतिसे प्रसन्न हुआ; जिसको योगी लोग बहुतसी तपस्यासे प्राप्त किया करते हैं; इससमय तुम हमारे उसी नित्य परमधामको चले जाओ॥५५॥ हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ! जो लोग एकांत चित्तसे भक्तिके साथ तुम्हारा कहा हुआ यह स्तोत्र पढ़ेंगे; वे इस लोकमें सब जगह न पायकर अज्ञानसे उत्पन्नहुए संसारबंधनको छोड़ अन्तकाल में मुझे प्राप्तकरलेंगे ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकांडे भाषाटीकायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ शबरीसंवाद ॥

श्रीरामचंद्रजीसे वर पाय चलनेके समय गंधर्वराजा बोला "हे रघुनंदन ! यहाँसे दिखाई देतेहुए आश्रममें एक शबरी रहतीहै ॥ १ ॥ भक्तिमार्ग की जानने वाली है, आपके चरणकमलमें मन लगायेहुए है । हे महाभाग ! आप उसके निकट जाइये, वह सब बातें विस्तारसहित आपसे कहैगी " ॥ २ ॥ श्रीरामचंद्रजीसे यह सब वृत्तान्त कहकर गंधर्वराज, सूर्यके समान उज्ज्वल विमानपर सवारहो वैकुण्ठधामको चला गया । मनुष्यगण रामनाम स्मरणकरनेसे सहजसेही ऐसा फल पायसक्के हैं ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त लक्ष्मणजीके साथ सिंह व्याघ्रादि दूषित उस भयंकर वनको छोड़ श्रीरामचंद्रजी धीरे २ चलतेहुए शबरीके आश्रममें आये ॥ ४ ॥ भक्तिपरायण शबरी लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचंद्रजीको आया हुआ देखकर

लब्ध्वावरंसगंधर्वःप्रयास्यन्त्राममब्रवीत् ॥ शबर्यास्तेपुरोभागेआश्रमेरघुनंदन ॥ १ ॥ भक्त्यात्वत्पादकमलेभक्तिमार्गविशारदा ॥ तां
प्रयाहिमहाभागसर्वंतेकथयिष्यति ॥ २ ॥ इत्युक्त्वाप्रययौसोऽपिविमानेनार्कवर्चसा ॥ विष्णोःपदंरामनामस्मरणेफलमीदृशम् ॥ ३ ॥
त्यक्त्वातद्विपिनंघोरंसिंहव्याघ्रादिदूषितम् ॥ शनैरथाश्रमपदंशबर्यारघुनंदनः ॥ ४ ॥शबरीराममालोक्यलक्ष्मणेनसमन्वितम् ॥ आयां
तमाराद्धर्षेणप्रत्युत्थायाचिरेणसा ॥ ५ ॥ पतित्वापादयोरग्रेहर्षपूर्णाश्रुलोचना ॥ स्वागतेनाभिनंद्याथस्वासनेसन्न्यवेशयत् ॥ ६ ॥ राम
लंक्ष्मणयोःसम्यक्पादौप्रक्षाल्यभक्तितः ॥ तज्जलेनाभिषिच्यांगमथार्घ्यादिभिरादृता ॥ ७ ॥ संपूज्यविधिवद्रामंससौमित्रिंसपर्यया ॥
संगृहीतानिदिव्यानिरामार्थंशबरीमुदा ॥ ८ ॥ फलान्यमृतकल्पानिददौरामायभक्तितः ॥ पादौसंपूज्यकुसुमैःसुगंधैःसानुलेपनैः ॥ ९ ॥
कृतातिथ्यंरघुश्रेष्ठमुपविष्टंसहानुजम् ॥ शबरीभक्तिसंपन्नाप्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १० ॥

सहसा आनंदसहित उठी ॥ ५ ॥ और श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें गिरी । नेत्रोंमें आनंदके आंसूभर, कुशलप्रश्न पूंछ श्रीरामचन्द्रजीको उत्तम आसन पर बैठाया ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त भक्तिसहित रामचंद्रजी व लक्ष्मणजीका चरणामृत ले, उस चरणामृतको अपने अंगोंपर छिड़का । फिर आदर व अर्घ्यादि सहित ॥ ७ ॥ विधिविधानसे रामचन्द्र व लक्ष्मणजीकी पूजा की, तपके प्रभावसे श्रीरामचंद्रजीके आनेका वृत्तान्त जान जो फल शबरीने इकट्ठे कररक्खे थे ॥ ८ ॥ वह अमृतके समान फल भक्तिपूर्वक रामचंद्रजीको दिये, और चन्दन सहित सुगंधित फूलोंसे रामचंद्रजी के चरणकमलका पूजन करती हुई ॥ ९ ॥ श्रीरामचंद्रजीभी शबरीकी कीहुई पहुनई अंगीकार करके लक्ष्मणजीके साथ उस आश्रममें विराजमान

हुए । फिर भक्तिमती शबरीने हाथ जोड़कर श्रीरामचंद्रजीसे कहा॥१०॥ "हे रघुश्रेष्ठ ! पहिले समयमें इस आश्रमके मध्य हमारे परमगुरु महर्षि लोग वास करतेथे; मैं उनकी सेवा करतीहुई हजारोंवर्षोंसे यहां रहतीहूं, इससमय वह महर्षिगण ब्रह्मलोकको चले गये; जानेके पहिले उन्होंने मुझसे यह आज्ञाकी थी कि "बेटा ! तुम समाधि अवलंबन करके इसी आश्रममें वास करो ॥ ११ ॥ १२ ॥ सनातन परमात्माने राक्षसकुलका विनाश और ऋषियोंकी रक्षाकरनेके लिये दशरथजीके पुत्र होकर अवतार लिया है ॥ १३ ॥ वे शीघ्र इस स्थानमें आवेंगे, तुम स्थिरचित्तसे ध्यान लगाय उन विष्णुजीके आनेकी बाट देखो; इससमय प्रभु चित्रकूट पर्वतके आश्रममें वास करते हैं ॥ १४ ॥ जबतक भगवान्‌जी इसस्थानमें न आवें, तब तक शरीर धारण किये रहो, भगवान्‌का आगमन देखतेही अनलमें अपनी देहको जलाय विष्णुलोक वैकुण्ठको गमनकरना । " ॥ १५ ॥ हे राम !

अत्राश्रमेरघुश्रेष्ठगुरवोमेमहर्षयः ॥ स्थिताःशुश्रूषणंतेषांकुर्वतीसमुपस्थिता ॥११॥ बहुवर्षसहस्राणिगतास्तेब्रह्मणःपदम् ॥ गमिष्यंतोऽब्रुवन्मांत्वंवसात्रैवसमाहिता ॥ १२ ॥ रामोदाशरथिर्जातःपरमात्मासनातनः ॥ राक्षसानांवधार्थायऋषीणांरक्षणायच ॥ १३ ॥ आगमिष्यतिचैकाग्रध्याननिष्ठास्थिराभव ॥ इदानींचित्रकूटाद्रावाश्रमेवसतिप्रभुः ॥ १४ ॥ यावदागमनंतस्यतावद्रक्षकलेवरम् ॥ दृष्ट्वैवराघवंदग्ध्वादेहंयास्यसितत्पदम् ॥ १५ ॥ तथैवाकरवंरामत्वद्ध्यानैकपरायणा ॥ प्रतीक्ष्यागमनंतेऽद्यसफलंगुरुभाषितम् ॥ १६ ॥ तवसंदर्शनंरामगुरूणामपिमेनहि ॥ योषिन्मूढाऽप्रमेयात्मन्हीनजातिसमुद्भवा ॥ १७ ॥ तवदासस्यदासानांशतसंख्योत्तरस्यवा ॥ दासीत्वेनाधिकारोऽस्तिकुतःसाक्षात्तवैवहि ॥ १८ ॥ कथंरामाद्यमेदृष्टस्त्वंमनोवागगोचरः ॥ स्तोतुंनजानेदेवेशकिंकरोमिप्रसीदमे ॥ १९ ॥

मैं तुम्हारे ध्यानकाही अवलंबन किये गुरुजीके उपदेशके अनुसार तुम्हारे आनेकी बाट देखरहीहूं; इससमय गुरुलोगोंका वाक्य सफल हुआ ॥१६॥ हे भगवन् ! हमारे गुरुलोगभी आपके दर्शनको प्राप्त नहीं करसके । हे अप्रमेयात्मन् ! मैं अतिमूढ़ स्त्रीजाति हूं, नीचकुलमें उत्पन्न हुईहूं ॥ १७ ॥ आपके दासोंके जो दासहैं, फिर उनके जो दासहैं; इसभांति सौतक गिनकर अंतमें जो दास कहावै उस दासके होनेकाभी मुझको अधिकार नहीं; इसकारण आपके दर्शनका होना मेरेलिये अत्यन्त असंभव था ॥ १८॥ हे दशरथकुमार ! आप वाणी और मनके अगोचर पदार्थ हैं; फिर आज किस प्रकारसे मैंने आपका दर्शन प्राप्त किया ? हे देवदेव ! " मैं स्तुति करना नहीं जांनती, क्या करूं, अपने गुणसे आपही मेरे ऊपर प्रसन्न होवें " ॥ १९ ॥

श्रीरामचंद्रजी बोले।"स्त्री जाति हो, वा पुरुष, श्रेष्ठ जातिहो, वा नीच जातिहो, प्रसिद्धहो या अप्रसिद्ध नामवालाहो, उत्तम आश्रमका अवलंबनकारी हो, वा अधमाश्रमका आचारी हो, भक्तिहोनेसे मेरे भजन करनेका अधिकारी होसक्ताहै ॥ २० ॥ हे तापसि ! मेरी भक्तिसे विमुख हुए लोग, यज्ञ दान तपस्या और वैदिककार्योंका अनुष्ठान करनेपरभी कभी मेरा दर्शन प्राप्त नहीं करसक्के ॥ २१ ॥ हे भामिनी ! इसकारण अपनी भक्तिका उपाय तुम्हारे निकट संक्षेपसे कहताहूं श्रवणकरो—सत्संग करना मेरी भक्ति का प्रथम उपाय है ॥ २२ ॥ मेरी कथा कहना सुनना अथवा रामाययणादिकी चरचा करना कराना दूसरा उपाय है; मेरे गुणोंका बखान करना तीसरा उपाय है; मेरे स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाले उपनिषदादि की व्याख्या करना चौथा उपाय है ॥ २३ ॥ कपटरहितहो गुरुमें ईश्वरबुद्धि करके उनकी पूजा करना पांचवां उपाय है;—पवित्र स्वभाव, नियम, आसन, प्राणायाम, निर्लोभता, यम, ध्यान, धारणा, समाधि ॥ २४ ॥ और प्रतिदिन मेरी पूजाकरनेमें तत्पर रहनां मेरी भक्तिका छठा उपाय है; मेरे मंत्रका जप करना सातवां उपाय है ॥ २५ ॥ मेरे भक्तोंकी पूजा करना; सर्व प्राणियोंमें ईश्वरबुद्धि रखनां, बाहरीमें वैराग्य करना, मन आदि इंद्रियोंका वशकरना ॥ २६ ॥ अष्टम उपाय है; हे भामिनी ! ब्रह्मतत्त्वका विचार करना मेरी भक्तिका नौवां उपायहै, इन नव प्रकारकी भक्तिमेंसे जो एक भक्तिभी किसीमेंहो ॥ २७ ॥ हेशुभ लक्षणे ! स्त्री पुरुष, या तिर्यगयोनिको प्राप्तहुए शूकरादिमेंभी जो इनमेंसे कोई भक्ति होवे, तो उसको मेरी प्रेमलक्षणा

श्रीरामउवाच ॥ पुंस्त्वेस्त्रीत्वेविशेषोवाजातिनामाश्रमादयः ॥ नकारणंयद्भजनेभक्तिरेवहिकारणम् ॥२०॥ यज्ञदानतपोभिर्वेदाध्ययनकर्मभिः ॥ नैवद्रष्टुमहंशक्योमद्भक्तिविमुखैःसदा ॥ २१ ॥ तस्माद्भामिनिसंक्षेपाद्वक्ष्येऽहंभक्तिसाधनम् ॥ सतांसंगतिरेवात्रसाधनंप्रथमं स्मृतम् ॥२२॥ द्वितीयंमत्कथालापस्तृतीयंमद्गुणेरणम् ॥ व्याख्यातृत्वंमद्वचसांचतुर्थंसाधनंभवेत् ॥२३॥ आचार्योपासनंभद्रेमद्बुद्ध्याऽमाययासदा ॥ पंचमंपुण्यशीलत्वंयमादिनियमादिच ॥ २४ ॥ निष्ठामत्पूजनोनित्यंषष्ठंसाधनमीरितम् ॥ मममंत्रोपासकत्वंसांगंसप्तममुच्यते ॥ २५ ॥ मद्भक्तेष्वधिकापूजासर्वभूतेषुमन्मतिः ॥ बाह्यार्थेषुविरागित्वंशमादिसहितंतथा ॥ २६ ॥ अष्टमंनवमंतत्त्वविचारोमम भामिनि ॥ एवंनवविधाभक्तिःसाधनंयस्यकस्यवा ॥ २७ ॥ स्त्रियावापुरुषस्यापितिर्यग्योनिगतस्यवा ॥ भक्तिःसंजायतेप्रेमलक्षणा शुभलक्षणे ॥ २८ ॥

भक्ति होती है– ॥ २८ ॥ भक्ति उत्पन्न होतेही ब्रह्मतत्त्वका निरूपण होता है, अर्थात् मेरे स्वरूपका ज्ञान हो जाता है। इस ज्ञानके प्राप्त होतेही इसी जन्ममें मुक्ति हो जाती है ॥ २९ ॥ इससे निश्चय रक्खों कि भक्तिही मुक्तिका प्रथम कारण है; जिन पुरुषोंको प्रथम भक्ति सिद्ध होती है; फिर उसको धीरे २ ॥ ३० ॥ औरभी सब उपाय आजाते हैं; इस कारण वे लोग पहले भक्ति और फिर मुक्तिको निश्चयही प्राप्त कर सकते हैं; हे भद्रे! जब कि मुझमें तुम्हारी एकान्त भक्ति उत्पन्न होगई है; इस लिये मैंने स्वयं इस स्थानमें आनकर तुमको दर्शन दिये ॥ ३१ ॥ हमारे इस दर्शनसे निश्चयही तुम्हारी मुक्ति हो जायगी;–जो जानती हो तौ कहो कि हमारी कमललोचना सीता ॥ ३२ ॥ किस स्थानमें हैं?

भक्तौसंजातमात्रायांमत्तत्त्वानुभवस्तदा ॥ ममानुभवसिद्धस्यमुक्तिस्तत्रैवजन्मनि ॥ २९ ॥ स्यात्तस्मात्कारणंभक्तिर्मोक्षस्येतिसुनिश्चितम् ॥ प्रथमंसाधनंयस्यभवेत्तस्यक्रमेणतु ॥ ३० ॥ भवेत्सर्वंततोभक्तिर्मुक्तिरेवसुनिश्चितम् ॥ यस्मान्मद्भक्तियुक्तात्वंततोऽहंत्वामुपस्थितः ॥ ३१ ॥ इतोमद्दर्शनान्मुक्तिस्तवनास्त्यत्रसंशयः ॥ यदिजानासिमेब्रूहिसीताकमललोचना ॥ ३२ ॥ कुत्रास्तेकेनवानीताप्रियामेप्रियदर्शना ॥ ३३ ॥ शबर्युवाच ॥ देवजानासिसर्वज्ञसर्वंत्वंविश्वभावन ॥ तथाऽपिपृच्छसेयन्मांलोकाननुसृतःप्रभो ॥ ३४ ॥ ततोऽहमभिधास्यामिसीतायत्राधुनास्थिता ॥ रावणेनहृतासीतालंकायांवर्ततेऽधुना ॥ ३५ ॥ इतःसमीपेरामास्तेपंपानामसरोवरम् ॥ ऋष्यमूकगिरिर्नामतत्समीपेमहानगः ॥३६॥ चतुर्भिर्मंत्रिभिःसार्धंसुग्रीवोवानराधिपः ॥ भीतभीतःसदातत्रातिष्ठत्यतुलविक्रमः ॥३७॥ वालिनश्चभयाद्भ्रातुस्तदगम्यमृपेर्भयात् ॥ वालिनस्तत्रगच्छत्वंतेनसख्यंकुरुप्रभो ॥ ३८ ॥

उन प्रियदर्शना हमारी प्यारीको किस दुरात्माने हरण किया है ॥ ३३ ॥ शबरी बोली, हे प्रभो! हे देव! हे विश्वभावन! आप सर्वज्ञ हैं सब कुछ जानते हैं; तो भी लोकव्यवहारके अनुसार जो यह बात आप मुझसे पूछते हैं ॥ ३४ ॥ तो मैं सब कहती हूं कि जहाँपर सीता हैं; हे भगवन्! राक्षसोंके राजा रावणने सीताजीको हरण किया है। इस समय सीताजी लंकामें विराजमान हैं ॥ ३५ ॥ हे राम! यहांसे थोड़ीही दूर पर पंपा नामक एक सरोवर है। इस पंपाके समीपही ऋष्यमूक नामक महापर्वत है ॥ ३६ ॥ इस पर्वतपर महाबलवान् महापराक्रमी वानरराज सुग्रीव अपने चार मंत्रियोंके साथ डरते हुए वास करते हैं ॥ ३७ ॥ हे प्रभो! वानरराज सुग्रीव अपने बडे भ्राता वालिसे पराजित हुए हैं, वा

लिने उनका सर्वस्व हर लिया है; इस कारण वह भयके मारे ऋष्यमूक पर्वतपर वास करते हैं, ऋषि लोगोंने शाप देदिया है; इस कारण वाली ऋष्यमूक पर्वतपर नहीं जा सकता; इस समय आप उस स्थानमें जाय वानरराज सुग्रीवके साथ मित्रताई करैं ॥ ३८ ॥ वे आपके वांछित सब कार्योंको सिद्ध कर देंगे; हे रघुनंदन ! जब तक मैं आपके सन्मुख अग्निमें प्रवेश कर शरीर जलाय वैकुंठधाम को न चली जाऊं, तब तक इस स्थानमें आप विराजमान रहैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ श्रीरामचंद्रजीके साथ इस प्रकार संभाषण करनेके पीछे शबरी अग्निमें प्रवेश कर गई और क्षण भरके बीचमेंही अविद्यासे उत्पन्न हुई संसारकी वासनाको छोड़ श्रीरामचंद्रजीके प्रसादसे अति दुर्लभ मोक्षपदवीको प्राप्त कर लेती हुई ॥ ४१ ॥

सुग्रीवेणससर्वंतेकार्यंसंपादयिष्यति ॥ अहमग्निंप्रवेक्ष्यामितवाग्रेरघुनंदन ॥ ३९ ॥ मुहूर्तंतिष्ठराजेंद्रयावद्दग्ध्वाकलेवरम् ॥ यास्यामिभगवन्नामतवविष्णोःपरंपदम् ॥ ४० ॥ इतिरामंसमामंत्र्यप्रविवेशहुताशनम् ॥ क्षणान्निर्धूयसकलमविद्याकृतबंधनम् ॥ रामप्रसादाच्छबरी मोक्षंप्रापातिदुर्लभम् ॥ ४१ ॥ किंदुर्लभंजगन्नाथेश्रीरामेभक्तवत्सले ॥ प्रसन्नेऽधमजन्मापिशबरीमुक्तिमापसा ॥ ४२ ॥ किंपुनर्ब्राह्मणामुख्याःपुण्याःश्रीरामचिंतकाः ॥ मुक्तिंयांतीतितद्भक्तिर्मुक्तिरेवनसंशयः ॥ ४३ ॥ भक्तिर्मुक्तिविधायिनीभगवतःश्रीरामचंद्रस्यहेलोकाःकामदुघांघ्रिपद्मयुगलंसेवध्वमत्युत्सुकाः ॥ नानाज्ञानविशेषमंत्रविततिंत्यक्त्वासुदूरेभृशंरामंश्यामतनुंस्मरारिहृदयेभांतंभजध्वंबुधाः ॥ ४४ ॥ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेऽरण्यकांडेदशमःसर्गः ॥ १० ॥ समाप्तमिदमरण्यकांडम् ॥ ३ ॥

भक्तवत्सल जगन्नाथ श्रीरामचंद्रजीके प्रसन्न होनेपर क्या जगत्में कोई वस्तु दुर्लभ रहती है? अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता है, क्योंकि देखो नीच कुलमें उत्पन्न हुई शबरीनेभी श्रीरामचंद्रजीके प्रसादसे दुर्लभ मुक्ति पदको प्राप्त कर लिया ॥ ४२ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करनेवाले पुण्यशील श्रेष्ठ कुलोंमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंकी मुक्ति पानेमें संदेहही क्या है ? इससे रामकी भक्तिही मुक्ति है ॥ ४३ ॥ श्रीरामचंद्रजीमें भक्तिका उत्पन्न होनाही केवल मोक्षका इस संसारमें उपाय है । जिनके दोनों चरणकमल मनोरथ सिद्ध करनेवाले हैं उन रामचंद्रजीकी अति उत्कंठा सहित सेवा करो । हे पंडितगण । याग यज्ञादिके मंत्र छोडकर केवल महादेवजीके हृदयरत्नस्वरूप, श्यामसुन्दर वर्ण रामरूपका सदाही ध्यान किया करो ॥ ४४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकांडे भाषाटीकायां दशमःसर्गः ॥ १० ॥ ॥ छ ॥ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे भाषाटीकासमेतेऽरण्यकाण्डः समाप्तः ।

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

॥ अथ श्रीमदध्यात्मरामायणे भाषाटीकासमेते किष्किन्धाकांडप्रारम्भः ॥

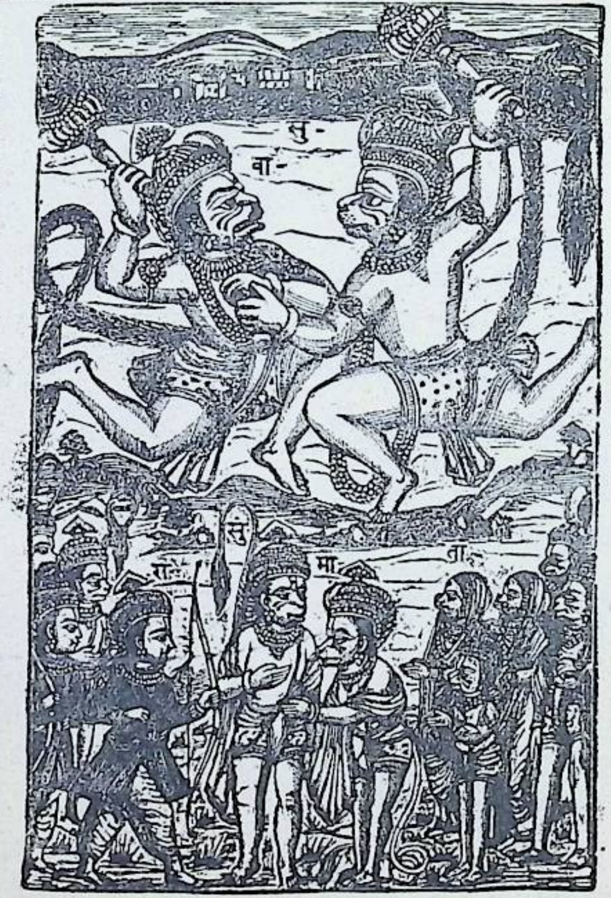
सु-
बा-
सु
रा-
मा
ता-

श्रीगणेशाय नमः।

दोहा—लालवरण लाली लसै, लाल ललाट विशाल । शत्रुदलन जनभयहरण, वंदों अंजनिलाल ॥ १ ॥
भक्तन मनरूपी शरण, वसत वनतहो हंस । त्यों मम मन निजवश करहु, भानुवंशअवतंस ॥ २ ॥
अति शोकित चित रैन दिन, बनै न एकौकाम । धरणीधर धरकर उबर, लहौं नेक विश्राम ॥ ३ ॥
भरत शत्रुसूदन नमो, प्रथम सिद्धिदातार । दूजे मेरी विनयसों, करहु शत्रुसंहार ॥ ४ ॥
आदिशक्ति प्रलयंकरी, अभय करनि श्रीसीय ॥ दै धीरज मम दुख हरहु, रामअंक रमणीय ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती ! इसके पीछे लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचन्द्रजी हौले हौले पम्पा सरोवरके किनारेपर आये । उस महासरोवरको देख उन्हे परम विस्मय हुआ ॥ १ ॥ इस सरोवरका विस्तार चौरस एक कोशहै, तिसमें अपरम्पार निर्मल जल भरा होनेसे जगह२ कमल, कल्हार,

श्रीमहादेवउवाच ॥ ततःसलक्ष्मणोरामःशनैःपंपासरस्तटम् ॥ आगत्यसरसांश्रेष्ठंदृष्ट्वाविस्मयमाययौ ॥ १ ॥ क्रोशमात्रंसुविस्तीर्णमगाधामलशंवरम् ॥ उत्फुल्लांबुजकह्लारकुमुदोत्पलमंडितम् ॥ २ ॥ हंसकारंडवाकीर्णचक्रवाकादिशोभितम् ॥ जलकुक्कुटकोयष्टिक्रौंचनादोपनादितम् ॥ ३ ॥ नानापुष्पलताकीर्णनानाफलसमावृतम् ॥ सतांमनःस्वच्छजलंपद्मकिंजल्कवासितम् ॥ ४ ॥ तत्रोपस्पृश्यसलिलंपीत्वाश्रमहरंविभुः ॥ सानुजःसरसस्तीरेशीतलेनपथाययौ ॥ ५ ॥

बबूले, और उत्पल इत्यादि अनेकप्रकार सूर्य चंद्रमासे खिलने वाले कमल शोभायमान होरहे हैं ॥ २ ॥ इस सरोवरमें हंस कारण्डव पक्षियोंके यूथ विहार कर रहेहैं, चक्रवाकादि पक्षियोंने उसपर रमणीय लता रक्खी हैं । तथा जलकुक्कुट, कोयल, व क्रौंचके शब्दोंसे यह सरोवर गर्जरहा है ॥ ३ ॥ उसके चारों किनारे अनेकभांतिकी फूलीहुई बेलोंसे, और विविधभांति के वृक्षोंसे—जोकि फूलोंके बोझसे झुकरहे हैं; व्याप्तहैं; वैसेही सत्पुरुषोंके मनके समान स्वच्छ कमल फूलोंके केसरकी सुगन्धिसे सुवासित जल उसमें भराहुआ है ॥ ४ ॥ श्रमके मिटानेवाले उस सरोवरके शीतल जल

को लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचंद्रजीने पिया, फिर उस सरोवरके तीरके ऊपर शीतल और सुगंधित मार्गमें श्रीरामचंद्रजी चलने लगे ॥ ५ ॥ जितेन्द्रिय, जटा वल्कल धारी, सुविक्रम राम और लक्ष्मणजी हाथमें धनुषबाण धारण किये विविध वृक्षराजि और पर्वतोंकी शोभा देखते ऋष्यमूक पर्वतके बाजूपर गमन करने लगे॥६॥ सुग्रीवजी चार वानरोंके साथ उस पर्वत के शिखरपर बसतेथे; राम लक्ष्मणको आता हुआ देख भयभीत हो पर्वतके अति ऊंचे शिखरपर चढ़गये ॥ ७ ॥ और भययुक्त हो हनुमानजीसे कहा;—"हे मित्र यह दोनों वीर लोगोंमें श्रेष्ठ कौन हैं? हे भाई! ब्राह्मणका स्वरूप धारणकर ब्रह्मचारी बन उनसे जायकर पूछो; तुम्हारा कल्याण होवै ॥ ८॥ वे दोनों वालिके भेजेहुए मेरा वध करनेको आये हैं या नहीं?

ऋष्यमूकगिरेःपार्श्वंगच्छंतौरामलक्ष्मणौ ॥ धनुर्बाणकरौदांतौजटावल्कलमंडितौ ॥ पश्यंतौविविधान्वृक्षान्गिरेःशोभांसुविक्रमौ ॥ ६ ॥
सुग्रीवस्तुगिरेर्मूर्ध्निचतुर्भिःसहवानरैः ॥ स्थित्वाददर्शतौयांतावारुरोहगिरेःशिरः ॥ ७ ॥ भयादाहहनूमंतंकौतौवीरवरौसखे ॥ गच्छ
जानीहिभद्रंतेवटुर्भूत्वाद्विजाकृतिः ॥ ८ ॥ वालिनाप्रेषितौकिंवामांहंतुंसमुपागतौ ॥ ताभ्यांसंभाषणंकृत्वाजानीहिहृदयंतयोः ॥ ९ ॥
यदितौदुष्टहृदयौसंज्ञांकुरुकराग्रतः ॥ विनयावनतोभूत्वाएवंजानीहिनिश्चयम् ॥१०॥तथेतिवटुरूपेणहनुमान्समुपागतः ॥ विनयावनतो
भूत्वारामंनत्वेदमब्रवीत् ॥११॥ कौयुवांपुरुषव्याघ्रौयुवानौवीरसंमतौ ॥ द्योतयंतौदिशःसर्वाःप्रभयाभास्कराविव ॥ १२ ॥ युवां
त्रैलोक्यकर्तारावितिभातिमनोमम ॥ युवांप्रधानपुरुषौजगद्धेतूजगन्मयौ ॥ १३ ॥

उनके साथ बातचीत करके उनके मनकी बात जान आओ ॥ ९ ॥ और तुम्हें ऐसा दीखे कि उनके मनमें कुछ पाप होवै,तौ हाथसे मेरे भाग जानेका संकेत (इशारा) करना; नम्रतासे विनयके साथ उनके मनका भाव जाननेमें लीनहो, संकेत करनेमें भलीभांति ध्यान रखना।" ॥ १० ॥ सुग्रीवके वचन सुन बटुकका रूप धारणकर हनुमानजी विनयसे नम्र हो रामचंद्रजी को नमस्कार कर इसप्रकार वचन बोले ॥ ११ ॥ "हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ! वीरोंके मानने योग्य आप दोनों युवाजन कौनहैं? हम देखतेहैं कि दो सूर्यके समान आप लोग अपने २ शरीरकी कांतिसे सब दिशाओंको प्रकाशमान कर रहेहो ॥ १२ ॥ मेरे मनको तो ऐसा मालूम होताहै कि तुम त्रिलोकीको उत्पन्न करनेवाले, सृष्टिके कारण व सर्वान्तर्यामी श्रेष्ठपुरुष (नरनारा

श्रीगणेशाय नमः।

दोहा—लालवरण लाली लसै, लाल ललाट विशाल। शत्रुदलन जनभयहरण, वंदों अंजनिलाल ॥ १ ॥
भक्तन मनरूपी शरण, वसत वनतहो हंस। त्यों मम मन निजवश करहु, भानुवंशअवतंस ॥ २ ॥
अति शोकित चित रैन दिन, बनै न एकौकाम। धरणीधर धरकर उबर, लहौं नेक विश्राम ॥ ३ ॥
भरत शत्रुसूदन नमो, प्रथम सिद्धिदातार । दूजे मेरी विनयसों, करहु शत्रुसंहार ॥ ४ ॥
आदिशक्ति प्रलयंकरी, अभय करनि श्रीसीय ॥ दै धीरज मम दुख हरहु, रामअंक रमणीय ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वती ! इसके पीछे लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचन्द्रजी हौले हौले पम्पा सरोवरके किनारेपर आये । उस महासरोवरको देख उन्हे परम विस्मय हुआ ॥ १ ॥ इस सरोवरका विस्तार चौरस एक कोशहै, तिसमें अपरम्पार निर्मल जल भरा होनेसे जगह२ कमल, कल्हार, बबूले, और उत्पल इत्यादि अनेकप्रकार सूर्य चंद्रमासे खिलने वाले कमल शोभायमान होरहे हैं ॥ २ ॥ इस सरोवरमें हंस कारण्डव पक्षियोंके यूथ विहार कर रहेहैं, चक्रवाकादि पक्षियोंने उसपर रमणीय लता रक्खी हैं। तथा जलकुक्कुट, कोयल, व क्रौंचके शब्दोंसे यह सरोवर गर्जरहा है ॥३॥ उसके चारों किनारे अनेकभांतिकी फूलीहुई बेलोंसे, और विविधभांति के वृक्षोंसे—जोकि फूलोंके बोझसे झुकरहे हैं; व्याप्तहैं; वैसेही सत्पुरुषोंके मनके समान स्वच्छ कमल फूलोंके केसरकी सुगन्धिसे सुवासित जल उसमें भराहुआ है ॥ ४ ॥ श्रमके मिटानेवाले उस सरोवरके शीतल जल

श्रीमहादेवउवाच ॥ ततःसलक्ष्मणोरामःशनैःपंपासरस्तटम् ॥ आगत्यसरसांश्रेष्ठंदृष्ट्वाविस्मयमाययौ ॥ १ ॥ क्रोशमात्रंसुविस्तीर्णमगाधामलशंवरम् ॥ उत्फुल्लांबुजकह्लारकुमुदोत्पलमंडितम् ॥ २ ॥ हंसकारंडवाकीर्णचक्रवाकादिशोभितम् ॥ जलकुक्कुटकोयष्टिक्रौंचनादोपनादितम् ॥ ३ ॥ नानापुष्पलताकीर्णनानाफलसमावृतम् ॥ सतांमनःस्वच्छजलंपद्मकिंजल्कवासितम् ॥ ४ ॥ तत्रोपस्पृश्यसलिलंपीत्वाश्रमहरंविभुः ॥ सानुजःसरसस्तीरेशीतलेनपथाययौ ॥ ५ ॥

यण) हो ॥ १३ ॥ माया करके मनुष्यका अवतार ले, पृथ्वीके भारको उतारनेके कारण तथा भक्तोंका पालन करनेके लिये लीला करके विचरण करतेहो ॥१४॥ तुम दोनों परमपुरुष क्षत्रियके रूपसे अवतार लेकर फिरते हो, तुम परमेश्वर होनेसे अब लीला करके जगत्का पालन, नाश,व उत्पत्ति (राक्षसोंका नाश व इतर जनोंका पालन और सृष्टि) करनेके लिये उद्योगी हुएहो ॥ १५ ॥ इसवास्ते स्वतंत्र प्रेरक, सबके हृदयमें वास करनेवाले समर्थ नरनारायणरूपी तुम इस लोकमें फिरतेहो, ऐसा मेरी बुद्धि में आता है” ॥ १६ ॥ यह वाक्यामृत सुनकर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि “हे लक्ष्मण ! इस ब्रह्मचारिरूपधारीको देखो। इस ब्रह्मचारीने समस्त शब्दशास्त्र अर्थात् व्याकरणशास्त्र अनेकवार सुनाहै, इसमें कोई संशय नहीं ॥ १७ ॥ क्योंकि इस ब्रह्मचारीने बहुत संभाषण किया, परंतु इसमें एकभी अशुद्ध शब्द नहीं कहा। ” इसके उपरांत ज्ञानमूर्ति श्रीरामचंद्रजी ने हनुमानजीसे कहा ॥१८॥ “हेबटो! मैं दशरथका पुत्र रामहूं, यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है! पिताजीका आज्ञारूप बड़ा भारी कार्य करनेके लिये सीतानामक अपनी पत्नीको साथमें ले मैं वनको आया; और वहां दण्डकारण्यमें रहा ॥ १९ ॥ तहांसे कोई राक्षस मेरी स्त्री सीताको हरणकर लेगयाहै; उसको खोजनेके लिये हम यहांपर आये हैं; तुम कौनहो ! किसके पुत्रहो, सो कहो। ” ॥ २० ॥ बटु बोला; “सुग्रीव नामक महाबुद्धिमान् वानरराज अपने चार मंत्रियोंके साथ पर्वतके शिखरपर रहते हैं ॥ २१ ॥ सुग्रीव इस वालिका छोटा भाई है । वालिका अंतःकरण

माययामानुषाकारौचरंताविवलीलया ॥ भूभारहरणार्थायभक्तानांपालनायच ॥ १४ ॥ अवतीर्णाविहपरौचरंतौक्षत्रियाकृती ॥ जग
त्स्थितिलयौसर्गलीलयाकर्तुमुद्यतौ ॥ १५ ॥ स्वतंत्रौप्रेरकौसर्वहृदयस्थाविहेश्वरौ ॥ नरनारायणौलोकेचरंताविितिमेमतिः ॥ १६ ॥
श्रीरामोलक्ष्मणंप्राहपश्यैनंवटुरूपिणम् ॥ शब्दशास्त्रमशेषेणश्रुतंनूनमनेकधा ॥ १७ ॥ अनेनभाषितंकृत्स्नंनकिंचिदपशब्दितम् ॥
ततःप्राहहनूमंतंराघवोज्ञानविग्रहः ॥ १८ ॥ अहंदाशरथीरामस्त्वयंमेलक्ष्मणोऽनुजः ॥ सीतयाभार्ययासार्धंपितुर्वचनगौरवात् ॥ १९ ॥
आगतस्तत्रविपिनेस्थितोऽहंदंडकेद्विज ॥ तत्रभार्याहृतासीतारक्षसाकेनचिन्मम ॥ २० ॥ तामन्वेष्टुमिहायातौत्वंकोवाकस्यवावद ॥
वटुरुवाच ॥ सुग्रीवोनामराजायोवानराणांमहामतिः ॥ चतुर्भिर्मंत्रिभिःसार्धंगिरिमूर्धनितिष्ठति ॥ २१ ॥ भ्राताकनीयान्सुग्रीवोवालिनः
पापचेतसः ॥ तेननिष्कासितोभार्याहृतातस्येहवालिना ॥ २२ ॥

दुष्ट व पापी है; उसने इसको यहांपर निकाल दिया, और इसकी स्त्री अपने आप हरण करके लेली ॥ २२ ॥ इस कारण वह बालिके भयसे इस ऋष्यमूक नामक पर्वत पर आकर रहे हैं, उनका मैं मंत्री हूं; हे बुद्धिमान् ! मैं वायुका पुत्रहूं ॥ २३ ॥ अंजनीके गर्भसे उत्पन्न हुआ मैं हनुमान् नामसे विख्यात हूं। हे रघुवर ! उस सुग्रीवके साथ आपको मित्रता करनी उचित है– क्योंकि तुम दोनोंही आजकल बराबर दुःखीहो (दोनोंकी नारियें शत्रुने हर ली हैं) ॥ २४ ॥ जिसने तुम्हारी भार्या हर ली है, उसको वध करनेके काममें सुग्रीव आपकी सहायता करैगा; जो आपको रुचै तौ चलिये; अभी हम वहांपर चलें " ॥ २५ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले; " हे कपीश्वर ! मैंभी सुग्रीवके साथ मित्रता करनेके अर्थ आयाहूं; तैसेही सुग्रीवका जो कार्य है, उसको मैं कर दूंगा, इसमें कोई संशय नहीं " ॥ २६ ॥ यह सुन हनुमानजी अपना स्वरूप धारणकर श्रीरामचंद्रजीसे बोले " आप दोनोंजने हमारे कंधोंपर चढ़ लीजिये; मैं अभी पर्वतपर चलताहूं ॥ २७ ॥ वहांपर सुग्रीव वालिके भयके मारे मंत्रियोंके साथ बैठे हैं।" श्रीरामचंद्रजी " बहुत अच्छा" कह हनुमानजीके कंधेपर सवार हुए, और लक्ष्मणजीभी चढ़े ॥ २८ ॥ तब तुरत महाकपि हनुमानजी एक क्षणभरमें कूदकर ऊंचे पर्वतपर चले आये; और राम लक्ष्मणको वृक्षकी छायामें बैठायकर ॥ २९ ॥ हनुमानजी सुग्रीवके पास जाय, हाथ जोड़कर बोले, "हे राजन् ! तुम्हारा भय जाता रहा, क्योंकि यहांपर श्रीराम और लक्ष्मणजी आये हैं ॥ ३० ॥

तद्भयादृष्यमूकाख्यंगिरिमाश्रित्यसंस्थितः ॥ अहंसुग्रीवसचिवोवायुपुत्रोमहामते ॥ २३॥ हनुमान्नामविख्यातोह्यंजनीगर्भसंभवः ॥ ते
नसख्यंत्वयायुक्तंसुग्रीवेणरघूत्तम ॥ २४ ॥ भार्यापहारिणंहंतुंसहायस्तेभविष्यति ॥ इदानीमेवगच्छामआगच्छयदिरोचते ॥२५॥ श्री
रामउवाच ॥ अहमप्यागतस्तेनसख्यंकर्तुंकपीश्वर ॥ सख्युस्तस्यापियत्कार्यंतत्करिष्याम्यसंशयम् ॥ २६ ॥ हनूमान्स्वस्वरूपेण
स्थितोराममथाब्रवीत् ॥ आरोहतांममस्कंधौगच्छामःपर्वतोपरि ॥ २७॥ यत्रतिष्ठतिसुग्रीवोमंत्रिभिर्वालिनोभयात् ॥ तथेतितस्या
रुरोहस्कंधंरामोऽथलक्ष्मणः ॥ २८ ॥ उत्पपातगिरेर्मूर्ध्निक्षणादेवमहाकपिः ॥ वृक्षच्छायांसमाश्रित्यस्थितौतौरामलक्ष्मणौ ॥ २९ ॥
हनूमानपिसुग्रीवमुपगम्यकृतांजलिः ॥ व्येतुतेभयमायातौराजञ्छ्रीरामलक्ष्मणौ ॥ ३० ॥

शीघ्रतासे उठो। मैं आपके साथ श्रीरामचंद्रजीकी मित्रता होनेका योग लगा आयाहूं; अग्निको साक्षी ठहराय शीघ्रतासे उनके साथ मित्रता करौ।" ॥ ३१ ॥ यह सुनकर सुग्रीवको अतिशय आनंद हुआ; और रामजीके पास आय अपने हाथसे वृक्षकी शाखाको तोड़कर उन्हें आसन दिया ॥ ३२ ॥ हनुमानजीने डाली तोड़कर लक्ष्मणजीके लिये बैठनेको दी, और लक्ष्मणजीने सुग्रीवजीको आसन दिया। सर्व जन अत्यन्त आनंद युक्त होकर वहाँपर बैठे ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त श्रीलक्ष्मणजीने पहलेसे लेकर श्रीरामचंद्रजीका सर्व वृत्तान्त, वनवास करनेको आना, सीताजीका हरा जाना इत्यादि सुग्रीवको सुना दिया ॥ ३४ ॥ इस प्रकार लक्ष्मणजीके वचन सुनकर सुग्रीवने श्रीरामचंद्रजीसे कहा," हे राजाधिराज!

शीघ्रमुत्तिष्ठरामेणसख्यंतेयोजितंमया ॥ अग्निंसाक्षिणमारोप्यतेनसख्यंद्रुतंकुरु ॥ ३१ ॥ ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवःसमागम्यरघूत्तमम् ॥ वृक्षशाखांस्वयंछित्त्वाविष्टरायददौमुदा ॥ ३२ ॥ हनूमाँल्लक्ष्मणायादात्सुग्रीवायचलक्ष्मणः ॥ हर्षेणमहताविष्टाःसर्वएवावतस्थिरे॥३३॥ लक्ष्मणस्त्वब्रवीत्सर्वंरामवृत्तांतमादितः ॥ वनवासाभिगमनंसीताहरणमेवच ॥ ३४ ॥ लक्ष्मणोक्तंवचःश्रुत्वासुग्रीवोराममब्रवीत् ॥ अहंकरिष्येराजेंद्रसीतायाःपरिमार्गणम् ॥३५॥ साहाय्यमपितेरामकरिष्येशत्रुघातिनः ॥ शृणुराममयादृष्टंकिंचित्तेकथयाम्यहम् ॥ ३६ ॥ एकदामंत्रिभिःसार्धंस्थितोऽहंगिरिमूर्धनि ॥ विहायसानीयमानांकेनचित्प्रमदोत्तमाम् ॥ ३७ ॥ क्रोशंतीरामरामेतिदृष्ट्वास्मान्पर्वतोपरि ॥ आमुच्याभरणान्याशुस्वोत्तरीयेणभामिनी ॥ ३८ ॥ निरीक्ष्याधःपरित्यज्यक्रोशंतीतेनरक्षसा ॥ नीताहंभूषणान्याशुगुहायामक्षिपंप्रभो ॥ ३९ ॥ इदानीमपिपश्यत्वंजानीहितववानवा ॥ इत्युक्त्वाऽऽनीयरामायदर्शयामासवानरः ॥ ४० ॥

मैं सीताकी खोज करूंगा ॥ ३५ ॥ हे राम! शत्रुवध करनेके कार्यमें मैं तुम्हारी सहायता करूंगा; हे श्रीरामचंद्र! मैंने जो कुछ देखा है वह कहताहूं आप सुनिये ॥ ३६ ॥ एकवार मंत्रियोंकेसाथ पर्वतके शिखर पर बैठे हुए हमने देखा कि आकाशमार्गसे कोई राक्षस एक उत्तम स्त्रीको लिये जाता है ॥ ३७ ॥ वह स्त्री बराबर राम २ पुकार रहीथी; हमको पर्वतपर देख अपने अंगके गहने उतार अपने अंगके वस्त्रमें बांध ॥ ३८ ॥ फिर हमारी ओरको देख नीचे फेंक दिये; तबतक वह स्त्री रो रहीथी; फिर वह राक्षस उसको ले गया। हे प्रभो! मैंने वह गहने शीघ्र लेकर गुफामें रख छोड़े हैं ॥ ३९ ॥ उनको देखकर पहँचानियेगा कि वह आपके हैं या नहीं।" ऐसे कहकर सुग्रीवजीने वह गहने श्रीरामचंद्र

जीको दिखाये॥४०॥श्रीरामचंद्रजीने उनको खोलकर देखा,–तौ उनको पहिचान लिया; श्रीरामचंद्रजीने वह समस्त भूषण अपनी छातीसे लगा लिये; और वारंवार ‘ हासीते ! हासीते !’ कहकर अज्ञान प्राणीके समान रोने लगे ॥ ४१ ॥ तब उनके छोटे भ्राता लक्ष्मणजीने श्रीरामचंद्रजीको शांत करनेके लिये कहा, “ हे राम ! अब शीघ्रही जानकीजीसे आपकी भेंट होगी; वानरराजकी सहायतासे आप युद्धमें रावणका वध करैंगे व उस सुन्दरीको ले आवैंगे” ॥ ४२ ॥ सुग्रीवजीनेभी यह कहा; “हे राम ! मैं तुमसे प्रतिज्ञा करकै कहताहूं कि युद्धमें रावणको मारकर आपको जानकी मिला दूंगा। ” ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त हनुमानजीने इन दोनोंके बीचमें अग्नि जला दी; और दोनोंसे मित्रता करनेको कहा; तौ पापरहित

विमुच्यरामस्तद्दृष्ट्वाहासीतेतिमुहुर्मुहुः ॥ हृदिनिक्षिप्यतत्सर्वंरुरोदप्राकृतोयथा ॥ ४१ ॥ आश्वास्यराघवंभ्रातालक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥
अचिरेणैवतेरामप्राप्यतेजानकीशुभा ॥ वानरेंद्रसहायेनहत्वारावणमाहवे ॥ ४२ ॥ सुग्रीवोऽप्याहहेरामप्रतिज्ञांकरवाणिते ॥ समरेरावणं
हत्वातवदास्यामिजानकीम् ॥ ४३ ॥ ततोहनूमान्प्रज्वाल्यतयोरग्निंसमीपतः ॥ तावुभौरामसुग्रीवावग्नौसाक्षिणितिष्ठति ॥ ४४ ॥ बाहू
प्रसार्यचालिंग्यपरस्परमकल्मषौ ॥ समीपेरघुनाथस्यसुग्रीवःसमुपाविशत् ॥ ४५ ॥ स्वोदंतंकथयामासप्रणयाद्रघुनायके ॥ सखेशृ
णुममोदंतंवालिनायत्कृतंपुरा ॥ ४६ ॥ मयपुत्रोऽथमायावीनाम्नापरमदुर्मदः ॥ किष्किंधांसमुपागत्यवालिनंसमुपाह्वयत् ॥ ४७ ॥ सिं
हनादेनमहतावालीतुतदमर्षणः ॥ निर्ययौक्रोधताम्राक्षोजघानदृढमुष्टिना ॥ ४८ ॥ दुद्रावतेनसंविग्नोजगामस्वगुहांप्रति ॥ अनुदुद्रावतं
वालीमायाविनमहंतथा ॥ ततःप्रविष्टमालोक्यगुहांमायाविनंरुषा ॥ ४९ ॥

सुग्रीव और रामचंद्रजीने दोनोंने अग्निको साक्षी ठहराय ॥ ४४ ॥ कपट रहितहो बांह फैलाय परस्पर भेंट की और “ मित्र ” कहा। सुग्रीव, रामचंद्रजीके समीप बैठे ॥ ४५ ॥ इसके उपरान्त सुग्रीव प्रेमभावसे श्रीरामचंद्रजीको अपना समस्त वृत्तान्त सुनानेलगे;– सुग्रीवजी बोले,– “ मित्र ! हमारा वृत्तान्त सुनो; जो जो वालिने किया है, वह २ मैं सब तुमको सुनाताहूं ॥ ४६ ॥ मय असुरका पुत्र अत्यन्त मतवाला मायावी नामक एक दैत्य था, वह एक समय किष्किन्धा नगरीमें आय वालिको पुकारनेलगा ॥ ४७ ॥ वह दैत्य आतेही बड़ी भारी सिंहनाद करनेलगा वाली उसके गर्जनेको न सहकर क्रोधसे लाल लाल नेत्रकर निकला; और बाहर आकर उस दैत्यको बड़े जोरसे एक घूंसा मारा ॥ ४८ ॥ वह मायावी राक्षस

वालीके घूंसेसे पीड़ितहो अपने गृहकी ओर भागने लगा। वाली और मैं दोनों जने उस मायावी राक्षसके पीछे लगे फिर वह अपनी गुहामें घुस गया, उसको गुहामें घुसता हुआ देखकर ॥ ४९ ॥ वालिने मुझसे कहाः– "तू बाहर खड़ा रह, मैं गुफामें जाताहूं" यह कहकर वाली गुफामें प्रवेश कर गया, एक महीना वहांपर वालीको बीच गया पर वह बाहर नहीं आया ! ॥ ५० ॥ महीना भर वीतनेके पीछे उस गुफाके मुखसे बहुतसा रुधिर बाहर निकला ! उसको देखतेही वाली मरगया ऐसा समझकर मुझे बड़ा दुःख हुआ; मेरे सब अंग तप्त होगये ॥ ५१ ॥ इस कारण मैं गुफाके द्वारको एक बड़ी भारी शिलासे बंदकर आया; और सब लोगोंसे कहने लगा कि "वाली मरगया ! उसको गुफाके बीच राक्षसने मार डाला ! " ॥ ५२ ॥ यह सुनकर सबको दुःख हुआ; फिर मेरी इच्छा न रहनेपरभी समस्त वानरोंके प्रधान मंडलने मेरा राज्याभिषेक करा दिया ॥ ५३ ॥ हे शत्रुओंके नाश करनेवाले राम ! तब कुछ समय तक मैंने राज्यका पालन किया। फिर कितनेक दिनके पीछे वाली आया ! उसने क्रोधित होकर मेरे ऊपर कडुवे वचनोंकी वर्षा कर दी ॥५४॥ और अनेक प्रकारसे धिक्कार देकर फिर घूंसोंसे खूब मारा; नगरसे बाहर निकाल दियाथा मैं अत्यन्त भयसे घूम घामकर॥५५॥ सब लोकोंमें फिरा, परन्तु निर्भय स्थान नहीं पाया; इस भयके मनमें आतेही कि जहाँ रहूंगा तहाँ वाली आसकता है! पीछेसे मैं इस ऋष्यमूक पर्वतपर आकर रहाहूं; हे प्रभो! रामचंद्र ! ऋषिके शापभयसे वह (वालि) इस पर्वतपर नहीं आता ॥५६॥ तबसे वह मेरी स्त्रीको अपने आप भोग करता है ! उसकी बुद्धि पूरी २ भ्रष्ट होगई इन कारणों करके मैं नित्य दुःखसे संतापित हो रहाहूं, मुझे

वालीमामाहतिष्ठत्वंबहिर्गच्छाम्यहंगुहाम् ॥ इत्युक्त्वाविश्यसगुहांमासमेकंननिर्ययौ ॥ ५० ॥ मासादूर्ध्वंगुहाद्वारान्निर्गतंरुधिरंबहु ॥ तद्दृष्ट्वापरितप्तांगोमृतोवालीतिदुःखितः ॥ ५१ ॥ गुहाद्वारिशिलामेकांनिधायगृहमागतः ॥ ततोऽब्रुवंमृतोवालीगुहायांरक्षसाहतः ॥५२॥ तच्छ्रुत्वादुःखिताःसर्वेमामनिच्छंतमप्युत ॥ राज्येऽभिषेचनंचक्रुःसर्वेवानरमंत्रिणः ॥ ५३ ॥ शिष्टंतदामयाराज्यंकिंचित्कालमरिंदम ॥ ततःसमागतोवालीमामाहपरुषंरुषा ॥ ५४ ॥ बहुधाभर्त्सयित्वामांनिजघानचमुष्टिभिः ॥ ततोनिर्गत्यनगरादधावंपरयाभिया ॥ ५५ ॥ लोकान्सर्वान्परिक्रम्यऋष्यमूकंसमाश्रितः ॥ ऋषेःशापभयात्सोऽपिनायातीमंगिरिंप्रभो॥५६॥ तदादिममभार्यांसस्वयंभुंक्तेविमूढधीः॥ अतोदुःखेनसंतप्तोऽहृतदारोहृताश्रयः ॥५७॥

कुछ नहीं सूझता; क्या करूं ? दुष्टने मेरी स्त्री लेली व आश्रयभी छीन लिया ॥ ५७ ॥ हे राम ! ऐसे कष्टसे मैं यहांपर रहताहूं; आज तुम्हारे चरणोंका समागम पानेसे मैं परमसुखी हुआ ।" कमलनयन श्रीरामचंद्रजीको मित्रका दुःख बहुत बुरा लगा; उनके सब अङ्ग तप्त होगये ॥ ५८ ॥ उन्होंने तत्कालही सुग्रीवके आगे प्रतिज्ञा करी कि "मैं तुम्हारी स्त्रीके हरने वाले शत्रुका शीघ्र नाशकरूंगा" ॥ ५९ ॥ तब सुग्रीवने कहा; " हे राजाधिराज रामचंद्र! वाली साधारण बलवान् नहीं; वाली सब बलवानोंसे अधिक बलवान् है; अधिक क्या कहूं; देवतालोगोंकोभी इसका जीतना कठिन है; फिर आप इसको कैसे मारेंगे ॥ ६० ॥ हे बलवानोंमें श्रेष्ठ ! सुनिये; मैं आपसे उसके बलका वृत्तान्त थोड़ासा कहताहूं " दुन्दुभी नामवाला एक

वसाम्यद्यभवत्पादसंस्पर्शात्सुखितोऽस्म्यहम् ॥ मित्रदुःखेनसंतप्तोरामोराजीवलोचनः ॥ ५८ ॥ हनिष्यामितवद्वेष्यंशीघ्रंभार्यापहारिणम् ॥ इतिप्रतिज्ञामकरोत्सुग्रीवस्यपुरस्तदा ॥ ५९ ॥ सुग्रीवोऽप्याहराजेंद्रवालीबलवतांबली ॥ कथंहनिष्यतिभवान्देवैरपिदुरासदम् ॥ ६० ॥ शृणुतेकथयिष्यामितद्बलंबलिनांवर ॥ कदाचिद्दुंदुभिर्नाममहाकायोमहाबलः ॥ ६१ ॥ किष्किंधामगमद्रात्रमहामहिषरूपधृक् ॥ युद्धायवालिनंरात्रौसमाह्वयतभीषणः ॥ ६२ ॥ तच्छुत्वाऽसहमानोऽसौवालीपरमकोपनः ॥ महिषंशृंगयोर्धृत्वापातयामासभूतले ॥ ६३ ॥ पादेनैकेनतत्कायमाक्रम्यास्यशिरोमहत् ॥ हस्ताभ्यांभ्रामयंश्छित्त्वातोलयित्वाऽक्षिपद्भुवि ॥ ६४ ॥ पपाततच्छिरोराममातंगाश्रमसन्निधौ ॥ योजनात्पतितंतस्मान्मुनेराश्रममंडले ॥६५॥

महाशक्तिमान दैत्य होगयाहै उसका शरीर बड़ा प्रचंडथा; एकसमय वह ॥ ६१ ॥ बड़ेभारी भैंसेकारूप धारण करनेवाला भयंकर दैत्य किष्किंधानगरीमें आया और वालिको युद्धके लिये पुकारने लगा । हे राम ! यह रातकी बेलाथी ॥ ६२ ॥ परमकोपी वाली उसकी हाँक सुन अधीर हो गया; और बाहरजाय उस भैंसेके सींग पकड़ पृथ्वीपर पटकदिया ॥ ६३ ॥ एकपाँव उसके शरीरपर धर, हाथसे उसके प्रचण्ड मस्तकको मरोरकर तोड़डाला और बोझका अनुमान करनेके लिये उसको तोलकर पृथ्वीपर फेंकदिया ! ॥ ६४ ॥ वह शिर मतंगऋषिके आश्रममें जाय पड़ा! हे राम ! यद्यपि वालिने उसको सहजसेही फेंकाथा तौभी वह (मस्तक) पृथ्वीपरसे एक योजन उछलकर मतंगऋषिके आश्रममें जाय गिरा ॥ ६५ ॥

ऊंचा उठनेके कारण उस मस्तकसे बहुत रक्त बरसा ! उस रक्तको देखकर मतंगमुनिको अत्यन्त क्रोध हुआ; व उन्होंने वालिको शापदिया कि "आजसे लेकर जो तू इस पर्वतपर आवै ॥ ६६ ॥ तौ तेरा मस्तक टूट जाय और तू मरजाय ! यह शाप अन्यथा होनेवाला नहीं !" यह शाप पानेके कारण वह (वाली) इस ऋष्यमूक पर्वतपर कभी नहीं आता ॥ ६७ ॥ यह जानकर मैंभी यहांपर भयहीन होकर रहताहूं । हे राम ! देखिये ! उस दुन्दुभिका यह पर्वतके समान शिर पड़ाहुआ है ॥ ६८ ॥ जो इस शिरके फेंकदेनेकी आपमें सामर्थ्य होवै,तौ आप वालिका वध करसकेंगे ।" ऐसे कहकर सुग्रीवने श्रीरामचंद्रजीको वालिका फेंका पर्वतके समान शिर दिखा दिया॥६९॥रामने उसको देख मंद मुसकाय पाँवके अंगूठे

रक्तवृष्टिःपपातोच्चैर्दृष्ट्वातांक्रोधमूर्च्छितः ॥ मातंगोवालिनंप्राहयद्यागंतासिमेगिरिम् ॥ ६६ ॥ इतःपरंभग्नशिरामरिष्यसिनसंशयः ॥ एवं शप्तस्तदारभ्यऋष्यमूकंनयात्यसौ ॥ ६७ ॥ एतज्ज्ञात्वाहमप्यत्रवसामिभयवर्जितः ॥ रामपश्यशिरस्तस्यदुंदुभेःपर्वतोपमम् ॥ ६८ ॥ तत्क्षेपणेयदाशक्तःशक्तस्त्वंवालिनोवधे ॥ इत्युक्त्वादर्शयामासशिरस्तद्गिरिसन्निभम् ॥ ६९ ॥ दृष्ट्वारामःस्मितंकृत्वापादांगुष्ठेनचाक्षिपत् ॥ दशयोजनपर्यंतंतदद्भुतमिवाभवत् ॥७०॥ साधुसाध्वितिसंप्राहसुग्रीवोमंत्रिभिःसह ॥ पुनरप्याहसुग्रीवोरामंभक्तपरायणम् ॥७१॥ एतेतालामहासाराःसप्तपश्यरघूत्तम ॥ एकैकंचालयित्वासौनिष्पत्रान्कुरुतेऽजसा ॥ ७२ ॥ यदित्वमेकबाणेनविद्ध्वाछिद्रंकरोषिचेत् ॥ हतस्त्वयातदावालीविश्वासोमेप्रजायते ॥ तथेतिधनुरादायसायकंतत्रसंदधे ॥ ७३ ॥ विभेदचतदारामःसप्ततालान्महाबलः ॥ तालान्सप्तविनिर्भिद्यगिरिंभूमिंचसायकः ॥ ७४ ॥

से सहजही दशयोजन (४० कोश) की दूरीपर फेंकदिया ! यह एकबड़ा अद्भुत चरित्र हुआ ॥ ७० ॥ इस आश्चर्यके चरित्रको देखकर मंत्रियों के साथ सुग्रीवजी "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा" कहनेलगे । इसके उपरांत फिर सुग्रीवजी भक्तवत्सल श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ७१ ॥ "हे रघुवीर ! देखिये; यह बड़ेभारी कठोर सात ताल वृक्ष हैं, उनको एक २ कर हिलाकर वाली पतझाड़ करदेताहै (अर्थात् हिलाकर इनके सब पत्ते गिरादेता है) ॥ ७२ ॥ जो आप एकबाणसे इनको भेदकर छिद्रकरदेंगे तौ मुझको आपके हाथसे वालिके मरनेका विश्वास हो जायगा।" श्रीरामचंद्रजीने "अच्छा" कहकर धनुष लिया और उसपर बाण चढ़ाया ॥ ७३ ॥ और तत्काल उन महासामर्थ्यवान् रामचंद्रजीने उन सात तालोंको ताककर बाण

छोड़ा; वह बाण सातताड़ोंको भेद पर्वत और भूमिपर लगकर ॥ ७४ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीके तरकशमें पहलेके समानं आयगया। तब सुग्रीवको बहुत विस्मय प्राप्तहुआ; वह अत्यन्त आनंदयुक्त होकर श्रीरामचंद्रजीसेबोले ॥ ७५ ॥ "हे देव ! आप त्रिलोकीनाथ साक्षात् परमेश्वर हैं; इसमें कोई संशय नहीं; मैंने पहले जन्ममें अप्रमाण पुण्य कियाहै; इसकारणआज मुझसे आपका समागम हुआ ॥ ७६ ॥ हे राम! बड़े२ साधु संसार से छुटकारा पानेके लिये आपकी सेवा करते हैं;आप केवल मोक्षके सचिवहैं (जैसे राजाकी भेंट सचिव [मंत्री] के द्वारा होतीहै ? वैसेही मोक्षकी प्राप्ति आपके आसरेसे होतीहै) ऐसे महासमर्थ पुण्यपुरुष (तुम्हारे) के दर्शन होनेपर—मैं उनसे (तुमसे) क्षुद्र संसारका सुख कैसे मांगूं ? ॥ ७७ ॥ स्त्री, पुत्र, द्रव्य, राज्य, यह सब आपने मायासे उत्पन्न कियाहै; इसकारण हे देवाधिदेव ! मैं आपसे और कुछ नहीं मांगता,केवल नित्य मुझपर कृपा दृष्टि राखिये ॥ ७८ ॥ हे साधुओंका पालन करनेवाले ! आनंदस्वरूपका अनुभव करानेवाला तुम्हारा यह रूपहै, कोई मनुष्य मट्टीके लिये भूमि खोदताहो और उसको द्रव्य मिलजाय;वैसेही बड़े भाग्यसे आज मुझे आपके दर्शन मिलेहैं ॥ ७९ ॥ अनादि अविद्या करके उत्पन्न हुआ हमारा विषयवासनारूप संसारी बंधन आज टूटगया।हेप्रभो! यज्ञ, दान, तपस्या,इष्टापूर्तादि कितनेही कर्म किये तौभी यह संसारबंधन क्षीण नहींहोता ॥ ८० ॥ वरन् बार २ अधिक दृढ़होता जाताहै; आपके चरणोंका दर्शन होनेसेही इसका नाश होजाताहै; इसमें कुछभी संशय नहीं ॥ ८१ ॥ अज्ञान सब अनर्थोंका मूलहै। जिस मनुष्यका अंतःकरण एकआधे क्षणकोभी आपमें स्थिर होताहै;उसका अज्ञान तत्काल नाशको प्राप्त होजाताहै ॥ ८२ ॥

पुनरागत्यरामस्यतूणीरेपूर्ववत्स्थितः॥ ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवोराममाहातिविस्मितः ॥ ७५ ॥ देवत्वंजगतांनाथःपरमात्मानसंशयः ॥
मत्पूर्वकृतपुण्यौघैःसंगतोऽद्यमयासह ॥७६॥ त्वांभजंतिमहात्मानःसंसारविनिवृत्तये ॥ त्वांप्राप्यमोक्षसचिवंप्रार्थयेऽहंकथंभवम् ॥७७॥
दाराःपुत्राधनंराज्यंसर्वंत्वन्माययाकृतम् ॥ अतोऽहंदेवदेवेशनाकांक्षेऽन्यत्प्रसीदमे ॥ ७८ ॥ आनंदानुभवंत्वाद्यप्राप्तोऽहंभाग्यगौरवात् ॥
मृदर्थंयतमानेननिधानमिवसत्पते ॥ ७९ ॥ अनाद्यविद्यासंसिद्धंबंधनंछिन्नमद्यनः ॥ यज्ञदानतपःकर्मपूर्तेष्टादिभिरप्यसौ ॥ ८० ॥
नजीर्यतेपुनर्दार्ढ्यंभजतेसंसृतिःप्रभो ॥ त्वत्पाददर्शनात्सद्योनाशमेतिनसंशयः ॥ ८१ ॥ क्षणार्धमपियच्चित्तंत्वयितिष्ठत्यचंचलम् ॥
तस्याज्ञानमनर्थानांमूलंनश्यतितत्क्षणात् ॥ ८२ ॥

इस कारण हेराम! मेरा मन निरंतर आपहीके शरीरमें लगे,यह कहीं और दूसरीजगह न जाय॥ ८३ ॥ जिसकी वाणी "राम,राम" इस मधुरनामका एकक्षण भरभी जप करतीहै; वह ब्रह्महत्या या मद्य पीनेवाला (महापातकी) भी हो; तौभी वह सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ ८४ ॥ हे राम! मुझे शत्रुजीतने की इच्छा नहीं है; वैसेही स्त्रीसुख इत्यादिकोभी नहीं चाहता, संसारबंधन को छुड़ाने वाली केवल आपकी भक्ति नित्य मुझको चाहिये, बस यही मेरे मनकी इच्छाहै ॥ ८५ ॥ हे रघुवीर ! मैंभी आपका अंशरूपीहूं, तुम्हारी मायाने मेरे मार्गमें यह संसारकी फाँसी लाडालीहै; इसकारण आप मुझे अपने चरणोंमें भक्ति देकर इस संसाररूपी भयंकर मार्गसे पार कीजिये ॥ ८६ ॥ पहले जबतक मेरा अन्तःकरण मायासे ढक रहाथा तब तक मुझे यह अपना मित्र है, यह उदासीन है, ऐसा जान पड़ताथा; परन्तु हे राम ! अब तुम्हारे चरणोंका दर्शन होनेसे ॥ ८७ ॥ मुझको सर्वही ब्रह्ममय दृष्टि आने लगा। कौन मेरा मित्र है ? कौन मेरा शत्रु है ? जब तक प्राणी आपकी मायासे बँधा रहता है तब तक उसपर सत्वादि भिन्न भिन्न गुणोंका भेद चलता है ॥ ८८ ॥ जब तक यह भेद है, तब तक शत्रु, मित्र, उदासीनका भेद रहता है, वह (गुणोंका भेद) जैसे हो गया, ऐसेही भेदबुद्धि गई; अज्ञानके मूलसे उत्पन्न हुई यह भेदबुद्धि जब तक है तबतक मृत्युका भय है ॥ ८९ ॥ इस कारणसे जो मनुष्य अविद्याकी सेवा करता है वह पुरुष आँधियारे नरकमें डूबता है। इस कारण हे राम ! स्त्री पुत्रादि सर्व बंधनकी मूल यह माया है। इस्से हे रघुकुलमें

तत्तिष्ठतुमनोरामत्वयिनान्यत्रमेसदा ॥ ८३ ॥ रामरामेतियद्वाणीमधुरंगायतिक्षणम् ॥ सब्रह्महासुरापोवामुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ८४ ॥
नकांक्षेऽरिजयंरामनचदारसुखादिकम् ॥ भक्तिमेवसदाकांक्षेत्वयिबंधविमोचनीम् ॥ ८५ ॥ त्वन्मायाकृतसंसारस्त्वदंशोऽहंरघूत्तम ॥
स्वपादभक्तिमादिश्यत्राहिमांभवसंकटात् ॥ ८६ ॥ पूर्वंमित्रार्युदासीनास्त्वन्मायावृतचेतसः ॥ आसन्मेऽद्यभवत्पाददर्शनादेवराघव॥
॥ ८७ ॥ सर्वंब्रह्मैवमेभातिकमित्रंकचमेरिपुः ॥ यावत्त्वन्माययाबद्धस्तावद्गुणविशेषता ॥ ८८ ॥ सायावदस्तिनानात्वंतावद्भवतिनान्यथा ॥ यावन्नानात्वमज्ञानात्तावत्कालकृतंभयम् ॥ ८९ ॥ अतोऽविद्यामुपास्तेयःसोंऽधेतमसिमज्जति ॥ मायामूलमिदंसर्वंपुत्रदारादिवं
धनम् ॥ अतोत्सारयमायांत्वंदासींतवरघूत्तम ॥ ९० ॥

उत्तम राम ! अपनी दासीरूप मायासे मुझे बाहर निकालो ॥ ९० ॥ मेरे मनकी लय तुम्हारे चरण कमलोंमें लगे, वाणी सदा तुम्हारे नामकी संगतिवाली कथामें रहै, हाथ तुम्हारे भक्तोंकी सेवा करनेमें अत्यन्त तत्पर रहैं। मेरा अंग सदा तुम्हारे अंगके साथ संग पावै ॥९१॥ मेरे नेत्र आपकी मूर्ति; आपके भक्त और गुरूका निरन्तर दर्शन करें। मेरे कान निरन्तर आपके अवतारचरित्रको सुने मेरे पाँव निरन्तर आपके मंदिरोंकी ओर गमन करैं ॥ ९२ ॥ हे गरुड़ध्वज ! मेरा अंग तुम्हारे चरणोंकी धूरिसे मिले हुए तीर्थोंको अपने मस्तकपर धारण करै; मस्तक तुम्हारे चरणोंमें नित्य प्रणाम करै, आपकें चरणोंका माहात्म्य कैसे वर्णन किया जाय ? शंकर ब्रह्मादि बड़े २ देवता उन (चरणों) की सेवा करते हैं ॥ ९३ ॥

त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिस्त्वन्नामसंगीतकथासुवाणी ॥ त्वद्भक्तसेवानिरतौकरौमेत्वदंगसंगंलभतांमदंगम् ॥ ९१ ॥ त्वन्मूर्तिभक्तान्स्वगुरुंचचक्षुःपश्यत्वजस्रंसश्रृणोतुकर्णः ॥ त्वज्जन्मकर्माणिचपादयुग्मंव्रजत्वजस्रंतवमंदिराणि ॥ ९२ ॥ अंगानितेपादरजोविमिश्रतीर्थानिबिभ्रत्वहिशत्रुकेतो ॥ शिरस्त्वदीयंभवपद्मजाद्यैर्जुष्टंपदंरामनमत्वजस्रम् ॥ ९३ ॥ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेकिंष्किधाकांडेउमामहेश्वरसंवादेसुग्रीवसंगमवर्णनंनामप्रथमःसर्गः ॥ १ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ इत्थंस्वात्मपरिष्वंगनिर्धूताशेषकल्मषम् ॥ रामः सुग्रीवमालोक्यसस्मितंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ मायांमोहकरींतास्मिन्वितन्वन्कार्यसिद्धये ॥ सखेत्वदुक्तंयत्तन्मांसत्यमेवनसंशयः ॥ २ ॥ किंतुलोकावदिष्यंतिमामेवंरघुनंदनः ॥ कृतवान्किंकपींद्रायसत्यंकृत्वाग्निसाक्षिकम् ॥ ३ ॥ इतिलोकापवादोमेभविष्यतिनसंशयः ॥ तस्मादाह्वयभद्रंतेगत्वायुद्धायवालिनम् ॥ ४ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकांडे भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ वालिका मारा जाना ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं,– हे पार्वति ! इस प्रकार अपने मिलनेसे जिसके सर्वपाप धो गए हैं, ऐसे सुग्रीवको देखकर रामजी उसके विषयमें मोह करनेवाली मायाका विस्तार करकै कार्यकी सिद्धिके अर्थ हँसकर यह वचन बोले; श्रीरामचंद्रजी बोले कि “ हे सखे ! तुमने जो मुझसे कहा वह निःसन्देह सत्य है ॥ १ ॥ २ ॥ परन्तु लोग मुझसे कहने लगेंगे कि, ‘ रामचंद्रजीनें अग्निको साक्षी ठहराय वानरराज सुग्रीवसे मित्रता की- फिर उसका क्या फल हुआ ? उन्होंने सुग्रीवका कौनसा कार्य किया ? ’ ॥ ३ ॥ ऐसा लोकापवाद मेरे उत्पन्न होगा; इसमें कोई संदेह नहीं; इस

कारण तू वालिको युद्ध करनेके लिये बुला; तेरा कल्याण होवे ॥ ४ ॥ मैं एकही बाणसे उसका वध करकै तुमको राज्याभिषेक करूंगा । ” सुग्रीव “अच्छा”ऐसा क्यों नहीं होगा, कहकर किष्किन्धाके उपवनमें शीघ्रगया ॥ ५ ॥ व बड़ी भारी सिंहके समान नादकर वालिको पुकारने लगे। भइयाका बोल कानमें पड़तेही वालिने क्रोधित होकर लाल २ नेत्रकिये॥६॥तत्कालही वह घरसे बाहर निकलकर वहाँ आया,जहाँपर वानर सुग्रीवथे; वालिको सन्मुख आता हुआ देख सुग्रीवने उसकी छातीपर प्रहार किया ॥ ७ ॥ तब वालिकोभी इतना क्रोध आया कि इस क्रोध के आवेशमें वह अपनी देहीकोभी भूलगया; और उसने सुग्रीवपर दोनों मुठियोंसे प्रहार किया । सुग्रीवनेभी वही क्रम रक्खा, इस प्रकार दोनों क्रोधित होकर परस्पर ॥ ८ ॥ युद्ध करने लगे । दोनोंका रूप इतना एकसा था कि रामचंद्रजी ‘कौन सुग्रीव है, और कौन वाली है’ यह नहीं पहिंचान सके! अचंभा करते रहे। चूकनेसे कदाचित् सुग्रीव माराजाय, इस प्रकारकी शंका करकै बाण नहीं छोड़ा (यहाँपर कोई यह शंका करै कि अंतर्यामी राम नारायण किस कारणसे दोनोंको नहीं पहिंचानतेथे ? यहाँपर उत्तर यह है, जानतेथे, परन्तु मारा इस लिये नहीं कि प्रथम सर्गमें सुग्रीव “ कौन शत्रु है, कौन मित्र है ? ” ऐसा कह चुकाहै इस कारण जबतक अपने मुहसे शत्रु न कहै तबतक वालिका संहार करना उचित नहीं) ॥ ९ ॥ फिर सुग्रीव भयभीत होता और रुधिरउगलता हुआ भाग आया; वाली अपने घर गया । तब सुग्रीवने श्रीरामचंद्रजीसे कहा ॥ १० ॥ हे राम ! क्या भ्रातारूपी शत्रुसे मेरे मरवा देनेका आपने विचार किया है ? जो मेरा वध करानेकी इच्छा आपको हो

वाणेनैकेनतंहत्वाराज्येत्वामभिषेचये ॥ तथेतिगत्वासुग्रीवःकिष्किंधोपवनंद्रुतम् ॥५॥ कृत्वाशब्दंमहानादंतमाह्वयतवालिनम् ॥ तच्छुत्वाभ्रातृनिनदंरोषताम्रविलोचनः ॥६॥ निर्जगामगृहाच्छीघ्रंसुग्रीवोयत्रवानरः ॥ तमापतंतंसुग्रीवःशीघ्रंवक्षस्यताडयत् ॥ ७ ॥ सुग्रीवमपिमुष्टिभ्यांजघानक्रोधमूर्च्छितः ॥ वालीतमपिसुग्रीवएवंक्रुद्धौपरस्परम् ॥ ८ ॥ अयुध्येतामेकरूपौदृष्ट्वारामोऽतिविस्मितः ॥ नमुमोचतदावाणंसुग्रीववधशंकया ॥ ९ ॥ ततोदुद्रावसुग्रीवोवमन्रक्तंभयाकुलः ॥ वालीस्वभवनंयातःसुग्रीवोराममब्रवीत् ॥ १० ॥ किंमांघातयसेरामशत्रुणाभ्रातृरूपिणा ॥ यदिमद्धननेवांछात्वमेवजहिमांविभो ॥ ११ ॥

तौ हे सामर्थ्यवान् ईश्वर ! आपही मुझको मार डालिये ॥ ११ ॥ हे शरणागतवत्सल ! हे सत्यवादी राम ! “मैं वालिको मारूंगा” इस प्रकार मुझे विश्वास कराय अब किस कारणसे मुझे त्यागन करते हो ॥ १२ ॥ सुग्रीवके वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजीके नेत्रोंसे आंसू बहने लगे; उन्होंने सुग्रीवको हृदयसे लगाकर कहा; हे सखा ! तुम मत डरो, तुम दोनोंका एकसा रूप देखकर ॥ १३ ॥ मुझे शंका उत्पन्न हुई कि‘ कदाचित् चूक जानेपर मेरे हाथसे मित्रहीका घात हो जाय, यह सोचकर मैंने बाण नहीं छोड़ा; अब भ्रम दूर करनेके अर्थ मैं तुमपर कुछ चिह्न करताहूं ॥ १४ ॥ फिर जाकर वालिको पुकारो; बस शत्रुको मराही देखोगे; हे भइया ! मैं राम तेरी सोगन्द करकै कहताहूं कि क्षणमात्रमें उस शत्रुका वध करूंगा

एवंमेप्रत्ययंकृत्वासत्यवादिन्रघूत्तम ॥ उपेक्षसेकिमर्थमांशरणागतवत्सल ॥ १२ ॥ श्रुत्वासुग्रीववचनंरामःसाश्रुविलोचनः ॥ आलिंग्य
मास्मभैपीस्त्वंदृष्ट्वावामेकरूपिणौ ॥ १३ ॥ मित्रघातित्वमाशंक्यमुक्तवान्सायकंनहि ॥ इदानीमेवतेचिह्नंकरिष्येभ्रमशांतये ॥ १४ ॥
गत्वाह्वयपुनःशत्रुंहतंद्रक्ष्यसिवालिनम् ॥ रामोऽहंत्वाशपेभ्रातर्हनिष्यामिरिपुंक्षणात् ॥१५॥ इत्याश्वास्यससुग्रीवंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥
सुग्रीवस्यगलेपुष्पमालामामुच्यपुष्पिताम् ॥ १६ ॥ प्रेषयस्वमहाभागसुग्रीवंवालिनंप्रति ॥ लक्ष्मणस्तुतदाबद्ध्वागच्छगच्छेतिसादरम्
॥१७॥ प्रेषयामाससुग्रीवंसोऽपिगत्वातथाऽकरोत् ॥ पुनरत्यद्भुतंशब्दंकृत्वावालिनमाह्वयत् ॥१८॥ तच्छ्रुत्वाविस्मितोवालीक्रोधेनमहता
वृतः॥बद्ध्वापरिकरंसम्यग्गमनायोपचक्रमे॥१९॥गच्छंतंवालिनंताराग‍ृहीत्वानिषिषेधतम्॥ नगंतव्यंत्वयेदानींशंकामेऽतीवजायते ॥२०॥

॥ १५ ॥ इस प्रकार सुग्रीवको सावधान कर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणसे बोले, “हे लक्ष्मण! सुग्रीवके गलेमें फूले हुए उत्तम फूलोंकी एक माला डाल दो ॥ १६ ॥ और हे महाभाग ! इनको वालिके पास भेज दो।” लक्ष्मणजीने तैसेही माला बांधकर सुग्रीवजीसे “ जाइये ” कहा और बड़े गौरवसे ॥ १७ ॥ सुग्रीवको पठाय दिया। सुग्रीवने वहाँ जाकर श्रीरामचंद्रजीके कहनेके अनुसार किया; फिर विलक्षण गर्जना करकै वालिको हांक मारी ॥ १८ ॥ सुग्रीवके शब्दको सुनकर वालिको आश्चर्य हुआ और क्रोधभी आगया; उसने तत्काल फेंट बांधकर युद्धके लिये बाहर निकलनेकी तैयारी की ॥ १९ ॥ जाते हुए वालिको ताराने पकड़ लिया और रोकर बोली,—“प्यारे इससमय तुमको कहींभी नहीं जाना चाहिये क्योंकि मुझे अत्यन्त शंका उत्पन्न हुई है ॥ २० ॥

अभी तौ तुमने उसको हराया है;और अभी वह पलट कर आगया इस्से उसको कोई बलवान् सहायक मिलगयाहै " ॥ २१ ॥ बालिने तारासे
कहा,—हे सुन्दरि ! इस सहायकके विषयमें तू कुछ शंका न कर! हाथछोड़कर घरमें जा । मैं शत्रुके पास जाताहूं ॥ २२ ॥ मैं उसका वधकरके अभी
आताहूं; उसको कौन सहायक मिलसक्ताहै ? और जो कदाचित् उसको सहायक मिलभीजावै तौ एकक्षणभरमें दोनोंको मारकर मैं ॥ २३ ॥ आ
ताहूं । इसकारण तू खेद न कर । सुन्दरि! बाहरसे शत्रु युद्ध करनेके लिये हांक माररहाहै; ऐसे अवसरपर मैं शूर होकर घरमें कैसे बैठरहूं ? मैं उसको
मारकर यह आया, ऐसा तू समझले ॥ २४ ॥ तारा बोली, हे राजाधिराज ! मैंने एक और अनोखी बात सुनीहै; उसको सुन जो आपको उचितलगे सो
करियो, आपका पुत्र अङ्गद मृगयाके लिये गयाथा; उसने वहांपर कुछ सुना और वही मुझसे कहा; वह ऐसेहै कि—॥ २५ ॥ " अयोध्यापति
राजा दशरथके पुत्र श्रीरामचंद्रजी अपने भ्राता लक्ष्मण और भार्या सीताको साथले ॥ २६ ॥ दण्डकारण्यमें आये; वहाँपर सीताको रावणने चुराली
या; तब भ्राताके साथ वह (राम) सीताको खोजते खोजते ॥ २७ ॥ ऋष्यमूक पर्वतपर जाय सुग्रीवसे भेंट करतेहुए । सुग्रीवने अग्निको साक्षी
ठहराय उनके साथ मित्रताकी ॥ २८ ॥ लक्ष्मणके साथ श्रीरामचंद्रजीने प्रतिज्ञा करके कहा कि " वालिको युद्धमें मारकर मैं तुझे राजा बनाऊंगा। " ॥ २९ ॥

इदानीमेवतेभग्नःपुनरायातिसत्वरः ॥ सहायोवलवांस्तस्यकश्चिन्नूनंसमागतः ॥ २१ ॥ वालीतामाहहेसुभ्रुशंकातेव्येतुतद्गता ॥ प्रियेक
रंपरित्यज्यगच्छगच्छामितंरिपुम् ॥ २२ ॥ हत्वाशीघ्रंसमायास्येसहायस्तस्यकोभवेत् ॥ सहायीयदिसुग्रीवस्ततोहत्वोभयंक्षणात् ॥
॥ २३ ॥ आयास्येमाशुचःशूरःकथंतिष्ठेद्गृहेरिपुम् ॥ ज्ञात्वाप्याह्वयमानंहिहत्वायास्यामिसुंदरि ॥ २४ ॥ तारोवाच ॥ मत्तोऽन्यच्छृणु
राजेंद्रश्रुत्वाकुरुयथोचितम् ॥ आहमामंगदःपुत्रोमृगयायांश्रुतंवचः ॥ २५ ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमान्रामोदाशरथिःकिल ॥ लक्ष्मणेनस
हभ्रात्रासीतयाभार्ययासह ॥ २६ ॥ आगतोदंडकारण्यंतत्रसीताहृताकिल ॥ रावणेनसहभ्रात्रामार्गमाणोऽथजानकीम् ॥२७॥ आगतो
ऋष्यमूकाद्रिंसुग्रीवेणसमागतः ॥ चकारतेनसुग्रीवःसख्यंचानलसाक्षिकम्॥२८॥प्रतिज्ञांकृतवान्रामःसुग्रीवायसलक्ष्मणः ॥ वालिनंसमरे
हत्वाराजानंत्वांकरोम्यहम् ॥ २९ ॥

ऐसा निश्चय करके वे आएहैं; इसमें कोई संशय नहीं। नहींतौ सुग्रीव तुम्हारे पाससे अभी हारकर गयाहै; वह तुरतही लौटकर आवै; ॥ ३० ॥ इसकारण आप सर्वथा वैर छोड़कर सुग्रीवको लेआओ; व यौवराज्यपर अभिषेक करके आपभी श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें जाओ ॥ ३१ ॥ "हे वानरनाथ ! मेरे ऊपर, अंगद बालकके ऊपर, राज्यके ऊपर और कुलके ऊपर कुछतौ निहारो!" यह कहकर तारा वालिके पाँवपड़ी; उसके मुखपर आंसुओंकी धार चलने लगी ॥ ३२ ॥ इसप्रकार वालिके चरणोंमें प्रणामकर दोनोंहाथों से वालिके पाँव पकड़ भयसे महाविह्वलहुई तारा रोनेलगी; तब उसको हृदयसे लगाय वाली स्नेहसे यह वचन कहने लगा ॥ ३३ ॥ "हे प्यारी ! तू स्त्रीस्वभावसे भय पावैहै; परन्तु मुझे भय

इतिनिश्चित्यतौयातौनिश्चितंशृणुमद्वचः॥इदानीमेवतेभग्नःकथंपुनरुपागतः॥३०॥ अतस्त्वंसर्वथावैरंत्यक्त्वासुग्रीवमानय ॥ यौवराज्येऽभिषिंचाशुरामंत्वंशरणंव्रज ॥३१॥पाहिमामंगदंराज्यंकुलंचहरिपुंगव ॥ इत्युक्त्वाश्रुमुखीतारापादयोःप्रणिपत्यतम् ॥३२॥ हस्ताभ्यांचरणौधृत्वारुरोदभयविह्वला ॥ तामालिंग्यतदावालीसस्नेहमिदमब्रवीत्॥३३॥ स्त्रीस्वभावाद्बिभेषित्वंप्रियेनास्तिभयंमम ॥ रामोयदिसमायातोलक्ष्मणेनसमंप्रभुः ॥३४॥ तदारामेणमेस्नेहोभविष्यतिनसंशयः ॥ रामोनारायणःसाक्षादवतीर्णोऽखिलप्रभुः ॥३५॥भूभारहरणार्थायश्रुतंपूर्वमयानघे ॥ स्वपक्षःपरपक्षोवानास्तितस्यपरात्मनः ॥ ३६ ॥ आनेष्यामिगृहंसाध्विनत्वातच्चरणांबुजम् ॥ भजतोऽनुभजत्येषभक्तिगम्यःसुरेश्वरः ॥ ३७ ॥ यदिस्वयंसमायातिसुग्रीवोहन्मितंक्षणात् ॥ यदुक्तंयौवराज्यायसुग्रीवस्याभिषेचनम् ॥ ३८ ॥

नहीं है; जो सामर्थ्यवान् श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणके साथ आयेहैं ॥ ३४ ॥ तौ उन रामके साथ मेरा स्नेह होजायगा; इसमें कोई संशय नहीं; सर्वसृष्टिके नियामक साक्षात् नारायणजीने पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये रामरूपसे अवतार लियाहै; ॥ ३५ ॥ ऐसा मैंने पहलेसे सुनरक्खाहै। हे सुंदरि ! तेरा अन्तःकरण निर्मल व कोमलहै उस परमात्माको "यह अपनी ओरका है,व यह शत्रुकी ओरका है" ऐसा भेद बिल्कुल नहीं लगता;क्योंकि वे समदर्शी हैं ॥ ३६ ॥ हे पतिव्रते ! मैं उनके चरणकमलोंका वंदनकरके उनको घर लिवाए लाताहूं; वह देवाधिदेव भक्तिके योगसे वशहोते हैं; वह भजन करनेवालेकी प्रति सेवा करतेहैं ॥ ३७ ॥ और जो कभी सुग्रीव विना सहायके आया होगा;तौ मैं उसको एकक्षणमें मारडालूंगा। तू सुग्रीव

को राज्याभिषेक करदो ऐसा कहती है ॥ ३८ ॥ परन्तु हे प्यारी ! वहतौ शत्रुहोकर मुझे युद्धकरनेके लिये बुलारहाहै फिर मैं इसप्रकार (उसका अभिषेक) कैसे करूं;फिर कैसे मुझमें कमीपन नहीं आवैगा ? हे शुभलक्षणे ! तूही विचारकर मुझको शूर समझकर जो सब लोक मान देते हैं ॥ ३९ ॥ उससे वाली 'हे सुग्रीव ! मैं तुम्हें यौवराज्य देताहूं, युद्धका प्रसंग मतलावे, ' ऐसे मित्रके समान वचन कैसे कहेजांय ? हे सुन्दरि ! इसकारण शोक करना छोड़ सावधान होकर घरमें बैठ” ॥ ४० ॥ इसप्रकार शोककरती हुई और जिसकी आंखमें आंसू आगयेहैं ऐसी ताराको समझाय बुझाय; युद्धके अर्थ तैयार हुआ वाली सुग्रीवका वधकरनेके लिये गया ॥ ४१ ॥ श्रीरामचंद्रजीकी पहराई हुई फूलोंकी मालासे शोभायमान भयंकर पराक्रमकारी सुग्रीवने वालिको आताहुआ देख पतंगके समान उछलकर ॥ ४२ ॥ वालिके घूंसामारा । वालिनेभी इसप्रकारसे सुग्रीवके ऊपर प्रहार किया इसप्रकार वाली सुग्रीवको मारता,और सुग्रीव वालिपर प्रहारकरता था ॥ ४३ ॥ सन्ध्याके समय श्रीरामचंद्रजीकी ओर निहारकर सुग्रीव युद्ध कर रहाथा (निहारनेका कारण यहथा कि शीघ्र वालिको मारो) इस प्रकार आवेशसे युद्ध करताहुआ । उन दोनोंको प्रतापशाली श्रीरामचंद्रजीने देखा ॥ ४४ ॥ तब उन भक्तसंकटनाशन महासामर्थ्यवान् प्रभुने, अपने आप वालिकी दृष्टिसे बचेरहकर वृक्षकी आड़से तरकशसे बाण निकाल इन्द्रधनुषपर चढ़ाया ॥ ४५ ॥ कानतक प्रत्यंचा खेंच वालिको ताककर उसके हृदयको निशाना बनाय वज्रके समान महावेगवान् बाण छोड़ा ॥ ४६ ॥ वह बाण वालिके हृदयको विदारण करके पृथ्वीको कंपायमान करता और बड़ाभारी शब्द करता हुआ आकाशमें उड़ा; और

कथमाहूयमानोऽहंयुद्धायरिपुणाप्रिये ॥ शूरोऽहंसर्वलोकानांसंमतःशुभलक्षणे ॥ ३९ ॥ भीतभीतमिदंवाक्यंकथंवालीवदेत्प्रिये ॥ तस्माच्छोकंपरित्यज्यतिष्ठसुंदरिवेश्मनि ॥ ४० ॥ एवमाश्वास्यतारांतांशोचंतीमश्रुलोचनाम् ॥ गतोवालीसमुद्युक्तःसुग्रीवस्यवधायसः ॥४१॥ दृष्ट्वावालिनमायांतंसुग्रीवोभीमविक्रमः ॥ उत्पपातगलेबद्धपुष्पमालःपतंगवत् ॥ ४२ ॥ मुष्टिभ्यांताडयामासवालिनंसोऽपितंतथा ॥ अहन्वालीचसुग्रीवंसुग्रीवोवालिनंतथा ॥४३॥ रामंविलोकयन्नेवसुग्रीवोयुयुधेयुधि ॥ इत्येवंयुद्ध्यमानौतौदृष्ट्वारामःप्रतापवान् ॥ ४४ ॥ वाणमादायतूणीरादैंद्रेधनुषिसंदधे ॥ आकृष्यकर्णपर्यंतमदृश्योवृक्षखंडगः ॥ ४५ ॥ निरीक्ष्यवालिनंसम्यग्लक्ष्यंतद्धृदयंहरिः ॥ उत्ससर्जाशनिसमंमहावेगंमहावलः ॥ ४६ ॥ बिभेदसशरोवक्षोवालिनःकंपयन्महीम् ॥ उत्पपातमहाशब्दंमुंचन्सानिपपातह ॥ ४७ ॥

इधर वालिभी पृथ्वीपर गिरा ॥ ४७ ॥ एक मुहूर्त्ततक वालिको चेतना नहीं रहीं; परंतु जब चैतन्य हुआ तौ उसने देखा कि-सन्मुख साक्षात् कमलके समान नेत्रवाले श्रीरामचंद्रजी खड़ेहैं । वे (रामचन्द्रजी) दांयें हाथमें धनुष लेकर बांये में बाण ॥ ४८ ॥ लेरहेथे, उनके शरीरपर वल्कल रूप वस्त्र और मस्तकपर जटाका मुकुट था; विशाल छातीमें प्रकाशमान वनमाला शोभायमान होरहीथी ॥ ४९ ॥ उनकी बांहैं पुष्ट, सुन्दर व लम्बीर्थीं; अङ्गकी कांति नये दूर्वादलके समान नीलवर्ण थी; जिनके दोनों ओर सुग्रीव और लक्ष्मण सेवा करनेके लिये खड़े हैं ॥ ५० ॥ ऐसे श्रीरामचंद्रजीको देख वाली उनकी निन्दाकरनेके लिये हौले२ लड़खड़ाती वाणीसे कहने लगा,– " हेराम ! मैंने तुम्हारा कौनसा अपराध किया कि जिस्से तुमने मुझे मारा ? ॥ ५१ ॥ वृक्षकी आड़में खड़े रहकर मुझपै बाण छोड़ा, यह आपने निन्दनीय कर्म किया । तुमको राजधर्म नहीं आता, ऐसा मुझे मालूम होताहै ॥ ५२ ॥ इसप्रकार चोरके समान युद्धकरके कौनसी कीर्त्तिको प्राप्तकरोंगे; जो तुम यथार्थ क्षत्रियोंके वंशज और मनुके कुलमें उत्पन्न हुए होते ॥ ५३ ॥ तौ मेरे सन्मुख होकर युद्धकरते; तब उसका फल (मरण या कीर्त्ति दोनोंमेंसे एक) तुमको मिलता; सुग्रीवने ऐसा तुम्हारा कौनसा कार्य किया; और मैंने कौनसा नहीं किया ? ॥ ५४ ॥ हे राम ! रावणने महावनमें तुम्हारी भार्याको चुरालिया इसकारण तुम सुग्रीवकी शरण गये,ऐसा मैं सुनताहूं;हे रामचन्द्र! परन्तु यह बड़े आश्चर्यकी बातहै कि मेरा पराक्रम सारे संसारमें प्रसिद्ध होनेपरभी तुमपर

तदामुहूर्तंनिःसंज्ञोभूत्वाचेतनमापसः ॥ ततोवालीददर्शाग्रेरामंराजीवलोचनम् ॥ धनुरालंब्यवामेनहस्तेनान्येनसायकम् ॥४८॥ विभ्राणंचीरवसनंजटामुकुटधारिणम् ॥ विशालवक्षसंभ्राजद्वनमालाविभूषितम् ॥ ४९ ॥ पीनचार्वायतभुजंनवदूर्वादलच्छविम् ॥ सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यांचपार्श्वयोःपरिसेवितम् ॥ ५० ॥ विलोक्यशनकैःप्राहवालीरामंविगर्हयन् ॥ किंमयापकृतंरामतवयेनहतोऽस्म्यहम् ॥ ५१ ॥ राजधर्ममविज्ञायगर्हितंकर्मतेकृतम् ॥ वृक्षखंडेतिरोभूत्वात्यजतामयिसायकम् ॥ ५२ ॥ यशःकिंलप्स्यसेरामचोरवत्कृतसंगरः ॥ यदिक्षत्रियदायादोमनोर्वंशसमुद्भवः ॥ ५३ ॥ युद्धंकृत्वासमक्षंमेप्राप्स्यसेतत्फलंतदा ॥ सुग्रीवेणकृतंकिंतेमयावानकृतंकिमु ॥ ५४ ॥ रावणेनहृताभार्यातवराममहावने ॥ सुग्रीवंशरणंयातस्तदर्थमितिशुश्रुम ॥ ५५ ॥ वतरामनजानीषेमद्बलंलोकविश्रुतम् ॥ रावणंसकुलंवद्ध्वाससीतंलंकयासह ॥ ५६ ॥

विदित नहीं हुआ; जो सुन लेते तौ सुग्रीवकी शरणमें नहीं जाते। बहुत क्या कहूं ? ॥५५॥५६॥ हे राघव ! जो मैं इच्छा करता तौ आधे मुहूर्तमें राक्षसकुलके साथ रावणको बांध सीताजी और लंका नगरीको साथ ले आता। हे रघुनंदन! इसलोकमें तुम महाधार्मिक प्रसिद्धहो ॥ ५७ ॥ परन्तु व्याधेके समान एक वानरको मारकर कौनसे धर्मका संग्रह करोगे, सो कहो। वानरका मांस तौ अभक्ष्य है; फिर मुझे मारकर तुम क्या करोगे ?" ॥ ५८ ॥ इसप्रकार वालीने बहुत वार्ता कहीं; तब श्रीरामचंद्रजी बोले, "मैं धर्मकी रक्षा करनेके लिये हाथमें धनुष धारण करकै इस लोकमें फिरताहूं ॥ ५९ ॥ व अधर्म करनेवालोंका वध करकै सद्धर्मका पालन करताहूं। कन्या, बहन, छोटे भाईकी स्त्री, और पुत्रकी बहू–

आनयामिमुहूर्तार्धाद्यदिचेच्छामिराघव ॥ धर्मिष्ठइतिलोकेऽस्मिन्कथ्यसेरघुनंदन ॥५७॥ वानरंव्याधवद्धत्वाधर्मंकंलप्स्यसेवद ॥ अभक्ष्यं
वानरंमांसंहत्वामांकिंकरिष्यसि ॥ ५८ ॥ इत्येवंबहुभाषंतंवालिनंराघवोऽब्रवीत् ॥ धर्मस्यगोप्तालोकेऽस्मिंश्चरामिसशरासनः ॥ ५९ ॥
अधर्मकारिणंहत्वासद्धर्मंपालयाम्यहम् ॥ दुहिताभगिनीभ्रातुर्भार्याचैवतथास्नुषा ॥ ६० ॥ समायोरमतेतासामेकामपिविमूढधीः ॥ पात
कीसतुविज्ञेयःसवध्योराजभिःसदा ॥ ६१ ॥ त्वंतुभ्रातुःकनिष्ठस्यभार्यायांरमसेबलात् ॥ अतोमयाधर्मविदाहतोऽसिवनगोचर ॥ ६२ ॥
त्वंकपित्वान्नजानीषेमहांतोविचरंतियत् ॥ लोकंपुनानाःसंचारैरतस्तान्नातिभाषयेत् ॥६३॥ तच्छ्रुत्वाभयसंत्रस्तोज्ञात्वारामंरमापतिम्॥
वालीप्रणम्यरभसाद्रामंवचनमब्रवीत् ॥ ६४ ॥ रामराममहाभागजानेत्वांपरमेश्वरम् ॥ अजानतामयाकिंचिदुक्तंतत्क्षंतुमर्हसि ॥ ६५ ॥

॥ ६० ॥ यह चारों बराबर हैं; जो मूढ़बुद्धि पुरुष इन चारोंमेंसे एकके साथ भी रमण करता है; वह पातकी समझा जाता है; राजाको उचित है कि सदा ऐसे अधर्मीको मार डालै ॥६१॥ इसधर्मको मैं पूर्ण जानताहूं हे वनचर ! तू अपने छोटे भाईकी स्त्रीको बलसे भोगता है; इसकारण मैंने तेरा वध किया ॥ ६२ ॥ तू वानरयोनिमें उत्पन्न हुआ है, इसलिये सत्पुरुषोंके आचरणका तत्त्व तू नहीं जानता । वे सर्वत्र घूम घामकर लोकोंको पवित्र करते हैं; इसकारण उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये" ॥ ६३ ॥ यह भाषण सुनकर वालिको अति भय लगा और ऐसा ज्ञान हुआ कि यह रामचंद्र साक्षात् लक्ष्मीपति ईश्वर हैं; तत्काल वालिने श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करकै कहा ॥ ६४ ॥ "हे राम ! हे आनंददायक !

हे षड्गुणैश्वर्य प्रभो ! अब मेरी समझमें भली भाँति आया कि आप परमेश्वर हैं; अज्ञानके कारण अबतक मैंने जो कुछ कहा है उसको आप क्षमाकर दें॥ ६५॥ हे राम! मैं अपनेको बड़ा धन्य मानताहूं कारण प्रत्यक्ष आपके चलाये बाणके प्रहारसे और विशेष करकै तुम्हारे आगे मैं प्राण छोड़ताहूं। तुम्हारे दर्शन बड़े २ योगियोंको मिलने दुर्लभ हैं ॥ ६६ ॥ प्राणी बराबर पुत्रादिकोंकी ममतासे आक्रांतहो रहे हैं—पर मृत्युकालमें जो उसने तुम्हारा नाम लिया; तौ वह परमपदको प्राप्तहो जाता है। ऐसे महास्वरूप साक्षात् प्रभु तुम, आज मरनेके समय मेरे नेत्रोंके सन्मुख खड़े हो; फिर मुझको उत्तम पद मिलनेमें आश्चर्य क्या है ? ॥ ६७ ॥ हे देव! मैं जानताहूं कि आप साक्षात् परमेश्वर व जानकीजी मंगलकी देनेवाली लक्ष्मीजी हैं आपने ब्रह्माजी के प्रार्थना करनेपर रावणका वध करनेको अवतार लिया है ॥६८॥ हे राम! अब मैं तुम्हारे उत्तम पदको जाताहूं आप मुझे आज्ञा दें और मेरे अंगद बालकपर कृपादृष्टि रखियेगा, यह अंगदभी मेरे समान पराक्रमी है ॥ ६९ ॥ हे राम! मेरे हृदयको अपने हाथसे छूकर उसमेंसे बाण निकाल लीजिये।" श्रीरामचंद्रजीने 'अच्छा' कहकर वालिको हाथसे छुआ और बाण निकाला तत्काल वालि वानरका शरीर छोड़कर श्रेष्ठ देवता होगया ॥७०॥ (शंकर बोले हे पार्वति!) वालिको रामचंद्रजीके बाणका प्रहार लगा; और प्रभुने उसको अपने पूर्ण सुखमय हाथसे स्पर्श किया; तब तत्काल वह (वालि) वानर शरीरको छोड़ परमश्रेष्ठ पदको प्राप्त हुआ; जो स्थान वालिको प्राप्त हुआ वह सर्व साधारणको नहीं मिलता; अधिक क्या कहैं परमहंसोंको प्राप्त होना भी कठिन है॥ ७१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकांडे भाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः॥ २ ॥

साक्षात्त्वच्छरघातेनविशेषेणतवाग्रतः ॥ त्यजाम्यसून्महायोगिदुर्लभंतवदर्शनम् ॥ ६६ ॥ यन्नामविवशोगृह्णन्म्रियमाणःपरंपदम् ॥ यातिसाक्षात्सएवाद्यमुमूर्षोर्मेपुरःस्थितः ॥ ६७ ॥ देवजानामिपुरुषंत्वांश्रियंजानकींशुभाम् ॥ रावणस्यवधार्थायजातंत्वांब्रह्मणार्थितम् ॥ ६८ ॥ अनुजानीहिमांरामयांतंत्वत्पदमुत्तमम् ॥ ममतुल्यबलेबालेअंगदेत्वंदयांकुरु ॥ ६९॥ विशल्यंकुरुमेरामहृदयंपाणिनास्पृशन् ॥ तथेतिबाणमुद्धृत्यरामःपस्पर्शपाणिना ॥ त्यक्त्वातद्वानरंदेहममरेंद्रोऽभवत्क्षणात् ॥७० ॥ वालीरघूत्तमशराभिहतोविमृष्टोरामेणशीतलकरेणसुखाकरेण॥सद्योविमुच्यकपिदेहमनन्यलभ्यंप्राप्तःपदंपरमहंसगणैर्दुरापम्॥७१॥इतिश्रीम० किष्कि० द्वितीयःसर्गः॥२॥

तारका विलापकरना. श्रीमहादेवजी बोले;– कि इसप्रकार परमात्मा रामचंद्रजीने जब रणमें वालिका संहार किया। तब भयसे विह्वल होकर समस्त
वानर दौड़कर किष्किन्धामें आये॥ १ ॥तारासे बोले,–"हे महाभागे संग्राममें वालि मारागया। अब अंगदकी रक्षा करो मंत्रियोंको नगरकी रक्षा करनेकी
आज्ञा दो ॥ २ ॥ हम चारों दरवाजोंके किवाँड़ बन्द करके नगरीकी रक्षा करते हैं। हे सुन्दरी! अब अंगदको वानरोंका राजा बनाओ" ॥ ३ ॥
वालिके मरनेका समाचार कानमें पड़तेही शोकके मारे ताराको मूर्छा आगई; वह वारंवार शिर और छातीको अपने हाथोंसे पीटनेलगी ॥
॥ ४ ॥ तारा बोली "मुझे अंगदसे, राज्यसे, नगरसे, और धनसे क्या प्रयोजन है? मैं अभी पतिके साथ प्राण त्याग करूंगी!" ॥ ५ ॥ ऐसा

श्रीमहादेवउवाच ॥ निहतेवालिनिरणेरामेणपरमात्मना ॥ दुद्रुवुर्वानराःसर्वेकिष्किंधांभयविह्वलाः ॥ १ ॥ तारामूचुर्महाभागेहतोवाली
रणाजिरे ॥ अंगदंपरिरक्षाद्यमंत्रिणःपरिणोदय ॥ २ ॥ चतुर्द्वारकपाटादीन्बद्ध्वारक्षामहेपुरीम् ॥ वानराणांतुराजानमंगदंकुरुभामिनि ॥
॥ ३ ॥ निहतंवालिनंश्रुत्वाताराशोकविमूर्च्छिता ॥ अताडयत्स्वपाणिभ्यांशिरोवक्षश्चभूरिशः ॥ ४ ॥ किमंगदेनराज्येननगरेणधने
नवा ॥ इदानीमेवनिधनंयास्यामिपतिनासह॥५॥इत्युक्त्वात्वरितातत्ररुदतीमुक्तमूर्धजा ॥ ययौताराऽतिशोकार्तायत्रभर्तृकलेवरम् ॥६॥
पतितंवालिनंदृष्ट्वारक्तैःपांसुभिरावृतम् ॥ रुदतीनाथनाथेतिपतितातस्यपादयोः ॥ ७ ॥ करुणंविलपंतीसाददर्शरघुनंदनम् ॥ राममां
जहिबाणेनयेनवालीहतस्त्वया ॥ ८ ॥ गच्छामिपतिसालोक्यंपतिर्मामभिकांक्षते ॥ स्वर्गेऽपिनसुखंतस्यमांविनारघुनंदन ॥ ९ ॥
पत्नीवियोगजंदुःखमनुभूतंत्वयानघ ॥ वालिनेमांप्रयच्छाशुपत्नीदानफलंभवेत् ॥ १० ॥

कहकर वह रोती शीघ्र वहाँपर आई; जहाँपर उसके पतिका शव पड़ाथा।शोकका तीव्र वेग उसपर नहीं सहा गया; उसके केश खुल रहेथे ॥ ६ ॥
वालि रक्त और धूरिसे व्याप्त होकर वहाँ पड़ाथा! उसको देखतेही 'हानाथ! हानाथ!' कहकर रोतीहुई तारा उसके पांवपर गिर पड़ी ॥ ७ ॥
और दीनवाणीसे विलाप करनेलगी। इतनेंहीमें श्रीरामचंद्रजीके ऊपर दृष्टि पड़ जानेसे तारा बोली,–"हे राम! जिस बाणसे वालिको मार डालाहै;
उसही बाणसे मुझे मार डालियेगा ॥ ८ ॥ क्योंकि मैं पतिलोकको जाऊंगी। स्वामी मेरी वाट देखते होंगे। हे रघुनंदन! मेरे विना उसको
स्वर्गमें भी सुख नहीं होगा ॥ ९ ॥ हे पुण्यपुरुष! इसका अनुभव आपको है कि स्त्रीका विरह होनेसे कितना दुःख होता है; इस्से आप मुझ

को वालिके पास पहुँचा दीजिये (वालिके स्वाधीन करो)॥ तब तुम्हें स्त्रीदानका फल मिलैगा [तुमको तुम्हारी स्त्री मिल जायगी]॥ १० ॥
हे सुग्रीव! वालिके मारनेवाले रामचंद्रने तुमको राज्य देदिया; इसकारण उस शत्रुरहित राजको तुम रुमाके साथ सुखसे भोगो" ॥ ११ ॥
इस प्रकार ताराके शोक करनेपर उदार मनवाले श्रीरामचंद्रजीने तत्त्वज्ञानके उपदेश करकै दयापूर्वक ताराको सावधान किया; श्रीरामचंद्रजी
बोले; ॥ १२ ॥ "हे भीरु! शोकका अविषय रूप अर्थात् शोकका स्थान रूप नहीं है तो ऐसे पतिका तू व्यर्थ शोक काहेको करे है? हे कल्याणि!
यह देह तेरा पति है, या जीव तेरा पति है यह विचार करकै कह ॥१३॥ जो देहको पति मानतीहो तौ यह जड़ देह, त्वचा, मांस, रुधिर, और अस्थिमय

सुग्रीवत्वंसुखंराज्यंदापितंवालिघातिना ॥ रामेणरुमयासार्धंभुंक्ष्वसापत्नवर्जितम् ॥ ११ ॥ इत्येवंविलपंतींतांतारांरामोमहामनाः ॥ सां
त्वयामासदययातत्त्वज्ञानोपदेशतः ॥१२॥ किंभीरुशोचसिव्यर्थंशोकस्याविषयंपतिम् ॥ पतिस्तवायंदेहोवाजीवोवावदतत्त्वतः॥१३॥
पंचात्मकोजडोदेहस्त्वङ्मांसरुधिरास्थिमान् ॥ कालकर्मगुणोत्पन्नःसोऽप्यास्तेऽद्यापितेपुरः ॥ १४ ॥ मन्यसेजीवमात्मानंजीवस्तर्हि
निरामयः ॥नजायतेनम्रियतेनतिष्ठतिनगच्छति ॥ १५ ॥ नस्त्रीपुमान्वाषंढोवाजीवःसर्वगतोऽव्ययः ॥ एकएवाद्वितीयोऽयमाकाशवदले
पकः ॥ नित्योज्ञानमयःशुद्धःसकथंशोकमर्हति ॥ १६ ॥ तारोवाच ॥ देहोऽचित्काष्ठवद्रामजीवोनित्यश्चिदात्मकः ॥ सुखदुःखादिसंबं
धःकस्यस्याद्राममेवद ॥ १७ ॥

है। वह पंचमहाभूतका देह काल और गुणसे उत्पन्न हुआ है। वह (देह) अबतक तेरे आगे पड़ाहै ॥ १४ ॥ और जो तू जीवको अपना
पति मानतीहो; तौभी शोक करनेका कोई प्रयोजन नहीं।—क्योंकि;—जीव निर्विकारहै, उसकी उत्पत्ति नहीं; मरण नहीं तैसेही वह स्थिर नहीं
रहता। या गमन भी नहीं करता ॥ १५ ॥ जीव, न स्त्री; न पुरुष; न नपुंसक है; केवल सर्वव्यापी निर्विकार होनेसे एकही है; उसमें दूसराभाव
नहीं; वह आकाशके समान सर्वव्यापक रहकरभी अलिप्त है। उसका स्वरूप तीनकालमेंभी नष्ट न होनेवाला ज्ञानमय व शुद्धहै; फिर वह कैसे
शोककरनेके योग्यहै?" ॥ १६ ॥ यह सुनकर ताराने कहा;"हेराम! जो देह काष्ठके समान जड़ और नाशवान्है, और आत्मा बल अविनाशी और

चैतन्यस्वरूप है। तौ हेराम! फिर सुख दुःखका संबन्ध किसको होता है सो आप मुझसे कहैं" ॥१७॥ श्रीरामचंद्रजी बोले—"जबतक देह और इन्द्रियोंके साथ 'मैं' और 'मेरा' अभिमान अर्थात् अहंता लगीहै; इसप्रकार बुद्धिके विषय अहंकारादिके साथ जीवका सम्बन्धहै; तबतक अज्ञानवाले अंतःकरणसे आत्माको संसार होता है ॥ १८ ॥ सदाविषयोंका ध्यान करनेवाले मनुष्यको स्वप्नमें अनेक पदार्थ दीखतेहैं; स्वप्नमें दीखनेवाली वस्तु वास्तवमें मिथ्या होतीहै; तथापि जागनेतक वे पदार्थ झूंठे नहीं मालूम पड़ते; इस दृष्टान्तके अनुसार यह संसार मिथ्यामें आरोपितकिया; और कल्पितहै यह यथार्थहै; तथापि आपही आप (विनाविचारे) निवृत्त होनेवाला नहीं ॥ १९ ॥ वास्तवमें निरर्थक (अत्यंत मिथ्याभूत) व राग द्वेष इत्यादि विकारोंसे पूरापूरा भराहुआ यह संसार अनात्म (जड़) वस्तुपर आत्मबुद्धि ठहरानेसे; और उस अज्ञानका कार्य जो अहंकार है; वह उस्से उत्पन्न होताहै ॥ २० ॥ हे कल्याणि! यह मनही संसारका मूलकारण है मनही सुख दुःखादि भोग तथा बंधनका कारण है। वरन वह आत्मा मनोगत सुख दुःखादि भोगोंका भोगनेवाला न होताहुआभी मनके साथ समानताको प्राप्त होताहै ॥ २१ ॥ जैसे शुद्ध स्फटिकमणि स्वभावसे श्वेतवर्ण होनेपरभी लाखके साथ समीप रहनेसे वैसेही रंगकी मालूम होतीहै; परन्तु उसका रंग वास्तवमें वह नहीं है ॥ २२ ॥ वैसेही बुद्धि व इन्द्रियादिकोंके समीप होनेसे आत्मापर बलात्कारसे संसारका आरोप किया जाताहै; आत्मा अपने आपसे अनुमान करनेका साधन जो मनहै उसको स्वीकार करताहै; व ज्ञानी होकर उस मनसे उत्पन्न होनेवाले ॥ २३ ॥ विषयोंका भोग करतारहताहै; इसके पीछे;—उसको

श्रीरामउवाच ॥ अहंकारादिसंबंधोयावद्देहेंद्रियैःसह ॥ संसारस्तावदेवस्यादात्मनस्त्वविवेकिनः ॥ १८ ॥ मिथ्यारोपितसंसारोनस्वयं
विनिवर्तते ॥ विषयान्ध्यायमानस्यस्वप्नेमिथ्यागमोयथा ॥ १९ ॥ अनाद्यविद्यासंबंधात्तत्कार्याहंकृतेस्तथा ॥ संसारोऽपार्थकोऽपिस्या
द्रागेद्वेषादिसंकुलः ॥ २० ॥ मनएवहिसंसारोबंधश्चैवमनःशुभे ॥ आत्मामनःसमानत्वमेत्यतद्गतबंधभाक् ॥ २१ ॥ यथाविशुद्धःस्फटि
कोऽलक्तकादिसमीपगः ॥ तत्तद्वर्णयुगाभातिवस्तुतोनास्तिरंजनम् ॥ २२ ॥ बुद्धींद्रियादिसामीप्यादात्मनःसंसृतिर्बलात् ॥ आत्मास्व
लिंगंतुमनःपरिगृह्यतदुद्भवान् ॥ २३ ॥ कामाञ्जुषन्गुणैर्बद्धःसंसारेवर्ततेऽवशः ॥ आदौमनोगुणान्सृष्ट्वाततःकर्माण्यनेकधा ॥ २४ ॥

मनके राग द्वेषादि गुणोंके द्वारा बंधजानेसे पराधीन होकर संसारमें रहना पड़ताहै । प्रथमतः मन राग द्वेषादि गुण उत्पन्न करके फिर उन गुणोंके योगसे अनेकप्रकारके कर्म निर्माण करताहै ॥ २४ ॥ उसकर्मके शुक्ल (हिंसारहित, जप, ध्यान इत्यादि) लोहित (हिंसासे मिलेहुए यज्ञयागादि) और कृष्ण (पापकर्म) यह तीन भेद हैं; वह कर्मकी गतिभी प्रत्येकको उसकी योग्यताके अनुसार अलग २ (उत्तम, मध्यम, अधम) है; इस प्रकार जीव उस कर्मके आधीन होकर प्रलयकालतक भ्रमण करता रहता है ॥ २५ ॥ उसके अन्तःकरणादिपर "यह मौत है" ऐसा पूर्ण ग्रह होता है; इसकारण प्रलयकालमें जगत् नाश होनेपर, वह वासना और अपने किये हुए कर्मोंके साथ वर्तमान; उस अंतःकरणादिकी आदिकारण जो अविद्या है उसमें लीन होकर रहता है ॥ २६ ॥ फिर नई सृष्टिके उत्पन्न होनेके समय; जैसे नाज वर्षा कालके पीछे बीजरूपमें लीन होकर दूसरी वर्षाऋतुमें फिर उत्पन्न होता है; वैसेही वह जीव प्राचीन वासना और कर्मोंके साथ जन्म लेता है; इसप्रकार वह रहटमें बँधे घटके समान पराधीन होकर जन्म मरणकी परंपरा भोगता रहता है ॥ २७ ॥ फिर आगे किसी प्रसंगसे या किसी विशेष पुण्य कर्मके प्रभावसे, पूर्ण शान्त, व मेरे भजन करनेमें सदा तत्पर सत्पुरुषोंके समागमसे जीवकी मति मेरे विषयमें होती है अर्थात् ईश्वर महान्, शक्तिमान् और सर्वकर्ता है, ऐसी बुद्धि होती है; उस बुद्धिके होतेही मेरी कथाके विषय ऐसी श्रद्धा होती है; जो दूसरोंको दुर्लभ है, तिस्से अनायासही मेरे स्वरूपके ज्ञानका साधनभूत वैराग्य होता है [विषय तुच्छ लगने लगता है] उस विज्ञानसे विषयोंका सुख मालूम होने लगता है । इसप्रकार नित्य अनित्य इत्यादिका विवेकवाला वैराग्य होता है॥ २८॥ २९॥ वैराग्यके होतेही आचार्य गुरुके प्रसादसे तत्त्वमसि इत्यादि महावाक्यका अर्थज्ञानके श्रवण मनन रूप

शुक्ललोहितकृष्णानिगतयस्तत्समानतः ॥ एवंकर्मवशाज्जीवोभ्रमत्याभूतसंप्लवम् ॥ २५ ॥ सर्वोपसंहृतौजीवोवासानाभिःस्वकर्मभिः ॥
अनाद्यविद्यावशगस्तिष्ठत्यभिनिवेशतः ॥ २६ ॥ सृष्टिकालेपुनःपूर्ववासनामानसैःसह ॥ जायतेपुनरप्येवंघटीयंत्रमिवावशः ॥ २७ ॥
यदापुण्यविशेषेणलभतेसंगतिंसताम् ॥ मद्भक्तानांसुशान्तानांतदामद्विषयामतिः ॥२८॥ मत्कथाश्रवणेश्रद्धादुर्लभाजायतेततः ॥ ततः
स्वरूपविज्ञानमनायासेनजायते ॥ २९ ॥ तदाचार्यप्रसादेनवाक्यार्थज्ञानतःक्षणात् ॥ देहेंद्रियमनःप्राणाहंकृतिभ्यःपृथक्स्थितम्॥ ३०॥

उत्साहसे वारंवार पवित्र पवित्र कर्म करताहुआ देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, और अहंकारसे अलग रहकर ॥ ३० ॥ तीन कालमेंभी नष्ट न होनेवाले, आनंदमय व द्वैतरहित है, ऐसा प्रत्यक्ष और अनुभवसिद्ध ज्ञान प्राप्तकर लेता है; इस ज्ञानके होतेही तत्काल मुक्ति पाजाता है, हे तारे! यह यथार्थ प्रकार मैंने तुझसे निवेदन किया ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य मेरे इस कहे हुए ज्ञानका नित्य विचार करता है; उसको संसारके दुःख कभी भी नहीं भोगने पड़ते हैं ॥ ३२ ॥ हे तारे! देखो तुम इस मेरे उपदेशका सूक्ष्म विचारकरो; तब तेरी बुद्धि निर्मल होगी; तुझे दुःख समूहका संपर्क नहीं लगैगा, और पीछेसे कर्मके बन्धनोंसे मुक्ति मिलजायगी ॥ ३३ ॥ हे सुन्दरी! तेरा बड़ा भाग्य है, पहले जन्ममें तैंने मेरी

स्वात्मानुभवतःसत्यमानंदात्मानमद्वयम् ॥ ज्ञात्वासद्योभवेन्मुक्तःसत्यमेवमयोदितम् ॥ ३१ ॥ एवंमयोदितंसम्यगालोचयातियोऽ
निशम् ॥ तस्यसंसारदुःखानिनस्पृशंतिकदाचन ॥ ३२ ॥ त्वमप्येतन्मयाप्रोक्तमालोचयविशुद्धधीः ॥ नस्पृश्यसेदुःखजालैःकर्मबंधा
द्विमोक्ष्यसे ॥ ३३ ॥ पूर्वजन्मनितेसुभ्रुकृतामद्भक्तिरुत्तमा ॥ अतस्तवाविमोक्षायरूपंमेदार्शितंशुभे ॥ ३४ ॥ ध्यात्वामद्रूपमनिशमालो
चयमयोदितम् ॥ प्रवाहपतितंकार्यंकुर्वत्यपिनलिप्यसे ॥ ३५ ॥ श्रीरामेणोदितंसर्वंश्रुत्वातारातिविस्मिता ॥ देहाभिमानजंशोकंत्यक्ता
नत्वारघूत्तमम् ॥ ३६ ॥ आत्मानुभवसंतुष्टाजीवन्मुक्ताबभूवह ॥ क्षणसंगममात्रेणरामेणपरमात्मना ॥ ३७ ॥ अनादिबंधंनिर्धूयमुक्ता
सापिविकल्मषा ॥ सुग्रीवोऽपिचतच्छ्रुत्वारामवक्रात्समीरितम् ॥ ३८ ॥

उत्तम प्रकारसे भक्ति की थी; इसकारण तुझे मोक्ष देनेको मैंने इस विश्वरूपसे दर्शन दिया ॥ ३४ ॥ तू निरन्तर मेरे स्वरूपका ध्यान और उस उपदेशका चिंतवन करती रहिये, इससे संसारके प्रवाहमे कार्य करनेंपरभी इसमें लिप्त नहीं होगी" ॥ ३५ ॥ रामचंद्रजीका समस्त भाषण सुनकर तारा परम विस्मयको प्राप्त हुई; देह पर अभिमान होनेसे–'वालि मेरा पतिहै।' ऐसा मालूम होनेपर उसको शोक हुआथा पर अब इसने उसको (शोकको) छोड़ दिया। व श्रीरामचंद्रजीका वन्दन किया ॥ ३६ ॥ (श्रीमहादेवजी बोले; हेपार्वति!) प्रभु रामचंद्रजीके एक क्षणभर समागमका-कितना फल है सो देखो,–ताराको अपने स्वरूपका अनुभव होनेसे उत्पन्न होनेंवाला आनंद और जीवन्मुक्ति प्राप्त हुई ॥ ३७ ॥ उस

के अंतःकरणका मल दूर होगया, और वह अनादि अविद्याके बन्धनको छोड़कर मुक्ति प्राप्त करतीहुई । श्रीरामचंद्रजीके मुखसे निकलेहुए यह उपदेश वचन कानमें पड़तेही सुग्रीवकाभी ॥ ३८ ॥ सर्व अज्ञान दूर होकर चित्त तत्काल सावधान होगया, इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजी उस वानरराज सुग्रीवसे बोले, "हे सुग्रीव अपने भ्राताका मृतक संस्कार जो कुछ शास्त्र व न्यायके अनुसार करना हो वह सब उसके न्यायके अनुसार करो वह सब उसके पुत्रसे करावो; ऐसी मेरी आज्ञा तुमको है"॥ ३९ ॥ ४० ॥ सुग्रीवने जैसी प्रभुकी आज्ञा कहकर मुख्य २ वानरोंको बुलाया । और समस्त राजोपचारके सहित वालिके देहको पुष्पकविमानके समान पालकीमें रखकर लेचले ॥ ४१ ॥ नगाड़े बजने लगे; नौवत बजी, सुग्रीवने ब्राह्मणके, मंत्री, सैनाके, बड़े २ वीर वानर नगरवासी व तारा और अंगदके साथ ॥ ४२ ॥ जाकर वालिकी सर्व उत्तर किया यथाशास्त्र व बड़ी चतुराईसे की। फिर सुग्रीवजी स्नान करकै सब मंत्रियोंके साथ श्रीरामचंद्रजीके पास आये ॥ ४३ ॥ और अत्यन्त आनंदित मनसे चरणोंका वन्दन कर श्रीरामचंद्रजीसे बोले;– "हे राजाधिराज ! अखिल समृद्धिसे भराहुआ यह वानरोंका राज्य आप पालन करै ॥ ४४ ॥ मैं आपका दास लक्ष्मणजीके साथ सदा आपके चरण कमलकी सेवा करता रहूंगा,"यह वचन सुन श्रीरामचंद्रजी हँसे; और सुग्रीवसे कहा ॥ ४५ ॥ "हे सुग्रीव! हमारे तुम्हारे एक होनेमें संदेह नहीं तेरे राज्य भोगनेसे मानो मैंनेही भोगा; तुझमें मुझमें भेद नहीं है, इस कारण मैं तुमको

जहावज्ञानमखिलंस्वस्थचितोऽभवत्तदा ॥ ततःसुग्रीवमाहेदंरामोवानरपुंगवम् ॥ ३९ ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्यपुत्रेणयद्युक्तंसांपरायिकम् ॥ कुरुसर्वंयथान्यायंसंस्कारादिममाज्ञया ॥ ४० ॥ तथेतिबलिभिर्मुख्यैर्वानरैःपरिणीयतम् ॥ वालिनंपुष्पकेक्षिप्त्वासर्वराजोपचारकैः ॥४१॥ भेरीदुंदुभिनिर्घोषैर्ब्राह्मणैर्मंत्रिभिःसह ॥ यूथपैर्वानरैःपौरैस्तारयाचांगदेनच ॥ ४२ ॥ गत्वाचकारतत्सर्वंयथाशास्त्रंप्रयत्नतः ॥ स्नात्वा जगामरामस्यसमीपंमंत्रिभिःसह ॥ ४३ ॥ नत्वारामस्यचरणौसुग्रीवःप्राहहृष्टधीः ॥ राज्यंप्रशाधिराजेंद्रवानराणांसमृद्धिमत् ॥४४॥ दासोऽहंतेपादपद्मंसेवेलक्ष्मणवच्चिरम् ॥ इत्युक्तोराघवःप्राहसुग्रीवंसास्मितंवचः ॥ ४५ ॥ त्वमेवाहंनसंदेहःशीघ्रंगच्छममाज्ञया ॥ पुरराज्याधिपत्येत्वंस्वात्मानमभिषेचय ॥ ४६ ॥

आज्ञा देताहूं अति शीघ्र जायकर किष्किन्धा पुरीमें अपने अधिपति(मालिक) होनेका अभिषेक कराओ ॥ ४६ ॥ हे मित्र चौदह वर्षतक मुझे नगरमें प्रवेश करना नहीं है, हमारे भ्राता लक्ष्मण तुम्हारी राजधानीमें जायँगे ॥ ४७ ॥ तुम आदर पूर्वक अंगदको यौवराज्यमें अभिषेक करो; मैं छोटे भ्राताके साथ समीपही पर्वतके शिखरपर ॥ ४८॥ एक वर्षातक रहूंगा। अब कुछ दिन तुम सावधानतासे नगरमें रहकर पीछेसे सीताकी सुधि लानेका यत्न करना" ॥ ४९ ॥ सुग्रीवने रामचंद्रजीके चरणोंमें साष्टांग दंडवत् करके कहा,– 'हे देव! जैसी आप आज्ञा करते हैं; वैसा ही किया जायगा' ॥ ५० ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीके अनुमोदन करनेपर लक्ष्मणजीको साथ लेकर सुग्रीव नगरमें आये। वहाँ उन्होंने

नगरंनप्रवेक्ष्यामिचतुर्दशसमाःसखे ॥ आगमिष्यतिमेभ्रातालक्ष्मणःपत्तनंतव ॥ ४७ ॥ अंगदंयौवराज्येत्वमभिषेचयसादरम् ॥ अहंसमीपेशिखरेपर्वतस्यसहानुजः ॥ ४८ ॥ वत्स्यामिवर्षदिवसांस्ततस्त्वंयत्नवान्भव ॥ किंचित्कालंपुरेस्थित्वासीतायाःपरिमार्गणे ॥ ४९ ॥ साष्टांगंप्रणिपत्याहसुग्रीवोरामपादयोः ॥ यदाज्ञापयसेदेवतत्तथैवकरोम्यहम् ॥ ५० ॥ अनुज्ञातस्तुरामेणसुग्रीवस्तुसलक्ष्मणः ॥ गत्वा पुरंतथाचक्रेयथारामेणचोदितः ॥ ५१ ॥ सुग्रीवेणयथान्यायंपूजितोलक्ष्मणस्तदा ॥ आगत्यराघवंशीघ्रंप्रणिपत्योपतस्थिवान् ॥ ५२ ॥ ततोरामोजगामाशुलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ प्रवर्षणगिरेरूर्ध्वंशिखरंभूरिविस्तरम् ॥ ५३ ॥ तत्रैकंगह्वरंदृष्ट्वास्फाटिकंदीप्तिमच्छुभम् ॥ वर्षवातातपसहंफलमूलसमीपगम् ॥ वासायरोचयामासतत्ररामःसलक्ष्मणः ॥ ५४ ॥

रामचंद्रजीकी आज्ञा अनुसार दोनों (अपना व अंगद) का अभिषेक कराया ॥ ५१ ॥ और लक्ष्मणजीकी शास्त्रोक्तविधि या न्यायानुसार पूजा की वहांपर सर्व कार्य करके लक्ष्मणजी रामजीके पास आय वंदनकर सेवा करनेके लिये निकट खड़े रहे ॥ ५२ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित वह प्रवर्षण नामक पर्वतके ऊंचे व अतिविस्तीर्ण शिखरपर गये ॥ ५३ ॥ वहांपर स्फटिक मणियोंकी प्रकाशमान गुहा उन्होंने देखी। उस रमणीय स्थलमें वृष्टि, वायु, धूपके निवारण करनेका उपायभी था; निकटही फल फूलथे; उसको देखकर राम लक्ष्मणनें वहाँपर रहनेका

विचार किया॥५४॥(महादेवजी बोले,– हे पार्वति!)प्रवर्षण पर्वतपर दिव्यफल,मूल व पुष्पोंके होनेसे; स्थान २ में मोतियोंके समान स्वच्छ जलसे भरे हुए छोटे २ सरोवर थे; चित्र विचित्र वर्णके पशु पक्षियोंके इधर उधर भ्रमण करते रहनेसे वह देश शोभायमान ज्ञात होताथा; ऐसे पर्वतपर रघुकुल भूषण श्रीरामचंद्रजी रहे ॥ ५५ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकांडे भाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

पर्वतपर रमणीय शोभाका वर्णन व रामचंद्रजीकी पूजाकी विधि । उस पर्वतपर लीलासे मणिमय गुफाओंमें फिरते हुए पकेहुए कन्द मूल और फलके भोजनसे प्रसन्न हुए श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ वर्षाकालतक उस पर्वतपर रहे ॥ १ ॥ उस वनमें वायुके चलाये हुए, जलसे पूर्ण नवीन मेघके समान श्याम, तथा हाथीके शब्दके समान जिसमें गर्जना हो रही है; पीठके ऊपर पड़ी हुई सोनेकी झूलरूप बिजली जिसमें चमक रही है; ऐसे हाथियोंके झुंडको देखकर श्रीरामचंद्रजी अति विस्मयको प्राप्त हुए ॥ २ ॥ कोमल तृण भक्षण करकै संतुष्ट व पुष्ट हुए पशु और पक्षी चारों ओर फिरतेथे । श्रीरामचंद्रजीनें देखा कि मेरा स्वरूप भली भांति देखनेको नेत्रोंको खोले खड़े रहते ॥ ३ ॥ महामुनि ध्यानमें मग्न होकर जैसे निश्चल रहते हैं; वैसेही इस समय ये (पशु पक्षी) विना हिले डुले खड़े रहे; पृथ्वीके ऊपर विचरते हुए परमात्माको जानकर सिद्ध गण, मृग और पक्षियोंके गण होकर श्रीरामचंद्रजीकी सेवा करते हैं ॥ ४॥५॥ एक समय एकान्त ध्यानमें तत्पर, श्रीरामचंद्रजी जब समा

दिव्यमूलफलपुष्पसंयुतेमौक्तिकोपमजलौघपल्वले ॥ चित्रवर्णमृगपक्षिशोभितेपर्वतेरघुकुलोत्तमोऽवसत् ॥ ५६ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादेकिष्किंधाकांडेतृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ तत्रवार्षिकदिनानिराघवोलीलयामणिगुहासुसंचरन् ॥ पक्वमूलफलभोगतोषितोलक्ष्मणेनसहितोऽवसत्सुखम् ॥ १ ॥ वातनुन्नजलपूरितमेघानंतरस्तानितवैद्युतगर्भान् ॥ वीक्ष्यविस्मयमगाद्गजयूथान्यद्वदाहितसुकांचनकक्षान् ॥ २ ॥ नवघासंसमास्वाद्यहृष्टपुष्टमृगाद्विजाः ॥ धावंतःपरितोरामंवीक्ष्यविस्फारितेक्षणाः ॥ ३ ॥ नचलंतिसदाध्यानानिष्ठाइवमुनीश्वराः ॥ रामंमानुषरूपेणगिरिकाननभूमिषु ॥ ४ ॥ चरंतंपरमात्मानंज्ञात्वासिद्धगणाभुवि ॥ मृगपक्षिगणाभूत्वाराममेवानुसेविरे ॥ ५ ॥ सौमित्रिरेकदाराममेकांतेध्यानतत्परम् ॥ समाधिविरमेभक्त्याप्रणयाद्विनयान्वितः ॥ ६ ॥

धिसे विराम लेते हुए, तब लक्ष्मणजी नम्र होते और प्रेम भक्तिके साथ उनसे ॥ ६ ॥ बोले "हे देव! जो उपदेश आपने मुझे पहले दिया; उसके योगसे मेरे अंतरमें प्राप्त हुआ अनादि अविद्याका मूलसंशय दूर होगया ॥ ७ ॥ लोकमें योगी पुरुष जिस पूजापद्धतिसे आपकी आराधना करते हैं; वह प्रकार आप मुझसे कहैं ऐसी इस समय मेरी इच्छा जान्नेकी है ॥ ८ ॥ नारद मुनि, व्यास, कमलयोनि ब्रह्माजी इत्यादि बड़े २ योगीभी बराबर कहते हैं कि इसी (पूजा करकै तुम्हारा आराधन करने)से मुक्ति हो जाती है ॥ ९ ॥ हे राजाधिराज ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, इत्यादि वर्ण, व ब्रह्मचारी, गृहस्थ इत्यादि आश्रम इन्हें मोक्षके देनेवाले और स्त्री व शूद्रोंको मुक्ति प्राप्त होनेका सुलभ साधन यही है। हे रामचंद्र! मैं तुम्हारा भ्राता आपपर पूर्ण भक्ति करताहूं; अतएव आपभी मेरी जिज्ञासाको तृप्त करें; इस्से लोकोंपरभी अनुग्रह होगा" ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले; "हे रघुनंदन! (लक्ष्मण !) मेरी पूजाके अत्यन्त विधान हैं;— वे समस्त किस प्रकारसे कहे जाँय? तौभी मैं तुम्हें उस शास्त्रोक्तपद्धतिके क्रम २ से संक्षेपमे सुनाताहूं ॥ ११ ॥ जिसके मनमें मेरी भक्ति उत्पन्न हुईहै उस मनुष्यको अपनी शाखाके गृह्यसूत्रभेद जिसप्रकार कहाहै उसके अनुसार ब्राह्मणत्वप्रात (उपनयन) होनेपर सद्गुरुके पाससे मंत्रका उपदेश लेना चाहिये॥ १२॥ सद्गुरुकी बताई हुई पूजाकी विधिके अनुसार मनुष्यको सद्भावके साथ मेरीही आराधना करनी चाहिये। पूजाके स्थानमें हृदय, अग्नि, मूर्ति, इत्यादि या सूर्य भगवान् होते हैं ॥ १३ ॥ अथवा शालि

अब्रवीद्देवतेवाक्यात्पूर्वोक्ताद्विगतोमम ॥ अनाद्यविद्यासंभूतःसंशयोहृदिसंस्थितः ॥ ७ ॥ इदानींश्रोतुमिच्छामिक्रियामार्गेणराघव ॥ भवदाराधनंलोकेयथाकुर्वंतियोगिनः ॥ ८ ॥ इदमेवसदाप्राहुर्योगिनोमुक्तिसाधनम् ॥ नारदोऽपितथाव्यासोब्रह्माकमलसंभवः ॥ ९ ॥ ब्रह्मक्षत्रादिवर्णानामाश्रमाणांचमोक्षदम् ॥ स्त्रीशूद्राणांचराजेंद्रसुलभंमुक्तिसाधनम् ॥ तवभक्तायमेभ्रात्रेब्रूहिलोकोपकारकम् ॥ १० ॥ श्रीरामउवाच ॥ ममपूजाविधानस्यनांतोऽस्तिरघुनंदन ॥ तथाऽपिवक्ष्येसंक्षेपाद्यथावदनुपूर्वशः ॥ ११ ॥ स्वगृह्योक्तप्रकारेणद्विजत्वंप्राप्यमानवः ॥ सकाशात्सद्गुरोर्मंत्रंलब्ध्वामद्भक्तिसंयुतः ॥ १२ ॥ तेनसंदर्शितविधिर्मामेवाराधयेत्सुधीः ॥ हृदयेवाऽनलेवार्चेत्प्रतिमादौविभावसौ ॥ १३ ॥ शालग्रामशिलायांवापूजयेन्मामतंद्रितः ॥ प्रातःस्नानंप्रकुर्वीतप्रथमंदेहशुद्धये ॥ १४ ॥

---

१ वैदिक नित्यकर्म विधायक ऋषिकृत्य ग्रन्थ विशेषका नाम गृह्य है।

ग्रामकी शिलासेही मेरा पूजनकरै; पहले तौ आलस्य[1] छोड़कर शरीरकी शुद्धिके लिये प्रातःकालही स्नानकरै ॥ १४ ॥ तिससमय अपने २ अधिकारके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंको, वेदके—और सूत्रादिकोंको तन्त्रमें कहेहुए मंत्र पढ़ने चाहिये; मट्टी लगाना इत्यादि स्नानकी सब विधि करै। सन्ध्या इत्यादि नित्यकर्मोंका तत्त्व समझकर यथाविधिसे अनुष्ठान करै ॥ १५ ॥ पूजाके आरम्भमें उस अच्छी बुद्धिवाले पुरुषको, सर्वकर्मोंकी सिद्धिके लिये पूजन करताहूं, ऐसा संकल्प करना चाहिये; व अपने गुरुमें ‘ यह ’ रामचन्द्र हैं; ऐसीबुद्धिसे भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिये ॥ १६ ॥ पाषाणमय मूर्तिको स्नान करावै। मृत्तिकादिकी मूर्ति होनेपर उनको हाथसेही पोंछदे, क्योंकि उनको स्नान नहीं कराया जासक्ता। प्रसिद्ध शास्त्रमें शुद्धमानेहुए गंध पुष्पादिकोंसे मेरी पूजा करे जानेपर सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ मनुष्य असत्य कहना छोड़देकर व नियमपूर्वक व्रत स्वीकार करके गुरूकी बताईहुई विधिके अनुसार मेरी पूजाकरै। हे कुलनंदन ! मूर्तिको गहनेआदि पहरानेसे मैं प्रसन्न होताहूं ॥ १८ ॥ अग्निमें हुत द्रव्य डालकर मेरा पूजनकरै तथा सूर्य या उसका चित्र काढ़ या उसका मंत्र पढ़कर आराधनाके द्वारा मेरा पूजनकरै; इसप्रकारसे मेरा भक्त मुझमें श्रद्धाकेसाथ केवल जल या जो कुछभी अर्पण करताहै; उसको मैं प्रीतिसे ग्रहण करताहूं ॥१९॥ फिर भोज्यादि पदार्थ और गन्ध, पुष्प, अक्षत, इत्यादिके अर्पण करनेपर उसकोभी मैं ग्रहण करूंहूं; इसमें आश्चर्य ही क्याहै ? इसप्रकार पूजाकी सामग्री ठीककरके मेरी पूजाका आरंभ करै ॥ २० ॥ उस पूजाकी विधि कहताहूं; सुनो. वस्त्र, या कुशके बनायेहुए आसनके ऊपर शुद्धमनवाले मेरे भक्तको देवताके सन्मुख बैठकर अंतः

वेदतंत्रोदितैर्मंत्रैर्मृल्लेपनविधानतः ॥ संध्यादिकर्मयन्नित्यंतत्कुर्याद्विधिनाबुधः ॥१५॥ संकल्पमादौकुर्वीतसिद्ध्यर्थंकर्मणांसुधीः ॥ स्वगु
रुंपूजयेद्भक्त्यामद्बुद्ध्यापूजकोमम ॥ १६ ॥ शिलायांस्नपनंकुर्यात्प्रतिमासुप्रमार्जनम् ॥ प्रसिद्धैर्गंधपुष्पाद्यैर्मत्पूजासिद्धिदायिका ॥१७॥
अमायिकोऽनुवृत्त्यामांपूजयेन्नियतव्रतः ॥ प्रतिमादिष्वलंकारःप्रियोमेकुलनंदन ॥ १८ ॥ अग्नौयजेतहविषाभास्करेस्थंडिलेयजेत् ॥
भक्तेनोपहृतंप्रीत्यैश्रद्धयाममवार्यपि ॥ १९ ॥ किंपुनर्भक्ष्यभोज्यादिगंधपुष्पाक्षतादिकम् ॥ पूजाद्रव्याणिसर्वाणिसंपाद्यैवंसमारभेत् ॥
॥ २० ॥ चैलाजिनकुशैःसम्यगासनंपरिकल्पयेत् ॥ तत्रोपविश्यदेवस्यसंमुखेशुद्धमानसः ॥ २१ ॥

करण निर्मल करना चाहिये ॥ २१ ॥ फिर अन्तर्मातृका और बहिर्मातृकासे न्यास करना; तथा केशवादिका नाम लेना । अर्थात्; केशवाय नमः, नारायणायनमः, इत्यादि इसप्रकार चौवीस नामोंसे न्यासकरे; फिर तत्त्वन्यास करके ॥ २२ ॥ फिर आलस्यहीन मेरे भक्तको मेरी मूर्त्ति इत्यादिमें विष्णुपंजरादि स्तोत्रोंसे और मंत्रोंसे न्यास करना चाहिये; इस प्रकारसे जैसे आत्मामें न्यासकरै वैसेही देवताके सावधान होकर न्यास करे ॥ २३॥ अपनेपास दांए हाथकी ओर जलसे भराहुआ कलश रक्खै; तथा बांई ओर अर्घ्य,पाद्य, आचमन, और मधुपर्कके लिये पुष्पादि पूजनक सामग्री रक्खै ॥ २४ ॥ आचमनके लिये चार पात्र रक्खै; फिर सूर्यके समान तेजस्वी अपने हृदय कमलमें जीवसंज्ञक मेरी कलाका ॥ २५ ॥

ततोन्यासंप्रकुर्वीतमातृकाबहिरांतरम् ॥ केशवादिततःकुर्यात्तत्त्वन्यासंततःपरम् ॥ २२ ॥ मन्मूर्तिपंजरन्यासंमंत्रन्यासंततोन्यसेत्॥ प्रतिमादावपितथाकुर्यान्नित्यमतंद्रितः ॥ २३ ॥ कलशंस्वपुरोवामेक्षिपेत्पुष्पादिदक्षिणे ॥ अर्घ्यपाद्यप्रदानार्थंमधुपर्कार्थमेवच ॥ २४ ॥ तथैवाचमनार्थंतुन्यसेत्पात्रचतुष्टयम् ॥ हृत्पद्मेभानुविमलेमत्कलांजीवसंज्ञिताम् ॥ २५ ॥ ध्यायेत्स्वदेहमखिलंतयाव्याप्तमरिंदम ॥ तामेवावाहयेन्नित्यंप्रतिमादिषुमत्कलाम् ॥ २६ ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैःस्नानवस्त्रविभूषणैः ॥ यावच्छक्योपचारैर्वात्वर्चयेन्मासमायया ॥ ॥ २७ ॥ विभवेसतिकर्पूरकुंकुमागुरुचंदनैः ॥ अर्चयेन्मंत्रवन्नित्यंसुगंधकुसुमैःशुभैः ॥ २८ ॥ दशावरणपूजांवैह्यागमोक्तांप्रकारयेत् ॥ नीराजनैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैर्बहुविस्तरैः ॥ २९ ॥ श्रद्धयोपहरेन्नित्यंश्रद्धाभुगहमीश्वरः ॥ होमंकुर्यात्प्रयत्नेनविधिनामंत्रकोविदः ॥ ३० ॥

ध्यानकरै,—हे शत्रुदमन ! (लक्ष्मण !) उस्से (जीवकलासे) अपना सब शरीर व्यापरहा है; ऐसे मनमें समझे और उसमें कलाकोही मूर्त्ति इत्यादिके स्थानमें आवाहन करे ॥ २६ ॥ पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, अलंकार इत्यादि जितने उपचार मिलसकैं उन सबके द्वारा कपटहीन होकर मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ २७॥ अनुकूलता होवै तौ कपूर, केशर, कृष्णागर, चंदन उत्तमप्रकारके सुगंधित पुष्पोंसे मंत्र पढ़कर मेरी आराधना करे ॥ २८ ॥ अगस्त्यसंहिता इत्यादि आगममें कहीहुई पूजाके अनुसार दशावरण पूजा करै । आरती, धूप, दीप, और अनेकप्रकारकी नैवेद्योंसे मेरा पूजनकरै । नीराजननाम पांचबत्तीकी आरती कहतेहैं॥ २९॥ यह सब पदार्थ श्रद्धाके साथ निवेदनकरै; क्योंकि, मैं ईश्वर भक्तिसे अर्पण कियेहुए

पदार्थोंका सेवन करताहूं। आगमकी विधि जाननेवाले उस पुरुषको पूजा होनेके बाद यथाविधिसे हवन करना चाहिये ॥ ३० ॥ अगस्त्यमुनिने कुंड बनानेकी जो विधि कहीहै; उसके अनुसार कुण्ड बनाकर उसमें (अग्निमें) गुरूके दियेहुए मूलमंत्रसे या पुरुषसूक्तके मंत्रसे होम करे ॥ ३१ ॥ अथवा अग्निकुण्डहीकी अग्निमें चरुरूपी हविर्द्रव्यसे हवनकरै; उस ज्ञानवान् मनुष्यको, तपायेहुए सुवर्णके समान दीप्तिमान् व दिव्य अलंकारोंसे सुशोभित एकपुरुष [मै ईश्वर] अग्निके बीचमें खड़ाहै; ऐसा होमके समय नित्य ध्यान करना चाहिये, इसके उपरान्त हनुमानादि पार्षदोंके लिये बलि देकर होम समाप्त करदे ॥ ३२ ॥ फिर मौनधारण करके मेरा ध्यान व मंत्रका प्रतिवर्ण स्मरणकरके; प्रेमयुक्त अंतःकरणसे मुझे ताम्बूल दे; उस ताम्बूलमें मुखमें सुगंधि आनेके लिये कर्पूरादि वस्तु डालै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ मेरे लिये नृत्य गाना, स्तुतिपाठादि करावै; पृथ्वीपर साष्टांग नमस्कार करै; हृदयमें मेरा नित्य चिंतवनकरै ॥ ३५ ॥ 'मैं'[राम] प्रसाद देताहूं ऐसी भावना करके उसको मस्तकपर धारणकरै; हाथसे मेरे चरण पकड़कर भक्तिपूर्वक शिर नवावै ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त उस बुद्धिसम्पन्न पुरुषको 'प्रभो' घोर संसारसे मेरी रक्षाकर ऐसी प्रार्थनाकरके नमस्कार करना चाहिये । फिर सुन्दर बुद्धिवाला पुरुष पहली कहीहुई विधिके अनुसार हृदयमें मेरा स्मरण करै; सारांश यह कि पहले जो ध्यान करीहुई जीवकलाका प्रतिमाके विषय आवाहन कराथा उसका विसर्जन करना; अर्थात् उस प्रतिमामें आवाहन कीहुई जीवकला उपवास करती समय अपनेमेंही प्रवेश करगई ऐसी भावनाकरे ॥ ३७ ॥ इसप्रकार जो विधिसे मेरा पूजनकरे, तौ वह पुरुष मेरे अनुग्रहसे इसलोक और परलोक

अगस्त्येनोक्तमार्गेणकुंडेनागमवित्तमः ॥ जुहुयान्मूलमंत्रेणपुंसूक्तेनाथवाबुधः ॥ ३१ ॥ अथवौपासनाग्नौवाचरुणाहविषातथा ॥ तप्तजांबूनदप्रख्यंदिव्याभरणभूषितम् ॥ ३२ ॥ ध्यायेदनलमध्यस्थंहोमकालेसदाबुधः ॥ पार्षदेभ्योबलिंदत्त्वाहोमशेषंसमापयेत् ॥ ३३ ॥ ततोजपंप्रकुर्वीतध्यायन्मांयतवाक्स्मरन् ॥ मुखवासंचतांबूलंदत्त्वाप्रीतिसमन्वितः ॥ ३४ ॥ मदर्थेनृत्यगीतादिस्तुतिपाठादिकारयेत् ॥ प्रणमेद्दंडवद्भूमौहृदयेमांनिधायच ॥ ३५ ॥ शिरस्याधायमद्दत्तंप्रसादंभावनामयम् ॥ पाणिभ्यांमत्पदेमूर्ध्निगृहीत्वाभक्तिसंयुतः ॥ ३६ ॥ रक्षमांघोरसंसारादित्युक्त्वाप्रणमेत्सुधीः ॥ उद्वासयेद्यथापूर्वंप्रत्यग्ज्योतिषिसंस्मरन् ॥ ३७ ॥ एवमुक्तप्रकारेणपूजयेद्विधिवद्यदि ॥ इहामुत्रचसंसिद्धिंप्राप्नोतिमदनुग्रहात् ॥ ३८ ॥

में सिद्धिको पाताहै ॥ ३८ ॥ इसप्रकारसे जो निरन्तर मेरा भक्त मेरी पूजाकरै तौ निःसंदेह मेरी सारूप्य मुक्तिको प्राप्त करलेगा ॥ ३९ ॥ यह अत्यन्त गुप्त व परम पवित्र पूजाविधि प्रत्यक्ष मैंने तुमको सुनाई । पहले के बड़े २ योगी इसप्रकारसे अनुष्ठान करते आये हैं; जो मनुष्य नित्य उसको पढ़ै वा सुनै उसको निःसंदेह सर्व पूजाका फल मिलताहै।" ॥ ४० ॥ महादेवजी बोले,—हेपार्वति! महापुरुष शेषावतार लक्ष्मणजीके प्रश्नकरनें पर श्रीरामचंद्रजीनें उन्हें अपना पूर्ण भक्त देख यह उत्तमोत्तम पूजाकी विधि उनको उपदेश की ॥ ४१ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी मायाका अवलम्बनकरकै अज्ञानीके समान दुःखित मालूम पड़नेलगे (परन्तु वास्तवमें उन परमानन्दमय प्रभुको दुःख नहींहै) श्रीरामजी मुखसे हासीते! हासीते! क

मद्भक्तोयदिमामेवंपूजांचैवदिनेदिने ॥ करोतिममसारूप्यंप्राप्नोत्येवनसंशयः॥३९॥इदंरहस्यंपरमंचपावनंमयैवसाक्षात्कथितंसनातनम्॥ पठत्यजस्रंयदिवाशृणोतियःससर्वपूजाफलभाङ्नसंशयः ॥ ४० ॥ एवंपरात्माश्रीरामःक्रियायोगमनुत्तमम् ॥ पृष्टःप्राहस्वभक्तायशेषांशायमहात्मने ॥ ४१ ॥ पुनःप्राकृतवद्रामोमायामालंब्यदुःखितः ॥ हासीतेतिवदन्नैवनिद्रांलेभेकथंचन ॥ ४२ ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रकिष्किंधायांसुबुद्धिमान् ॥ हनूमान्प्राहसुग्रीवमेकांतेकपिनायकम् ॥ ४३ ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामितवैवहितमुत्तमम् ॥ रामेणतेकृतःपूर्वमुपकारोह्यनुत्तमः ॥ ४४ ॥ कृतघ्नवत्त्वयानूनंविस्मृतःप्रतिभातिमे ॥ त्वत्कृतेनिहतोवालीवीरस्त्रैलोक्यसंमतः ॥ ४५ ॥ राज्येप्रतिष्ठितोऽसित्वंतारांप्राप्तोऽसिदुर्लभाम् ॥ सरामःपर्वतस्याग्रेभ्रात्रासहवसन्सुधीः ॥ ४६ ॥

हकर विलाप करते हुये, उनको किसीभांतिसे नींद न आई ॥ ४२ ॥ इसअनंतरमें इधर किष्किन्धानगरीके बीच महाबुद्धिमान् हनुमानजी एकान्तमें वानरराज सुग्रीवसे बोले ॥ ४३ ॥ "हेराजन्! मैं आपके हितकी एक बात कहता हूं; इधर देखिये; पहले श्रीरामचंद्रजीनें आपपर अत्युत्तम उपकार किया ॥ ४४ ॥ सो मुझे ज्ञात होताहै कि आपको वह याद नहीं इसकारण आपमें कृतघ्नताका दोष दिखाईदेताहै। श्रीरामचंद्रजीनें तुम्हारेही लिये त्रिलोकीमें माननेंके लायक शूरवीर वालिको मारडाला ॥ ४५ ॥ व तुमको राज्यपद प्राप्त कराय दिया। वालिके जीतेजी न प्राप्त होनेवाली ताराको पायकर तुमनें रामको विसारदियाहै। वे महाज्ञानसंपन्न श्रीरामजी, भइयाके साथ पर्वतके शिखरपर रहकर ॥ ४६ ॥

एकाग्रचित्तसे तुम्हारी वाट देख रहेहैं। क्योंकि उनका कर्त्तव्य कार्य बहुत बड़ाहै; और तुम इधर वानरजातिके स्वभावानुसार स्त्रीलंपट होकर बैठेहो उनकी तुम्हें खबरनहीं ॥ ४७ ॥ "सीताजीकी सुधि लादूंगा" ऐसी प्रतिज्ञा करी,—पर अबतक उसके लिये कुछ उद्योग नहीं किया; अर्थात् आपका कृतघ्न होना प्रत्यक्ष दीखताहै! परन्तु विचार कीजिये;—वालिके समान एकक्षणमें यमराजका गृह देखोगे" ॥ ४८ ॥ हनुमानजीके ऐसे वचन सुनकर भयसे विह्वल हुए सुग्रीव हनुमानजीसे कहने लगे; "हनुमान! तुमनें जो कहा वह सत्यहै ॥ ४९ ॥ इस लिये मैं अभी आज्ञा देताहूं; वैसेही आज्ञाके अनुसार तुम अति शीघ्र कार्य करो। जलदी चलनेवाले दशहजार वानर अभी दशों दिशाओंको भेजदो ॥ ५० ॥ वे सब सातों द्वीपोंमें जहां२ वानरहैं तिन सबको लावैं, और एक पखवाड़ेके भीतर सब वानर यहां आनकर दिखाईदें ॥ ५१ ॥ और एक पखवाड़े से आगे

त्वदागमनमेकाग्रमीक्षतेकार्यगौरवात् ॥ त्वंतुवानरभावेनस्त्रीसक्तोनावबुद्ध्यसे ॥ ४७ ॥ करोमीतिप्रतिज्ञायसीतायाःपरिमार्गणम् ॥ नकरोषिकृतघ्नस्त्वंहन्यसेवालिवद्ध्रुतम् ॥ ४८ ॥ हनूमद्वचनंश्रुत्वासुग्रीवोभयविह्वलः ॥ प्रत्युवाचहनूमंतंसत्यमेवत्वयोदितम् ॥ ४९ ॥ शीघ्रंकुरुमदाज्ञांत्वंवानराणांतरस्विनाम् ॥ सहस्राणिदशेदानींप्रेषयाशुदिशोदश॥५०॥ सप्तद्वीपगतान्सर्वान्वानरानानयंतुते ॥ पक्षमध्ये समायांतुसर्वेवानरपुंगवाः ॥ ५१ ॥ येपक्षमतिवर्ततेतेवध्यामेनसंशयः ॥ इत्याज्ञाप्यहनूमंतंसुग्रीवोगृहमाविशत् ॥ ५२ ॥ सुग्रीवाज्ञां पुरस्कृत्यहनूमान्मंत्रिसत्तमः ॥ तत्क्षणेप्रेषयामासहरीन्दशदिशःसुधीः ॥५३॥ अगणितगुणसत्वान्वायुवेगप्रचारान्वनचरगणमुख्यान्पर्वताकाररूपान् ॥ पवनहितकुमारःप्रेषयामासदूतानतिरभसतरात्मादानमानादितृप्तान् ॥ ५४ ॥ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेकिष्किंधाकांडेचतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

जो बाहर रहैगा वह मेरे हाथसे माराजायगा; इसमें अन्तर होनेंवाला नहीं" ऐसी हनुमानजीको आज्ञा देकर सुग्रीव गृहकार्यके लिये गये ॥ ५२ ॥ हनुमान्‌जी उत्तम बुद्धिमान; व सुग्रीवके मंत्रीमंडलमें प्रमुख थे; उन्होनें वानरोंको सुग्रीवकी आज्ञा सुनाय दशों दिशाओंमें भेजदिया ॥ ५३ ॥ जो अगणितगुण और पराक्रमकारी पवनके समान वेगवाले सर्व वनचरोंमें मुख्य गणवाले और जिनका रूप तथा आकार पर्वतके समानहै, ऐसे दूत वानरोंको अतिवेगयुक्त अंतःकरणवाले अर्थात् श्रीरामचंद्रजीके कार्यकी जिनको बड़ी भारी शीघ्रता होरहीहै ऐसे पवनके पुत्र हनुमानजीनें, दान सन्मानादिसे प्रसन्नकरके चारों ओरको भेजा ॥ ५४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकांडे भाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

लक्ष्मणजीको क्रोधयुक्त देखकर सुग्रीवका समझाना और रामजीके पास आना । महादेवजी बोले, एकदिन प्रदोषकालमें श्रीरामचंद्रजी प्रवर्षणपर्वतके रत्नमय शिखरपर बैठेथे; सीताजीके विरहसे उत्पन्नहुआ शोक न सहनकरके वे लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १ ॥ "हे लक्ष्मण ! देखो । हमारी सीता राक्षसने बलसे हरली । वह भामिनी (स्त्री) जीवित है, या मरगई, इसका मुझसे कोई निश्चय नहीं किया जाता ॥ २ ॥ कोईभी वह जीवितहै, ऐसा समाचार मुझे आनकर सुनावै, तौ वह मानो मेरा अत्यन्त प्रियकार्य करैगा जो वह साध्वी कहीं भी जीवित होवै तौ ॥ ३ ॥ जिसप्रकार देवताओंने समुद्र मथनकर उससे अमृत निकाललिया, वैसेही मैंजो कुछ होसके वह करके उसको लेआऊंगा । हे भाई ! हमारी प्रतिज्ञाको सुनो,–जिसने

॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ रामस्तुपर्वतस्याग्रेमणिसानौनिशामुखे ॥ सीताविरहजंशोकमसहन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥ पश्यलक्ष्मणमेसीताराक्षसेनहृताबलात् ॥ मृताऽमृतावानिश्चेतुंनजानेऽद्यापिभामिनीम् ॥ २ ॥ जीवतीतिममब्रूयात्कश्चिद्वाप्रियकृत्समे ॥ यदिजानामितांसाध्वींजीवंतींयत्रकुत्रवा ॥३॥ हठादेवाहरिष्यामिसुधामिवपयोनिधेः ॥ प्रतिज्ञांशृणुमेभ्रातर्येनमेजनकात्मजा॥४॥नीतातंभस्मसात्कुर्यांसपुत्रबलवाहनम् ॥ हेसीतेचंद्रवदनेवसंतीराक्षसालये ॥ ५ ॥ दुःखार्तामामपश्यंतीकथंप्राणान्धरिष्यसि ॥ चंद्रोऽपिभानुवद्भातिममचंद्राननांविना ॥ ६ ॥ चंद्रत्वंजानकींस्पृष्ट्वाकरैर्मांस्पृशशीतलैः ॥ सुग्रीवोऽपिदयाहीनोदुःखितंमांनपश्यति ॥ ७ ॥ राज्यंनिष्कंटकंप्राप्यस्त्रीभिःपरिवृतोरहः ॥ कृतघ्नोदृश्यतेव्यक्तंपानासक्तोऽतिकामुकः ॥ ८ ॥

मेरी जानकीको ॥ ४ ॥ लियाहै, उसको पुत्र, सेना, और वाहनोंके साथ मैं भस्मकर डालूंगा । हे सीते ! हा चंद्रवदने ! राक्षसके घरमें रहनेसे ॥ ५ ॥ तुम दुःखकेमारे व्याकुल हुई होगी ! वैसेही तेरी दृष्टिसे मैं नहीं दीख पड़ता; तिस्से तुम प्राणोंको कैसे धारण करती होगी ? उस चन्द्रमुखीके विरहमें चंद्रमा देखतेहुए मुझको सूर्यके समान [प्रखर] जान पड़ताहै ॥ ६ ॥ हे चंद्र ! प्रथम तू अपनी किरणोंसे जानकीको स्पर्शकर, उनके स्पर्श करनेसे तेरी किरणें शीतल होजांयगी । इसके उपरान्त उन [शीतल किरणों] को मेरे शरीरपर डाल । मुझे ज्ञात होताहै कि सुग्रीवभी अब दयारहित होगया; क्योंकि मैं इतने दुःखमें पड़ाहूं, परन्तु वह मुझसे मिलनेकोभी नहीं आया ॥ ७ ॥ वह सुग्रीव निष्कण्टक राज्यको पाय, खानपानमें आसक्तहो एकान्तमें अति

कामीके समान स्त्रियोंसे घिररहाहै इसकारण उसका कृतघ्न होना प्रगटही है ॥ ८ ॥ शरदऋतुका प्रारंभ हुआ, वह देखकरभी वह मेरी प्यारीकी सुधि लेने नहीं आया! इसकारण वह दुष्ट कृतघ्नी उपकार करनेवाले मुझको भूलगया है! ॥ ९ ॥ मैं सीताके हरण करनेवाले राक्षसका वधकरनेवाला हूं; वैसेही नगर और बन्धु बांधवोंके साथ सुग्रीवका घात कर डालूंगा। जैसे वालिने मृत्यु पाई; वैसेही मेरे हाथसे आज सुग्रीवका अंत होगा ॥ १० ॥ रामचंद्रजीको क्रोधित हुआ देखकर लक्ष्मणजीने कहा हे राम! सुग्रीवका अंतःकरण दुष्ट है; इसकारण मैं अभी जाताहूं ॥ ११ ॥ उसका वधकरके आपके समीप आताहूं। मुझे आज्ञा दीजिये, ऐसा कहकर लक्ष्मणजीने धनुष खड्ग और तरकश लेलिया ॥ १२ ॥ व जानेकी तयारी की, यह देखकर

नायातिशरदंपश्यन्नपिमार्गयितुंप्रियाम् ॥ पूर्वोपकारिणंदुष्टःकृतघ्नोविस्मृतोहिमाम् ॥ ९ ॥ हन्मिसुग्रीवमप्येवंसपुरंसहबांधवम् ॥
वालीयथाहतोमेऽद्यसुग्रीवोऽपितथाभवेत् ॥१०॥ इतिरुष्टंसमालोक्यराघवंलक्ष्मणोऽब्रवीत् ॥ इदानीमेवगत्वाहंसुग्रीवंदुष्टमानसम् ॥ ११ ॥
मामाज्ञापयहत्वातमायास्येरामतेंऽतिकम् ॥ इत्युक्त्वाधनुरादायखड्गंतूणीरमेवच ॥ १२ ॥ गंतुमभ्युद्यतंवीक्ष्यरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥
नहंतव्यस्त्वयावत्ससुग्रीवोमेप्रियःसखा ॥ १३ ॥ किंतुभीषयसुग्रीवंवालिवन्नहनिष्यसे ॥ इत्युक्त्वाशीघ्रमादायसुग्रीवप्रतिभाषितम् ॥
॥१४॥ आगत्यपश्चाद्यत्कार्यंतत्करिष्याम्यसंशयम् ॥ तथेतिलक्ष्मणोऽगच्छत्त्वरितोभीमविक्रमः ॥ १५ ॥ किष्किंधांप्रतिकोपेननिर्दहन्नि
ववानरान् ॥ सर्वज्ञोनित्यलक्ष्मीकोविज्ञानात्मापिराघवः ॥ १६ ॥

रामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा; " वत्स! सुग्रीव मेरा प्यारा मित्र है उसका तुम वध न करो ॥ १३ ॥ परंतु उस सुग्रीवको तुम वालिके समान मारा जायगा, कहकर भययुक्त करो; और सुग्रीव क्या कहताहै; वह सुनकर यहां आओ ॥ १४ ॥ फिर जो कुछ कर्तव्य होगा, वह निश्चय करूंगा, इसमें कोई संशय नहीं। " महापराक्रमी लक्ष्मण 'अच्छा कहकर अतिशीघ्र किष्किन्धाको गये ॥ १५ ॥ इस समय उनकी मुद्रा इतनी उग्र दीखतीथी कि उनके देखनेवालेको यह सब वानरोंको जलाकर भस्मकर देंगे, ऐसा मालूम होताथा। रामचंद्रजी भूत भविष्यत् और वर्तमानके जाननेवाले; वास्तविक लक्ष्मी (माया शक्ति) उनके निकट नित्य हैं (जिस्से इनका वियोग कभी नहीं होता) निर्विषय ज्ञानहीका उनका स्वरूप है ॥ १६ ॥

परन्तु जिस प्रकार कोई अज्ञान मनुष्यको लौकिक (जिसको समागम व वियोग होताहै, उसको) स्त्रीका वियोग होनेसे दुःख होताहै; वैसेही श्रीरामचंद्रजीनें कष्टित होकर सीताजीके लिये शोककिया। वह प्रभु बुद्ध्यादिकोंके साक्षी और मायाके कार्योंसे पर हैं ॥ १७ ॥ उनको राग (प्रीति) लोभ इत्यादि विकार बिलकुल नहीं; फिर इन विकारोंसे उत्पन्न होनेंवाला शोक उनको कैसे होसकताहै? ब्रह्माजीकी प्रार्थना पूर्णकरनें और राजा दशरथजीको ॥ १८ ॥ उनकी तपस्याका फल देनेके लिये उन प्रभुनें यह मनुष्य वेष धारण कियाथा सर्व जन मायासे मोहित होकर अज्ञानयुक्तहैं ॥ १९ ॥ इनको मोक्ष कैसे मिलैगी, ऐसा विचार करते २ विष्णुजीने एक युक्ति सोची;—वह यह थी; सर्व मनुष्योंके पापका नाश करनेवाली रामायण नामक कथा लोकमें प्रसिद्ध कराई जाय ॥ २० ॥ इसलिये उन्होने रामरूप धारणकर मनुष्यके समान व्यवहार किया, अलग २ विकारोंके उत्पन्न होनेसे कैसे २ व्यवहार होताहै; यह लोकोंको सुनाने और उसकी फलसिद्धिके लिये ॥ २१ ॥ तिस२कालके योग्य व्यवहार स्वीकार करकै वह (ईश्वर) गुणके आधीन होनेवाली प्रजाको मोहित करताहै; और वस्तुतः गुणरहित होनेसेही सर्व गुणोंमें अनुरक्त हुआसा जाना जाताहै ॥ २२ ॥ वास्तविक वह विज्ञानपूर्णहै, उसकी शक्ति विज्ञानरूपही है; वह प्राणियोंके किये हुए शुभाशुभ कर्म देखताहै; परन्तु गुणयुक्त पदार्थोंसे भिन्न है; इसकारण जिस प्रकार आकाश पवनके लायेहुए मलसे मिला नहीं है वैसेही वेभी कामादिद्वारा लिप्त नहींहैं ॥ २३ ॥ उसके स्वरूपका ज्ञान श्रुतिवाक्यके द्वारा कितनेक सनत्कुमारकी समान जानतेहैं । उनकोही उसकी प्राप्ति हो

सीतामनुशुशोचार्तःप्राकृतःप्राकृतामिव ॥ बुद्ध्यादिसाक्षिणस्तस्यमायाकार्यातिवर्तिनः ॥ १७ ॥ रागादिरहितस्यास्यतत्कार्यंकथमुद्भवेत् ॥ ब्रह्मणोक्तमृतंकर्तुंराज्ञोदशरथस्यहि ॥ १८ ॥ तपसःफलदानायजातोमानुषवेषधृक् ॥ माययामोहिताःसर्वेंजनाअज्ञानसंयुताः ॥ ॥ १९ ॥ कथमेषांभवेन्मोक्षइतिविष्णुर्विचिंतयन् ॥ कथांप्रथयितुंलोकेसर्वलोकमलापहाम् ॥ २० ॥ रामायणाभिधांरामोभूत्वामानुषचेष्टकः ॥ क्रोधंमोहंचकामंचव्यवहारार्थसिद्धये ॥ २१ ॥ तत्तत्कालोचितंगृह्णन्मोहयत्यवशाःप्रजाः ॥ अनुरक्तइवाशेषगुणेषुगुणवर्जितः ॥ ॥ २२ ॥ विज्ञानमूर्तिर्विज्ञानशक्तिःसाक्ष्यगुणान्वितः ॥ अतःकामादिभिर्नित्यमविलिप्तोयथानभः ॥ २३ ॥ विंदंतिमुनयःकेचिज्जानंतिसनकादयः ॥ तद्भक्तानिर्मलात्मानःसम्यग्जानंतिनित्यदा ॥ २४ ॥

तीहैं; जिनका अंतःकरण अत्यन्त शुद्ध है; वेही भक्त उसको भली भांति जानते हैं ॥ २४ ॥ भगवान जन्मरहित होनेपरभी भक्तोंके मनोरथके अनुसार अवतार धारण करतेहैं; और इधर लक्ष्मणजी किष्किन्धानगरीके समीप जाय पहुँचे ॥ २५ ॥ उन्होंने सर्व वानरोंको भय उत्पन्न करानेकी इच्छासे धनुषके रोदेकी भयंकर टंकार की। वानरगण किष्किन्धाकी शहर पनाहपर खड़े थे वे अज्ञानी, लक्ष्मणजीको देखते ही ॥ २६ ॥ बड़े २ पाषाण और वृक्ष लेकर किलकिला शब्द करनेलगे, वानरोंको देख क्रोधयुक्त हो लक्ष्मणजीने लाल नेत्रकिये ॥ २७ ॥ वह महापराक्रमी पुरुष धनुष चढ़ाय (धनुषपर रोदा चढ़ाय) वानरोंको निर्मूल करनेके लिये स्थित हुये। इधर लक्ष्मणजीका आना सुनकर मुख्य

भक्तचित्तानुसारेणजायतेभगवानजः ॥ लक्ष्मणोऽपितदागत्वाकिष्किंधानगरांतिकम् ॥ २५ ॥ ज्याघोषमकरोत्तीव्रंभीषयन्सर्ववानरान्॥
तंदृष्ट्वाप्राकृतास्तत्रवानरावप्रमूर्धनि॥२६॥चक्रुःकिलकिलाशब्दंधृतपाषाणपादपाः ॥ तान्दृष्ट्वाक्रोधताम्राक्षोवानराँल्लक्ष्मणस्तदा ॥२७॥
निर्मूलान्कर्तुमुद्युक्तोधनुरानम्यवीर्यवान् ॥ ततःशीघ्रंसमापत्यज्ञात्वालक्ष्मणमागतम् ॥ २८ ॥ निवार्यवानरान्सर्वानंगदोमंत्रिसत्तमः ॥
गत्वालक्ष्मणसामीप्यंप्रणनामसदंडवत् ॥ २९ ॥ ततोऽगदंपरिष्वज्यलक्ष्मणःप्रियवर्धनः ॥ उवाचवत्सगच्छत्वंपितृव्यायानिवेदय ॥३०॥
मामागतंराघवेणचोदितंरौद्रमूर्तिना ॥ तथेतित्वरितंगत्वासुग्रीवायन्यवेदयत् ॥ ३१ ॥ लक्ष्मणःक्रोधताम्राक्षःपुरद्वारिबहिःस्थितः॥तच्छ्रु
त्वातीवसंत्रस्तःसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ ३२ ॥ आहूयमंत्रिणांश्रेष्ठंहनूमंतमथाऽब्रवीत् ॥ गच्छत्वमंगदेनाशुलक्ष्मणंविनयान्वितः ॥ ३३ ॥

प्रधान अंगदजी वहाँ शीघ्र चलेआये, उन्होंने वानरोंको निवारणकरकै लक्ष्मणजीके निकट जाय उनको दंडवत प्रणाम किया ॥ २८ ॥ तब प्रियजनकी वृद्धि करनेंवाले लक्ष्मणजी अंगदको हृदयमें लगायकर कहने लगे! "हे वत्स! तुम जाओ और अपने चाचासे कहो कि ॥ २९ ॥ ३० ॥ क्रोधकरकै श्रीरामचंद्रजीका स्वरूप बहुत भयंकर होगयाहै; और उनके कहनेसे मैं आयाहूं" अंगदनें 'अच्छा' कहा, व सुग्रीवके पास जाय सब वृत्तान्त निवेदन किया कि ॥ ३१ ॥ लक्ष्मण नगरीके द्वारके बाहर खड़ेहैं; उनके नेत्र मारेक्रोधके लाल २ हो रहेहैं; यह सुनतेही वानरराज सुग्रीव अत्यन्त भयभीत हुए ॥ ३२ ॥ सुग्रीवने अपने मुख्य मंत्री हनुमानजीको बुलाकर कहा कि; "तुम अभी अंगदके साथ लक्ष्मणजीके पा

स जाय नम्रतापूर्वक ॥ ३३ ॥ भाषण करकै क्रोधित हुए उन वीरको समझाओ, और फिर हौले २ उनको मंदिरमें ले आओ ”। हनुमानजीको भेजनेके पश्चात् वानरराज सुग्रीवनें तारासे कहा॥ ३४ ॥“ हेतारे! तुम लक्ष्मणके सामने जाओ और कोमल वचन कहकर उन्हें समझाओ बुझाओ; जब वह शांत होजाय; तब उनको अंतःपुरमें लाकर मुझसे मिलाओ; यह कार्य तुम्हारे हाथसे, विना विघ्नके सिद्ध हो जायगा ऐसा मुझे पूरा भरोसा है !” ॥ ३५ ॥ तारा ‘बहुत अच्छा’ कह बीचके दालानमें जहां स्त्रियोंके बागमें आनेकी मर्यादाका स्थान,– वहां जा बैठी इधर पवनकुमार हनुमानजी अंगदके साथ लक्ष्मणजीके समीप ॥ ३६ ॥ जाय पहुँचे । व शिर नवाय वंदनकर भक्तिपूर्वक उनसे बोले;–“ हे वीर ! महाभाग्यशाली ! पुरुष ! आइये, आपका आना बहुत अच्छा हुआ । घर आपहीका है, मनमें कुछभी शंका न कीजिये ॥ ३७ ॥ अब चलिये राजपत्नियों को भेंटिये; व सुग्रीवसे मिलिये; हे महाराज ! इसके उपरान्त आप जो कुछ आज्ञा दोगे; वह मैं सब करूंगा” ॥ ३८ ॥ यह कहकर हनुमानजी ने भक्तिसहित लक्ष्मणजीका हाथ हाथसे पकड़लिया; और नगरके बिचले मार्गसे राजमंदिरमें ले आये ॥ ३९ ॥ लक्ष्मणजी नगरीमें जगह २ वानर सेनापतियोंके बड़े २ गृह अवलोकन करतेहुये राजमंदिरको गये, वह राजमंदिर इन्द्रके गृहके समान उपमावाला होकर शोभायमान है॥ ४० ॥यहांपर बिचले दालानमें तारा बैठीथी।उस चंद्रवदनीके अंगपर सर्व प्रकारके अलंकार थे । जवानीके मदसे जिसकें नेत्रोंके प्रान्त कुछेक लाल हैं॥ ४१ ॥हास्यकरके बोलनेका उसका स्वभावही है ।उस ताराने हँसकर लक्ष्मणजीसे कहा,–“ आओ देवर ! तुम्हारा कल्याण हो तुमही सज्जन व

सांत्वयन्कोपितंवीरंशनैरानयमंदिरम् ॥ प्रेषयित्वाहनूमंतंतारामाहकपीश्वरः ॥ ३४ ॥ त्वंगच्छसांत्वयंतीतंलक्ष्मणंमृदुभाषितैः ॥ शांत
मंतःपुरंनीत्वापश्चाद्दर्शयमेऽनघे ॥ ३५ ॥ भवत्विविततस्तारामध्यकक्षंसमाविशत् ॥ हनूमानंगदेनैवसहितोलक्ष्मणांतिकम् ॥ ३६ ॥
गत्वाननामशिरसाभक्त्यास्वागतमब्रवीत् ॥ एहिवीरमहाभागभवद्गृहमशंकितम् ॥ ३७ ॥ प्रविश्यराजदारादीन्दृष्ट्वासुग्रीवमेवच ॥ यदा
ज्ञापयसेपश्चात्तत्सर्वंकरवाणिभोः ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंभक्त्याकरेगृह्यसमारुतिः ॥ आनयामासनगरमध्याद्राजगृहंप्रति ॥ ३९ ॥
पश्यंस्तत्रमहासौधान्यूथपानांसमंततः ॥ जगामभवनंराज्ञःसुरेंद्रभवनोपमम् ॥४०॥ मध्यकक्षेगतातत्रताराताराधिपानना ॥ सर्वाभरण
संपन्नामदरक्तांतलोचना ॥ ४१ ॥ उवाचलक्ष्मणंनत्वास्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥ याहिदेवरभद्रंतेसाधुस्त्वंभक्तवत्सलः ॥ ४२ ॥

भक्तविषयमें परमदयालु हो ॥ ४२ ॥ वानरराज (सुग्रीव) तुम्हारा भक्त व सेवक है; फिर उसपर कोप काहेको करो हो ? उसने बहुत दिन तक दुःख भोगा है; विश्राम या सुख भोगनेका अवसर नहीं मिला; अब आप लोगोंने दुःखकी राशिसे उसकी रक्षा की; आपके अनुग्रहसे सुग्रीवको सुख प्राप्त हुआ; उसने तुम्हारी मित्रता प्राप्त की; अर्थात् वह महाबुद्धिमान् है ऐसा जान पड़ता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ परन्तु वानरजातिके स्वभावानुसार वह विषयभोगमें आसक्त हो श्रीरामचंद्रजीकी सेवा करनेके लिये नहीं आया । हे समर्थ ! अब शीघ्रही अनेक देशोंके वानर यहां आते हैं ॥ ४५ ॥ हेरघुकुलोत्तम ! सब दिशाओंसे बड़े २ पर्वताकार प्रचण्ड वानरोंको बुलानेके लिये दशहज़ार वानरदूत भेजेगये हैं ॥ ४६ ॥ सुग्रीव अपने आप जाकर वानरसेनापतियोंके हाथसे दैत्योंके समूहका नाश कराय रावणका वध करैगा ॥ ४७ ॥ वह वानरराज तुम्हारे साथ आजही श्रीरामचंद्रजीकें पास जायगा । हमारा गृहका अन्तःपुर देखिये । वहाँपर स्त्री पुत्र और सम्बधियोंके साथ सुग्रीव बैठाहै; उसको भेंटकर अभय दे अपने साथ लेजाओ" ॥ ४८ ॥ ताराके यह वचन सुनकर लक्ष्मणजीका क्रोध धीरे २ कम होता चला; और वह उस रनिवासमें गये कि जहांपर वानरराज सुग्रीव थे ॥ ४९ ॥ सुग्रीव अपनी स्त्री रुमाको हृदयसे लगाए पलँगपर पड़ेथे । लक्ष्मणजीको देख वह अतिशय भयभीत और गर्वगलित हो वैसेही उठ बैठे ॥ ५० ॥ सुग्रीवजीके नेत्र मदसे विह्वल होरहे थे । वह स्थिति देख क्रोधित हो लक्ष्मणजी सुग्रीव

किमर्थंकोपमाकार्षीर्भक्तेभृत्येकपीश्वरे ॥ वहुकालमनाश्वासंदुःखमेवानुभूतवान् ॥ ४३ ॥ इदानींवहुदुःखौघाद्भवद्भिरभिरक्षितः ॥ भवत्प्रसादात्सुग्रीवःप्राप्तसौख्योमहामतिः ॥ ४४ ॥ कामासक्तोरघुपतेःसेवार्थंनागतोहरिः ॥ आगमिष्यंतिहरयोनानादेशगताःप्रभो ॥४५॥ प्रेषितादशसाहस्राहरयोरघुसत्तम ॥ आनेतुंवानरान्दिग्भ्योमहापर्वतसन्निभान् ॥ ४६ ॥ सुग्रीवःस्वयमागत्यसर्ववानरयूथपैः ॥ वधायिष्यतिदैत्यौघान्रावणंचहनिष्यति ॥ ४७ ॥ त्वयैवसहितोऽद्यैवगंतावानरपुंगवः ॥ पश्यांतर्भवनंतत्रपुत्रदारसुहृद्वृतम् ॥४८॥ दृष्ट्वासुग्रीवमभयंदत्त्वानयसहैवते ॥ तारायावचनंश्रुत्वाक्तृशक्रोधोऽथलक्ष्मणः ॥ ४९ ॥ जगामांतःपुरंयत्रसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ रुमामालिंग्यसुग्रीवःपर्यंकेपर्यवस्थितः ॥ ५० ॥ दृष्ट्वालक्ष्मणमत्यर्थमुत्पपातातिभीतवत् ॥ तंदृष्ट्वालक्ष्मणःक्रुद्धोमदविह्वलितेक्षणम् ॥ ५१ ॥

जीसे बोले;–"रेदुष्ट दुराचारी ! तैंने रामको भुलादिया! ॥ ५१ ॥ जिसने वालिके समान वीरका वधाकिया, वह राम हाथमें बाण लेकर आज तेरी वाट जोहरहे हैं [अथवा जिसने पराक्रमी वालिका वध किया है वह बाण आज तेरी वाट देखरहा है] ! तू मेरे हाथसे मरण पायकर वालिके मार्गमें जायगा !" ॥ ५२ ॥ जब लक्ष्मणजीने इसप्रकार अत्यन्त कठोर वचन कहे,तब वीरहनुमानजीने उनसे कहा "महाराज ! इस प्रकार क्यों कहतेहो ? ॥ ५३ ॥ इस वानरराजकी श्रीरामजीमें, तुमसे अधिक भक्तिहै; इसकारण यह रामजीका कार्य करनेको निरन्तर जागते हैं। यह रामको भूलेनहीं हैं ॥ ५४ ॥ हे वीर ! चारों ओरसे यह करोड़ों वानर आते हुए देखो । यह मंडली सीताजीकी खोजके लिये शीघ्रही जायगी ॥ ५५ ॥ और यह सुग्रीव सीताकी सुधि इत्यादि रामचंद्रजीके सर्व कार्य करैंगे, कोई अवशिष्ट रखनेवाले नहीं" हनुमानजीके यह वचन सुनकर लक्ष्मणजी लज्जितहुए ॥ ५६ ॥ फिर सुग्रीवने अर्घ्यपाद्य इत्यादिसे भलीभांति श्रीलक्ष्मणजीकी पूजा की; पुनः लक्ष्मणजीसे मिलकर सुग्रीव कहनेलगे " हे लक्ष्मण ! मैं रामका दासहूं । उन्होंने मेरी रक्षा कीहै॥५७॥ श्रीरामचंद्रजी अपने तेजसे आधे क्षणके बीचमें सबलोकोंको जीतसकते हैं [उनको सहायकी आवश्यकता नहीं] हेवीर ! सर्व वानरोंके साथ मैं तौ केवल उनका मित्रमात्र सहायहूं" ॥ ५८ ॥ लक्ष्मणजी सुग्रीवसे बोले "हे महाभाग्यशाली पुरुष ! मैंने जो कुछ प्रेमके कोपसे कहा वह क्षमा करना ॥५९॥ हेसुग्रीव ! रामजी वनमें अकेलेही हैं; इसकारण हम आज

सुग्रीवंप्राहदुर्वृत्तविस्मृतोऽसिरघूत्तमम् ॥ वालीयेनहतोवीरःसबाणोद्यप्रतीक्षते ॥६२॥ त्वमेववालिनोमार्गंगमिष्यासिमयाहतः ॥ एवमत्यं तपरुषंवदंतंलक्ष्मणंतदा ॥ ६३ ॥ उवाचहनुमान्वीरःकथमेवंप्रभाषसे ॥ त्वत्तोऽधिकतरोरामेभक्तोयंवानराधिपः ॥ ६४ ॥ रामकार्यार्थ मनिशंजागर्तिनतुविस्मृतः ॥ आगताःपरितःपश्यवानराःकोटिशःप्रभो ॥ ६५ ॥ गमिष्यंत्यचिरेणैवसीतायाःपरिमार्गणम् ॥ साधयिष्य तिसुग्रीवोरामकार्यमशेषतः ॥ ६६ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंसौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् ॥ सुग्रीवोऽप्यर्घ्यपाद्याद्यैर्लक्ष्मणंसंप्रपूजयत् ॥ ६७ ॥ आलिंग्यप्राहरामस्यदासोऽहंतेनरक्षितः ॥ रामःस्वतेजसालोकान्क्षणार्धेनैवजेष्यति ॥ ६८ ॥ सहायमात्रमेवाहंवानरैःसहितः प्रभो ॥ सौ मित्रिरपिसुग्रीवंप्राहकिंचिन्मयोदितम् ॥६९॥ तत्क्षमस्वमहाभागप्रणयाद्भाषितंमया ॥ गच्छामोऽद्यैवसुग्रीवरामस्तिष्ठतिकानने ॥६०॥

---

१ सबाणः–बाणेन सहितः रामः । बाणसे युक्त रामजी-या सः बाणः-वह बाण ।

ही उनके पास चलें। क्योंकि जानकीके विरहसे उन्हैं दुःख होता होगा"॥६०॥ वानरराज [सुग्रीव] 'अच्छा तौ चलिये' कहकर लक्ष्मणजीके साथ रथमें बैठे;और वानरोंको साथा ले श्रीरामचंद्रजीके पास आए,॥६१॥६२॥ उनकी सवारीका ठाट कहांतक वर्णन करैं! नगाड़े,नौबत अनेक जातियोंके अगणित रीछ, वानर, शुभ्र. छत्र, और चँवरके योगसे सुग्रीवजी शोभायमान थे । नील अंगद हनुमानादि वानरभी उनके साथ थे; ऐसे ठाटसे वह श्रीरामचंद्रजीके पास जाय पहुँचे ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे भाषाटीकायां पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ सीताकी सुधिके लिये वानरराजका वानरयूथोंको भेजना । श्रीमहादेवजी कहतेहैं, मृगचर्मको धारण किये, श्यामरंगवाले, जटामुकुट

एकएवातिदुःखार्तोजानकीविरहात्प्रभुः ॥ तथेतिरथमारुह्यलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ ६१ ॥ वानरैःसहितोराजाराममेवान्वपद्यत ॥ ॥ ६२ ॥ भेरीमृदंगैर्बहुऋक्षवानरैःश्वेतातपत्रैर्व्यजनैश्चशोभितः ॥ नीलांगदाद्यैर्हनुमत्प्रधानैःसमावृतोराघवमभ्यगाद्धरिः ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेकिष्किंधाकांडेपंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ ॥ दृष्ट्वारामंसमासीनंगुहाद्वारिशिलातले ॥ चैलाजिनधरंश्यामंजटामौलिविराजितम् ॥ १ ॥ विशालनयनंशांतंस्मितचारुमुखांबुजम् ॥ सीताविरहसंतप्तंपश्यंतंमृगपक्षिणः ॥ २ ॥ रथाद्दूरात्समुत्पत्यवेगात्सुग्रीवलक्ष्मणौ ॥ रामस्यपादयोरग्रेपेततुर्भक्तिसंयुतौ ॥ ३ ॥ रामःसुग्रीवमालिंग्यपृष्ट्वानामयमंतिके ॥ स्थापयित्वायथान्यायंपूजयामासधर्मवित् ॥ ४ ॥ ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठंसुग्रीवोभक्तिनम्रधीः ॥ देवपश्यसमायांतींवानराणांमहाचमूम् ॥ ५ ॥ कुलाचलाद्रिसंभूतामेरुमंदरसन्निभाः ॥ नानाद्वीपसरिच्छैलवासिनःपर्वतोपमाः ॥ ६ ॥

से शोभायमान ॥१॥ विशालनेत्र, शान्त, मन्दहास्यसे युक्त सुन्दरमुखारविंदवाले, सीताजीके विरहसे संतापित, मृग और पक्षियोंको देखते हुए ॥ २ ॥ गुहाके द्वारपर शिलापै रामजीको विराजमान देख, भक्तिसे युक्त सुग्रीव और लक्ष्मण रथमेंसे एकसाथ उतरकर श्रीरामजीके चरणों पर आय पड़े ॥ ३ ॥ श्रीरामजीने सुग्रीवको हृदयसे लगाया, कुशलप्रश्न करके पास बैठाया; और उनका यथायोग्य सत्कार किया; किस प्रसंगपर कैसा व्यवहार करना चाहिये; यह धर्म भलीभांति जानतेथे ॥ ४ ॥ सुग्रीवका अंतःकरण भक्तिके योगसे रामचरणमें नम्र होगया था; प्रथम दर्शन पातेही वह रामचंद्रजीसे बोले,–"हे देव! देखिये, वानरोंकी प्रचण्ड सेना आतीहै ॥ ५ ॥ इनमेंसे अनेकोंकी उत्पत्ति हिमालयादि कुलाचलों

पर हुईहै; और इनमेंसे अनेक मेरु या मन्दर पर्वतके समान आकारवाले हैं । अनेक प्रकारके द्वीप, नदियों, पहाड़ोंपर रहनेवाले पर्वतके समान यह वानरहैं ॥ ६ ॥ जैसी इच्छाहो वैसाही रूप धारण करनेवाले यह असंख्य वानर चलेआते हैं; इन सबने देवअंशसे अवतार लियाहै । यह सबही युद्ध करनेमें निपुण हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! इनमेंसे किसीकी शक्ति एक हाथीके समान, किसीकी दशहाथीके समान है, कितनेही दशहजार हाथीके समान सामर्थ्य रखतेहैं; और दूसरे कुछ जनोंके बलका कुछ प्रमाणही नहीं कहा जाता ॥ ८ ॥ कितनोंकी अंगकांति काजलके पर्वतके समान कालीहै; कोई सुवर्णके समानहैं, किन्हीका मुखप्रान्त रक्तवर्ण है; ऐसेही दूसरोंकी पूंछे लम्बी २ हैं ॥ ९ ॥ कोई शुद्ध स्फटिक मणिके समान दिखलाई देतेहैं; कितनेक राक्षसोंके समान मालूम होतेहैं, सर्व वानरोंके मनमें युद्धकी इच्छाहै; और इसीलिये वे गर्जना [भुभुक्कार] करतेहुए चारों ओरसे इधर चले आतेहैं ॥ १० ॥ हे प्रभो! यह सबजने तुम्हारी आज्ञाका मान्यकरनेमें सिद्धहैं; इनको चेतानेकी अपेक्षा नहीं, या निर्वाहके लिये इनको अन्य सामग्रीभी नहीं देनी पड़ती, क्योंकि यह वनके फल मूल भक्षणकरके रहते हैं । यह रीछोंका राजा जाम्बवान् है; शरीरकी सामर्थ्यके अनुसार इसकी बुद्धिका वैभवभी असाधारणहै ॥ ११ ॥ मंत्र [सलाह] देनेके काममेंइसके जोड़ेका दूसरा नहींहै; इकला यही करोड़ों रीछोंका स्वामीहै । यह हनुमान् है, इसके दृढ़ निश्चय और पराक्रमकी सर्वमें विख्यात है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार इस पवनकुमारका तेज अतिशय विलक्षण दीखता है वैसेही यह मंत्री व उत्तम बुद्धिमान् भी है । नल, नील, गवय, गवाक्ष, गन्धमादन, ॥ १३ ॥ शरभ, मैन्द, गज, पनस, वलीमुख, सुषेण, तार, ॥ १४ ॥

असंख्याताःसमायांतिहरयःकामरूपिणः ॥ सर्वेदेवांशसंभूताःसर्वेयुद्धविशारदाः ॥ ७ ॥ अत्रकेचिद्गजबलाःकेचिद्दशगजोपमाः ॥ गजायुतबलाःकेचिदन्येऽमितबलाःप्रभो ॥ ८ ॥ केचिदंजनकूटाभाःकेचित्कनकसन्निभाः ॥ केचिद्रक्तांतवदनादीर्घवालास्तथापरे ॥९॥ शुद्धस्फटिकसंकाशाःकेचिद्राक्षससन्निभाः ॥ गर्जंतःपरितोयांतिवानरायुद्धकांक्षिणः ॥ १० ॥ त्वदाज्ञाकारिणःसर्वेफलमूलाशनाःप्रभो ॥ ऋक्षाणामधिपोवीरोजांबवान्नामबुद्धिमान् ॥ ११ ॥ एषमेमंत्रिणांश्रेष्ठःकोटिभल्लुकवृंदपः ॥ हनूमानेषविख्यातोमहासत्वपराक्रमः ॥१२॥ वायुपुत्रोऽतितेजस्वीमंत्रीबुद्धिमतांवरः ॥ नलोनीलश्चगवयोगवाक्षोगंधमादनः ॥ १३ ॥ शरभोमैंदवश्चैवगजःपनसएवच ॥ वलीमुखो दधिमुखःसुषेणस्तारएवच ॥ १४ ॥

मेरी सेनामें यह सब एक२ शूर वानरसमूहोंके मुख्य अधिपति हैं; तिनमें यह हनुमानका पिता केशरी महाबलवान् है । हे राम ! यह मैंने अपनी सेनाके मुख्य २ नायकोंके नाम तुम्हें सुनाये ॥ १५ ॥ यह समस्त दृढ़निश्चयी; महाबुद्धिमान् व इन्द्रके समान बलवान् हैं; इनमेंसे प्रत्येक करोड़ों वानरोंके अनेक यूथोंका स्वामी है ॥ १६ ॥ हे राम ! यह सर्व, देवताओंके अंशसे जन्म लेनेके कारण आपके आज्ञामें रहनेवाले हैं; यह भाग्यशाली वानर वालिका पुत्र अंगद है; इसका नाम सर्वस्थानोंमें प्रसिद्धहै ॥ १७ ॥ इस वीरकी शक्तिभी वालिके समान है; यह राक्षसोंकी सेनाका नाश करैगा; यह व और दूसरे वानर तुम्हारे कार्यके लिये प्राणदेनेको तैयार हैं ॥ १८ ॥ इनके युद्ध करनेके शस्त्र पर्वतोंके शिखर हैं;

केसरीचमहासत्त्वःपिताहनुमतोवली ॥ एतेमेयूथपारामप्राधान्येनमयोदिताः ॥ १५ ॥ महात्मानोमहावीर्याःशक्रतुल्यपराक्रमाः ॥ एते
प्रत्येकतःकोटिकोटिवानरयूथपाः ॥ १६ ॥ तवाज्ञाकारिणःसर्वेसर्वेदेवांशसंभवाः ॥ एषवालिसुतःश्रीमानंगदोनामविश्रुतः ॥ १७ ॥
वालितुल्यवलोवीरोराक्षसानांवलांतकः ॥ एतेचान्येचवहवस्त्वदर्थेत्यक्तजीविताः ॥ १८ ॥ योद्धारःपर्वताग्रैश्चनिपुणाःशत्रुघातने ॥
आज्ञापयरघुश्रेष्ठसर्वेतेवशवर्तिनः ॥ १९ ॥ रामःसुग्रीवमालिंग्यहर्षपूर्णाश्रुलोचनः ॥ प्राहसुग्रीवजानासिसर्वत्वंकार्यगौरवम् ॥ २० ॥
मार्गणार्थंहिजानक्यानियुंक्ष्वयदिरोचते ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंसुग्रीवःप्रीतमानसः ॥ २१ ॥ प्रेषयामासवलिनोवानरान्वानरर्षभः ॥
दिक्षुसर्वासुविविधान्वानरान्प्रेष्यसत्वरम् ॥ २२ ॥ दक्षिणांदिशमत्यर्थंप्रयत्नेनमहावलान् ॥ युवराजंजांववंतंहनूमंतंमहावलम् ॥ २३ ॥

शत्रुका घात करनेके काममें सबही निपुण हैं। हे रघुवीर ! कुछ आज्ञा दीजिये; हम सब तुम्हारे अधीनमें हैं" ॥ १९ ॥ यह वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवको प्रेमसे हृदय लगा लिया; उनके नेत्रोंमें आनंदकेआंसू आगये। रामचंद्रजी बोले,– "हे सुग्रीव ! तुम जानतेही हो कि मुझको कौनसा कार्य कराना है ॥ २० ॥ इसलिये जैसा तुम्हारे मनमें आवै वैसेही इनसे जानकीका समाचार लानेको कहो [जो जिस दिशाको ढूंढ़नें योग्यहो उसको वहींपर भेजो.]" श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर सुग्रीवके मनको संतोष हुआ ॥ २१ ॥ वानरराज सुग्रीवने महाबलवान् वानरोंके भेजनेका विचार किया. इसप्रकार इधर सब दिशाओंमें अनेक वानर भेजकर ॥ २२ ॥ दक्षिण दिशामें केवल महाबलवान् युवराज

(अंगद) जांबवान्, महासामर्थ्यवाले हनुमान् ॥ २३ ॥ नल, सुषेण शरभ, मैन्द, और द्विविदको अति यत्नके साथ भेजा; क्योंकि सुग्रीवको मालूमथा कि सारी सेनामें यह अतिशय बलवान् हैं; जब वे चले तब सुग्रीवने उनसे कहा ॥ २४ ॥ "तुम सब जने बड़े यत्नके साथ उन सुन्दर जानकीजीकी सुधि लाओ, और एक मासके बचते हुए आजाओ । मेरी यह आज्ञा नित्य याद रखियो [भूलियो मत] ॥ २५ ॥ हे वानरगण ! यदि विना जानकीकी सुधि पाये एक मासके पीछे जो कोई एक दिनभी अधिक लगा देगा वह मेरे हाथसे प्राणान्त दंड पावैगा इसे भली भांति याद रक्खो" ॥ २६ ॥ इसप्रकार उन महापराक्रमी वानरोंको भेजकर व श्रीरामचंद्रजीको वंदनाकर सुग्रीवजी उनके समीप बैठ

नलंसुषेणंशरभंमैंदंद्विविदमेवच ॥ प्रेषयामाससुग्रीवोवचनंचेदमब्रवीत् ॥ २४ ॥ विचिन्वंतुप्रयत्नेनभवंतोजानकींशुभाम् ॥ मासादर्वाङ्निवर्तध्वंमच्छासनपुरःसराः ॥ २५ ॥ सीतामदृष्ट्वायदिवोमासादूर्ध्वंदिनंभवेत् ॥ तदाप्राणांतिकंदंडंमत्तःप्राप्स्यथवानराः ॥ २६ ॥ इतिप्रस्थाप्यसुग्रीवोवानरान्भीमविक्रमान् ॥ रामस्यपार्श्वेश्रीरामंनत्वाचोपविवेशसः ॥ २७ ॥ गच्छंतंमारुतिंदृष्ट्वारामोवचनमब्रवीत् ॥ अभिज्ञानार्थमेतन्मेह्यंगुलीयकमुत्तमम् ॥ २८ ॥ मन्नामाक्षरसंयुक्तंसीतायैदीयतांरहः ॥ अस्मिन्कार्येप्रमाणंहित्वमेवकपिसत्तम ॥ जानामिसत्त्वंतेसर्वंगच्छपंथाःशुभस्तव ॥ २९ ॥ एवंकपीनांराज्ञातेविसृष्टाःपरिमार्गणे ॥ सीतायाअंगदमुखाबभ्रमुस्तत्रतत्रह ॥ ३० ॥ भ्रमंतोविंध्यगहनेददृशुःपर्वतोपमम् ॥ राक्षसंभीषणाकारंभक्षयंतंमृगान्गजान् ॥ ३१ ॥

गये ॥ २७ ॥ हनुमानजीको जानेके लिये तैयार देखकर उनसे श्रीरामचंद्रजीने कहा; हे हनुमान् ! पहचानके लिये यह मेरी मुद्रिका [अँगूठी] लेजाओ; और एकान्तमें सीताको देना; इस अंगूठी पर मेरे नामके अक्षर खुद रहे हैं ॥ २८ ॥ हे "वानरश्रेष्ठ ! मुझको भरोसा है कि–यह कार्य तुम्हारे हाथसे सिद्ध होगा; क्योंकि तुम्हारा बल और बुद्धिवैभव मैं भली भांति जानताहूं । इस कारण अभी जाओ–जिधर जाओगे उधरका मार्ग तुम्हें सुखकर व फलदायक होवै।" ॥ २९ ॥ इसप्रकार वानरराज सुग्रीवके भेजे हुए व अंगदादि वानर सीताजीकी खोजके लिये पृथ्वीपर इधर उधर घूमने लगे ॥ ३० ॥ फिरते २ विंध्याचलके पहाड़ी जंगलमें एक प्रचंड राक्षस उनको दिखाई दिया उसका शरीर पर्व

तकी समान भयंकर था।हाथसे पकड़कर वह मृग हस्ती इत्यादि पशुओंको भक्षण कररहाथा ॥ ३१ ॥ वानरोंमेंके कितने एक वीरोंको "यही रावण है" ऐसा जान पड़ा; इसलिये उन्होंने बड़ा किलकिला शब्दकर मारे घूसोंकि क्षणभरमें उसको मार डाला ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त जिस्से कि इसके मारनेके काममें कुछभी श्रम नहीं पड़ा, इस्से यह रावण नहीं है, । ऐसे कहकर एक बड़े भारी दूसरे वनमें गये; वहाँपर यह वानर वीर प्यासके मारे व्याकुल हुए परन्तु पानी कहीं नहीं मिला ॥ ३३ ॥ वनमें घूमते २ उनके कंठ, अधर और तालुए सूख गये; फिर तृणवेलोंसे ढकी हुई एक बड़ी भारी गुहा उन्होंने देखी ॥ ३४ ॥ उसके मुखसे क्रौंच व हंस पक्षी बाहर निकले, उनके पंख भींगे हुये देखकर इसमें निःसंदेह पानी है। हम इस प्रचंड गुफामें प्रवेश करैं ॥ ३५ ॥ यह कहकर प्रथम हनुमानजी उस गुफामें घुसे, फिर उनके पीछे २ सब गये; सबने परस्पर एक दूसरेकी बांह पकड़ली । सबको ऐसी उत्कंठा हुईकि पानी कहां मिलता है ॥ ३६ ॥ वहांपर अंधेरेमें दूर तक चले गये पीछे उन वानरोंके सेनापतियोंने स्फटिकमणिके समान जलवाली स्वच्छ जलसे भरे सरोवरको देखा; उसके निकटही कल्पवृक्षकी समान ॥ ३७ ॥ पके हुए फलोंके बोझसे झुके हुए वृक्ष लग रहेथे; उसके मकरंदपर [भौंरे] बहुत थे; प्रत्येक वृक्षपर मन, या आधमन शहदकी मुहाल लग रहीथी । तैसेही इस स्थानमें सर्व सामग्रीसे युक्त, व रत्न वस्त्रादिकोंसे भरे हुए गृहथे ॥ ३८ ॥ उन गृहोंमें उत्तमोत्तम भोजनके पदार्थ पूर्ण हो रहेथे; परन्तु

रावणोऽयमितिज्ञात्वाकेचिद्वानरपुंगवाः ॥ जघ्नुःकिलकिलाशब्दंमुंचंतोमुष्टिभिःक्षणात् ॥ ३२ ॥ नायंरावणइत्युक्त्वाययुरन्यन्महद्वनम्॥
तृषार्ताःसलिलंतत्रनाविंदन्हरिपुंगवाः ॥ ३३ ॥ विभ्रमंतोमहारण्येशुष्ककंठोष्ठतालुकाः ॥ ददृशुर्गह्वरंतत्रतृणगुल्मावृतंमहत् ॥ ३४ ॥
आर्द्रपक्षान्क्रौंचहंसान्निःसृतान्ददृशुस्ततः ॥ अत्रास्तेसलिलंनूनंप्रविशामोमहागुहाम् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वाहनुमानग्रेप्रविवेशतमन्वयुः ॥
सर्वेपरस्परंधृत्वाबाहून्बाहुभिरुत्सुकाः ॥ ३६ ॥ अंधकारेमहद्दूरंगत्वाऽपश्यन्कपीश्वराः ॥ जलाशयान्मणिनिभतोयान्कल्पद्रुमोपमान्
॥ ३७ ॥ वृक्षान्पक्वफलैर्नम्रान्मधुद्रोणसमन्वितान् ॥ गृहान्सर्वगुणोपेतान्मणिवस्त्रादिपूरितान् ॥ ३८ ॥ दिव्यभक्ष्यान्नसहितान्मानुषैः
परिवर्जितान् ॥ विस्मितास्तत्रभवनेदिव्येकनकविष्टरे ॥ ३९ ॥

मनुष्योंके वासका चिह्न कहीं दिखाई नहीं देता; तिस्से समस्त वानर आश्चर्यसे चकित होगये इतनेहीमें वहांपर एक मंदिरके बीच दिव्य सुवर्णके सिंहासन पर ॥ ३९ ॥ ध्यानमें बैठी हुई एक योगिनी स्त्री इन वानरोंने देखी; 'उसके शरीरपर पुराने वस्त्रथे, परन्तु कान्तिभी जिधर तिधर छिटक रहीथी; उसके अंतःकरण रोकनेसे उत्पन्न होनेवाली योगसिद्धिको प्राप्त किये हुए वानरोंने देखा ॥ ४० ॥ वानर लोगोंने कुछ भक्तिपूर्वक और कुछ डरकरके उस महाभाग्यवती स्त्रीको नमस्कार किया, देवी उन वानरोंको देखकर बोली; तुम किस कारणसे यहांपर आये ? ॥ ४१ ॥ तुम्हारा स्थान कहां है ? तुम किसके दूतहो ? यहांपर बलात्कारसे प्रवेश करके इस मेरे स्थानको त्रास क्यों देतेहो ? यह प्रश्न

प्रभयादीप्यमानांतुददृशुःस्त्रियमेकलाम् ॥ ध्यायंतींचीरवसनांयोगिनींयोगमास्थिताम् ॥ ४० ॥ प्रणेमुस्तांमहाभागांभक्त्याभीत्याच वानराः ॥ दृष्ट्वातान्वानरान्देवीप्राहयूयंकिमागताः ॥ ४१ ॥ कुतोवाकस्यदूतावामत्स्थानंकिंप्रधर्षथ ॥ तच्छ्रुत्वाहनुमानाहशृणुवक्ष्यामिदेविते ॥ ४२ ॥अयोध्याधिपतिःश्रीमान्राजादशरथःप्रभुः ॥ तस्यपुत्रोमहाभागोज्येष्ठोरामइतिश्रुतः ॥ ४३ ॥ पितुराज्ञांपुरस्कृत्यसभार्यःसानुजोवनम् ॥ गतस्तत्रहृताभार्यातस्यसाध्वीदुरात्मना ॥ ४४ ॥ रावणेनततोरामःसुग्रीवंसानुजोययौ ॥ सुग्रीवोमित्रभावेनरामस्यप्रियवल्लभाम् ॥ ४५ ॥ मृगयध्वमितिप्राहततोवयमुपागताः ॥ ततोवनंविचिन्वंतोजानकींजलकांक्षिणः ॥ ४६ ॥ प्रविष्टागंह्वरंघोरंदैवादत्रसमागताः ॥ त्वंवाकिमर्थमत्रासिकावात्वंवदनःशुभे ॥ ४७ ॥

सुनकर हनुमानजीने उत्तर दिया 'देवि ! मैं तुमसे सर्व वृत्तान्त निवेदन करताहूं श्रवण करो ॥ ४२ ॥ अयोध्यानगरीमें सकलैश्वर्यसम्पन्न महासमर्थ एक दशरथनामक राजा होगये हैं; उनके महाभाग्यशाली ज्येष्ठ पुत्र [बड़े बेटे] रामनामसे विख्यात हैं ॥ ४३ ॥ वह पिताकी आज्ञा मान स्त्री और छोटे भ्राताके साथ वनमें आये; तहां किसी दुष्टने उनकी पतिव्रता स्त्रीको चुरालिया ॥ ४४ ॥ उसका चुरानेवाला वह दुष्ट रावणहै । इसके उपरांत श्रीरामचंद्रजी छोटे भ्राताके साथ सुग्रीवके पास आये । सुग्रीवने उनके साथ मित्रता होनेसे हमको " रामचंद्रजीकी प्यारी भार्याकी ॥ ४५ ॥ सुधि लाओ, " ऐसे कहा; तबसे हम वन २ में जानकीजीको खोजने लगे;—प्यास लगनेके कारण जलकी इच्छाकरके ॥ ४६ ॥ कुछेक दैवयोगसे

हमने इस भयंकर गुहामें प्रवेश किया; हे कल्याणप्रदे देवि ! तुम कौनहो व, यहांपर क्यों रहतीहो, सो हमसे कहो, ॥ ४७॥ हनुमानजीके वचनं सुनकर
योगिनका हृदय संतुष्ट होगया।वानरोंको भूंख प्यासके मारे व्याकुल देखकर उसने कहा; हे वानरों ! इच्छानुसार फल मूल खायकर अमृतके समान
जल पियो ॥ ४८ ॥ और फिर इधर आओ; तब मैं अपना सर्व वृत्तान्त तुमको सुनाऊंगी; सब वानरोंने ‘ अच्छा ’ कहकर उपहार भक्षणकर जल
पिया इसके उपरांत वे आनंदित होकर ॥४९ ॥ देवीके निकट आय हाथ जोड़ खड़ेरहे; तब वह उत्तमरूपसंपन्न योगिनी हनुमानजीसे बोली ॥ ५० ॥
“ हे पवनकुमार ! हेमानामक, विश्वकर्माकी एक परमरूपवती कन्याहै; उस स्त्रीने नृत्य करके श्रीमहादेवजीको संतुष्ट किया ॥ ५१ ॥ महादेवजीने

योगिनीचतथादृष्ट्वावानरान्प्राहहृष्टधीः ॥ यथेष्टंफलमूलानिजग्ध्वापीत्वामृतंपयः ॥ ४८ ॥ आगच्छततोवक्ष्येममवृत्तांतमादितः॥ तथे
तिभुक्त्वापीत्वाचहृष्टास्तेसर्ववानराः ॥४९॥ देव्याःसमीपंगत्वातेबद्धांजलिपुटाःस्थिताः ॥ ततःप्राहहनूमंतंयोगिनीदिव्यदर्शना॥५०॥
हेमानामपुरादिव्यरूपिणीविश्वकर्मणः ॥ पुत्रीमहेशंनृत्येनतोषयामासभामिनी ॥ ५१ ॥ तुष्टोमहेशःप्रददाविदंदिव्यपुरंमहत् ॥ अत्र
स्थितासासुदतीवर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५२ ॥ तस्याअहंसखीविष्णुतत्परामोक्षकांक्षिणी ॥ नाम्नास्वयंप्रभादिव्यगंधर्वतनयापुरा॥५३॥
गच्छंतीब्रह्मलोकंसामामाहेदंतपश्चर ॥ अत्रैवानिवसंतीत्वंसर्वप्राणिविवर्जिते ॥ ५४ ॥ त्रेतायुगेदाशरथिर्भूत्वानारायणोऽव्ययः ॥ भूभा
रहरणार्थायविचरिष्यतिकानने ॥५५॥ मार्गंतोवानरास्तस्यभार्यामायांतितेगुहाम् ॥ पूजयित्वाथतान्मत्वारामंस्तुत्वाप्रयत्नतः ॥५६॥

प्रसन्न होकर उसको विस्तारवाला यह दिव्यनगर दे दिया [पुरस्कारमें दिया] यह सुन्दरी इसस्थानमें अनंत सहस्र वर्षतक रही ॥ ५२ ॥ मैं
दिव्यनामक गंधर्वकी कन्या हूं; मेरा नाम स्वयंप्रभाहै । हेमासे मेरी मित्रता है । मुझे मोक्षपानेकी इच्छाहै; इसकारण मैं विष्णुजीकी आराधना करनेमें
तत्परहूं ॥ ५३ ॥ हेमाने ब्रह्मलोक जातेहुए मुझसे कहा कि तू यहांपर रहकर तपकर; यहांपर किसीप्रकारका प्राणी नहीं रहता; इसलिये यह
स्थान तप करनेको बहुत योग्यहै ॥५४ ॥ साक्षात् निर्विकार जगन्निवास परमात्मा त्रेतायुगमें दशरथजीके पुत्र होकर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये
वनमें भ्रमण करेंगे ॥ ५५ ॥ उनकी स्त्रीको खोजते २ वानर तेरी गुहामें आवेंगे तू बड़े यत्नसे [सावधानहो] उनका आदर व पहुनई करके रामजी

के पास जाना; और उनकी स्तुति करना ॥ ५६ ॥ ऐसा करनेसे तू जहां योगीजन जाते हैं उस सनातन विष्णुपदको प्राप्त होजायगी; हे वानरगण ! अब शीघ्र जायकर रामजीका दर्शन करनेकी मेरी इच्छाहै ॥ ५७ ॥ तुम लोग आंखैं मीचनेसे आपही आप गुफाके बाहर होजाओगे” वानरोंने तैसाही किया [आंखैं बन्दकी] तौ अतिशीघ्र वे उसवनमें प्राप्तहोगये जहां पहले थे ॥ ५८ ॥ वह योगिनीभी गुहाको छोड़कर अति शीघ्र श्रीरामजीके समीप आई; वहां उसको सुग्रीवके सहित श्रीराम लक्ष्मणके दर्शन मिले ॥ ५९ ॥ उस श्रेष्ठबुद्धिवाली स्त्रीने श्रीरामचंद्रजीकी प्रदक्षिणाकरके अनेक प्रणाम किये; बोलनेको हुई तौ भक्तिसे उसका गला भर आया, अंगपर रोमावली खड़ी होगई । ऐसी स्थितिमें वह लड़खड़ाते हुए शब्दोंकरके श्रीरामचंद्रजीसे बोली ॥ ६० ॥ “हे राजाधिराज ! मैं आपकी दासी आपका दर्शन पानेके लिये यहां आईहूं; हजारों वर्षतक मैंने तुम्हारा दर्शन करनेके लिये तीव्र तप किया।आज उस तपका फल मुझे मिलगया ॥६१॥ [अहो! आज कैसे मंगलका दिनहै!] आज मैं तुम्हैं नमस्कार करतीहूं; तुम मायासे परे स्थितहो; । सर्व प्राणियोंके बाहर भीतर रहते हो परंतु किसीको दिखाई नहीं देते ॥ ६२ ॥ जैसे कोई नट स्वांग धारण कर ले, तब उसके यथार्थ रूपको [यह अमुक मनुष्य है] कोई नहीं जानता; वैसेही तुम योगमायारूपी आच्छादन [परदे] से ढकेहुएहो; इसलिये मनुष्यशरीर धारण करके वैसेही दिखाई देते हो व अज्ञानी लोगोंको दिखाई नहीं देते ॥ ६३ ॥ जिनके मनोंमें भक्ति करनेकी इच्छा होतीहै; उन सत्पुरुषोंक

यातासिभवनंविष्णोर्योगिगम्यंसनातनम् ॥ इतोऽहंगंतुमिच्छामिरामंद्रष्टुंत्वरान्विता ॥ ५७ ॥ यूयंपिदध्वमक्षीणिगमिष्यथबहिर्गुहाम् ॥
तथैवचक्रुस्तेवेगाद्गताःपूर्वस्थितंवनम् ॥ ५८ ॥ सापित्यक्त्वागुहांशीघ्रंययौराघवसन्निधिम् ॥ तत्ररामंससुग्रीवंलक्ष्मणंचददर्शह ॥५९॥
कृत्वाप्रदक्षिणंरामंप्रणम्यबहुशःसुधीः ॥ आहगद्गदयावाचारोमांचिततनूरुहा ॥ ६० ॥ दासीतवाहंराजेंद्रदर्शनार्थमिहागता ॥ बहुवर्ष
सहस्राणितप्तंमेदुश्चरंतपः ॥ ६१ ॥ गुहायांदर्शनार्थंतेफलितंमेऽद्यतत्तपः ॥ अद्यहित्वांनमस्यामिमायायाःपरतःस्थितम् ॥ ६२ ॥ सर्व
भूतेषुचालक्ष्यंबहिरंतरवस्थितम् ॥ योगमायाजवनिकाच्छन्नोमानुषविग्रहः ॥ ६३ ॥ नलक्ष्यसेऽज्ञानदृशांशैलूषइवरूपधृक् ॥ महाभाग
वतानांत्वंभक्तियोगविधित्सया ॥ ६४ ॥

भक्तियोग सिद्धकरनेके लिये तुम अवतार लेतेहो। हे षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न प्रभो! मैं अबला अर्थात् तमोगुणीहूं; तिस्से मुझे आपके स्वरूपका ज्ञान कैसे होगा? ॥ ६४ ॥ संसारमें तुम्हारे ब्रह्मतत्त्वको जो जानते हैं; सो जाने। हे रघुकुलमें उत्तम राम! मेरे हृदयमंदिरमें तुम्हाराही रूप सदा विराजमानरहै; मुझे तत्त्वज्ञानी बननेकी इच्छा नहीं ॥ ६५ ॥ हे राम! आज तुमने अपने चरण युगलका मुझे दर्शन दिया; इसकारण मैं अपनेको कृतकृत्य मानतीहूं; आपके चरणोंका माहात्म्य कहांतक वर्णन करूं जिनके दर्शनसेही मोक्ष मिलती, संसारसमुद्र छिपजाता; और श्रेष्ठ मार्ग दिखाई देने लगताहै ॥ ६६ ॥ हे आदिपुरुष! जिसने समस्त ऐश्वर्यका त्याग कर दियाहै; उस पुरुषके सब कुछ आपहीहो। लौकिक, द्रव्य, पुत्र, स्त्री,इत्यादि ऐश्वर्यके गर्वसे फूलेहुए लोग तुम्हारी स्तुति करनेके योग्य कभी नहींहैं ॥ ६७ ॥ प्रवृत्तिमार्गरूप संसार तुम करके आपसेही निर्वृत्त होजाता

अवतीर्णोऽसिभगवन्कथंजानामितामसी ॥ लोकेजानातुयःकश्चित्तवतत्त्वंरघूत्तम ॥ ६५ ॥ ममैतदेवरूपंतेसदाभातुहृदालये ॥ राम
तेपादयुगलंदर्शितंमोक्षदर्शनम् ॥ ६६ ॥ अदर्शनंभवार्णानांसन्मार्गपरिदर्शनम् ॥ धनपुत्रकलत्रादिविभूतिपरिदर्पितः ॥ अकिंचनधनं
त्वाद्यनाभिधातुंजनोऽर्हति ॥ ६७ ॥ निवृत्तगुणमार्गायनिष्किंचनधनायते ॥ ६८ ॥ नमःस्वात्माभिरामायनिर्गुणायगुणात्मने ॥ काल
रूपिणमीशानमादिमध्यांतवर्जितम् ॥ ६९ ॥ समंचरंतंसर्वत्रमन्येत्वांपुरुषंपरम् ॥ देवतेचेष्टितंकश्चिन्नवेदनृविडंबनम् ॥ ७० ॥ नतेऽ
स्तिकश्चिद्दयितोद्वेष्योवापरएवच ॥ त्वन्मायापिहितात्मानस्त्वांपश्यंतितथाविधम् ॥ ७१ ॥

है। सर्व संग परित्याग करके निर्धनहुए सज्जनोंके एक तुमही धनहो; तुम अपने स्वरूपमें सदा रमण करते रहते हो; अर्थात् गुणरहित हो; परन्तु जिसप्रकार रस्सी अपनेमें भासनेवाले सर्पका कारण होतीहै; वैसेही आपभी गुणोंके विवृत्तोपादान कारण होनेसे गुणात्मकहो ॥ ६८ ॥ कालरूप होकर जगत्का संहार तुमही करतेहो; तुममें सृष्टि उत्पन्न करने और उसका पालन करनेकी सामर्थ्य है; अर्थात् तुम्हारा आदि,मध्य, और अन्त नहीं है। आप सर्वत्र राम दृष्टिसे देखनेवाले सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामीहो; ऐसा मैं समझती हूं ॥ ६९॥ हे देव! तुम इन मनुष्योंके स्वरूपका केवल अनुकरण [नक़ल] करनेवाले [वास्तवमें मनुष्य नहीं] हो, यह बात कोई नहीं जानताहै। तुम्हारा प्यारा शत्रु, या उदासीन नहींहै ॥ ७० ॥ तुम्हारी मायासे जिनकी

ज्ञानशक्ति ढकगईहै वे जन तुम्हें तैसाही [शत्रु, मित्र, या उदासीन जिसको जैसा मालूमहो] समझतेहैं; वास्तवमें आप जन्मरहित किसीकार्यके न करनेवाले व सर्वेश्वर होनेसे देव पशु पक्ष्यादि तिर्यग्योनि और मनुष्य इत्यादिकोंमें ॥ ७१ ॥ जन्म लेते हैं; और अनेकभांतिके चरित्रादि करते हैं; परंतु यह सर्व उन जातियोंका अनुकरणहै; तुम अपने स्वरूपसे न टलनेवाले परब्रह्मरूप होनेसे अवतार लेतेहो; इसका कारण यहहै कि तुम्हारे मनमें अपने भक्तोंको अपनी [ईश्वरकी] कथा श्रवण करनेसे उत्पन्न होनेवाली सिद्धि प्राप्तकरा दी जाय; ऐसा उद्देशहै, यह कहतेहैं ॥ ७२ ॥ और दूसरे कितने लोग यह कहतेहैं कि कोशलदेशके राजा[दशरथ]को उसके तपका फल देनेके लिये कौशल्याकी प्रार्थनासे तुमने जन्मलिया ॥ ७३ ॥ कोई २ कहते हैं कि दुष्ट राक्षसोंका बोझ पृथ्वीपर हुआ है;उसको दूर करनेके लिये ब्रह्माजीने प्रार्थना की, इसलिये प्रभुने यह मनुष्यअवतार धारण किया

अजस्याकर्तुरीशस्यदेवातिर्यङ्नरादिषु ॥ जन्मकर्मादिकंयद्यत्तदत्यंतविडंबनम् ॥ ७२ ॥ त्वामाहुरक्षरंजातंकथाश्रवणसिद्धये ॥ केचित्कोसलराजस्यतपसःफलसिद्धये ॥ ७३ ॥ कौसल्ययाप्रार्थ्यमानंजातमाहुःपरेजनाः ॥ दुष्टराक्षसभूभारहरणायार्थितोविभुः ॥ ७४ ॥ ब्रह्मणानररूपेणजातोऽयमितिकेचन ॥ शृण्वंतिगायंतिचयेकथास्तेरघुनंदन ॥ ७५ ॥ पश्यंतितवपादाब्जंभवार्णवसुतारणम् ॥ त्वन्मायागुणबद्धाहंव्यतिरिक्तंगुणाश्रयम्॥७६॥कथंत्वांदेवजानीयांस्तोतुंवाऽविषयंविभुम् ॥ नमस्यामिरघुश्रेष्ठंबाणासनशरान्वितम् ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रासुग्रीवादिभिरन्वितम् ॥ ७७ ॥ एवंस्तुतोरघुश्रेष्ठःप्रसन्नःप्रणतार्त्यहृत् ॥ उवाचयोगिनींभक्तांकिंतेमनसिकांक्षितम् ॥ ७८ ॥

॥ ७४ ॥ हे रघुकुमार ! तुम्हारे चरण, भवसमुद्रसे पार उतारनेके लिये उत्तम नाव हैं जो कोई तुम्हारी कथाको सुनते हैं; या गाते हैं उनको तुम्हारे चरणकमलोंका दर्शन मिलता है ॥ ७५ ॥ हे देव ! तुम गुणोंके आधार होनेसे भी गुणविरहित हो; मैं तुम्हारी मायाके गुणोंसे भलीभांति बँध गईहूं; फिर भला तुम्हारा ज्ञान मुझे कैसे हो ? ऐसेही हे सर्वेश्वर ! तुम स्तुतिके विषय नहीं हो; फिर भला मुझसे तुम्हारी स्तुति कैसे की जाय ॥ ७६ ॥ हे रघुवीर ! इस कारण मैं; इस समय आगे दिखाई देती हुई तुम्हारी सगुण मूर्तिको नमस्कार करतीहूं । उसने [मूर्तिने] हाथमें धनुष बाण ले रक्खा है; उसके समीपही बन्धु लक्ष्मण व सुग्रीवादि वानर मंडली बैठी है ॥ ७७ ॥ इस प्रकार उस महाभक्त योगिनने रघुवीरकी स्तुति की

तब शरणागतके पाप दूर करनेवाले वह प्रभु प्रसन्न होकर बोले; तेरे मनमें जो कुछ इच्छा हो, सो कह ॥ ७८ ॥ यह सुन उसने भक्तिपूर्वक श्रीरामचंद्रजीको उत्तर दिया; हे भक्तवत्सल प्रभो ! मुझे यह वरदो कि किसी योनिमें भी जन्मलूं परन्तु वहांपरभी मेरी आपमें दृढ़ भक्ति हो ॥ ७९ ॥ तुम्हारे भक्तोंका नित्य समागमहो; और प्रवाह क्रोधके विषय मुझे किसी दिन आसक्ति नहो; हे राम ! सदा मेरी जिह्वा आपका 'राम राम' नाम भक्ति सहित कहा करे ॥ ८० ॥ तैसेही मेरे अंतःकरणमें सर्वकाल तुम्हारे श्यामसुन्दर रूपका चिन्तन करना रहै; उस मेरे मनमें आनेवाली मूर्ति के दोनों ओर सीता और लक्ष्मण दोनों होवैं; हाथमें धनुष बाण धारण किया हो; कमरमें पीताम्बर पड़ाहो, मस्तकपर मुकुटने उस मूर्तिको शोभा दे रक्खी हो ॥ ८१ ॥ और बाजूबन्द, नूपुर, मोतियोंके हार, कौस्तुभ कुंडल गहनोंसे वह उवल दिखाई दे; हे प्रभो रामचंद्र । इसके सिवाय दूसरा वर कुछ न चाहिये" ॥ ८२ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले "हे स्वयंप्रभे ! तू बड़ भागिनी है । 'अच्छा' जैसा तू कहती है वेसाही होवे (तेरे मांगे हुए वर तुझे मिलें) अब तू बदरिकाश्रमको जा । और वहां मेरा चिंतवन करती रहियो; मेरा परमेश्वर होना तू जानती है इसलिये शीघ्रही यह पांचभौतिक शरीर छोड़नेसे तू मेरे स्वरूपको प्राप्त होगी" ॥ ८३ ॥ अमृतके समान श्रीरामचंद्रजीके मधुर वचन सुनकर स्वयंप्रभाने शीघ्रतासे बदरिकाश्रमका मार्ग लिया; उस पुण्यवनमें बेरीके बहुतसे वृक्ष हैं; वहांपर पहुँचनेके पीछे वह अंतःकरणसे रामजीका ध्यान करती रहीं; और अंतमें शरीरको छोड़ परमपदको प्राप्त कर लेती हुई ॥ ८४ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे कि० भाषाटीकायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

साप्राहराघवंभक्त्याभक्तिंतेभक्तवत्सल ॥ यत्रकुत्रापिजातायानिश्चलांदेहिमेप्रभो ॥ ७९ ॥ त्वद्भक्तेषुसदासंगोभूयान्मेप्राकृतेषुन ॥ जिह्वामेरामरामेतिभक्त्यावदतुसर्वदा ॥ ८० ॥ मानसंश्यामलंरूपंसीतालक्ष्मणसंयुतम् ॥ धनुर्बाणधरंपीतवाससंमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ८१ ॥ अंगदैर्नूपुरैर्मुक्ताहारैःकौस्तुभकुंडलैः ॥ भांतंस्मरतुमेरामवरंनान्यंवृणेप्रभो ॥ ८२ ॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ भवत्वेवंमहाभागेगच्छत्वंबदरीवनम् ॥ तत्रैवमांस्मरंतीत्वंत्यक्त्वेदंभूतपंचकम् ॥ मामेवपरमात्मानमचिरात्प्रतिपद्यसे ॥ ८३ ॥ श्रुत्वारघूत्तमवचोऽमृतसारकल्पंगत्वातदैवबदरीतरुखण्डजुष्टम् ॥ तीर्थंतदारघुपतिंमनसास्मरंतीत्यक्त्वाकलेवरमवापपरंपदंसा ॥ ८४ ॥ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेकिष्किंधाकांडेषष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

वानरोंको संपातिका मिलना॥ महादेवजी बोले,—इधर वानरमंडली एक जगह वृक्षोंकी छायामें बैठकर विचार करने लगी। किसीको कोई उपाय न सूझा; सीताको ढूंढ़ते २ मारे श्रमके सब जने दुर्बल होते चले॥ १ ॥ इतनेमेंही वानरोंमें श्रेष्ठ अंगदजी कितने एक वानरोंसे बोले;—"अहो! इस वनमें तथा गुफामें घूमते हुए हमकोपूरा एक महीना बीत गया इसमें कुछ संदेह नहीं॥ २ ॥ सीताजीकी सुधि मिली नहीं; अर्थात् राजाज्ञा अमान्य करनेका दोष अपने ऊपर आगया; जोऐसेही किष्किन्धाको गये तौ सुग्रीव हमको मार डालैगा ॥ ३ ॥ तिसमें मुझे तौ अपने शत्रुका पुत्र जानकर मारेहीगा; मेरे ऊपर उसकी प्रीति कहां ? श्रीरामका आधार है इसलिये मैं अबतक जीवित रहाहूं ॥ ४ ॥ अब सुग्रीवको, मैंने रामजीका कार्य नहीं किया, यह मेरे वध करनेका उसको निमित्त मिल जायगा! यह मैं भलीभांति जानताहूं; कि उसका अंतःकरण दुष्ट है ॥ ५ ॥ अहो! बड़े भाईकी स्त्री, जो प्रत्यक्ष माताके समान होती है; वह दुरात्मा उसकोभी विना भोग किये नहीं छोड़ता; हे वानरवीरगण! इस कारण मैं कभी उसके निकट नहीं जाऊंगा ॥ ६ ॥ परन्तु गलेमें फांसी डालकर; या दूसरे किसी उपायसे मरनेकी युक्ति करकै यहीं प्राणोंको त्याग दूंगा!" यह शब्द उच्चारण करते हुए अंगदजीके आंखोंसे आंसू वहने लगे। उनकी यह अवस्था देखकर कितने एक बड़े २ वानरोंको ॥ ७ ॥ अत्यन्त खेद हुआ। उनकी आंखोंमेंभी आंसू आगये; इसके उपरान्त उन्होंने युवराज अंगदसे कहा ॥ ८ ॥ "हे राजपुत्र! इस लिये तुम काहेको शोक करते हो ? हम तुम्हारे प्राणोंकी रक्षा करनेको

अथतत्रसमासीनावृक्षखंडेषुवानराः ॥ चिंतयंतोविमुह्यंतःसीतामार्गणकर्शिताः ॥ १ ॥ तत्रोवाचांगदःकांश्चिद्वानरान्वानरर्षभः ॥ भ्रमतां
गह्वरेऽस्माकंमासोनूनंगतोऽभवत् ॥ २ ॥ सीतानाधिगतास्माभिर्नकृतंराजशासनम् ॥ यदिगच्छामकिष्किंधांसुग्रीवोऽस्मान्हनिष्यति
॥ ३ ॥ विशेषतःशत्रुसुतंमांमिषान्निहनिष्यति ॥ मयितस्यकुतःप्रीतिरहंरामेणरक्षितः ॥ ४ ॥ इदानींरामकार्यमेनकृतंतान्मिषंभवेत् ॥
तस्यमद्धननेनूनंसुग्रीवस्यदुरात्मनः ॥ ५ ॥ मातृकल्पांभ्रातृभार्यांपापात्मानुभवत्यसौ ॥ नगच्छेयमतःपार्श्वंतस्यवानरपुंगवाः ॥ ६ ॥
त्यक्ष्यामिजीवितंचात्रयेनकेनापिमृत्युना ॥ इत्यश्रुनयनंकेचिद्दृष्ट्वावानरपुंगवाः ॥ ७ ॥ व्यथिताःसाश्रुनयनायुवराजमथाब्रुवन् ॥ ८ ॥
किमर्थंतवशोकोऽत्रवयंतेप्राणरक्षकाः ॥ भवामोनिवसामोऽत्रगुहायांभयवर्जिताः ॥ ९ ॥

तैयार हैं इस गुफामें हमें कुछ डर नहीं; हम सब यही हैं ॥ ९ ॥ यह नगर इन्द्रपुरीके समान सब सम्पत्तियोंसे भराहुआ है–यहांपर किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं पड़ैगी” इस प्रकार परस्पर धीरे २ कहे हुए उनके वचन हनुमानजीके कानमें गये, हनुमानजी नीतिशास्त्रमें निपुणथे; उन्होंने अंगदजीको हृदयसे लगायकर कहा;–“हे अंगद यह बुरा विचार किसकारणसे तुम्हारे मनमें आता है ? यह कभी नहीं होना कि सुग्रीव तुम्हैं मार डालै; इस कारण इन वानरोंका कहा हुआ अविचारी कार्य (गुफामें रहना) करना योग्य नहीं है ॥ १० ॥ ११ ॥ ताराके पुत्र तुम सुग्रीवको अति प्यारे हो; इसलिये तुमको दूसरा विचार नहीं करना चाहिये. और जो तुम यह कहो कि मैंने रामका कार्य नहीं किया है, इसलिये रामसे मुझे भय है। परन्तु श्रीरामकी प्रीति तुम्हारे ऊपर लक्ष्मणजीसे भी अधिक है ॥ १२ ॥ इस कारण तुम्हैं रामजीसे भयका होना किंचित्

सर्वसौभाग्यसहितंपुरंदेवपुरोपमम् ॥ शनैःपरस्परंवाक्यंवदतांमारुतात्मजः ॥ १० ॥ श्रुत्वांगदंसमालिंग्यप्रोवाचनयकोविदः ॥ विचार्यतेकिमर्थंतेदुर्विचारोनयुज्यते ॥ ११ ॥ राज्ञोऽत्यंतप्रियस्त्वंहितारापुत्रोऽतिवल्लभः ॥ रामस्यलक्ष्मणात्प्रीतिस्त्वयिनित्यंप्रवर्धते ॥१२॥ अतोनराघवाद्भीतिस्तवराज्ञोविशेषतः ॥ अहंतवहितेसक्तोवत्सनान्यंविचारय ॥ १३ ॥ गुहावासश्चनिर्भेद्यइत्युक्तंवानरैस्तुयत् ॥ तदेतद्रामवाणानामभेद्यंकिंजगत्रये ॥ १४ ॥ येत्वांदुर्बोधयंत्येतेवानरावानरर्षभ ॥ पुत्रदारादिकंत्यक्त्वाकथंस्थास्यंतितेत्वया ॥ १५ ॥ अन्यद्गुह्यतमंवक्ष्येरहस्यंशृणुमेसुत ॥ रामोनमानुषोदेवःसाक्षान्नारायणोऽव्ययः ॥ १६ ॥

भी संभव नहीं न राजासे तुमको कुछ डर है। हे बालक ! मैं तुम्हारा भला करनेको सदा तैयारहूं; यह तौ तू जानताही है, इस कारण अब कोई दूसरा विचार करना योग्य नहीं ॥ १३ ॥ अरे! ‘इस गुफामें रहनेसे किसी समय कोई खटका नहीं,’ वानर ऐसा कहते हैं; यह बात अयोग्य है; क्यों कि तुम्ही देखो कि जिसका छेदन रामजीके बाणसे नहो (ऐसा पदार्थ) या जहांपर रामजीका बाण नहीं पहुँचे ऐसा स्थान, त्रिलोकीमें कहीं भी है ? ॥ १४ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! जो वानर तुमको बुरे २ आदेश दे रहे हैं, वे स्त्री पुत्रादिको छोड़कर किस प्रकार तुम्हारे साथ रहैंगे ? सो विचार करो ! ॥ १५ ॥ हे बालक ! एक गुप्त रहस्य मैं तुमसे कहताहूं मन लगाकर सुनो (किसीसे कहना मत) अरे ! राम कुछ मनुष्य नहीं हैं वह साक्षात्

मूर्ति निर्विकार, जगन्निवास परमात्मा हैं ॥ १६ ॥ सीताजी– महासमर्थ व सबको मोहनेवाली माया है; और लक्ष्मणजी–जिनपर सर्व भुवनका आधार है उन नागराज शेषके अवतार हैं; ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीने राक्षसोंके समूहका नाश करनेके लिये प्रार्थना की; इसलिये सबोंने माया करकै मनुष्य जन्म लिया है। और इनमेंसे एक एक जन एक एक जगत्की रक्षा करनेको समर्थ है ॥ १८ ॥ हम सर्व, वैकुंठवासी विष्णुजीके पार्षद हैं; परमात्माने अपनी इच्छासे मनुष्यरूप धारण किया है, इसलिये ॥ १९ ॥ हम सबकोभी उनकी मायाके योगसे वानर जन्म मिला; हमने पहिले तप करकैं जगत्पतिकी आराधना की ॥ २० ॥ तब उनके अनुग्रह करने पर हमको पार्षद पदवी प्राप्त हुई। इसकारणसेही हम उनकी सेवा करते हैं ॥ २१ ॥ व इसके उपरान्त फिर वैकुंठलोकमें जायकर सुखसे रहैंगे।" हनुमानजीने इसप्रकार अंगदजीको समझाया बुझाया; फिर समस्त वानर विंध्य नामक महापर्वतपर गये ॥ २२ ॥ और हौले २ जानकीजीको खोजते हुए दक्षिणमहासागरके तीरपर, महेंद्र नामवाले पर्वतके पास एक छोटेसे पवित्र पर्वतपर जाय पहुँचे ॥ २३ ॥ समुद्र प्राप्त हुआ, समुंद्र उनको दिखाई दिया । जिसको पार जाना बड़ा कठिन है; जिसके जलकी थाह नहीं लगंती ऐसे उस महासागरके उग्र दृश्यको देखकर वानरगण भयभीत हुए; और प्रत्येकके मुखसे यह शब्द निकलने लगा कि अब क्या किया जाय ॥ २४ ॥ अंगदादि वानर यथार्थमें महापराक्रमी थे; परन्तु यहांपर क्या करैं ?—सब जने चिन्ताग्रसित होकर समुद्रके किनारेपर

सीताभगवतीमायाजनसंमोहकारिणी ॥ लक्ष्मणोभुवनाधारःसाक्षाच्छेषःफणीश्वरः ॥ १७ ॥ ब्रह्मणाप्रार्थिताःसर्वेरक्षोगणविनाशने ॥ माया
मानुषभावेनजातालोकैकरक्षकाः ॥ १८ ॥ वयंचपार्षदाःसर्वेविष्णोर्वैकुंठवासिनः ॥ मनुष्यभावमापन्नेस्वेच्छयापरमात्मनि ॥ १९ ॥
वयंवानररूपेणजातास्तस्यैवमायया ॥ वयंतुतपसापूर्वमाराध्यजगतांपतिम् ॥ २० ॥ तेनैवानुगृहीताःस्मःपार्षदत्वमुपागताः ॥ इदानी
मपितस्यैवसेवांकृत्वैवमायया ॥ २१ ॥ पुनर्वैकुंठमासाद्यसुखंस्थास्यामहेवयम् ॥ इत्यंगदमथाश्वास्यगताविंध्यंमहाचलम् ॥ २२ ॥
विचिन्वंतोऽथशनकैर्जानकींदक्षिणांबुधेः ॥ तीरेमहेंद्राख्यगिरेःपवित्रंपादमाययुः ॥ २३ ॥ दृष्ट्वासमुद्रंदुष्पारमगाधंभयवर्धनम् ॥ वानरा
भयसंत्रस्ताःकिंकुर्मइतिवादिनः ॥ २४ ॥ निषेदुरुदधेस्तीरेसर्वेचिंतासमन्विताः ॥ मंत्रयामासुरन्योन्यमंगदाद्यामहाबलाः ॥ २५ ॥

बैठे । तिस समय उन लोगोंमें परस्पर यह सलाह हुई ॥ २५ ॥ 'अहो ! उस गुहामें फिरते २ हमको एक मास वीत गया; आजतक रावण नहीं दिखाई दिया न जनककुमारी जानकीजी देख पड़ी ॥ २६ ॥ सुग्रीवके दंडका नियम बड़ा तीव्र है वह हमको निःसंदेह मार डालेगा ! सुग्रीवके हाथों मरनेसे प्रायोपवेशन[1] करनेसे हमारा अधिक कल्याण है ॥ ' २७ ॥ इसके उपरान्त सबने यह निश्चय करकै वहांपर जिधर तिधर कुश विछाये; और मरनेका निर्धार करकै सबही वहाँपर बैठे ॥ २८ ॥ इतनेहीमें एक गृध्र महेन्द्र पर्वतकी गुफासे बाहर निकलकर हौले २ वानरोंके समीप आया; उसका शरीर पर्वतके समान प्रचंड था ॥ २९ ॥ सर्व बड़े २ वानरोंको प्रायोपवेशनका संकल्प किये बैठे हुए देखकर धी

भ्रमतामेवनोमासोगतोऽत्रैवगुहांतरे ॥ नदृष्टोरावणोवाद्यसीतावाजनकात्मजा ॥ २६ ॥ सुग्रीवस्तीक्ष्णदंडोऽस्मान्निहंत्येवनसंशयः ॥
सुग्रीववधतोऽस्माकंश्रेयःप्रायोपवेशनम् ॥ २७ ॥ इतिनिश्चित्यतत्रैवदर्भानास्तीर्यसर्वतः ॥ उपाविवेशुस्तेसर्वेमरणेकृतनिश्चयाः॥२८॥
एतस्मिन्नंतरेतत्रमहेंद्राद्रिगुहांतरात् ॥ निर्गत्यशनकैरागाद्गृध्रःपर्वतसन्निभः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाप्रायोपवेशेनस्थितान्वानरपुंगवान् ॥ उवा
चशनकैर्गृध्रःप्राप्तोभक्षोऽद्यमेबहुः ॥ ३० ॥ एकैकशःक्रमात्सर्वान्भक्षयामिदिनेदिने ॥ श्रुत्वातद्गृध्रवचनंवानराभीतमानसाः ॥ ३१ ॥
भक्षयिष्यतिनःसर्वानसौगृध्रोनसंशयः ॥ रामकार्यंचनास्माभिःकृतंकिंचिद्धरीश्वराः ॥ ३२ ॥ सुग्रीवस्यापिचहितंनकृतंस्वात्मनासापि ॥
वृथानेनवधंप्राप्तागच्छामोयमसादनम् ॥ ३३ ॥ अहोजटायुर्धर्मात्मारामस्यार्थेमृतःसुधीः ॥ मोक्षंप्रापदुरावापंयोगिनामप्यरिंदमः ॥३४॥

रे २ [पर उनको अपने आपही सुनाई जाय] कहने लगा,– ' अच्छा हुआ ! आज हमको बहुत भोजन मिला ॥ ३० ॥ प्रतिदिन एक २ कर के मैं सबको खाऊंगा ' गृध्रके मुखसे निकले हुए शब्द कानमें पड़ते ही मनमें बन्दर डरगये, व परस्पर कहने लगे ॥ ३१ ॥ यह गृध्र निःसंदेह हमको खाजायगा ! । वानर वीरगण ! हम लोगोंने रामजीका कुछभी कार्य नहीं किया ॥ ३२ ॥ तैसेही सुग्रीवका अथवा अपनाभी कोई हित नहीं किया । इस गृध्रके हाथसे विनाकारणके मरकर हम यमलोकको जाँयगे ! ॥ ३३ ॥ अहो ! जटायु कितना धार्मिक व सुबुद्धिमा

---

[1] ऐसा संकल्प करना कि, मरण होनेतक कुछ न खाया पिया जायगा ।

न्‌था, उसने शत्रु [रावण] का दमन किया । अंतको रामकार्यमें मृत्यु होनेके कारण उसको वह मोक्षपद प्राप्तहुआ जो योगीजनोंके वास्ते दुर्लभ है ! ॥ ३४ ॥ इसप्रकार वानरोंके कहे हुए ‘ जटायु ’ अक्षर बोले वाक्यको सुनकर सम्पाति गीध कहने लगा कि “ हेवानरगण ! तुम कौन हो मेरे भ्राताका (जटायु) नाम लेकर तुममें परस्पर बातें हो रही हैं, इसलिये मुझे ऐसा मालूम होता है, कि मेरे कानोंमें अमृत वर्ष रहा है तुम बड़े सज्जन जान पड़ते हो । बोलो हे श्रेष्ठवानरो ! मुझसे तुमको भय नहीं होगा ” ॥ ३५ ॥ धीरजके यह वचन सुनकर वानर मंडलीके अगुए श्रीमान्‌ अंगदजी उठे व गृध्रके निकट जायकर उस्से कहनेलगे हे गृध्रराज ! दशरथजीके पुत्र सर्व सम्पत्तियोंसे युक्त श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजीके साथ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अपनी भार्या सीताके सहित महावनमें फिरते रहे; उनकी भार्या महासाध्वी सीताको दुष्ट रावणने चुरा लिया

संपातिस्तुतदावाक्यंश्रुत्वावानरभाषितम् ॥ केवायूयंममभ्रातुःकर्णपीयूषसंनिभम् ॥ ३५ ॥ जटायुरितिनामाद्यव्याहरंतःपरस्परम् ॥ उच्यतांवोभयंमाभून्मत्तःप्लवगसत्तमाः ॥ ३६ ॥ तमुवाचांगदःश्रीमानुत्थितोगृध्रसन्निधौ ॥ रामोदाशरथिः श्रीमाँल्लक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ ॥ ३७ ॥ सीतयाभार्ययासार्धंविचचारमहावने ॥ तस्यसीताहृतासाध्वीरावणेनदुरात्मना ॥ ३८ ॥ मृगयांनिर्गतेरामेलक्ष्मणेचहृतावलात् ॥ रामरामेतिक्रोशंतीश्रुत्वागृध्रःप्रतापवान् ॥ ३९ ॥ जटायुर्नामपक्षींद्रोयुद्धंकृत्वासुदारुणम् ॥ रावणेनहतोवीरोराघवार्थमहावलः ॥ ४० ॥ रामेणदग्धोरामस्यसायुज्यमगमत्क्षणात् ॥ रामःसुग्रीवमासाद्यसख्यंकृत्वाग्निसाक्षिकम् ॥ ४१ ॥

॥ ३८ ॥ जब राम, लक्ष्मणजी शिकार खेलनेको आश्रमसे बाहर गये; तौ वह अवसर देखकर वह दुष्ट बलपूर्वक जानकीको लेचला, तब वह जानकीजी ‘ राम ! राम ! ’ ऊंचे स्वरसे कह रहीथी । उस शब्दको सुनकर प्रतापवान् गृध्र ॥ ३९ ॥ पक्षियोंके राजा जटायुनें श्रीरामचंद्रजीके लिये रावणसे घोर युद्ध किया । वास्तवमें जटायु महापराक्रमी और वीर था, परन्तु रावणके हाथसे मृत्युको प्राप्त हुआ, उसकी मृत्यु रामजीके कार्यमें हुई ॥ ४० ॥ सीताजीके वरदानसे थोड़ी देरतक प्राण धारण करके जटायु रामजीके दर्शनोंकी वाट देखताथा; इतनेमें रामजीने आकर उसका अग्निसंस्कार किया । पीछे उस जटायुने एकक्षणंभरमें श्रीरामचंद्रजीकी सायुज्यमुक्तिको प्राप्त कर लिया । फिर

अग्निको साक्षी करकै श्रीरामजीने सुग्रीवसे मित्रता की ॥ ४१ ॥ और सुग्रीवके कहनेसे अति असह्य बलवाले वालिका संहार श्रीरामचंद्रजीने किया; महाबलवान रामजीने सुग्रीवको वानरोंका राज्य दिया ॥ ४२ ॥ इसके आगे महापराक्रमी; सुग्रीवने हमारे समान बड़े २ शक्तिमान वानरोंके समूहको सीताकी सुधिके लिये पठाया ॥ ४३ ॥ और चलते हुए उन्होंने हमसे भलीभाँति कहा; कि महीने भरसे पहले पलटकर आओ; नहीं तौ तुम्हारा प्राण लिया जायगा; उनकी आज्ञाके अनुसार हम घूमने लगे। इस वनमें एक गुफा है उसमें हम गये ॥ ४४ ॥ वहींपर महीना बीत गया; अबतक हमको सीताजी और रावणका पता नहीं लगा है! लौट जानेसे प्राण बचनेकी आशा नंहीं—इसकारण मरनेको प्रायोपवेशनका संकल्प करकै क्षार (खारी) समुद्रके किनारेपर बैठे हैं ॥ ४५ ॥ हे पक्षिराज! जो तुम्हैं सुन्दरी सीताजीका समाचार ज्ञातहो तौ हमें बताओ कि वह कल्याणरूप रामकी भार्या कहां हैं" अंगदजीके यह वचन सुनकर संपातिके अंतःकरणमें आनंद उत्पन्न हुआ ॥ ४६ ॥ संपाति बोला;—वानरश्रेष्ठगण! जटायु मुझे बड़ा प्यारा था; आज मैंने हजारों वर्षोंके पीछे अपने प्यारे भ्राताका समाचार सुना है ॥ ४७ ॥ हेवानर वीरगण! मैं वाणीसे तुम्हारी बहुत सहायता करूंगा, मुझे अपने भ्राताको जल देना है, इसकारण मुझे जलके समीप ले चलो (इस बातसे यह सूचित होता है कि मृगादि पक्षियोंकोभी ज्ञानके अनुसार धर्मका अधिकार है) ॥ ४८ ॥ इसकें पीछे तुम्हारी कार्यकी सिद्धिके

सुग्रीवचोदितोहत्वावालिनंसुदुरासदम् ॥ राज्यंददौवानराणांसुग्रीवायमहाबलः ॥ ४२ ॥ सुग्रीवःप्रेषयामाससीतायाःपरिमार्गणे ॥ अस्मान्वानरवृन्दान्वैमहासत्वान्महाबलः ॥ ४३ ॥ मासादर्वाङ्निवर्तध्वंनोचेत्प्राणान्हरामिवः ॥ इत्याज्ञयाभ्रमंतोऽस्मिन्वनेगह्वरमध्यगाः ॥ ४४ ॥ गतोमासोनजानीमःसीतांवारावणंचवा ॥ मर्तुंप्रायोपविष्टाःस्मस्तीरेलवणवारिधेः ॥ ४५ ॥ यदिजानासिहेपक्षिन्सीतांकथयनःशुभाम् ॥ अंगदस्यवचःश्रुत्वासंपातिर्हृष्टमानसः ॥ ४६ ॥ उवाचमत्प्रियोभ्राताजटायुःप्लवगेश्वराः ॥ बहुवर्षसहस्रांतेभ्रातृवार्ताश्रुतामया ॥ ४७ ॥ वाक्साहाय्यंकरिष्येऽहंभवतांप्लवगेश्वराः ॥ भ्रातुःसलिलदानायनयध्वंमांजलांतिकम् ॥ ४८ ॥ पश्चात्सर्वंशुभंवक्ष्येभवतांकार्यसिद्धये ॥ तथेतिनिन्युस्तेतीरंसमुद्रस्याविहंगमम् ॥ सोपितत्सलिलेस्नात्वाभ्रातुर्दत्त्वाजलांजलिम् ॥ ४९ ॥

लिये मैं सब वृत्तान्त भलीभाँति कह सुनाऊंगा; यह सुनकर सब वानर 'अच्छा' कह सम्पातिको समुद्रके किनारे लेगये उस संपातिनेभी स्नान करके अपने भ्राता जटायुको जलाञ्जली दी ॥ ४९ ॥ इसके पीछे वह सब वानर उसको उसके स्थानमें लेआये, वहाँपर बैठकर सम्पातिने वानरोंको अत्यन्त आनंद उपजानेवाली वार्ता कही ॥ ५० ॥ कि हे वानरो! त्रिकूट पर्वतकी चोटीपर लंकानामक नगरीहै । वहाँपर सीताजी अशोकवनमें राक्षसोंके आश्रयसे भलीभांति रक्षितहैं ॥५१॥ तुम पूछोगे कि वह लंका कहां है सो मैं कहताहूं सुनो । वह लंकानगरी समुद्रके बीचमें यहांसे १०० सौ योजन [४०० कोश] दूर है। वहाँपर निःसन्देह मैं सीताजीको देखताहूं ॥ ५२ ॥ कारण कि मैं गीधहूं, इसलिये मेरी दृष्टि दूर पहुँचसकती है, इसमें कुछ संदेह मत करियो, जो कोई सौयोजन फांदवाले समुद्रको लांघजाय ॥ ५३ ॥ तौ वह जानकीजीको देख समाचार लेकर पीछे

पुनःस्वस्थानमासाद्यस्थितोनीतोहरीश्वरैः ॥ संपातिःकथयामासवानरान्परिहर्षयन् ॥ ५० ॥ लंकानामनगर्यास्तेत्रिकूटगिरिमूर्धनि ॥ तत्राशोकवनेसीताराक्षसीभिःसुरक्षिता ॥ ५१ ॥ समुद्रमध्येसालंकाशतयोजनदूरतः ॥ दृश्यतेमेनसंदेहःसीताचपरिदृश्यते ॥ ५२ ॥ गृध्रत्वाद्दूरदृष्टिर्मेनात्रसंशयितुंक्षमम् ॥ शतयोजनविस्तीर्णसमुद्रंयस्तुलंघयेत् ॥ ५३ ॥ सएवजानकींदृष्ट्वापुनरायास्यतिध्रुवम् ॥ अहमेवदुरात्मानंरावणंहंतुमुत्सहे ॥ ५४ ॥ भ्रातृहंतारमेकाकीकिंतुपक्षविवर्जितः ॥ यतध्वमतियत्नेनलंघितुंसरितांपतिम् ॥ ततोहंतारघुश्रेष्ठोरावणंराक्षसाधिपम् ॥ ५५ ॥ उल्लंघ्यसिंधुंशतयोजनायतंलंकांप्रविश्याथविदेहकन्यकाम् ॥ दृष्ट्वासमाभाष्यचवारिधिंपुनस्तर्तुंसमर्थःकतमोविचार्यताम्॥५६॥इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेकिष्किंधाकांडेसप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥

आसकैगा, मैं अपने भ्राताके मारनेवाले, उस दुष्टअन्तःकरणवाले रावणका संहारकरनेमें शक्तिमानहूं, परंतु क्या करूं ? एक तौ अकेला, दूसरे मेरे पंख नहीं इस्से यह सिद्ध होताहै कि अतिबलवान होनेपरभी मैं पंखहीन हूं, इसलिये उड़नेमें आसक्ति दिखाई ॥ ५४ ॥ हे वानरो ! इसमहासागरको अति यत्नसे लांघनेके लिये पुरुषार्थसे तुम उपाय करो, फिर रघुकुलमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी राक्षसोंके राजा रावणको मार डालैंगे ॥ ५५ ॥ इसलिये सौ योजन विस्तारवाले समुद्रको लांघकर, लंकामें जाय; जनककी पुत्रीको देख उनके साथ भाषणकर फिर समुद्रके पार होकर यहाँ आवें; ऐसा तुममेंसे कौन शक्तिमानहै ? इससमय पहले यह विचारकरो ॥ ५६ ॥ इ०श्रीम० उमा० किष्किन्धाकाण्डे भाषाटीकायां सप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥

सम्पातीने वानरोंके आगे चंद्रमा मुनिका कहाहुआ ज्ञान कहा। श्रीमहादेवजी बोले, यह वचन सुनकर आश्चर्य होकर सब वानर सम्पातीसे पूछने लगे, कि हे भगवन्! अपना सब वृत्तान्त पहलेसे कहो ॥ १ ॥ यह सुनकर संपाती अपना पहला कियाहुआ वृत्तान्त कहनेलगा कि, मैं और जटायु जिससमय दोनों जवान थे तिससमय ॥२॥ अपनी२ सामर्थ्य का हम दोनों जनोंको बड़ा गर्व था; एक समय हमारे मनमें आया कि देखैं, हममें कितना बल है। इसका प्रमाण यहहै कि आकाशमें फिरते२ सूर्य मण्डलतक चलेजांय; ऐसा विचार ठहराय हम ऊँचे उड़ने लगे। तरुणाईके मदकरके धूपका किसीने विचार नहीं किया ॥ ३ ॥ हम कई हजारयोजन ऊंचे चलेगये, वहाँ सूर्यकी तीव्र गरमीसे जटायुका शरीर तपने लगा; छोटा भाई होनेसे जटायुके ऊपर मुझे दया उत्पन्न हुई; इसकारण मैं उसको अपने पंखोंसे ढककर मोहसे ॥ ४ ॥ स्थितहुआ सूर्यकी किरणोंसे मेरे पंख जल गये; फिर मैं विन्ध्यपर्वतके शिखरपर गिरपड़ा। हेवानर वीरगण! इतने ऊंचेसे गिरनेके कारण मुझे मूर्च्छा आगई ॥ ५ ॥ इसके उपरांत मैं तीन दिनमें चैतन्य हुआ; पंख जलजानेसे मुझे भ्रमहुआ कि मैं कौनदेशमें हूं; यह पर्वतोंके शिखर कौनसे हैं यह कुछभी नहीं जानता था ॥ ६ ॥ अनन्तर धीरे धीरे नेत्र उघाड़े; तौ वहांपर मुझे एक पुण्यमय आश्रम दिखाई दिया। मन्दगतिसे चलताहुआ मैं उस आश्रमके निकट गया ॥ ७ ॥ वहांपर चंद्रमा नामक एक पूजनीय ऋषि रहतेथे; मेरी स्थिति देखकर उनको बहुत आश्चर्य हुआ; उन्होंने मुझसे कहा; " सम्पाते! आज यह क्या हुआ? तेरा

अथतेकौतुकाविष्टाःसंपातिंसर्ववानराः ॥ पप्रच्छुर्भगवन्ब्रूहिस्वमुदंतंत्वमादितः ॥ १ ॥ संपातिःकथयामासस्ववृत्तांतंपुराकृतम् ॥ अहंपुराजटायुश्चभ्रातरौरूढयौवनौ ॥ २ ॥ बलेनदर्पितावावांबलजिज्ञासयाखगौ ॥ सूर्यमंडलपर्यंतंगंतुमुत्पातितौमदात् ॥ ३ ॥ बहुयोजनसाहस्रंगतौतत्रप्रतापितः ॥ जटायुस्तंपरित्रातुंपक्षैराच्छाद्यमोहतः ॥ ४ ॥ स्थितोऽहंरश्मिभिर्दग्धपक्षोऽस्मिन्विंध्यमूर्धनि ॥ पतितोदूरपतनान्मूर्च्छितोऽहंकपीश्वराः॥ ५ ॥ दिनत्रयात्पुनःप्राणसहितोदग्धपक्षकः ॥ देशंवागिरिकूटान्वानजानेभ्रांतमानसः ॥६॥ शनैरुन्मील्यनयनेदृष्ट्वातत्राश्रमंशुभम् ॥ शनैःशनैराश्रमस्यसमीपंगतवानहम् ॥ ७ ॥ चंद्रमानाममुनिराड्दृष्ट्वामांविस्मितोऽवदत् ॥ संपातेकिमिदंतेऽद्यविरूपंकेनवाकृतम् ॥ ८ ॥

शरीर किसने विरूप किया; ॥ ८ ॥ मैं तेरी पहली स्थिति जानताहूं कि तू अत्यन्त बलवान् था। तेरे पंख कैसे जलगये ? तुझे भलालगै तौ अपना सर्व वृत्तान्त मुझको सुनादे" ॥ ९ ॥ तब मैंने उन मुनिको अपना सर्व वृत्तांत सुनायकर अत्यंत दुःखी हो कहा;"हे महाराज! अग्निके संताप करके मैं भीतरसे जल रहाहूं ॥ १० ॥ विनापंखोंके मैं कैसे जीवन धारण कर सकताहूं ? " मुनिने मेरे यह वचन सुने; और मेरे शरीरपर दृष्टि फिराई; जो दया करके उनके नेत्रोंमें आंसू आगये; उन्होंने मुझसे कहा ॥ ११ ॥ "हे वत्स! प्रथम सुनले कि मैं क्या कहताहूं; फिरजो इच्छा हो सोकरना। अरे! देह और उसके मूलकारण कर्मोंका नाश विना ब्रह्मज्ञानके नहीं होता; दुःख भोगनेवाले और उसमें मोह करानेवाली यह दोनों वस्तुहैं; देख, दुःख उपजानेका कारण यह शरीरहै, और शरीर कर्मसे उत्पन्न हुआहै ॥ १२ ॥ पुरुष देहपर अहं कहिये मैं [अहंता] ममताकी बुद्धि रखता है। इस कारण उसके हाथसे सदाहीकर्म बनते रहतेहैं। यह अहंकार अनादि[बहुत प्राचीनका] होनेसे जड़ अविद्या करके उत्पन्नहुआ अर्थात् जड़है ॥ १३ ॥ जैसे लोहेका गोला वास्तवमें अग्नि नहीं, परन्तु वह [गोला] तपकर लाल होनेसे अग्निके समान दीखने लगता व अग्निके दाहादिकार्य करसक्ता है वैसेही यह अहंकार चैतन्यके प्रतिबिम्बसे नित्य युक्त रहताहै, देहकी इसमें [अहंकारसे] तादात्म्य [एकरूपता] होनेसे देह चैतन्ययुक्त होताहै ॥ १४ ॥ तिस अहंकारके प्रभावसे आत्माको ऐसीबुद्धि होतीहै कि देह मैंहूं। इसकारण उसको सुख व दुःखादिका प्राप्त करानेवाला संसार अथवा जन्म मरण प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥ इसप्रकार निर्विकार आत्माको अहंकारादिके साथ मिथ्या तादात्म्यपनसे 'मैं देहहूं' अथवा 'उस देहसे पृथक्हूं, कर्म

जानामित्वामहंपूर्वमत्यंतंबलवानसि ॥ दग्धौकिमर्थंतेपक्षौकथ्यतांयदिमन्यसे ॥ ९ ॥ ततःस्वचेष्टितंसर्वंकथयित्वातिदुःखितः ॥ अब्रुवं मुनिशार्दूलंदह्येऽहंदाववह्निना ॥ १० ॥ कथंधारयितुंशक्तोविपक्षोजीवितंप्रभो ॥ इत्युक्तोऽथमुनिर्वीक्ष्यमांदयार्द्रविलोचनः ॥ ११ ॥ शृणुवत्सवचोमेऽद्यश्रुत्वाकुरुयथेप्सितम् ॥ देहमूलमिदंदुःखंदेहःकर्मसमुद्भवः ॥ १२ ॥ कर्मप्रवर्ततेदेहेऽहंबुद्ध्यापुरुषस्याहि ॥ अहंकारस्त्वनादिःस्यादविद्यासंभवोजडः ॥ १३ ॥ चिच्छाययासदायुक्तस्तप्तायःपिंडवत्सदा ॥ तेनदेहस्यतादात्म्याद्देहश्चेतनवान्भवेत् ॥ १४ ॥ देहोऽहमितिबुद्धिःस्यादात्मनोऽहंकृतेर्बलात् ॥ तन्मूलएषसंसारःसुखदुःखादिसाधकः ॥ १५ ॥ आत्मनोनिर्विकारस्यमिथ्यातादात्म्यतः सदा ॥ देहोऽहंकर्मकर्ताहमितिसंकल्प्यसर्वदा ॥ १६ ॥

का करनेवालाहूं ' ऐसीपुरुषकी बुद्धि होतीहै, परन्तु किसीको पहले कियेहुए पुण्यके योगसे ऐसी देहाकार बुद्धि नभी रहै, परन्तु मैं कर्म करताहूं, ऐसी बुद्धि रहतीहीहै । और मैं देहहूं, कर्मका करनेवालाहूं, ऐसे संकल्पसे परवश हुआ ॥ १६ ॥ जीव कर्मोंको करताहै । तैसेही वह कर्मके फलरूप सुख दुःखों करके निरंतर अपने आप पुण्य पापात्मकहो, ऊंचे नीचेके लोकोंमें भ्रमण करता रहताहै ॥ १७ ॥ मैंने यज्ञ दानादि बहुतसे पुण्य कार्य कियेहैं, इसकारण निश्चय मैं स्वर्गमें जायकर सुख भोगूंगा ऐसे संकल्प कराकरताहै। तैसेही मैं बड़ा पुण्यवान्‌हूं, ऐसेअध्याससे वह स्वर्गमें रहकर बहुत समयतक बड़े२सुख भोगताहै,उन पुण्योंके क्षीण होनेपर कर्मकी प्रेरणासे गिरनेकी इच्छा न रखता हुआ जीव नीचे गिरती समय

जीवःकरोतिकर्माणितत्फलैर्बद्धचतेऽवशः॥ऊर्ध्वाधोभ्रमतेनित्यंपापपुण्यात्मकःस्वयम्॥१७॥ कृतंमयाधिकंपुण्यंयज्ञदानादिनिश्चितम् ॥
स्वर्गंगत्वासुखंभोक्ष्येइतिसंकल्पवान्भवेत् ॥ १८ ॥ तथैवाध्यासतस्तत्रचिरंभुक्त्वासुखंमहत् ॥ क्षीणपुण्यःपतत्यर्वागनिच्छन्कर्मचोदि
तः ॥ १९ ॥ पतित्वामंडलेचेंदोस्ततोनीहारसंयुतः ॥ भूमौपतित्वाव्रीह्यादौतत्रस्थित्वाचिरंपुनः ॥ २० ॥ भूत्वाचतुर्विधंभोज्यंपुरुषै
र्भुज्यतेततः ॥ रेतोभूत्वापुनस्तेनऋतौस्त्रीयोनिसिंचितः ॥ २१ ॥ योनिरक्तेनसंयुक्तंजरायुपरिवेष्टितम् ॥ दिनेनैकेनकललंभूत्वारूढत्व
माप्नुयात् ॥ २२ ॥ तत्पुनःपंचरात्रेणबुद्बुदाकारतामियात् ॥ सप्तरात्रेणतदपिमांसपेशित्वमाप्नुयात् ॥ २३ ॥ पक्षमात्रेणसापेशीरुधिरेण
परिप्लुता ॥ तस्याएवांकुरोत्पत्तिःपंचविंशतिरात्रिषु ॥ २४ ॥

॥१८॥१९॥प्रथम वह चन्द्रमंडलपर गिरताहै, वहांसे किरणोंके द्वारा हिमकिरणोंके साथ भूमिपर जाता है; फिर वहांसे व्रीहि इत्यादि धान्यादिकोंमें बहुत दिनतक रहता है ॥ २०॥ उन धान्योंके चार प्रकारके भोज्य पदार्थ होते हैं,तिनमेंसे एकमें वह रहता है; पुरुष उस पदार्थको भक्षण करतेहैं; उस अन्नरसका फिर वीर्य होता है, ऋतुकालमें पुरुष उस वीर्यको स्त्रीकी योनिमें डालते हैं ॥ २१ ॥ फिर वह योनिके रुधिरसे मिलजाकर एक दिनमें सूक्ष्म झिल्लीसे लिपटा हुआ अधिक दृढ़ होजाता है ॥ २२ ॥ फिर पांच रात्रि जानेपर वह बुद्बुदेके समान आकारवाला होता है; सात रात्रि वीतने पर उसका मांसमय पेशी [अंडाकार] बनतीहै ॥ २३ ॥ आगे पंद्रह दिनतक वह पेशी खूनमें भरी रहती है । इसके उपरान्त

पचीस रात्रि होनेपर उसमें अंकुर उत्पन्न होने लगते हैं ॥ २४ ॥ क्रमसे गरदन, मस्तक, कंधे, पीठ, रीढ और पेट; इन पांच अलग २ अंगोंकी अंकुर पहले मासके अंतमें उत्पन्न होते हैं ॥ २५ ॥ हाथ, पाँव, कमर, पसली, घुटुए, यह क्रमसे दूसरे मासमें उत्पन्न होते हैं; इसमें अन्यथा नहीं होता ॥ २६ ॥ तीन महीनेके अनुक्रमसे अंगकी संधियां [जोड़] तैयार होते हैं; चौथे महीनेमें अनुक्रमसे सर्व उँगलियां उत्पन्न होती हैं; पांचवे महीनेमें नाक, कान, और आंखोंके छेद उत्पन्न होते हैं; पांचवेंही मासमें दांत, नख, गुदा और शिश्न [लिंग] उत्पन्न होते हैं ॥ २७ ॥ ॥२८॥ छठे मासके प्रारंभमें कानोंके छेद स्पष्ट दिखलाई देते हैं । शिश्न [लिंग] या स्त्री पुरुषोंके जिसके २ उपस्थेन्द्रिय और नाभि है; यह

ग्रीवाशिरश्चस्कंधश्चपृष्ठवंशस्तथोदरम् ॥ पंचधांगानिचैकैकंजायंतेमासतःक्रमात् ॥ २५ ॥ पाणीपादौतथापार्श्वःकटिर्जानुस्तथैवच ॥
मासद्वयात्प्रजायंतेक्रमेणैवचनान्यथा ॥ २६ ॥ त्रिभिर्मासैःप्रजायंतेअंगानांसन्धयःक्रमात् ॥ सर्वांगुल्यःप्रजायंतेक्रमान्मासचतुष्टये॥२७॥
नासाकर्णौचनेत्रेचजायंतेपंचमासतः ॥ दंतपंक्तिर्नखागुह्यंपंचमेजायतेतथा ॥ २८ ॥ अर्वाक्षण्मासतश्छिद्रंकर्णयोर्भवातिस्फुटम् ॥ पायु
मेंढ्रमुपस्थंचनाभिश्चापिभवेन्नृणाम् ॥ २९ ॥ सप्तमेमासिरोमाणिशिरःकेशास्तथैवच ॥ विभक्तावयवत्वंचसर्वंसंपद्यतेऽष्टमे ॥ ३० ॥ जठ
रेवर्धतेगर्भःस्त्रियाएवंविहंगम ॥ पंचमेमासिचैतन्यंजीवःप्राप्नोतिसर्वशः ॥ ३१ ॥ नाभिसूत्राल्परंध्रेणमातृभुक्तान्नसारतः ॥ वर्धतेगर्भगः
पिंडोनम्रियेतस्वकर्मतः ॥ ३२ ॥ स्मृत्वासर्वाणिजन्मानिपूर्वकर्माणिसर्वशः ॥ जठरानलतप्तोऽयमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ३३ ॥ नानायो
निसहस्रेषुजायमानोऽनुभूतवान् ॥ पुत्रदारादिसंबंधंकोटिशःपशुबांधवान् ॥ ३४ ॥

प्राणीके अंग छठे मासमें उत्पन्न होते हैं ॥ २९ ॥ सातमें मासमें अंगपर रोमावली और मस्तकपर केश उत्पन्न होते हैं। सर्व अंग अलग २ स्पष्ट समझनेके योग्य आठवें मासमें तैयार होते हैं ॥ ३० ॥ हे पक्षिराज ! इस प्रकार स्त्रीके उदरमें गर्भ बढ़ता रहता है । पांचमें मासमें जीवको चेतना शक्ति प्राप्त होती है ।[इसका बोध होता है कि मैं कहांहूं] ॥ ३१ ॥ गर्भमें रहा हुआ वह पिंड माताके खाये हुए अन्नके रससे नाभिके नालमें हुए महीन छिद्रके द्वारा उतरे हुए रसके आहारसे बढ़ता है, परन्तु अपने कर्मके योगसे मरण नहीं पाता ॥ ३२ ॥ वह जीव अपने किये हुए पहले जन्मके किये हुए सर्व कर्मोंको याद करता है; तथा जठराग्निसे तपाया हुआ जीव इस प्रकार कहता है ॥ ३३ ॥ कि " पहले मैंने हजारों

योनियोंमें अनेक प्रकारके जन्म लेकर स्त्री पुत्रादिका सम्बन्ध और बान्धवोंका तथा करोड़ों वार पशुगणोंका अनुभव किया है ॥ ३४ ॥ इसी भाँति कुटुम्बके पालन पोषणकी आसक्तिसे न्याय और अन्याय करकै धन उपार्जनं किया; परन्तु मैंने दुर्भाग्यसे किसी दिन स्वप्नमें भी विष्णु भगवनका चिंतवन नहीं किया ॥ ३५ ॥ इस कारण अब मैं गर्भवासका बड़ाभारी दुःख भोग रहाहूं; तैसेही इस क्षणमें नाश होनेवाली देहके विषय अचल व स्तुतिके समान इसको अपना मानकर मारे तृष्णाके भँवा करताहूं ॥ ३६ ॥ तैसेही मैं कुकार्य करता रहा अपने हितका [आत्मप्राप्तिका] कोई उपाय नहीं किया; इस्सेही अपने कर्मोंके अनुसार आजतक मुझे अनेक प्रकारके दुःख भोगने पडे; और अब यह दशा प्राप्त हुई है; ॥ ३७ ॥ अब इस नरकके समान गर्भवाससे प्रभु मुझे कब निकालोगे ? जिस समय प्रभु इस असह्य दुःखसे मुझे निकालेंगे तबसे आरंभ

कुटुंवभरणासक्त्यान्यायान्यायैर्धनार्जनम् ॥ कृतंनाकरवंविष्णुचिंतांस्वप्नेऽपिदुर्भगः ॥ ३५ ॥ इदानींतत्फलंभुंजेगर्भदुःखंमहत्तरम् ॥
अशाश्वतेशाश्वतवद्देहतृष्णासमन्वितः ॥ ३६ ॥ अकार्याण्येवकृतवान्नकृतंहितमात्मनः ॥ इत्येवंवहुधादुःखमनुभूयस्वकर्मतः ॥३७॥
कदानिष्क्रमणंमेस्याद्गर्भान्निरयसंनिभात् ॥ इतऊर्द्ध्वंनित्यमहंविष्णुमेवानुपूजये ॥ ३८ ॥ इत्यादिचिंतयञ्जीवोयोनियंत्रप्रपीडितः ॥
जायमानोऽतिदुःखेननरकात्पातकीयथा ॥ ३९ ॥ पूतिव्रणान्निपतितःकृमिरेषइवापरः ॥ ततोवाल्यादिदुःखानिसर्वेएवंविभुंजते॥४०॥
त्वयाचैवानुभूतानिसर्वत्रविदितानिच ॥ नवर्णितानिमेगृध्रयौवनादिषुसर्वतः ॥ ४१ ॥ एवंदेहोऽहमित्यस्मादभ्यासान्निरयादिकम् ॥
गर्भवासादिदुःखानिभवंत्यभिनिवेशतः ॥ ४२ ॥

करके मैं नित्य विष्णुजीका पूजन करूंगा " ॥ ३८ ॥ इत्यादि विचार जीवके मनमें आते जाते हैं; जब वह जीव योनियंत्रमें पीड़ाको प्राप्त करता हुआ जन्म लेता है; तिस समय पापी जीव नरकसे निकलती समय अति दुःख पावै है ॥३९॥ या दुर्गन्धिसे भरे हुए फोड़ेसे [योनिरूप क्षतसे] कोई कीड़ा निकल पड़ता है; ऐसेही वह जीव योनिमेंसे निकलताहै । फिर बाल्यादि अवस्थाओंके दुख पाता है; इस प्रकारसे जन्म लेनेवाले प्रत्येक प्राणीको क्लेश भोगने पड़ते हैं ॥ ४० ॥ हे गृध्र ! तुमने युवा अवस्थामें जो दुःख पाये हैं; उन दुःखोंको सर्व लोक जानते हैं; इसलिये मैं उनका यहांपर वर्णन नहीं करता ॥ ४१ ॥ 'मैं देहहूं' इस प्रकारका अभ्यास नित्य करनेसे 'मैं कर्त्ताहूं' ऐसा अभिमान होता जाता है; और अभिमान

का परिणाम नरकादि यातना व गर्भवासादि दुःख भोगने पड़ते हैं॥४२॥ इस कारण मूल व सूक्ष्म दोनों देहोंसे अलग २ प्रकृतिसे परे आत्माको जानकर देहादिके विषयसे 'यहमैं' और 'यह मेरा' ऐसी बुद्धि त्याग करकै यह सब जगत् परमात्ममय है; इस प्रकारसे ज्ञानवान् होना चाहिये॥४३॥ आत्माको जाग्रत, स्वप्न, व सुषुप्ति; यह तीनों अवस्था नहीं हैं, इसका स्वरूप; सत्य ज्ञानादि; उपनिषदोंके वर्णन करने अनुसार; [तीनों कालमें नष्ट न होनेवाला होनेसे ज्ञानमय व आनंदमय] है उसमें मायासे उत्पन्न होनेवाले दोष नहीं हैं; व ज्ञान स्वरूप और नित्य शान्त है; ऐसा ध्यान करे ॥ ४४ ॥ चैतन्यमय आत्मस्वरूपका ज्ञान होनेपर; व अविद्यासे उत्पन्न होनेवाले; देहादिकोंमें; अहंता, ममता, रूप मोह नष्ट हुआ; फिर

तस्माद्देहद्वयादन्यमात्मानंप्रकृतेःपरम् ॥ ज्ञात्वादेहादिममतांत्यक्त्वात्मज्ञानवान्भवेत् ॥ ४३ ॥ जाग्रदादिविनिर्मुक्तंसत्यज्ञानादिलक्षणम् ॥ शुद्धंबुद्धंसदाशांतमात्मानमवधारयेत् ॥४४॥ चिदात्मनिपरिज्ञातेनष्टेमोहेऽज्ञसंभवे ॥ देहःपततुवारब्धकर्मवेगेनतिष्ठतु॥४५॥ योगिनोनहिदुःखंवासुखंवाऽज्ञानसंभवम् ॥ तस्माद्देहेनसहितोयावत्प्रारब्धसंक्षयः ॥ ४६ ॥ तावत्तिष्ठसुखेनत्वंधृतकंचुकसर्पवत् ॥ अन्यद्वक्ष्यामितेपक्षिञ्छृणुमेपरमंहितम् ॥ ४७ ॥ त्रेतायुगेदाशरथिर्भूत्वानारायणोऽव्ययः ॥ रावणस्यवधार्थायदंडकानागमिष्यति ॥ ॥ ४८ ॥ सीतयाभार्ययासार्धंलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ तत्राश्रमेजनकजांभ्रातृभ्यांरहितेवने ॥ ४९ ॥ रावणश्चोरवन्नीत्वालंकायांस्थापयिष्यति ॥ तस्याःसुग्रीवनिर्देशाद्वानराःपरिमार्गणे ॥ ५० ॥

देह गिरो, या प्रारब्ध कर्मके बलसे रहो ॥ ४५ ॥ तिस योगके मिल जानेसे अज्ञान करके उत्पन्न होनेवाले सुख या दुःख नहीं रहते इसकारण जबतक प्रारब्ध कर्मका नाश होवै ॥ ४६ ॥ तबतक कैंचली उतारने वाले सर्पके समान वर्तावकर। जबतक सांप कैंचलीको नहीं छोड़ता कि जबतक उसके त्यागनेका समय नहीं आता. हे सम्पाति! एक दूसरा तेरा परमहित करताहूं तू सुन॥ ४७ ॥ त्रेतायुगमें जगदाधार, निर्विकार, परमात्मा दशरथजीके पुत्र होकर रावणका वध करनेके लिये दंडकारण्यमें आवैंगे ॥ ४८ ॥ उनके साथ उनकी भार्या सीता और लक्ष्मणजीभी आवेंगे। वनके बीच जिस समय दोनों भ्राता आश्रममें नहोंगे, उस समय जानकीजीको ॥ ४९ ॥ रावण चोरके समान चुरा ले जायगा, और

लंकामें रक्खैगा सुग्रीवकी आज्ञासे वानर उनको ढूंढते २ ॥ ५० ॥ समुद्रके किनारे आवैंगे, इसमें कोई संदेह नहीं कि उनसे किसी कारण करकै तेरा समागम हो जायगा ॥ ५१ ॥ तिस समय तू उनको यथार्थ २ बतला देना कि जानकी कहां हैं। बस फिर तत्कालही तेरे दोनों नये पंख निकल आवैंगे ॥ ५२ ॥ इस प्रकार उन चंद्रनामक मुनिने मुझको समझाया. वे मुनि एक मुनिसमुदायके स्वामी थे। हे वानरो ! अब देखो ! मेरे यह दोनों अतिकोमल पंख निकलते हैं ॥ ५३ ॥ तुम्हारा भला हो, मैं अभी जाताहूं, यह निश्चय समझो कि सीताजी तुमको दिखाई देंगी। यह ठीक है कि समुद्र उतरकर जाना कठिन है, परन्तु पल्लीपार जानेका तुम यत्न करो ॥ ५४ ॥ हे वानरो ! संसारसमुद्र इतना विस्तार

आगमिष्यंतिजलधेस्तीरंतत्रसमागमः ॥ त्वयातैःकारणवशाद्भविष्यतिनसंशयः ॥ ५१ ॥ तदासीतास्थितिंतेभ्यःकथयस्वयथार्थतः॥ तदैवतवपक्षौद्वावुत्पत्स्येतेपुनर्नवौ ॥ ५२ ॥ संपातिरुवाच ॥ बोधयामासमांचंद्रनामामुनिकुलेश्वरः ॥ पश्यंतुपक्षौमेजातौनूतनावतिकोमलौ ॥५३॥ स्वस्तिवोऽस्तुगमिष्यामिसीतांद्रक्ष्यथनिश्चयम् ॥ यत्नंकुरुध्वंदुर्लंघ्यसमुद्रस्यविलंघने ॥ ५४ ॥ यन्नामस्मृतिमात्रतोऽपरिमितंसंसारवारांनिधिंतीर्त्वागच्छतिदुर्जनोऽपिपरमंविष्णोःपदंशाश्वतम् ॥ तस्यैवस्थितिकारिणस्त्रिजगतांरामस्यभक्ताःप्रियायूयंकिंनसमुद्रमात्रतरणेशक्ताःकथंवानराः ॥ ५५ ॥ इतिश्रीम०कि०अष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ गतेविहायसागृध्रराजेवानरपुंगवाः ॥ हर्षेणमहताविष्टाःसीतादर्शनलालसाः ॥ १ ॥

वाला है कि उसका पारही नहीं, परन्तु जिसका केवल नाम लेनेसेही कोई भी मनुष्य उस समुद्रके पारजाकर विष्णुजीके अत्युत्तम सनातन पदको जाता है; तिस त्रिलोकीनाथ रामचंद्रके तुम प्यारे भक्तहो; फिर क्या इस लौकिक समुद्रको तुम नहीं तर जाओगे ? अर्थात् तर जाओगे ॥ ५५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकांडे भाषाटीकायामष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥ पवनकुमार हनुमानजीका विशालरूप धरकर समुद्रके तीर जाना ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं—जब गृध्रराज [संपाति] आकाशमार्गमें उड़गया; समस्त वानरोंको जानकीजीकी सुधि लानेकी प्रबल इच्छाथी। संपातिके नये पंख उठे हुए देखकर उनको पूर्ण विश्वास होगया कि इसने जो जो कुछ कहा है वह सबही ठीक है । अर्थात् हमें सीताजीकी

सुधि मिल जायगी—इस पराकाष्ठाके आनंदसे उनका अंतःकरण भरगया ॥ १ ॥ इतनेमें उनकी दृष्टि समुद्रपर गई तौ उसमें बड़ी तरंगे उछल रही हैं। जिसका स्पर्श करना आकाशको पकड़नेके समान कठिन है, " जो नाके आधि जलचर जंतुओंके समूहसे भयंकर है ऐसे उस समुद्रका उग्र रूप वानरोंने देखा ॥ २ ॥ तब वे (वानर) परस्पर बोले;—कि किस प्रकार इसके पार जायाजाय ! " तिस मंडलीमेंसे अंगदजीने कहा हे वानर वीरगण ! सुनो ॥ ३ ॥ तुम अत्यन्त बलवान् व शूरहो; प्रत्येक्ने आजतक अनेक स्थानोंपर पराक्रम दिखाया है इससमय जो कोई समुद्रके पार जाकर राजाका कार्य करैगा ॥ ४ ॥ वह निःसंदेह सर्व वानरोंका प्राणदाता होगा। इसकारण ऐसा जो कोईभी हो वह महापराक्रमी वानर शीघ्र उठकर मेरे पास आवै ॥ ५ ॥ सर्व वानरोंका, सुग्रीवका, बहुत तो क्या रामजीका भी प्राण रक्षण करनेकी भलाई भी निःसंदेह उसको मिलैगी ॥ ६ ॥ अंगदजीके वचन सुनकर समस्त वानरवीर एक एक दूसरेका मुँह चुपचाप देखतेरहे; किसीके मुखसे एक शब्दभी नहीं निकला ॥ ७ ॥ तब अंगदजीने कहा,— " कार्य सिद्धकरनेकेलिये सब अलग२ अपनी शक्तिका बखानकरो। फिर इसके पीछे यह जानाजायगा, कि किसके हाथसे कार्यसिद्ध होगा" ॥ ८ ॥ अंगदजीके वचन सुनकर उन वीरोंने पृथक् २ अपनी २ शक्ति कही। पहलेही एकने, ' मैं दशयोजन उड़कर जाऊंगा' कहा; फिर एक २ जन दश २ योजन अधिक कहता गया, दूसरेने ' वीस योजन जाय सक्ताहूं, ' कहा, तीसरा बोला— ' मैं तीस योजन जाऊंगा । ' चौथाबोला, 'चालीस' । पांचवेंने 'पचास' इसप्रकार क्रमबढ़ा ॥ ९ ॥ उस वनचर मण्डलीमेंसे जाम्बवानने कहा कि ' मैं नव्वे

ऊचुःसमुद्रंपश्यंतोनक्रचक्रभयंकरम् ॥ तरंगादिभिरुन्नद्धमाकाशमिवदुर्ग्रहम् ॥ २ ॥ परस्परमवोचन्वैकथमेनंतरामहे ॥ उवाचचांगदस्तत्रशृणुध्वंवानरोत्तमाः ॥ ३ ॥ भवंतोऽत्यंतबलिनःशूराश्चकृतविक्रमाः ॥ कोवाऽत्रवारिधिंतीर्त्वाराजकार्यंकरिष्यति ॥ ४ ॥ एतेषांवानराणांसप्राणदातानसंशयः ॥ अतोत्तिष्ठतुमेशीघ्रंपुरतोयोमहाबलः ॥ ५ ॥ वानराणांचसर्वेषांरामसुग्रीवयोरपि ॥ सएवपालकोभूयान्नात्रकार्याविचारणा ॥ ६ ॥ इत्युक्तेयुवराजेनतूष्णींवानरसैनिकाः ॥ आसन्नोचुःकिंचिदपिपरस्परविलोकिनः ॥ ७ ॥ ॥ अंगदउवाच ॥ ॥ उच्यतांवैबलंसर्वैःप्रत्येकंकार्यसिद्धये ॥ केनवासाध्यतेकार्यंजानीमस्तदनंतरम् ॥ ८ ॥ अंगदस्यवचःश्रुत्वाप्रोचुर्वीराबलंपृथक् ॥ योजनानांदशारभ्यदशोत्तरगुणंजगुः॥९॥शतादर्वाग्जांबवांस्तुप्राहमध्येवनौकसाम्॥पुरात्रिविक्रमेदेवेपादंभूमानलक्षणम्॥१०॥

नयेजाजाय सक्ताहूं।' फिर जाम्बवान् बोला,—पहले परमेश्वरने त्रिविक्रम (वामन)अवतार लियाथा; उनका पाँव पृथ्वीके परिमाणके समान लम्बा था ॥ १० ॥ तब मैंने उन वामनजीकी इक्कीस प्रदक्षिणा कीथी, अबतौ मुझे बुढ़ापेने ग्रसलिया; इसलिये मुझमें ऐसी उड़ान करनेकी सामर्थ्य नहीं ॥ ११ ॥ अंगदजी बोले;' मैं महासागरके पारजाय सक्ताहूं पर पलटकर आसक्ताहूं कि,नहीं इतनाही सन्देह है;' जाम्बवानने अंगदजीसे कहा कि, हे अंगद ! तुम शूरहो, और इसमेंभी संशय नहीं कि तुम कार्य करलोगे; परंतु तुम हमारे राजा और नियामकहो; (तुम्हारे चलेजानेपर ' अमुककार्य इसप्रकारकरो' ऐसा समझानेवाला कोई नहीं रहेगा) इसकारण तुम्हारे समर्थ होनेपरभी मैं तुम्हें इसकार्यमें नहीं लगा सक्ता ॥ १३ ॥ यह सुनकर अंगदजी बोले, कि "जो ऐसाहै तौ हम सबजने पहलेके समान कुश बिछायकर शयन करैं। जब वह काम किसीसे नहीं कियागया, फिर कैसे जीवन धारण कियाजाय ?" ॥ १४ ॥ वीर जाम्बवानने अंगदजीसे कहा हे बालक ! जिसके हाथसे हमारा कार्य बहुतशीघ्र प्रसिद्ध होगा,ऐसा वानर मैं तुझे दिखाताहूं ॥ १५ ॥ यह कहकर जाम्बवान वहांपर बैठेहुए हनुमान् जीसे कहनेलगे कि—' हे हनुमान! महाबलवान्; पराक्रमी,और सामर्थ्यवाले होकर अजानेकी तरह मौनहोकर क्यों बैठेहो ? ॥ १६ ॥ हे महाबलवान् वीर! तुम साक्षात् वायुके समान पुत्रहो, इसकारण तुम साक्षात् पवन के पुत्र और पवनकेही समान पराक्रमीहो, हे महाबलवान् वीर ! आज तुम अपनी सामर्थ्य दिखाओ, क्योंकि महात्मा पवनने रामके कार्यके निमित्त उत्पन्न कियाहै ॥ १७ ॥ तुम्हारा अवतार केवल रामजीकेहीलिये हुआ है; मैं तुम्हारी अतुलशक्तिका एक उदाहरण देताहूं, जन्मके समय सूर्य

त्रिःसप्तकृत्वोऽहमगांप्रदक्षिणविधानतः ॥ इदानींवार्धकग्रस्तोनशक्नोमिविलंघितुम् ॥ ११ ॥ अंगदोऽप्याहमेगंतुंशक्यंपारंमहोदधेः ॥
पुनर्लंघनसामर्थ्यंनजानाम्यस्तिवानवा ॥ १२ ॥ तमाहजांबवान्वीरस्त्वंराजानोनियामकः ॥ नयुक्तंत्वांनियोक्तुंमेत्वंसमर्थोऽसियद्यपि ॥
॥ १३ ॥ अंगदउवाच ॥ एवंचेत्पूर्ववत्सर्वेस्वप्स्यामोदर्भविष्टरे ॥ केनापिनकृतंकार्यंजीवितुंचनशक्यते ॥ १४ ॥ तमाहजांबवान्वीरो
दर्शयिष्यामितेसुत ॥ येनास्माकंकार्यसिद्धिर्भविष्यत्यचिरेणच ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वाजांबवान्प्राहहनूमंतमवस्थितम् ॥ हनूमन्किरह
स्तूष्णींस्थीयतेकार्यगौरवे ॥ १६ ॥ प्राप्तेऽज्ञेनेवसामर्थ्यंदर्शयाद्यमहाबल ॥ त्वंसाक्षाद्वायुतनयोवायुतुल्यपराक्रमः ॥ १७ ॥ रामकार्या
र्थमेवत्वंजनितोऽसिमहात्मना ॥ जातमात्रेणतेपूर्वंदृष्ट्वोद्यंतंविभावसुम् ॥ १८ ॥

भगवान् निकलरहेथे ऐसा तुम्हें दिखाई दिया ॥ १८ ॥ तब तुम्हें ऐसा जान पड़ा कि यह पका हुआ फलहै, इसको लेना चाहिये। इसलिये तुम सहजहीसे बाललीला करके उड़ानमार पांच शत योजन ऊंचे उड़गये।वहाँ परसे भूमिपर गिरे तौभी तुमको कुछ चोट नहीं पहुँची ! ॥ १९ ॥ फिर तुम्हारे बलके प्रमाणको कौन बखान करसक्ताहै ? हाथमें लियेहुए कार्यका पूरा करनेका तुम्हारा नियम है। हेवीर ! इसकारणसे उठो और रामजीका कार्य करके हमारी रक्षा करो ॥ २० ॥ जाम्बवानके यह वचन सुनकर हनुमानजीको बड़ा हर्ष हुआ; उन्होंने सिंहनादके समान विलक्षण गर्जनाकी। उस सिंहनादको सुनकर लोकोंको ऐसा समझपड़ा कि क्या यह ब्रह्माण्डका गोलक फट जायगा ! ॥ २१ ॥ उन्होंने पर्वताकार प्रचंडरूप धारण किया; उससमय वह दूसरे वामनजीके समान जान पड़ने लगे—शक्तिका विश्वास दिखलानेकेलिये इतनाकृत्यकर हनुमानजी वानरोंसे बोले बतलाओ, कि मैं कौनसा कार्य करूं; क्या समुद्र उलांघ जाऊं; लंकाको भस्म करडालूं ॥ २२ ॥ या सारेकुलके साथ रावणका वध करके जानकीको यहाँपर लेआऊं; अथवा रावणके गलेमें रस्सीडालकर व बांये हाथसे ॥ २३ ॥ पर्वतकेसहित लंकानगरीको उखाड़ रामचंद्रजीके आगे लाधरूं; अथवा उन शुभलक्षणसम्पन्न जानकीजीका दर्शन कर समाचार लेआऊं ॥ २४ ॥ हनुमानजीका प्रश्न सुनकर जाम्बवानने ऐसा उत्तर दिया;—"हेवीर ! कल्याणकारी जानकीजीका जीवनयुक्त दर्शन करआओ ॥ २५ ॥ फिर रामजीके साथ जायकर तुम अपना पराक्रम

पक्कंफलंजिघृक्षामीत्युत्प्लुतंबालचेष्टया ॥ योजनानांपंचशतंपतितोऽसिततोभुवि ॥ १९ ॥ अतस्त्वद्बलमाहात्म्यंकोवाशक्नोतिवर्णितुम् ॥ उत्तिष्ठकुरुरामस्यकार्यंनःपाहिसुव्रत ॥ २० ॥ श्रुत्वाजांबवतोवाक्यंहनूमानतिहर्षितः ॥ चकारनादंसिंहस्यब्रह्मांडंस्फोटयन्निव ॥ २१ ॥ बभूवपर्वताकारस्त्रिविक्रमइवापरः ॥ लंघयित्वाजलनिधिंकृत्वालंकांचभस्मसात् ॥ २२ ॥ रावणंसकुलंहत्वाऽऽनेष्येजनकनंदिनीम् ॥ २३ ॥ यद्वाबद्ध्वागलेरज्ज्वारावणंवामपाणिना ॥ लंकांसपर्वतांधृत्वारामस्याग्रेक्षिपाम्यहम् ॥ २४ ॥ यद्वादृष्ट्वैवयास्यामिजानकींशुभलक्षणाम् ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंजांबवानिदमब्रवीत् ॥ २५ ॥ दृष्ट्वैवागच्छभद्रंतेजीवंतींजानकींशुभाम् ॥ पश्चाद्रामेणसहितोदर्शयिष्यसिपौरुषम् ॥ २६ ॥

---

[1] मूलमें "जिघृक्षामि" शब्द "ग्रहीष्यामि" अर्थमें आर्ष है, टीकाकार लोग यह कहतेहैं परन्तु हमनें उसको आर्ष न मानकर सहजही अर्थ किया है मूलके १९ श्लोकसे अनुवाद मिलालो।

दिखलाना । हेहनुमन् ! अब यहांसे आकाश मार्गमें जातेहुए तुमको मार्ग कल्याणरूप होवै ॥ २६ ॥ तुम रामजीके कार्यको जातेहो; इसकारण पवन तुम्हारी सहायता करनेको पीछे २ चलें । ” इसप्रकार आशीर्वाद देकर वानर श्रेष्ठोंने हनुमानजीको विदा किया । फिर हनुमानजी महेन्द्र पर्वतके शिखरपर चढ़कर अद्भुत दर्शन हुए,अर्थात् उनको देखकर लोक विस्मित हुए ॥ २७ ॥ तिसकाल हनुमानजीका शरीर विशाल श्रेष्ठ पर्वतके समान रंग सुवर्णके समान वदनमंडल, अरुणके समान, मनोहर और बड़ी २ दोनों बांहैं महासर्पके समान ज्ञात हुई, इसप्रकार महात्मा

कल्याणंभवताद्भद्रगच्छतस्तेविहायसा ॥ गच्छंतंरामकार्यार्थंवायुस्त्वामनुगच्छतु ॥२७॥ इत्याशीर्भिःसमामंत्र्यविसृष्टःप्लवगाधिपैः ॥ महेंद्राद्रिशिरोगत्वाबभूवाद्भुतदर्शनः ॥ २८ ॥ महानगेंद्रप्रतिमोमहात्मासुवर्णवर्णोऽरुणचारुवक्रः ॥ महाफणींद्राभसुदीर्घबाहुर्वातात्मजोऽदृश्यतसर्वभूतैः ॥ २९ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेकिष्किंधाकांडेनवमःसर्गः ॥९॥ ॥ समाप्तोऽयंकिष्किंधाकांडः॥

हनुमानजी सर्व प्राणियोंको दिखाई देने लगे ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकांडे पंडितबलदेवप्रसाद मिश्रकृत भाषाटीकायां नवमःसर्गः ॥ ९ ॥

दोहा–विपत हरण तारण तरण, कार्य करण सुखदान ॥ महावीर रणधीर श्री,-रघुपति दूत महान ॥ १ ॥
तिनको ध्याय मनाय नित, द्विजबलदेवप्रसाद ॥ रामायण भाषा करत, उमा शंभु संवाद ॥ २ ॥

इति किष्किन्धाकांडं समाप्तम् ।

इदमध्यात्मरामायणकिष्किन्धाकाण्डं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन खेमराजेन स्वकीये ‘श्रीवेङ्कटेश्वर’
यन्त्रालयेऽङ्कित्वा प्रकाशितम्. संवत् १९५२,
शके १८१७, सन् १८९५.

इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणेभाषाटीकासमेतेकिष्किन्धाकाण्डः समाप्तः ।

अथ श्रीमदध्यात्मरामायणेभाषाटीकासमेतेसुन्दरकाण्डः प्रारम्भः ।

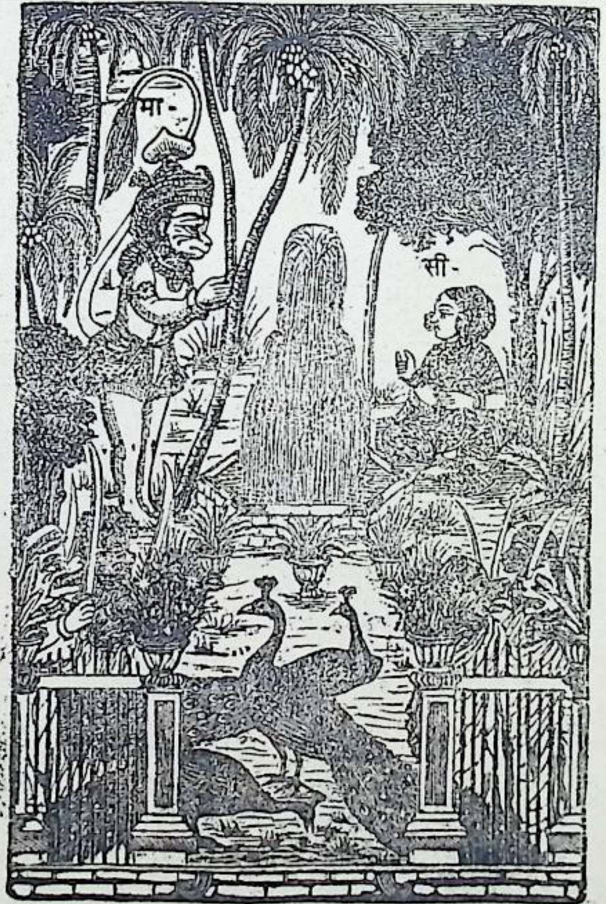
मा-
सी-

दोहा—योगयुक्त सुन्दर वर्ण, बलनिधि बाहु विशाल । सिय खोजन हित दत्तचित, प्रबल अंजनी लाल ॥
सिय सुध हियमें लायकर,चले वारिनिधिपार । असछविखान सुजान नित, वंदौं पवनकुमार ॥
मूल श्लोक अनुसारही सरल अर्थ विस्तार । सो भाषामें करहुँ अब, निज मतिके अनुसार ॥
लखहिं सुजन निर्मल हृदय, पावहिं मन विश्राम । तिनके हित यह श्रम सकल, जे हित कृत नितराम ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि—हे पार्वति ! आनंदके निधान पवनके पुत्र हनुमानजी—लंका और महेन्द्र पर्वतके बीचमें— शतयोजनके विस्तारवाले समुद्रको कि जिसमें मगर इत्यादि दुष्ट जलचरोंके वासके कारण, कोईभी प्राणी उसमें गिरकर फिर जीवित नहीं रहता, ऐसे महासागरको लांघने का विचार मनमें करते रहे ॥ १ ॥ उन्होंने प्रभु श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करके यह वचन कहे । " हे वानरगण ! तुम सबजने देखो; मैं आकाश मार्गसे होकर जाताहूं ॥ २ ॥ हे समस्त वीरगण ! जिस प्रकार रामचंद्रजी का छोड़ा हुआ बाण कभी वृथा नहीं जाता; तैसेही विना कार्य किये हम भी लौट आनेवाले नहीं, आजही रामचंद्रजीकी स्त्री व राजा जनककी कन्या हमें दिखाई देंगी ॥ ३ ॥ इससे मैं कृतार्थ हो जाऊंगा; इसप्रकार कार्य होजानेपर मैं श्रीरामचंद्रजीके दर्शन करूंगा । अहो ! प्राण निकलनेके समय एकवार जिसके नामका स्मरण करनेसे ॥ ४ ॥ प्राणी, इस अपार भवसागरको तरकर उनके (श्रीरामचंद्रजीके) पदको प्राप्त होता है; फिर मैं तो उनका प्रत्यक्ष सेवकहूं इसके सिवाय मेरेपास उनके

श्रीमहादेवउवाच ॥ शतयोजनविस्तीर्णंसमुद्रंमकरालयम् ॥ लिलंघयिषुरानंदसंदोहोमारुतात्मजः ॥ १ ॥ ध्यात्वारामंपरात्मानमिदंवचनमब्रवीत् ॥ पश्यंतुवानराःसर्वेगच्छंतंमांविहायसा ॥ २ ॥ अमोघंरामनिर्मुक्तंमहाबाणमिवाखिलाः ॥ पश्याम्यद्यैवरामस्यपत्नींजनकनंदिनीम् ॥ ३ ॥ कृतार्थोऽहंकृतार्थोऽहंपुनःपश्यामिराघवम् ॥ प्राणप्रयाणसमयेयस्यनामसकृत्स्मरन् ॥ ४ ॥ नरस्तीर्त्वाभवांभोधिमपारंयातितत्पदम् ॥ किंपुनस्तस्यदूतोऽहंतदंगांगुलिमुद्रिकः ॥ ५ ॥

अवयवरूप उंगलीकी अँगूठी है; ॥ ५ ॥ और मेरे हृदयमें सदा उनका ध्यान रहता है; फिर मुझसे यह क्षुद्र समुद्र क्यों नहीं तरा जायगा ” यह कहकर हनुमानजीने अपनी बांहें पसारीं और पूंछको लम्बा किया ॥ ॥ ६ ॥ गर्दन सीधी की दृष्टि ऊपरको उठाई, और दोनों चरण सकोड़ लिये उन्होंने दक्षिण दिशाकी ओरको मुखकरकै अति शीघ्रतासे उड़ान लगाई । उनकी गति (चाल) पवनके समान (चपल व अव्याहत) हुई ॥ ७ ॥ आकाशमें देवता लोगों करकै देखे जाते हुए हनुमानजी आकाशमार्गमें जाने लगे; पवनकुमार हनुमानजीको पवनके समान वेगसे जाता हुआ देखकर देवताओंके मनमें ॥८॥ यह आया कि इस वानरकी बुद्धि और बलकी परीक्षा करैं । ऐसा विचारकर देवता लोग परस्पर कहने लगे,–कि यह जाता हुआ वानर महाबुद्धिमान् व पवनके समान दिखाई देता है ॥ ९ ॥ परन्तु इसबातको जाननेके लिये कि–यह लंका में प्रवेश करेगा या नहीं; इसकी शक्तिकी परीक्षाकर देखें; यह बात जाननेके लिये सब देवताओंको उत्सुकता हुई।देवताओंने ऐसा विचार ठहराया और तत्काल नागोंकी माता सुरसासे कहा कि तुम जाओ और इसवानर श्रेष्ठका कुछ विघ्न करो ॥ १० ॥ ११ ॥ इनके शरीरका बल और बुद्धिका वैभव कैसा और कितना है; यह देखकर फिर वहांसे जल्दी यहांपर आइयो । जब देवताओंने ऐसा कहा, तब वह (सुरसा) हनुमानके विघ्न करनेको शीघ्र चली ॥ १२ ॥ व मार्गमें अड़कर हनुमानजीके आगे खड़ी रही और बोली;– “ हे महा बुद्धिमान ! अति शीघ्र आयकर मेरे मुखमें प्रवेशकरो ॥ १३ ॥ मेरी आत्मा भूंखके मारे बहुत व्याकुलहोरही है । और देवताओंनेभी तुम्हेंही मेरा भक्ष्य बनाया है ! ” हनुमानजीने उस्से

तमेवहृदयेध्यात्वालंघयाम्यल्पवारिधिम् ॥ इत्युक्त्वाहनुमान्बाहूप्रसार्यायतवालधिः ॥ ६ ॥ ऋजुग्रीवोर्द्ध्वदृष्टिःसन्नाकुंचितपदद्वयः ॥
दक्षिणाभिमुखस्तूर्णंपुप्लुवेऽनिलविक्रमः ॥ ७ ॥ आकाशात्त्वरितंदेवैर्वीक्ष्यमाणोजगामसः॥ दृष्ट्वाऽनिलसुतंदेवागच्छंतंवायुवेगतः ॥८॥
परीक्षणार्थंसत्त्वस्यवानरस्येदमब्रुवन् ॥ गच्छत्येषमहासत्त्वोवानरोवायुविक्रमः ॥ ९ ॥ लंकांप्रवेष्टुंशक्तोवानवाजानीमहेबलम् ॥ एवं
विचार्यनागानांमातरंसुरसाभिधाम् ॥ १० ॥ अब्रवीद्देवतावृंदः कौतूहलसमन्वितः ॥ गच्छत्वंवानरेंद्रस्यकिंचिद्विघ्नंसमाचर ॥ ११ ॥
ज्ञात्वातस्यबलंबुद्धिंपुनरेहित्वरान्विता ॥ इत्युक्तासाययौशीघ्रंहनुमद्विघ्नकारणात् ॥ १२ ॥ आवृत्त्यमार्गंपुरतःस्थित्वावानरमब्रवीत्॥
एहिमेवदनंशीघ्रंप्रविशस्वमहामते ॥ १३ ॥ देवैस्त्वंकल्पितोभक्षःक्षुधासंपीडितात्मनः ॥ तामाहहनुमान्मातरहंरामस्यशासनात् ॥१४॥

कहा,—हे माते ! मैं श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे ॥ १४ ॥ जानकीजीकी सुधि लानेकेलिये जाताहूं; फिर शीघ्रही लौटकर आऊंगा; रामचंद्रजीकी उनसे वर्तमान कुशल कह फिर तुम्हारे मुखमें ॥ १५ ॥ प्रवेश करूंगा । हे सुरसे ! मुझे मार्गदे (रस्ता छोड़) तुम्हें नमस्कार है । ” हनुमानजीके ऐसा कहनेपर फिर सुरसाने कहा; “मैं बहुत भूंखीहूं; ॥ १६ ॥ इसकारण मेरे मुखमें प्रवेश करकै (सामर्थ्यहो तो वहाँसे निकलके) आगे जाओ; नहीं तो मैं तुम्हें अभी खा डालूंगी । ” जब सुरसाने ऐसा कह आग्रह किया तौ हनुमानजीने उस्से कहा, “ बहुत अच्छा शीघ्र अपना मुख पसार ॥ १७ ॥ अब तेरे मुखमें प्रवेश करकै फिर मैं शीघ्र निकल जाऊंगा ” ऐसे कहकर हनुमानजी अपने शरीरको एक योजन (४ कोश)

गच्छामिजानकींद्रष्टुंपुनरागम्यसत्वरः ॥ रामायकुशलंतस्याःकथयित्वात्वदाननम् ॥ १५ ॥ निवेक्ष्येदेहिमेमार्गंसुरसायैनमोऽस्तुते ॥ इत्युक्तापुनरेवाहसुरसाक्षुधितास्म्यहम् ॥ १६ ॥ प्रविश्यगच्छमेवक्त्रंनोचेत्त्वांभक्षयाम्यहम् ॥ इत्युक्तोहनुमानाहमुखंशीघ्रंविदारय ॥ ॥ १७ ॥ प्रविश्यवदनंतेऽद्यगच्छामित्वरयान्वितः ॥ इत्युक्तायोजनायामदेहोभूत्वापुरःस्थितः ॥ १८॥ दृष्ट्वाहनुमतोरूपंसुरसांपंचयोजनम् ॥ मुखंचकारहनुमान्द्विगुणंरूपमादधत् ॥ १९ ॥ ततश्चकारसुरसायोजनानांचविंशतिम् ॥ वक्त्रंचकारहनुमांस्त्रिंशद्योजनसम्मितम् ॥ २०॥ ततश्चकारसुरसापंचाशद्योजनायतम् ॥ वक्त्रंतदाहनूमांस्तुबभूवांगुष्ठसन्निभः ॥ २१ ॥ प्रविश्यवदनंतस्याःपुनरेत्यपुरःस्थितः ॥ प्रविष्टोनिर्गतोऽहंतेवदनंदेवितेनमः ॥२२॥ एवंवदंतंदृष्ट्वासाहनूमंतमथाब्रवीत्॥ गच्छसाधयरामस्यकार्यंबुद्धिमतांवर ॥२३॥

का बड़ा करकै आगे खड़े रहे ॥ १८ ॥ हनुमानजीका यह रूप देखकर सुरसाने अपना मुख पांच योजनका किया । हनुमानजीने दूनारूप (दश योजन अर्थात् ४० कोश) धारण किया ॥ १९ ॥ तब सुरसाने अपना मुख वीस योजन लम्बा किया । हनुमानजीने देहको तीस योजन बड़ा लिया ॥ २० ॥ फिर सुरसाने अपने मुखको पचास योजनका लम्बा किया । तब हनुमानजीने अपना आकार अँगूठेके समान छोटा करलिया ॥ २१ ॥ और चट उसके मुँहमें प्रवेश करकै फिर बाहर आये, उसके आगे खड़े होकर बोले;—हे देवी ! मैं तुम्हारे मुखमें प्रवेश करकै बाहर आया, और तुमको नमस्कार करताहूं ॥ २२ ॥ ऐसा वचन सुनकर अपने आगे खड़े हनुमानजीको देख सुरसा बोली,— धन्य है, तुम बुद्धिमान्

पुरुषोंमें प्रथमहो । जाओ श्रीरामचंद्रजीका कार्य सिद्ध करो ॥ २३ ॥ हे वानर ! तुम्हारे बलका प्रमाण जाननेकेलिये देवताओंने मुझको तुम्हारे पास भेजाथा, धन्यहो ! अब सीताजीकी सुधि लाय उनका दर्शनकर तुम फिर श्रीरामचंद्रजीके पास जाओगे, ऐसा मुझे निश्चय है—अब तुम अपने रस्ते जाओ ॥ २४ ॥ यह कहकर सुरसा देवलोकको चली गई । पवनकुमार हनुमानजी पक्षियोंके राजा गरुड़जीके समान (अति शीघ्र) फिर पवनके मार्गमें गमन करते हुए ॥ २५ ॥ समुद्रमें मैनाक नामका एंक पर्वत है; उसमें रत्न व सुवर्णके शिखर हैं; जैसे देवताओंने सुरसासे कहाथा, ऐसेही यहां समुद्रने मैनाकसे कहा--,कि“यह महासामर्थ्यवाला वायुका पुत्र हनुमान् जा रहा है ॥ २६ ॥ यह श्रीरामचंद्रजीका कार्य सिद्ध करेंगे, तुम इनके सहायक हो । पूर्व कालमें सगरकी सन्तान करकै बढ़ाई जानेपर (छोटाथा सगरकी सन्तानने बड़ा किया) मेरा नाम ‘ सागर ’ हुआ ॥ २७ ॥ उनके वंशमेंही यह दशरथके पुत्र प्रभु रामचंद्रजी उत्पन्न हुए हैं व उन (रामचंद्रजीके) कार्यको सिद्ध करनेके लिये यह महावानर चला है ॥ २८ ॥ इसलिये तुम शीघ्र जलमेंसे ऊपरको उठो, हनुमान् तुम्हारे शिखरपर विश्राम करकै आगेको जाय; ” वह अतिशय ऊंचा पर्वत ‘ अच्छा ’ कहकर पानीपर प्रगट हुआ ॥ २९ ॥ उसपर अनेक प्रकारके रत्नोंके शिखर थे; पर्वतके ऊपर मनुष्यका रूप धारणकर मैनाक खड़ा रहा । वह मनुष्याकार पर्वत, आकाशमार्गमें जाते हुए हनुमानजीसे बोला;— “हे वानरोंमें श्रेष्ठ ! मैं मैनाकहूं ॥ ३० ॥ हे पवनकुमार ! समुद्रने आज्ञादी है कि, मैं तुम्हें विश्रामदूं । इस कारण यहाँ आओ और अमृतके समान पके हुए फलोंको भक्षण करो ॥ ३१ ॥

देवैःसंप्रेषिताहंतेबलंजिज्ञासुभिःकपे ॥ दृष्ट्वासीतांपुनर्गत्वारामंद्रक्ष्यसिगच्छभोः ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वासाययौदेवलोकंवायुसुतःपुनः ॥ जगामवायुमार्गेणगरुत्मानिवपक्षिराट् ॥ २५ ॥ समुद्रोऽप्याहमैनाकंमणिकांचनपर्वतम् ॥ गच्छत्येषमहासत्त्वोहनुमान्मारुतात्मजः ॥ २६ ॥ रामस्यकार्यसिद्ध्यर्थंतस्यत्वंसचिवोभव ॥ सगरैर्वर्धितोयस्मात्पुराहंसागरोऽभवम् ॥ २७ ॥ तस्यान्वयेबभूवासौरामोदाशरथिःप्रभुः ॥ तस्यकार्यार्थसिद्ध्यर्थंगच्छत्येषमहाकपिः ॥ २८ ॥ त्वमुत्तिष्ठजलात्तूर्णंत्वयिविश्राम्यगच्छतु ॥ सतथेतिप्रादुरभूज्जलमध्यान्महोन्नतः ॥ २९ ॥ नानामणिमयैःशृंगैस्तस्योपरिनराकृतिः ॥ प्राहयांतंहनूमंतंमैनाकोऽहंमहाकपे ॥ ३० ॥ समुद्रेणसमादिष्टस्त्वद्विश्रामायमारुते ॥ आगच्छामृतकल्पानिजग्ध्वापक्कफलानिमे ॥ ३१ ॥

दोहा—योगयुक्त सुन्दर वर्ण, बलनिधि बाहु विशाल। सिय खोजन हित दत्तचित, प्रबल अंजनी लाल ॥
सिय सुध हियमें लायकर,चले वारिनिधिपार। असछविखान सुजान नित, वंदौं पवनकुमार ॥
मूल श्लोक अनुसारही सरल अर्थ विस्तार। सो भाषामें करहुँ अब, निज मतिके अनुसार ॥
लखहिं सुजन निर्मल हृदय, पावहिं मन विश्राम। तिनके हित यह श्रम सकल, जे हित कृत नितराम ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि—हे पार्वति ! आनंदके निधान पवनके पुत्र हनुमानजी—लंका और महेन्द्र पर्वतके बीचमें— शतयोजनके विस्तारवाले समुद्रको कि जिसमें मगर इत्यादि दुष्ट जलचरोंके वासके कारण, कोईभी प्राणी उसमें गिरकर फिर जीवित नहीं रहता, ऐसे महासागरको लांघने का विचार मनमें करते रहे ॥ १॥ उन्होंने प्रभु श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करके यह वचन कहे। "हे वानरगण ! तुम सबजने देखो; मैं आकाश मार्गसे होकर जाताहूं ॥ २ ॥ हे समस्त वीरगण ! जिस प्रकार रामचंद्रजी का छोड़ा हुआ बाण कभी वृथा नहीं जाता; तैसेही विना कार्य किये हम भी लौट आनेवाले नहीं, आजही रामचंद्रजीकी स्त्री व राजा जनककी कन्या हमें दिखाई देंगी ॥ ३ ॥ इससे मैं कृतार्थ हो जाऊंगा; इसप्रकार कार्य होजानेपर मैं श्रीरामचंद्रजीके दर्शन करूंगा। अहो ! प्राण निकलनेके समय एकवार जिसके नामका स्मरण करनेसे ॥ ४ ॥ प्राणी, इस अपार भवसागरको तरकर उनके (श्रीरामचंद्रजीके) पदको प्राप्त होता है; फिर मैं तो उनका प्रत्यक्ष सेवकहूं इसके सिवाय मेरेपास उनके

श्रीमहादेवउवाच ॥ शतयोजनविस्तीर्णंसमुद्रंमकरालयम् ॥ लिलंघयिषुरानंदसंदोहोमारुतात्मजः ॥ १ ॥ ध्यात्वारामंपरात्मानमिदंवचनमब्रवीत् ॥ पश्यंतुवानराःसर्वेंगच्छंतंमांविहायसा ॥ २ ॥ अमोघंरामनिर्मुक्तंमहाबाणमिवाखिलाः ॥ पश्याम्यद्यैवरामस्यपत्नींजनकनंदिनीम् ॥ ३ ॥ कृतार्थोऽहंकृतार्थोऽहंपुनःपश्यामिराघवम् ॥ प्राणप्रयाणसमयेयस्यनामसकृत्स्मरन् ॥ ४ ॥ नरस्तीर्त्वाभवांभोधिमपारंयातितत्पदम् ॥ किंपुनस्तस्यदूतोऽहंतदंगांगुलिमुद्रिकः ॥ ५ ॥

अवयवरूप उंगलीकी अँगूठी है; ॥ ५ ॥ और मेरे हृदयमें सदा उनका ध्यान रहता है; फिर मुझसे यह क्षुद्र समुद्र क्यों नहीं तरा जायगा " यह कहकर हनुमानजीने अपनी बांहैं पसारीं और पूंछको लम्बा किया ॥ ॥ ६ ॥ गर्दन सीधी की दृष्टि ऊपरको उठाई, और दोनों चरण सकोड़ लिये उन्होंने दक्षिण दिशाकी ओरको मुखकरकै अति शीघ्रतासे उड़ान लगाई । उनकी गति (चाल) पवनके समान (चपल व अव्याहत) हुई ॥ ७ ॥ आकाशमें देवता लोगों करकै देखे जाते हुए हनुमानजी आकाशमार्गमें जाने लगे; पवनकुमार हनुमानजीको पवनके समान वेगसे जाता हुआ देखकर देवताओंके मनमें ॥८॥ यह आया कि इस वानरकी बुद्धि और बलकी परीक्षा करैं । ऐसा विचारकर देवता लोग परस्पर कहने लगे,—कि यह जाता हुआ वानर महाबुद्धिमान् व पवनके समान दिखाई देता है ॥ ९ ॥ परन्तु इसबातको जाननेके लिये कि—यह लंका

तमेवहृदयेध्यात्वालंघयाम्यल्पवारिधिम् ॥ इत्युक्त्वाहनुमान्बाहूप्रसार्यायतवालधिः ॥ ६ ॥ ऋजुग्रीवोर्द्ध्वदृष्टिःसन्नाकुंचितपदद्वयः ॥
दक्षिणाभिमुखस्तूर्णंपुप्लुवेऽनिलविक्रमः ॥ ७ ॥ आकाशात्त्वरितंदेवैर्वीक्ष्यमाणोजगामसः ॥ दृष्ट्वाऽनिलसुतंदेवागच्छंतंवायुवेगतः ॥८॥
परीक्षणार्थंसत्त्वस्यवानरस्येदमब्रुवन् ॥ गच्छत्येषमहासत्त्वोवानरोवायुविक्रमः ॥ ९ ॥ लंकांप्रवेष्टुंशक्तोवानवाजानीमहेबलम् ॥ एवं
विचार्यनागानांमातरंसुरसाभिधाम् ॥ १० ॥ अब्रवीद्देवतावृंदः कौतूहलसमन्वितः ॥ गच्छत्वंवानरेंद्रस्यकिंचिद्विघ्नंसमाचर ॥ ११ ॥
ज्ञात्वातस्यबलंबुद्धिंपुनरेहित्वरान्विता ॥ इत्युक्तासाययौशीघ्रंहनुमद्विघ्नकारणात् ॥ १२ ॥ आवृत्त्यमार्गंपुरतःस्थित्वावानरमब्रवीत्॥
एहिमेवदनंशीघ्रंप्रविशस्वमहामते ॥ १३ ॥ देवैस्त्वंकल्पितोभक्षःक्षुधासंपीडितात्मनः ॥ तामाहहनुमान्मातरहंरामस्यशासनात् ॥१४॥

में प्रवेश करेगा या नहीं; इसकी शक्तिकी परीक्षाकर देखें; यह बात जाननेके लिये सब देवताओंको उत्सुकता हुई। देवताओंने ऐसा विचार ठहराया और तत्काल नागोंकी माता सुरसासे कहा कि तुम जाओ और इसवानर श्रेष्ठका कुछ विघ्न करो ॥ १० ॥ ११ ॥ इनके शरीरका बल और बुद्धि का वैभव कैसा और कितना है; यह देखकर फिर वहांसे जल्दी यहांपर आइयो । जब देवताओंने ऐसा कहा, तब वह (सुरसा) हनुमानके विघ्न करनेको शीघ्र चली ॥ १२ ॥ व मार्गमें अड़कर हनुमानजीके आगे खड़ी रही और बोली;— " हे महा बुद्धिमान ! अति शीघ्र आयकर मेरे मुखमें प्रवेशकरो ॥ १३ ॥ मेरी आत्मा भूंखके मारे बहुत व्याकुलहोरही है । और देवताओंनेभी तुम्हेंही मेरा भक्ष्य बनाया है ! " हनुमानजीने उससे

यहांपर एक क्षणभर विश्राम लेकर फिर प्रसन्नतासे आगे जाइयो ।" मैनाकके यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमानजीने उस्से कहा ॥ ३२ ॥ "मैं रामचंद्रजीके कार्यको जाता हूं; सो विना उस कार्यको किये मेरा भोजन करना अनुचित है । और अति शीघ्र जानेके कारण मेरा विश्रामकरना किस प्रकारसे संभव हो सकता है ?" ॥ ३३ ॥ यह कहकर हनुमानजीने, मैनाकको मान देनेकेलिये उसके शिखरको उंगलीसे छूकर आगेका मार्ग लिया । हनुमानजी थोड़ेहीसे आगे बढ़ेथे कि उनकी छाया एक छायाग्रहने पकड़ली ॥ ३४ ॥ इस छायाग्रहका नाम सिंहिका था; यह बड़ी भयंकर राक्षसी थी; यह भयंकर राक्षसी सदा जलमें रहकर आकाशमार्गमें जातेहुए प्राणियोंकी छाया पकड़ उनको खेंच लेती और खा जाती ! ॥ ३५ ॥ उसने महाप्रतापी हनुमानजीको पकड़ा; तब हनुमानजी विचार करने लगे—मेरे वेगको रोकनेवाला यह विघ्न करनेहारा प्राणी यहाँपर कौन है ? ॥ ३६ ॥ यहाँपर कोईभी नहीं दीखता ! मुझको तौ यह बात विलक्षणसी मालूम होती है ! ऐसा विचार करके हनुमानजीने नीचेको दृष्टि फिराई तौ ॥ ३७ ॥ वहाँपर बड़े शरीरवाली व विकराल स्वरूपकी सिंहिका राक्षसी उनको दिखाई दी । उसको देखकर शीघ्र हनुमानजी जलमें गिरे; और क्रोधमें भरकर लातके प्रहारसे उसका वध किया ॥ ३८ ॥ हनुमानजी फिर आकाशमें उड़े और दक्षिणकी ओरको मुख करके आगे चले; वे समुद्रके दक्षिण किनारेपर जाय पंहुँचे; उस स्थानपर फलोंके भरेहुए अनेक वृक्ष लगेथे ॥ ३९ ॥

विश्राम्यात्रक्षणंपश्चाद्गमिष्यसियथासुखम् ॥ एवमुक्तोऽथतंप्राहहनुमान्मारुतात्मजः ॥ ३२ ॥ गच्छतोरामकार्यार्थंभक्षणंमेकथंभवेत् ॥ विश्रामोवाकथंमेस्याद्गंतव्यंत्वरितंमया ॥ ३३ ॥ इत्युक्त्वास्पृष्टशिखरःकराग्रेणययौकपिः ॥ किंचिद्दूरंगतस्यास्यच्छायांछायाग्रहोऽग्रहीत् ॥ ३४ ॥ सिंहिकानामसाघोराजलमध्येस्थितासदा ॥ आकाशगामिनांछायामाक्रम्याकृष्यभक्षयेत् ॥ ३५ ॥ तयागृहीतोहनुमांश्चिंतयामासवीर्यवान् ॥ केनेदंमेकृतंवेगरोधनंविघ्नकारिणा ॥ ३६ ॥ दृश्यतेनैवकोऽप्यत्रविस्मयोमेप्रजायते ॥ एवंविचिंत्यहनुमानधोदृष्टिंप्रसारयत् ॥ ३७ ॥ तत्रदृष्ट्वामहाकायांसिंहिकांघोररूपिणीम् ॥ पपातसलिलेतूर्णंपद्भ्यामेवाहनद्रुषा ॥ ३८ ॥ पुनरुत्प्लुत्यहनुमान्दक्षिणाभिमुखोययौ ॥ ततोदक्षिणमासाद्यकूलंनानाफलद्रुमम् ॥ ३९ ॥

चित्र विचित्र पशु पक्षी इधर उधर फिर रहेथे; अनेक प्रकारके फूल और वेलोंसे वह स्थान घिराहुआथा । फिर त्रिकूट पर्वतके शिखरपर एक नगर हनुमानजीने देखा ॥ ४० ॥ अनेक प्रकारके बाहिरी कोट, भीतरीकोट और उसके मध्यम कोटकी चारों ओर खाई बनी देख हनुमानजीको चिन्ता उत्पन्न हुई कि–इस लंकामें हम किस प्रकारसे प्रवेश करें? ॥ ४१ ॥ इसही नगरीमें रावण राज्य करता है। हम रात्रिके समय छोटासा रूप बनायकर लंकामें प्रवेश करेंगे। यह विचार ठहराय हनुमानजी रात्रि होनेतक वहींपर रहे और फिर लंकामें जानेके लिये तैयार हुए ॥ ४२ ॥ वह प्रतापी वानर सूक्ष्मरूप धारण करकै नगरके द्वारमें प्रवेश करने लगे; वहाँपर साक्षात् लंकापुरीने राक्षसी वेष धारण किये हुए ॥ ४३ ॥ हनुमानजीको प्रवेश करते देखा, और उनका तिरस्कार करती हुई बोली कि– "तू वानर कौन है? मैं लंकिनी प्रत्यक्ष यहांपर बैठी हूं, मेरा अनादर करकै तू चोरके समान रात्रिकी वेला इसमें प्रवेश करता है, तेरे मनमें क्या करनेकी इच्छा है!" इस समय लंकाके नेत्र मारे क्रोधके लाल लाल होगये, उसने इतना कहकर हनुमानजीके लात मारी ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ तब हनुमानजीने तिरस्कारपूर्वक उस लंकिनीके दांये हाथका मूका मारा. तत्काल वह घिन्नी खायकर पृथ्वीपर गिरी, और वह बहुतसा रुधिर उगलने लगी ॥ ४६ ॥ कुछ देरमें लंका उठी व प्रतापशाली हनुमानजीसे बोली–"धन्य हो पुण्यपुरुष हनुमन्त! जाओ तुम्हारा मंगल हो, तुमने लंकाको जीत लिया" ॥ ४७ ॥ पूर्व कालमें मुझसे ब्रह्मा

नानापक्षिमृगाकीर्णनानापुष्पलतावृतम् ॥ ततोददर्शनगरंत्रिकूटाचलमूर्धनि ॥ ४० ॥ प्राकारैर्बहुभिर्युक्तंपरिखाभिश्चसर्वतः ॥ प्रवेक्ष्या
मिकथंलंकामितिचिंतापरोऽभवत् ॥ ४१ ॥ रात्रौवेक्ष्यामिसूक्ष्मोऽहंलंकांरावणपालिताम् ॥ एवंविचिंत्यतत्रैवस्थित्वालंकांजगामसः
॥ ४२ ॥ धृत्वासूक्ष्मंवपुर्द्वारंप्रविवेशप्रतापवान् ॥ तत्रलंकापुरीसाक्षाद्राक्षसीवेषधारिणी ॥ ४३ ॥ प्रविशंतंहनूमंतंदृष्ट्वालंकाव्यतर्ज
यत् ॥ कस्त्वंवानररूपेणमामनादृत्यलंकिनीम् ॥ ४४ ॥ प्रविश्यचोरवद्रात्रौकिंभवान्कर्तुमिच्छति ॥ इत्युक्त्वारोषताम्राक्षीपादेनाभि
जघानतम् ॥४५॥ हनुमानपितांवाममुष्टिनावज्ञयाहनत् ॥ तदैवपतिताभूमौरक्तमुद्वमतीभृशम्॥४६॥उत्थायप्राहसालंकाहनूमंतंमहाब
लम् ॥ हनूमन्गच्छभद्रंतेजितालंकात्वयानघ॥४७॥पुराहंब्रह्मणाप्रोक्ताह्यष्टाविंशतिपर्यये ॥त्रेतायुगेदाशरथीरामोनारायणोऽव्ययः ॥४८॥

जीने कहाथा कि,--अट्ठाईसवीं चौकडीके त्रेता युगमें निर्विकार नारायण दशरथजीके पुत्र होंगे ॥ ४८ ॥ और योगमाया राजा जनकजीके घरमें सीता नामसे अवतार लेगी, क्योंकि पृथ्वीका भार उतारनेके लिये मैं (ब्रह्मा) ने पूर्व कालमें एक समय उन ईश्वरकी प्रार्थना कीथी ॥ ४९ ॥ श्रीरामचंद्रजी अपनी स्त्री और भ्राताको साथ लेकर महावनमें जांयगे; सीताजीका अवतार धारण किया है; जिन्होंने ऐसी मायाको रावण चुराकर ले जायगा ॥ ५० ॥ फिर रामचंद्रजीके साथ सुग्रीवकी मित्रता होगी; तब वह सुग्रीव जानकीजीकी सुधि लानेकेलिये बन्दरोंको भेजैगा ॥ ५१ ॥ उनमेंका एक वानर रात्रिके समय तेरे (लंकिनीके) समीप आवैगा; जब तू उसको धमकी देगी तब वह तेरे मूका मारैगा ॥ ५२ ॥

जनिष्यतेयोगमायासीताजनकवेश्मनि ॥ भूभारहरणार्थायप्रार्थितोऽयंमयाक्वचित् ॥ ४९ ॥ सभार्योराघवोभ्रात्रागमिष्यतिमहावनम् ॥ तत्रसीतांमहामायांरावणोऽपहरिष्यति ॥ ५० ॥ पश्चाद्रामेणसाचिव्यंसुग्रीवस्यभविष्यति ॥ सुग्रीवोजानकींद्रष्टुंवानरान्प्रेषयिष्यति ॥ ५१ ॥ तत्रैकोवानरोरात्रावागमिष्यतितेंऽतिकम् ॥ त्वयाचभर्त्सितःसोऽपित्वांहनिष्यतिमुष्टिना ॥ ५२ ॥ तेनाहतात्वंव्यथिताभविष्यसियदानघे ॥ तदैवरावणस्यांतोभविष्यतिनसंशयः ॥ ५३ ॥ तस्मात्त्वयाजितालंकाजितंसर्वंत्वयानघ ॥ रावणांतःपुरवरेक्रीडाकाननमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ तन्मध्येऽशोकवनिकादिव्यपादपसंकुला ॥ अस्तितस्यांमहावृक्षःशिंशपानाममध्यगः ॥ ५५ ॥ तत्रास्ते जानकीघोरराक्षसीभिःसुरक्षिता ॥ दृष्ट्वैवगच्छत्वरितंराघवायनिवेदय ॥ ५६ ॥ धन्याहमप्यद्यचिरायराघवस्मृतिर्ममासीद्भवपाशमोचनी ॥ तद्भक्तसंगोऽप्यतिदुर्लभोममप्रसीदतांदाशरथिःसदाहृदि ॥ ५७ ॥

हे पुण्यशीले ! जिस वेला उस प्रहारके लगनेसे तू मूर्च्छित होगी; उस वेला निःसंदेह रावणका नाश होगा" ॥ ५३ ॥ इसलिये हे पुण्य पुरुष हनुमन्त ! मैं कहतीहूं कि—तुमने लंकाकोही नहीं जीता वरन् सबकोही जीत लिया, अब सीता कहाँ है; यह मैं तुम्हें बतातीहूं सो सुनो । रावणके सुन्दर अंतःपुरमें सुन्दर क्रीडा करनेका एक उत्तम उपवन है ॥ ५४ ॥ उसमें अनेक प्रकारके दिव्य वृक्षोंसे भरा हुआ अशोकवटिका नामक एक भाग है; उसके मध्यम भागमें शिंशपा (सीसम) नामका प्रचंड वृक्ष है ॥ ५५ ॥ उसके नीचे सीताजी रहती हैं। उनके ऊपर घोर राक्षसियोंका पहरा रहता है; उनको अपने नेत्रोंसे निहार समाचारले तत्काल श्रीरामचंद्रजीसे निवेदन करो ॥ ५६ ॥ हे हनुमन्त ! श्रीरामचंद्रजीका स्मरण प्राणीको भव

सागरकी फाँसीसे छुटाता है। उनके भक्तका समागमभी अत्यन्त दुर्लभ है। मुझे आज बहुत दिनोंमें वह दोनों संयोग (रामचंद्रजीका स्मरण और उनके भक्तका अर्थात् तुम्हारा समागम) प्राप्त हुए। इस कारण मैं अपनेको अत्यन्त धन्य मानतीहूं। वह दशरथके पुत्र श्रीरामचंद्रजी मेरे हृदय में सदा प्रसन्न होकर विराजमान रहैं ॥ ५७ ॥ महादेवजी बोले;— हे पार्वती! जिस समय पवनके पुत्र हनुमानजीने दक्षिणके महासागरको उलांघा उस समय पृथ्वीकी पुत्री जानकीजीके व रावणके बाँये नेत्र और बाँये हाथ बराबर फड़कने लगे; वैसेही इधर श्रीरामचंद्रजीके दांये अंग फड़कते हुए पुरुषोंके दांये और स्त्रियोंके बाँये अंगोंका फड़कनेका शुभ है, और पुरुषोंके बाँये व स्त्रियोंके दांये अंग फड़कने अशुभहैं;ऐसा शास्त्रका सिद्धान्तहै; इसकेही अनुसार राम सीताको शुभ शकुन और रावणको अपशकुन होने लगे ॥५८॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे भाषाटीकायां

उल्लंघितेऽब्धौपवनात्मजेनधरासुतायाश्चदशाननस्य ॥ पुस्फोरवामाक्षिभुजश्चतीव्रंरामस्यदक्षांगमतींद्रियस्य ॥ ५८ ॥ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेसुंदरकांडेप्रथमःसर्गः ॥ १ ॥ ॥ ततोजगामहनुमाँल्लंकांपरमशोभनाम् ॥ रात्रौसूक्ष्मतनुर्भूत्वाबभ्राम परितःपुरीम् ॥ १ ॥ सीतान्वेषणकार्यार्थीप्रविवेशनृपालयम् ॥ तत्रसर्वप्रदेशेषुविविच्यहनुमान्कपिः ॥ २ ॥ नापश्यज्जानकींस्मृत्वाततो लंकाभिभाषितम् ॥ जगामहनुमाञ्छीघ्रमशोकवनिकांशुभाम् ॥ ३ ॥ सुरपादपसंबाधांरत्नसोपानवापिकाम् ॥ नानापक्षिमृगाकीर्णांस्वर्णप्रासादशोभिताम् ॥ ४ ॥ फलैरानम्रशाखाग्रपादपैःपरिवारिताम् ॥ विचिन्वञ्जानकींतत्रप्रतिवृक्षंमरुत्सुतः ॥ ५ ॥

प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती! इसके उपरान्त उसरात्रिमें हनुमानजी सूक्ष्म शरीर बनाय परम शोभायमान लंकापुरीमें चारोंओर वूमने लगे॥ १॥ वह महावानर हनुमानजी सीताजीको देखनेके लिये राजमंदिरमें प्रवेश करतेहुए; वहाँ उन्होंने सर्वस्थान ढूंढ़े पर॥ २॥ सीताजी कहीं न दिखाईदीं तब हनुमानजीको लंकिनीका कहना याद आया; वह शीघ्र अशोकवनमें गये। वह स्थान बहुत रमणीय था;— ॥ ३ ॥ जिधर तिधर बराबर दिव्य वृक्ष लगरहेथे; जगह जगह ऐसी पुष्करणियें (तलैयें) जिनमें रत्नोंकी सीढ़ियें बनी हुईहैं—विराजमान हैं; अनेकप्रकारके पशु पक्षी इधरसे उधर, उधरसे इधर फिरतेहुए दिखाई देतेथे। बीचमें बनेहुए सुवर्णके मंदिरोंसे वह स्थान बहुत शोभायमान दिखाई देताहै ॥ ४ ॥ और जिनकी शाखाओंके अगलेभाग फलोंके बोझसे झुक रहेहैं। ऐसे उस उपवनमें हनुमानजी प्रत्येक वृक्षके नीचे जानकीजीको ढूढ़तेहुए चले ॥ ५ ॥

तौ वहांपर एक अति उत्तम देवालय हनुमानजीने देखा । वह इतना ऊंचाथा कि देखनेवाले को ऐसा मालूमपड़े कि यह मंदिर मेघमंडलको चूम रहाहै । इसमें रत्नके बनेहुए सैकड़ों थम्भथे । इस देवालयको देखकर हनुमानजी विस्मित हुए ॥ ६ ॥ उस मंदिरको छोड़कर हनुमानजी फिर थोड़ेसे आगे गये तौ वहाँ शिंशुपाका वृक्ष उनको दिखाई दिया । उसपर घने पत्ते लगे थे ॥ ७ ॥ इसकारण उसके नीचे सूर्यकी किरणके दर्शन कभी नहीं होते थे; उस वृक्षपर जिधर तिधर अनेक पक्षिगण कलोलें कर रहेथे; उन सब पक्षियोंके शरीरका रंग सुवर्णके समान था; उस वृक्षकी जड़के पास राक्षसियोंके बीचमें जानकीजी बैठीहैं ॥ ८ ॥ इसप्रकार हनुमानजीने देखा । इनवीरको जानपड़ा कि यह स्वर्गसे मूर्त्तिमति हो कोई देवताही उतर आया है । जिस दिन रामजीसे वियोग हुआथा उसदिन जैसी वेणी [चोटी] उनकी थी; वैसीही अबतकथी । शरीर दुर्बल होगयाथा । अंगपरके वस्त्र मलीन होगयेथे इसकारण वह जानकीजी बहुत दीन दिखाईदीं ॥ ९ ॥ इससमय वह पृथ्वीपर पड़ीहुई मुखसे 'राम ! राम !' कहकर शोककर रहीहैं, रक्षा करनेवाला कोई नहीं मिलता इसलिये उस सुन्दरीने उपवास करके शरीरको कृश कियाथा ॥ १० ॥ वह वानरश्रेष्ठ हनुमानजी वृक्षकी शाखाके पत्तोंमें बैठकर सीताजीको देखतेहुए, व अपने आपही आप बोले;—"हमने जानकीजीको देखलिया ! हमारा काम होगया ! मैं कृतार्थ होगया ! ॥ ११ ॥ प्रभु रामचंद्रजीका कार्य मैंनेही सिद्धकिया !! " इतनेहीमें अंतःपुरमेंसे कुछ कलकलाहट बाहर सुनाई आया ॥ १२ ॥ "यह क्या गड़बड़है?" ऐसे मनमें विचार वृक्षके पत्तोंमें छिपरहे, तब उन्होंने देखा कि रावण इधर ही आता है, और साथमें बहुतसी स्त्रियेंभी हैं ॥ १३ ॥ उसके दशमुख

ददर्शाभ्रंलिहंतत्रचैत्यप्रासादमुत्तमम् ॥ दृष्ट्वाविस्मयमापन्नोमणिस्तंभशतान्वितम् ॥ ६ ॥ समतीत्यपुनर्गत्वाकिंचिद्दूरंसमारुतिः ॥
ददर्शशिंशपावृक्षमत्यंतनिविडच्छदम् ॥ ७ ॥ अदृष्टातपमाकीर्णंस्वर्णवर्णविहंगमम् ॥ तन्मूलेराक्षसीमध्येस्थितांजनकनंदिनीम् ॥ ८ ॥
ददर्शहनुमान्वीरोदेवतामिवभूतले ॥ एकवेणींकृशांदीनांमलिनांबरधारिणीम् ॥ ९ ॥ भूमौशयानांशोचंतींरामरामेतिभाषिणीम् ॥ त्राता
रंनाधिगच्छंतीमुपवासकृशांशुभाम् ॥ १० ॥ शाखांतच्छदमध्यस्थोददर्शकपिकुंजरः ॥ कृतार्थोऽहंकृतार्थोऽहंदृष्ट्वाजनकनंदिनीम् ॥ ११ ॥
मयैवसाधितंकार्यंरामस्यपरमात्मनः ॥ ततःकिलकिलाशब्दोबभूवांतःपुराद्बहिः ॥ १२ ॥ किमेतदितिसँल्लीनोवृक्षपत्रेषुमारुतिः ॥ आया
तंरावणंतत्रस्त्रीजनैःपरिवारितम् ॥ १३ ॥ दशास्यंविंशतिभुजंनीलांजनचयोपमम् ॥ दृष्ट्वाविस्मयमापन्नःपत्रखंडेष्वलीयत ॥ १४ ॥

और बीस हाथथे; उसके शरीरका वर्ण काले अंजनके ढेरके समानथा—ऐसे रावणको व उसके ऐश्वर्यको देख हनुमानजीको आश्चर्य हुआ व "जब इसकी और अपनी देखा देखी हुई तौ कदाचित् हमारे कार्यकी सिद्धिमें कुछ बिलम्बहो" इस डरसे हनुमानजी पत्तोंके गुच्छोंमें भलीभांति छिप गये ॥ १४ ॥ रावणके मनमें इससमय "रामके हाथसे मेरी मृत्यु किस प्रकारसे होगी ? श्रीरामजी सीताके लिये क्यों नहीं आये ? इसका क्या हेतुहै ?" ॥ १५ ॥ इसप्रकार सदा हृदयमें श्रीरामचंद्रजीका चिंतवन करता, ऐसे राक्षसोंके राजा रावणने उसरात्रिके पिछले पहरमें कि जिसमें हनुमानने लंकामें प्रवेशकिया ॥ १६ ॥ स्वप्न देखा कि— 'श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे कोई एक वानर आया है; वह इच्छानुसार जैसा चाहै वैसा रूप बना लेताहै; वह सूक्ष्मरूप धारण करके वृक्षके अग्रभागपर बैठ सीताजीकी ओर देखताहै ॥ १७ ॥ यह विलक्षण स्वप्न देखकर रावणने मनही

रावणोराघवेणाशुमरणंमेकथंभवेत् ॥ सीतार्थमपिनायातिरामःकिंकारणंभवेत् ॥ १५ ॥ इत्येवंचिंतयन्नित्यंराममेवसदाहृदि ॥ तस्मिन्दिनेऽपररात्रौरावणोराक्षसाधिपः ॥१६॥स्वप्नेरामेणसंदिष्टःकश्चिदागत्यवानरः॥कामरूपधरःसूक्ष्मोवृक्षाग्रस्थोऽनुपश्यति॥१७॥ इति दृष्ट्वाऽद्भुतंस्वप्नंस्वात्मन्येवानुचिंत्यसः ॥ स्वप्नःकदाचित्सत्यःस्यादेवंतत्रकरोम्यहम् ॥१८॥ जानकींवाक्छरैर्विद्ध्वदुःखितांनितरामहम् ॥ करोमिदृष्ट्वारामायनिवेदयतुवानरः ॥ १९ ॥ इत्येवंचिंतयन्सीतासमीपमगमद्द्रुतम् ॥ नूपुराणांकिंकिणीनांश्रुत्वासिंजितमंगना ॥ २० ॥ सीताभीतालीयमानास्वात्मन्येवसुमध्यमा ॥ अधोमुख्यश्रुनयनास्थितारामार्पितांतरा ॥ २१ ॥ रावणोऽपितदासीतामालोक्याहसुमध्यमे ॥ मांदृष्ट्वाकिंवृथासुभ्रुस्वात्मन्येवविलीयसे ॥ २२ ॥

मन विचार किया कि कभी २ स्वप्नभी सत्य होजाताहै; इसकारण अब ऐसी युक्ति कीजाय कि ॥ १८ ॥ जानकीको वचनबाणोंसे बाँधकर अति दुःखित करूं; वह वानर बैठा होगा तौ यह देखकर श्रीरामचंद्रजीसे निवेदन करैगा ॥ १९ ॥ ऐसा निश्चयकर वह अतिशीघ्र श्रीरामचंद्रजीके समीप चला; तब नूपुरका व कमरपट्टियोंके घूंघरुओंका शब्द सीताजीने सुना ॥ २० ॥ तब सुन्दरी जानकीजी घबड़ाईं और अपने शरीरको सकोड़कर (इकले होनेपर अस्तव्यस्त बैठतीथीं परन्तु अब सिमटकर) नीचेको मुखकरे बैठीं। उनके नेत्रोंमें आंसू आगये। अंतःकरण सर्वप्रकार श्रीरामचंद्रजीमें लगा रहा ॥ २१ ॥ उस अवसरमें रावण सीताजीको देखकर बोला । हेसुन्दरि ! तेरी कमर और तेरी भवोंकी तनावट कितनीरम

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

णीक दिखाई देतीहै। हेसीते! मुझको देखकर विना कारण इतना सिमटकर बैठनेका तुम क्यों खटराग करतीहो? ॥ २२ ॥ रामचंद्र[1] अपने छोटे भ्राताके साथ वनचरोंमें रहताहै, उसको कोई २ कभी२देखताहै, और कभी २ नहीं देखता ॥ २३ ॥ मैंने उनको देखनेके लिये अनेकवार दूत पठाये, और उन दूतोंने अनेक युक्तियोंसे चारोंओर देखा, परन्तु कहींभी न देखपाया ॥ २४ ॥ रामचन्द्रके मनमें तुम्हारी इच्छा या प्रीति कभीभी नहीं है इसकारण मैं कहताहूं कि–ऐसे पुरुषके पास रहकर तुमको क्या करनाहै? तुम सदाही उनको आलिंगन किया करतीथी; वह सर्वकाल तुम्हारे समीप

रामोवनचराणांहिमध्योतिष्ठतिसाऽनुजः ॥ कदाचिद्दृश्यतेकैश्चित्कदाचिन्नैवदृश्यते ॥ २३ ॥ मयातुबहुधालोकाःप्रेषितास्तस्यदर्शने ॥ नपश्यंतिप्रयत्नेनवीक्षमाणाःसमन्ततः ॥ २४ ॥ किंकरिष्यसिरामेणानिःस्पृहेणसदात्वयि ॥ त्वयासदालिंगितोऽपिसमीपस्थोऽपिसर्वदा ॥ २५ ॥ हृदयेऽस्यनचस्नेहस्त्वयिरामस्यजायते ॥ त्वत्कृतान्सर्वभोगांश्चत्वद्गुणानपिराघवः ॥ २६ ॥ भुंजानोऽपिनजानातिकृतघ्नो निर्गुणोऽधमः ॥ त्वमानीतामयासाध्विदुःखशोकसमाकुला ॥ २७ ॥ इदानीमपिनायातिभक्तिहीनःकथंव्रजेत् ॥ निःसत्वोनिर्ममो मानीमूढःपंडितमानवान् ॥ २८ ॥

भोग करता है परन्तु वह [एक वारभी] उसका स्मरण नहीं करता; वह इतना कृतघ्न, और अधम है! उसके अंगमें गुणका लेश मात्र नहीं! तुझको मैं यहांपर ले आया, तुम समान साध्वी स्त्री दुःख व शोकसे व्याकुल हो ॥ २७ ॥ तौभी वह अबतक यहांपर नहीं आया, हृदयमें प्रेम नहीं फिर वह इधर कैसे आता!! अंगमें शक्ति नहीं, ममता नहीं; केवल उनमें गर्व भरा हुआ है! वास्तविक मूर्ख होनेसे अपनेको पंडित समझता

---

[1] रावण महाब्रह्मज्ञानीथा, उसके वचन कुछेक निन्दासे भरे दीखते हैं। परन्तु गूढ़भावसे उसमें श्रीरामचन्द्रजीकी पूर्ण स्तुतिहै उस स्तुतिका यह अर्थ है।;–वनमें रहनेवाले तपस्वियोंके मध्यमें रामचंद्र रहतेहैं; वनवासी निर्लिप्त योगी लोग परमात्माको विष्णुरूपसे वा अनन्तरूपसे ध्यान करते हैं ॥ २३ ॥ मैंने उनको जानने के लिये आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा, और मन इन सब इन्द्रियोंको वारंवार लगाया था; परन्तु यह इन्द्रियां विशेष चेष्टा करकेभी उनको नहीं जानसकीं ॥ २४ ॥ वे निर्गुण और सदा परितृप्त हैं;उनको किसी बातको इच्छानहीं है,न तुम्हारी इच्छाहै। तुम सीता आदिमायाहो; राम परमेश्वर हैं; माया परमेश्वरके आश्रयसे रहतीहै; और परमेश्वर उसके समीपरहताहै ॥ २५ ॥ वह उसके गुणोंपर या उसके उत्पन्न किये हुए भोगोंपर आसक्त नहीं होता ॥ २६ ॥ न भोग करता; परन्तु वह “ जहात्येनां भक्तभोगामजोऽन्यः ” इस श्रुतिके कहे अनुसार ‘ मैं भोगताहूं ’ ऐसा अभिमान नहीं करता; वह कृतघ्न-कृतानि हंतिसः–कहिये कर्मोंका नाश करनेवाला है (उनका दर्शन पातेही भक्तोंके संचित व क्रियमाण कर्म नष्ट होता हैं) उसमें सत्व, रज, और तम, यह गुण नहीं हैं; वह अधम-न धमति शब्दविषयो भवति-कहिये अवर्णनीय स्वरूप है ॥ २७ ॥ मायापर उसकी भक्ति नहीं है; यह प्रगट है, वह गुण रहित, ममता शून्य, व अमानी कहिये; अहंकारसे अलग है; इस सिवाय वे मूढ़-मू (ब्रह्मा) च उः (शिवः)

CSU-Jaipur Campus Collection

है ! ॥ २८ ॥ हे सीते ! तू बड़ी माननी स्त्री है; जो तुझपर लक्ष्य नहीं देता; उस मनुष्योंमें नीचका तुझको क्या करना है ? मैं दैत्योंका राजा तुझपर अत्यन्त अनुरागीहूं; तू मुझे अंगीकारकर ॥ २९ ॥ मेरे वशमें आनेसे देव, गंधर्व नाग, यक्ष, किन्नर इनजातियोंकी सब स्त्रियां तेरी आज्ञामें रहेंगी ! ॥ ३० ॥ ” रावणके यह वचन सुनकर सीताजीको अत्यन्त क्रोध आया, उन्होंने शिर नीचाकर लिया; पतिव्रताको परपुरुषसे प्रत्यक्ष भाषण करना योग्य नहीं है; और जो कोई अपरिहार्य प्रसंग आही जाय तौ कुछ अचेतन वस्तु बीचमें धर ले; इस नियमके अनुसार रहताथा परन्तु॥ २५॥इस रामचंद्रके हृदयमें तुम्हारे प्रति प्रीतिका कुछभी संचार नहीं हुआ रामचंद्रने तुम्हारे प्रसादसे सबभोगोंको व गुणोंको ॥ २६॥

नराधमंत्वद्विमुखंकिंकरिष्यसिभामिनि ॥ त्वय्यतीवसमासक्तंमांभजस्वासुरोत्तमम् ॥ २९ ॥ देवगंधर्वनागानांयक्षकिन्नरयोषिताम् ॥ भविष्यसिनियोक्रीत्वंयदिमांप्रतिपद्यसे ॥ ३० ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वासीताऽमर्षसमन्विता ॥ उवाचाधोमुखीभूत्वाविधायतृणमंतरे ॥ ३१ ॥ राघवाद्बिभ्यतानूनंभिक्षुरूपंत्वयाधृतम् ॥ रहितेराघवाभ्यांत्वंशुनीवहविरध्वरे ॥ ३२ ॥ हृतवानसिमांनीचतत्फलंप्राप्स्यसेऽचिरात् ॥ यदारामशराघातविदारितवपुर्भवान् ॥ ३३ ॥ ज्ञास्यसेमानुषंरामंगमिष्यसियमांतिकम् ॥ समुद्रंशोषयित्वावाशरैर्बद्ध्वाथवारिधिम् ॥ ३४ ॥

तिनका बीचमें रखकर कहने लगीं॥ ३१॥ “ रे दुष्ट ! रे अधम ! रामचंद्रसे तुझे डर नहीं लगता है इसमें कुछ संशय नहीं; इस कारणसे तैंने गोसाईंका रूप धारण किया। जैसे कुत्ता मंडपमें किसीको न देखकर यज्ञका भाग चुरा लेता है; वैसेही जब राम लक्ष्मण आश्रममें न थे ॥ ३२ ॥ तब तू मुझे हरकर ले आया ! रे नीच ! परन्तु इस कर्मका फल तुझको शीघ्र भोगना पड़ेगा ! जिस समय रामचंद्रजीके बाण लगनेसे तेरे शरीरके टुकड़े उड़ेंगे, तिस समय तुझे ॥ ३३ ॥ समझ पड़ेगा कि रामचंद्रजीका मनुष्य रूप कैसा है, तब तू यमराजके भवनको चला जायगा ! समुद्रको सुखाय

च मू ताभ्यामूढः, नियामकत्वेन अभिमतः- कहिये ब्रह्मदेवजी इनके आपही नियामकहैं इस कारण मान युक्त हैं; विद्वान् पुरुषोंमें उनको मान मिलता है ॥ २८ ॥ वह नराधमो नर! अधमाः यस्मात्-कहिये मनुष्योंसे भी श्रेष्ठ हैं मायामें मिलनेवाले नहीं हैं ॥ (गूढ़ार्थ पूरा हुआ).

कर या समुद्रपर बाणोंका पुल बँधकर युद्धमें तेरा ॥ ३४ ॥ वधकरनेके लिये रामचंद्र लक्ष्मणजीके सहित आनेहीवाले हैं; इसमें कोई संशय नहीं। हे राक्षसाधम! मेरे कहनेकी सचाई तुझको शीघ्रही मालूम हो जायगी ॥ ३५ ॥ तेरी सेनाका, पुत्रोंका, और फिर तेरा संहार करकै श्रीरामचंद्रजी मुझे अपनी नगरी अयोध्यापुरीको ले जांयगे"। जानकीजीके यह कठोर वचन सुनकर राक्षसोंके राजा रावणको क्रोध आगया ॥ ३६ ॥ किसी समयमें क्रोधका वेग अनिवार हो जाता है; रावणको अपने देहकी सुधि न रही; वह खड्ग उठायकर जानकजिकि मारनेको धाया! उसके नेत्र लाल २ होगये ॥ ३७ ॥ मंदोदरी अपने पतिका कल्याण करनेके लिये सदा तैयार है; इस अवसरमें उसने पतिको रोककर कहा;– "महाराज! यह

हंतुंत्वांसमरेरामोलक्ष्मणेनसमन्वित्तः ॥ आगमिष्यत्यसंदेहोद्रक्ष्यसेराक्षसाधम ॥ ३५ ॥ त्वांसपुत्रंसहबलंहत्वानेष्यतिमांपुरम् ॥
श्रुत्वारक्षःपतिःक्रुद्धोजानक्याःपरुषाक्षरम् ॥ ३६ ॥ वाक्यंक्रोधसमाविष्टःखड्गमुद्यम्यसत्वरः ॥ हंतुंजनकराजस्यतनयांताम्रलोचनः
॥ ३७ ॥ मंदोदरीनिवार्याहपतिंपतिहितेरता ॥ त्यजैनांमानुषींदीनांदुःखितांकृपणांकृशाम् ॥ ३८ ॥ देवगंधर्वनागानांबह्वयःसंतिवरां
गनाः ॥ त्वामेववरयंत्युच्चैर्मदमत्तविलोचनाः ॥३९ ॥ ततोऽब्रवीद्दशग्रीवोराक्षसीर्विकृताननाः ॥ यथामेवशगासीताभविष्यतिसकामना॥
तथायतध्वंत्वरितंतर्जनादरणादिभिः ॥ ४० ॥ द्विमासाभ्यंतरेसीतायदिमेवशगाभवेत् ॥ तदासर्वसुखोपेताराज्यंभोक्ष्यतिसामया ॥
॥ ४१ ॥ यदिमासद्वयादूर्ध्वंमच्छय्यांनाभिनंदति ॥ तदामेप्रातराशायहत्वाकुरुतमानुषीम् ॥ ४२ ॥

क्या हीन मनुष्य जातिकी स्त्री है; इसको छोड़ दो; और दुःखके मारे विचारी दुबली होगई है? ॥ ३८ ॥ हे महाराज! जिनके मदयुक्त नेत्र हैं ऐसी देव, गंधर्व, और नागोंकी स्त्रियां बहुत हैं,– वे सबही तुम्हारे वरनेकी इच्छा रखती हैं; फिर उनको छोड़कर इसके पीछे काहेको पड़ेहो?' ॥ ३९ ॥ यह सुनकर विकराल मुखवाली राक्षसियोंसे रावण कहने लगा,–"हे निशाचरियो! भय दिखानेसे तथा आदर सत्कारादिसे, जिस प्रकारसे कामना युक्त होकर सीता मेरे वशमें आजाय ऐसा यत्न तुम करना ॥ ४० ॥ जो दो महीनेके बीचमें सीता मेरे वशमें आगई; तौ सब प्रकारके सुखोंसे युक्त होकर मेरे साथ राज्य भोगे ॥ ४१ ॥ जो दो महीनेके उपरान्तभी यह मेरी सेजपर आनेकी इच्छा नकरै तौ इस मानवीको

मारकर इसको हमारे प्रभातके भोजनको लाइयो ! ॥ ४२ ॥ यह कहकर रावण स्त्रियोंके साथ रनिवासमें गया; वह राक्षसियें जानकीजीके निकट आय अपनी बुद्धिसे किये हुए अलग २ उपायोंसे उनको डराने लगीं ॥ ४३ ॥ उनमेंकी एक राक्षसी जानकीजीसे बोलीः– "सीते ! तेरी तरुणाई (जवानी) वृथा चली । रावणके वशहो जाय तौ यह सफलहो जाय" ॥ ४४ ॥ दूसरी राक्षसी क्रोध करके कहनेलगी । "अहो ! देर करनेसे क्या प्रयोजन है ? अभी इस जानकीके अंगोंके टुकड़े २ कर अलग २ रांधने लगो ।" ॥ ४५ ॥ तीसरी खड्ग उठाय जानकीजीको मारने धाई; कोई एक विकराल मुखवाली राक्षसी मुँह फैलायकर डराने लगी ॥ ४६ ॥ इसप्रकार वह विकरालमुखी राक्षसियें जानकीजीको

इत्युक्त्वाप्रययौस्त्रीभीरावणोंऽतःपुरालयम् ॥ राक्षस्योजानकीमेत्यभीषयंत्यःस्वतर्जनैः ॥४३॥ तत्रैकाजानकीमाहयौवनंतेवृथागतम् ॥
रावणेनसमासाद्यसफलंतुभविष्यति ॥ ४४ ॥ अपराचाहकोपेनकिंविलंबेनजानकी ॥ इदानींछेद्यतामंगंविभज्यचपृथक्पृथक् ॥ ४५ ॥
अन्यातुखड्गमुद्यम्यजानकींहंतुमुद्यता ॥ अन्याकरालवदनाविदार्यास्यमभीषयत् ॥ ४६ ॥ एवंतांभीषयंतीस्ताराक्षसीर्विकृताननाः॥
निवार्यत्रिजटावृद्धाराक्षसीवाक्यमब्रवीत् ॥४७॥ शृणुध्वंदुष्टराक्षस्योमद्वाक्यंवोहितंभवेत् ॥ ४८ ॥ नभीषयध्वंरुदतींनमस्कुरुतजानकीम् ॥ इदानीमेवमेस्वप्नेरामःकमललोचनः ॥४९॥आरुह्यैरावतंशुभ्रंलक्ष्मणेनसमावृतः ॥ दग्ध्वालंकापुरींसर्वांहत्वारावणमाहवे ॥५०॥
आरोप्यजानकींस्वांकेस्थितोदृष्टोऽगमूर्धनि ॥ रावणोगोमयह्रदेतैलाभ्यक्तोदिगंबरः ॥ ५१ ॥

डराने लगीं; उनमेंकी एक त्रिजटा राक्षसी जो कि वृद्धथी सबको हटककर यह बोली ॥ ४७ ॥ हे दुष्ट राक्षसियों ! मेरे वचन सुनो, तौ तुम्हारा भला होगा; जानकी रोती है; उनको डरावो मत, वरन् उलटे उनके पाँवोंमें पड़ो ॥ ४८ ॥ अभी मैंने स्वप्न देखा है कि, मानो कमललोचन श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित श्वेत ऐरावत हाथीपर बैठे हुए लंकामें आये ॥ ४९ ॥ उन्होंने सारी लंका नगरीको जलायकर युद्धमें रावणका संहार किया, और यहभी देखा कि जानकीजीको अपनी गोदीमें श्रीरामजी आनंदसे बिठलाय पर्वतके शिखरपर बैठे हैं ॥ ५० ॥ रावण तेलसे न्हाया हुआ और नंगा होकर अपने शिरोंकी माला हाथमें लिये हुए पुत्र पौत्रोंके साथ गोबरके कुएमें स्नानकर रहा है ॥ ५१ ॥

कवल विभीषण भक्तियुक्त व संतुष्ट अंतःकरणसे श्रीरामचंद्रजीके समीप रहकर; उनके चरणोंकी सेवा करता है, ऐसा मैंने देखा है ॥५२॥ ऐसा मुझे जान पड़ता है, कि राम निश्चयही सर्वस्व रावणका संहार करकै विभीषणको राज्य देंगे; और श्रेष्ठ मुखवाली जानकीजीको गोदीमें बैठायकर निःसंदेह अपनी नगरीको चले जांयगे ॥ ५३ ॥ त्रिजटाके वचन सुनकर राक्षसियें घबराईं और जगह २ चुप चाप बैठ गईं; इसके उपरान्त उन सबको गाढ़ी नींद आगई ॥ ५४ ॥ राक्षसियोंके भय दिखानेसे जानकीजी बहुत डरीं कोई अपना रक्षा करता न मिलनेसे उनको मारे दुःखके मूर्च्छा आगई ! नेत्रोंमें आंसू भर आये, विचार करते २ वे आपही आप बोलने लगीं ॥ ५५ ॥ इसमें संशय नहीं कि–प्रातःकाल होतेही राक्षसियें

अगाहत्पुत्रपौत्रैश्चकृत्वावदनमालिकाम् ॥ विभीषणस्तुरामस्यसन्निधौहृष्टमानसः ॥ ५२ ॥ सेवांकरोतिरामस्यपादयोर्भक्तिसंयुतः ॥
सर्वथारावणंरामोहत्वासकुलमंजसा ॥ ५३ ॥ विभीषणायाधिपत्यंदत्त्वासीतांशुभाननाम् ॥ अंकेनिधायस्वपुरींगमिष्यतिनसंशयः ॥
॥ ५४ ॥ त्रिजटायावचःश्रुत्वाभीतास्ताराक्षसस्त्रियः ॥ तूष्णीमासंस्तत्रतत्रनिद्रावशमुपागताः ॥ ५५ ॥ तर्जिताराक्षसीभिःसासी
ताभीतातिविह्वला ॥ त्रातारंनाधिगच्छंतीदुःखेनपरिमूर्च्छिता ॥ ५६ ॥ अश्रुभिःपूर्णनयनाचिंतयंतीदमब्रवीत् ॥ प्रभातेभक्षयिष्यंति
राक्षस्योमांनसंशयः ॥ इदानीमेवमरणंकेनोपायेनमेभवेत् ॥ ५७॥ एवंसुदुःखेनपरिप्लुतासाविमुक्तकंठंरुदतीचिराय ॥ आलंब्यशाखांकृत
निश्चयामृतौनजानतीकिंचिदुपायमंगना ॥ ५८ ॥ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणउमाम० सुंदरकांडेद्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥ ॥ उद्बंध
नेनवामोक्ष्येशरीरंराघवंविना ॥ जीवितेनफलंकिंस्यान्ममरक्षोधिमध्यतः ॥ १ ॥

हमें खा जांयगी । ऐसा कौनसा उपाय है कि जिस्से अभी हमें मौत आजाय ॥ ५६ ॥ जीव देनेका निश्चय करलिया, परन्तु कोई उपाय नहीं सूझता । इस प्रकार दुःखसे अति व्याकुल हुईं वह सुन्दरी पुक्काछोड़के (ऊंचे स्वरसे) रोती हुई वृक्षकी शाखा हाथमें पकड़े बहुत देरतक खड़ी रहीं ॥ ५७ ॥ इ० श्रीमद० भा० सुं० द्वितीय सर्गः ॥ २ ॥ ॥ महादेवजी बोले, हे पार्वति ! “जानकी कहने लगीं हाँ हाँ अच्छी युक्ति सूझी ! अपने गलेमें फाँसी लगायकर देह त्याग करना चाहिये ! रामचंद्रजी पास नहीं, और मुझे इन राक्षसोंके मेलमें रहना पड़ता है, फिर हमारे जी

वनका क्या फल है? ॥ १ ॥ मेरी यह लम्बी वेणी फाँसीके फन्देकेलिये भली उपयोगी होगी," ऐसा विचार सोचकर जानकीजीने मनमें मरनेका निश्चय किया॥ २॥ऐसी जानकीजीको हनुमानजीने देखा।अबतक हनुमानजीका रूप छोटाहीथा; उन्होंने आपही आप थोड़ासा विचार करकै फिर हौले २ जिससे जानकीजीको सुनाई जाय ऐसे स्वरसे वचन कहने लगे। हनुमानजीने इस प्रकारसे कहा ॥ ३ ॥ "इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए दशरथ नामक एक प्रतापवान् राजा अयोध्या नगरीमें राज्य करतेथे। उनके जगद्विख्यात चार ॥ ४ ॥ पुत्र हुए वे सब देवताओंके समान पराक्रमी व तेजस्वी होनेसे सर्व श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त हैं। उनके नाम राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न हैं ॥ ५ ॥ उनमेंसे बड़े पुत्र पिताकी आज्ञासे भाई लक्ष्मण और भार्या

दीर्घावेणीममात्यर्थमुद्बंधायभविष्यति ॥ एवंनिश्चितबुद्धिंतांमरणायाथजानकीम् ॥ २ ॥ विलोक्यहनुमान्किंचिद्विचार्यैतदभाषत ॥
शनैःशनैःसूक्ष्मरूपोजानक्याःश्रोत्रगंवचः ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकुवंशसंभूतोराजादशरथोमहान् ॥ अयोध्याधिपतिस्तस्यचत्वारोलोकविश्रुताः
॥ ४ ॥ पुत्रादेवसमाःसर्वैलक्षणैरुपलक्षिताः ॥ रामश्चलक्ष्मणश्चैवभरतश्चैवशत्रुहा ॥ ५ ॥ ज्येष्ठोरामःपितुर्वाक्याद्दंडकारण्यमागतः ॥
लक्ष्मणेनसहभ्रात्रासीतयाभार्ययासह ॥ ६ ॥ उवासगौतमीतीरेपंचवट्यांमहामनाः ॥ तत्रनीतामहाभागासीताजनकनंदिनी ॥ ७ ॥
रहितेरामचंद्रेणरावणेनदुरात्मना ॥ ततोरामोऽतिदुःखार्तोमार्गमाणोऽथजानकीम् ॥ ८ ॥ जटायुषंपक्षिराजमपश्यत्पतितंभुवि ॥ तस्मै
दत्त्वादिवंशीघ्रमृष्यमूकमुपागमत् ॥ ९ ॥ सुग्रीवेणकृतामैत्रीरामस्याविदितात्मनः ॥ तद्भार्याहारिणंहत्वावालिनंरघुनंदनः ॥ १० ॥

सीताजीके साथ दंडकारण्यमें आये ॥ ६ ॥ वहांपर वह उदार मनके पुरुष गोदावरी नदीके तीर पंचवटीमें रहते हुए। वहां महाभाग्यवती जनकजी की कन्या॥ ७॥सीताजीको दुष्ट रावणने जब रामजी उनके पास नथे—चुरा लिया; तब रामजीको बहुतही दुःख हुआ। फिर वह जानकीजीके खोजनेको चले॥ ८॥इतनेहीमें पृथ्वीपर पड़ा हुआ पक्षिराज जटायुको श्रीरामचंद्रजीने देखा। उसको स्वर्ग लोक देकर अतिशीघ्र श्रीरामजी ऋष्यमूक पर्वतपर आये॥ ९॥श्रीरामचंद्रजीको अपने स्वरूपका पूर्णज्ञान है। वह संकल्पमात्रसे ही सब कार्य कर सक्ते हैं। इस कारण उनको किसीकी सहायता नहीं चाहिये। परन्तु सुग्रीवने अपने कार्यको रामजीके साथ सर्थ किया;—अर्थात् दोनोंमें मित्रता हुई। श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवकी भार्याके हरण करने

वाले वालिका वध करकै ॥ १० ॥ सुग्रीवको राज्याभिषेक किया व मित्रकार्यको साधा। सुग्रीव वानरोंके राजा हुए, तब उन्होंने वानरोंको बुलाया ॥ ११ ॥ और चारोंओर सीताजीके ढूँढ़नेको वानर भेज दिये। उनमेंसेही मैंभी एक सुग्रीवका मंत्री हूं॥१२॥संपातिके कहे अनुसार मैं अति शीघ्र शत योजन लंबा समुद्रको लांघकर आयाहूं; और सारी लंकामें उन पतिव्रता जानकीजीको ढूंढा ॥ १३ ॥ तहांपर कहीं पता नहीं लगा इस कारण पीछेसे– हौले हौले मैं अशोकवनिकाके मध्य ढूँढ़ने लगा; तौ यहांपर एक शिंशुपा वृक्षके नीचे दुःखसे डूबकर शोक करती हुई रामचंद्रजीकी पटरानी देवी जानकीजीको हमने देखा! ॥ १४ ॥ जिसके लिये मैं आयाथा वह कार्य पूरा होगया महाबुद्धिमान् (समयसूचक) हनुमानजी इतना कहकर चुप होरहे ॥ १५ ॥ यह सब वृत्तान्त क्रमसे सुनकर सीताजीको आश्चर्य हुआ, तत्काल उनके मुखसे यह बात निकली कि मैंने जो कुछ सुना है। यह शब्द क्या आकाशमें पवनने उच्चारण किये (पवनमें उठे) हैं ॥ १६ ॥ क्या मैं स्वप्नमें हूं? या मेरे मनका भ्रम हुआ? अथवा यह सब यथार्थ है. नहीं, नहीं, स्वप्न तौ हैही नहीं; क्योंकि दुःखके मारे मुझको नींद आतीही नहीं; और यहभी नहीं कहा जासकता कि मुझको भ्रम हुआ? क्योंकि पृथ्वीके सब पदार्थोंको मैं ठीक २ देखतीहूं! इसमें कोई संशय नहीं कि वास्तवमें इन शब्दोंको किसीने उच्चारण किया ॥ १७ ॥ मेरे कानोंको अमृतके समान लगनेवाले यह वचन जिस किसीने उच्चारण किये हैं; वह प्रिय भाषण करनेवाला महाभाग्य

राज्येऽभिषिच्यसुग्रीवंमित्रकार्यंचकारसः ॥ सुग्रीवस्तुसमानाय्यवानरान्वानरप्रभुः ॥११॥ प्रेषयामासपरितोवानरान्परिमार्गणे ॥ सीतायास्तत्रचैकोऽहंसुग्रीवसचिवोहरिः ॥ १२ ॥ संपातिवचनाच्छीघ्रमुल्लंघ्यशतयोजनम् ॥ समुद्रंनगरींलंकांविचिन्वञ्जानकींशुभाम् ॥ ॥ १३ ॥ शनैरशोकवनिकांविचिन्वञ्छिंशपातरुम् ॥ अद्राक्षंजानकीमत्रशोचंतींदुःखसंप्लुताम् ॥ १४ ॥ रामस्यमहिषींदेवींकृतकृत्योऽहमागतः ॥ इत्युक्त्वोपररामाथमारुतिर्बुद्धिमत्तरः ॥ १५ ॥ सीताक्रमेणतत्सर्वंश्रुत्वाविस्मयमाययौ ॥ किमिदंमेश्रुतंव्योम्निवायुनासमुदीरितम् ॥ १६ ॥ स्वप्नोवामेमनोभ्रांतिर्यदिवासत्यमेवतत् ॥ निद्रामेनास्तिदुःखेनजानाम्येतत्कुतोभ्रमः ॥ १७ ॥ येनमेकर्णपीयूषंवचनंसमुदीरितम् ॥ सदृश्यतांमहाभागःप्रियवादीममाग्रतः ॥ १८ ॥

वान प्राणी मेरे आगे प्रगट होवे (मुझको दर्शन दे) ॥ १८ ॥ जानकीजीके यह वचन सुनकर हनुमानजी पत्तोंके समूहमेंसे उतरकर धीरे २ सीताजीके सन्मुख आय पहुँचे ॥ १९ ॥ चटक पक्षीके समान छोटे शरीरवाला लाल मुख युक्त, पीली कांतिसे युक्त शरीरवाला एक वानर हौलेसे सीताजीको नमस्कार करके उनके आगे हाथ जोड़कर खड़ा रहा ॥२०॥ उसको देखकर सीताजी डरगईं; उनको जान पड़ा कि—यह रावण मुझे फँसानेके लिये कपटसे वानररूप धारणकर यहांपर आया है ॥ २१ ॥ ऐसा विचार मनमें आनेसे वह नीचेको शिर झुकाय मौन हो बैठी; तब फिर हनुमानजीने;—देवी तुम्हारे मनमें जो शंका हुई है ॥ २२ ॥ तैसा मैं (अर्थात् रावण) नहींहूं । माते ! मेरे विषयमें शंका छोड दो । मैं

श्रुत्वातज्जानकीवाक्यंहनुमान्पत्रखण्डतः ॥ अवतीर्यशनैःसीतापुरतःसमवस्थितः ॥ १९ ॥ कलविंकप्रमाणाङ्गोरक्तास्यःपीतवानरः ॥
ननामशनकैःसीतांप्रांजलिःपुरतःस्थितः॥२०॥दृष्ट्वातंजानकीभीतारावणोऽयमुपागतः॥ मांमोहयितुमायातोमाययावानराकृतिः॥२१॥
इत्येवंचिंतयित्वासातूष्णीमासीदधोमुखी॥ पुनरप्याहतांसीतांदेवियत्त्वंविशंकसे ॥ २२ नाहंतथाविधोमातस्त्यजशंकांमयिस्थिताम् ॥
दासोऽहंकोसलेंद्रस्यरामस्यपरमात्मनः ॥ २३ ॥ सचिवोऽहंहरींद्रस्यसुग्रीवस्यशुभप्रदे ॥ वायोःपुत्रोऽहमखिलप्राणभूतस्यशोभने ॥
॥ २४ ॥ तच्छ्रुत्वाजानकीप्राहहनूमन्तंकृतांजलिम् ॥ वानराणांमनुष्याणांसंगतिर्घटतेकथम् ॥ २५ ॥ यथात्वंरामचंद्रस्यदासोहमिति
भाषसे ॥ तामाहमारुतिःप्रीतोजानकींपुरतःस्थितः ॥ २६ ॥ ऋष्यमूकमगाद्रामःशबर्यानोदितःसुधीः ॥ सुग्रीवोऋष्यमूकस्थोदृष्टवात्रा
मलक्ष्मणौ ॥ २७ ॥

कोशलदेशके राजा परमात्मा श्रीरामचंद्रजीका दास हूं ॥ २३ ॥ हे कल्याणकारिणी ! मैं वानरोंके राजा सुग्रीवका मंत्रीहूं । हे सुन्दरि ! सब प्राणियोंका प्राण जो पवन है उसका मैं पुत्र हूं ॥ २४ ॥ हाथ जोडकर आगे खड़ेहुए हनुमानजीके वचन सुनकर जानकीजी बोलीं;—वानर और मनुष्यमें मित्रता किस प्रकारसे हुई ? ॥ २५ ॥ तुम कहते हो कि मैं रामचंद्रजीका दास हूं; पर यह कैसे संभव हो सकता है; यह प्रश्न सुनकर आगे खड़े हुए हनुमानजीको संतोष हुआ; उन्होंने जानकीजीसें कहा ॥ २६ ॥ हे देवी ! शबरीके कहे अनुसार महाबुद्धिमान श्रीरामचंद्रजी ऋष्यमूक

पर्वतपर आये; ऋष्यमूकपर्वतपर बैठे हुए सुग्रीवने रामचंद्र व लक्ष्मणजीको देखा ॥ २७ ॥ सुग्रीव डरे; और उन्होंने रामजीके मनका अभिप्राय जाननेके लिये मुझे पठाया । मैं ब्रह्मचारीके समान रूप धारणकर श्रीरामचंद्रजीके निकट गया ॥ २८ ॥ रामचंद्रजीका सद्भाव अर्थात् श्रेष्ठ अभिप्राय अथच ब्रह्मरूपत्व जानकर उन दोनोंको कंधेपर चढ़ाय सुग्रीवके समीप लेगया; और राम व सुग्रीवमें मित्रता करायदी ॥ २९ ॥ वालिने सुग्रीवकी स्त्रीको हरण कर लिया था; रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीने उसवालिको एकही बाणसे मारकर सुग्रीवको वानरोंके राज्यपर अभिषेकित किया, सुग्रीवने तुम्हारे ढूँढ़नेके लिये बड़े बलवान व पराक्रमी वानरोंको दशों दिशाओंमें भेजाहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥ मुझको चलताहुआ देखकर श्रीरामचंद्रजीने मुझसे आदरपूर्वक कहा ॥ ३२ ॥ हेपवनकुमार ! तुम्हारे ऊपरही हमारे सारे कार्य निर्भर हैं; सीताजीसे हमारा और लक्ष्मणका समस्त मंगल कहना ॥ ३३ ॥ और पहँचानकेलिये यह मेरी उत्तम अँगूठी कि जिसपर मेरे नामके अक्षरोंकी छाप है; सो सीताको सावधानतासे दीजो ॥ ३४ ॥ यह कहकर अपने हाथकी उँगलीसे श्रमपूर्वक अँगूठी उतारकर मुझे दीहै ! हे देवी ! उस अँगूठीको तुम देखो । यह अँगूठी बड़े यत्नसे मैं यहांपर लायाहूं ॥ ३५ ॥ इतना कहकर पवनके पुत्र हनुमानजीने वह मुद्रिका देवी सीताजीको दी; और वह वानर आपभी दोनों हाथ जोड़े नमस्कारकर दूर खड़ेरहे ॥ ३६ ॥ उस रामनामांकित अँगूठीको देखतेही सीताजीको परम आनंद हुआ, उन्होंने वह अँगूठी शिरपर चढ़ाई; इस वेला

भीतोमांप्रेषयामासज्ञातुंरामस्यहृद्गतम् ॥ ब्रह्मचारिवपुर्धृत्वागतोऽहंरामसन्निधिम् ॥ २८ ॥ ज्ञात्वारामस्यसद्भावंस्कंधोपरिनिधायतौ ॥
नीत्वासुग्रीवसामीप्यंसख्यंचाकरवंतयोः ॥ २९ ॥ सुग्रीवस्यहृताभार्यावालिनातंरघूत्तमः ॥ जघानैकेनबाणेनततोराज्येऽभ्यषेचयत् ॥
॥ ३० ॥ सुग्रीवंवानराणांसप्रेषयामासवानरान् ॥ दिग्भ्योमहाबलान्वीरान्भवत्याःपरिमार्गणे ॥ ३१ ॥ गच्छंतंराघवोदृष्ट्वामामभाषत
सादरम् ॥ ३२ ॥ त्वयिकार्यमशेषंमेस्थितंमारुतनंदन ॥ ब्रूहिमेकुशलंसर्वंसीतायैलक्ष्मणस्यच ॥ ३२ ॥ अंगुलीयकमेतन्मेपरिज्ञानार्थ
मुत्तमम् ॥ सीतायैदीयतांसाधुमन्नामाक्षरमुद्रितम् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वाप्रददौमह्यंकराग्रादंगुलीयकम् ॥ प्रयत्नेनमयाऽऽनीतंदेविपश्यांगु
लीयकम् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वाप्रददौदेव्यैमुद्रिकांमारुतात्मजः ॥ नमःकृत्वास्थितोदूराद्बद्धांजलिपुटोहरिः ॥ ३६ ॥ दृष्ट्वासीताप्रमुदिता
रामनामांकितांतदा ॥ मुद्रिकांशिरसाधृत्वास्रवदानंदनेत्रजा ॥ ३७ ॥

उनके नेत्रोंसे आनन्दके आंसू बहनेलगे ॥ ३७ ॥ जानकीजी बोलीं, पवनकुमार ! तुम हमारे प्राणदाता, बड़े चतुर व रामचंद्रजीके यथार्थ भक्त
और प्रियकर्ता हो ! मुझको निश्चयहै कि तुमपर रामचंद्रजीका पूर्ण विश्वास है ॥ ३८ ॥ जो ऐसा न होता तौ तुम परपुरुषको वे हमारे पास कैसे भेजते?
हनुमंत ! हमको कैसे २ दुःख मिलतेहैं; इत्यादि सर्वप्रकार से तुमने प्रत्यक्ष देखे हैं ॥ ३९ ॥ यह सर्व वृत्तान्त इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीसे कहना कि
सुनतेही उनको मुझपर दया आजावै। हे साधुशिरोमणे ! अब मेरे प्राण केवल दोही महीने रहैंगे; इतने अवकाशमें ॥ ४० ॥ जो रामचंद्र नहीं
आये; तौ वह दुष्ट मुझे खाडालैगा ! इसकारण विना विलम्बके वानरोंके राजा सुग्रीवको साथ लेकर ॥ ४१ ॥ व दूसरे सेनापतियोंके साथ प्रभु

कपेमेप्राणदातात्वंबुद्धिमानासिराघवे ॥ भक्तोऽसिप्रियकारीत्वंविश्वासोऽस्तितवैवहि ॥ ३८ ॥ नोचेन्मत्सन्निधिंचान्यंपुरुषंप्रेषयेत्कथ
म् ॥ हनुमन्दृष्टमखिलंममदुःखादिकंत्वया ॥ ३९ ॥ सर्वंकथयरामाययथामेजायतेदया ॥ मासद्वयावधिप्राणाःस्थास्यंतिममसत्तम
॥ ४० ॥ नागमिष्यतिचेद्रामोभक्षयिष्यतिमांखलः ॥ अतःशीघ्रंकपींद्रेणसुग्रीवेणसमन्वितः ॥ ४१ ॥ वानरानीकपैःसार्धंहत्वाराव
णमाहवे ॥ सपुत्रंसबलंरामोयदिमांमोचयेत्प्रभुः ॥ ४२ ॥ तत्तस्यसदृशंवीर्यंवीरवर्णयवर्णितम् ॥ यथामांतारयेद्रामोहत्वाशीघ्रंदशा
ननम् ॥ ४३ ॥ तथायतस्वहनुमन्वाचाधर्ममवाप्नुहि ॥ हनूमानपितामाहदेविदृष्टोयथामया ॥ ४४ ॥ रामःसलक्ष्मणःशीघ्रमागमि
ष्यतिसायुधः ॥ सुग्रीवेणससैन्येनहत्वादशमुखंबलात् ॥ ४५ ॥

रामचंद्रजी जो यहाँ आवैं,—और पुत्र सैन्य सबके सहित रावणका युद्धमें वधकर जो मुझे छुड़ावैं ॥ ४२ ॥ तभी ब्राह्मणोंने अनेकग्रंथोंमें जो उनके
(रामचन्द्रजीके) प्रभावका वर्णन कियाहै, वह योग्य होगा; जो ऐसा नहीं हुआ तौ कुछ योग्य नहीं हुआ। हेवीर ! जब तुम उनके पासजाओ तौ
इसभांति यहांका वृत्तान्त वर्णन करना कि जिस युक्तिसे रामचंद्र रावण का वध करके अतिशीघ्र मुझे छुड़ावैं ॥ ४३ ॥ ऐसा उपाय करो। हे हनु
मंत ! वाणीका ऐसा उपयोग करनेपर; अर्थात् रामचंद्रजीको ऐसा कहनेपर तुमको बड़ा धर्म होगा। हनुमानजीने उनसे कहा;—हे देवि ! जैसा हम
देखतेहैं उस्से तौ यही मालूम होताहै ॥ ४४ ॥ कि मेरे मिलतेही रामचंद्रजी अस्त्र शस्त्र लेकर, लक्ष्मण, सैना, व सुग्रीवके सहित यहांपर शीघ्र

आवैंगे। उनके आयुध नित्यसिद्धहैं; फिर वह पराक्रमसे रावणका वध करके ॥ ४५ ॥ तुमको अयोध्यामें लेजांयगे। हे जानकी ! इसमें कोई संशय नहीं है। यह सुनकर जानकीजीने हनुमानजीसे कहा हे हनुमन्त ! तुम्हारा कहना यथार्थ है; परन्तु रामचंद्रजी इस विस्तारवाले समुद्रको किसप्रकारसे तरेंगे ? ॥ ४६ ॥ उनके शरीरमें कुछ पंख तौ हैहीं नहीं परंतु वह सर्वव्यापी परमात्मा हैं इसके सिवाय उनके साथ वानरोंकी सेना और अनेक सेनापति किसप्रकारसे आवैंगे ! हनुमानजीने कहा वे दोनों श्रेष्ठ पुरुष मेरे कन्धेपर बैठकर ॥ ४७ ॥ आवैंगे; वानरोंके राजा सुग्रीवभी सेनाके साथ आकाश मार्गसे होकर क्षणभरमें इसविस्तार वाले समुद्रके पार उतर आवैंगे; निःसंदेह राक्षसोंके समूहको जला डालैंगे ॥ ४८ ॥ हे

समानेष्यतिदेवित्वामयोध्यांनात्रसंशयः ॥ तमाहजानकीरामःकथंवारिधिमाततम् ॥४६॥ तीर्त्वायास्यत्यमेयात्मावानरानीकपैःसह ॥
हनुमानाहमेस्कंधावारुह्यपुरुषर्षभौ ॥ ४७ ॥ आयास्यतःससैन्यश्चसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ विहायसाक्षणेनैवतीर्त्वावारिधिमाततम्॥ ४८ ॥
निर्दहिष्यतिरक्षौघांस्त्वत्कृतेनात्रसंशयः ॥ अनुज्ञांदेहिमेदेविगच्छामित्वरयान्वितः ॥ ४९ ॥ द्रष्टुंरामंसहभ्रात्रात्वरयामितवांतिकम् ॥
देविकिंचिदभिज्ञानंदेहिमेयेनराघवः ॥ ५० ॥ विश्वसेन्मांप्रयत्नेनततोगंतास्मुत्सुकः ॥ ततःकिंचिद्विचार्याथसीताकमललोचना ॥
॥ ५१ ॥ विमुच्यकेशपाशांतेस्थितंचूडामणिंददौ ॥ अनेनविश्वसेद्रामस्त्वांकपींद्रसलक्ष्मणः ॥ ५२ ॥ अभिज्ञानार्थमन्यच्चवदामितवसु
व्रत ॥ चित्रकूटगिरौपूर्वमेकदारहसिस्थितः ॥ मदंकेशिरआधायनिद्रातिरघुनंदनः ॥ ५३ ॥

देवी ! मुझे आज्ञा दो; मैं अति शीघ्ररामचंद्रजीके दर्शनको जाताहूं ॥४९॥ जैसेही मैं वहां गया कि भ्राताके साथ श्रीरामचंद्रजी तुम्हारे पास आनेकी शीघ्रता करैंगे परन्तु हे देवि! मुझको कोई ऐसी निशानी दो कि जिस्से श्रीरामचन्द्रजीको मेरा विश्वास आजाय ॥ ५० ॥ तुम्हारी दीहुई निशानी बड़ी सावधानतासे लेकर बड़े हर्षके साथ में श्रीरामचंद्रजीके पास जाऊंगा;—इसके उपरांत उन कमलनयन सीताजीने हनुमानजीके वचनोंपर थोड़ासा विचार करके ॥ ५१ ॥ अति शीघ्र अपनी वेणीमें उरसेहुए चूड़ामणिको निकालकर हनुमानजीको दिया और कहा; हे वानरश्रेष्ठ ! उसको दिखातेही राम-लक्ष्मणको विश्वास आजायगा ॥ ५२ ॥ हे सुव्रत ! निशानीके लिये मैं कोई औरभी बात तुमसे कहतीहूं. पहले चित्रकूटपर्वतपर रहते

हुए एक प्रसंगमें एकांतके समय श्रीरामजी मेरी गोदीमें शिर रखकर सोगये थे ॥ ५३ ॥ इतनेहीमें इन्द्रका पुत्र कागके रूपसे वहाँ आया; उसने मांस की आशासे लालसे दिखलाई देनेवाले मेरे पाँवके अँगूठेको वारम्वार पंजे और चोंचका प्रहार करके विदारण किया ॥ ५४ ॥ फिर श्रीरामजीने जागकर मेरे पाँवमें घाव हुआ देखा ! “हे प्रिये ! मुझको मलीन लगनेवाली यह बात किस दुष्टने की ?”॥ ५५ ॥ ऐसा कहकर उन्होंने आगेको देखा तो वह काग वारम्वार मेरे पाँवपर उड़कर आता है । उसका मुँह चोंच और पंजे रुधिर में भरेहुए हैं ऐसा उन्होंने देखा । उन्होंने क्रोधित होकर ॥५६॥ एक तिनका हाथमें ले उसपर दिव्य अस्त्रका प्रयोग किया; और सहजसेही उस कागपर फेंका, वह अग्निके समान धग २ करताहुआ

ऐंद्रःकाकस्तदागत्यनखैस्तुंडेनचासकृत् ॥ ५४ ॥ मत्पादांगुष्ठमारक्तंविददारामिषाशया ॥ ततोरामःप्रबुध्याथदृष्ट्वापादंकृतव्रणम् ॥
॥ ५५ ॥ केनभद्रेकृतंचैतद्विप्रियंमेदुरात्मना ॥ इत्युक्त्वापुरतोऽपश्यद्वायसंमांपुनःपुनः ॥५६ ॥ अभिद्रवंतंरक्तास्यनखतुंडंचुकोपह ॥
तृणमेकमुपादायदिव्यास्त्रेणाभियोज्यतत् ॥ ५७ ॥ चिक्षेपलीलयारामोवायसोपरितज्ज्वलत् ॥ अभ्यद्रवद्वायसश्चभीतोलोकान्भ्रम
न्पुनः ॥ ५८ ॥ इंद्रब्रह्मादिभिश्चापिनशक्योरक्षितुंतदा ॥ रामस्यपादयोरग्रेऽपतद्भीत्यादयानिधेः ॥ ५९ ॥ शरणागतमालोक्यराम
स्तमिदमब्रवीत् ॥ अमोघमेतदस्त्रंमेदत्त्वैकाक्षमितोव्रज ॥ ६० ॥ सव्यंदत्त्वाततःकाकएवंपौरुषवानपि ॥ उपेक्षतेकिमर्थंमामिदानींसोऽ
पिराघवः ॥ ६१ ॥हनूमानपितामाहश्रुत्वासीतानुभाषितम् ॥ देवित्वांयदिजानातिस्थितामत्ररघूत्तमः ॥ ६२ ॥

तिनका ॥ ५७ ॥ कागके अङ्गपर गया ! काग भयके मारे त्रिलोकी में भटकता हुआ फिरा । इन्द्र ब्रह्मादि देवताओंके हाथोंसेभी रक्षा होनेकी आशा नहीं रही । तब वह फिर ॥ ५८ ॥ दयासागर श्रीरामचंद्रजीके आगे जाय भयभीतहो उनके पाँवोंपर गिरपड़ा । उसको शरण आयाहुआ देखकर श्रीरामचंद्रजीने कहा ॥ ५९ ॥“ हे काग ! मेरा यह अस्त्र अमोघ है (कभी वृथा होनेवाला नहीं) इसकारण तू अपना एक नेत्र देकर यहां से जा !”तब वह काग अपना बांया नेत्र देकर चलागया । हे हनुमंत ! रामजीका प्रभाव इतना विलक्षणहै ॥ ६० ॥ क्या कारणहै जो ऐसे होनेपर भी अब श्रीरामचंद्रजी मेरी उपेक्षा करतेहैं ! हनुमानजीने सीताजीके वचन सुनकर उनसे कहा ॥६१॥ हे देवि ! तुम्हारा यहां होना जानकर श्रीराम

चंद्रजी क्षणभरमें राक्षसोंके ठठसे भरी हुई लंकापुरीको भस्म करडालेंगे ! जानकीजी बोलीं,—हे बालकं!(हनुमंत !) तुम राक्षसोंके साथ किसप्रकारसे युद्ध करोगे; तुम्हारा शरीर बहुतछोटा दिखाई देता है, और मुझे जानपड़ता है कि सारे वानर तुम समानही (छोटे छोटे) होंगे ॥ ६२ ॥६३॥ यह वचन सुनतेही हनुमानजीने सीताको अपना मूलरूप दिखाया; वह रूप मेरु व मंदर पर्वतके समान होनेसे राक्षसोंके समूहको भयदायक था; हनुमानजीको प्रचण्ड पर्वतके समान हुआ देखकर सीताजीके आनंदकी सीमा न रही; और वह उस श्रेष्ठ वानरसे बोलीं ॥६४॥६५॥ “ अहो ! बुद्धि व सामर्थ्यके अनुसार तुम्हारे शरीरका बलभी विलक्षण है। मुझे निश्चय है कि तुम अपने हाथमें लिया हुआ कार्य पूराकर दोगे; अब यहांसे शीघ्र श्रीरामचंद्रजीके पास जाओ ! नहीं तौ राक्षसियें देखलेंगी; वह रावणसे कहैंगी, और जिस्से यहांपर कोई बड़ा भारी अनर्थ हो जायगा । जाओ मार्गमें तुमको किसी प्रकारका संकट न होवे ” ॥ ६६ ॥ वानरको बहुत भूंख लगीथी इसकारण वह जानकीजीसे बोलेः— हे देवि ! तुम्हारा दर्शन हुआ। अब मुझको अपना पारण करना उचित जान पड़ता है, आपकी आंखोंके सन्मुख जो फल हैं; इन सबके खानेसे मेरी भूंख भागेगी ॥ ६७ ॥ जानकीजीने ‘ तथास्तु ’ कहा तब हनुमानजीने फलोंका भक्षण किया इसके उपरान्त जानकीजीका सन्देशा ले व वंदनकर वे जाने लगे; कुछ दूर जाकर उनके मनमें एक विचार उत्पन्न हुआः— ॥६८॥ जो दूत स्वामीका कार्य करनेकेलिये आकर जिस्से स्वामीके कार्यमें

करिष्यतिक्षणाद्भस्मलंकांराक्षसमंडिताम् ॥ जानकीप्राहतंवत्सकथंत्वंयोत्स्यसेऽसुरैः ॥ ६३ ॥ अतिसूक्ष्मवपुःसर्वेवानराश्चभवादृशाः
श्रुत्वातद्वचनंदेव्यैपूर्वरूपमदर्शयत् ॥ ६४ ॥ मेरुमंदरसंकाशंरक्षोगणविभीषणम् ॥ दृष्ट्वासीतानमंतंतंमहापर्वतसन्निभम् ॥ ६५ ॥ हर्षेण
महताविष्टाप्राहतंकपिकुंजरम् ॥ समर्थोऽसिमहासत्वद्रक्ष्यंतित्वांमहाबलम् ॥ राक्षस्यस्तेशुभःपंथागच्छरामांतिकंद्रुतम् ॥ ६६ ॥
बुभुक्षितःकपिःप्राहदर्शनात्पारणंमम ॥ भविष्यतिफलैःसर्वैस्तवदृष्टौस्थितैर्हिमे ॥ ६७ ॥ तथेत्युक्तःसजानक्याभक्षयित्वाफलंकपिः ॥
ततःप्रस्थापितोऽगच्छज्जानकींप्रणिपत्यसः ॥ किंचिद्दूरमथोगत्वास्वात्मन्येवान्वचिंतयत् ॥ ६८ ॥ कार्यार्थमागतोदूतःस्वामिकार्याविरोधतः
॥ अन्यत्किंचिदसंपाद्यगच्छत्यधमएवसः ॥ ६९ ॥

कुछ हानि नहो (वरन वह कार्य स्वामीका मन माना हो) ऐसा कोई दूसरा कार्य विना किये चला जाय उसकी गिन्ती अधम दूतोंमें होती है ॥ ६९ ॥ इसकारण हम अपने पराक्रमके अनुसार कोई दूसरा कार्य करकै रावणकी भेंट लें; उस्से चार बातें करें; फिर रामचंद्रजीका दर्शन करनेको चले जावें ॥ ७० ॥ मनमें ऐसा निश्चय करकै उन महापराक्रमी वानरने वृक्षोंके समूहका समूह उखाड़ लिया; और एकक्षणभरमें अशोक वनिकाको वृक्षशून्य कर दिया ॥ ७१ ॥ जिस वृक्षके तले सीताजी थीं केवल उस वृक्षको छोड़ बाकी सब उपवनको उखाड़ दिया ! उस उपवनके वृक्षोंको उजड़ता हुआ देखकर राक्षसियें ॥ ७२ ॥ जानकीजीसे कहने लगीं ' यह वानरके समान दीखनेवाला अजान वीर कौन है ? '

अतोऽहंकिंचिदन्यच्चकृत्वादृष्ट्वाथरावणम् ॥ संभाष्यचततोरामदर्शनार्थंव्रजाम्यहम् ॥ ७० ॥ इतिनिश्चित्यमनसावृक्षखंडान्महाबलः ॥ उत्पाट्याशोकवनिकांनिर्वृक्षामकरोत्क्षणात् ॥ ७१ ॥ सीताश्रयनगंत्यक्त्वावनंशून्यंचकारसः ॥ उत्पाटयंतंविपिनंदृष्ट्वाराक्षसयोषितः ॥ ७२ ॥ अपृच्छज्जानकींकोऽसौवानराकृतिरुद्भटः ॥ ७३ ॥ जानक्युवाच ॥ भवत्यएवजानंतिमायांराक्षसनिर्मिताम् ॥ नाहमेनंविजानामिदुःखशोकसमाकुला ॥ ७४ ॥ इत्युक्तास्त्वरितंगत्वाराक्षस्योभयपीडिताः ॥ हनूमताकृतंसर्वंरावणायन्यवेदयन् ॥ ७५ ॥ देवकश्चिन्महासत्वोवानराकृतिदेहभृत् ॥ सीतयासहसंभाष्यह्यशोकवनिकांक्षणात् ॥ उत्पाट्यचैत्यप्रासादंबभंजामितविक्रमः ॥ ७६ ॥ प्रासादरक्षिणःसर्वान्हत्वातत्रैवतास्थितवान् ॥ तच्छ्रुत्वातूर्णमुत्थायवनभंगंमहाऽप्रियम् ॥ ७७ ॥

॥ ७३ ॥ जानकीजी बोलीं,–"राक्षसोंकी मायाको तुम्हीं जानो । मैं तौ अपने दुःख शोककी आगसे आपही जल रहीहूं । मैं नहीं जानती कि यह कौन है "॥ ७४ ॥ सीताजीसे ऐसा सुनकर भयके मारे राक्षसियें भाग गई । उन्होंने अतिशीघ्र जाकर हनुमानजीके किये हुए सब कर्म रावणसे कहे॥ ७५॥ "हे महाराज ! कोई एक महाबलवान प्राणी वानरके समान देह धारण करकै आया है; उसका पराक्रम अनंत दीखता है उसने सीताजीसे वार्ता करकै अशोक वनके वृक्ष सबही उखाड़ डाले; और वहाँका देवतालय तोड़ डाला ! ॥ ७६ ॥ उस मंदिरके सब रखवालोंको मारकर वह यहीं खड़ाथाः–और अबभी वहाँ खड़ा है । " उपवन उजाड़नेकी अत्यन्त अप्रिय वार्ता कानमें पड़तेही एक साथ चौंककर

उठबैठा ॥ ७७ ॥ उस राक्षसोंके राजा रावणने तत्काल हनुमानजीके ऊपर दश करोड़ सेवकोंको पठा दिया । हनुमानजी उस उजाड़े हुए मंदिरके पहले चौकमें बैठेथे ॥ ७८ ॥ इस समय उनका शरीर पर्वतके समान प्रचंड था । एक लोहेका थंभ उन्होंने अपना हथियार बनाया था । उनकी पूंछ थोड़ी थोड़ी हल रहीथी, उनका मुख व लाल शरीर भयंकर दिखलाई दे रहाथा ॥ ७९ ॥ राक्षसोंके बड़े जत्थेको अपने ऊपर आता हुआ देखकर हनुमानजी सिंहके समान गर्जे; उस सिंहनादको सुनकर राक्षसोंका गर्व टूटगया ॥ ८० ॥ फिर भयंकर आकारवाले हनुमानजी सब राक्षसोंकी ओर चले । तब राक्षस लोगभी अनेक प्रकारके अस्त्र हनुमानपर चलाने लगे ॥ ८१ ॥ इसके उपरान्त जिस प्रकार कोई यूथपति

किंकरान्प्रेषयामासनियुतंराक्षसाधिपः ॥ निर्भग्नचैत्यप्रासादप्रथमांतरसंस्थितः ॥ ७८ ॥ हनुमान्पर्वताकारोलोहस्तंभकृतायुधः ॥
किंचिल्लांगूलचलनोरक्तास्योभीषणाकृतिः ॥ ७९ ॥ आपतंतंमहासंघंराक्षसानांददर्शसः ॥ चकारसिंहनादंचश्रुत्वातेमुमुहुर्भृशम् ॥
॥ ८० ॥ हनूमंतमथोदृष्ट्वाराक्षसाभीषणाकृतिम् ॥ निर्जघ्नुर्विविधास्त्रौघैःसर्वराक्षसघातिनम् ॥ ८१ ॥ ततउत्थायहनुमान्मुद्गरेणसमंततः॥
निष्पिपेषक्षणादेवमशकानिवयूथपः ॥८२॥ निहतान्किंकराञ्छुत्वारावणःक्रोधमूर्च्छितः ॥ पंचसेनापतींस्तत्रप्रेषयामासदुर्मदान्॥८३॥
हनूमानपितान्सर्वांल्लोहँस्तंभेनचाहनत् ॥ ततःक्रुद्धोमंत्रिसुतान्प्रेषयामाससप्तसः ॥ ८४ ॥ आगतानपितान्सर्वान्पूर्ववद्वानरेश्वरः ॥ क्षणा
न्निःशेषतोहत्वालोहस्तंभेनमारुतिः॥८५॥पूर्वस्थानसुपाश्रित्यप्रतीक्षन्राक्षसान्स्थितः॥ततोजगामबलवान्कुमारोऽक्षःप्रतापवान् ॥ ८६ ॥

(झुंडकी रक्षा करनेवाला मत्त गजराज) मच्छरोंको एक क्षणभरमें पीस डाल सकता है (कोई क्लेश उसको नहीं होता) वैसेही हनुमानजीने उठकर मुद्गरसे उन सारे राक्षसोंका चूर्ण कर डाला ॥ ८२ ॥ अपने सेवक लोगोंके मरनेका वृत्तान्त सुनकर मारे क्रोधके रावण अपने देहके भानको भूल गया; उसने सेनाके साथ मतवाले पांच सेनापतियोंको हनुमानजीके ऊपर भेजा ॥ ८३ ॥ हनुमानजीने लोहेके थंभसे उन सबको मार डाला; तब रावणने संतापित होकर क्रोध करकै मंत्रीके सात पुत्रोंको भेजा ॥ ८४ ॥ वानरोंके अधीश्वर उन हनुमानजीने पहलेके समान उन रावणकें भेजे हुए राक्षसोंको एक २ करके लोहेके थंभसे मार डाला ॥ ८५ ॥ और वह फिर पहली जगह जाकर राक्षसोंकी बाट देखते रहे । फिर

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

महाबलवान व प्रतापी रावणका पुत्र अक्ष चला आया ॥ ८६ ॥ इसको देखतेही हनुमानजी मुद्गरको लेकर आकाशको उड़ गये; व अति शीघ्रताके साथ आकाशसे नीचे उतरकर अक्षके मस्तकपर मुद्गरका प्रहार किया ॥ ८७ ॥ मुद्गरके लगतेही अक्ष मरगया । फिर हनुमानजीने उसकी सारी सेनाको मार डाला ! ॥ ८८ ॥ राक्षसोंके राजा (रावण) ने अक्षके मरनेकी वार्ता सुनी,—तब वह बहुत संतापित होकर इन्द्रजितसे बोलाः— ॥ ८९ ॥ "हे पुत्र ! कुमार (अक्ष) का वध करनेवाला वह शत्रु जहांपर है; तिस स्थानमें मैं जाताहूं; और उसको मार डालताहूं या बांधकर तेरे समीप लिये आताहूं" ॥ ९० ॥ यह सुनकर इन्द्रजित पितासे बोलाः— 'हे महाराज ! आप पूर्ण विचारवान हैं; मैं आपको

तमुत्पपातहनुमान्दृष्ट्वाऽऽकाशेसमुद्गरः ॥ गगनात्त्वरितोमूर्ध्निमुद्गरेणव्यताडयत् ॥ ८७ ॥ हत्वातमक्षंनिःशेषंबलंसर्वंचकारसः ॥ ८८ ॥ ततःश्रुत्वाकुमारस्यवधंराक्षसपुंगवः ॥ क्रोधेनमहताविष्टइंद्रजेतारमब्रवीत्॥८९॥पुत्रगच्छाम्यहंतत्रयत्रास्तेपुत्रहारिपुः ॥ हत्वातमथवाबद्ध्वाआनयिष्यामितेंऽतिकम् ॥ ९० ॥ इंद्रजित्पितरंप्राहत्यजशोकंमहामते ॥ मयिस्थितेकिमर्थंत्वंभाषसेदुःखितंवचः ॥ ९१ ॥ बद्ध्वाऽनेष्येद्रुतंतातवानरंब्रह्मपाशतः ॥ इत्युक्त्वारथमारुह्यराक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥ ९२ ॥ जगामवायुपुत्रस्यसमीपंवीरविक्रमः ॥ ततोऽतिगर्जितंश्रुत्वास्तंभमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ ९३ ॥ उत्पपातनभोदेशंगरुत्मानिवमारुतिः ॥ ततोभ्रमंतंनभसिहनूमंतंशिलीमुखैः ॥ ९४ ॥ विद्ध्वातस्यशिरोभागमिषुभिश्चाष्टभिःपुनः ॥ हृदयंपादयुगलंषड्भिरेकेनवालधिम् ॥ ९५ ॥

क्या समझा सकताहूं । परन्तु अब अवसरमें आप शोक छोड़ दीजिये । मेरे यहांपर रहतेहुए आप दुःखित वचन किस कारणसे कहते हैं ?॥ ९१ ॥ हे तात ! मैं अभी जायकर उस वानरको ब्रह्मपाशमें बाँधकर लिये आताहूं ! " यह कहकर इन्द्रजित अति शीघ्र रथपर चढ़ा; और साथमें बहुतसे राक्षस लेकर ॥ ९२ ॥ पवनकुमारके निकट आया । वहां जाकर इन्द्रजित गर्जा उस गर्जनाको सुनकर वह प्रतापी वानर वही लोहेका थंभ हाथमें ले ॥ ९३ ॥ गरुड़के समान उड़ान मारकर आकाशमें गये; हनुमानजीको आकाशमें भ्रमण करता हुआ देखकर इन्द्रजितने उन पर तीक्ष्ण बाणोंका ॥ ९४ ॥ प्रहार किया; आठ बाण मस्तकपर मारे; फिर आठही बाण हृदयमें मारे; छेः बाण दोनों पाँवोंपर मारे और एक

बाणसे पूंछको ॥ ९५ ॥ भेद करकै फिर सिंहनाद किया। विद्ध होनेपर उन प्रतापशाली हनुमानजीको अत्यन्त आनंद हुआ; उन्होंने अति हर्षसे
अपना मुद्गर उठाय ॥ ९६ ॥ इन्द्रजितके सारथीको मार घोड़ेके साथ क्षणभरमें रथको चूर्ण कर डाला। फिर वह बलवान् इन्द्रजित दूसरे
रथमें बैठा ॥ ९७ ॥ और शीघ्रही ब्रह्मास्त्र सिद्धकर उसके प्रहारसे वानरश्रेष्ठ हनुमानजीको बांध; राजा रावणके समीप लेचला इन्द्रजित
महाबलवानथा ॥ ९८ ॥ अहो! लोक जिसके नामका नित्य जप करकै अज्ञानसे उत्पन्न हुए कर्म बंधनको क्षण मात्रमें दूर व
हाय करोड़ सूर्यके समान तेजःपुंज व कल्याणकारक ईश्वरके पदको तत्काल प्राप्त होते हैं (ऐसा जिनके नामका माहात्म्य है) ॥ ९९ ॥ उन

भेदयित्वाततोघोरंसिंहनादमथाकरोत् ॥ ततोऽतिहर्षाद्धनुमान्स्तंभमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ ९६॥ जघानसारथिंसाश्वंरथंचाचूर्णयत्क्षणात् ॥
ततोऽन्यंरथमादायमेघनादोमहाबलः ॥ ९७ ॥ शीघ्रंब्रह्मास्त्रमादायबद्ध्वावानरपुंगवम् ॥ निनायनिकटंराज्ञोरावणस्यमहाबलः ॥ ९८ ॥
यस्यनामसततंजपंतियेऽज्ञानकर्मकृतबंधनंक्षणात् ॥ सद्यएवपरिमुच्यतत्पदंयांतिकोटिरविभासुरंशिवम् ॥ ९९ ॥ तस्यैवरामस्यपदांबु
जंसदाहृत्पद्ममध्येसुनिधायमारुतिः ॥ सदैवनिर्मुक्तसमस्तबंधनःकिंतस्यपाशैरितरैश्चबंधनैः ॥ १०० ॥ ॥इतिश्रीमदध्यात्मरामायणे
उमामहेश्वरसंवादेसुंदरकांडेतृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ यांतंकपींद्रंधृतपाशबन्धनंविलोकयंतंनगरंविभीतवत् ॥ अताड
यन्मुष्टितलैःसुकोपनाःपौराःसमंतादनुयांतईक्षितुम् ॥ १ ॥ ब्रह्मास्त्रमेनंक्षणमात्रसंगमंकृत्वागतंब्रह्मवरेणसत्वरम् ॥ ज्ञात्वाहनूमानपिफ
ल्गुरज्जुभिर्धृतोययौकार्यविशेषगौरवात् ॥ २ ॥

श्रीरामचंद्रजीके चरणकमलोंको हनुमानजीने अपने हृदय कमलमें सदा सर्वकाल पूर्णपनासे स्थापित कियाहै; अर्थात् उनके समस्त बंधन छूटगये
हैं; उनका ब्रह्मपाश या दूसरे क्षुद्र बंधन क्या करनेवाले हैं! अर्थात् कुछ भी नहीं करसक्के ॥ १०० ॥ इ० श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहे०सुन्दर
काण्डे भाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥हनुमानजीका रावणसे वार्तालाप और लंकाका भस्म होना। श्रीमहादेवजी कहते हैं,—कि हे पार्वती! अपने
हाथमें जिन्होंने पाशका बंधन धारण कियाहै,ऐसे भयभीत के समान लंकापुरीको देखतेहुए हनुमानजीको बड़े क्रोधयुक्त स्वभाववाले नगरनिवासी
मूकोंसे मारतेहुए चारोंओरसे देखनेके लिये पीछे चले आवैं हैं ॥ १ ॥ पहलेही ब्रह्माजीने हनुमानजीको वरदान दियाथा कि हमारा ब्रह्मास्त्र तुम्हें स्पर्श

नहीं करेगा, इसकारण ब्रह्मास्त्र उनको एक क्षणभर स्पर्श करके चलागया,इसबातको जानते हुएभी हनुमानजी पतले डोरियोंसे बाँधकर लंकाको जलाने और रावणसे वार्ता करनेके हेतु गये ॥ २ ॥ उससमय रावण सभामें बैठाहुआ था; इन्द्रजित हनुमानजीको रावणके आगे खड़ाकरके कहने लगा;—हेतात ! इस वानरनेही बड़े २ दैत्योंको मारा है, मैं इसको ब्रह्मास्त्रसे बांधकर यहां लायाहूं ॥ ३ ॥ इसकारण हेतात ! यह वानर लौकिक साधारण बंदरोंके समान नहीं है इससे मन्त्रियोंके साथ विचार करके जो करना होवे सो करो;बस इतनाही मैं सूचित किये देताहूं,सभाके बीचमेंही रावण के धोरे प्रहस्तनामक एक राक्षस बैठाथा; उसके शरीरकी कांति काजलके पर्वतके समानथी; इन्द्रजितके वचन सुनकर राक्षसोंके राजा रावणने

सभांतरस्थस्यचरावणस्यतंपुरोनिधायाहबलारिजित्तदा ॥ बद्धोमयाब्रह्मवरेणवानरःसमागतोऽनेनहतामहासुराः ॥ ३ ॥ यद्युक्तमत्रार्य
विचार्यमंत्रिभिर्विधीयतामेषनलौकिकोहरिः ॥ ततोविलोक्याहसराक्षसेश्वरःप्रहस्तमग्रेस्थितमंजनाद्रिभम् ॥ ४ ॥ प्रहस्तपृच्छैनमसौ
किमागतःकिमत्रकार्यंकुतएववानरः ॥ वनंकिमर्थंसकलंविनाशितंहताःकिमर्थंममराक्षसाबलात् ॥ ५ ॥ ततःप्रहस्तोहनुमंतमादरात्प
प्रच्छकेनप्रहितोऽसिवानर ॥ भयंचतेमास्तुविमोक्ष्यसेमयासत्यंवदस्वाखिलराजसन्निधौ ॥ ६ ॥ ततोऽतिहर्षात्पवनात्मजोरिपुंनिरीक्ष्य
लोकत्रयकंटकासुरम् ॥ वक्तुंप्रचक्रेरघुनाथसत्कथांक्रमेणरामंमनसास्मरन्मुहुः ॥ ७ ॥ शृणुस्फुटंदेवगणाद्यमित्रहेरामस्यदूतोऽहमशेषहृ
त्स्थितेः ॥ यस्याखिलेशस्यहृताधुनात्वयाभार्यास्वनाशायशुनेवसद्धविः ॥ ८ ॥

प्रहस्तको आज्ञा दी ॥ ४ ॥ कि "हे प्रहस्त ! इस्से पूछो कि यह वानर कौन है ? कहांसे आयाहै ? यहां आनेका इसका क्या काम है ? इसने सारे वनका और मंदिरका किस कारणसे नाश करा; और बलसे राक्षसोंको किसवास्ते मारा ?" ॥ ५ ॥ इसके उपरांत प्रहस्तने हनुमानजीसे आदरपूर्वक (सौम्यपन) से पूछा;—"तुझे किसने भेजा ? तुझे डरनहीं ? जो कुछ यथार्थ बातहो वह इस त्रैलोक्याधिपति (रावण) से निवेदनकर; तब मैं तुझें छोड़दूंगा" ॥६॥ उससमय हनुमानजीको अत्यन्त हर्ष हुआ, उन्होंने अपने शत्रु; त्रिलोकीको कांटेके समान त्रास देनेवाले रावण राक्षसकी ओर देखकर अन्तःकरणमें वारम्वार श्रीरामचंद्रजीका स्मरण करके, रघुनाथजीकी पवित्र कथा क्रमसे कहनी आरम्भ की ॥ ७ ॥ हे देवगण व नागादिके शत्रो ! मैं स्पष्ट २ सर्व वृत्तान्त कहताहूं सुनो । कुत्तेने होमका पवित्रद्रव्य हरणकिया; तौ उसको कौनसा बड़ा लाभ हुआ; वरन् वह

उसको अपने नाशहींके कारण हरण करताहै; ऐसेही तुमने जिन शक्तिमान् प्रभुकी भार्याको चुरा लाकर अपने नाशका साधन सिद्ध कियाहै; उन सर्व प्राणियोंके अंतरमें रहनेवाले उन्हीं रामचंद्रजीका मैं दूतहूं ॥ ८ ॥ उन रामजीने मतंगपर्वतपर जाय अग्निके सन्मुख सुग्रीवसे मित्रताकी; व एकही बाणसे वालिका वध करके उस सुग्रीवकोही वानरोंका आधिपत्य; (राज्यदिया) वह महाबलवान् वानरोंके राजा सुग्रीव राम लक्ष्मणके साथ तेरे ऊपर क्रोधकियेहुए प्रवर्षण पर्वतपर बैठेहैं । हे रावण ! उनके आश्रयमें बड़े२ पराक्रमी वानरोंके करोड़ों यूथहैं ॥९॥१०॥ उन्होंने पृथ्वीकी कन्या (सीताजी) को ढूंढनेके लिये दशों दिशामें बड़े २ वानर जो कि सामर्थ्यवान् थे पठाये; उनमेंहीका मैंभी पवनका पुत्र एकसाधारण वानरहूं । मैं सीताजीको ढूंढ़ताहुआ धीरे २ यहाँ आयाहूं ॥ ११ ॥ जिनके नेत्र कमलदलके समानहैं उन जानकीजीको मैंने देखा । मैं जातिका वानरहूं, यह बात सब जगत्में प्रसिद्धहै कि वानरोंको वृक्षोंका तोड़ना अच्छा लगता है; तैसेही अपने चंचल स्वभावके अनुसार–मैंने वनका नाशकिया;–फिर मैंने देखा कि मेरे मारनेकी इच्छा करके कुछ एक राक्षस हाथमें धनुषबाण लिये चले आते हैं ॥१२॥ तब मैंने उनका वधकिया और अपने शरीरकी रक्षाकी । हेराजा ! क्योंकि सब प्राणियोंको अपना शरीर दूसरोंसे प्यारा है । फिर मेघनादनामका एक राक्षस मुझको ब्रह्मास्त्रपाशसे बांधकर यहां ले आया ॥ १३ ॥ हे रावण! मुझे ब्रह्माजीका वरहै; उसके प्रभावसे वह अस्त्र मेरे अंगको स्पर्श करतेही छोड़गया ! यह सब मैं जानताहूं तौ मेरे बँधकर

सराघवोऽभ्येत्यमतंगपर्वतंसुग्रीवमैत्रीमनलस्यसन्निधौ ॥ कृत्वैकबाणेननिहत्यवालिनंसुग्रीवमेवाधिपतिंचकारतम् ॥ ९ ॥ सवानराणामधिपोमहाबलीमहाबलैर्वानरयूथकोटिभिः ॥ रामेणसार्धंसहलक्ष्मणेनभोप्रवर्षणेऽमर्षयुतोऽवतिष्ठते ॥ १० ॥ संचोदितास्तेनमहाहरीश्वराधरासुतांमार्गयितुंदिशोदश ॥ तत्राहमेकःपवनात्मजःकपिःसीतांविचिन्वञ्छनकैःसमागतः ॥ ११ ॥ दृष्टामयापद्मपलाशलोचनासीताकपित्वाद्विपिनंविनाशितम् ॥ दृष्ट्वाततोऽहंरभसासमागतान्मांहंतुकामान्धृतचापसायकान् ॥ १२ ॥ मयाहतास्तेपरिरक्षितंवपुःप्रियोहिदेहोऽखिलदेहिनांप्रभो ॥ ब्रह्मास्त्रपाशेननिबध्यमांततःसमागमन्मेघनिनादनामकः ॥ १३ ॥ स्पृष्ट्वैवमांब्रह्मवरप्रभावतस्त्यक्त्वागतंसर्वमवैमिरावण ॥ तथाप्यहंबद्धइवागतोहितंप्रवक्तुकामःकरुणारसार्द्रधीः ॥ १४ ॥

यहां आनेका कारण तुझको कुछ हितोपदेश करना है। मैं यथार्थही तुझसे कहताहूं; तेरे ऊपर दयारूप रस उत्पन्न होनेसे मेरा अंतःकरण बहुतही गीलाहुआहै (तेरे ऊपर दया आनेसे मेरा कलेजा टूटताहै) ॥ १४ ॥ हे रावण! थोड़ा अच्छे बुरेका विचारकर इस बातको कि लोकोंको कैसी २ गति मिलती हैं (धर्माचरणसे स्वर्ग और अधर्म करनेसे नरक मिलताहै) मनमें ला राक्षसी बुद्धिको मत अंगीकारकर; संसारसे मुक्ति होनेका साधनमार्ग दूसरेको पीड़ाका न देनाहै; ऐसा देवताओंने कहा है उसमार्गका आश्रयले; तौ तेरी आत्माका अत्यन्त कल्याण होगा ॥ १५ ॥ जो तुम कहो कि ज्ञानमार्गमें मुझे अधिकार नहीं है तौ इसका उपाय कहताहूं;हेदशानन! तुम पौलस्त्यके पुत्र कुबेरके भाई; उत्तम वंशमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणहो; यदि जो तुम्हारीदेहके विषय आत्मबुद्धिहोवै तौ तुम विचार करके देखलो कि तुम राक्षस नहीं; वरन् उत्तम वंशमें उत्पन्नहुए ब्राह्मणहो। देखो देहसे आत्मा

विचार्यलोकस्यविवेकतोगतिंनराक्षसींबुद्धिमुपैहिरावण ॥ दैवींगतिंसंसृतिमोक्षहैतुकींसमाश्रयात्यंताहितायदेहिनः ॥ १५ ॥ त्वंब्राह्मणो ह्युत्तमवंशसंभवःपौलस्त्यपुत्रोऽसिकुवेरबांधवः ॥ देहात्मबुद्ध्यापिचपश्यराक्षसोनास्यात्मबुद्ध्याकिमुराक्षसोनहि ॥ १६ ॥ शरीरबुद्धीं द्रियदुःखसंततिर्नतेनचत्वंतवनिर्विकारतः ॥ अज्ञानहेतोश्चतथैवसंततेरसत्त्वमस्याःस्वपतोहिदृश्यवत् ॥ १७ ॥ इदंतुसत्यंतवनास्ति विक्रियाविकारहेतुर्नचतेऽद्वयत्वतः ॥ यथानभःसर्वगतंनलिप्यतेतथाभवान्देहगतोऽपिसूक्ष्मकः ॥ देहेंद्रियप्राणशरीरसंगतस्त्वात्मे तिबुद्ध्याखिलबंधभाग्भवेत् ॥ १८ ॥

अलग है ऐसी बुद्धिसे विचार करोगे तौ तुम राक्षस नहीं; अर्थात् एक अखंड आत्मस्वरूपहो ॥ १६ ॥ स्थूल शरीर, बुद्धि (सूक्ष्मशरीर) नेत्रादि इन्द्रियें; उनसे उत्पन्न होनेवाली बाहर और भीतरकी दुःखपरम्परा तुम्हें नहीं लगीहै; कारण कि यह दुःख जिसका धर्महै वह चित्त तुम नहींहो। तुम आत्माहो; आत्माको दुःख क्यों नहीं व्यापता सो सुनो; जो यह कहा जाय कि दुःखी हैं; तौ आत्मा विकारी होगा; और आत्मामें कोई विकार नहींहै ऐसा श्रुति व अनुभव दोनोंके प्रमाणसे सिद्धहै। अब मैं दुःखी हूं, ऐसी प्रतीति यथार्थमें आती है परन्तु वह दुःखपरम्परा केवल अज्ञान मूलकहै। प्राणीको स्वप्नमें दीखतेहुए अनेक पदार्थ जैसे मिथ्याहैं, तैसेही दुःखकी यह परंपरा असत्य व केवल कल्पितहै ॥ १७ ॥ यदि कोई मनुष्य ऐसी शंका करै कि इस जगत्में कोई वस्तु सत्य नहीं और जो कुछ सत्यहै तोक्या पदार्थ सत्यहै; इसका उत्तर यहींहै कि केवल एक तेरा

स्वरूप सत्यहै और तू अविकारी, एक अद्वितीय सत्यज्ञानस्वरूप है; यहां शंकाहोतीहै कि–विकारका कारण अज्ञानभी सत्य नहीं है। यहां ऐसा समझना कि, तुझ अद्वितीय शरीरमें विकारका कारण संभव नहीं होता । इसकारण जैसे सर्वगत आकाश लेपरहित है वैसेही देहमें रहतेहुएभी अलिप्त और अतिसूक्ष्म । अर्थात् वह देहगत सुखादिकी वस्तुतामें लिप्त नहीं होता; इसकारण जैसे आकाश नीलेवर्णवालाहै ऐसी प्रतीति करके मैं सुखीहूं, मैं दुःखीहूं ऐसी प्रतीति करनी भ्रमात्मकहै; तब क्या मुक्त और संसारी जन्म मरणवालेकी व्यवस्था नहीं है ? इसका उत्तर यहीहै कि, जो सूक्ष्मदेह, स्थूलदेह, और प्रमाणादि इन्द्रियोंमें रहाहुआ आत्मा तिसके अविवेकसे अर्थात् तिसके विषय रहीहुई आत्मबुद्धि करके समस्त बंधन मोक्षादिकका भोक्ता होताहै तैसेही आत्मा अनात्माका अविवेकही जन्म मरण होनेका मुख्य कारणहै; तिसमें कोई शंकाकरे कि जीवका मुक्तिका मिलना अति दुर्लभहै; इसकारण वह कहताहूं; जब जीवको नीचे कहे अनुसार ॥ १८ ॥ मैं चैतन्य तथा अजन्माऐसा अक्षरस्वरूपहूं; अर्थात्

चिन्मात्रमेवाहमजोऽहमक्षरोह्यानंदभावोऽहमितिप्रमुच्यते ॥ देहोऽप्यनात्मापृथिवीविकारजोनप्राणआत्मानिलएषएवसः ॥ १९ ॥ मनोऽ
प्यहंकारविकारएवनोनचापिबुद्धिःप्रकृतेर्विकारजा ॥ आत्माचिदानंदमयोऽविकारवान्देहादिसंघाद्व्यतिरिक्तईश्वरः ॥ २० ॥ निरंज
नोमुक्तउपाधितःसदाज्ञात्वैवमात्मानमितोविमुच्यते ॥ अतोऽहमात्यंतिकमोक्षसाधनंवक्ष्येशृणुष्वावहितोमहामते ॥ २१ ॥ विष्णो
र्हिभक्तिःसुविशोधनंधियस्ततोभवेज्ज्ञानमतीवनिर्मलम् ॥ विशुद्धतत्त्वानुभवोभवेत्ततःसम्यग्विदित्वापरमंपदंव्रजेत् ॥ २२ ॥

अखंड आनंदरूपहूं; इस प्रकार आत्मविवेक होता है; तब नित्यमुक्त होने परभी मुक्त हो जाता है तथा देहतौ पृथ्वीके विकार परमाणुओंसे बना हुआ अनात्मा है; अर्थात् जड है । प्राणभी आत्मा नहीं है; क्योंकि वे बाहरी दृष्ट जड़रूपी वायुरूप है ॥ १९ ॥ मनभी आत्मा नहीं है; क्योंकि वह अहंकारका विकार है और बुद्धि अर्थात् अहंकारभी आत्मा नहीं कहलासक्ता क्योंकि वह प्रकृतिके विकाररूप महत्तत्वसे उत्पन्न होता है । आत्मा चैतन्यरूप आनंदमय विकाररहित, देहादिगणोंसे अलग,सब शक्ति ॥ २० ॥ व निरंजन कहिये उपाधिसे छूटा है। जहां इस प्रकार आत्माको जाना कि पुरुष तत्काल संसारसे छूट जाता है। हे रावण ! तुम महाबुद्धिमान् हो, इस कारण मैं तुमसे मोक्षका उत्तम साधन कहताहूं, तुम उन्हें ध्यान देकर सुनो ॥ २१ ॥ विष्णुजीकी भक्तिही अंतःकरण शुद्ध करनेका साधन है। अंतःकरण शुद्ध होनेपर अत्यन्त निर्मल (॥१५॥२०॥

२१ श्लोकमें कहा हुआ आत्मस्वरूपका) ज्ञान होता है; तिससे परमात्माका साक्षात्कार प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार यथार्थ विषय जानने पर वह पुरुष परमपदको प्राप्त कर लेता है ॥ २२ ॥ इस कारण हे रावण ! अबसे तुम प्रकृतिसे परे लक्ष्मीके पति पुराणपुरुष और पापके हरनेवाले श्रीरामचंद्रजीका भजन करो; जो तुम यह जानकर कि राम राजा दशरथका पुत्र है—उनका भजन क्यों करे, कहो तो वह राम प्रकृतिके परे हैं; और वास्तवमें दशरथजीके पुत्रादि हैं ऐसा मानना केवल कल्पित है। इस्से यह मनुष्य हैं; ऐसी बुद्धिरूप मूर्खपनसे कीहुई शत्रुताकी भावना उनसे छोड़दे। जिसको शरण आये हुए अति प्यारे हैं ऐसा श्रीरामचंद्रजीका हृदयमें भजन करो; सीताजीको आगेकर पुत्र और बांधवोंके साथ श्रीरामचंद्रजीके पासजा उनको नमस्कार करो बस तुरन्तही भयसे छूट जायगा ॥ २३ ॥ जो मनुष्य हृदयमें विराजमान, सुखरूप, अद्वितीय, और परमात्मा श्रीरामचंद्रजीका हृदयसे भक्तिमें ध्यान नहीं करता; वह मनुष्य दुःखरूप तरंग उठते हुए भवसमुद्रके पारको किस प्रकार पायसकें ? अर्थात् पार नहीं पावैगा ॥ २४ ॥ जो तुम मेरे कहनेके अनुसार नहीं करोगे तो अज्ञानमय अग्निसे जलते हुए आत्माकी रक्षा नहीं करता हुआ, तू शत्रुके समान अपनी आत्माको अपने किये हुए पापसे नीचे नरकमें लिये जाता है। तिस्से तुझे स्वप्नमेंभी मोक्षकी आशाका होना दुर्लभहै ” ॥ २५ ॥ वास्तवमें हनुमानजीके वचन अमृतके समान हैं; पर रावणको नहीं रुचे, वरन् कानोंमें पड़तेही वह अत्यन्त झुंझलाया—रुचैं कैसे ? राक्षसही तौ है; अत्यन्त संतापके मारे उसके नेत्र लाल होगये; आंखोंमेंसे आग निकलने लगी हनुमानजीसे अति शीघ्र रावणने डाँटकर कहा ॥ २६ ॥

अतोभजस्वाद्यहरिंरमापतिंरामंपुराणंप्रकृतेःपरंविभुम् ॥ विसृज्यमौर्ख्यंहृदिशत्रुभावनांभजस्वरामंशरणागतप्रियम् ॥ सीतांपुरस्कृत्यसपुत्रबांधवोरामंनमस्कृत्यविमुच्यसेभयात् ॥ २३ ॥ रामंपरात्मानमभावयञ्जनोभक्त्याहृदिस्थंसुखरूपमद्वयम् ॥ कथंपरंतीरमवाप्नुयाज्जनोभवांबुधेर्दुःखतरंगमालिनः ॥ २४ ॥ नोचेत्त्वमज्ञानमयेनवह्निनाज्वलंतमात्मानमरक्षितारिवत् ॥ नयस्यधोऽधःस्वकृतैश्चपातकैर्विमोक्षशंकानचतेभविष्यति ॥ २५ ॥ श्रुत्वामृतास्वादसमानभाषितंतद्वायुसूनोर्दशकंधरोऽसुरः ॥ अमृष्यमाणोऽतिरुषाकपीश्वरंजगादरक्तांतविलोचनोज्ज्वलन् ॥ २६ ॥

"अरे क्या है रे! हे अधमवानर! मेरे पास खड़ा हुआ तू निर्भयके समान बड़बड़ाता है। तू बन्दरोंमें अधम और दुष्ट बुद्धिवाला है,–जिसको तू कहता है वह तेरा राम कौन है? तथा इस वनमें रहनेवाला सुग्रीव तेरा कौन है मनुष्योंमें अधम तेरे रामचंद्रको मैं सुग्रीवके सहित मार डालूंगा ॥ २७ ॥ अब पहले तो तुझे मारताहूं, फिर जानकीको फिर लक्ष्मणके सहित रामचंद्रको फिर–जिसको तू कहता है उस बलवान् वानरोंके राजा सुग्रीवको तिसके साथ उसके एक २ वानरको मैं अति शीघ्र मार डालूंगा! रावणके वचन सुनतेही हनुमानजीके क्रोधकी आग बहुतही भड़की; उस समय देखने वालोंको ऐसा दृष्टि आयाकि क्या यह राक्षसोंको भस्म करदेगा ॥ २८ ॥ हनुमानजी बोले "रे अधम! जो तेरे समान करोड रावण आजांय तौ भी

कथंममाग्रेविलपस्यभीतवत्प्लवंगमानामधमोऽसिदुष्टधीः ॥ कएषरामःकतमोवनेचरोनिहन्मिसुग्रीवयुतंनराधमम् ॥ २७ ॥ त्वांचाद्यह
त्वाजनकात्मजांततोनिहन्मिरामंसहलक्ष्मणंततः ॥ सुग्रीवमग्रेबलिनंकपीश्वरंसवानरंहन्म्यचिरेणवानर ॥ श्रुत्वादशग्रीववचःसमारुति
विवृद्धकोपेनदहन्निवासुरम् ॥ २८ ॥ नमेसमारावणकोटयोऽधमरामस्यदासोऽहमपारविक्रमः ॥ श्रुत्वातिकोपेनहनूमतोवचोदशाननोरा
क्षसमेकमब्रवीत् ॥ २९ ॥ पार्श्वेस्थितंमारयखंडशःकपिंपश्यंतुसर्वेऽसुरमित्रबांधवाः ॥ निवारयामासततोविभीषणोमहासुरंसायुधमु
द्यतंवधे ॥ राजन्वधार्होनभवेत्कथंचनप्रतापयुक्तैःपरराजवानरः ॥ ३० ॥ हतेऽस्मिन्वानरेदूतेवार्ताकोवानिवेदयेत् ॥ रामायत्वंयमुद्दि
श्यवधायसमुपस्थितः ॥ ३१ ॥ अतोवधसमंकिंचिदन्यच्चिंतयवानरे ॥ सचिह्नोगच्छतुहरिर्यद्दृष्ट्वायास्यतिद्रुतम् ॥ ३२ ॥

वह मेरी बरोबरी नहीं कर सकते समझा! मैं रामचंद्रजीका दास हूं! तुझको मेरी शक्तिका अंत नहीं मिलैगा।" हनुमानजीके यह वचन सुनतेही रावणने अति संतापित होकर निकट बैठे हुए एक राक्षससे कहा ॥ २९ ॥ "इस वानरके टुकड़े टुकड़े करकै मार डाल! राक्षसोंके सब मित्र और बांधवोंको यह चमत्कार देखने दे।" वह महादैत्य शस्त्र उठाय हनुमानजीका वध करनेके लिये उठा; तब विभीषणने उसको रोक कर कहा;– "महाराज! प्रतापशाली पुरुषोंका कुछ होभी जाय तो भी दूसरे राजके बन्दरको कभी नहीं मारना चाहिये ॥ ३० ॥ जो यह दूत वानर मारा जायगा; तो जिसका वध करनेंको आप तैयार हुए हैं; उस रामको यह समाचार कौन देगा[1]? ॥ ३१ ॥ इस कारण मैं कहताहूं कि यह मारने योग्य

---

[1] विभीषणका यह अभिप्रायभी मूळ श्लोकसे मिलता है जिस रामके हाथसे मारेजायगे उसको यह संवाद कौन देगा?।

नहीं है पर मारडालनेके समानही (अपमानद्योतक) कोई दूसरा दंड विचारिये। जो कुछ किया जाय, उसका चिह्न इसके अंगपर रहे! जब यह वहां जायगा ॥ ३२ ॥ उस चिह्नको देखतेही सुग्रीवके साथ राम अति शीघ्र आवैगा,– फिर तुम्हारा उसका युद्ध होगा"। विभीषणके यह वचन सुनकर रावण बोला ॥ ३३॥ "विभीषण कहता तो ठीक है। अच्छा, वन्दरोंको अपनी पूंछपर बड़ा मान होता है, यह बात प्रसिद्ध है; इस कारण इसकी पूछमें भली भांति वस्त्रादि बाँध ॥ ३४ ॥ अग्नि लगा दो; फिर इसको सारे नगरमें फिराओ; इसके उपरान्त इसे छोड़ दो। वानरोंके समस्त सेनापति इस (दुर्दशा) को देखें !" ॥ ३५ ॥ राक्षसोंने जो आज्ञा कहकर हनुमानजीकी पूंछको सन व दूसरे अनेक भांतिके वस्त्रोंको तेलमें भिजोकर लपेटा ॥३६॥ बलवान् राक्षसोंने थोड़ी आग पूंछके आगेके भागमें लगादी;और रस्सियोंसे भलीभांति मजबूत बाँध उनको पकड़ लिया ॥ ३७ ॥ उसके उपरांत 'यह चोरहै' यह कहते २ नगरके चारों ओर हनुमानजीको फिराया। और डोंडीपीटी । और वारंवार हनुमानजीको बहुतसा मारा ॥ ३८ ॥ हनुमानजीने यहसब सहा; क्योंकि उनके मनमें कुछ करनेकी इच्छाथी; पश्चिमद्वारके निकट पहुँचतेही हनुमानजी ॥ ३९ ॥ छोटेहोकर बँधनोंके बाहर निकल आये, फिर उन्होंने पर्वतके समान प्रचण्डरूप धारण करके द्वारके ऊपरको उड़ान लगाई ॥ ४० ॥ वहांसे एक थम्भ उखाड़कर हाथमें ले लिया; और क्षणभरके बीचमें उस थंभसे उनसारे राक्षसोंको जोकि पहरेदारथे मारडाला; फिर शेषरहे कार्य

रामःसुग्रीवसहितस्ततोयुद्धंभवेत्तव ॥ विभीषणवचःश्रुत्वारावणोऽप्येतदब्रवीत् ॥ ३३ ॥ वानराणांहिलांगूलेमहामानोभवेत्किल ॥
अतोवस्त्रादिभिःपुच्छंवेष्टयित्वाप्रयत्नतः ॥३४॥ वह्निनायोजयित्वैनंभ्रामयित्वापुरेऽभितः ॥ विसर्जयतपश्यंतुसर्वेवानरयूथपाः ॥३५॥
तथेतिशणपट्टैश्चवस्त्रैरन्यैरनेकशः ॥ तैलाक्तैर्वेष्टयामासुर्लांगूलंमारुतेर्दृढम् ॥३६॥ पुच्छाग्रेकिंचिदनलंदीपयित्वाऽथराक्षसाः ॥ रज्जु
भिःसुदृढंबद्ध्वाधृत्वातंबलिनोऽसुराः ॥ ३७ ॥ समंताद्भ्रामयामासुश्चोरोऽयमितिवादिनः ॥ तूर्यघोषैर्घोषयंतस्ताडयंतोमुहुर्मुहुः ॥३८॥
हनूमतापितत्सर्वंसोढंकिंचिच्चिकीर्षुणा ॥ गत्वातुपश्चिमद्वारसमीपंतत्रमारुतिः ॥ ३९ ॥ सूक्ष्मोबभूवबंधेभ्योनिःसृतःपुनरप्यसौ ॥
बभूवपर्वताकारस्ततउत्प्लुत्यगोपुरम् ॥४०॥ तत्रैकंस्तंभमादायहत्वातान्रक्षिणःक्षणात् ॥ विचार्यकार्यशेषंसप्रासादाग्राद्गृहाद्गृहम् ॥४१॥

(लंका जलाने)को करनेका विचारकर एक महलसे दूसरे महलपर और घरसे घरपर ॥ ४१ ॥ छलांगे मारने लगे; उन हनुमानजीने मसालके समान अपनी प्रचण्ड पूंछसे बाजार, अटारी, और महलोंके समीप सारीलंकामें आग लगादी ॥ ४२ ॥ राक्षसियें, स्त्रियें महलोंपर चढ़रहीथीं उन्होंने वहाँसे देखा कि चारोंओर आग लगी ! तब वह “ हाय! हाय ! बाबा ! बेटा ! प्राणनाथ पति ! ” कहकर पुकार करनेलगीं ॥ ४३ ॥ महलोंके ऊपर चढ़ी रहनेपरभी अग्निने उनको ग्रास किया; महलपर चढ़ीहुई वे राक्षसियें अग्निमें गिरनेके समय देवताओंकी नारियोंके समान जानपड़ीं (रावणके विपरीतकालकी सूचना देनेवाला यह एक अपशकुन हुआ; हनुमानजीने एक विभीषणका गृह छोड़कर बाकी सारी नगरीको जलायकर भस्मकर दिया !

उत्प्लुत्योत्प्लुत्यसंदीप्तपुच्छेनमहताकपिः ॥ ददाहलंकामखिलांसाट्टप्रासादतोरणाम् ॥ ४२॥ हाताततपुत्रनाथेतिक्रंदमानाःसमंततः ॥ व्याप्ताःप्रासादशिखरेऽप्यारूढादैत्ययोषितः ॥ ४३ ॥ देवताइवदृश्यंतेपतंत्यःपावकेऽखिलाः ॥ विभीषणगृहंत्यक्त्वासर्वंभस्मीकृतंपुरम् ॥ ॥ ४४ ॥ ततउत्प्लुत्यजलधौहनुमान्मारुतात्मजः ॥ लांगूलंमज्जयित्वांतः स्वस्थचित्तोबभूवसः ॥ ४५ ॥ वायोःप्रियसखित्वाच्चसीतयाप्रार्थितोऽनलः ॥ नददाहहरेःपुच्छंबभूवात्यंतशीतलः ॥ ४६ ॥ यन्नामसंस्मरणधूतसमस्तपापास्तापत्रयानलमपीहतरंतिसद्यः ॥ तस्यैवकिंरघुवरस्यविशिष्टदूतःसंतप्यतेकथमसौप्रकृतानलेन ॥४७॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेसुंदरकांडेचतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

॥ ४४ ॥ इसके उपरांत पवनके पुत्र हनुमानजी उड़ान मारकर समुद्रपर आये; वहांपर इन्होंने अपनी पूंछको जलसे बुझाया । मन माना कार्य होनेसे उनके चित्तमें स्वस्थताहुई ॥ ४५ ॥ एकतौ अग्नि वायुका सखाहै; उसही पवनके पुत्र हनुमानजी हैं; इसकारण करके और सीताजीकी प्रार्थनासे अग्निने हनुमानजीकी पूंछको कुछभी नहीं जलाया । वरन् चंदनके समान अग्नि अति शीतल होरहेथे ॥ ४६ ॥ अहो ! जिसका नाम स्मरण करतेही लोग समस्त पापसे रहित होजाते हैं; व तत्काल तापत्रयरूपी दुर्धर अग्निके पारहोजाते हैं; उन्हीं रामके यह हनुमानजी मुख्य दूतहैं फिर लौकिक अग्निसे इनका दाह किसप्रकारसे होसक्ताहै सारांश यह है कि नहीं होसक्ता॥ ४७॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकांडे चतुर्थः सर्गः॥ ४॥

जानकीजीको प्रणामकर हनुमानजीका विदाहोना; और रामजीके पास जानकीजीकी कुशल कहना ॥ फिर हनुमानजीने (सीताजीके निकट आयकर) सीताजीको नमस्कार करके कहा "हे देवि ! आप हमको आज्ञादें; हम श्रीरामचन्द्रजीकेसमीप जांयगे ॥ १ ॥ हम जातेहैं, छोटे भ्राताके सहित श्रीरामचंद्रजी तुमको भेंटनेके लिये अति शीघ्र आवेंगे!" यह कहकर हनुमानजीने जानकी जीकी तीनवार परिक्रमाकी ॥ २ ॥ नमस्कार किया, जब चलनेलगे तब फिर कहा;—"हे देवि। अब मैं जाताहूं; अति शीघ्र तुम्हारे आनंदके दिन आवेंगे; राम लक्ष्मणजीके साथ ॥ ३ ॥ वानरोंकी अगणित सनोको तुमअति शीघ्र देखोगी;" तिससमय दुःखसे दुबलेपनको प्राप्तहुईं वे जानकीजी हनुमानजीसे बोलीं ॥ ४ ॥ "वत्स। तुमको देखकर हम सब

ततःसीतांनमस्कृत्यहनूमानब्रवीद्वचः ॥ आज्ञापयतुमांदेविभवतीरामसन्निधिम् ॥ १ ॥ गच्छामिरामस्त्वांद्रष्टुमागमिष्यतिसानुजः ॥ इत्युक्त्वात्रिःपरिक्रम्यजानकींमारुतात्मजः ॥ २ ॥ प्रणम्यप्रस्थितोगंतुमिदंवचनमब्रवीत् ॥ देविगच्छामिभद्रंतेतूर्णंद्रक्ष्यसिराघवम् ॥ ॥ ३ ॥ लक्ष्मणंचससुग्रीवंवानरायुतकोटिभिः ॥ ततःप्राहहनूमंतंजानकीदुःखकर्शिता ॥ ४ ॥ त्वांदृष्ट्वाविस्मृतंदुःखमिदानींत्वंगमिष्यसि ॥ इतःपरंकथंवर्तेरामवार्ताश्रुतिंविना ॥ ५ ॥ मारुतिरुवाच ॥ यद्येवंदेविमेस्कंधमारोहक्षणमात्रतः ॥ रामेणयोजयिष्यामिमन्यसेयदिजानकि ॥ ६ ॥ सीतोवाच ॥ रामःसागरमाशोष्यबद्ध्वावाशरपंजरैः ॥ आगत्यवानरैःसार्धंहत्वारावणमाहवे ॥ ७ ॥ मांनयेद्यदि रामस्यकीर्तिर्भवतिशाश्वती ॥ अतोगच्छकथंचापिप्राणान्संधारयाम्यहम् ॥ ८ ॥ इतिप्रस्थापितोवीरःसीतयाप्रणिपत्यताम् ॥ जगाम पर्वतस्याग्रेगंतुंपारंमहोदधेः ॥ ९ ॥

बड़ा दुःखभूलगईथीं; अब तुमभी जाओगे; इसके उपरांत श्रीरामचंद्रजीका समाचार न पायकर हम किसप्रकारसे जीवको धारण किये रहैंगी ॥ ५ ॥ हनुमानजी बोले;—हे देवि जानकी ! ऐसा है तौ चलौ मेरे कंधेपर बैठो; जो तुम्हारे मनमें है तौ मैं एक क्षणभरमें तुम्हारी और श्रीरामचंद्रजीकी भेंट करायेदेता हूं।" ॥ ६ ॥ सीताजी बोलीं;—"श्रीरामचंद्रजी समुद्रको सुखायकर या उस पर बाणोंके समूहसे पुल बांधकर जब वानरोंके सहित यहां आवैंगे व युद्धमें रावणका वध करके ॥ ७ ॥ जब मुझे लेजांयगे तब श्रीरामचंद्रजीकी कीर्त्ति सदा रहैगी। इसकारण कहतीहूं कि तुम जाओ; मैं किसीप्रकारसे प्राण धारण किये रहूंगी" ॥ ८ ॥ इसप्रकार सीताजीने संदेशा दिया; तब वह प्रतापी वानर उनका वंदन करके महासमुद्रके पल्लीपार जानेकेलिये

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

पर्वतके शिखरपरगये ॥ ९ ॥ वहांपर जाकर महाबलवान् हनुमानजी पाँवसे पर्वतको दबाय पवनके समान वेगसे आकाश मार्गको उड़े; उन्होंने जिसपर्वतको दबाया वह पर्वत पृथ्वीमें बैठगया ॥ १० ॥ यह पर्वत जो तीस योजन ऊंचाथा वह समग्र पृथ्वीके समान होगया; हनुमानजीने आकाशमें जायकर बड़ाभारी शब्द किया ॥ ११ ॥ यह शब्द सुनकर समस्त वानरोंने जाना कि हनुमानजी आये; और सबको बड़ा आनंदहुआ, वे सबभी बड़े शब्दसे गर्जे ॥ १२ ॥ कोई एक वानर बोला “ अहो ! यह गर्जना तौ हनुमानजीकीही है; इस शब्दके करनेसे तो मुझे निश्चय होताहै कि वह काज सिद्धकर आये। ” दूसरा बोला,—“ वानरो ! वहीहैं; वहीहैं; देखो वह वानरश्रेष्ठ हमारे निकट आय पहुँचे” ॥ १३ ॥ इसप्रकार वह

तत्रगत्वामहासत्त्वःपादाभ्यांपीडयन्गिरिम् ॥ जगामवायुवेगेनपर्वतश्चमहीतलम् ॥ १० ॥ ततोमहीसमानत्वंत्रिंशद्योजनमुच्छ्रितः ॥ मारुतिर्गगनांतस्थोमहाशब्दंचकारसः ॥ ११ ॥ तंश्रुत्वावानराःसर्वेज्ञात्वामारुतिमागतम् ॥ हर्षेणमहताविष्टाःशब्दंचक्रुर्महास्वनम् ॥ ॥१२॥ शब्देनैवविजानीमःकृतकार्यःसमागतः ॥ हनूमानेवपश्यध्वंवानरावानरर्षभम् ॥१३॥ एवंब्रुवत्सुवीरेषुवानरेषुसमारुतिः ॥ अवतीर्य गिरेर्मूर्ध्निवानरानिदमब्रवीत् ॥ १४ ॥ दृष्टासीतामयालंकाधर्षिताचसकानना ॥ संभाषितोदशग्रीवस्ततोऽहंपुनरागतः ॥ १५ ॥ इदानीमेवगच्छामोरामसुग्रीवसन्निधिम् ॥ इत्युक्त्वावानराःसर्वेहर्षेणालिंग्यमारुतिम् ॥ १६ ॥ केचिच्चुचुंबुर्लांगूलंननृतुःकेचिदुत्सुकाः ॥ हनूमतासमेतास्तेजग्मुःप्रस्रवणंगिरिम् ॥ १७ ॥ गच्छंतोददृशुर्वीरावनंसुग्रीवरक्षितम् ॥ मधुसंज्ञंतदाप्राहुरंगदंवानरर्षभाः ॥ १८ ॥

वानर परस्पर बातें कररहेथे कि इतनेहीमें पवनके पुत्र हनुमानजी आकाशमेंसे पर्वतके शिखरपर उतरकर समस्त वानरोंसे इसप्रकार कहनेलगे ॥ १४ ॥ “ हे वीर ! वानरगणो । हमने जानकीजीको देखा । अशोकवाटिकाके सब वृक्षोंको उखेड़कर लंकाको जलाय और रावणके साथ वादविवादकर मैं प्रभुकी कृपासे यहां लौटआयाहूं ॥ १५ ॥ इसकारण हम समस्त वानर अभी श्रीराम और सुग्रीवके पास चलें । ” ऐसे हनुमानजीके वचन सुनकर सब वानर हर्षसे उनको हृदयसे लगानेलगे ॥ १६ ॥ कितने एक प्रेमसे उनका चुम्बनकरने लगे; कितनेएक उत्साहसे पूंछको ऊंचा करके नाचने लगे; इसप्रकार सर्वआनन्दयुक्त होकर हनुमानजीके साथ प्रवर्षण पर्वतकी तरफ चलनेलगे ॥ १७ ॥ मार्गमें जाते हुए वीरोंने ‘ मधु नामक वन देखा,

कि जिस वनकी रक्षा सदा सुग्रीवजी कराते हैं;उस वनको देखकर प्रतापी वानर अंगदजीसे कहने लगे॥ १८॥ हे राजपुत्र! तुम शूर व महाबुद्धिमान्‌हो। इस बातकोभी तुम जानतेहो कि हमको कितना त्रास हुआ, काया कष्टहुआ व कितने दिनतक खानेको नहीं मिला। हमको अब बहुतही भूंख लगी है; आप आज्ञादे तौ हम यहांके फल खांय व अमृतके समान मधुर मधु पियें ॥ १९ ॥ खाने पीनेको मिलनेसे हमारे मनमें हर्ष होगा। और सब कोई आज लक्ष्मणजीके सहित रामचंद्रजीके दर्शन करनेको चलेंगे" ॥२०॥ अंगदजी कहते हैं; "वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमानजी कार्यकी सिद्धि कर आये हैं तिससे तुम प्रसन्न होकर फल और कंद मूलका भक्षण करो; तथा रसके मधुको सुखसे पियो" ॥ २१ ॥ अंगदजीके ऐसे वचन सुनकर सर्व वानर सुग्रीवके मामा दधिवक्र (मुख्य रक्षक) के भेजे हुए रखवालोंका अनादर करकै एक साथ मधुका पान करने लगे ॥ २२ ॥ इसप्रकार मधु पीते हुए वानरोंको वनके रखवाले वानर मारने लगे; तब उनको अंगदजीके भेजे हुए वानरोंने मूकोंसे और लातोंसे चूर्णकर डाला; और फिर मधुको पीने लगे ॥ २३ ॥ सुग्रीवका मामा दधिवक्र बन्दरोंकी इस ढिठाईसे क्रोधायमान होकर रक्षकोंको साथ ले जहांपर वानरोंके राजा सुग्रीवजी थे वहांपर ॥ २४ ॥ गया व उनसे कहने लगाः— हेराजा बहुत दिनोंसे जतन करकै रखाये हुए तुम्हारे मधुवनको आज अंगद और हनुमानने सत्यानाश कर डाला ॥ २५ ॥ दधिमुखका ऐसा कहना सुनकर मनमें हर्षको प्राप्त हुए सुग्रीव कहने लगे कि इसमें कोई संदेह

क्षुधिताःस्मोवयंवीरदेह्यनुज्ञांमहामते ॥ भक्षयामःफलान्यद्यपिबामोऽमृतवन्मधु ॥ १९ ॥ संतुष्टाराघवंद्रष्टुंगच्छामोऽद्यैवसानुजम्
॥ २० ॥ अंगदउवाच ॥ हनूमान्कृतकार्योऽयंपिबतैतत्प्रसादतः ॥ जक्षध्वंफलमूलानित्वरितंहरिसत्तमाः ॥ २१ ॥ ततःप्रविश्यहरयः
पातुमारेभिरेमधु ॥ रक्षिणस्ताननादृत्यदधिवक्त्रेणनोदितान् ॥ २२ ॥ पिबतस्ताडयामासुर्वानरान्वानरर्षभाः ॥ ततस्तान्मुष्टिभिः
पादैश्चूर्णयित्वापपुर्मधु ॥ २३ ॥ ततोदधिमुखःक्रुद्धःसुग्रीवस्यसमातुलः ॥ जगामरक्षिभिःसार्धंयत्रराजाकपीश्वरः ॥ २४ ॥ गत्वात
मब्रवीद्देवचिरकालाभिरक्षितम् ॥ नष्टंमधुवनंतेऽद्यकुमारेणहनूमता ॥ २५ ॥ श्रुत्वादधिमुखेनोक्तंसुग्रीवोहृष्टमानसः ॥ दृष्टाऽऽगतो
नसंदेहःसीतांपवननंदनः ॥ २६ ॥

नहीं कि—पवनके पुत्र हनुमानजी सीताजीकी सुधि लेकर निश्चय आये॥ २६॥ जो ऐसा न होता तौ मेरे मधुवनकी ओर देखनेकी किसकी सामर्थ्य है ? इसमेंभी कोई सन्देह नहीं कि पवनकुमार हनुमानने कार्यको सिद्ध किया है ॥ २७ ॥ सुग्रीवके वचन सुनकर हर्षित हो श्रीरामचंद्रजीने कहा, “ हे राजन् ! तुमने दधिवक्रसे जो कुछ कहा; उसमें सीताकी भी कुछ वार्ताथी सो तुम हमसे कहो ” ॥ २८ ॥ यह सुनकर सुग्रीवने कहा कि,—हे देव ! पृथ्वीकी पुत्री सीताजीको हनुमानने देखा; क्योंकि हनुमानादि सर्व वानरोंने मधुवनमें प्रवेश किया है ॥ २९ ॥ उन्होंने वहांके फलोंको खाया और वनके रखवालोंको मारा है । हे देव ! विनाकार्य किये मेरे मधुवनके देखनेका साहस ॥ ३० ॥ उनको नहीं होता; बस

नोचेन्मधुवनंद्रष्टुंसमर्थःकोभवेन्मम ॥ तत्रापिवायुपुत्रेणकृतंकार्यंनसंशयः ॥ २७ ॥ श्रुत्वासुग्रीववचनंहृष्टोरामस्तमब्रवीत् ॥ किमु
च्यतेत्वयाराजन्वचःसीताकथान्वितम् ॥ २८ ॥ सुग्रीवस्त्वब्रवीद्वाक्यंदेवदृष्टाऽवनीसुता ॥ हनूमत्प्रमुखाःसर्वैप्रविष्टामधुकाननम्॥२९॥
भक्षयंतिस्मसकलंताडयंतिस्मरक्षिणः ॥ अकृत्वादेवकार्यंतेद्रष्टुंमधुवनंमम ॥३०॥ नसमर्थास्ततोदेवीदृष्टासीतेतिनिश्चितम् ॥ रक्षिणो
वोभयंमास्तुगत्वाब्रूतममाज्ञया ॥ ३१ ॥ वानरानंगदमुखानानयध्वंममांतिकम् ॥ श्रुत्वासुग्रीववचनंमत्वातेवायुवेगतः ॥ ३२ ॥
हनूमत्प्रमुखानूचुर्गच्छतेश्वरशासनात् ॥ द्रष्टुमिच्छतिसुग्रीवःसरामोलक्ष्मणान्वितः ॥ ३३ ॥ युष्मानतीवहृष्टास्तेत्वरयंतिमहाबलाः ॥
तथेत्यंवरमासाद्यययुस्तेवानरोत्तमाः ॥ ३४ ॥ हनूमंतंपुरस्कृत्ययुवराजंतथांगदम् ॥ रामसुग्रीवयोरग्रेनिपेतुर्भुविसत्वरम् ॥ ३५ ॥

इस्से निश्चय होता है कि उन्होंने जानकीजीको देखा है । रक्षकगण ! उनसे जायकर कहो कि “ तुमको भय[१] नहीं है ! तुम मेरी आज्ञाके अनुसार उन वानरोंसे जायकर कहो ॥ ३१ ॥ व अंगदादि वानरोंको हमारे पास ले आओ । ” सुग्रीवके वचन सुनकर वे रक्षक पवनके समान वेगसे गये ॥ ३२ ॥ और हनुमानादि वानरोंसे कहने लगे कि तुमको महाराजने गमन (राजाके समीप) करनेकी आज्ञा दी है; जाओ, राम लक्ष्मणके साथ सुग्रीव तुम्हारे देखनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३३ ॥ हे महाबलवान् ! वानरो ! वे अत्यन्त आनंदको प्राप्त होकर (तुम लोगोंके शीघ्र जानेमें) शीघ्रता करा रहे हैं । ‘ वानरोंमें श्रेष्ठ वे सब वानर लोग “ जो आज्ञा ” कहकर आकाशमार्गको चले ॥ ३४ ॥ वहां पहुँचकर

---

[१] टीकाकार राम वार्ताके मतसे “ रक्षिगण! उन लोगोंके निकट तुमको भय नहींहै” ऐसा अनुवाद हो सकता है;परन्तु ऐसा अर्थ होनेसे इसश्लोकका द्रुत, शब्द ठीक नहीं लगता ।

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

हनुमान् और अंगदजीको आगे करकै अति शीघ्र सुग्रीव और रामचंद्र जीके आगे वे सब वानर पृथ्वीपर दंडवत् प्रणाम करकै गिरे ॥ ३५ ॥ हनुमानजीने पृथ्वीमें उतरनेसे पहलेही (आकाशमेंसे) श्रीरामचंद्रजीसे "मैं सीताजीको देख आया वे कुशल हैं" यह कहा; फिर रामचंद्रजीको व पीछे सुग्रीवको साष्टांग प्रणाम किया। और सर्व वृत्तान्तको विस्तारसे कहना आरंभ करने लगे ॥ ३६ ॥ हे राजाधिराज ! जानकीजीने आपकी कुशल पूछनेको कहा है। वह शोकसे व्याप्त होकर अशोकवाटिकामें शीशमके वृक्षकी जड़के नीचे बैठी हैं ॥ ३७ ॥ हे प्रभो ! राक्षसियां उनको घेरे हुए हैं; अन्न छोड़ देनेसे उनका शरीर दुर्बल हो गया है; वह वारम्वार 'हाराम! राम! राम !' कहकर शोक करती हैं; अंगपरके वस्त्र

हनूमान्राघवंप्राहदृष्टासीतानिरामया ॥ साष्टांगंप्रणिपत्याग्रेरामंपश्चाद्धरीश्वरम् ॥ ३६ ॥ कुशलंप्राहराजेंद्रजानकीत्वांशुचाऽन्विता ॥
अशोकवनिकामध्येशिंशपामूलमाश्रिता ॥ ३७ ॥ राक्षसीभिःपरिवृतानिराहाराकृशाप्रभो ॥ हारामरामरामेतिशोचंतीमलिनांवरा ॥
॥ ३८ ॥ एकवेणीमयादृष्टाशनैराश्वासिताशुभा ॥ वृक्षशाखांतरेस्थित्वासूक्ष्मरूपेणतेकथाम् ॥ ३९ ॥ जन्मारभ्यतवात्यर्थंदंडकागमनं
तथा ॥ दशाननेनहरणंजानक्याराहितेत्वयि ॥४०॥ सुग्रीवेणयथामैत्रींकृत्वावालिनिवर्हणम् ॥ मार्गणार्थंचवैदेह्याःसुग्रीवेणविसर्जिताः ॥
॥ ४१ ॥ महावलामहासत्वाहरयोजितकाशिनः ॥ गताःसर्वत्रसर्वेवैतत्रैकोऽहमिहागतः ॥ ४२ ॥ अहंसुग्रीवसचिवोदासोऽहंराघवस्यहि ॥
दृष्टायज्जानकीभाग्यात्प्रयासःफलितोऽद्यमे ॥ ४३ ॥

मलीन होगये हैं॥ ३८॥ वेणी एक (जैसी तुम्हारे निकट थी वैसीही) है ऐसा मैं देख आया; फिर मैं वृक्षकी शाखापर एक जगह सूक्ष्मरूप धारण करकै बैठा और आपकी कथा वर्णनकी; और उन सुन्दरीको समझाया बुझाया; वह इस प्रकारसे कि– ॥ ३९ ॥ मैं तुम्हारी कथा जन्मसे लेकर विस्तारपूर्वक वर्णन करने लगेः–आप दंडकारण्यमें आये; तुम्हारे पास नरहते हुए रावणने जानकीजीको चुरालिया ॥ ४० ॥ फिर आपने सुग्रीवकें साथ मित्रता करकै वालिका नाश किया; सुग्रीवजीने सीताजीकी सुधि लेनेको महाशक्तिमान्, महाचतुर, व इन्द्रियोंको जीतनेवाले वानर पठाये वे सब अलग २ दिशाओंमें गये; उनमेंका एक मैं यहां (लंकामें) आयाहूं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ मैं सुग्रीवका मंत्री व श्रीरामचंद्रजीका दासहूं । बड़ा

भाग्य है; जो आज मैंने जानकीजीको देखा,–आज मेरा यत्न सफल हुआ ॥ ४३ ॥ ऐसा मेरा किया हुआ वर्णन सुनकर सीताजीने नेत्र उघाड़े (प्रफुल्लित किये) और कहा कानोंको अमृतके समान लगनेवाले यह मंजुल शब्द किसने मुझे सुनाये ॥ ४४ ॥ यदि यह सत्य होवे तौ वह दर्शन दे; इससमय हमारा शरीर बंदरके समान छोटाथा । मैंने उसी रूपसे ॥ ४५ ॥ जानकीजीका वंदन किया; और हाथ जोड़कर थोड़ी दूरपर खड़ा रहा । हे ईश्वर ! फिर जानकीजीने मुझसे ‘ तू कौन है ? ’ इत्यादि बहुतसे प्रश्न किये ॥ ४६ ॥ हे शत्रुओंका नाश करनेवाले ! मैंने क्रमसे देवी जानकीजीको सब वृत्तान्त जनाया, फिर आपकी दी हुई अँगूठी उनको दी ॥ ४७ ॥ तब उनको मेरा पूर्ण निश्वास हुआ, उन्होंने मुझसे कहा; “हनुमंत ! तुमने अब देखाकि रात दिन मेरे साथ कैसे २ छल किये जाते हैं; राक्षसियें मुझको कैसा डरपाती हैं । यह सर्व समाचार रामचंद्रजीको जताना” मैंने कहा–“हे देवी ! रामचंद्रजीभी बराबर आपकीही चिन्ता करते रहते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ वे आपका समाचार न पायकर दिन रात आपके लिये शोक करते रहते हैं; अब मैं जाकर आपका वृत्तान्त श्रीरामजीसे कहूंगा ॥ ५० ॥ श्रीरामचंद्रजी आपका समाचार सुनतेही, सुग्रीव, लक्ष्मण और वानर सेनापतियोंके साथ क्षणभरमें आपके निकट आवेंगे ॥ ५१ ॥ वंशसहित रावणका संहार करके आपको अपनी नगरीमें ले जांयगे; हे देवि ! विभु श्रीरामचंद्रजी जिस्से मेरा विश्वास करैं ऐसा कोई अभिज्ञान चिह्न (निशानी) आप मुझे दें ” ॥ ५२ ॥ मेरे ऐसा कहने पर उन्होंने अपने केशोंमें उरसे हुए प्रिय चूडामणिको मुझे दिया; पहले चित्रकूट पर्वत

इत्युदीरितमाकर्ण्यसीताविस्फारितेक्षणा ॥ केनवाकर्णपीयूषंश्रावितंमेशुभाक्षरम् ॥ ४४ ॥ यदिसत्यंतदायातुमद्दर्शनपथंतुसः ॥ ततोऽहंवानराकारःसूक्ष्मरूपेणजानकीम् ॥ ४५ ॥ प्रणम्यप्रांजलिर्भूत्वादूरादेवास्थितःप्रभो ॥ पृष्टोऽहंसीतयाकस्त्वमित्यादिबहुविस्तरम् ॥ ॥ ४६ ॥ मयासर्वंक्रमेणैवविज्ञापितमरिंदम ॥ पश्चान्मयार्पितंदेव्यैभवद्दत्तांगुलीयकम् ॥ ४७ ॥ तेनमामतिविश्वस्तावचनंचेदमब्रवीत् ॥ यथाहंदृष्टास्मिहनुमन्पीड्यमानादिवानिशम् ॥ ४८ ॥ राक्षसीनांतर्जनैस्तत्सर्वंकथयराघवे ॥ मयोक्तंदेविरामोऽपित्वच्चिंतापरिनिष्ठितः ॥ ४९ ॥ परिशोचत्यहोरात्रंत्वद्वार्तांनाधिगम्यसः ॥ इदानीमेवगत्वाहंस्थितिंरामायतेब्रुवे ॥ ५० ॥ रामःश्रवणमात्रेणसुग्रीवेणसलक्ष्मणः ॥ वानरानीकपैःसार्धमागमिष्यतितेंऽतिकम् ॥ ५१ ॥ रावणंसकुलंहत्वानेष्यतित्वांस्वकंपुरम् ॥ अभिज्ञांदेहिमेदेवियथामांविश्वसेद्विभुः ॥ ५२ ॥ इत्युक्तासाशिरोरत्नंचूडापाशेस्थितंप्रियम् ॥ दत्त्वाकाकेनयद्वृत्तंचित्रकूटगिरौपुरा ॥ ५३ ॥

पर कागके साथ जो कुछ हुआथा ॥ ५३ ॥ वहभी कहा । इस वेला उनके नेत्र आंसुओंसे भरगयेथे । उन्होंने कहा;– 'रामचंद्रजीसे मेरी कुशल कहकर लक्ष्मणजीसे कहना कि मैंने पहले जो कुछ कुवचन तुमको कहे (अरण्यकाण्ड, श्लोक, ३२ । ३३ । ३४ देखो) ॥ ५४ ॥ उनको क्षमाकरो ! हे कुलनंदन ! उन वचनोंको मैंने मूर्खपनसे कहाथा अब तुम हमारे ऊपर दयालु होकर ऐसा उपाय करोकि जिस्से मेरा उद्धार करने आवें ॥ ५५ ॥ सीताजीने रोते २ यह वचन कहे । उनको बहुतही दुःख हुआथा । हे राम ! मैंने आपकी सर्व स्थिति [शोकावस्था] कहकर उनको धीरज दिया ॥ ५६ ॥ हेराम ! इसके उपरान्त उन्होंने मुझे जानेकी आज्ञादी और मैं इधर तुम्हारे निकट आया, और (हां भली याद आई) आते २ रावणकी अशोकवाटिका ॥ ५७ ॥ उखाड़ डाली, एक क्षणभरमें वहांपर बहुतसे राक्षसोंको मार डाला; रावणके पुत्रका वध किया; रावणसे वार्ताकी ॥ ५८ ॥ सारी लंकाको जलाय फिर अतिशीघ्र यहांपर आया ।" हनुमानजीके वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजीके मनमें अत्यन्त हर्ष हुआ ॥ ५९ ॥ उन्होंने कहा;–"हनुमन् ! जो कार्य देवताओंको करनाभी बहुत कठिनथा, वह तुमनें पूराकिया; तुमनें जो हमारा उपकार कियाहै; तिसका प्रत्युपकार हम नहीं देख पातेहैं ॥ ६० ॥ हे हनुमन् ! इस समय मेरे निकट जो कुछभी है;वह सर्वस्व मैं तुम्हें देताहूं ऐसा कहकर रामचंद्रजीनें उस वानरश्रेष्ठको पकड़कर गाढ़ आलिंगन किया (हृदयसे लगाया) ६१ ॥ तिस्से हनुमानजी परम प्रसन्नहुए; उनके नेत्रोंमें आनंदके आंसू आगये फिर भक्तवत्सल श्रीरामचंद्रजीनें हनुमानजीसे कहा; ॥ ६२ ॥

तदप्याहाश्रुपूर्णाक्षीकुशलंब्रूहिराघवम् ॥ लक्ष्मणंब्रूहिमेकिंचिद्दुरुक्तंभाषितंपुरा ॥ ५४ ॥ तत्क्षमस्वाज्ञभावेनभाषितंकुलनंदन ॥ तारयेन्मांयथारामस्तथाकुरुकृपान्वितः ॥ ५५ ॥ इत्युक्त्वारुदतीसीतादुःखेनमहतावृता ॥ मयाप्याश्वासितारामवदतासर्वमेवते ॥ ५६ ॥ ततःप्रस्थापितोरामत्वत्समीपमिहागतः ॥ तदागमनवेलायामशोकवनिकांप्रियाम् ॥ ५७ ॥ उत्पाटचराक्षसांस्तत्रबहून्हत्वाक्षणादहम् ॥ रावणस्यसुतंहत्वारावणेनाभिभाष्यच ॥ ५८ ॥ लंकामशेषतोदग्ध्वापुनरप्यगमंक्षणात् ॥ श्रुत्वाहनुमतोवाक्यंरामोऽत्यंतप्रहृष्टधीः ॥ ॥ ५९ ॥ हनूमंस्तेकृतंकार्यंदेवैरपिसुदुष्करम् ॥ उपकारंनपश्यामितवप्रत्युपकारिणः ॥ ६० ॥ इदानींतेप्रयच्छामिसर्वस्वंममारुते ॥ इत्यालिंग्यसमाकृष्यगाढंवानरपुंगवम् ॥ ६१ ॥ सार्द्रनेत्रोरघुश्रेष्ठःपरांप्रीतिमवापसः ॥ हनूमंतमुवाचेदंराघवोभक्तवत्सलः ॥ ६२ ॥

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

हे वानर श्रेष्ठ! मैं परमेश्वर हूं मेरा आलिंगन (मिलना) जगत्में दुर्लभहै,तुम हमारे भक्त और प्यारे हो;इसकारण तुम इसको (मिलनेको) प्राप्त हुए॥६३॥ महादेवजी बोले' हे पार्वति ! इस प्रकार तुलसीपत्रादिसे जिसके चरणयुगलका पूजन करकै बहुतेरे मनुष्य विष्णुजीकी अतुल पदवीको प्राप्त होतेहैं;

परिरंभोहिमेलोकेदुर्लभःपरमात्मनः ॥ अतस्त्वंममभक्तोऽसिप्रियोऽसिहरिपुंगव ॥ ६३ ॥ यत्पादपद्मयुगलंतुलसीदलाद्यैःसंपूज्य विष्णुपदवीमतुलांप्रयांति ॥ तेनैवकिंपुनरसौपरिरब्धमूर्तीरामेणवायुतनयःकृतपुण्यपुंजः ॥ ६४ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेसुंदरकांडेपंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ सुंदरकांडेसर्गाःपंचैवाध्यात्मिकशब्दिते ॥ प्रोक्तास्त्रीणिशतानिश्लोकास्त्रिभुवनपापहराः ॥ अ० ५ श्लोकसंख्या ॥ ३०० ॥

उन्ही श्रीरामचंद्रजीनें जिनकी मूर्तिका आलिंगन किया; वह हनुमानजी कि जिन्हौंने पुण्यका पुंज कियाहै कृतार्थ होजांय तौ इसमें आश्चर्य ही क्याहै ॥ ६४ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुंदरकांडे कात्यायनगोत्रोद्भव पंडित बलदेवप्रसाद मिश्रकृत भाषानुवादे पंचमः सर्गः ॥५॥

दोहा—लालवरन दुष्टन दलन, दमन शत्रुकुल यूथ ॥ भयटारन, वारनकलुष, जय हरि कृपा वरूथ ॥ १ ॥
सवैया। शत्रुन आनिके त्रास दई अब वेगि दयाकरि मोहिं उबारो ॥ तो विन खोजूं सहायक कौन परचो यह संकट आनिके भारो ॥
अरजी है यही मरजी तेरी, गरजी तव द्वारपै बैन उचारो ॥ लूम लपेट निशंक सवंश विध्वंश करो सब शत्रुसंहारो ॥ २ ॥
दोहा—अनुपम सुन्दरकांड यह, जग हित भाषाकीन ॥ पढ़ें, सुनें, समुझें सुजन, नित सुख लहैं नवीन; ॥ ३ ॥
जाकी कृपाकटाक्ष ते, जगपावत कल्यान ॥ सोइ प्रफुल्ल लोचन प्रभू, द्रवहु मोहिं जनजान ॥ ४ ॥
वसतराम गंगा निकट, शहर मुरादाबाद ॥ ज्येष्ठ सहोदर गुणविमल, मम ज्वालाप्रसाद ॥ ५ ॥
तिन सहायतासों कियो, भाषा मति अनुसार ॥ जो अशुद्धि पावहु कतहुँ, सज्जन लेहु सुधार ॥ ६ ॥
लाली, अधरनकी लखत, विद्रुम बिम्बलजाय ॥ नेत्र कमल दल श्याम रँग, सब देवनके राय ॥ ७ ॥
नेक भ्रुकुटि सूधी करत, रचैं चराचर झार ॥ द्विज बलदेव प्रसादपै,"द्रवहु सो कृपाअगार।" ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे भाषाटीकासमेते सुन्दरकाण्डः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्ध्यात्मरामायणे भाषाटीकासमेते युद्धकाण्डप्रारम्भः ॥

श्लोक–यो जगत्पंकिलं हन्ति तमीडे प्रभुमीश्वरम् ॥ तस्याधीनो हि लोको यः सागसो दण्डयत्यसून् ॥ १ ॥
अपिच–स्वयं नग्नो रक्ताम्बरधरमरं शास्त्यतिविधिं स्वयं भिक्षुर्भूभृत्प्रवरतनयाऽस्मै स्पृहयति ॥
स्वयं गोयानो गोपुरपरिजनोऽस्य द्विपरथस्तदीशस्यैश्वर्यं विभवनिरपेक्षं विजयते ॥ २ ॥

टीका–यःपंकिलं कलुषितं जगत् हन्ति जगद्द्रुहामसुरादीनां संहारेण संसारं परिष्करोतीत्यर्थः।तमीश्वरमीडे स्तौमि। तस्य ईशस्य अधीनः अनुगृहीतश्च यः प्रभुः राजा सागसः सापराधान् असून् प्राणान् दण्डयति तमपि प्रभुमनुग्रहनिग्रहयोः कारणं राजानञ्च ईडे इति पूर्वेणान्वयः, शिष्टपालनाय दुष्टदमनं प्रभोः कर्तव्यं कर्मेति भावः ॥ १ ॥स्वयमिति–यः स्वयं नग्नोऽपि अम्बररहितोपि रक्ताम्बरधरं विचित्राम्बरधारिणं अतिविधिमतिक्रान्तवेदविधिं पापचारिणं शास्ति हिनस्ति,स्वयं भिक्षुरपि याचकवृत्तिस्थितोऽपि अस्मै भिक्षवे भूभृत्प्रवरतनया पर्वतराजनंदिनी स्पृहयति यं कामयते इत्यर्थः। एवं गोयानोऽपि वृषभवाहनोऽपि अस्य देवस्य द्विपरथः ऐरावतारूढः देवराजोऽपि गोपुरपरिजनः पुरद्वारि स्थितः।इन्द्रः यं दिदृक्षया बहिर्द्वारि तिष्ठतीति भावः। अत एव विभवनिरपेक्षं हयहस्त्याद्यपेक्षारहितं तत्प्रसिद्धमीशस्य ऐश्वर्य्यं प्रभुत्वं विजयते सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते। “पुरद्वारन्तुगोपुरमि” त्यमरः। ॥ २ ॥

॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ यथावद्भाषितंवाक्यंश्रुत्वारामोहनूमतः ॥ उवाचानंतरंवाक्यंहर्षेणमहतावृतः ॥ १ ॥ कार्यंकृतंहनुमतादेवैरपिसुदुष्करम् ॥ मनसापियदन्येनस्मर्तुंशक्यंनभूतले ॥ २ ॥ शतयोजनविस्तीर्णंलंघयेत्कःपयोनिधिम् ॥ लंकांचराक्षसैर्गुप्तांकोवाधर्षयितुंक्षमः ॥ ३ ॥

दोहा–जो अघहारत जगतके, भक्त जनन प्रतिपाल ॥ जावश त्रय लोकी अहै, सो शिव होहु दयाल ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजीकां समुद्रके किनारेपर पहुँचना। महादेवजी बोले;– हे पार्वति ! हनुमानजीका कहा हुआ यथावत् (जैसा हुआथा ऐसा) वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी अत्यन्त प्रसन्न होकरबोले;– ॥ १ ॥ “स्वर्गके देवताओंसेभी न होसकनेंवाला; और भूमिपर रहनेवाले मनुष्य जिसको मनमेंभी न लाय सकैं ऐसे कार्यको हनुमाननें किया है ॥ २॥ कारण कि शतयोजन (४००) कोशके समुद्रको कौन लांघ सकता है? इसी प्रकार राक्षसोंकी रखाई हुई

लंकापुरीका जलानारूप तिरस्कार कौन करसकता है? ॥ ३ ॥ हनुमाननें सेवकका धर्म भली भांतिसे पूरा किया । न तौ कोई आजतक सुग्रीवका ऐसा सेवक हुआ, न आनेको होगा ॥ ४ ॥ हनुमान् जानकीके दर्शन कर आया; इस कार्यका महत्त्व मैं इतनाही समझताहूं कि इसनें आज मेरा; सारे रघुवंशका, लक्ष्मणका, और इन वानरराज (सुग्रीव) के प्राणका संकट टाला ॥ ५ ॥ जानकीके सुधि लानेका कार्य इन्होंने भली भांतिसे किया । परन्तु समुद्रकी याद आनेंसे मेरा मन दुःखित होता है ॥ ६ ॥ मगर मच्छोंसे भरे हुए शतयोजनके लंबे समुद्रको लांघ पल्लीपार जानेका और शत्रुके बध करनेका कार्य मेरे द्वारा किस प्रकार होगा? और जानकी हमको कैसे दिखाई देगी” ॥ ७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर सुग्रीवजीने कहा;– “ हे

भृत्यकार्यंहनुमताकृतंसर्वमशेषतः ॥ सुग्रीवस्येदृशोलोकेनभूतोनभविष्यति ॥ ४ ॥ अहंचरघुवंशश्चलक्ष्मणश्चकपीश्वरः ॥
जानक्यादर्शनेनाद्यरक्षिताःस्मोहनूमता ॥ ५ ॥ सर्वथासुकृतंकार्यंजानक्याःपरिमार्गणम् ॥ समुद्रंमनसास्मृत्वासीदतीवमनोमम ॥ ६ ॥
कथंनक्रझषाकीर्णंसमुद्रंशतयोजनम् ॥ लंघयित्वारिपुंहन्यांकथंद्रक्ष्यामिजानकीम् ॥ ७ ॥ श्रुत्वातुरामवचनंसुग्रीवःप्राहराघवम् ॥
समुद्रंलंघयिष्यामोमहानक्रझषाकुलम् ॥ ८ ॥ लंकांचविधमिष्यामोहनिष्यामोऽद्यरावणम् ॥ चिंतांत्यजरघुश्रेष्ठचिंताकार्यविनाशिनी ॥ ९ ॥ एतान्पश्यमहासत्वाञ्छूरान्वानरपुंगवान् ॥ त्वत्प्रियार्थंसमुद्युक्तान्प्रवेष्टुमपिपावकम् ॥ १० ॥ समुद्रतरणेबुद्धिंकुरुष्वप्रथमंततः ॥ दृष्टालंकांदशग्रीवोहतइत्येवमन्महे ॥ ११ ॥ नहिपश्याम्यहंकंचित्त्रिषुलोकेषुराघव ॥ गृहीतधनुषोयस्तेतिष्ठेदभिमुखोरणे ॥ १२ ॥ सर्वथानोजयोरामभविष्यतिनसंशयः ॥ निमित्तानिचपश्यामितथाभूतानिसर्वशः ॥ १३ ॥

रघुवीर ! समुद्रमें बड़े २ मगर मच्छ कितनेही भरे रहो हम (वानर) उसके पार उतर जांयगे ॥ ८ ॥ लंकाका नाश करके रावणको मारेंगे। आप चिंता न कीजिये। कारण कि,– ‘चिंता कार्यविनाशिनी’ । चिंता कार्यका नाशकरने वाली है ॥ ९ ॥ इन महाशक्तिमान्, शूरवीर वानरोंकी ओर देखिये,– यह आपका प्रियकार्य करनेको तैयार हैं। अधिक न कहकर इतनाही कहे देताहूं कि जो आपके अर्थ अग्निमें प्रवेश करना पड़े तौभी यह वानर तैयार हैं ॥ १० ॥ पहले समुद्रपार होनेकी कोई युक्ति कीजिये, फिर लंकाके देखतेही मैं रावणको मरा हुआ समझताहूं ॥ ११ ॥ हे रामचंद्र ! त्रिलोकीमें आपके सामने रण संग्राममें धनुष लेकर खड़ा रहे, ऐसा मैं किसीकोभी नहीं देखताहूं ॥ १२ ॥ हे राम !

सर्व प्रकार अपनी जय होगी,-- इसमें जराभी संशय नहीं है; कारण कि तैसे मंगलसूचक शकुन हमारे देखनेमें आते हैं” ॥ १३ ॥ ऊपर कहे हुए भक्तवीर सुग्रीवके भक्ति और शूर वीरतासे भरे हुए वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी उन वचनोंको आदर देकर अपने सन्मुख खड़े हुए हनुमानजीसे बोले ॥ १४ ॥ “ हे हनुमन् ! हम कोई युक्ति करके (अर्थात् समुद्रको सुखाय या उसपर पुल बांध करकै) इस महासमुद्रके पार जांयगे; परन्तु लंकाके बाहरी दिखावेका तुम मुझसे वर्णन करो; मैं तो ऐसा सुनताहूं कि देवता और दैत्योंकोभी लंकामें प्रवेश करना दुर्लभहै ॥१५॥ हे वानरेश्वर ! लंकाका स्वरूप जानकर उसके नाशकरनेका उपाय करूंगा ।” श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर हनुमानजी नम्रतापूर्वक ॥ १६ ॥ हाथ जोड़कर

सुग्रीववचनंश्रुत्वाभक्तिवीर्यसमन्वितम् ॥ अंगीकृत्याब्रवीद्रामोहनूमंतंपुरःस्थितम् ॥ १४ ॥ येनकेनप्रकारेणलंघयामोमहार्णवम् ॥ लंकास्वरूपंमेब्रूहिदुःसाध्यंदेवदानवैः ॥ १५ ॥ ज्ञात्वातस्यप्रतीकारंकरिष्यामिकपीश्वर ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंहनूमान्विनयान्वितः ॥ ॥ १६ ॥ उवाचप्रांजलिर्देवयथादृष्टंब्रवीमिते ॥ लंकादिव्यापुरीदेवत्रिकूटशिखरेस्थिता ॥ १७ ॥ स्वर्णप्राकारसहितास्वर्णाट्टालकसंयुता ॥ परिखाभिःपरिवृतापूर्णाभिर्निर्मलोदकैः ॥ १८ ॥ नानोपवनशोभाढ्यादिव्यवापीभिरावृता ॥ गृहैर्विचित्रशोभाढ्यैर्मणिस्तंभमयैःशुभैः ॥ १९ ॥ पश्चिमद्वारमासाद्यगजवाहाःसहस्रशः ॥ उत्तरेद्वारितिष्ठंतिसाश्ववाहाःसपत्तयः ॥ २० ॥ तिष्ठंत्यर्बुदसंख्याकाःप्राच्यामपितथैवच ॥ रक्षिणोराक्षसावीराद्वारंदक्षिणमाश्रिताः ॥ २१ ॥ मध्यकक्षेप्यसंख्यातागजाश्वरथपत्तयः ॥ रक्षयंतिसदालंकांनानास्त्रकुशलाःप्रभो ॥ २२ ॥

उनसे बोले;—हे देव ! हमने जैसा कुछ देखाहै; वह सब आपसे कहाजाता है; हे प्रभो ! त्रिकूट पर्वतके शिखरपर वसीहुई लंकानगरी वास्तवमें अलौकिक है ॥ १७ ॥ उसका कोट सुवर्णका है; सुवर्णहीकी बनीहुई शहरमें हवेलियेंहैं; शहरके आसपास निर्मल जलसे भरीहुई खाई है ॥ १८ ॥ अनेकप्रकारके उपवन तथा सुंदर बावलियां हैं; मणिजड़े स्तंभोंसे युक्त विचित्र शोभावाले बडे २ घरहैं ॥ १९ ॥ उस शहरके चार द्वारहैं; तिसमें पश्चिमओरके द्वारपर हाथियोंपै चढ़ेहुए हजारों योद्धा रक्षा करनेके लिये खड़ेहैं । उत्तरके द्वारपर हजारों घुड़सवार और पैदल रहतेहैं ॥ २० ॥ पूर्वकी ओरके द्वारपर दशकरोड़ राक्षस वीर रहते हैं; और इतनेही राक्षस लंकाके दक्षिण द्वारपर रहते हैं ॥ २१ ॥ हे प्रभो! नगरीके मध्यभागमें जो

बुर्जहै; उसपर असंख्य हाथी घोड़े,रथ, व पैदल तैयार होकर सदाही लंकाकी रक्षा करतेहैं। वे सबवीर अनेकप्रकारकी अस्त्रविद्यामें कुशलहैं ॥ २२ ॥ जहां पहरे खड़ेहुए हैं; ऐसे लंकामें जानेके मार्ग बहुत छोटे, गुप्त व विचित्र प्रकारसे बांधेहुए हैं। उन मार्गोंपर जहां तहां तोपै चढ़ीहुई हैं। हे देवाधिदेव! ऐसा बन्दोबस्त होनेपरभी मैंने क्या क्या किया सो सुनिये;—॥ २३ ॥ लंकापुरीमें रावणकी सैनाके चतुर्थांशको मैंने मारडालाहै; लंकाको जलाय कर उसके सुवर्णमंदिरको तोड़डाला ॥ २४ ॥ हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ ! तोपोंको तोड़दिया; व जगह २ कोटको गिराकर, छोटे मार्गोंको बड़ाकिया। परंतु लंकानगरीको जलाया आपकेही दर्शनोंके प्रतापसेहै ॥ २५ ॥ हे देवाधिदेव! आप तैयारी कीजिये, और महाशूरवीर वानरोंको चारों ओरसे साथले समुद्रके किनारेपर चलिये" ॥ २६ ॥ हनुमानजीके वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी बोले;-"हेसुग्रीव!तुम सारी सैनाको [समुद्रके किनारे] चलनें की आंज्ञा दो ॥ २७ ॥ कारण कि इस समय विजय नामक मुहूर्त्तहै [इसमें प्रस्थान करनेंसे निश्चय जय मिलैगी] इस्से मैं इसी मुहूर्तमें लंकाको जानेंके लिये तैयारहूं। लंकामें बहुतसे राक्षस वस्तेहैं॥ २८ ॥ अनेक किलेभी वहांपर हैं; इस कारण उसका नाश होना वास्तवमें कठिन है; परन्तु मैं रावणके सहित उस लंका नगरीको धूलमें मिलाय सीताजीको लेआऊंगा। यह देखो मेरी दांईआंखके नीचेका भाग फड़कताहै ॥ २९ ॥ इस कारण इस चौघड़ियामेंही वानरोंकी सैना चले; जो सैनापति होवै सैनाके आगे पीछे होकर दोनों बगलोंकी रक्षा करे ॥ ३० ॥ मैं हनुमानके

संक्रमैर्विविधैर्लंकाशतघ्नीभिश्चसंयुता ॥ एवंस्थितेऽपिदेवेशशृणुमेतत्रचेष्टितम्॥२३॥ दशाननबलौघस्यचतुर्थांशोमयाहतः॥ दग्ध्वालं
कांपुरींस्वर्णप्रासादोधर्षितोमया ॥ २४ ॥ शतघ्न्यःसंक्रमाश्चैवनाशितामेरघूत्तम ॥ देवत्वद्दर्शनादेवलंकाभस्मीकृताभवेत् ॥ २५ ॥
प्रस्थानंकुरुदेवेशगच्छामोलवणांबुधेः ॥ तीरंसहमहावीरैर्वानरैर्वैःसमंततः ॥ २६ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यमुवाचरघुनंदनः ॥ सुग्रीवसैनि
कान्सर्वान्प्रस्थानायाभिनोदय ॥ २७ ॥ इदानीमेवविजयोमुहूर्तःपरिवर्तते ॥ अस्मिन्मुहूर्तेगत्वाहंलंकांराक्षससंकुलाम् ॥२८॥ सप्राकारां
सुदुर्धर्षांनाशयामिसरावणाम् ॥ आनेष्यामिचसीतांमेदक्षिणाक्षिस्फुरत्यधः ॥ २९ ॥ प्रयातुवाहिनीसर्वावानराणांतरस्विनाम् ॥
रक्षंतुयूथपाःसेनामग्रेपृष्ठेचपार्श्वयोः ॥ ३० ॥ हनूमंतमथारुह्यगच्छाम्यग्रेऽगदंततः ॥ आरुह्यलक्ष्मणोयातुसुग्रीवत्वंमयासह ॥ ३१ ॥

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कंधेपर बैठकर आगे चलताहूं; लक्ष्मण अंगदके ऊपर बैठकर चलें, सुग्रीव! तुम हमारे साथ चलो ! ॥ ३१ ॥ गज, गवाक्ष, गवय, मैंद, द्विविद,
नल, नील, सुषेण, जांबवान, वैसेही दूसरे ॥ ३२ ॥ शत्रुओंका नाश करनेंवाले; यह सर्व सैनापति चारों ओरसे एक साथ चलें । श्रीराम
चंद्रजी वानरोंको ऐसी आज्ञा देकर लक्ष्मणजीको साथ लेकर चले ॥ ३३ ॥ उनके साथही सुग्रीवनें प्रस्थान किया; प्रभु श्रीरामचंद्रजी
अतिहर्षके साथ सैनाके बीचमें चल रहेथे सर्व वानरोंका शरीर प्रचंड हाथीके समानथा; वे सब इच्छानुसार रूप धारण करनेवालेथे ॥
॥ ३४ ॥ सर्व वानर युद्धमें जानेके साहससे शीघ्र चलते, गर्जना करते फल और शहद खाते हुए ॥ ३५ ॥ "हम अभी रावणका नाश करेंगे ।"

गजोगवाक्षोगवयोमैंदोद्विविदएवच ॥ नलोनीलःसुषेणश्चजांबवांश्चतथापरे ॥ ३२ ॥ सर्वेगच्छंतुसर्वत्रसेनापाःशत्रुघातिनः ॥ इत्या
ज्ञाप्यहरीन्रामःप्रतस्थेसहलक्ष्मणः ॥ ३३ ॥ सुग्रीवसहितोहर्षात्सेनामध्यगतोविभुः ॥ वारणेंद्रनिभाःसर्वेवानराःकामरूपिणः ॥ ३४ ॥
क्ष्वेलंतःपरिगर्जंतोजग्मुस्तेदक्षिणांदिशम् ॥ भक्षयंतोययुःसर्वेफलानिचमधूनिच ॥ ३५ ॥ ब्रुवंतोराघवस्याग्रेहनिष्यामोऽद्यरावणम् ॥
एवंतेवानरश्रेष्ठागच्छंत्यतुलविक्रमाः ॥ ३६ ॥ हरिभ्यामुह्यमानौतौशुशुभातेरघूत्तमौ ॥ नक्षत्रैःसेवितौयद्वच्चंद्रसूर्याविवांबरे ॥ ३७ ॥
आवृत्त्यपृथिवींकृत्स्नांजगाममहतीचमूः ॥ प्रस्फोटयंतःपुच्छाग्रानुद्वहंतश्चपादपान् ॥ ३८ ॥ शैलानारोहयंतश्चजग्मुर्मारुतवेगतः ॥
असंख्याताश्चसर्वत्रवानराःपरिपूरिताः ॥३९॥ हृष्टास्तेजग्मुरत्यर्थंरामेणपरिपालिता ॥ गताचमूर्दिवारात्रंक्कचिन्नासज्जतक्षणम् ॥ ४० ॥

इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख कहते हुए वे अतुलपराक्रमी श्रेष्ठ वानर आगे २ चले ॥ ३६ ॥ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी; यह दोनोंजने
वानरोंके कंधोंपर बैठेथे, इनके पास बहुतसे वानरोंका मंडलथा; उसदिखावेको देखकर मनमें ऐसा आवै कि मानो आकाशमें चंद्रमा व सूर्य
के धोरे नक्षत्र [तारों] का समूह दिखाई देताहै ॥ ३७ ॥ वह बड़ी भारी सैना वहाँकी समस्त पृथ्वीको ढककर चली । असंख्य वानर पृथ्वी
के ऊपर अपनी पूंछके अग्रभागको उछालते लड़ाईके लिये हाथमें वृक्ष लिये ॥ ३८ ॥ पर्वतोंपर चढ़ते हुए पवनके समान वेगसे चलने लगे ।
अगणित वानर इधर उधर चलरहेथे; इस कारण वे वानर बड़े आनंदसे आगे चल रहेथे । वह सैना रात दिन बराबर चलतीथी; एक क्षण भरको

CSU-Jaipur Campus Collection

भी कहीं नहीं रुकी ॥ ३९ ॥ ४० ॥ मलय व सह्य नामक दोनों पर्वतोंपर श्रीरामचंद्रजीको विचित्र वन दिखाई दिये इन दोनों पर्वतोंको पीछे छोड़कर ॥ ४१ ॥ क्रम प्रमाणसे वानरोंकी सैना और श्रीरामचंद्रजी समुद्रके उत्तर किनारे पर आये; महासमुद्रमें भयंकर गर्जन होरहीथी श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीके कंधेपरसे उतरे और सुग्रीवके साथ ॥ ४२ ॥ जलके निकट आये और सुग्रीवसे कहा;-हम सबजने समुद्र पर आय पहुँचे इस महासागरके भीतर अनेक प्रकारके मगर रहतेहैं ॥ ४३ ॥ परन्तु हे वानरगणो ! हम लोग विना उपाय किये इस समुद्रके पार नहीं हो सकते हैं ॥४४॥श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर सुग्रीवने समुद्रके अति निकट सैनाका पड़ाव डाला; बड़े २ वानर सैनाकी रक्षा करने लगे ॥ ४५॥ जिसमें बड़ी २ तरंगें उछल रहीहैं, जिसमें भयंकर नाकोंका भयहै, जिसकी गहराईका ठिकाना नहीं; आकाशके समान जिसकी लंबाई चौडाईका अंत नहीं; ऐसे समुद्रका भयंकर रूप देखतेही सबजने खिन्न हुए--समुद्रके दर्शन करनेंसे सबको दुःख हुआ; सबने ऐसा विचार किया कि वरुणजीके वासस्थान इस भयंकर समुद्रको हमलोग कैसे उतरेंगे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ राक्षसोंमें अधम रावण आजही मारनेके योग्यहै; ऐसी चिन्तासे व्याकुल होकर सारे वानर श्रीरामचंद्रजीके पास जाकर बैठ गये ॥ ४८ ॥ सीताजीकी याद आनेसे श्रीरामचंद्रजीको बहुत दुःख होने लगा; उन्होंने जनककुमारी सीताके लिये बहुतसा विलाप किया; यद्यपि रामचंद्रजी यथार्थ परमेश्वरथे; परन्तु उन्होंने नरवेश धारणकरने

काननानिविचित्राणिपश्यन्मलयसह्ययोः ॥ तेसह्यंसमतिक्रम्यमलयंचतथागिरिम् ॥ ४१ ॥ आययुश्चानुपूर्व्येणसमुद्रंभीमनिःस्वनम् ॥ अवतीर्यहनूमंतंरामःसुग्रीवसंयुतः ॥ ४२ ॥ सलिलाभ्याशमासाद्यरामोवचनमब्रवीत् ॥ आगताःस्मोवयंसर्वेसमुद्रंमकरालयम् ॥ ४३ ॥ इतोगंतुमशक्यंनोनिरुपायेनवानराः ॥ अत्रसेनानिवेशोऽस्तुमंत्रयामोऽस्यतारणे ॥ ४४ ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंसुग्रीवःसागरांतिके ॥ सेनांन्यवेशयत्क्षिप्रंरक्षितांकपिकुंजरैः ॥ ४५ ॥ तेपश्यंतोविषेदुस्तंसागरंभीमदर्शनम् ॥ महोन्नततरंगाढ्यंभीमनक्रभयंकरम् ॥ ४६ ॥ अगाधंगगनाकारंसागरंवीक्ष्यदुःखिताः ॥ तरिष्यामःकथंघोरंसागरंवरुणालयम् ॥ ४७ ॥ हंतव्योस्माभिरद्यैवरावणोराक्षसाधमः॥इतिचिंताकुलाःसर्वेरामपार्श्वेव्यवस्थिताः॥ ४८॥ रामःसीतामनुस्मृत्यदुःखेनमहतावृतः ॥ विलप्यजानकींसीतांबहुधाकार्यमानुपः॥ ४९ ॥

के कारण विलाप कियाथा क्योंकि उन्होंने किसीकार्यके लिये मनुष्यरूप धारण कियाथा ॥ ४९ ॥ परन्तु वास्तविक देखनेसे उनको कुछभी नहीं है; कारण कि वह तो एकहैं; श्रुतिमें कहाहै कि (द्वितीयाद्धि भयंभवति) दूसरेसे भय होताहै परन्तु रामजी स्वयं एकहैं; और ज्ञानस्वरूप श्रीरामचंद्रजीका स्वरूप जो मनुष्य " तत्त्वमसि " इस श्रुतिमें 'तत्' पद ईश्वरवाचक है और 'असि' पद विद्यमानपना बतावै है; अर्थात् जीवसे कहे है कि तू परमात्माका स्वरूपहै आदि श्रुतियोंसे अंतःकरणमें विराजमान श्रीरामचंद्रजीका स्वरूप जानता है ॥ ॥ ५० ॥ उसको दुःखादि स्पर्श नहीं करसकते अत एव जो आनंदमूर्ति और अव्यय (नाशरहित) होवै, उसको दुःख, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, मदादि कैसे छू सकते हैं ? ॥ ५१ ॥ ऊपर कहेहुए दुःखादि, अज्ञानसे उत्पन्न होतेहैं । ज्ञान होतेही अज्ञानका नाश होजाता है, अर्थात् यह चिह्न नाशको प्राप्त होजाते हैं । तब ज्ञानरूपी परमात्मामें इनका रहना किस प्रकारसे संभव है; देहाभिमानी प्राणीको दुःख होना संभव है; परन्तु देहरहित परमात्माको किसी प्रकारका दुःख नहीं है ॥ ५२ ॥ जब सुषुप्ति अवस्था होती है; और अद्वैतका भान होतेही केवल सुखका अनुभव होता है; कारण कि उस अवस्थामें बुद्धिको भय होता है तिस्से शुद्ध आत्माको दुःखादि नहीं होता। इस्से सिद्ध होता है कि बुद्धिसे ही सारे दुःख पैदा होते हैं; क्योंकि संकल्प विकल्प करना बुद्धिका धर्म है। इस्से इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥ ५३ ॥ परन्तु श्रीरामचंद्रजी परमात्मा हैं, पुरुष हैं; पुराण (अनादिकालके) हैं, निरन्तर नाशरहित हैं; नित्य सुखमय और चेष्टारहित हैं; तथापि मायाके गुणमें लीन हुआ अज्ञानी जीवों करके मायाके गुणोंमें लीन होकर रहेहुए श्रीरामचंद्रजी सुखी दुःखी माने गये हैं; परन्तु श्रीरामचंद्रजी स्वयं निर्लेप और निराबाध हैं ॥ ५४ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे भाषा० प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

अद्वितीयश्चिदात्मैकःपरमात्मासनातनः ॥ यस्तुजानातिरामस्यस्वरूपंतत्त्वतोजनः ॥५०॥ तंनःस्पृशतिदुःखादिकिमुतानंदमव्ययम् ॥
दुःखहर्षभयक्रोधलोभमोहमदादयः ॥ ५१ ॥ अज्ञानलिंगान्येतानिकुतःसंतिचिदात्मनि ॥ देहाभिमानिनोदुःखंनादेहस्यचिदात्मनः ॥
॥ ५२ ॥ संप्रसादेद्वयाभावात्सुखमात्रंहिदृश्यते ॥ बुद्ध्याद्यभावात्संशुद्धेदुःखंतत्रनदृश्यते ॥ अतोदुःखादिकंसर्वंबुद्धेरेवनसंशयः ॥५३॥
रामःपरात्मापुरुषःपुराणोनित्योदितोनित्यसुखोनिरीहः ॥ तथापिमायागुणसंगतोऽसौसुखीवदुःखीवविभाव्यतेऽबुधैः ॥५४॥ इतिश्री
मदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेप्रथमःसर्गः ॥ १ ॥

विभीषणका श्रीरामजीकी शरणमें आना। श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति! इधर उस लंकामें जिसको देवताभी न कर सकैं ऐसा हनुमानजीका किया हुआ कार्य देख रावणने शरमाकर कुछ एक शिर नीचेको किया॥१॥ उसने अपने सारे मंत्रियोंको बुलाकर इस प्रकार कहा। " मंत्रियो! हनुमानका किया हुआ कार्य तुम लोगोंने देखा ॥ २ ॥ अरे! जिस लंकानगरीकी ओर टेढ़ी दृष्टिसे देखना कठिन है; ऐसी नगरीमें उसने प्रवेश किया, कोई न जाने, ऐसे स्थानमें रहती हुई सीतासे वह मिला! इतनाही नहीं, बरन्, उसने हमारे वीर राक्षसोंको मारा, मन्दोदरीके अक्ष नामक पुत्रका वध किया ॥ ३ ॥ सारी लंकामें अग्नि लगादी; समुद्रको लांघकर तुम सबका तिरस्कारकर वह आनंदसे बेखटके लौट गया ॥ ४ ॥ तुम लोग न्याय शास्त्रमें निपुण हो; इसकारण जिस कार्यके करनेसे मेरा भला हो वह तुम मुझसे कहो; उसका यत्नके साथ तुम विचार करो " ॥ ५ ॥ रावणके वचन सुनकर राक्षसोंने उत्तर दिया; "हे महाराज! आपने युद्धमें इन्द्रादि लोकपालोंको जीतलिया है। हे देव! फिर राममें आप अब कैसी शंका करते हैं?॥ ६ ॥ आपके पुत्रने इन्द्रको बांध लायकर इस नगरमें डाल दिया, आप स्वयं कुबेरजीको जीतकर उसका पुष्पक विमान ले आये; और अब आप उस विमानका भोग करते हैं [अर्थात् उसको अपनी सवारीमें रखते हैं] ॥ ७ ॥ हे प्रतापवान् राजन्!

लंकायांरावणोदृष्ट्वाकृतंकर्महनूमता ॥ दुष्करंदैवतैर्वापिह्रियाकिंचिदवाङ्मुखः ॥ १ ॥ आहूयमंत्रिणःसर्वानिदंवचनमब्रवीत् ॥ हनूमता
कृतंकर्मभवद्भिर्दृष्टमेवतत् ॥ २ ॥ प्रविश्यलंकांदुर्धर्षांदृष्ट्वासीतां दुरासदाम् ॥ हत्वाचराक्षसान्वीरानक्षंमंदोदरीसुतम् ॥ ३ ॥ दग्ध्वा
लंकामशेषेणलंघयित्वाचसागरम् ॥ युष्मान्सर्वानतिक्रम्यस्वस्थोऽगात्पुनरेवसः ॥ ४ ॥ किंकर्तव्यमितोऽस्माभिर्यूयंमंत्रविशारदाः ॥
मंत्रयध्वंप्रयत्नेनयत्कृतंमेहितंभवेत् ॥ ५ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाराक्षसास्तमथाब्रुवन् ॥ देवशंकाकुतोरामात्तवलोकजितोरणे ॥ ६ ॥ इंद्र
स्तुबद्धानिक्षिप्तःपुत्रेणतवपत्तने ॥ जित्वाकुबेरमानीयपुष्पकंभुज्यतेत्वया ॥ ७ ॥ यमोजितःकालदंडाद्भयंनाभूत्तवप्रभो ॥ वरुणोहुं
कृतेनैवजितःसर्वेऽपिराक्षसाः ॥ ८ ॥

मयोमहासुरोभीत्याकन्यांदत्वास्वयंतव ॥ त्वद्वशेवर्ततेऽद्यापिकिमुतान्येमहासुराः ॥ ९ ॥ हनूमद्धर्षणंयत्तुतदवज्ञाकृतंचनः ॥ वानरो
ऽयंकिमस्माकमस्मिन्पौरुषदर्शने ॥ १० ॥ इत्युपेक्षितमस्माभिर्धर्षणंतेनकिंभवेत् ॥ वयंप्रमत्ताःकिंतेनवंचिताःस्मोहनूमता ॥ ११ ॥
जानीमोयदितंसर्वेकथंजीवन्गमिष्यति ॥ आज्ञापयजगत्कृत्स्नमवानरममानुषम् ॥ १२ ॥ कृत्वायास्यामहेसर्वेप्रत्येकंवानियोजय ॥
कुंभकर्णस्तदाप्राहरावणंराक्षसेश्वरम् ॥ १३ ॥ आरब्धंयत्त्वयाकर्मस्वात्मनाशायकेवलम् ॥ नदृष्टोऽसितदाभाग्यात्त्वंरामेणमहात्मना ॥
॥ १४ ॥ यदिपश्यतिरामस्त्वांजीवन्नायासिरावण ॥ रामोनमानुषोदेवःसाक्षान्नारायणोऽव्ययः ॥ १५ ॥

जब आपने यमको जीता; तब उसके कालदण्डसेभी नहीं डरे; वरुणको और सब राक्षसोंको हुंकारसेही जीत लिया[1] ॥ ८ ॥ मय नामक महा असुरभी तुम्हारे भयसे अपनी पुत्री आपको दे, अबतक आपके अधीनमें है, फिर दूसरे असुर लोगोंका आधीन होना कुछ बड़ी बात नहीं है ॥ ९ ॥ परन्तु हनुमानने जो हमारा अपमान किया इस्से तो वह अपने आप अपना अपमान कर्ता होता है; वह वानर है; उसके ऊपरं अपना बल दिखलाने से क्या फायदा ? ऐसा विचार कर हमने उसका अपमान नहीं किया क्योंकि वह है क्या, और हमारा क्या करैगा ? ॥ १० ॥ ऐसा विचार कर हमने उसको जाने दिया। ऐसे हमारे प्रसादमें वह हनुमान हमको धोखा दे गया। हमने ऐसी उपेक्षा कीथी, इस्सेही वह कुछ विक्रम प्रकाश करगया; फिर इस्से क्या होगा जो हम इन बातोंको जानते होते तो उसको किस प्रकारसे जीता हुआ जाने देते। आज्ञा दीजिये हम इस सारे संसारको वानरशून्य और मनुष्यशून्य कर दें ॥ ११ ॥ १२ ॥ और फिर लौट आवैं। अथवा आप एक २ को आज्ञा दीजिये"। यह सब सुनकर राक्षसोंके राजा रावणसे कुंभकर्णने कहा ॥ १३ ॥ "हे रावण! तुमने जिस कार्यका आरंभ किया, इसका परिणाम केवल तेरे नाशका करनेवाला होगा! अरे! सीताको चुरानेके समय उन महाशूर श्रीरामचंद्रजीने तुम्हें नहीं देखा; यह तुम्हारे बड़े भाग्यकी बात हुई! ॥ १४ ॥ हे रावण! जो रामचंद्रजी तुमको देखलेते तौ तुम जीते हुए नहीं आते! रामचंद्रजी साधारण मनुष्य नहीं हैं; वे देवता हैं। वह साक्षात् निर्विकार

---

[1] "वरुणको हुंकारसेही जीत लिया और सब राक्षसगण आपके अधीन हैं" टीकाकार इस अर्थको ठीक मानता है। परन्तु मूलमें "आपके अधीन हैं" यह बात नहीं है; यह बात अपनी ओरसे मिलाकर व्याख्या करनी पड़ती है।

नारायण हैं ॥ १५ ॥ रामचंद्रजीकी भार्या यशस्विनी सीताजी प्रत्यक्ष भगवती लक्ष्मीजी हैं, उन सुन्दरीके ले आनेसे सर्व राक्षसोंका नाश होनेवाला है ॥ १६ ॥ मच्छ, विषैला पिंड खाकर जिसप्रकार पीछेसे पछितातांहै; तैसेही तुम्हारी स्थिति होरही है; जानकीको लेकर अब तुम इस विचारमें पड़ेहो कि 'अब कैसे होगी ? ' अथवा पीछेसे कुछ औरभी हो सकता है, जो मच्छ विष भोजन करता है; वही मरता है; परन्तु जानकीका हरण करनेसे तुम सारे वंशके साथ मरोगे ॥ १७ ॥ यद्यपि तुमने विनाजाने यह अनुचित कार्य किया है, तौ हे प्रभो ! मैं सब झगड़ा मिटादूंगा तुम चित्तको सावधान करो" ॥ १८ ॥ कुंभकर्णके वचन सुनकर इन्द्रजित बोला,—" महाराज ! मुझे आज्ञा दीजिये, मैं अभी राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, और सब बंदरोंको मारकर फिर आपके निकट आताहूं" ॥ १९ ॥ इतनेहीमें वहांपर भगवद्भक्त शिरोमणि, बुद्धिमान,

सीताभगवतीलक्ष्मीरामपत्नीयशस्विनी ॥ राक्षसानांविनाशायत्वयानीतासुमध्यमा ॥ १६ ॥ विषपिंडमिवागीर्यमहामीनोयथातथा ॥ आनीताजानकीपश्चात्त्वयाकिंवाभविष्यति ॥ १७ ॥ यद्यप्यनुचितंकर्मत्वयाकृतमजानता ॥ सर्वंसमंकरिष्यामिस्वस्थचित्तोभवप्रभो ॥ ॥ १८ ॥ कुंभकर्णवचः श्रुत्वावाक्यमिंद्रजिदब्रवीत् ॥ देहिदेवममानुज्ञांहत्वारामंसलक्ष्मणम् ॥ सुग्रीवंवानरांश्चैवपुनर्यास्यामितेंऽतिकम् ॥ १९ ॥ तत्रागतोभागवतप्रधानोविभीषणोबुद्धिमतांवरिष्ठः ॥ श्रीरामपादद्वयएकतानःप्रणम्यदेवारिमुपोपविष्टः ॥ २० ॥ विलोक्यकुंभश्रवणादिदैत्यान्मत्तप्रमत्तानतिविस्मयेन ॥ विलोक्यकामातुरमप्रमत्तोदशाननंप्राहविशुद्धबुद्धिः ॥ २१ ॥

पुरुषोंमें प्रथम गिन्नेके योग्य विभीषणजी जाय पहुँचे । उनके अंतःकरणकी वृत्ति रामजीके दोनों चरणोंमें एकाग्र लग रहीथी । वह देवताओंके शत्रु (रावण) को प्रणाम करकै उसके निकट बैठे ॥ २० ॥ सभाके बीचमें एकसे एक मदोन्मत्त कुंभकर्णादि दैत्य बैठेथे विभीषणने उन सबके ऊपर एकवार दृष्टि फिराई रामचंद्रजीके भक्त वानरोंके आगे इन राक्षसोंका निभाव क्षणभरभी नहीं होगा; परन्तु यह व्यर्थ बड़ाई मारते हैं। यह मनमें विचारकर विभीषणको बहुतही विस्मय हुवा, विभीषणने यह भी विचार लिया कि रावण कामातुर है; तौभी अत्यन्त निर्मल बुद्धियुक्त होनेसे विभीषणजी अपना कर्तव्य करनेसे नहीं चूकतेथे । अपने स्वभावके अनुसार उन्होंने रावणके चेतानेंको नीचे कहेहुए वचन

कहे ॥ २१ ॥ "हे राजन् ! कुंभकर्ण, इन्द्रजित्, महापार्श्व, महोदर तैसेही कुंभ, निकुंभ व अतिकाय यह राक्षस कितनेही शूर हों; परन्तु यह युद्धमें श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख नहीं टिक सकैंगे ॥ २२ ॥ हे राजन् ! 'सीता' नामक प्रबल पिशाचने तुमको पछाड़ रक्खा है उससे आपका छुटकारा नहीं होगा । अब जो तुम सीताका सत्कार करके बहुतसे द्रव्यके साथ उसे रामचंद्रजीको दे दोगे, तभी तुम सुख पाओगे ॥ २३ ॥ जबतक रामचंद्रजीके छोड़े हुए तीक्ष्णबाण लंकामें चारों ओर व्याप्त होकर राक्षसोंका माथा नहीं काटते हैं । तबतक (शीघ्र) रामचंद्रजीको जानकी लोटा देनेके लिये तुम समर्थ हो ॥ २४ ॥ जबतक पर्वताकार महाबलवान्सिंहके समान नखवाले तथा डाढ़से युद्ध करनेवाले वानर आयकर लंकाका नाश नहीं करैं; तिस्से पहलेही तुम जानकी श्रीरामचंद्रजीको देडालो ॥ २५ ॥ देवता और महादेवजी तुम्हारी रक्षा करैं, तोभी रामचंद्रजी तुम्हें जीताहुआ नहीं छोड़ैंगे; इन्द्रके पास जाओगे; पाताल लोकमें जाओगे, तोभी रामचंद्र तुम्हें नहीं छोड़ैंगे" ॥ २६ ॥ महादेवजी बोले हे पार्वति ! विभीषणके यह सौम्य वचन वास्तवमें हितकारक व पथ्य थे; परन्तु उस दुष्ट रावणने उनको इस प्रकार अंगीकार नहीं किया; जिस प्रकार मरनहार प्राणी औषधि नहीं लेता ॥ २७ ॥ वह राक्षस कालके प्रेरेहुएके समान विभीषणसे कहने लगा; "मेरे दिये हुए भोगको भोगके इसका शरीर पुष्ट हुआ है यह मेरे निकट रहता है ॥ २८ ॥ मैं नित्य इसका हित करताहूं; और आज यह मुझसे विरुद्ध चलता है ! यह

नकुंभकर्णेंद्रजितौचराजंस्तथामहापार्श्वमहोदरौतौ ॥ निकुंभकुंभौचतथातिकायःस्थातुंनशक्तायुधिराघवस्य ॥ २२ ॥ सीताभिधानेनमहाग्रहेणग्रस्तोऽसिराजन्नचतेविमोक्षः ॥ तामेवसत्कृत्यमहाधनेनदत्वाभिरामायसुखीभवत्वम् ॥ २३ ॥ यावन्नरामस्यशिताः शिलीमुखालंकामभिव्याप्यशिरांसिरक्षसाम् ॥ छिंदंतितावद्रघुनायकस्यभोस्तांजानकींत्वंप्रतिदातुमर्हसि ॥ २४ ॥ यावन्नगाभाःकपयोमहाबलाहरींद्रतुल्यानखदंष्ट्रयोधिनः ॥ लंकांसमाक्रम्यविनाशयंतितेतावद्द्रुतंदेहिरघूत्तमायताम् ॥ २५ ॥ जीवन्नरामेणविमोक्ष्यसेत्वंगुप्तःसुरैंद्रैरपिशंकरेण ॥ नदेवराजांकगतोनमृत्योः पाताललोकानपिसंप्रविष्टः ॥ २६ ॥ शुभंहितंपवित्रंचविभीषणवचःखलः ॥ प्रतिजग्राहनैवासौम्रियमाणइवौषधम् ॥ २७ ॥ कालेननोदितोदैत्योविभीषणमथाब्रवीत् ॥ मद्दत्तभोगैःपुष्टांगोमत्समीपेवसन्नपि ॥ २८ ॥ प्रतीपमाचरत्येषममैवहितकारिणः ॥ मित्रभावेनशत्रुर्मेजातोनास्त्यत्रसंशयः ॥ २९ ॥

मुझको मित्रभाव दिखाता है; परन्तु निःसंदेह यह मेरा शत्रु है ॥ २९ ॥ इस अनार्य और कृतघ्नीसे मुझको सम्बन्ध रखना भला नहीं लगता। यह नियमही है कि जातिवाले अपने जाति भाइयोंका नाश होनेकी सदा इच्छा करते हैं ॥ ३० ॥ जो इस समुदायका कोई कोई राक्षस मुझसे ऐसा एकभी वचन कहता तो मैं तत्काल उसका नाश कर डालता; अरे नीच! तैंने जन्म लेकर राक्षसोंके कुलको कलंक लगाया! तुझको धिक्कार है" ॥ ३१ ॥ जब रावणने ऐसे कठोर वचन कहकर तिरस्कार किया; तब वह महापराक्रमी विभीषणजी हाथमें गदा लिये हुए सभासे उड़े॥ ३२॥ उनके साथही उनके चार मंत्रीभी उड़े, विभीषणजीको अतिशय क्रोध आयाथा; आकाशमें जाय खड़े रहकर उन्होंने रावणसे कहा;– "रावण! हितकी बात कहतेहुए भी मुझको तैंने धिक्कारा। मेरी ऐसी इच्छा है कि तेरा नाश न होवै; । क्योंकि तू मेरा बड़ा भाई होनेके कारण, पिताके

अनार्येणकृतघ्नेनसंगतिर्मेनयुज्यते ॥ विनाशमभिकांक्षंतिज्ञातीनांज्ञातयःसदा ॥ ३० ॥ योऽन्यस्त्वेवंविधंब्रूयाद्वाक्यमेकंनिशाचरः ॥ हन्मितस्मिन्क्षणेएवधिक्त्वांरक्षःकुलाधमम् ॥ ३१ ॥ रावणेनैवमुक्तःसन्परुषंसविभीषणः ॥ उत्पपातसभामध्याद्गदापाणिर्महाबलः ॥ ॥ ३२ ॥ चतुर्भिर्मंत्रिभिःसार्धंगगनस्थोऽब्रवीद्वचः ॥ क्रोधेनमहताविष्टोरावणंदशकंधरम् ॥ माविनाशमुपैहित्वंप्रियवादिनमेवमाम् ॥ ३३ ॥ धिक्करोषितथापित्वंज्येष्ठोभ्रातापितुःसमः ॥ कालोराघवरूपेणजातोदशरथालये ॥ ३४ ॥ कालीसीताभिधानेनजाताजनकनंदिनी ॥ तावुभावागतावत्रभूमेर्भारापनुत्तये ॥ ३५ ॥ तेनैवप्रेरितस्त्वंतुनशृणोषिहितंमम ॥ श्रीरामःप्रकृतेः साक्षात्परस्तात्सर्वदास्थितः ॥ ३६ ॥

समान पूज्य है; सर्वके संहार करनेवाले कालने रामरूपसे दशरथके यहां अवतार लिया है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सारे संसारका नाश करनेके काममें सहायता करनेवाली काली नामक शक्ति 'सीता' नामसे जनककी कन्या हैं। वे दोनों (सीताराम) भूमिका भार दूर करनेके लिये यहाँपर आये हैं ॥ ३५ ॥ उन कालपुरुषकी प्रेरणासे तुम हमारे हितके वचन नहीं सुनते; श्रीरामचंद्रजी मायाके द्रष्टा हैं। जो कोई शंका करे कि जो मायाके द्रष्टा होंय तो उनमें मायाके गुण आने चाहिये। जैसे पीले, हलद्दुए वगैरह रंगसे जब वस्त्र छुआ जाता है, और तिनके सम्बन्धसे पीला हो जाता है; वैसेही राममें जानों; उत्तरमें मायाके द्रष्टा होनेपरभी वह सदा मायासे दूर रहते हैं इस कारण पंकमें ऊगेहुए कमलके समान मायाके

गुणसे लिप्त नहीं होते। और संसारमें प्राणियोंकें बाहर भीतर, सर्वत्र सम रीतिसे रहकर नाम व रूपादिके भेदसे जिस पदार्थमें रहते हैं, वैसेही (पदार्थमय) दिखलाई देने लगते हैं। परन्तु स्वयं मलरहित हैं ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ उदाहरणमें जैसे अलग २ वृक्षोंमें एक महाअग्नि रहाहुआ है, परन्तु आकारमें अन्तर होनेसे अज्ञानियोंको अलग २ आकारका दिखाई देता है; तैसेही ॥ ३८ ॥ अपने शरीरमें अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय यह पांच कोश हैं। इन कोशोंमें क्रमानुसार वह कोशरूप मालूम पड़ता है; और जैसे निर्मल स्फटिक मणिके पास काला रंग लगाया जाय तो स्फटिक काला दिखलाई देता और नीले रंगसे समस्त नीला दिखलाई देता है; तैसेही वास्तवमें परमात्मा शुद्ध है। परन्तु नाम और आकार भेदसे पृथक् २ आकारवाला जान पड़ता है ॥ ३९ ॥ मायाके सत, रज, तमादि गुणसे आप मुक्त हैं; तोभी मायाके गुणमें प्रतिबिम्बित होते हैं वह काल, प्रधान, पुरुष और अव्यक्त ऐसा चार प्रकारका है ॥ ४० ॥ तिसमें अजन्मा भगवान् प्रधान (परिणामरूप) और पुरुषरूपसे (रजोगुणके प्रति बिम्बरूपसे) सारे जगत्को उत्पन्न करते हैं; वही अविनाशी कालरूपसे (तमोगुणके प्रतिबिम्बरूपसे) जगत्का संहार करते हैं (अव्यक्त सतोगुणका प्रतिबिम्ब है) ॥ ४१ ॥ वही कालरूपी भगवान्; ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे तेरा वध करनेके लिये मायासे रामरूप लेकर यहांपर आये हैं। ईश्वरका संकल्प सत्य होता है; वह अपनी प्रतिज्ञाको अन्यथा कैसे होने देगा ॥ ४२ ॥ इस कारण मैं तुझसे कहताहूं कि पुत्र, सेना, और वाहनोंके साथ रामचंद्र तुझको मार डालैंगे। हे रावण! तेरा सारे राक्षस कुलका वध होताहुआ मुझसे न देखा जायगा इस कारण

वहिरंतश्चभूतानांसमःसर्वत्रसंस्थितः ॥ नामरूपादिभेदेनतत्तन्मयइवामलः ॥ ३७ ॥ यथानानाप्रकारेषुवृक्षेष्वेकोमहानलः ॥
तत्तदाकृतिभेदेनभिद्यतेज्ञानचक्षुषाम् ॥ ३८ ॥ पंचकोशादिभेदेनतत्तन्मयइवावभौ ॥ नीलपीतादियोगेननिर्मलः स्फटिकोयथा ॥ ३९ ॥
सएवनित्यमुक्तोऽपिस्वमायागुणबिंबितः ॥ कालःप्रधानंपुरुषोऽव्यक्तंचेतिचतुर्विधः ॥ ४० ॥ प्रधानपुरुषाभ्यांसजगत्कृत्स्नंसृजत्यजः ॥
कालरूपेणकलनांजगतःकुरुतेऽव्ययः ॥ ४१ ॥ कालरूपीसभगवान्नामरूपेणमायया ॥ ४२ ॥ ब्रह्मणाप्रार्थितोदेवस्त्वद्वधार्थमिहागतः ॥
तदन्यथाकथंकुर्यात्सत्यसंकल्पईश्वरः ॥ ४३ ॥ हनिष्यतित्वांरामस्तुसपुत्रवलवाहनम् ॥ हन्यमानंनशक्नोमिद्रष्टुंरामेणरावण ॥ ४४ ॥

मैं रामचंद्रजीके पास जाताहूं । मेरे जानेपर तू अपने घरमें सुखसे बहुत कालतक रहना” ॥४३॥४४॥ ऐसा कह रावणके कठोर वचनोंको सुनकर विभीषण क्षणभरमें परिजन और गृहादि समस्त वस्तुओंको छोड़ श्रीरामचंद्रजीके चरणकमल सेवन करनेकी अभिलाषासे रामचंद्रजीके समीप चला गया । अब उसका मनोरथ पूर्ण हुआ ॥ ४५ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा० युद्ध० भा० द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ रामचंद्रजीका विभीषणको शरणमें रखना और समुद्रके ऊपर कोप करके बाण चढ़ाना ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! महा भाग्यशाली विभीषणजी अपने चार मंत्रियोंके साथ श्रीरामचंद्रजीके पास आये; व आकाशमेंही रामजीके सन्मुख खड़े रहकर ॥ १ ॥ ऊंचे स्वरसे बोले, “हे कमलनयन !

त्वांराक्षसंकुलंकृत्स्नंततोगच्छामिराघवम् ॥ मयियातेसुखीभूत्वारमस्वभवनेचिरम् ॥ ४५ ॥ विभीषणोरावणवाक्यतःक्षणाद्विसृज्यसर्वंसपरिच्छदंगृहम् ॥ जगामरामस्यपदारविंदयोःसेवाभिकांक्षीपरिपूर्णमानसः ॥ ४६ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेद्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥ ॥ छ ॥ ॥ विभीषणोमहाभागश्चतुर्भिर्मंत्रिभिःसह ॥ आगत्यगगनेरामसंमुखेसमवस्थितः ॥ ॥ १ ॥ उच्चैरुवाचभोःस्वामिन्रामराजीवलोचन ॥ रावणस्यानुजोऽहंतेदारहर्तुर्विभीषणः ॥ २ ॥ नाम्नाभ्रात्रानिरस्तोऽहंत्वामेवशरणंगतः ॥ हितमुक्तंमयादेवतस्यचाविदितात्मनः ॥ ३ ॥ सीतांरामायवैदेहींप्रेषयेतिपुनःपुनः ॥ उक्तोऽपिनशृणोत्येषकालपाशवशंगतः ॥ ॥ ४ ॥ हंतुंमांखड्गमादायप्राद्रवद्राक्षसाधमः ॥ ततोऽचिरेणसचिवैश्चतुर्भिःसहितोभयात् ॥ ५॥ त्वामेवभवमोक्षायमुमुक्षुःशरणंगतः ॥ विभीषणवचःश्रुत्वासुग्रीवोवाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥

महाराज रामचंद्रजी तुम्हारी स्त्रीके हरनेवाले रावणका मैं छोटा भाई हूं, हे स्वामी ! उस रावणने मुझको निकाल दिया है विभीषण ॥ २ ॥ मेरा नाम है, भ्राताने मेरा तिरस्कार कियाहै; तिस अज्ञानीसे उसके हितार्थ मैंने वारंवार कहा कि सीता श्रीरामचंद्रजीको देदे; हे देव ! रावणको अपने स्वरूपका ज्ञान नहींहै इसकारण वह नही सुनता; कालपाशने उसको पूर्णपनासे अपने आधीनमें करलियाहै ॥ ३ ॥ ४ ॥ वह अधम राक्षस मुझको मारनेके लिये हाथमें खड्ग लेकर मारनेको तैयार हुआ इतनेहीमें शीघ्र चार मंत्रियोंको साथ ले मैं भयके मारे ॥ ५ ॥ आपकी शरणआया; इस संसारसे छूटकर मोक्षप्राप्त करनेकी मुझको इच्छा है, मेरे सब बंधन छुड़ाओ” विभीषणके वचन सुनकर सुग्रीवने श्रीरामचंद्रजीसे

कहा ॥ ६ ॥ “हे रामजी!यह राक्षस मायावी और अधम है;इसकारण इसका विश्वास करना उचित नहींहै। दूसरा कोई और होता तौ चिन्ता नथी। पर यह उसका छोटाभाई है कि जिस रावणने सीताको चुरायाहै यह महाबलवान् दिखाई देताहै? ॥ ७ ॥ इसके साथ अस्त्र बांधेहुए इसके मंत्रीभी हैं इनकी सहायतासे अवसर पायकर यह हम सबोंको मारडालैगा!! इसकारण हे देव! वानरोंसे इसको मरवाडालनेकी मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ८ ॥ मेरे मनमें तौ ऐसा आवै है; परन्तु अपने मनमें आपने जो निश्चय किया होय सो मुझसे कहिये।” सुग्रीवके वचन सुनकर श्रीरामजी मंद मुसकायकर बोले;—॥ ९ ॥ “हे वानरश्रेष्ठ! जो मेरी संहार करनेकी इच्छा होवे, तौ आधे क्षणमें इन्द्रके सहित सारे जगत्का संहार कर डालूं और आधे क्षणमें फिर नई सृष्टि करूं ॥ १० ॥ इसकारण मुझे इसका कुछभी भय नही है; तिस राक्षसको मैं अभयदान देताहूं। इस कारण इस राक्षसको शीघ्र मेरेपास लेआओ ॥ ११ ॥ मेरा व्रतही यह है कि जो प्राणी केवल एक वार ‘हे देव! मैं तुम्हारा हूं’ ऐसा कह कर मुझसे अभय मांगता है—वह कितनाही निकृष्ट स्थितिका हो या कैसीही योनिमें जन्माहो उसको मैं अभय दे देताहूं।” ॥ १२ ॥ रामचंद्रजीके वचन सुनकर सुग्रीवके मनमें हर्ष हुआ; उन्होंने विभीषणको बुलाय कर श्रीरामचंद्रजीसे मिलाया ॥ १३ ॥ रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको साष्टांग प्रणाम करकै हर्षभरी गद्गद वाणीसे विभीषणने रामचंद्रजीकी स्तुति प्रारंभकी ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजीके शरीरका वर्ण श्याम,

विश्वासार्होंनतेराममायावीराक्षसाधमः ॥ सीताहर्तुर्विशेषेणरावणस्यानुजोबली ॥ ॥ ७ ॥ मंत्रिभिःसायुधैरस्मान्विवरेनिहनिष्यति ॥
तदाज्ञापयमेदेववानरैर्हन्यतामयम् ॥ ८ ॥ ममैवंभातितेरामबुद्ध्याकिंनिश्चितंवद ॥ श्रुत्वासुग्रीववचनंरामःसस्मितमब्रवीत् ॥ ९ ॥
यदीच्छामिकपिश्रेष्ठलोकान्सर्वान्सहेश्वरान् ॥ निमिषार्धेनसंहन्यांसृजामिनिमिषार्धतः ॥ १० ॥ अतोमयाऽभयंदत्तंशीघ्रमानयराक्षसम् ॥
॥ ११ ॥ सकृदेवप्रपन्नायतवास्मीतिचयाचते ॥ अभयंसर्वभूतेभ्योददाम्येतद्व्रतंमम ॥ १२ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वासुग्रीवोहृष्टमानसः ॥
विभीषणमथानाय्यदर्शयामासराघवम् ॥१३॥ विभीषणस्तुसाष्टांगंप्रणिपत्यरघूत्तमम् ॥ हर्षगद्गदयावाचाभक्त्याचपरयान्वितः ॥ १४ ॥
रामंश्यामंविशालाक्षंप्रसन्नमुखपंकजम् ॥ धनुर्बाणधरंशांतंलक्ष्मणेनसमन्वितम् ॥ १५ ॥

नेत्र विशाल, व मुखकमल प्रसन्नथा। उनके हाथमें धनुष बाण था, निकटही लक्ष्मणजी खड़ेथे। उनकी मुद्रा शांत दिखलाई देतीथी ॥ १५ ॥ विभीषणने करसंपुट जोड़ उनकी स्तुति करना प्रारंभ किया ॥ १६ ॥ विभीषणने कहा "हे राजाधिराज राम! तुमको नमस्कारहै"। तुम सीताके मनमें रमण करते हो, तुमको नमस्कार करताहूं। तुम्हारा धनुष प्रचंडहै, मैं तुमको प्रणाम करता हूं, हे भक्तवत्सल तुमको नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे राम! आपके स्वरूपका अंत नहीं है; वह रूप शांत है उसका तेज अप्रमाण दिखाई देता है; आप सुग्रीवके मित्र और रघुकुलके अधिपति हैं आपको अनेक नमस्कार हैं॥ १८ ॥ जिस्से प्राणी उत्पन्न होतेहैं; जो प्राणियोंका पालन पोषण करताहै और

कृतांजलिपुटोभूत्वास्तोतुंसमुपचक्रमे ॥ १६ ॥ विभीषणउवाच ॥ नमस्तेरामराजेंद्रनमःसीतामनोरम ॥ नमस्तेचंडकोदंडनमस्तेभक्तवत्सल ॥ १७ ॥ नमोऽनंतायशांतायरामायामिततेजसे ॥ सुग्रीवमित्रायचतेरघूणांपतयेनमः ॥ १८ ॥ जगदुत्पत्तिनाशानांकारणाय महात्मने ॥ त्रैलोक्यगुरवेऽनादिगृहस्थायनमोनमः ॥ १९ ॥ त्वमादिर्जगतांरामत्वमेवस्थितिकारणम् ॥ त्वमंतेनिधनस्थानंस्वेच्छाचारस्त्वमेवहि ॥ २० ॥ चराचराणांभूतानांबहिरंतश्चराघव ॥ व्याप्यव्यापकरूपेणभवान्भातिजगन्मयः ॥ २१ ॥ त्वन्माययाहृतज्ञाननष्टात्मानोविचेतसः ॥ गतागतंप्रपद्यंतेपापपुण्यवशात्सदा ॥ २२ ॥

अन्तमें प्रलयके समय जो संहार करता है ऐसे अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति, और लय करनेवाले महात्मा त्रिलोकीके गुरु अनादिकालसे मायाके साथ रहनेवाले रामचंद्र! मैं आपको नमस्कार करताहूं; अंतर्यामी! तुम्हीं प्रलयके समय जगत्का संहार करतेहो; इस्से आपका स्वतंत्रपना सिद्ध होताहै ॥१९॥२०॥ हे राम! आप स्थावर, तथा जंगम प्राणियोंके भीतर और उनके बाहरी भागमें रहेहो, तथापि व्याप्य[१] और व्यापक रूपसे आप सारे संसारमें भासते हैं ॥ २१ ॥ तुम्हारी मायाने जिनका ज्ञान हरणकर लिया है; वह अपने स्वरूपको भूलकर कंठमें पहरेहुए हारको जैसे बाहर

---

[१] व्याप्य छोटी वस्तु होती है; जैसे बड़ा मच्छ व्यापक और नन्ही मछलियां उसकी व्याप्य कही जातीहैं।

खोजतेहैं (जिनको यह ज्ञान नहींहै कि यह ज्ञान ईश्वर रूपहै) अर्थात् जिनका आत्मा नष्ट होनेके समान होगयाहै; उन लोगोंके अंतःकरण प्रवृत्ति मार्गमें गुथे रहते हैं; इसकारण वे वारवार पाप पुण्यके अनुरोधसे जन्ममरणरूप संसारको भोगते रहते हैं ॥ २२ ॥ जबतक प्राणियोंका अंतःकरण ज्ञानरूपी आपमें एकाग्रपनेसे नहीं लगता तबतक जैसी सीपीमें चांदीका भास होता है, तैसेही उनको जगत् सत्य भासताहै । परन्तु आपके स्वरूपका ज्ञान होतेही तुरंत मिथ्या भासमान जगत् जैसे सीपीमें चांदीका भास होताहै, पर वह सीपी चांदी नहींहै; ऐसा ज्ञान होंनेके पीछे वह सीपी मालूम पड़तीहै, चांदी नहीं ज्ञातहोती–तैसेही जगत् मिथ्या मालूम होताहै ॥ २३ ॥ जबतक भलीभांति आपके स्वरूपका ज्ञान नहीं होता तबतक स्त्री पुत्रादिमें मन लगायेहुए प्राणी विषयको भोगकरतेहैं; और उस विषयको भोग करनेसे अंतमें महाकष्ट पातेहैं

तावत्सत्यंजगद्भातिशुक्तिकारजतंयथा ॥ यावन्नज्ञायतेज्ञानचेतसानान्यगामिना ॥ २३ ॥ त्वदज्ञानात्सदायुक्ताःपुत्रदारगृहादिषु ॥ रमंतेविषयान्सर्वानंतेदुःखप्रदान्विभो ॥ २४ ॥ त्वमिंद्रोऽग्निर्यमोरक्षोवरुणश्चतथानिलः ॥ कुबेरश्चतथारुद्रस्त्वमेवपुरुषोत्तम ॥ २५ ॥ त्वमणोरप्यणीयांश्चस्थूलात्स्थूलतरःप्रभो ॥ त्वंपितासर्वलोकानांमाताधातात्वमेवहि ॥ २६ ॥ आदिमध्यांतरहितःपरिपूर्णोऽच्युतोऽव्ययः ॥ त्वंपाणिपादरहितश्चक्षुःश्रोत्रविवर्जितः ॥ २७ ॥ श्रोताद्रष्टाग्रहीताचजवनस्त्वंखरान्तकः ॥ कोशेभ्योव्यतिरिक्तस्त्वंनिर्गुणोनिरुपाश्रयः ॥ २८ ॥

॥ २४ ॥ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, रुद्र, यह आठो दिक्पाल आपहीकी विभूति हैं । पुरुषोत्तम (विष्णुजी) आपही हैं ॥ २५ ॥ हे ईश्वर! आप सूक्ष्मसेभी अतिसूक्ष्म (अति कठिनाईसे जान्नेके योग्य) व स्थूलसेभी अतिस्थूल (सर्वव्यापक) हो । आप सर्व लोकको माता पिताके समान समदृष्टिसे पालन पोषणकरते हो (बेटा बुरा हो या अच्छा, मा बाप उसका पालन पोषण भलीभांतिसे करते हैं; तैसेही आप ऊंच नीच सर्व प्राणियोंका पालन भेददृष्टिरहित होकर करतेहैं) ॥ २६ ॥ आपका आदि मध्य व अंत नहींहै । आपमें किसी शक्तिकी कमी नहींहै । अर्थात् आप किसी शक्तिमें लीन नहींहैं । आपकी घटी बढ़ी नहीं है; आप नित्यपरिपूर्णहैं । आपके हाथ, पांव, नेत्र, व कान नहींहैं ॥ २७ ॥ तौभी आप सुनतेहैं, । देखतेहैं, पकड़ते हैं; दौड़ते हैं; आपहीने खरदैत्यका नाश किया अन्नमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय, प्राणमय, इन

पांचकोशसे आप रहितहैं। आपमें गुण नहीं है, व कोई दूसरा आधारभी नहींहै ॥ २८ ॥ कुछ है; वह अमुक है, जाना नहीं जाता; इसज्ञानको निर्विकल्प ज्ञान कहते हैं; हे ईश्वर! तुम इस प्रकार निर्विकल्प ज्ञानके विषय हो (इतनाही जाना जाताहै कि आपका स्वरूप ऐसाहै), अर्थात् यह सिद्धहै कि आपका आकार नहीं; आपकी समान पूज्य दूसरा कोई नहीं; आपमें कोई (सोलह) विकार नहीं; अर्थात् उत्पन्न होना उत्पन्न होकर बढ़ना, पूर्णदशामें आना, क्षीण होना, व नाश पाना, इन छः विकारोंसे रहित हो जिसकी आदि नहीं है; उस प्रकृतिसेभी परे (उसके गुणोंसे अलग) जो पुरुष हैं सो आपही हैं ॥ २९ ॥ आप मनुष्यके समान दिखाई देते हैं इस स्वरूपके दिखाई देनेका कारण आपकी मायाहै; जो विष्णु भक्तजन आपको निर्गुण व जन्मरहित जानते हैं; वे मोक्ष पाते हैं ॥ ३० ॥ हे राम! आपके चरणकी भक्ति निःश्रेणि सीढ़ी प्राप्त करके ज्ञानयोग नामक राजमंदिरके शिखरपर चढ़नेकी इच्छा मैं रखताहूं ॥ ३१ ॥ हे सीतानाथ रामचंद्र! आपको नमस्कार है हे कृपालुओंमें उत्तम आपको नमस्कार हो हे महाराज! भवसागरमेंसे मेरी रक्षाकरो हे रावणके शत्रु! आपको नमस्कार है ” ॥ ३२ ॥ यह स्तुति सुनकर भक्तवत्सल श्रीरामचंद्रजी प्रसन्न हो विभीषणसे बोलेः– “हे भक्तोत्तम! तेरा कल्याण हो मैं तुझे वरदेनेके लिये तैयारहूं, जो इच्छा हो सो मांगले। ” ॥ ३३ ॥ विभीषणने कहा “ हे रघुवीर! आपके चरणोंका दर्शन होनेसे मैं धन्य होगया, मैं कृतकृत्य होगया मैं कृतार्थ होगया[1] मैं निःसन्देह मुक्तिको प्राप्त होगया ॥ ३४ ॥ हे रामचंद्रजी! आपका दर्शन मिलनेसे मुझको मालूम होता है कि संसारमें

निर्विकल्पोनिर्विकारोनिराकारोनिरीश्वरः ॥ षड्भावरहितोऽनादिःपुरुषःप्रकृतेःपरः ॥ २९ ॥ माययागृह्यमाणस्त्वंमनुष्यइवभाव्यसे ॥
ज्ञात्वात्वांनिर्गुणमजंवैष्णवामोक्षगामिनः ॥ ३० ॥ अहंत्वत्पादसद्भक्तिनिःश्रेणींप्राप्यराघव ॥ इच्छामिज्ञानयोगाख्यंसौधमारोढुमीश्वर॥
॥ ३१ ॥ नमःसीतापतेरामनमःकारुणिकोत्तम ॥ रावणारेनमस्तुभ्यंत्राहिमांभवसागरात् ॥ ३२ ॥ ततःप्रसन्नःप्रोवाचश्रीरामोभक्त
वत्सलः॥ वरंवृणीष्वभद्रंतेवांछितंवरदोऽस्म्यहम्॥३३॥विभीषणउवाच ॥ धन्योऽस्मिकृतकृत्योऽस्मिकृतकार्योऽस्मिराघव॥त्वत्पाददर्श
नादेवविमुक्तोऽस्मिनसंशयः ॥३४॥ नास्तिमत्सदृशोधन्योनास्तिमत्सदृशःशुचिः॥ नास्तिमत्सदृशोलोकेरामत्वन्मूर्तिदर्शनात् ॥३५॥

---

[1] कृतकृत्य और कृतकार्य दोनोका एक अर्थ नही है; “ मैं कृतकार्य होगया, मैंने प्राप्य वस्तु पाई ” यह अर्थ टीकासंमतहै।

मेरी समान धन्य कोईभी नहीं है, मेरी समान पवित्र कोई भी नहीं; इसी प्रकार मेरे समान गुणवान् कोई दूसरा पृथ्वीपर नही है ॥ ३५ ॥ हे रघुकुमार ! मैं अपने पहले कर्मोंके अनुसार इस संसार बंधनमें पड़ा हुआहूं । इसबंधनके टूटनेको तुम मुझे भक्तिसे उत्पन्न होनेवाला अपने स्वरूपका ज्ञान दो व मोक्ष प्राप्तिका जो साधन है, ऐसे अपने ध्यानमें मेरी प्रवृत्ति करो ॥ ३६ ॥ हे राजाधिराज रामचंद्र ! मैं आपसे विषय सुख नहीं मांगता, पर आपके चरणकमलमें सर्वकाल मेरी अखंड भक्ति रहै; इतनाही वर मुझको चाहिये ॥ । " ॥ ३७ ॥ यह सुनकर श्रीरामचंद्रजी प्रसन्न हुए, व ' तथास्तु ' कहकर विभीषणसे बोलेः– " हे विभीषण ! तेरा कल्याण हो मैं तुझसे अपना सिद्धान्त कियाहुआ एक रहस्य कहताहूं,

कर्मबंधविनाशायत्वज्ज्ञानंभक्तिलक्षणम् ॥ त्वद्ध्यानंपरमार्थंचदेहिमेरघुनन्दन ॥ ३६ ॥ नयाचेरामराजेंद्रसुखंविषयसंभवम् ॥ त्वत्पादकमलेसक्ताभक्तिरेवसदास्तुमे ॥ ३७ ॥ ओमित्युक्त्वापुनःप्रीतोरामःप्रोवाचराक्षसम् ॥ शृणुवक्ष्यामितेभद्ररहस्यंममनिश्चितम् ॥३८॥ मद्भक्तानांप्रशांतानांयोगिनांवीतरागिणाम् ॥ हृदयेसीतयानित्यंवसाम्यत्रनसंशयः ॥ ३९ ॥ तस्मात्त्वंसर्वदाशांतः सर्वकल्मषवर्जितः ॥ मांध्यात्वामोक्ष्यसेनित्यंघोरसंसारसागरात् ॥ ४० ॥ स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तुलिखेद्यःशृणुयादपि ॥ मत्प्रीतयेममाभीष्टंसारूप्यंसमवाप्नुयात् ॥ ४१ ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंप्राहश्रीरामोभक्तभक्तिमान् ॥ पश्यत्विदानीमेवैषममसंदर्शनेफलम् ॥ ४२ ॥ लंकाराज्येऽभिषेक्ष्यामिजलमानयसागरात् ॥ यावच्चंद्रश्चसूर्यश्चयावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥ ४३ ॥

सुन ॥ ३८ ॥ इस संसारमें जो पुरुष सर्व स्थानोंसे आसक्ति छोड़ योगाभ्यास करकै मेरी भक्ति करनेमें दक्ष चतुर रहते हैं; और जिनका स्वभाव अत्यन्त शान्त है उनके हृदयमें मैं सीताजीके साथ नित्य वास करताहूं; इसमें कुछ संशय नहींः– अर्थात् तेरे अंतःकरणमें मैं हूं ॥ ३९ ॥ तुम सदा शान्त हो; तुझमें पापका लेशमात्र नहीं इसप्रकार नित्य मेरा ध्यान करनेसे तुम इस भयंकर संसारसमुद्रसे छूट जाओगे ॥ ४० ॥ मुझको प्रसन्न करनेके लिये जो इस स्तोत्रको पढ़े, लिखें, श्रवण करैं; उसको मेरी सारूप्य मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ४१ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! भक्तजनोंपर श्रीरामचंद्रजी बड़ा प्रेम करते हैं वह इसप्रकार विभीषणसे कहकर लक्ष्मणजीसे बोले,– " हे लक्ष्मण ! मेरे दर्शनका फल इसको अभी दिखाना (जताना) चाहिये ॥ ४२ ॥ इसकारण मैं इसका यहींपर इसीक्षण–लंकाके राज्यपर अभिषेक करूंगा ।

तुम समुद्रका पानी लाओ । जबतक सूर्य चंद्रमा विद्यमान हैं जबतक पृथ्वी स्थिर रहैगी ॥ ४३ ॥ और जबतक मेरी कीर्ति संसारमें है तबतक यह लंकाका राज्य करैं । ऐसा कहकर रामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे समुद्रका जल कलसेमें मँगवाया ॥ ४४ ॥ उन लक्ष्मीके पति प्रभुने विभीषणजीके चारों मंत्री और विशेष करकै लक्ष्मणजीसे विभीषणका लंकाके राज्याधिकारपर अभिषेक कराया ॥ ४५ ॥ सर्व वानरोंने "बहुत अच्छा हुआ " यह कहकर विभीषणके कार्यकी प्रशंसा की । सुग्रीवनेभी बिभीषणको हृदयसे लगायकर कहाः— ॥ ४६ ॥ हे विभीषण ! हम सबजने रामचंद्रजीके सेवक हैं; तथापि तुम हम सबमें मुख्य हो; क्योंकि तुमने केवल भक्तिसे श्रीरामचंद्रजीका आश्रय लिया है ॥ ४७ ॥

यावन्ममकथालोकेतावद्राज्यंकरोत्वसौ ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणेनांबुह्यानाय्यकलशेनतम् ॥ ४४ ॥ लंकाराज्याधिपत्यार्थमभिषेकंरमापतिः ॥ कारयामाससचिवैर्लक्ष्मणेनविशेषतः ॥ ४५ ॥ साधुसाध्वितितेसर्वेवानरास्तुष्टुवुर्भृशम् ॥ सुग्रीवोऽपिपरिष्वज्यविभीषणमथाब्रवीत् ॥ ४६ ॥ विभीषणवयंसर्वेरामस्यपरमात्मनः ॥ किंकरास्तत्रमुख्यस्त्वंभक्त्यारामपरिग्रहात् ॥ ४७ ॥ रावणस्यविनाशेत्वंसाहाय्यंकर्तुमर्हसि ॥ विभीषणउवाच ॥ अहंकियान्सहायत्वेरामस्यपरमात्मनः ॥ किंतुदास्यंकरिष्येऽहंभक्त्याशक्त्यात्वमायया ॥ ४८ ॥ दशग्रीवेणसंदिष्टःशुकोनाममहासुरः ॥ संस्थितोह्यंबरेवाक्यंसुग्रीवमिदमब्रवीत्॥४९॥त्वामाहरावणोराजाभ्रातरंराक्षसाधिपः ॥ महाकुलप्रसूतस्त्वंराजासिवनचारिणाम् ॥ ५० ॥ ममभ्रातृसमानस्त्वंतवनास्त्यर्थविप्लवः ॥ अहंयदहरंभार्यांराजपुत्रस्यकिंतव ॥ ५१ ॥

तुमको उचित है कि रावणके मारनेमें सहाय करो । " ॥ विभीषणने कहाः—हे सुग्रीव ! प्रभु रामजीकी सहायता करनेको मुझमें क्या सामर्थ्य है ? तथापि भक्तिसे कपटरहित हो यथाशक्ति उनकी सेवा करूंगा । " ॥ ४८ ॥ रावणने शुक नामक एक महादैत्यको कुछ सन्देशा कहकर सुग्रीवके पास भेजाथा; वह यहांपर आय आकाशमें खड़ा रहकर सुग्रीवसे कहनेलगा ॥ ४९ ॥ "हे सुग्रीव ! वाली व रावण एक दूसरेको भ्राता मानतेथे; तुम वालीके भ्राता अर्थात् रावणके भी भ्राता हुए; उस राक्षसोंके राजाने तुमसे कहा है ' कि तुम बड़े कुलमें जन्म लेनेसे वनचरोंके राजा हुए हो ॥ ५० ॥ मैं तुमको भ्राताके समान मानताहूं; मैंने तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा है; इस्से तुम्हें क्या ? जो मैं राजपुत्रकी स्त्रीको

हर लाया ॥ ५१ ॥ तुम वानरोंको साथ ले किष्किन्धानगरीको चले जाओ । अरे ! लंकामें देवताभी नहीं आयसक्के; यहांपर मनुष्य या वानर सेनापतिकी क्या चल सकती है ? तुम्हारी शक्ति ही कितनी है ?" ॥ ५२ ॥ ऐसे सन्देशा कहते हुए शुक नाम राक्षसको वानरोंने कूदकर पकडा और घूंसोंसे मारनेको तैयार हुए ॥ ५३ ॥ जब वानरोंने मारा तब शुकने श्रीरामचंद्रजीसे कहाः—"हे महासमर्थ रामचंद्र ! आप राजाधिराज हैं; यह राजनीति तौ आप जानते हैं कि दूतको नहीं मारना चाहिये । इसकारण आप इन बन्दरौंको रोकैं" ॥ ५४ ॥ शुकके विलाप वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजीने वानरोंसे कहा कि "इसको मत मारो" ! ॥ ५५ ॥ वानरोंके छोड़ देनेपर शुक फिर आकाशको चला गया; वहां जायकर सुग्रीवसे कहने लगा । हे राजन्‌ ! अब मैं जाताहूं; परन्तु रावणसे क्या कहूं ॥ ५६ ॥ सुग्रीवने कहाः— "हे शुक ! रावणसे मेरा यह सन्देशा कहना कि 'रे अधम राक्षस ! जैसा वालि मेरा भ्राताथा, वैसाही तू है ! इसकारण तैसेही शीघ्र उपाय करकै मैं तेरा वध करूंगा; वालिको तौ अकेलाही माराथा परन्तु–तुझे पुत्र, सेना, और वाहनोंके साथ यमलोकको पठाऊंगा !' ॥ ५७ ॥ यह भी कहना कि रामचंद्रजीकी भार्या हरण करकै कहां जायगा" यह कहकर सुग्रीवने–शुकके मनमें कदाचित्‌ 'यह वानरगण इतने प्रचंड समुद्रको लांघकर लंकापर कैसे आवैंगे और क्या करैंगे?।' यह शंका आई हो इसके दूर करनेको वानरोंसे उसको बँधवाया; परन्तु श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे फिर छोड़ दिया ॥ ५८ ॥ रावणने शार्दूलनामक एक दूसरा राक्षस वानरोंकी सेनाका प्रमाण जाननेके लिये पठायाथा, उसने वानरोंकी प्रचंड सेना निहार

किष्किंधांयाहिहरिभिर्लंकाशक्यानदैवतैः ॥ प्राप्तुंकिंमानवैरल्पसत्त्वैर्वानरयूथपैः ॥ ५२ ॥ तंप्रापयंतंवचनंतूर्णमुत्प्लुत्यवानराः ॥
प्रापद्यंततदाक्षिप्रंनिहंतुंदृढमुष्टिभिः ॥ ५३ ॥ वानरैर्हन्यमानस्तुशुकोराममथाब्रवीत्‌ ॥ नदूतान्घ्नन्तिराजेंद्रवानरान्वारयप्रभो ॥ ५४ ॥
रामःश्रुत्वातदावाक्यंशुकस्यपरिदेवितम्‌ ॥ मावधिष्टेतिरामस्तान्वारयामासवानरान्‌ ॥ ५५ ॥ पुनरम्बरमासाद्यशुकःसुग्रीवमब्रवीत्‌ ॥
ब्रूहिराजन्दशग्रीवंकिंवक्ष्यामिव्रजाम्यहम्‌ ॥ ५६ ॥ सुग्रीवउवाच ॥ यथावालीममभ्रातातथात्वंराक्षसाधम ॥ हंतव्यस्त्वंमयायत्नात्स
पुत्रवलवाहनः ॥ ५७ ॥ ब्रूहिमेरामचन्द्रस्यभार्यांहृत्वाक्वयास्यसि ॥ ततोरामाज्ञयाधृत्वाशुकंबद्धान्वरक्षयत्‌ ॥ ५८ ॥ शार्दूलोऽपिततः
पूर्वंदृष्ट्वाकपिवलंमहत्‌ ॥ यथावत्कथयामासरावणायसराक्षसः ॥ ५९ ॥

उसका समस्त वृत्तान्त रावणको–शुकके पहुँचनेसे पहले सुना दिया ॥ ५९ ॥ उसको सुनकर रावणको अपार चिंता उत्पन्न हुई, उसका धीरज खसा, शूरपन न होनेके समान हुआ; वह लंबे श्वास लेताहुआ मंदिरमें बैठा रहा । इधर श्रीरामचंद्रजीने समुद्रको देखकर नेत्र लाल किये और लक्ष्मणजीसे कहा ॥ ६० ॥ "हे पुण्यपुरुष लक्ष्मण ! देखो इससमुद्रका अंतःकरण कितना दुष्ट है। मेरे किनारेपर आनेपरभी यह दुष्ट मेरा सत्कार नहीं करता; और मेरे दर्शनको नहीं आता ॥ ६१ ॥ यह मुझको मनुष्य समझता है यह जानता है कि राम वानरोंको साथ लेकर आया है, मेरा क्या कर लेगा । परन्तु हे वीर ! (लक्ष्मण) देखो आज मे समुद्रको सुखाये डालताहूं ॥ ६२ ॥ संतापरहित हो पयदलही सब वानर इसके पार उतर जांयगे । " क्रोधके मारे रामचंद्रजीके नेत्र लाल हो गये; उन्होंने इतना कहकर धनुषको चढ़ाया ॥ ६३ ॥ तरकशसे प्रलयकालकी अग्निके समान तेजवाला बाण निकाल धनुषपर जोड़ा और फिर धनुषको खैंचकर कहा;– ॥ ६४ ॥ "सर्व प्राणी रामके बाणका प्रभाव अवलोकन करें; मैं अभी इस नदीपति समुद्रको भस्म किये डालताहूं । " ६५ ॥ जिस समय श्रीरामचंद्रजीने यह शब्द उच्चारण किये, उसी समय पर्वत, उपवन, व महावनोंके सहित पृथ्वी थरथर कांपनेलगी, स्वर्ग कंपायमान हुआ; दशों दिशा अंधकारसे भरगई ॥६६॥ समुद्र खलबला गया और मारे डरके मर्यादाको छोड़कर एक योजन आगे आगया ! उसमेंके छोटे बड़े मच्छ, सूंस, व मगर तापसे घबरागये ॥ ६७ ॥ थोड़ेही अवकाशमें साक्षात्

दीर्घचिंतापरोभूत्वानिःश्वसन्नास्समंदिरे ॥ ततःसमुद्रमावेक्ष्यरामोरक्तांतलोचनः ॥ ६० ॥ पश्यलक्ष्मणदुष्टोऽसौवारिधिर्मामुपागतम् ॥ नाभिनंदतिदुष्टात्मादर्शनार्थंममानघ ॥ ६१ ॥ जानातिमानुषोऽयंमेकिंकरिष्यतिवानरैः ॥ अद्यपश्यमहाबाहोशोषयिष्यामिवारिधिम्॥ ॥ ६२ ॥ पादेनैवगमिष्यंतिवानराविगतज्वराः ॥ इत्युक्त्वाक्रोधताम्राक्षआरोपितधनुर्धरः ॥ ६३ ॥ तूणीराद्बाणमादायकालाग्निसदृश प्रभम् ॥ संधायचापमाकृष्यरामोवाक्यमथाब्रवीत् ॥ ६४ ॥ पश्यंतुसर्वभूतानिरामस्यशरविक्रमम् ॥ इदानींभस्मसात्कुर्यांसमुद्रं सरितांपतिम् ॥ ६५ ॥ एवंब्रुवतिरामेतुसशैलवनकानना ॥ चचालवसुधाद्यौश्चदिशश्चतमसावृताः ॥ ६६ ॥ चुक्षुभेसागरोवेलांभयाद्योजनमत्यगात् ॥ तिमिनक्रझषामीनाः प्रतप्ताःपरितत्रसुः ॥ ६७ ॥ एतस्मिन्नंतरेसाक्षात्सागरोदिव्यरूपधृक् ॥ दिव्याभरणसंपन्नः स्वभासाभासयन्दिशः ॥ ६८ ॥

समुद्र दिव्यरूप धारण कर, अंगपर दिव्य अलंकार पहरे अपनी कांतिसे सर्व दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ रामचंद्रजीके पास आया ॥६८॥ समुद्र अपने पेटके दिव्य रत्न—रामजीको अर्पण करनेके लिये,हाथमें ले आयाथा; वह महामोलका उपायन (नजराना) उसने रामचंद्रजीके चरणोंपर रक्खा॥६९॥रामचंद्रजीके नेत्र लाल हो रहेथे । समुद्र उनको साष्टांग नमस्कार कर बोला,– “ हे जगत्पालक ! त्रैलोक्यरक्षक ! राम ! मेरी रक्षा करो, नाश न कीजिये ॥ ७० ॥ मेरे शीघ्र न आनेसे मुझपर क्रोध न कीजिये; कारण जब सब संसारकी उत्पत्ति आपने की तभी मुझे उत्पन्न किया; और मेरा स्वभाव जड़ (सुस्त या अज्ञानी)ठहराय दिया है हे देव!आपने जो स्वभाव बनाय दिया है; उसको अन्यथा कौन कर सकता है ? ॥ ७१ ॥ आकाश, वायु, अग्नि, जल, व पृथ्वी, यह स्थूल पंच महाभूत स्वभावसे ही जड़ आपने बनाये हैं; वे आपकी आज्ञाको उल्लंघन नहीं कर सकते (तुम्हारे दियेहुए जड़ स्वभावके विरुद्ध आचरण नहीं करते) ॥ ७२ ॥ पंच महाभूत तामस अहंकारसे उत्पन्न हुए हैं; इस कारण तामसके जो जड़ादिक गुण हैं; वे पंच महाभूतमें स्वभावसेही रहे हैं; शास्त्रमें कहा है कि ‘ कारणगुणा हि कार्यगुणानारभंते ’ कारणमें जो गुण होते हैं; वे कार्यके गुणको उत्पन्न करते हैं ॥ ७३ ॥ आप तो निर्गुण और निराकार हो; परन्तु जब क्रीडा करनेकी इच्छासे मायाके गुणको अंगीकार करते हो तब तुम्हारा नाम वैराज होता है ॥ ७४ ॥ गुणरूप विराट् भगवान्‌के सत्वगुणसे सनकादि देवता उत्पन्न होते हैं; रजोगुणसे ब्रह्मादि देवता पैदा होते हैं और आपके तमोगुण (कोप) से भूतपतिगण (रुद्र और पंचभूतके अधिष्ठात्री देवता) उत्पन्न होते हैं ॥ ७५ ॥ आप मायाके गुणमें ढककर

स्वांतःस्थदिव्यरत्नानिकराभ्यांपरिगृह्यसः ॥ पादयोःपुरतःक्षिप्त्वारामस्योपायनंबहु ॥ ६९ ॥ दंडवत्प्रणिपत्याहरामंरक्तांतलोचनम् ॥ त्राहित्राहिजगन्नाथरामत्रैलोक्यरक्षक ॥७०॥ जडोऽहंरामतेसृष्टःसृजतानिखिलंजगत् ॥ स्वभावमन्यथाकर्तुंकःशक्तोदेवानिर्मितम् ॥७१॥ स्थूलानिपंचभूतानिजडान्येवस्वभावतः ॥ सृष्टानिभवतैतानित्वदाज्ञांलंघयंतिन ॥ ७२ ॥ तामसादहमोरामभूतानिप्रभवंतिहि ॥ कारणानुगमात्तेषांजडत्वंतामसंस्वतः ॥ ७३ ॥ निर्गुणस्त्वंनिराकारोयदामायागुणान्प्रभो ॥ लीलयांगीकरोषित्वंतदावैराजनामवान् ॥ ॥ ७४ ॥ गुणात्मनोविराजश्चसत्वाद्देवावभूविरे ॥ रजोगुणात्प्रजेशाद्यामन्योर्भूतपतिस्तव ॥७५॥ त्वामहंमाययाच्छन्नंलीलयामानुषाकृतिम् ॥ ७६ ॥

क्रीड़ा करनेके लिये मनुष्यका आकार धारण करते हो, ॥ ७६ ॥ परन्तु आप निर्गुणको मेरी जड़ बुद्धि; तथा मैं जड़ किस प्रकारसे जानसकूं हे अमर श्रेष्ठ ! जैसे लकड़ीकी मार पशुको ठीक मार्गमें चलाती है, तैसेही आपका दंड मूर्ख प्राणियोंको श्रेष्ठमार्गका बतानेवाला है ॥ ७७ ॥ हे भक्तवत्सल ईश्वर ! आप शरणागतका हित करते हैं इस कारणसे मैं आपकी शरण आयाहूं, मुझको अभय दीजिये मैं आपको लंकामें जानेका मार्ग देताहूं ॥ ७८ ॥ रामचंद्रजी बोले;—मेरा बाण पीछे नहीं फिरता; इस कारण वह स्थान शीघ्र बता कि जहांपर मैं यह बाण छोडूं, यह अमोघ महाबाण कहां छोडूं ? ॥ ७९ ॥ वह महातेजस्वी महासागर श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर और उनके हाथमें बाण देखकर उनसे बोला;

जडबुद्धिर्जडोमूर्खःकथंजानामिनिर्गुणम् ॥ दंडएवहिमूर्खाणांसन्मार्गप्रापकःप्रभो ॥ ७७ ॥ भूतानाममरश्रेष्ठपशूनांलगुडोयथा ॥ शरणं
तेव्रजामीशशरण्यंभक्तवत्सल ॥ अभयंदेहिमेरामलंकामार्गंददामिते ॥ ७८ ॥ रामउवाच ॥ अमोघोऽयंमहाबाणःकस्मिन्देशेनिपात्य
ताम् ॥ लक्षंदर्शयमेशीघ्रंबाणस्यामोघपातिनः ॥ ७९ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वाकरेदृष्ट्वामहाशरम् ॥ महोदधिर्महातेजाराघवंवाक्यमब्रवी
त् ॥ ८० ॥ रामोत्तरप्रदेशेतुद्रुमकुल्यइतिश्रुतः ॥ प्रदेशस्तत्रबहवःपापात्मानोदिवानिशम् ॥ ८१ ॥ बाधंतेमांरघुश्रेष्ठतत्रतेपात्यतां
शरः ॥ रामेणसृष्टोबाणस्तुक्षणादाभीरमंडलम् ॥ ८२ ॥ हत्वापुनःसमागत्यतूणीरेपूर्ववत्स्थितः ॥ ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठंसागरोविनया
न्वितः ॥ ८३ ॥ नलःसेतुंकरोत्वस्मिञ्जलेमेविश्वकर्मणः ॥ सुतोधीमान्समर्थोऽस्मिन्कार्येलब्धवरोहरिः ॥ ८४ ॥ कीर्तिंजानंतुतेलोकाः
सर्वलोकमलापहाम् ॥ इत्युक्त्वाराघवंनत्वाययौसिंधुरदृश्यताम् ॥ ८५ ॥

॥ ८० ॥ "हे राम ! उत्तर दिशामें 'द्रुमकुल्य' नामक विख्यात देश है; वहांपर बहुतसे पापी रहते हैं; वह रात दिन ॥ ८१ ॥ मुझे बहुत पीड़ा देते हैं, हे रघुवीर ! यह आपका बाण उस देशपर चले" रामचंद्रजीने बाण छोड़ा; वह बाण एक क्षणभरके बीचमें उन भीलोंके समुदायको ॥ ८२ ॥ मारकर फिर पहलेकी भाँति जायकर तरकशमें होरहा; फिर समुद्र नम्र होकर श्रीरामचंद्रजीसे कहनेलगा ॥ ८३ ॥ "हे राम ! विश्वकर्माके पुत्र नलसे मेरे जलपर पुल बँधवाओ, यह वानर चतुरहोनेसे इस कार्यके करनेको समर्थ है; क्योंकि उसको ब्रह्माजीसे "तुझको पुल बाँधना आवेगा" ऐसा वर मिला है ॥ ८४ ॥ पुल बांधनेसे आपकी कीर्तिको सब लोक जान जांयगे; आपकी कीर्ति, सब लोकोंके पापोंको दूर करनेवाली

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

है। इतना कह रामजीका वंदन कर समुद्र अंतर्द्धानहोगया ॥ ८५ ॥ फिर रामचंद्र सुग्रीव और लक्ष्मणने दूसरे वानरोंको नलके सहित आज्ञादी कि इस नलके साथ तुम शीघ्र पुल बांधो ॥ ८६ ॥ फिर नलने अत्यन्त प्रसन्न हो पर्वतके समान ऊंचे सेनापतियोंको साथ लेकर पर्वत व वृक्षोंसे शत योजन (चारशत कोश) का लांबा और चौडा दृढ़ पुल बांधा ॥ ८७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे॰ उमा॰ युद्ध॰ भा॰ तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

महादेवजीकी स्थापना, पुल बांधना, शुकका रावणको उपदेश। सेतु बांधनेका आरंभ करनेसे पहले श्रीरामचंद्रजीने वहांपर 'रामेश्वर' नामक शिवलिंगकी स्थापना करकै लोकोंका हित करनेके लिये ऐसा कहा (प्रसिद्ध किया) कि जो कोई पुरुष रामेश्वर लिंगका दर्शन करके सेतुबंधका वंदन करैंगे; उनपर मैं अनुग्रह करूंगा और वे प्राणी ब्रह्महत्यादि पापोंसे छूट जांयगे ॥ १ ॥ २ ॥ जहां सेतु बांधी है वहाँपर स्नान करकै रामेश्वर भगवान्‌के दर्शन कर संकल्प करे कि मैं रामेश्वरको गंगाजलसे न्हवाऊंगा। यह संकल्प करके काशीमें जाय ॥ ३ ॥ वहांसे गंगाजल लाय उससे रामेश्वरको न्हवावै; और जिसमें जल भरकर लायाहो वह पात्रादि (या कावर) समुद्रमें डाल देवै; उस मनुष्यको निःसंदेह ब्रह्मकी प्राप्ति हो जायगी ॥ ४ ॥ पहले दिन नलने चौदह योजन (छप्पन कोश) पुल बांधा, दूसरे दिन वीस योजन (अस्सीकोश) ॥ ५ ॥ तीसरे दिन इक्कीस योजन (चौरासी कोश) चौथे दिन बाईस योजन (अठासी कोश) बांधा गया ॥ ६ ॥ पांचवें दिन तेइस योजन (बानबे कोश)

ततोरामस्तुसुग्रीवलक्ष्मणाभ्यांसमन्वितः ॥ नलमाज्ञापयच्छीघ्रंवानरैःसेतुबंधने ॥ ८६ ॥ ततोऽतिहृष्टःप्लवगेंद्रयूथपैर्महानगेंद्रप्रतिमैर्युतोनलः ॥ बबंधसेतुंशतयोजनायतंसुविस्तृतंपर्वतपादपैर्दृढम् ॥ ८७ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेतृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ ॥ छ ॥ ॥ सेतुमारभमाणस्तुतत्ररामेश्वरंशिवम् ॥ संस्थाप्यपूजयित्वाहरामोलोकहितायच ॥ १ ॥ प्रणमेत्सेतुबंधंयोदृष्ट्वारामेश्वरंशिवम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्योमुच्यतेमदनुग्रहात् ॥ २ ॥ सेतुबंधेनरःस्नात्वादृष्ट्वारामेश्वरंहरम् ॥ संकल्पनियतोभूत्वा गत्वावाराणसींनरः ॥ ३ ॥ आनीयगंगासलिलंरामेशमभिषिच्यच ॥ समुद्रेक्षिप्ततद्धारोब्रह्मप्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ४ ॥ कृतानिप्रथमेनाह्नायोजनानिचतुर्दश ॥ द्वितीयेनतथाचाह्नायोजनानितुविंशतिः ॥ ५ ॥ तृतीयेनतथाचाह्नायोजनान्येकविंशतिः ॥ चतुर्थेनतथाचाह्नाद्वाविंशतिरितिश्रुतम् ॥ ६ ॥ पंचमेनत्रयोविंशद्योजनानिसमंततः ॥ बबंधसागरेसेतुंनलोवानरसत्तमः ॥ ७ ॥

बांधा; इस प्रकार उस वानरश्रेष्ठ नलने समुद्रपर सेतु बांधकर तैयार किया ॥ ७ ॥ वानर लोग उसी सेतुके मार्गसे होकर सौयोजन (चारसौ कोश) समुद्रके पार चले। वानरोंकी सेना इतनी बड़ी थी कि उसकी गिन्ती नहीं की जाती। उन वानर वीरोंने जाय कर सुवेल पर्वतको रोक लिया ॥ ८ ॥ राम हनुमान् पर, व लक्ष्मणजी अंगदपर बैठगये; लंका नगरीका दिखाव देखनेंके लिये रामचन्द्रजी उस ऊँचे पर्वतपर चढ़े ॥ ९ ॥ लंकानगरी विस्तीर्ण थी; उसमें जिधर तिधर चित्रविचित्र ध्वजा फहराय रहींथीं विचित्र महलोंसे ठसाठस भरी हुई थी । उस शहरका क़िला द्वारोंके सहित सुवर्णका था ॥ १० ॥ शहरके आस पास खाई खुदीथी, शहरमें तोपैं लगी हुईथीं; कोई नहीं आसके ऐसे उसमें मार्ग

तेनैवजग्मुःकपयोयोजनानांशतंद्रुतम् ॥ असंख्याताःसुवेलाद्रिंरुरुधुःप्लवगोत्तमाः ॥ ८ ॥ आरुह्यमारुतिंरामोलक्ष्मणोऽप्यंगदंतथा ॥
दिदृक्षूराघवोलंकामारुरोहाचलंमहत् ॥ ९ ॥ दृष्ट्वालंकांसुविस्तीर्णांनानाचित्रध्वजाकुलाम् ॥ चित्रप्रासादसंबाधांस्वर्णप्राकारतोरणाम्
॥ १० ॥ परिखाभिःशतघ्नीभिःसंक्रमैश्चविराजिताम् ॥ प्रासादोपरिविस्तीर्णप्रदेशेदशकंधरः ॥ ११ ॥ मंत्रिभिःसहितोवीरैःकिरीटदशको
ज्ज्वलः ॥ नीलाद्रिशिखराकारःकालमेघसमप्रभः ॥ १२ ॥ रत्नदंडैःसितच्छत्रैरनेकैःपरिशोभितः ॥ एतस्मिन्नंतरेबद्धोमुक्तोरामेणवै
शुकः ॥ १३ ॥ वानरैस्ताडितःसम्यग्दशाननमुपागतः ॥ प्रहसन्रावणःप्राहपीडितःकिंपरैःशुक ॥ १४ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाशुको
वचनमब्रवीत् ॥ सागरस्योत्तरेतीरेऽब्रुवंतेवचनंयथा ॥ ततउत्प्लुत्यकपयोगृहीत्वामांक्षणात्ततः ॥ १५ ॥

बनायेथे, उस शहरमें महलके ऊपरके विशालभागमें रावण बैठा हुआथा ॥ ११ ॥ उसके आसपास पराक्रमी प्रधान मंडली बैठीथी, रावण दशमस्तक पर दशमुकुट ओढ़ रहाथा; और काले पर्वतके शिखरके समान दिखलाई देताथा ॥ १२ ॥ उसके ऊपर सुवर्णकी डंडी लगे अनेक श्वेत छत्र शोभायमान होरहे हैं। वह रावण इस प्रकार से बैठाथा कि इतनेमें वह शुक जिसको बन्दरोंनें बांधा और रामचंद्रजीनें छुडादियाथा ॥ ॥ १३ ॥ वानरोंके हाथकी बड़ीभारी मार खाय ज्यों त्यों करकै रावणके पास जाय पहुँचा उसको देखकर रावण हँसताहुआ बोला,—“क्योंरे? क्या शत्रुओंने तुझको मारा है” ॥ १४ ॥ रावणके वचन सुनकर शुकने कहा महाराज! मैंने समुद्रके उत्तर किनारेपर जाय आपका कहाहुआ

सन्देशा जैसेका तैसा सुग्रीवसे कहा । इतनेहीमें वानरोंने उड़ानमारकर मुझको क्षणभरमें पकड़ लिया ॥ १५ ॥ व उनके घूंसोंके मारनेंसे व नख और दांतोंसे काटने नोचनेसे मेरे अंगके टुकडे उडगये । मैं 'हेराम ! मेरी रक्षाकरो' ऐसा कहकर चिल्लानेलगा; तब रघुवीरने वानरोंसे ॥ १६ ॥ कहा कि 'इसको छोड़ दो ।' तब वानरोंने मुझको छोड़ दिया. वानरोंकी उस सेनाको देख मुझे बहुतही भय लगा मैं शीघ्रही इधर चला आया ॥ १७ ॥ समुद्रके समान राक्षसोंकी बड़ी भारी सेना और वानरोंकी सेनाका, एक होना, देवता व दैत्योंकी मित्रताके समान दुर्लभ है; अर्थात् इन दोनो सेनाओंमें मेल नहीं होगा ॥ १८ ॥ वह अभी शहरके क़िलेपर आयाही चाहतेहैं । इसकारण शीघ्रतासे एकही निश्चय करो । या तो रामचंद्रजीको

मुष्टिभिर्नखदंतैश्चहंतुंलोप्तुंप्रचक्रमुः ॥ ततोमांरामरक्षेतिक्रोशंतंरघुपुंगवः ॥ १६ ॥ विसृज्यतामितिप्राहविसृष्टोऽहंकपीश्वरैः ॥ ततोऽहमागतोभीत्याहृष्ट्वातद्वानरंबलम् ॥ १७ ॥ राक्षसानांबलौघस्यवानरेंद्रबलस्यच ॥ नैतयोर्विद्यतेसंधिर्देवदानवयोरिव ॥ १८ ॥ पुरप्राकारमायांतिक्षिप्रमेकतरंकुरु ॥ सीतांवास्मैप्रयच्छाशुयुद्धंवादीयतांप्रभो ॥ १९ ॥ मामाहरामस्त्वंब्रूहिरावणंमद्वचःशुक ॥ यद्बलंचसमाश्रित्यसीतांमेहृतवानसि ॥ २० ॥ तद्दर्शययथाकामंससैन्यःसहबांधवः ॥ श्वःकालेनगरींलंकांसप्राकारांसतोरणाम् ॥ २१ ॥ राक्षसंचबलंपश्यशरैर्विध्वंसितंमया ॥ घोररोषमहंमोक्ष्येबलंधारयरावण ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वोपररामाथरामःकमललोचनः ॥ एकस्थानगतायत्रचत्वारःपुरुषर्षभाः ॥ २३ ॥ श्रीरामोलक्ष्मणश्चैवसुग्रीवश्चविभीषणः ॥ एतएवसमर्थास्तेलंकांनाशयितुंप्रभो ॥ २४ ॥

सीता लौटाय दो; अथवा हे समर्थ! शीघ्र युद्धके लिये तैयार होवो ॥ १९ ॥ रामचंद्रजीने मुझसे कहाहै कि हे शुक ! रावणसे मेरा संदेशा कहनाकि— जिस शक्तिके भरोसेपर तू हमारी सीताको चुराकर लेगयाहै ॥ २० ॥ वह अब दिखा । अपनी सहायताको सैन्य बांधव जन जितने चाहिये खुशीसे ले आ । कल सबेरे कोट और द्वारोंके सहित लंका नगरीका ॥ २१ ॥ और राक्षसोंकी सेनाका बाणोंसे मैं विध्वंस करूंगा । मैं भयंकर क्रोधको छोडूंगा, हे रावण ! तू अपने बलको धारणकर ॥ २२ ॥ इतना कहकर कमललोचन रामचंद्रजी चुप होगये । हेरावण ! वहाँपर यह चार वीर पुरुष इकठे बैठेहैं ॥ २३ ॥ हे बलवान् पुरुष ! श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव, और विभीषण यह चारोंजनेही लंकाको जड़से उखाड़कर उसके भस्म

करनेको समर्थ हैं ॥ २४ ॥ दूसरे सब वानर एक ओरको बैठेही रहैं । रामचंद्रजीका बल और स्वरूप जो कुछ मैंने देखाहै; और जो कुछ उनके शस्त्र मैंने देखेंहै–तिनसे मेरे मनमें निश्चय हुआहै कि ॥ २५ ॥ अकेले श्रीरामचंद्रजीही सारी नगरीका नाशकरैंगे । और सब सावधानीसे बैठे रहैं (उनकी आवश्यकता नहीं) वानरोंकी अगणित सेना जिधर तिधर भररहीहैं; देखो ! ॥ २६ ॥ जिस सेनामें पर्वतोंके समान ऊंचे वानर गर्जरहेहैं, देखो उनकी गिनती कीजाय तौ पार नहीं पायाजाय।परन्तु उनमेसे मुख्य २ वानरोंके नाम मैं गिनाताहूं ॥ २७ ॥ यह जो एक वानर लंकाकी ओरको मुख करकै गर्ज रहाहै, तिसके निकट शतसहस्र सैनापति खड़ेहुए दीखते हैं, वह सुग्रीवहै ॥ २८ ॥ इधर यह एक दूसरा पर्वतके शिखरके समान

उत्पाट्यभस्मीकरणेसर्वेतिष्ठंतुवानराः ॥ तस्ययादृग्बलंदृष्टंरूपंप्रहरणानिच ॥ २५ ॥ वधिष्यतिपुरंसर्वमेकस्तिष्ठंतुतेत्रयः ॥ पश्यवा
नरसेनांतामसंख्यातांप्रपूरिताम् ॥२६॥ गर्जंतिवानरास्तत्रपश्यपर्वतसन्निभाः ॥ नाशक्यास्तेगणयितुंप्राधान्येनब्रवीमिते ॥ २७ ॥ एष
योऽभिमुखोलंकांनदंस्तिष्ठतिवानरः ॥ यूथपानांसहस्राणांशतेनपरिवारितः ॥ २८ ॥ सुग्रीवसेनाधिपतिर्नीलोनामाग्निनंदनः ॥ एषपर्व
तशृंगाभःपद्मकिंजल्कसन्निभः ॥ २९ ॥ स्फोटयत्यभिसंरब्धोलांगूलंचपुनःपुनः ॥ युवराजोंऽगदोनामवालिपुत्रोऽतिवीर्यवान् ॥ ३० ॥
येनदृष्टाजनकजारामस्यातीववल्लभा ॥ हनूमानेषविख्यातोहतोयेनतवात्मजः ॥ ३१ ॥ श्वेतोरजतसंकाशोमहाबुद्धिपराक्रमः ॥ तूर्णं
सुग्रीवमागम्यपुनर्गच्छतिवानरः ॥ ३२ ॥ यस्त्वेषसिंहसंकाशःपश्यत्यतुलविक्रमः ॥ रंभोनाममहासत्वोलंकांनाशयितुंक्षमः ॥ ३३ ॥

वानर दिखाई देताहै । इसके अंगकी कांति कमलके केशरके समान है; यह सुग्रीवका सेनापति अग्निका पुत्र नील है ॥ २९ ॥ यह जो वारंवार क्रोध करकै पूछको पटक रहाहै यह वालिका पुत्र, अतुलपराक्रमी युवराज अंगद है ॥ ३० ॥ जिसने रामचंद्रजीके अत्यन्त प्यारी जानकीजीकी सुधि लादी और तुम्हारे पुत्रका वधकिया वह प्रसिद्ध हनुमान् यहां खड़ाहै देखो ! ॥ ३१ ॥ जिसकी कांति चांदीके समानहै; और जो शीघ्रही सुग्रीवके पास जायकर फिरलौट जाताहै । इस वानरका नाम 'श्वेत' है इसकी बुद्धि व शक्ति अद्भुतहै ॥ ३२ ॥ और यह जो दूसरा वानर इधर देख रहाहै इसका नाम रंभहै ! जिसप्रकार इसका शरीर सिंहके समान दीखता हैं; वैसाही इसका पराक्रम अतुल और बुद्धि विलक्षण है, यह अकेलाही

लंकाका नाश कर सकता है ॥ ३३ ॥ हे राजाधिराज ! यह एक वानर जो लंकाकी ओर ऐसे देखता है, मानो जलाही देगा; इसका नाम शरभ है; यह एक करोड़ वानरोंके सेनाका नायकहै ॥ ३४ ॥ तैसेही महापराक्रमी पनस, मैन्द, द्विविद, जिसने पुल बांधा उस विश्वकर्माका पुत्र यह नल है;—व और दूसरेभी बहुत हैं ॥ ३५॥ हे रावण ! वानरोंके गुण वर्णन या उनकी गिनती करनेकी सामर्थ्य किसमें है? सबही शूरहैं सबहीके शरीर प्रचंड हैं; प्रत्येकको युद्धकी इच्छा है ॥ ३६ ॥ यह सब राक्षससमूहके सहित निःसंदेह लंकाको चूर्ण कर डालेंगे । इस सेनामें एक वीरकी आधीनीमें कितने वानर हैं उनकी संख्या मैं कहता हूं सुन ॥ ३७ ॥ नील, अंगद, हनुमान, श्वेत, शरभ; पनस, मैंद, रंभ, और द्विविद; इनमें प्रत्येकके

एषपश्यतिवैलंकांदिधक्षन्निववानरः ॥ शरभोनामराजेंद्रकोटियूथपनायकः ॥ ३४ ॥ पनसश्चमहावीर्योमैंदश्चाद्विविदस्तथा ॥ नलश्चसेतुकर्तासौविश्वकर्मसुतोबली ॥ ३५ ॥ वानराणांवर्णनेवासंख्यानेवाकईश्वरः ॥ शूराःसर्वेंमहाकायाःसर्वेंयुद्धाभिकांक्षिणः ॥ ३६ ॥ शक्ताःसर्वेंचूर्णयितुंलंकांरक्षोगणैःसह ॥ एतेषांबलसंख्यानंप्रत्येकंवच्मितेशृणु ॥ ३७ ॥ एषांकोटिसहस्राणिनवपंचचसप्तच ॥ तथाशंखसहस्राणितथार्बुदशतानिच ॥ ३८ ॥ सुग्रीवसचिवानांतेबलमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ अन्येषांतुबलंनाहंवक्तुंशक्तोऽस्मिरावण ॥ ३९ ॥ रामोनमानुषःसाक्षादादिनारायणःपरः ॥ सीतासाक्षाज्जगद्धेतुश्चिच्छक्तिर्जगदात्मिका ॥ ४० ॥ ताभ्यामेवसमुत्पन्नंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ तस्माद्रामश्चसीताचजगतस्तस्थुषश्चतौ ॥ ४१ ॥ पितरौपृथिवीपालतयोर्वैरीकथंभवेत् ॥ अजानतात्वयाऽऽनीताजगन्मातैवजानकी ॥ ४२ ॥ क्षणनाशिनिसंसारेशरीरेक्षणभंगुरे ॥ पंचभूतात्मकेराजंश्चतुर्विंशतितत्त्वके ॥ ४३ ॥

आधीनमें इक्कीस हजार करोड़, सैकड़ों शंख, (संख्याका एकस्थान) तैसेही सैकडों अरब सैनाहै ॥ ३८ ॥ यह तौ सुग्रीवके मंत्रियोंकी सैना गिनाई हे रावण ! दूसरोंकी सैनाकी गिन्ती करानेको मैं असमर्थ हूं ॥ ३९॥ रामचंद्रजी मनुष्य नहीं हैं; वरन साक्षात् परमात्मा आदि नारायण हैं; तैसेही सीताजी जगत्की उत्पन्न करनेवाली चैतन्य शक्ति हैं; और जगत्के निर्माणमें माया स्वरूप हैं ॥ ४० ॥ पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे यह स्थावर और जंगम वस्तुसे भराहुआ जगत् उत्पन्न हुआ, इस कारण राम तथा सीता स्थावर और जंगमरूप इस जगत्के ॥ ४१ ॥ माता पिता हैं । हे पृथ्वीपालक ! उनसे वैर करनेवाला प्राणी कैसे जीवित रहैगा ? तुम अज्ञानतासे जगत्की माता जानकीको हरकर ले आयेहो ॥ ४२॥ यह संसार एक

क्षणभरमें नाश होनेवाला है; और शरीरभी क्षणभंगुर है;—हे राजन् ! यह देह पांच भूतोंका बनाहुआ चौवीस तत्त्वोंके योगसे रचा गया है ॥ ४३ ॥ इसमें मल, मांस, हाड़ इत्यादि दुर्गन्धि युक्त पदार्थ भरे हैं; यह शरीरके बल अहंकारका घर है; ऐसे जड़ स्वरूपी देहकी तुम काहेको इतनी प्रीति करतेहो ? ॥ ४४ ॥ कारण कि तुमने ऊपर कहे हुए देहके अर्थ ब्रह्महत्यादि पापभी किये हैं। जिनका भोगनेवाला देह है। वह तौ इस मृत्युलोकमेंही नाश पावैगा (अर्थात् नित्य तेरे साथ नहीं रहैगा) ॥ ४५ ॥ और सुख देनेवाला तथा दुःख देनेवाला पुण्य और पापही परलोकमें आत्माके साथ जाता है; वास्तवमें वह पुण्य और पाप आत्माको नहीं है; परन्तु देहके सम्बन्धते आत्मामें कल्पित होते हैं। यथार्थ देखा जाय तौ

मलमांसास्थिदुर्गंधभूयिष्ठेऽहंकृतालये ॥ केवास्थाव्यतिरिक्तस्यकायेतवजडात्मके ॥ ४४ ॥ यत्कृतेब्रह्महत्यादिपातकानिकृतानिते ॥ भोगभोक्तातुयोदेहःसदेहोऽत्रपतिष्यति ॥ ४५ ॥ पुण्यपापेसमायातोजीवेनसुखदुःखयोः ॥ कारणेदेहयोगादिनात्मनःकुरुतोऽनिशम् ॥ ४६ ॥ यावद्देहोस्मिकर्तास्मीत्यात्माहंकुरुतेऽवशः ॥ अध्यासात्तावदेवस्याज्जन्मनाशादिसंभवः ॥ ४७ ॥ तस्मात्त्वंत्यजदेहादावभिमानंमहामते ॥ आत्मातिनिर्मलःशुद्धोविज्ञानात्माऽचलोव्ययः ॥ ४८ ॥ स्वाज्ञानवशतोबंधंप्रतिपद्यविमुह्यति ॥ तस्मात्त्वंशुद्धभावेनज्ञात्वाऽऽत्मानंसदास्मर ॥ ४९ ॥ विरतिंभजसर्वत्रपुत्रदारगृहादिषु ॥ निरयेष्वपिभोगःस्याच्छ्वसूकरतनावपि ॥ ५० ॥

आत्मा शुद्ध और पापपुण्यसे रहित है ॥ ४६ ॥ जबतक आत्मा, 'मैं देहहूं' 'मैंकर्ताहूं' इसप्रकार पराधीन होकर कर्म करता है तबतक अज्ञानताका; अध्यवसाय उसमेंसे नहीं जाता; और उसका नाशवंत, तथा जन्मवंत देह ऐसाका ऐसाही रहता है ॥ ४७ ॥ इसकारण हे बुद्धिमान् ! तुम देहादिका अभिमान छोड़ दो, आत्मा अतिनिर्मल है, शुद्ध है, विज्ञानमय है, अचल है, अव्यय है ॥ ४८ ॥ परन्तु अज्ञानी प्राणी अपनी शुद्ध आत्माको नहीं देखते हैं; तिस्से वारंवार जन्ममरणरूप बंधनमें पड़कर मोह पाते हैं और उसके (शरीरके) सम्बन्धसे वारंवार कर्ममें प्रवर्तते हैं इसकारण तुम आत्माको स्वभावसेही नित्यशुद्ध, ज्ञानवान् और कर्मादिसे छुटाहुआ जानो ॥ ४९ ॥ पुत्र, स्त्री, और गृहादिसे सम्बन्ध मत रक्खो। कारण कि

---

[1] बुद्धि, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियां, पंच महाभूत, और उसके शब्द स्पर्शादि गुण तथा प्रकृति यह सब मिलकर चौवीस तत्त्व होते हैं।

यह भोग तौ नरकादिमेंभी मिलते हैं । कुत्ते और शूकरादिके शरीरमेंभी भोग मिलता है; इसकारण भोगका लालच छोड़ दो ॥ ५० ॥ सारासारको जिसमें जानाजाय ऐसे इस मनुष्यजन्ममें जन्मना बहुत दुर्लभ है, उसमेंभी कर्मभूमि (भरतखंड) में जन्म मिलना तौ बहुतही दुर्लभ है । तिसमेंभी ब्राह्मणकुलमें जन्म मिलना तौ महादुर्लभ है! इन सबके मिलनेपर ॥ ५१ ॥ कौन विचारवान् पुरुष देहमें आत्मबुद्धि रखकर भोगमें ललचायकर उसका दासकी भांति सेवन करैगा? तुमको ब्राह्मणका जन्मही नहीं मिला बरन् तुमने पौलस्त्यके उत्तम वंशमें जन्म लिया है ॥ ५२ ॥ ऐसे होकरभी अज्ञानीके समान भोगके पीछे किसकारणसे दौड़ते हो! इसकारण अब सबका संग छोड़ केवल परमात्मा रामचंद्रजीका भक्तिसे आश्रय करके उनको सीता लौटायकर सर्वकाल उनके चरणोंकी सेवा करते रहो ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ऐसा करनेसे सर्व पापोंसे छूटकर विष्णु

देहंलब्ध्वाविवेकाढ्यंद्विजत्वंचविशेषतः ॥ तत्रापिभारतेवर्षेकर्मभूमौसुदुर्लभम् ॥ ५१ ॥ कोविद्वानात्मसात्कृत्वादेहंभोगानुगोभवेत् ॥ अतस्त्वंब्राह्मणोभूत्वापौलस्त्यतनयश्चसन् ॥ ५२ ॥ अज्ञानीवसदाभोगाननुधावसिकिंमुधा ॥ इतःपरंवात्यक्त्वात्वंसर्वसंगंसमाश्रय ॥ ५३ ॥ राममेवपरात्मानंभक्तिभावेनसर्वदा ॥ सीतांसमर्प्यरामायतत्पादानुचरोभव ॥ ५४ ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्योविष्णुलोकंप्रयास्यसि ॥ नोचेद्गमिष्यसेऽधोऽधःपुनरावृत्तिवर्जितः ॥ अंगीकुरुष्वमद्वाक्यंहितमेववदामिते ॥ ५५ ॥ सत्संगतिंकुरुभजस्वहरिंशरण्यंश्रीराघवंमरकतोपलकांतिकांतम् ॥ सीतासमेतमनिशंधृतचापबाणंसुग्रीवलक्ष्मणविभीषणसेवितांघ्रिम् ॥ ५६ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेचतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

लोकमें चले जाओगे । नहीं तौ तुम ऊंचे लोकसे वर्जित होकर उत्तरोत्तर नीचेके लोकमें जाओगे । मेरा उपदेश स्वीकार करो मैं तुम्हारे हितकी बात कहताहूं ॥ ५५ ॥ हे रावण! इस कारणसे तुम सत्पुरुषोंका समागम करो; और शरण आये हुएकी रक्षा करनेवाले (अर्थात् तू शत्रु है जो तू शरणमें जायगा तौ तेरीभी रक्षा करैंगे) श्रीरघुवंशमें अवतार लियेहुए मरकतमणिके समान कांतिवाले, निरन्तर सीताजीके साथ रहनेवाले धनुष बाणके धारण करनेवाले, सुग्रीव और विभीषणसे सेवित हैं चरण जिनके ऐसे श्रीरामचंद्रजीकी सेवा करो ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्ध० भा०चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥

शुकका अपने घरको जाना, रावणका रामचंद्रजीसे संग्राम करना श्रीमहादेवजी बोलेः— हे पार्वति! शुकका कहाहुआ अज्ञानका नाश करनेवाला वचन सुनकर रावणको क्रोध हो आया; और लाल लाल नेत्रकर मानो शुकको भस्मही कर डालेगा, ऐसे शुकसे बोला ॥१॥ "अरे शुक! तेरी बुद्धि अत्यन्त दुष्ट है ? तू मेरा नौकर होकर मुझे कि सप्रकारसे गुरुके समान उपदेश करता है ? मैं त्रिलोकीको शिक्षा देनेवाला हूं, ऐसे मुझको तू शिक्षा देतेहुए लजाता नहीं ? ॥२॥ मैं तुझे अभी मार डालता; परन्तु तेरे पहले किये हुए उपकार याद आवैं हैं; इसीकारण मारने लायक तुझकोभी मैं छोड़ देताहूं ॥३॥ अरे मूर्ख! तू अभी यहांसे चलाजा, मैं तेरी ऐसी बातैं नहीं सुन्ना चाहता"। यह आपका मुझ पर बड़ा अनुग्रह हुआ; यह कहकर शुक

श्रुत्वाशुकमुखोद्गीतंवाक्यमज्ञाननाशनम् ॥ रावणःक्रोधताम्राक्षोदहन्निवतमब्रवीत् ॥ १ ॥ अनुजीव्यसुदुर्बुद्धेगुरुवद्भाषसेकथम् ॥
शासिताऽहंत्रिजगतांत्वंमांशिक्षन्नलज्जसे ॥ २ ॥ इदानीमेवहन्मित्वांकिंतुपूर्वकृतंतव ॥ स्मरामितेनरक्षामित्वांयद्यपिवधोचितम् ॥ ३ ॥
इतोगच्छविमूढत्वमेवंश्रोतुंनमेक्षमम् ॥ महाप्रसादइत्युक्त्वावेपमानोगृहंययौ ॥ ४ ॥ शुकोऽपिब्राह्मणःपूर्वंब्राह्मिष्ठोब्रह्मवित्तमः ॥ वानप्र
स्थविधानेनवनेतिष्ठन्स्वकर्मकृत् ॥ ५ ॥ देवानामभिवृद्ध्यर्थंविनाशायसुरद्विषाम् ॥ चकारयज्ञविततिमविच्छिन्नांमहामतिः ॥ ६ ॥
राक्षसानांविरोधोऽभूच्छुकोदेवहितोद्यतः ॥ वज्रदंष्ट्रइतिख्यातस्तत्रैकोराक्षसोमहान् ॥ ७ ॥ अंतरंप्रेप्सुरातिष्ठच्छुकापकरणोद्यतः ॥ कदा
चिदागतोऽगस्त्यस्तस्याश्रमपदंमुनेः ॥ ८ ॥ तेनसंपूजितोऽगस्त्योभोजनार्थंनिमंत्रितः ॥ गतेस्नातुंमुनौकुंभसंभवेप्राप्यचांतरम् ॥ ९ ॥

कांँपता२ वैखानसके आश्रममें चला गया ॥४॥ पहले जन्ममें यह शुक ब्रह्मनिष्ठ और वेद जाननेवाला एक ब्राह्मण था, यह वनमें वानप्रस्थकी रीतिसे रहता और अपना धर्म कर्म करताथा ॥ ५ ॥ इस महाशयने देवताओंको उदय और असुरोंका नाश होनेके लिये बहुतसे यज्ञ निरन्तर किये ॥ ६ ॥ इसप्रकार देवताओंके हितमें तत्पर हुए शुकका, दैत्योंके साथ बड़ा विरोध होगया तहां राक्षसोंमें वज्रदंष्ट्र नामक एक बड़ा राक्षस था ॥ ७ ॥ वह शुकका बुरा करनेके लिये तैयार होकर उचित अवसर ढूंढनेका यत्न करनेलगा, एक समय उस शुक मुनिके आश्रममें अगस्त्यजी आये ॥ ८ ॥ तब शुकने उनका आदर सत्कार भोजनके लिये नेवता दिया। मुनि अगस्त्यजी स्नान करनेको गये। यह अवसर पाय ॥ ९ ॥

उस (वज्रदंष्ट्र) राक्षसने अगस्त्यजीका वेष धारणकर शुकके पास जायकर कहा–“ हे ब्रह्मन् ! जो तुम्हारी इच्छा आज मुझे अवश्य जिमानेकी होय तौ मांस सहित भोजन कराना ॥ १० ॥ मैंने बहुत दिनोंसे बकरेका मांस नहीं खाया है । ” शुकने ‘ बहुत अच्छा ’ कहकर मांसके सर्व भोजन भलीभांति तैयार कराये ॥ ११ ॥ अगस्त्य मुनि स्नानकरकै आये और जीमने बैठे इधर उस दुष्टराक्षसने घरमें शुककी स्त्रीको मन मोहितकर अतिसुन्दर शुककी स्त्रीके शरीरमें प्रवेश करकै फिर बाहर जाय ॥ १२ ॥ मुनि अगस्त्यजीके पात्रमें मनुष्य मांसके तैयार किये हुए सब पदार्थ परसताहुआ । परसनेके पीछे तुरतही वह राक्षस अंतर्द्धान होगया मनुष्यके मांसको देखकर अति क्रोधसे ॥ १३ ॥ अगस्त्यजीने

अगस्त्यरूपधृक्सोऽपिराक्षसःशुकमब्रवीत् ॥ यदिदास्यसिमेब्रह्मन्भोजनंदेहिसामिषम् ॥ १० ॥ बहुकालंनभुक्तंमेमांसंछागांगसंभवम् ॥
तथेतिकारयामासमांसभोज्यंसविस्तरम् ॥ ११ ॥ उपविष्टेमुनौभोक्तुंराक्षसोऽतीवसुंदरम् ॥ शुकभार्यावपुर्धृत्वातांचांतर्मोहयन्खलः ॥
॥ १२ ॥ नरमांसंददौतस्मैसुपक्वंबहुविस्तरम् ॥ दत्त्वैवांतर्दधेरक्षस्ततोदृष्ट्वाचुकोपसः ॥ १३ ॥ अमेध्यंमानुषंमांसमगस्त्यःशुकमब्रवी
त् ॥ अभक्ष्यंमानुषंमांसंदत्तवानसिदुर्मते ॥ १४ ॥ मह्यंत्वंराक्षसोभूत्वातिष्ठत्वंमानुषाशनः ॥ इतिशप्तःपुरोभीत्याप्राहागस्त्यंमुनेत्वया
॥१५॥इदानींभाषितंमेऽद्यमांसंदेहीतिविस्तरम्॥ तथैवदत्तंमेदेवकिंमेशापंप्रदास्यसि ॥१६ ॥श्रुत्वाशुकस्यवचनंमुहूर्तंध्यानमास्थितः ॥
ज्ञात्वारक्षःकृतंसर्वंततःप्राहशुकंसुधीः ॥ १७ ॥ तवापकारिणासर्वंराक्षसेनकृतंत्विदम् ॥ अविचार्यैवमेदत्तःशापस्तेमुनिसत्तम ॥ १८ ॥

शुकसे कहा कि;–“ मनुष्यका मांस महा अपवित्र गिना जाता है हे दुष्टबुद्धे ! तैंने न खाने योग्य मनुष्यका मांस मुझे खानेको दिया ॥ १४ ॥ इस कारण तू मनुष्यका खानेवाला राक्षस होजा ” जब अगस्त्यजीने ऐसा शाप दे दिया तो शुक मुनिके आगे भयभीत होकर बोला, हे मुने आपने ॥ १५ ॥ अभी तौ मुझसे कहाहै कि “ मुझे बहुत प्रकारका मांस विस्तार सहित दो तिसीके अनुसार मैंने आपको भोजन दिया । हे ज्ञानवंत! फिर मुझे शाप देनेका क्या कारणहै? ” ॥ १६ ॥ शुकके वचन सुनकर अगस्त्य मुनिने दो घड़ीतक ध्यान धरकर देखा; तब उन्होंनें जान लिया कि यह सब राक्षसकी करतूतहै; महाबुद्धिमान् मुनिने तत्काल शुकसे कहा ॥ १७ ॥ राक्षसके मनमें तेरी घात करानेंकी थीं इसकारण उसनें यह सारी

---

१ टीकाकार इस अर्थको मानता है कि “ शुककी स्त्रीको पाकशालामें अज्ञानकर रखकै उसका रूप धारणकर आप भोजन परसा था । ”

करतूत की; हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने केवल तुझको अविचारसे शाप देदिया ॥ १८ ॥ परन्तु यह मेरा वचन कभी अन्यथा होनेवाला नहीं; इसकारण तू राक्षस का शरीर धारणकरकै रावणकी सहायता करताहुआ ॥ १९ ॥ रह; रामचंद्रजीके लंकामें जानेतक तुझे इस योनिमें रहना पड़ेगा । जब रामचंद्रजी रावणका वध करनेंके लिये वानरोंको साथ ले लंकाके निकट जांयगे ॥ २० ॥ फिर रावण तुझको दूत बनायकर रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजीके पास भेजेगा । रामचंद्रजीका दर्शन करतेही तू शापसे छूटजायगा । फिर रावणको तत्त्वज्ञानका उपदेशकरके मुक्त होताहुआ तू परमपदको पावैगा इसप्रकार अगस्त्य मुनिनें शुकसे कहा ! वास्तवमें यह शुक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसेभी अतिश्रेष्ठ था ॥ २१ ॥ २२ ॥ ब्रह्मशापसे वह

तथापिमेवचोऽमोघमेवमेवभविष्यति ॥ राक्षसंवपुरास्थायरावणस्यसहायकृत् ॥ १९ ॥ तिष्ठतावद्यदारामोदशाननवधायहि ॥ आगमिष्यतिलंकायाःसमीपंवानरैःसह ॥ २० ॥ प्रेषितोरावणेनत्वंचारोभूत्वारघूत्तमम् ॥ दृष्ट्वाशापाद्विनिर्मुक्तोबोधयित्वाचरावणम् ॥ २१ ॥ तत्त्वज्ञानंततोमुक्तःपरंपदमवाप्स्यसि ॥ इत्युक्तोऽगस्त्यमुनिनाशुकोब्राह्मणसत्तमः ॥ २२ ॥ बभूवराक्षसःसद्योरावणंप्राप्यसंस्थितः ॥ इदानींचाररूपेणदृष्ट्वारामंसहानुजम् ॥ २३ ॥ रावणंतत्त्वविज्ञानंबोधयित्वापुनर्द्रुतम् ॥ पूर्ववद्ब्राह्मणोभूत्वास्थितोवैखानसैःसह ॥ २४ ॥ ततःसमागमद्वृद्धोमाल्यवान्राक्षसोमहान् ॥ बुद्धिमान्नीतिनिपुणोराज्ञोमातुःप्रियःपिता ॥ २५ ॥ प्राहतंराक्षसंवीरंप्रशांतेनांतरात्मना ॥ शृणुराजन्वचोमेऽद्यश्रुत्वाकुरुयथेप्सितम् ॥ २६ ॥ यदाप्रविष्टानगरींजानकीरामवल्लभा ॥ तदादिपुर्यांदृश्यंतेनिमित्तानिदशानन ॥ २७ ॥

तत्काल राक्षस होगया! वह रावणके निकट जायकर रहा अब उसनें दूतरूपसे जायकर छोटे भ्राताके सहित श्रीरामचंद्रजीका दर्शन किया, व ॥ २३ ॥ लौटने पर रावणको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया तिस्से उसका शाप छूटगया; वह पहलेके अनुसार ब्राह्मण होकर ऋषियोंके साथ आश्रममें रहनेलगा ॥ २४ ॥ इधर लंकामें माल्यवान नामक एक वृद्ध महान राक्षस रावणके निकट आया, वह महाबुद्धिमान, नीतिशास्त्रका जाननेंवाला राजाकी माताका प्रिय पिता अर्थात् रावणका नाना था ॥ २५ ॥ इस माल्यवाननें पराक्रमी राक्षस (रावण) से कहा,— "हेराजा ! तुम प्रथम मेरी बात सुनकर पीछे जैसी इच्छा हो वैसा करना ॥ २६ ॥ जबसे इस लंकापुरीमें सीता आई है ! तबसे हम भयंकर

अपशकुन इस लंकापुरीमें देखतेहैं ॥ २७ ॥ तिनके देखनेसे निश्चय जाना जाताहै कि आपका नाश होजायगा । वह कौनसे घोर अपशकुन हैं । सो मैं कहताहूं सुनो; आकाशमें अति भयंकर मेघ आकर कठोर शब्दसे गर्जते हैं ॥ २८ ॥ व सदा लंका नगरीके ऊपर गर्म रुधिरकी वर्षा करतेहैं ! देवताओंकी मूर्तियां रोती हैं; उनके शरीरपर पसीना आजाताहै; और वह अपने स्थानपरसे खसक जाती हैं ॥ २९ ॥ प्रत्येक राक्षसके आगे खड़ी रहकर कालिका देवी पीले दांत निकालकर हँसती हैं; अर्थात् यह बतातीहैं कि सबको खाजाऊंगी । गायोंमें गधे उत्पन्न होते हैं । न्योले व चूहे ॥ ३० ॥ बिल्लियोंसे लड़तेहैं, सर्प गरुड़से लड़नेको तैयार होतेहैं, महाभयंकर महादुःख देनेवाला, मुंडेहुए शिरवाला, काले और पीले रंगका ॥ ३१ ॥ कालापुरुष एक २ राक्षसोंके गृहमें दिखाई देताहै, अर्थात् एकमरण एक घरमें नित्य होताहै; ऐसे औरभी बहुतसे अपशकुन देखनेमें आतेहैं और उत्पन्न होतेहैं ॥ ३२ ॥ हे रावण ! कुलकी रक्षाकरनेके लिये शांतिकर और श्रीरामचंद्रजीका सत्कारकर उनको धनके साथ सीता अर्पण करदो ॥ ३३ ॥ रामचंद्रजीको साक्षात् नारायण जानकर उनसे द्वेष छोड़दो; उनके ऊपर भक्ति रक्खो, ज्ञानीपुरुष भक्तिसे पवित्र अंतःकरणवाले होकर श्रीरामचंद्रजीके चरणरूप नौकाका आश्रय करकै संसारसागरके पार होजाते हैं; इसकारण तू रामचंद्रजीको मनुष्य मत समझ; और सर्वके हृदयमें विराजमान होतेहुए रामचंद्रजीका भजन कर ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तू दुराचारी

घोराणिनाशहेतूनितानिमेवदतःशृणु ॥ खरस्तनितनिर्घोषामेघाअतिभयंकराः ॥ २८ ॥ शोणितेनाभिवर्षंतिलंकामुष्णेनसर्वदा ॥ रुदंतिदेवलिंगानिस्विद्यंतिप्रचलंतिच ॥ २९ ॥ कालिकापांडुरैर्दंतैःप्रहसत्यग्रतःस्थिता ॥ खरागोषुप्रजायंतेमूषकानकुलैःसह॥ ३०॥ मार्जारेणतुयुध्यंतिपन्नगागरुडेनतु ॥ करालोविकटोमुंडःपुरुषःकृष्णपिंगलः ॥ ३१ ॥ कालोगृहाणिसर्वेषांकालेकालेत्ववेक्षते ॥ एतान्यन्यानिदृश्यंतेनिमित्तान्युद्भवंतिच ॥ ३२ ॥ अतःकुलस्यरक्षार्थंशांतिंकुरुदशानन ॥ सीतांसत्कृत्यसधनांरामायाशुप्रयच्छभोः ॥ ३३ ॥ रामंनारायणंविद्धिविद्वेषंत्यजराघवे ॥ यत्पादपोतमाश्रित्यज्ञानिनोभवसागरम् ॥ ३४ ॥ तरंतिभक्तिपूतांतास्ततोरामोनमानुषः ॥ भजस्वभक्तिभावेनरामंसर्वहृदालयम् ॥ ३५ ॥ यद्यपित्वंदुराचारोभक्त्यापूतोभविष्यसि ॥ मद्वाक्यंकुरुराजेंद्रकुलकौशलहेतवे ॥ ३६ ॥

भी भक्तिके योगसे पवित्र हो जायगा । हेराजाधिराज ! मेरे कहे अनुसार करो, तौ तुम्हारे कुलका कल्याण होगा । ” ॥ ३६ ॥ इस प्रकार माल्यवानने हितकारक उपदेश किया, परन्तु रावणका अंतःकरण दुष्ट था, वह भलीभाँतिसे मृत्युके अधीन होगयाथा; इसकारण यह उपदेश उस्से नहीं सहाजा (रुचा) सका; वह बोला ॥ ३७ ॥ “ हेराक्षस ! राम मनुष्य, कृपण केवल वानरोंका आश्रय करनेवाला, पिताने जिसको निकाल दियाहै और मुनियोंका प्यारा, अर्थात् बलहीनहै. उनको किस बातम तुम समर्थ मानतेहो? ॥ ३८ ॥ ऐसा जान पड़ता है कि अवश्य तुमको रामचंद्रने उपदेशके लिये भेजाहै, इस्से तुम असंबद्ध (जो इच्छा होवे सो) वचन बोल रहेहो, तुम वृद्ध और कुटुम्बी (नाना) हो इस कारणसे तुम्हारा सब कहना सहन करताहूं ॥ ३९ ॥ अब तुम्हारे वचन मेरे कानोंको जलाते हैं ! ” ऐसा कहकर रावण सभामेंसे मंत्रियोंको साथ लेकर उठगया ॥ ४० ॥ फिर रावण, राजमंदिरके शिखर पर बैठकर वानरोंकी सेनाको देखने लगा; और अपने पास जो राक्षस थे उनसे लड़नेके लिये तैयार होनेको कहा ॥ ४१ ॥ इधर श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीका लादिया हुआ धनुष हाथमें लेलिया । रावणको राजमंदिर पर बैठा देखकर रामचंद्रजी मारे क्रोधके खलबलागये ॥ ४२ ॥ मस्तकोंपर मुकुट धारण किये रावण मंत्रियोंके बीचमें बैठाथा । श्रीरामचंद्रजीने एक अर्द्धचंद्राकार बाणसे ॥ ४३ ॥ रावणके हजार श्वेत छत्र तोड़ डाले; व दश मुकुट भी काट गिराये, यह एक बड़ी विलक्षण बात

तत्तुमाल्यवतोवाक्यंहितमुक्तंदशाननः ॥ नमर्षयतिदुष्टात्माकालस्यवशमागतः ॥ ३७ ॥ मानवंकृपणंराममेकंशाखामृगाश्रयम् ॥ समर्थंमन्यसेकेनहीनंपित्रामुनिप्रियम् ॥ ३८ ॥ रामेणप्रेषितोनूनंभाषसेत्वमनर्गलम् ॥ गच्छवृद्धोऽसिबंधुस्त्वंसोढंसर्वंत्वयोदितम् ॥ ३९ ॥ इतोमत्कर्णपदवींदहत्येतद्वचस्तव ॥ इत्युक्त्वासर्वसचिवैःसहितःप्रस्थितस्तदा ॥ ४० ॥ प्रासादाग्रेसमासीनःपश्यन्वानरसैनिकान् ॥ युद्धायायोजयत्सर्वराक्षसान्समुपस्थितान् ॥ ४१ ॥ रामोऽपिधनुरादायलक्ष्मणेनसमाहृतम् ॥ दृष्ट्वारावणमासीनंकोपेनकलुषीकृतः ॥ ॥ ४२ ॥ किरीटिनंसमासीनंमंत्रिभिःपरिवेष्टितम् ॥ शशांकार्धनिभेनैववाणेनैकेनराघवः ॥ ४३ ॥ श्वेतच्छत्रसहस्राणिकिरीटदशकं तथा ॥ चिच्छेदनिमिषार्धेनतदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४४ ॥

हुई! ॥ ४४ ॥ रावणको अतिलाज लगी और वह अतिशीघ्र अपने मंदिरको चलागया; फिर इस दुष्टने प्रहस्तादि सर्व राक्षसोंको बुलायकर ॥ ४५ ॥ अति शीघ्रतासे उनको वानरोंके साथ युद्ध करनेंके लिये जानेकी आज्ञा दी, रावणकी आज्ञा पाय राक्षसोंकी सैना चली । ढोल, भेरी मृदंग, शंख, आनक व दुन्दुभि इत्यादि बाजे बजने लगे ॥ ४६ ॥ राक्षस लोग ऊंट, भैंसा, गधे, सिंह, और चीतोंके ऊपर सवार हो, तरवार, शूल, धनुष, फांस, भाले, तोमरादि आयुध हाथमें लेकर ॥ ४७ ॥ लंकाके चारों द्वारोंपर आते हुए दिखाई देने लगे रामचंद्रजीने वानर वीरोंको पहलेहीसे आज्ञा दे दीथी ॥ ४८ ॥ रामचंद्रजीकी आज्ञा पाय वे वानरसैनापति पर्वतोंके छोटे २ शृङ्ग व बड़े २ शिखर उखाड़ अनेक जातिके वृक्षोंको उपाट युद्धके लिये खड़ेथे ॥ ४९ ॥ रावणकी सैनाके झुंडके झुंड आते हुए देखकर वह वानर रामचंद्रजीका प्रियकार्य करनेंकी इच्छासे लंकापर चढ़े ॥ ५० ॥ कितनेही वानरोंके हाथमें वृक्ष दीखतेथे; कितनोंके हाथोंमें पर्वतोंके शिखर थे, कोई घूंसेही ताने हुएथे। फिर वह वानरसैनापति अपने आधीनके किसीके सहस्र, किसीके करोड़ ॥ ५१ ॥ किसीके शतकोटि इतने यूथपोंको साथ लेकर नगरीको चारोंओरसे घेर लेतेहुए। कोई वानरश्रेष्ठ उड़ रहाथा, कोई नीचे आताथा कोई गर्जता था इस प्रकार जिधर तिधर गड़बड़ हो रहीथी ॥ ५२ ॥ ‘अति बलवान रामचंद्रजीकी जयहो ! महापराक्रमी लक्ष्मणजीकी जय हो, रामचंद्रजीने जिनकी रक्षाकी है; उन राजा

लज्जितोरावणस्तूर्णंविवेशभवनंस्वकम् ॥ आहूयराक्षसान्सर्वान्प्रहस्तप्रमुखान्खलः ॥ ४५॥ वानरैःसहयुद्धायनोदयामाससत्वरः ॥ ततोभेरीमृदंगाद्यैःपणवानकगोमुखैः ॥ ४६ ॥ महिषोष्ट्रैःखरैःसिंहैर्द्वीपिभिःकृतवाहनाः ॥ खड्गशूलधनुःपाशयष्टितोमरशक्तिभिः ॥ ४७ ॥ लक्षिताःसर्वतोलंकांप्रतिद्वारमुपाययुः ॥ तत्पूर्वमेवरामेणनोदितावानरर्षभाः ॥ ४८ ॥ उद्यम्यगिरिशृंगाणिशिखराणिमहांतिच ॥ तरूंश्चोत्पाट्यविविधान्युद्धायहरियूथपाः ॥ ४९ ॥ प्रेक्षमाणारावणस्यतान्यनीकानिभागशः ॥ राघवप्रियकामार्थंलंकामारुरुहुस्तदा॥५०॥ तेद्रुमैःपर्वताग्रैश्चमुष्टिभिश्चप्लवंगमाः ॥ ततःसहस्रयूथाश्चकोटियूथाश्चयूथपाः॥५१॥ कोटीशतयुताश्चान्येरुरुधुर्नगरंभृशम् ॥ आप्लुवंतःप्लवतश्चगर्जतश्चप्लवंगमाः ॥ ५२ ॥ रामोजयत्यतिबलोलक्ष्मणश्चमहाबलः ॥ राजाजयतिसुग्रीवोराघवेणानुपालितः ॥ ५३ ॥

सुग्रीवकी जय हो !' ॥ ५३ ॥ ऐसा पुकारकर वानरगण शत्रुओंसे युद्ध करनेलगे हनुमान्, अंगद, कुमुद, नील ॥ ५४ ॥ नल, शरभ, मैंद, द्विविद, जाम्बवान्, दधिवक्र, केसरी,तार॥५५॥ व औरभी बलवान् वानर जो कि यूथपति थे—लंकाके द्वारोंपर कूद २ चारोंओरसे लंकाको रोक लेते हुए ॥ ५६ ॥ वानरोंके शरीर प्रचंडथे। वे वृक्षोंसे पर्वतोंके शिखरसे, और दांतोंसे राक्षसोंको बड़े वेगसे मारते काटते हुए। वैसेही वे भयंकर राक्षसभी क्रोधितहोकर सर्व द्वारोंमेंसे ॥ ५७ ॥ बाहर निकल कर वानरोंको हटाते हुए, भिन्दिपाल, खड्ग, शूल, कुल्हाड़ी, आयुधोंसे वानरोंको मारने लगे। जैसे इन राक्षसोंके शरीर बड़े २ थे, वैसेही इनमें शक्तिभी बड़ीथी ॥ ५८ ॥ वैसेही विजयशाली वानरभी राक्षसोंको मारनेलगे। रणभूमिमें

इत्येवंवोषयंतश्चसमंयुयुधिरेऽरिभिः ॥ हनूमानंगदश्चैवकुमुदोनीलएवच ॥ ५४ ॥ नलश्चशरभश्चैवमैंदोद्विविदएवच ॥ जांववान्दधिवक्रश्चकेसरीतारएवच ॥ ५५ ॥ अन्येचवलिनःसर्वेयूथपाश्चप्लवंगमाः ॥ द्वाराण्युत्प्लुत्यलंकायाःसर्वतोरुरुधुर्भृशम् ॥ तदावृक्षैर्महाकायाःपर्वताग्रैश्चवानराः ॥ ५६ ॥ विजघ्नुस्तानिरक्षांसिनखैर्दंतैश्चवेगिताः ॥ राक्षसाश्चतदाभीमाद्वारेभ्यःसर्वतोरुषा ॥ ५७ ॥ निर्गत्यभिंदिपालैश्चखड्गैःशूलैःपरश्वधैः ॥ निजघ्नुर्वानरानीकंमहाकायामहाबलाः ॥ ५८ ॥ राक्षसांश्चतथाजघ्नुर्वानराजितकाशिनः ॥ तथावभूवसमरोमांसशोणितकर्दमः ॥ ५९ ॥ रक्षसांवानराणांचसंवभूवाद्भुतोपमः ॥ तेहयैश्चगजैश्चैवरथैःकांचनसन्निभैः ॥६०॥ रक्षोव्याघ्रायुयुधिरेनादयंतोदिशोदश ॥ राक्षसाश्चकपींद्राश्चपरस्परजयैषिणः ॥ ६१ ॥ राक्षसान्वानराजघ्नुर्वानरांश्चैवराक्षसाः ॥ रामेणविष्णुनादृष्टाहरयोदिविजांशजाः ॥ ६२ ॥ वभूवुर्वलिनोहृष्टास्तदापीतामृताइव ॥ सीताभिमर्शपापेनरावणेनाभिपालितान् ॥ ६३ ॥

जिधर तिधर मांस व रुधिरकी कीच होगई ! ॥ ५९ ॥ राक्षस और वानरोंका यह युद्ध इतना अद्भुत हुआ कि पहले संसारमें जो घोर युद्ध होगये; व आगेको होंगे उन सबका दृष्टान्त यह युद्ध होगया ? वे शूर राक्षस, हाथी, घोड़ा, व सुवर्णमय रथोंमें बैठकर युद्ध करतेथे। उन्होंने गर्जना करके दशोंदिशाओंको शब्दायमान कर दिया, राक्षस और वानर दोनोही परस्पर जयकी इच्छाकरते हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥ वानर राक्षसोंको मारते और राक्षस वानरोंको मारते थे। वानरोंने देवअंशसे अवतार लिया था, तिसपर साक्षात् विष्णुरूपी रामचंद्रने उनपर कृपा दृष्टि की है ॥ ६२ ॥ इस कारण उस समय वह अमृत पीनेके समान बलवान् होकर आनंद प्राप्त करतेहुए, राक्षसोंकी अवस्था इस्से उलटी

थी । जिसने सीताजीको चुरा लानेका पापकर्म किया वह रावणही राक्षसोंका पालक है—इसकारण ॥ ६३ ॥ राक्षसोंका ऐश्वर्य व सामर्थ्य नष्ट होगयाथा । ऐसे राक्षसोंपर वानर लोग बड़े बलसे प्रहार करते थे । इसप्रकारसे युद्ध होते हुए राक्षसोंकी बहुतसी सैना मारी गई । केवल उस सैनाका चौथा भाग बचरहा ॥ ६४ ॥ अपनी सैनाको वानरोंसे माराहुआ देख वह खोटी बुद्धिवाला दैत्य मेघनाद गुप्तरूपसे वहाँ आया । उसको ब्रह्माजीके वरसे वीरश्री प्राप्त हो रहीथी ॥ ६५ ॥ यह मेघनाद सारी अस्त्रविद्यामें निपुण था, तिसने आकाशसे ब्रह्मास्त्रके सहित अनेक शस्त्र जिधर तिधर छोड़कर वानरोंकी सैनाको पीड़ादी ॥ ६६ ॥ और बराबर बाणोंकी वर्षा की; यह एक अद्भुत बात हुई । समस्त अस्त्र

हतश्रीकान्हतबलान्राक्षसाञ्जघ्नुरोजसा ॥ चतुर्थांशावशेषेणनिहतंराक्षसंबलम् ॥ ६४ ॥ स्वसैन्यंनिहतंदृष्ट्वामेघनादोऽथदुष्टधीः ॥ ब्रह्म
दत्तवरःश्रीमानंतर्धानंगतोऽसुरः ॥ ६५ ॥ सर्वास्त्रकुशलोव्योम्निब्रह्मास्त्रेणसमंततः ॥ नानाविधानिशस्त्राणिवानरानीकमर्दयन् ॥ ६६ ॥
ववर्षशरजालानितदद्भुतमिवाभवत् ॥ रामोऽपिमानयन्ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदांवरः ॥ ६७ ॥ क्षणंतूष्णीमुवासाथददर्शपतितंबलम् ॥ वान
राणांरघुश्रेष्ठश्चुकोपानलसन्निभः ॥ ६८ ॥ चापमानयसौमित्रेब्रह्मास्त्रेणासुरंक्षणात् ॥ भस्मीकरोमिमेपश्यबलमद्यरघूत्तम ॥ ६९ ॥
मेघनादोऽपितच्छ्रुत्वारामवाक्यमतंद्रितः ॥ तूर्णंजगामनगरंमाययामायिकोऽसुरः ॥ ७० ॥ पतितंवानरानीकंदृष्ट्वारामोऽतिदुःखितः ॥
उवाचमारुतिंशीघ्रंगत्वाक्षीरमहोदधिम् ॥ ७१ ॥

जाननेवालोंमें श्रीरामचंद्रजी श्रेष्ठ थे, परन्तु ब्रह्मास्त्रको मान देनेके लिये ॥ ६७ ॥ क्षणभर चुप बैठे रहे । इतनेमेंही रामचंद्रजीने वानरोंकी सैनाको गिरते हुए देखा; तब उन्होंने क्रोधित होकर अग्निके समान लाल हो लक्ष्मणजीसे कहा;—॥ ६८ ॥ लक्ष्मण ! धनुष लाओ (धनुष श्रीरामचंद्रजीके हाथमेंही था, परन्तु क्रोधके मारे उनको धनुषका ज्ञान नही रहा) मैं ब्रह्मास्त्रसे सब राक्षसोंकी सैनाको भस्मकर डालताहूं । हे रघुवीर ! आज मेरा पराक्रम देखो ! ॥ ६९ ॥ वह मायावी मेघनाद सावधान रहकर श्रीरामचंद्रजीकी सैनाको भली भाँति देख रहाथा; रामचंद्रजीके वचन उसके कानोंमें गये । उसने अतिशीघ्र नगरका मार्ग लिया ॥ ७० ॥ वानरसैनाको गिरी हुई देख अतिदुःखित हो श्रीरा

मचंद्रजी हनुमानजीसे बोले;–हे हनुमंत ! अतिशीघ्र क्षीरमहासागर पर जाओ ॥ ७१ ॥ वहांपर द्रोणनामक एक पर्वत है; तिस पर उत्तम २ औषधियें उगती हैं; झटपट जायकर उस पर्वतको यहां ले आओ । और इन वानरोंके समूहको जिवाओ । तुम महा बुद्धिमान् हो मुझे निश्चयहै कि यह कार्य तुम्हारे हाथसे सिद्ध होगा; इसकार्यके करनेसे संसारमें तुम्हारी कीर्ति सदा रहैगी । पवनकुमार (हनुमान) 'जैसी आपकी आज्ञा' कहकर तत्काल चलेगये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ कुछ विलम्बमें वह श्रेष्ठ वानर द्रोण पर्वत लेकर आये, और सर्व वानरोंको जिवाय वह पर्वत फिर जहांका तहां रखकर शीघ्र पलट आये ॥ ७४ ॥ वानरोंकी सैना फिर पहलेके समान भयंकर गर्जना करने लगी यह शब्द सुनकर रावणको

तत्रद्रोणगिरिर्नामदिव्यौषधिसमुद्भवः ॥ समानयद्रुतंगत्वासंजीवयमहामते ॥ ७२ ॥ वानरौघान्महासत्वान्कीर्तिस्तेसुस्थिराभवेत् ॥ आज्ञाप्रमाणमित्युक्त्वाजगामानिलनंदनः ॥ ७३ ॥ आनीयचगिरिंसर्वान्वानरान्वानरर्षभः ॥ जीवयित्वापुनस्तत्रस्थापयित्वाययौद्रुतम् ॥ ७४ ॥ पूर्ववद्भैरवंनादंवानराणांवलौघतः ॥ श्रुत्वाविस्मयमापन्नोरावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ ७५ ॥ राघवोमेमहाञ्छत्रुःप्राप्तोदेवाविनिर्मितः ॥ हंतुंतंसमरेशीघ्रंगच्छंतुममयूथपाः ॥ ७६ ॥ मंत्रिणोबांधवाःशूरायेचमत्प्रियकांक्षिणः ॥ सर्वेगच्छंतुयुद्धायत्वरितंममशासनात् ॥ ७७ ॥ येनगच्छंतियुद्धायभीरवःप्राणविप्लवात्॥ तान्हनिष्याम्यहंसर्वान्मच्छासनपराङ्मुखान् ॥ ७८ ॥ तच्छ्रुत्वाभयसंत्रस्तानिर्जग्मूरणकोविदाः ॥ अतिकायःप्रहस्तश्चमहानादमहोदरौ ॥ ७९ ॥ देवशत्रुर्निकुंभश्चदेवांतकनरांतकौ ॥ अपरेबलिनःसर्वेययुर्युद्धायवानरैः ॥ ८० ॥ एतेचान्येचबहवःशूराःशतसहस्रशः ॥ प्रविश्यवानरंसैन्यंममंथुर्बलदर्पिताः ॥ ८१ ॥

आश्चर्य हुआ, वह राक्षसोंसे बोला ॥ ७५ ॥ "इस लड़ाईमें देवताओंसे उत्पन्न किया हुआ राम मेरा प्रबल शत्रु प्राप्तहुआ है, उसको मारनेके लिये मेरे सैनापति शीघ्र जांय ॥ ७६ ॥ मेरे मंत्री, मेरे कुटुम्बी और मेरे हितकी इच्छा करनेवाले शूरवीर लोग सबही कोई मेरी आज्ञाके अनुसार शीघ्रतासे लड़नेंको जांय ॥ ७७ ॥ जो डरकर प्राणका बचाव करनेको लड़ाईमें नहीं जांयगे उन सबको अपनी आज्ञाका अपमान करनेवाला समझकर मैं मार डालूंगा ॥ ७८ ॥ यह आज्ञा सुनकर सारे युद्धनिपुण राक्षस भयभीत होकर युद्धके लिये चले । अतिकाय, प्रहस्त, महानाद, महोदर ॥ ७९ ॥ देवशत्रु, निकुंभ, देवान्तक, नरांतक व और दूसरे बलवान राक्षस भी वानरोंसे युद्ध करनेको चले ॥ ८० ॥ व और भी

दूसरे सैकड़ों हज़ारों राक्षस जो कि शूर थे वानरोंकी सैनामें घुसकर बलके गर्वसे उसको दहीके समान मथनेलगे ॥ ८१ ॥ वे राक्षस भुशुण्डी, भिन्दिपाल, बाण, तरवार, कुल्हाड़ी व औरभी विविध भाँतिके अस्त्रोंसे वानरसैनापतियोंको मारने लगे ॥ ८२ ॥ उन वानरोंने भी पर्वतोंके शिखर, नख, डाढ़, और मूके इन शस्त्रोंके प्रहारसे सर्व राक्षसोंके सेनापतियोंका प्राणोंसे वियोग करा दिया ॥ ८३ ॥ कितनेही राक्षसोंको श्रीरामचंद्रजीने मारा, कितनेहीको सुग्रीवने संहारा, कुछ हनुमानजीने, कुछ महाप्रतापी लक्ष्मणजीने; बचे बचाये दूसरे सैनापतियोंने मारे। इस प्रकारसे सर्व राक्षस मारे गये! ॥ ८४ ॥ वानरोंके शरीरमें रामजीकी शक्तिका संचार हो रहाथा; इसकारण वे महाबलवान् हुए, नहीं तौ उनमें इतनी शक्ति कैसे होती! ॥ ८५ ॥ श्रीरामचंद्रजीसे सर्व समर्थ हैं, सर्वमयहै, स्वयं जगत्‌के रचनेवाले हैं सच्चिदानंदमय हैं; तौभी अपनी मायाकरकै मनुष्यका अनुकरण (नकल) कर युद्धादि अपनी लीला कर रहेहैं ॥ ८६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उ० यु० भा० पंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ लक्ष्मणजीके शक्ति लगना। श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! अतिकाय जिसका नायक; ऐसी सारी प्रचंड सेना युद्धमें मारी गई, यह समाचार सुनकर मारे दुःखके रावणके सर्वांग तप्त होगये उसको बड़ा क्रोध हुआ ॥ १ ॥ उस महातेजस्वीने लंकाकी रक्षा करनेको इन्द्रजितको छोड़ा और रामचंद्रजीके

भुशुंडिभिंदिपालैश्चवाणैःखड्गैःपरश्वधैः ॥ अन्यैश्चविविधैरस्त्रैर्निजघ्नुर्हरियूथपान् ॥ ८२ ॥ तेपादपैःपर्वताग्रैर्नखदंष्ट्रैश्चमुष्टिभिः ॥ प्राणैर्विमोचयामासुःसर्वराक्षसयूथपान् ॥ ८३ ॥ रामेणनिहताःकेचित्सुग्रीवेणतथापरे ॥ हनूमताचांगदेनलक्ष्मणेनमहात्मना ॥ यूथपैर्वानराणांतेनिहताःसर्वराक्षसाः ॥ ८४ ॥ रामतेजःसमाविश्यवानरावलिनोऽभवन् ॥ रामशक्तिविहीनानामेवंशक्तिःकुतोभवेत् ॥ ८५ ॥ सर्वेश्वरःसर्वमयोविधातामायामनुष्यत्व विडंबनेन ॥ सदाचिदानंदमयोऽपिरामोयुद्धादिलीलांवितनोतिमायाम् ॥ ८६ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकाण्डेपंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ श्रुत्वायुद्धेवलंनष्टमतिकायमुखंमहत् ॥ रावणोदुःखसंतप्तःक्रोधेनमहतावृतः ॥ १ ॥ निधायेंद्रजितंलंकारक्षणार्थंमहाद्युतिः ॥ स्वयंजगामयुद्धायरामेणसहराक्षसः ॥ २ ॥ दिव्यंस्यंदनमारुह्यसर्वशस्त्रास्त्रसंयुतम् ॥ राममेवाभिदुद्रावराक्षसेंद्रोमहावलः ॥ ३ ॥

साथ लड़ाई करनेको सर्व अस्त्रशस्त्रवाले दिव्य रथमें बैठकर रामचंद्रजीके सन्मुख दौड़ा ॥ २ ॥ ३ ॥ उसने सर्पके समान उग्र बाण छोड़कर अनेक वानरोंको मारा; व सुग्रीवादि यूथपोंको पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ४ ॥ इतनेहीमें महाशक्तिमान् विभीषणजी हस्तमें गदा लेकर राक्षसोंके साथ युद्ध करते हुए दिखाई दिये ! तब रावणने विभीषणके ऊपर मय असुरकी (अपने सुसरे-यानी मन्दोदरीके पिताकी)दीहुई प्रचंड शक्ति छोड़ी ॥ ५ ॥ इस शक्तिको विभीषणका घात करनेके लिये जाताहुआ देखकर लक्ष्मणजीने विचार किया कि विभीषणको रामचंद्रजीने अभय दिया है इस कारण इस दैत्यका वध होना योग्य नहीं है। और मुझपर इस शक्तिका कुछ चलनेवाला नहीं ॥ ६ ॥ ऐसा निश्चयकर वह प्रतापी लक्ष्मणजी

वानरान्बहुशोहत्वाबाणैराशीविषोपमैः ॥ पातयामाससुग्रीवप्रमुखान्यूथनायकान् ॥ ४ ॥ गदापाणिंमहासत्वंतत्रदृष्ट्वाविभीषणम् ॥ उत्ससर्जमहाशक्तिंमयदत्तांविभीषणे ॥ ५ ॥ तामापतंतीमालोक्यविभीषणविघातिनीम् ॥ दत्ताभयोऽयंरामेणवधार्होनायमासुरः ॥ ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणोभीमंचापमादायवीर्यवान् ॥ विभीषणस्यपुरतःस्थितोऽकंपइवाचलः ॥ ७ ॥ साशक्तिर्लक्ष्मणतनुंविवेशामोघशक्तितः ॥ यावंत्यःशक्तयोलोकेमायायाःसंभवंतिहि ॥ ८ ॥ तासामाधारभूतस्यलक्ष्मणस्यमहात्मनः ॥ मायाशक्त्याभवेत्किंवाशेषांशस्यहरेस्तनोः ॥ ९ ॥ तथापिमानुषंभावमापन्नस्तदनुव्रतः ॥ मूर्च्छितःपतितोभूमौतमादातुंदशाननः ॥ १० ॥ हस्तैस्तोलयितुंशक्तोनबभूवातिविस्मितः ॥ सर्वस्यजगतःसारंविराजंपरमेश्वरम् ॥ ११ ॥

हाथमें भयंकर धनुष लेकर विभीषणके आगे पर्वतके समान निश्चल हो खड़े रहे ॥ ७ ॥ उस शक्तिकी सामर्थ्य अमोघ (वृथा न जानेवाली) थी वह लक्ष्मणजीके अंगपर जायकर गिरी। मायासे उत्पन्न होनेवाली जिनकी शक्तियां जगत्में हैं ॥ ८ ॥ उन सबके आधार लक्ष्मणजी हैं, कारण कि वह महात्मा शेषजीके अंश अर्थात् परमेश्वरकी विभूति थे; उनको यह मायाशक्ति क्या कर सकती है ॥ ९ ॥ तथापि स्वयं अंगीकार किये हुए मनुष्यरूपके अनुकूल वर्ताव करनेको मूर्छित होकर लक्ष्मणजी पृथ्वीपर गिरे, रावण उनको उठानेका यत्न करनेलगा ॥ १० ॥ हाथोंसे बहुतेरा उठाना चाहा परन्तु न उठासका; तब रावण बहुतही विस्मितहुआ (महादेवजी बोले हे पार्वति !) लक्ष्मणजी सब जगत्के सार हैं, –

विराट् (स्थूलजटा) रूप उनकाही है, वह परमेश्वर हैं ॥ ११ ॥ सर्व लोकोंके आधार होनेसे व्यापक हैं; उनका उठाना छोटेसे राक्षससे कैसे हो ? जब हनुमान्‌जीने देखा कि रावण लक्ष्मणजीको लेजाना चाहता है ॥ १२ ॥ तब हनुमान्‌जीने क्रोधित होकर वज्रके समान अपने मूकेका रावणकी छातीमें प्रहार किया; उसके लगनेसे रावण घुटने टेककर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १३ ॥ उसके मुख, नेत्र, और कानोंमेंसे रुधिर गिरने लगा; वह नेत्रोंको चलायमान करता हुआ जैसे तैसे रथमें बैठ गया ॥ १४ ॥ इधर हनुमान्‌जी रावणसे घायल किये हुए लक्ष्मणजीको, अपनी भुजाओंसे उठायकर श्रीरामचंद्रजीके निकट ले आये ॥ १५ ॥ वह जन्मरहित स्वयंप्रकाश परमेश्वर (लक्ष्मण) जी वास्तवमें सर्व जड़ पदार्थोंसेभी अतिशय जड़ (भारी) थे; परन्तु हनुमान्‌जीके प्रेम व भक्तिसे लघु (हलके) होगये. (उनके उठानेमें हनुमानजीको जराभी श्रम नहीं हुआ ।) ॥ १६ ॥ जो शक्ति लक्ष्मणजीके लगीथी, वहभी जानगई कि यह (लक्ष्मण) नारायणजीके अंशावतार हैं; इस कारण वह लक्ष्मणजीको छोड़कर रावणके रथपर लौटगई ! फिर रावणभी धीरे २ ॥ १७ ॥ चैतन्य हुआ और धनुष बाण ले क्रोध करके रामचंद्रजीकी ओर दौड़ा । जगत्पति रामचंद्रजीने रावणको देखकर महाक्रोधित हुए ॥ १८ ॥ रावणको रथमें बैठाहुआ देखकर जगत्पति रामचंद्रजी तत्काल महापराक्रमी हनुमान्‌जीके कांधेपर बैठे और रावणके सम्मुख जायकर खड़े हुए ॥ १९ ॥ रामचंद्रजीने वज्र पडनेके समान कठोर अपने धनुषके रोदेका शब्द किया । और गंभीर वाणीसे

कथंलोकाश्रयंविष्णुंतोलयेल्लघुराक्षसः ॥ ग्रहीतुकामंसौमित्रिंरावणंवीक्ष्यमारुतिः ॥ १२ ॥ आजघानोरसिक्रुद्धोवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ ते
नमुष्टिप्रहारेणजानुभ्यामपतद्भुवि ॥ १३ ॥ आस्यैश्चनेत्रश्रवणैरुद्वमन्रुधिरंबहु ॥ विघूर्णमाननयनोरथोपस्थउपाविशत् ॥ १४ ॥ अथ
लक्ष्मणमादायहनूमान्रावणार्दितम् ॥ आनयद्रामसामीप्यंबाहुभ्यांपरिगृह्यतम् ॥ १५ ॥ हनूमतःसुहृत्त्वेनभक्त्याचपरमेश्वरः ॥ लघु
त्वमगमद्देवोगुरूणांगुरुरप्यजः ॥ १६ ॥ साशक्तिरपितंत्यक्त्वाज्ञात्वानारायणांशजम् ॥ रावणस्यरथंप्रागाद्रावणोपिशनैस्ततः ॥ १७ ॥
संज्ञामवाप्यजग्राहबाणासनमथोरुषा ॥ राममेवाभिदुद्रावदृष्ट्वारामोऽपितंक्रुधा ॥ १८ ॥ आरुह्यजगतांनाथोहनूमंतंमहाबलम् ॥ रथ
स्थंरावणंदृष्ट्वाअभिदुद्रावराघवः ॥ १९ ॥ ज्याशब्दमकरोत्तीव्रंवज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ रामोगंभीरयावाचाराक्षसेंद्रमुवाचह ॥ २० ॥

राक्षसोंके राजा रावणसे कहा ॥ २० ॥ “हे राक्षसाधम! खड़ारह? मेरी दृष्टि सब जगह सम है (मैं किसीसे द्वेष नहीं करता) ऐसा होनेपर भी तैंने मेरा वह अपराध किया है; जिसको मैं नहीं सहसक्ता; अब आज मेरे आगेसे कहां जायगा? अर्थात् मेरी समदर्शिता ऐसी है, पापीको दंड और पुण्यवान्‌की उन्नति; यह मेरी समदर्शिताका फल है ॥२१॥ जिन बाणोंसे जनस्थानमें तेरे राक्षसोंका घात किया है, उनसेही मैं आज तेरा वध करताहूं मेरे सामने खड़ारह?”॥२२॥श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर रावणने, युद्धमें श्रीरामचंद्रजीको कांधेपर बैठाये हुए हनुमान्‌जीके तीक्ष्ण बाण मारे ॥ २३ ॥ तीव्र बाणोंके लगनेसे पवनकुमारका तेज; अपने प्रभावसे बराबर बढ़ताही गया उन महाकपिने बड़ी भारी गर्जनाकी ॥२४॥

राक्षसाधमतिष्ठाद्यक्कगमिष्यसिमेपुरः ॥ कृत्वाऽपराधमेवंमेसर्वत्रसमदर्शिनः ॥ २१ ॥ येनबाणेननिहताराक्षसास्तेजनालये ॥ तेनैवत्वांहनिष्यामितिष्ठाद्यममगोचरे ॥ २२ ॥ श्रीरामस्यवचःश्रुत्वारावणोमारुतात्मजम् ॥ वहंतंराघवंसंख्येशरैस्तीक्ष्णैरताडयत् ॥ २३ ॥ हतस्यापिशरैस्तीक्ष्णैर्वायुसूनोःस्वतेजसा ॥ व्यवर्धतपुनस्तेजोननर्दचमहाकपिः ॥ २४ ॥ ततोदृष्ट्वाहनूमंतंसव्रणंरघुसत्तमः ॥ क्रोधमाहारयामासकालरुद्रइवापरः ॥ २५ ॥ साश्वंरथंध्वजंसूतंशस्त्रौघंधनुरंजसा ॥ छत्रंपताकांतरसाचिच्छेदशितसायकैः ॥ २६ ॥ ततोमहाशरेणाशुरावणंरघुसत्तमः ॥ विव्याधवज्रकल्पेनपाकारिरिवपर्वतम् ॥ २७ ॥ रामबाणहतोवीरश्चचालचमुमोहच ॥ हस्तान्निपतितश्चापस्तंसमीक्ष्यरघूत्तमः ॥ २८ ॥ अर्धचंद्रेणचिच्छेदतत्किरीटंरविप्रभम् ॥ अनुजानामिगच्छत्वमिदानींबाणपीडितः ॥ २९ ॥

हनुमान्‌जीके शरीरमें घाव हुआ देखकर रामचंद्रजी महाक्रोधित होकर प्रलयकालके दूसरे रुद्रके समान जान पड़ने लगे ॥ २५ ॥ रामजीने तीक्ष्ण बाणोंको मारकर रावणका रथ, घोड़े, ध्वजा, सारथी, शस्त्रसमूह, धनुष, छत्र, पताका सबकोही एक साथ क्षणभरमें सहजसे काट डाला ॥२६॥ फिर जैसे पहले इन्द्रने पर्वतोंपर वज्र चलायाथा, वैसेही रामचंद्रजीने तत्काल एक वज्रतुल्य प्रचंड बाण रावणके मारा ॥ २७ ॥ रामचंद्रजीका बाण लगनेसे उस वीरका शरीर थर २ कांपने लगा उसको मूर्च्छा आगई; धनुष हाथसे गिर गया, उसकी अवस्था देखकर रामचंद्रजीने ॥ २८ ॥ एक अर्द्धचंद्राकार बाण मारकर सूर्यके समान तेजस्वी उसका मुकुट काट डाला, और उस्से कहा;– “हे रावण बाणसे पीडित हुए तुझको मैं

जानेकी आज्ञा देताहूं ॥ २९ ॥ लंकामें जाय आजके दिन विश्रामलेकर सावधान हो फिर प्रभातही आयकर मेरी सामर्थ्यको देखना ! ” रामचंद्रजीके बाणका श्रेष्ठ प्रहार लगनेसे गर्व उतर गया है जिसका, ऐसा रावण ॥ ३० ॥ व्याकुल व लज्जित होकर लंकाको चला गया। इधर रामजी लक्ष्मणको भूमिपर चेष्टारहित पड़ा हुआ देखकर ॥ ३१ ॥ शोक करने लगे, मनुष्यका अवतार लेनेसे उनको यह लीला करनी पड़ी । कुछ देर पीछे वह हनुमान्‌जीसे बोले, वत्स ! जैसे तुम पहले वह दिव्य औषधी लायेथे; वैसेही अब लायकर लक्ष्मणको और वानरोंको जिलाओ, रामचंद्रजीकी ऐसी आज्ञा पाय वह महावानर ‘ बहुत अच्छा ’ कहकर चले ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हनुमान्‌जी पवनके समान वेगसे

प्रविश्यलंकामाश्वास्यश्वःपश्यासिबलंमम ॥ रामबाणेनसंविद्धोहतदर्पोऽथरावणः ॥३०॥ महत्यालज्जयायुक्तोलंकांप्राविशदातुरः ॥ रामोऽपिलक्ष्मणंदृष्ट्वामूर्च्छितंपतितंभुवि ॥ ३१ ॥ मानुषत्वमुपाश्रित्यलीलयाऽनुशुशोचह ॥ ततःप्राहहनूमंतंवत्सजीवयलक्ष्मणम् ॥ ३२ ॥ महौषधीःसमानीयपूर्ववद्वानरानपि ॥ तथेतिराघवेणोक्तोजगामाशुमहाकपिः ॥ ३३॥ हनूमान्वायुवेगेनक्षणात्तीर्त्वामहोदधिम् ॥ एतस्मिन्नंतरेचाशरावणायन्यवेदयन् ॥ ३४ ॥ रामेणप्रेषितोदेवहनूमान्क्षीरसागरम् ॥ गतोनेतुंलक्ष्मणस्यजीवनार्थंमहौषधीः ॥ ३५ ॥ श्रुत्वा तच्चारवचनंराजाचिंतापरोऽभवत् ॥ जगामरात्रावेकाकीकालनेमिगृहंक्षणात् ॥ ३६ ॥ गृहागतंसमालोक्यरावणंविस्मयान्वितः ॥ कालनेमिरुवाचेदंप्रांजलिर्भयविह्वलः ॥ अर्घ्यादिकंततःकृत्वारावणस्याग्रतःस्थितः ॥ ३७॥ किंतेकरोमिराजेंद्रकिमागमनकारणम् ॥ कालनेमिमुवाचेदंरावणोदुःखपीडितः ॥ ३८ ॥

क्षणभरके बीचमें महासागरको उलांघकर दूसरी पार गये; इतनेहीमें रावणके दूतोंने यह वार्ता रावणसे कही; वे बोले– ॥ ३४ ॥ “ हे महाराज! रामचंद्रने लक्ष्मणको जिलानेके लिये दिव्य औषधि लानेके कारण हनुमान्‌जीको पठाया है,वह हनुमान् क्षीरसमुद्रपर गया है” ॥ ३५ ॥ दूतोंके वचन सुनकर रावणको बड़ी भारी चिन्ता हुई, वह वैसेही रात्रिकी वेला अकेला चलकर एक क्षणमें कालनेमिके घरपर गया ॥ ३६ ॥ रावणको अपने घरपर आया हुआ देखकर कालनेमिको विस्मय हुआ, उसने रावणको अर्घ्य दिया, और पूजा करकै आदरसत्कार किया; फिर डरके मारे कांपता २ रावणके आगे खड़ा हो हाथ जोड़कर बोला; ॥ ३७ ॥ “हे राजाधिराज ! मैं आपकी कौनसी सेवा करूं ? आप किस अभिप्रायसे

इधर आये हैं ?" रावण दुःखके मारे त्रासित होरहाथा, उसने कालनेमिको उत्तर दिया ॥ ३८ ॥ "कालचक्रकी गतिसे मुझ परभी संकट आनकर पड़ा है, मेरी मारी हुई शक्तिका प्रहार लगनेसे लक्ष्मण भूमिपर गिरा ॥ ३९ ॥ उसको जिलानेके लिये औषधी लानेको हनुमान् गया है; इस समय मेरा तुझसे यही कहना है कि-तू कोई ऐसा उपायकर कि जिस्से हनुमान्का कोई विघ्नहो, तू बड़ा बुद्धिमान् है, निःसन्देह यह कार्य तेरे हाथसे होगा ॥ ४० ॥ तू कपटसे मुनिवेष धारण करकै इसप्रबल वानरको फँसा; और कल प्रभाततक उसका समय यहाँपर वीते ऐसी व्यवस्था करकै फिर अपने घरमें लौट आना।" ॥ ४१ ॥ रावणके वचन सुनकर कालनेमिने उस्से कहाः—हे महाराज रावण ! तुम मेरे वचन सुनो;

ममापिकालवशतःकष्टमेतदुपस्थितम् ॥ मयाशक्त्याहतोवीरोलक्ष्मणःपतितोभुवि ॥ ३९ ॥ तंजीवयितुमानेतुमोषधीर्हनुमान्गतः ॥
यथातस्यभवेद्विघ्नंतथाकुरुमहामते ॥ ४० ॥ माययामुनिवेषेणमोहयस्वमहाकपिम् ॥ कालात्ययोयथाभूयात्तथाकृत्वैहिमंदिरे ॥ ४१ ॥
रावणस्यवचःश्रुत्वाकालनेमिरुवाचतम् ॥ रावणेशवचोमेऽद्यशृणुधारयतत्वतः ॥ ४२ ॥ प्रियंतेकरवाण्येवनप्राणान्धारयाम्यहम् ॥
मारीचस्ययथारण्येपुराभून्मृगरूपिणः ॥ ४३ ॥ तथैवमेनसंदेहोभविष्यतिदशानन ॥ हताःपुत्राश्चपौत्राश्चबांधवाराक्षसाश्चते ॥ ४४ ॥
घातयित्वाऽसुरकुलंजीवितेनापिकिंतव ॥ राज्येनवासीतयावाकिंदेहेनजडात्मना ॥ ४५ ॥ सीतांप्रयच्छरामायराज्यंदेहिविभीषणे ॥
वनंयाहिमहाबाहोरम्यंमुनिगणाश्रयम् ॥ ४६ ॥

और उनका ठीक२ विचारकरो ॥ ४२ ॥ आपका प्रियकार्य करनेमें मेरा प्राण जाताहोय तौ मैं प्राण छोड़ देनेको तैयारहूं; पहले मारीच दैत्य हरिणका रूप धारणकर वनमें गयाथा, जैसी अवस्था उसकी हुई; ॥ ४३ ॥ वैसेही अवस्था मेरी होगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। हे रावण ! जब तुम्हारे पुत्र पौत्र बांधवादि सर्वराक्षस मरण पाय गये ! ॥ ४४ ॥ ऐसी रीतिसे राक्षसकुलका नाश करानेपर तुमको जगत्में क्या करना है ? राज्य, सीता, या इस जड़रूपी देहसे तुमको क्या फल होगा ? ॥ ४५ ॥ तुम्हारी बांहें प्रचंड हैं; तुम प्रतापी वीरहो; यह सब बात ठीक है, परन्तु शक्तिका ऐसा उपयोग करनेसे क्या ? इसकारण मैं आपसे कहताहूं कि सीता रामचंद्रको देदो, राज्य विभीषणको दो; और तुम आनंदसे उस

रमणीय वनमें जहांपर ऋषिलोग रहते हैं– रहो ॥ ४६ ॥ वहांपर तुम प्रातःकालही पवित्र जलसे स्नान करना, संध्यादिक कर्म करना, और एकांतमें पद्मासनादि सुखदाई आसनोंपर बैठना ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! सर्व बाहरी विषयोंमें अनुराग छोड़ दो, बाहरके प्रापंचिक विषयोंमें लीन हुई इन्द्रियोंको धीरे २ आत्मामें लगाओ ॥ ४८ ॥ हे पापरहित! और इसका सदा विचार करते रहो कि आत्मा प्रकृतिसे अलगहै या नहीं। देह, बुद्धि, इन्द्रियें इत्यादि स्थावर जंगम सर्वजगत् ॥ ४९ ॥ अर्थात् ब्रह्माजीसे लेकर अतिसूक्ष्म कीटपर्यन्त जो कुछ दीखताहै, व सुनाई आता है; वह सब प्रकृतिहै; उसकोही कोई माया कहतेहैं ॥ ५० ॥ जगद्रूपी वृक्षकी उत्पति, स्थिति, संहार होनेका कारण वही (प्रकृति) है ।

स्नात्वाप्रातःशुभजलेकृत्वासंध्यादिकाःक्रियाः ॥ ततएकांतमाश्रित्यसुखासनपरिग्रहः ॥ ४७ ॥ विसृज्यसर्वतःसंगमितरान्विषयान्बहिः ॥ बहिःप्रवृत्ताक्षगणंशनैःप्रत्यक्प्रवाहय ॥ ४८ ॥ प्रकृतेर्भिन्नमात्मानंविचारयसदाऽनघ ॥ चराचरंजगत्कृत्स्नंदेहबुद्धींद्रियादिकम् ॥ ४९ ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतंदृश्यतेश्रूयतेचयत् ॥ सैषाप्रकृतिरित्युक्तासैवमायेतिकीर्तिता ॥ ५० ॥ सर्गस्थितिविनाशानांजगद्वृक्षस्यकारणम् ॥ लोहितश्वेतकृष्णादिप्रजाःसृजतिसर्वदा ॥ ५१ ॥ कामक्रोधादिपुत्राद्यान्हिंसातृष्णादिकन्यकाः ॥ मोहयत्यनिशंदेवमात्मानंस्वैर्गुणैर्विभुम् ॥ ५२ ॥ कर्तृत्वभोक्तृत्वमुखान्स्वगुणानात्मनीश्वरे ॥ आरोप्यस्ववशंकृत्वातेनक्रीडतिसर्वदा ॥ ५३ ॥ शुद्धोऽप्यात्मायथायुक्तःपश्यतीवसदाबहिः ॥ विस्मृत्यचस्वमात्मानंमायागुणविमोहितः ॥ ५४ ॥

वह त्रिगुणात्मक होनेसे अपने गुणोंके अनुरूप रक्त (लाल, राजस), श्वेत (सफेद सात्विक) व कृष्ण (काला तामस,) इत्यादि वर्णकी प्रजा नित्य उत्पन्न किया करती है ॥ ५१ ॥ उसके पुत्र, काम क्रोधादिहैं; और हिंसा तृष्णादि कन्याहैं । आत्मा (जीव) मूलके विभु (व्यापक) व ज्ञानरूपहैं परन्तु प्रकृति इस प्रकारसे सृष्टि उत्पन्न करकै अपने आपही उत्पन्न कियेहुए उन पदार्थोंके द्वारा; उस आत्माको नित्य मोहित करती है (तिन पदार्थों पर ‘ मैं ’ व ‘ मेरा ’ बुद्धि लगवा देतीहै) ॥ ५२ ॥ समर्थ आत्मापर कर्तृत्व, भोक्तृत्वादि अपने गुण आरोप करकै उनको अपने आधीन करलेती है, और फिर उनके साथ सदा क्रीड़ा करती रहती है ॥ ५३ ॥ आत्मा वास्तवमें शुद्ध (दर्शनादि विकार रहित) है; परन्तु

उसको समागम प्राप्त होनेसे वह अपना रूप भूलजाती है; और मायाके गुणोंसे मोहित होताहुआ बाहरके विषयोंको देखने (भोगने) लगती है ॥ ५४ ॥ फिर जब "मैं ज्ञानरूपहूं" ऐसा ज्ञान होताहै, उस जगद्गुरु की गांठ पड़ी व उसनें उपदेश किया कि इसकी दृष्टि विषयोंसे अलग होतीहै; फिर यह शुद्ध मुक्त आत्मरूपको स्पष्ट देखनें लगताहै ॥ ५५ ॥ प्राणीको गुरुका उपदेश मिला, व तत्त्वचिंतनका अवसर प्राप्त हुआ कि वह जीवन्मुक्त हो जाता है; अर्थात् प्रकृतिके सुखदुःखादि गुणप्रवाहसे छूटताहै; इसकारण हे रावण! तू अपनी इन्द्रियोंको वश में रखकर इस प्रकारसे आत्मविचारकर ॥ ५६ ॥ इस कारण तुम शीघ्र आत्माको प्रकृतिसे अलग जानो; ऐसा ज्ञान करनेसे मुक्ति मिलेगी ।

यदासद्गुरुणायुक्तोबोध्यतेबोधरूपिणा ॥ निवृत्तदृष्टिरात्मानंपश्यत्येवसदास्फुटम् ॥ ५५ ॥ जीवन्मुक्तःसदादेहीमुच्यतेप्राकृतैर्गुणैः ॥
त्वमप्येवंसदात्मानंविचार्यनियतेंद्रियः॥५६॥प्रकृतेरन्यमात्मानंज्ञात्वामुक्तोभविष्यसि॥ ध्यातुंयद्यसमर्थोऽसिसगुणंदेवमाश्रय ॥ ५७ ॥
हृत्पद्मकर्णिकेस्वर्णपीठेमणिगणान्विते ॥ मृदुश्लक्ष्णतरेतत्रजानक्यासहसंस्थितम् ॥ ५८ ॥ वीरासनंविशालाक्षंविद्युत्पुंजनिभांबरम् ॥
किरीटहारकेयूरकौस्तुभादिभिरन्वितम् ॥ ५९ ॥ नूपुरैःकटकैर्भांतंतथैववनमालया ॥ लक्ष्मणेनधनुर्द्वंद्वकरेणपरिसेवितम् ॥ ६० ॥
एवंध्यात्वासदात्मानंरामंसर्वहृदिस्थितम् ॥ भक्त्यापरमयायुक्तोमुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ६१ ॥ शृणुवैचरितंतस्यभक्तैर्नित्यमनन्यधीः ॥
एवंचेत्कृतपूर्वाणिपापानिचमहान्त्यपि ॥ क्षणादेवविनश्यंतियथाऽग्नेस्तूलराशयः ॥ ६२ ॥

जो मेरा कहाहुआ ज्ञानकुछ अशक्य ज्ञात हो तौ देवताके सगुणरूपका आश्रयकरों ॥ ५७ ॥ हृदयकमलकी कर्णिकामें, मणिगण शोभित अतीव मृदु और स्निग्ध सुवर्णके सिंहासनपर जानकीजीके साथ श्रीरामचंद्रजी बैठेहैं ॥ ५८ ॥ वे वीरासन पर आसीन हैं। उनके नेत्र विशाल, वस्त्र विजलीके समान पीले चमकदार हैं; किरीट, हार, बाजू, कौस्तुभ इत्यादि गहने शरीर पर जगह २ दिखलाई देते हैं ॥ ५९ ॥ नूपुर कड़े वनमालाके पहरनेसे उनकी मूर्ति विशेष शोभायमान होरहीहै । दोधनुष हाथमें लेकर लक्ष्मणजी (एक धनुष अपना व दूसरा रामचंद्रजी का) सेवाके लिये निकट खड़ेहैं ॥ ६० ॥ जो पुरुष सर्वान्तरयामी आत्मरूपी रामचंद्रजीका इस प्रकारसे नित्य ध्यान करताहै; उसकी रामचंद्रजीपर अत्युत्तम भक्ति होती है; वह निःसंदेह मुक्तिको प्राप्त होजाताहै ॥ ६१ ॥ हे रावण! भक्तजन उनके चरित्र गाया करते हैं; तुम

और कहीं मनलगाकर उन चरित्रोंको निरंतर श्रवण करतेरहो–ऐसा करनेसे जो पहले तुमनें असंख्य महापातक किये हैं; वह, अग्नि लगनेसे जिसप्रकार कपासका बड़ा भारी ढेर जल जाताहै, तेरे पाप तैसेही क्षणभरमें नष्ट हो जांयगे ॥ ६२ ॥ वैर छोड़कर एकान्तचित्तसे भक्त हो उन पुराणपुरुष परिपूर्णस्वरूप केवल रामचंद्रजीका भजनकरो । वे नाम रूपसे वर्जितहैं; मनमें सदा उनके ब्रह्मरूपका विचार किया[1]करो ॥ ॥ ६३ ॥ इति श्रीमद० उमा० युद्ध० भा० षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ ॥ कालनेमिका माराजाना, लक्ष्मणजीका जीवित होना, कुम्भकर्णका सोतेसे उठना ॥ महादेवजी कहते हैं, कि-हे पार्वति ! वास्तवमें कालनेमिके वचन अमृतके समान मधुर व हितकारीथे–परन्तु रावणको नहीं रुचे, जैसे तत्तापी पानी डालनेसे उबल उठताहै वैसेही इन वचनोको सुनते ही रावणके अंगोंमें आग बलगई; वह क्रोधसे लाल २ नेत्र कर कालनेमिसे बोला;-- ॥ १ ॥ “ दुष्ट ! तू मेरी आज्ञाको उल्लंघन करता है; इस कारण मैं तुझे मारे डालताहूं; तू शत्रुके पाससे कुछ लेकर (धनादि) रामचंद्रजीके दास की नांई हो ऐसा कहताहै इसमें कुछ संशय नहीं ” ॥ २ ॥ कालनेमिने रावणको उत्तर दिया,–“देव ! क्रोधसे क्या कामहै ? यदि मेरा कहना आपके मनको न भावै तो (जैसा आप कहते हैं) जाकर वहीकरताहूं ” ॥ ३ ॥ इतना कहकर वह महादैत्य कालनेमि वहांसे अति शीघ्रचला, क्योंकि फिर रावणने हनुमान्‌जीका विघ्न करनेके लिये जानेको आग्रह करके आज्ञादी; तब वह निरुपाय होगया ॥ ४ ॥ उसने हिमालयके

भजस्वरामंपरिपूर्णमेकंविहायवैरंनिजभक्तियुक्तः ॥ हृदासदाभावितभावरूपमनामरूपंपुरुषंपुराणम् ॥६३॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेषष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ कालनेमिवचःश्रुत्वारावणोऽमृतसन्निभम् ॥ जज्वालक्रोधताम्राक्षःसर्पिरद्भिरिवाग्निमत् ॥ १ ॥ निहन्मित्वांदुरात्मानंमच्छासनपराङ्मुखम् ॥ परैःकिंचिद्गृहीत्वात्वंभाषसेरामकिंकरः ॥ २ ॥ कालनेमिरुवाचेदंरावणंदेवकिंक्रुधा ॥ नरोचतेमेवचनंयदिगत्वाकरोमितत् ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वाप्रययौशीघ्रंकालनेमिर्महासुरः ॥ नोदितोरावणेनैवहनूमद्विघ्नकारणात् ॥ ४ ॥ सगत्वाहिमवत्पार्श्वंतपोवनमकल्पयत् ॥ तत्राशिष्यैःपरिवृतोमुनिवेषधरःखलः ॥ ५ ॥

---

[1] “ मन २ में सदां भजन करो । वे स्वयं नामरूपसे रहितहैं, किन्तु यह भुवनके नाम रूप उनसेही होतेहैं । ” यह अर्थभी ठीकहै ॥

पार्श्वभागमें (उतारमें) जाय महात्मा पवनकुमार हनुमान्जी जिस मार्गमें जातेथे; उस मार्गमें एक उपवन तैयार किया; और स्वयं मुनिका वेष बनाय चेलोंके साथ वहां स्थित हुआ। जब हनुमान्जी उस मार्गसे जाने लगे तौ यह रमणीक आश्रम उनको दिखाई दिया ॥ ५ ॥ ६ ॥ तब उन तेजस्वी पवनकुमारने मनमें विचारकिया कि पहलेभी मैं द्रोणपर्वतपर आयागयाथा; परन्तु तब यह उत्तम आश्रम मेरे देखनेमें नहीं आया ॥ ७ ॥ आज क्या मैं मार्ग भूलगया ? या मेरे चित्तको कुछ भ्रम उत्पन्न हुआ है (आश्रम न होने परभी मुझे आश्रम मालूम पड़ता है) ? अथवा मैं संध्या यहींपर बिताऊं, सब मुनियोंका दर्शन करूं; ॥ ८ ॥ जलपियूं; और फिर उस अत्युत्तम द्रोणपर्वतपर जाऊं? इस प्रकार अपने आपकह हनुमान्जीने आश्रममें प्रवेशकिया; यह आश्रम चारों ओरसे चारकोशका विस्तारवाला था ॥ ९ ॥ इस आश्रममें केला, शाल, खजूर, कटहल इत्यादि वृक्ष जिधर तिधर लग रहे हैं। उनकी डालियें पके हुए फलोंके भारसे झुकरही हैं ॥ १० ॥ वहांपर सर्प, न्यौले इत्यादि परस्पर स्वभावसे ही वैर करनेवाले प्राणी वैरभाव छोड़कर एकसाथ क्रीड़ा करते हैं, जिधर तिधर पवित्रवन व निर्मल लक्षण दिखाई देते हैं; ऐसे उस विस्तीर्ण रमणीक आश्रममें वह राक्षस कालनेमि ॥ ११ ॥ कपटयोग अंगीकारकरकै बैठाहुआ महादेवजीकी आराधना कररहाथा। हनुमान्जीने पूज्य बुद्धिकरकै उस महादैत्यका वंदन कर कहा ॥ १२ ॥ "हे त्रिकालज्ञ मुने ! मैं हनुमान् रामचंद्रजीका दूत हूं, रामचंद्रजीका कोई बड़ा कार्य

गच्छतोमार्गमासाद्यवायुसूनोर्महात्मनः ॥ ततोगत्वाददर्शाथहनूमानाश्रमंशुभम् ॥ ६ ॥ चिंतयामासमनसाश्रीमान्पवननंदनः ॥
पुरानदृष्टमेतन्मेमुनिमंडलमुत्तमम् ॥ ७ ॥ मार्गोविभ्रंशितोवामेभ्रमोवाचित्तसंभवः ॥ यद्वाऽऽविश्याश्रमपदंदृष्ट्वामुनिमशेषतः ॥ ८ ॥
पीत्वाजलंततोयामिद्रोणाचलमनुत्तमम् ॥ इत्युक्त्वाप्रविवेशाथसर्वतोयोजनायतम् ॥ ९ ॥ आश्रमंकदलीशालखर्जूरपनसादिभिः ॥
समावृतंपक्कफलैर्नम्रशाखैश्चपादपैः ॥ १० ॥ वैरभावविनिर्मुक्तंशुद्धंनिर्मललक्षणम् ॥ तस्मिन्महाश्रमेरम्येकालनेमिःसराक्षसः ॥ ११ ॥
इंद्रयोगंसमास्थायचकारशिवपूजनम् ॥ हनूमानभिवाद्याहगौरवेणमहासुरम् ॥ १२ ॥ भगवन्रामदूतोऽहंहनूमान्नामनामतः ॥ रामकार्येण
महताक्षीराब्धिंगंतुमुद्यतः ॥ १३ ॥

करनेके लिये मैं क्षीरसमुद्रपर जाताहूं ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मनिष्ठ मुने ! मारे प्यासके मेरा कंठ सूखगयाहै। यहांपर पानी कहीं है ? । मेरी इच्छा है कि मैं पेटभर पानी पियूं। हे मुनिवर ! सो बताओ कि पानी कहां है ? ।” ॥ १४ ॥ हनुमानूजीके वचन सुनकर कालनेमिने उनसे कहा। “मेरे कमंडलुमें जल है सो तुमपियो ॥ १५ ॥ यह पके हुए फलखाय, यहां सुखसे रहकर निद्रालो। पानी पीतेही शीघ्रतासे जानेकी त्वराकरनेका कारण नहीं है ॥ १६ ॥ मैं अपने तपकी सामर्थ्यसे भूत, भविष्य, और वर्तमानको जानताहूं, लक्ष्मणजी चैतन्य होगये व और सारे वानरभी रामजीकी दृष्टिसे जीवित हो गये हैं” यह सुनकर हनुमानूजी बोले,–हेमुने ! मुझे बहुत प्यास लगी है, लोटेके जलसे वह शान्त नहीं होगी; इसकारण मुझेकोई सरोवर दिखादो ॥ १७ ॥ १८॥ कालनेमिने ‘अच्छा’ कहकर, शीघ्रही मायासे रचेहुए एक ब्रह्मचारीको आज्ञादी कि “बटो ! इस पवनकुमारको बड़ा भारी सरोवर दिखाओ।” ॥ १९॥ फिर कालनेमि हनुमानूजीसे बोला “तुम आंखें मूंदके पानी पी झटपट मेरे पास चले आओ; तब मैं तुम्हें मंत्रका उपदेश करूंगा; तिस मंत्रकी सामर्थ्यसे तुम्हें औषधि दीख जायगी ॥ २० ॥ हनुमानूजीनें ‘अच्छा’ कहकर तुरंतही बटुकके दिखायेहुए सरोवरमें प्रवेश किया व आंख बंद करके पानी पीने लगे ॥ २१ ॥ इतनेहीमें महामायाकी जाननेंवाली, घोर रूपा मछली महावेगसे आयकर महाकपि पवनकुमार हनुमानूजीको ग्रासकरने लगी ॥ २२ ॥ हनुमानूजीने नेत्र खोल यह देखाकि एक मछली इसें

तृषामांबाधतेब्रह्मन्नुदकंकुत्रविद्यते ॥ यथेच्छंपातुमिच्छामिकथ्यतांमेमुनीश्वर ॥ १४ ॥ तच्छुत्वामारुतेर्वाक्यंकालनेमिस्तमब्रवीत् ॥
कमंडलुगतंतोयंममत्वंपातुमर्हसि ॥ १५ ॥ भुंक्ष्वचेमानिपक्वानिफलानितदनंतरम् ॥ निवसस्वसुखेनात्रनिद्रामेहित्वरास्तुमा ॥ १६ ॥
भूतंभव्यंभविष्यंचजानामितपसास्वयम् ॥ उत्थितोलक्ष्मणःसर्वेवानरारामवीक्षिताः ॥ १७ ॥ तच्छुत्वाहनुमानाहकमंडलुजलेनमे ॥
नशाम्यत्यधिकातृष्णाततोदर्शयमेजलम् ॥ १८ ॥ तथेत्याज्ञापयामासवटुंमायाविकल्पितम् ॥ बटोदर्शयविस्तीर्णंवायुसूनोर्जलाशयम्
॥ १९ ॥ निमील्यचाक्षिणीतोयंपीत्वागच्छममांतिकम् ॥ उपदेक्ष्यामितेमंत्रंयेनद्रक्ष्यसिचौषधीः ॥ २० ॥ तथेतिदर्शितंशीघ्रं
बटुनासलिलाशयम् ॥ प्रविश्यहनुमांस्तोयमपिबन्मीलितेक्षणः ॥ २१ ॥ ततश्चागत्यमकरीमहामायामहाकपिम् ॥ अग्रसत्तंमहावेगान्मारुतिंघोररूपिणी ॥ २२ ॥ ततोददर्शहनुमान्ग्रसंतींमकरींरुषा ॥ दारयामासहस्ताभ्यांवदनंसाममारह ॥ २३ ॥

निगले जाती है; उन्हौनें क्रोधित होकर दौनों हाथोंसे उस मछलीका मुख चीर डाला ! कि जिस्से वह तत्काल मरगई! ॥ २३ ॥ इतनेहीमें आकाशके मध्य दिव्यरूप धारण करनेंवाली एक स्त्री दिखाई देनेलगी; उसका नाम धान्यमाली था, वह हनुमान्जीसे बोली;– ॥ २४ ॥ “हे वानरेश्वर! तुम्हारी कृपाकरकै मैं आज शापसे छूटगई । मैं एक अप्सराहूं । किसीकारणसे मुनिने मुझे शाप दियाथा, इस्सेही मैं मछली हुई ॥ २५ ॥ हे पापरहित ! अब मेरे कहनेको ध्यान देकर सुनो; आश्रममें जिस पुरुषको तुमने देखाहै वह कालनेमि नामक महादैत्य है; मार्गमें तुम्हारे कार्यमें विघ्न डालनेको रावणने उसे भेजाहै ॥ २६ ॥ वह मुनि नहीं, वरन् मुनिके समान वेषधारण करनेवाला मुनियोंका मारनेवाला राक्षसहै; तुम इस दुष्टका वध करकै अतिशीघ्र अत्युत्तम द्रोणपर्वत पर चले जाओ ॥ २७ ॥ तुम्हारे स्पर्शसे मेरे पाप नष्ट होगये; अब मैं ब्रह्मलोकको जाती हूं ।” इतना कहकर वह स्वर्गको गई और इधर हनुमान्जी आश्रममें आये ॥ २८ ॥ उनको निकट आता हुआ देखकर कालनेमिने कहा;–“हे वानर वीर! इतनी अवेर वहांपर क्यों लगाई? ॥ २९ ॥ अच्छा अब मुझसे मंत्रसीखो, और मुझे गुरुदक्षिणा दो;” उस राक्षसके यह कहनेपर हनुमान्जी भलीभाति मूंका बांधकर उस राक्षससे बोले;– ॥ ३० ॥ “यहलेदक्षिणा ?” यह कहकर हनुमान्जीने उसके एक घूंसा मारा; तत्काल वह महादैत्य कालनेमि ऋषिवेष छोड़ करकै ॥ ३१ ॥ हनुमान्जीके साथ युद्ध करनें लगा; दैत्यनें अनेक प्रकारकी मायाकीं परन्तु यह

ततोंऽतरिक्षेददृशेदिव्यरूपधरांगना ॥ धान्यमालीतिविख्याताहनूमंतमथाब्रवीत् ॥ २४ ॥ त्वत्प्रसादादहंशापाद्विमुक्तास्मिकपीश्वर ॥
शप्ताहंमुनिनापूर्वमप्सराःकारणांतरे ॥ २५ ॥ आश्रमेयस्तुतेदृष्टःकालनेमिर्महाऽसुरः ॥ रावणप्रहितोमार्गेविघ्नंकर्तुंतवानघ ॥ २६ ॥
मुनिवेषधरोनासौमुनिर्विप्रविहिंसकः ॥ जहिदुष्टंगच्छशीघ्रंद्रोणाचलमनुत्तमम् ॥ २७ ॥ गच्छाम्यहंब्रह्मलोकंत्वत्स्पर्शाद्धूतकल्मषा ॥
इत्युक्त्वासाययौस्वर्गंहनूमानप्यथाश्रमम् ॥ २८ ॥ आगतंतंसमालोक्यकालनेमिरभाषत ॥ किंविलंबेनमहतातववानरसत्तम ॥ २९ ॥
गृहाणमत्तोमंत्रांस्त्वंदेहिमेगुरुदक्षिणाम् ॥ इत्युक्तोहनुमान्मुष्टिंदृढंबद्ध्वाहराक्षसम् ॥ ३० ॥ गृहाणदक्षिणामेतामित्युक्त्वानिजघानतम् ॥
विसृज्यमुनिवेषंसकालनेमिर्महासुरः ॥ ३१ ॥ युयुधेवायुपुत्रेणनानामायाविधानतः ॥ महामायिकदूतोऽसौहनूमान्मायिनांरिपुः ॥३२॥

हनुमान्‌जी महामाया करनेवाले (सर्व जगके आदि कारण माया जिनके अधीन है तिन रामचंद्रजीके) दूत व मायावी (कपटी) राक्षसोंके शत्रु हैं; फिर इस राक्षसकी लघुमाया इनका क्या करसकती है ? ॥ ३२ ॥ हनुमान्‌जीने इसके शिरपर एक घूंसामारा, तिस घूंसेसे शिर फटगया; और वह दैत्य मरण पाता हुआ । इसके उपरान्त हनुमान्‌जी क्षीरसमुद्र पर गये; और वहांपर महागिरि द्रोणको उन्होंने देखा ॥ ३३ ॥ परन्तु उसपर ओषधी कहीं न दिखाईदी । इसकारण हनुमान्‌जीने उस पर्वतकोही उखाड़ लिया और शीघ्रही वायुवेगसे; श्रीरामचंद्रजीके निकट आय ॥ ३४ ॥ उनसे बोले "हे देवाधिदेव ! यह महापर्वतही ले आयाहूं; इसका जो उपयोग होवै सो कर लीजिये,– इस कार्यमें विलम्ब करना योग्य नहीं । " ॥ ३५ ॥ हनुमान्‌जीके वचन सुनकर रामचंद्रजीका अंतःकरण प्रसन्न हुआ । उन्होंने विना विलम्ब

जघानमुष्टिनाशीर्ष्णिभग्नमूर्धाममारसः ॥ ततःक्षीरनिधिंगत्वाद्दष्ट्वाद्रोणंमहागिरिम् ॥ ३३ ॥ अदृष्ट्वाचौषधीस्तत्रगिरिमुत्पाट्यसत्वरः ॥
गृहीत्वावायुवेगेनगत्वारामस्यसन्निधिम् ॥ ३४ ॥ उवाचहनुमान्राममानीतोऽयंमहागिरिः ॥ यद्युक्तंकुरुदेवेशविलंबोनात्रयुज्यते ॥ ३५ ॥
श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंरामःसंतुष्टमानसः ॥ गृहीत्वाचौषधीःशीघ्रंसुषेणेनमहामतिः ॥ ३६ ॥ चिकित्सांकारयामासलक्ष्मणायमहात्मने ॥
ततःसुप्तोत्थितइवबुद्ध्वाप्रोवाचलक्ष्मणः ॥ ३७ ॥ तिष्ठतिष्ठक्वगंतासिहन्मीदानींदशानन ॥ इतिब्रुवंतमालोक्यमूर्ध्न्यवघ्रायराघवः ॥३८॥
मारुतिंप्राहवत्साद्यत्वत्प्रसादान्महाकपे ॥ निरामयंप्रपश्यामिलक्ष्मणंभ्रातरंमम ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वावानरैःसार्धंसुग्रीवेणसमन्वितः ॥
विभीषणमतेनैवयुद्धायसमवस्थितः ॥ ४० ॥

किये पहाड़ परसे ओषधी लेली । रामचंद्रजीके हाथका स्पर्श होतेही ओषधीका तेज बढ़ने लगा-फिर उन महाबुद्धिमान् प्रभुने महामति सुषेणसे ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणजीकी चिकित्साकराई । तत्काल लक्ष्मणजी मोह छोड़कर नींदसे उठे हुएके समान उठकर कहने लगेः– ॥ ३७ ॥ दशानन खड़ारह ! खड़ा रह ! 'कहां जायगा ! मैं अभी तेरा वध करताहूं ! ' लक्ष्मणजीको ऐसा बोलता हुआ देख रामचंद्रजीने उनका शिर सूंघा और ॥ ३८ ॥ हनुमान्‌जीसे कहाः– "वत्स ! वानरेश्वर ! आज केवल तेरे अनुग्रहसे मेरे भ्राताकी पीड़ा दूर होगई, व इन लक्ष्मणको मैंने देखा ॥ ३९ ॥ रामचंद्रजी इतना कह, वानरों और सुग्रीवको साथले विभीषणके मतानुसार (क्योंकि इनको लंकाका सब भेद भलीभांति

ज्ञातथा) युद्धकी तैयारीसे खड़े रहे ॥ ४० ॥ युद्धमें बड़े उत्साही वानरगण पाषाण, वृक्ष, व पर्वतोंके शिखर लेकर युद्ध करनेके लिये शत्रुके सन्मुख चले ॥ ४१ ॥ इधर महादैत्य रावण रामचंद्रजीके बाण लगनेसे घायल होगयाथा, सिंहने हाथीकी, या गरुडने सर्पकी जैसी दशाकी हो; वैसेही रामचंद्रजीने रावणकी अवस्थाकीथी ॥ ४२ ॥ महासमर्थ रामचंद्रजीसे हार खाय वह उठकर राजा घरपर गया; और सिंहासनपर बैठे राक्षसोंसे कहने लगा ॥ ४३ ॥ हे राक्षसगण! ब्रह्माजीने पहलेही यह स्थिर कर दिया है कि मनुष्यके हाथसे हमारी मृत्यु होगी। मेरा वधकर सके ऐसा कोई मनुष्य पृथ्वीपर नहीं है ॥ ४४ ॥ इसकारण साक्षात् नारायण मनुष्य हुए हैं; इसमें कोई संशय नहीं। परमेश्वरही दशरथका पुत्र होकर मेरे मारनेको यहां आया है ॥ ४५ ॥ हे राक्षस वीरगण! अनरण्यने पहले मुझे शाप दिया है कि " मेरे (अनरण्यके) वंशमें सनातन परमात्मा अवतार लेंगे ॥ ४६ ॥ तिनके हाथसे पुत्र, पौत्र बांधवादि सबके साथ तू (रावण) मारा जायगा, " इतना कहकर अनरण्य स्वर्गको चले गये ॥ ४७ ॥ वही यह राम मेरे मारनेके लिये उत्पन्न हुआ है इसकारण यह मेरा वध करैगा । मूढस्वभाव कुंभकर्ण तौ सदा सोताही रहता है ॥ ४८ ॥ उस महाबलवान्को जगायकर मेरेपास ले आओ । रावणके ऐसा कहनेपर बड़े शरीरवाले राक्षसगण शीघ्रतासे जाय बड़े यत्नसे ॥ ४९ ॥ कुंभकर्णको जगाय रावणकेपास ले आये । वह राजाको प्रणाम करकै आसनपर बैठगया ॥ ५० ॥

पाषाणैःपादपैश्चैवपर्वताग्रैश्चवानराः ॥ युद्धायाभिमुखाभूत्वाययुःसर्वेयुयुत्सवः ॥ ४१ ॥ रावणोविव्यथेरामबाणैर्विद्धोमहासुरः ॥ मातं
गइवसिंहेनगरुडेनेवपन्नगः ॥ ४२ ॥ अभिभूतोऽगमद्राजाराघवेणमहात्मना ॥ सिंहासनेसमाविश्यराक्षसानिदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ मानुषेणै
वमेमृत्युमाहपूर्वंपितामहः ॥ मानुषोहिनमांहंतुंशक्तोऽस्तिभुविकश्चन ॥ ४४ ॥ ततोनारायणःसाक्षान्मानुषोऽभून्नसंशयः ॥ रामो
दाशरथिर्भूत्वामांहंतुंसमुपस्थितः ॥ ४५ ॥ अनरण्येनयत्पूर्वंशप्तोऽहंराक्षसेश्वराः ॥ उत्पत्स्यतेचमद्वंशेपरमात्मासनातनः ॥ ४६ ॥
तेनत्वंपुत्रपौत्रैश्चबांधवैश्चसमन्वितः ॥ हनिष्यसेनसंदेहइत्युक्त्वामांदिवंगतः ॥ ४७ ॥ सएवरामःसंजातोमदर्थेमांहनिष्यति ॥ कुंभकर्ण
स्तुमूढात्मासदानिद्रावशंगतः ॥ ४८ ॥ तंविबोध्यमहासत्वमानयंतुममांतिकम् ॥ इत्युक्तास्तेमहाकायास्तूर्णंगत्वातुयत्नतः ॥ ४९ ॥
विबोध्यकुंभश्रवणंनिन्यूरावणसन्निधिम् ॥ नमस्कृत्यसराजानमासनोपरिसंस्थितः ॥ ५० ॥

तब राजा रावण अपने भ्राताते दीनवाणी कहने लगा। "भइया! कुंभकर्ण! बड़ाही संकट आन पड़ा है; सो उसको तुम सुनो! ॥ ५१ ॥ हमारे शूर पुत्र, पौत्र, बांधवोंको रामचंद्रने मारडाला। ऐसा जानपड़ता है कि मेरा मृत्युसमय निकट आगया इस समय मैं क्या करूं? ॥ ५२ ॥ यह पराक्रमी दशरथका पुत्र रामचंद्र सुग्रीवके साथ बड़ी सेना ले समुद्रके पार होकर यहाँ आया और हमारी सेनाको काट रहा है ॥ ५३ ॥ युद्धमें मुख्य २ राक्षसोंको वानरोंने मारडाला; परन्तु इस युद्धमें कदापि वानरोंका क्षय दिखाई नहीं देता ॥ ५४ ॥ हे महाबलवान्! उनका नाशकर, जिसके लिये तुमको जगाया गया है; हे महाबलवान्! भ्राताके लिये यह कठिन होने योग्य कार्य सिद्धकर" ॥ ५५ ॥ रावणके यह

तमाहरावणोराजाभ्रातरंदीनयागिरा ॥ कुंभकर्णनिबोधत्वंमहत्कष्टमुपस्थितम् ॥ ५१ ॥ रामेणनिहताःशूराःपुत्राःपौत्राश्चबांधवाः ॥ किं
कर्त्तव्यमिदानींमेमृत्युकालउपस्थित ॥ ५२ ॥ एषदाशरथीरामःसुग्रीवसहितोबली ॥ समुद्रंसबलस्तीर्त्वामूलंनःपरिकृंतति ॥ ५३ ॥
येराक्षसामुख्यतमास्तेहतावानरैर्युधि ॥ वानराणांक्षयंयुद्धेनपश्यामिकदाचन ॥ ५४ ॥ नाशयस्वमहाबाहोयदर्थंपरिबोधितः ॥ भ्रातुर
र्थेमहासत्वकुरुकर्मसुदुष्करम् ॥ ५५ ॥ श्रुत्वातद्रावणेंद्रस्यवचनंपरिदेवितम् ॥ कुंभकर्णोजहासोच्चैर्वचनंचेदमब्रवीत् ॥ ५६ ॥ पुरामंत्र
विचारेतेगदितंयन्मयानृप ॥ तदद्यत्वामुपगतंफलंपापस्यकर्मणः ॥ ५७ ॥ पूर्वमेवमयाप्रोक्तोरामोनारायणःपरः ॥ सीताचयोगमायेति
बोधितोऽपिनबुध्यसे ॥ ५८ ॥ एकदाहंवनेसानौविशालायांस्थितोनिशि ॥ दृष्टोमयामुनिःसाक्षान्नारदोदिव्यदर्शनः ॥ ५९ ॥ तमब्रुवंम
हाभागकुतोगंतासिमेवद ॥ इत्युक्तोनारदःप्राहदेवानांमंत्रणेस्थितः ॥ ६० ॥

आरत वचन सुन कुंभकर्ण ठठायकर हँसा और रावणसे बोला ॥ ५६ ॥ हे राजन्! पहले एकान्तमें मंत्रणा होनेके समय जो मैंने तुमसे कहाथा, उसही पापकर्मका फल आज तुमको प्राप्त हुआ! ॥ ५७ ॥ तिस समय मैंने तुमसे कहाथा कि-राम, परमात्मा नारायण हैं, व सीताजी योगमाया हैं, कितनाही उपदेश किया परन्तु तुम नहीं समझे! ॥ ५८ ॥ एक अवसरमें हेमन्त रजनीमें वनके बीच पर्वतके शिखरपर मैं बैठाथा; इतनेहीमें साक्षात् नारदजी मुनि मुझको दिखाई दिये; उनका दर्शन पाना सर्व स्थानमें अलभ्य लाभ समझा जाता है ॥ ५९ ॥ मैंने उनसे कहा "हे

---

१ "विशालरजनी" शब्दका अर्थ-"हेमन्तरजनी" है। टीकाकार कहता है कि, 'विशाल' का अर्थ-'विशाल शिला' समझना चाहिये; अर्थात् "विशाल शिलाकेऊपर"।

महाज्ञानवंत ! आप कहाँसे आतेहो सो कहिये,– ” मेरा यह प्रश्न सुनकर नारदजी बोले;– देवताओंका कुछ गुप्तविचार हो रहाथा वहाँपर मैं इतनी देरतक बैठाथा और अब वहींसे आरहा हूं ॥ ६० ॥ वहाँपर जो वृत्तान्त हुआ वह मैं यथार्थ२ तुझसे कहताहूं सुन,– तू और तेरे भ्राता रावणने देवताओंको बहुत त्रास दिया है; इसकारण वे विष्णुजीके पास गये ॥ ६१ ॥ उनके अंतःकरण भक्ति होनेसे नित्य विष्णुजीमें लगे हुए हैं। देवताओंने उन समर्थ देवाधिदेवकी स्तुति करकै प्रार्थना करीकि “हे देव ! यह रावण त्रिलोकीका शत्रु उत्पन्न हुआ है; उसके आगे किसीकी कुछ नहीं चलती, आप उसका वध कीजिये ॥ ६२ ॥ ब्रह्माजीने पहलेही ऐसा संकेत कर रक्खा है कि मनुष्यके हाथसे उसकी मृत्यु होगी; इसकारण आप मनुष्यअवतार धारण करकै रावण नाम शत्रुका वध कीजिये ” ॥ ६३ ॥ महाविष्णुजीने ‘अच्छा’ कहा है, उन प्रभुका संकल्प भी अन्यथा नहीं हो सकता और उन्हीं देवताने रघुकुलमें रामनामसे अवतार लिया है ॥ ६४ ॥ वह तुम्हारा सबका नाश करैंगे । इतना कहकर मुनिजी स्वर्गको चले गये । हे रावण ! निश्चय समझो कि श्रीरामचंद्रजी सनातन ब्रह्म हैं ॥ ६५ ॥ उनसे वैर भाव छोड़ देव उनकी भक्तिकर उन्होंने माया करकै मनुष्यरूप धारण किया है; भक्तिभावसे सेवा करनेवालेपर रामचंद्रजी प्रसन्न होते हैं ॥ ६६ ॥ भक्ति ज्ञान उत्पन्न करते व मोक्ष देते हैं, भक्तिहीन प्राणीका सब कुछ करना निष्फल होता है ॥ ६७ ॥ विष्णुजीके अनेक अवतार होगये हैं,–

तत्रोत्पन्नमुदंतंतेवक्ष्यामिशृणुतत्त्वतः ॥ युवाभ्यांपीडितादेवाःसर्वेविष्णुमुपागताः ॥६१॥ ऊचुस्तदेवेदेवेशंस्तुत्वाभक्त्यासमाहिताः ॥
जहिरावणमक्षोभ्यंदेवत्रैलोक्यकंटकम् ॥ ६२ ॥ मानुषेणमृतिस्तस्यकल्पिताब्रह्मणापुरा ॥ अतस्त्वंमानुषोभूत्वाजहिरावणकंटकम् ॥
॥ ६३ ॥ तथेत्याहमहाविष्णुःसत्यसंकल्पईश्वरः ॥ जातोरघुकुलेदेवोरामइत्यभिविश्रुतः ॥ ६४ ॥ सहनिष्यतिवःसर्वानित्युक्त्वाप्र
ययौमुनिः ॥ अतोजानीहिरामंत्वंपरंब्रह्मसनातनम् ॥ ६५ ॥ त्यजवैरंभजस्वाद्यमायामानुषविग्रहम्॥ भजतोभक्तिभावेनप्रसीदतिरघूत्त
मः ॥ ६६ ॥ भक्तिर्जनित्रीज्ञानस्यभक्तिर्मोक्षप्रदायिनी ॥ भक्तिहीनेनयत्किंचित्कृतंसर्वमसत्समम् ॥ ६७ ॥ अवताराःसुबहवोविष्णो
र्लीलानुकारिणः ॥ तेषांसहस्रसदृशोरामोज्ञानमयःशिवः ॥ ६८ ॥

वह जो स्वरूप धारण करते हैं, उसकेही अनुरूप लीला करते हैं। ऐसे सहस्र अवतारोंके समान (साधारण अवतारोंसे सहस्रगुण बड़ा) यह एक रामावतार ज्ञानरूप व कल्याणकारक है ॥ ६८ ॥ जो बुद्धिमान् पुरुष मन, वचन, कायसे नित्य रामजीका भजन करते हैं, वे अनायास संसारके पार हो हरिपदको प्राप्त होजाते हैं ॥ ६९ ॥ पृथ्वीपर जो शुद्ध मनके पुरुष नित्य रामचंद्रजीका ध्यान करते व उनके चरित्रोंको पढ़ते हैं, वे साधु हैं। यह काल एक महासर्प है, उस सर्पका शरीर संसार है;—यह सर्व लोक इस सर्पकी कुंडलीमें फँसे हुए हैं;—परन्तु साधुलोग इन फन्दोंसे सदा छूटे हुए हैं; उनको सीतापतिके अनंत सुखरूपी पदकी प्राप्ति निःसंदेह होगी ॥ ७० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे

रामंभजंतिनिपुणामनसावचसानिशम् ॥ अनायासेनसंसारंतीर्त्वायांतिहरेःपदम् ॥६९॥ येराममेवसततंभुविशुद्धसत्त्वाध्यायंतितस्यचरितानिपठंतिसंतः ॥मुक्तास्तएवभवभोगमहाहिपाशैःसीतापतेःपदमनंतसुखंप्रयांति ॥ ७० ॥ ॥इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेसप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ कुंभकर्णवचःश्रुत्वाभ्रुकुटीविकटाननः ॥ दशग्रीवोजगादेदमासनादुत्पतन्निव ॥ १ ॥ त्वमानीतोनमेज्ञानबोधनायसुबुद्धिमान् ॥ मयाकृतंसमीकृत्ययुद्धयस्वयदिरोचते ॥ २ ॥ नोचेद्गच्छसुषुप्त्यर्थंनिद्रात्वांबाधतेधुना ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाकुंभकर्णोमहाबलः ॥ ३ ॥ रुष्टोऽयमितिविज्ञायतूर्णंयुद्धायनिर्ययौ ॥ सलंघयित्वाप्राकारंमहापर्वतसन्निभः ॥ ४ ॥

युद्धकांडे भाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ कुंभकर्णका माराजाना ॥ महादेवजी बोले—हे पार्वति! कुंभकर्णके वचन सुनतेही मानो क्रोधसे रावण आसनसे उछलपड़ा, भौंहें चढ़गईं; मुख उग्र होगया, रावण यह बोला ॥ १ ॥ "जानता हूं कि तुम बड़े बुद्धिमान् हो, परन्तु ज्ञानका उपदेश लेनेके लिये मैंने तुमको नहीं बुलाया है, जो कुछ मैंने कहा है; उसको सहन करकै यदि रुचि होवै तो जाय कर युद्ध करो ॥ २ ॥ नहीं तो आनंदसे अपने घरपर जाकर सोवो; (समझता हूं) इससमय तुम नींदसे कातर हो रहेहो!"। रावणके वचन सुनकर महाबलवान् कुंभकर्ण जानगया कि "यह रूठ गये" इस समय अधिक उपदेश देना उचित नहीं। इसकारण बहुत शीघ्र युद्धके लिये निकला। उसका

निर्ययौनगरात्तूर्णंभीषयन्हरिसैनिकान् ॥ सननादमहानादंसमुद्रमभिनादयन् ॥ ५ ॥ वानरान्कालयामासबाहुभ्यांभक्षयन्रुषा ॥ कुंभकर्णंतदादृष्ट्वासपक्षमिवपर्वतम् ॥ ६ ॥ दुद्रुवुर्वानराःसर्वेकालांतकमिवाखिलाः ॥ भ्रमंतंहरिवाहिन्यांमुद्गरेणमहाबलम् ॥ ७ ॥ कालयंतंहरीन्वेगाद्भक्षयंतंसमंततः ॥ चूर्णयंतंमुद्गरेणपाणिपादैरनेकधा ॥ ८ ॥ कुंभकर्णंतदादृष्ट्वागदापाणिर्विभीषणः ॥ ननामचरणौतस्यभ्रातुर्ज्येष्ठस्यबुद्धिमान् ॥ ९ ॥ विभीषणोऽहंभ्रातुर्मेदयांकुरुमहामते ॥ रावणस्तुमयाभ्रातर्बहुधापरिबोधितः ॥ १० ॥ सीतांदेहीतिरामायरामःसाक्षाज्जनार्दनः ॥ नशृणोतिचमांहंतुंखड्गमुद्यम्यचोक्तवान् ॥ ११ ॥ धिक्त्वांगच्छेतिमांहत्वापदापापिभिरावृतः ॥ चतुर्भिर्मंत्रिभिःसार्धंरामंशरणमागतः ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वाकुंभकर्णोऽपिज्ञात्वाभ्रातरमागतम् ॥ समालिंग्यचवत्सत्वंजीवरामपदाश्रयः॥१३॥

शरीर प्रचंड पर्वतके समान था। वह नगरके कोटको उलांघ ॥ ४ ॥ वानरोंको घबड़ाता हुआ शीघ्र नगरके बाहर आया। उसने वहाँ बड़ा घोर गर्जन कियाकि जिस्से समुद्रमें शब्द होने लगा ॥ ५ ॥ मारे क्रोधके दोनों हाथोंसे वानरोंको खायकर उनको पीड़ा देने लगा; जिसप्रकार समस्त प्राणी काल अथवा यमको देखकर भागते हैं; वैसेही पंखदार पर्वतके समान उस कुंभकर्णको देखकर तिससमय समस्त वानर भागने लगे, हाथमें मुद्गर लेकर कुंभकर्ण वानरोंकी सेनामें घूमने लगा ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ घूमनेके झपट्टेमें कितने एक वानर पृथ्वीपर गिरगये। आसपासके वानरोंको हाथोंसे पकड़ मुख मसलडाला, कितनोंहीको मुद्गरोंके प्रहारसे चूर्ण किया; कितनोंहीको अनेक प्रकारसे लात मूके मारकर तोड़ने लगा ॥ ८ ॥ यह देख कर गदा हाथमें लिये हुए बुद्धिमान् विभीषणजीनें अपने बड़े भ्राता उस कुंभकर्णके चरणोंमें प्रणाम करकै कहा ॥ ९ ॥ हे भ्रातः! मैं विभीषण आपका भ्राता वंदन करता हूं। आप बहुत ज्ञानवान् हैं; मुझपर दया कीजिये। रावणको मैंने अनेक प्रकारसे समझाया ॥ १० ॥ कि-सीता रामचंद्रजीको देदो; रामचंद्रजी साक्षात् सर्ववंद्य परमेश्वर हैं। परन्तु उसने मेरा एक कहा न सुना, वरन् मेरे मारनेको खड्ग उठायकर कहा ॥ ११ ॥ कि "तुझको धिक्कार है! यहाँसे निकलजा! भ्रातः! दुष्ट पापी मंत्रियोंसे युक्त रावणने मेरे लात मारी! इस कारण मैं अपने चारों मंत्रियोंको साथ लेकर रामचंद्रजीकी शरणमें आया" ॥ १२ ॥ यह वचन सुनकर कुंभकर्णने समझा कि भइया निकट

खड़ाहै (मारे क्रोधके अबतक नहीं पहँचानाथा) तब उसने विभीषणको हृदयसे लगायकर कहा । "वत्स ! बहुत अच्छा हुआ कि तैंने रामचंद्रजीके चरणोंका आश्रय लिया, तुम बहुत कालतक जीवित रहो ॥१३॥ इस्से राक्षसोंके कुलकी रक्षा व हित होगा; तुम महाभगवद्भक्तहो, ऐसा मैंने नारदजीके मुखसे सुनाहै ॥ १४॥ हेतात ! इस समय मैं किसी अपने विरानेको देखता या पहँचानता नहींहूं, मारे मदके मेरे नेत्र धूंदले हो रहेहैं; कदाचित् भूलसे तेरेही प्रहार लगजाय !" ॥ १५ ॥ कुंभकर्णके ऐसा कहकनेसे विभीषणके मुखपर आंसू बहने लगे वह भ्राताके चरणोंकी वंदना करकै रामचंद्रजीके निकट आये और चिंतायुक्त होकर खड़े रहे ॥१६॥ इधर कुम्भकर्ण हाथ पांवसे वानरोंका चूरा करता हुआ सेनामें फिरने लगा ।

कुलसंरक्षणार्थायराक्षसानांहितायच ॥ महाभागवतोऽसित्वंपुरामेनारदाच्छुतम् ॥ १४ ॥ गच्छतातममेदानींदृश्यतेनचकिंचन ॥ मदीयोवापरोवापिमदमत्तविलोचनः ॥ १५ ॥ इत्युक्तोऽश्रुमुखोभ्रातुश्चरणावभिवंद्यसः ॥ रामपार्श्वमुपागत्यचिंतापरउपस्थितः ॥ १६ ॥ कुंभकर्णोऽपिहस्ताभ्यांपादाभ्यांपेषयन्हरीन् ॥ चचारवानरींसेनांकालयन्गंधहस्तिवत् ॥ १७ ॥ दृष्ट्वातंराघवःक्रुद्धोवायव्यंशस्त्रमादरात् ॥ चिक्षेपकुंभकर्णायतेनचिच्छेदरक्षसः ॥ १८ ॥ समुद्गरंदक्षहस्तंतेनघोरंननादसः ॥ सहस्तःपतितोभूमावनेकानर्दयन्कपीन् ॥१९ ॥ पर्यंतमाश्रिताःसर्वेवानराभयवेपिताः ॥ रामराक्षसयोर्युद्धंपश्यंतःपर्यवस्थिताः ॥ २० ॥

गंधहस्तीके मदकी गंध आनेसे जैसे हाथी दूर भाग जाते हैं, वैसेही कुंभकर्णको देखतेही मारे भयके वानरोंकी सेना भागने लगी ॥ १७ ॥ कुंभकर्णको देखकर श्रीरामचंद्रजीको क्रोध आया; उन्होंने सावधानतासे एक शस्त्रपर वायव्यास्त्रकी स्थापनाकी । फिर वह कुंभकर्णपर चलाया; तिसके लगनेसे मुद्गरसहित उस राक्षसका दहिना हाथ कटपड़ा, हाथके टूटनेसे कुंभकर्ण भयंकर गर्जा; उस हाथने पृथ्वीपर गिरते २ अनेक वानरोंको मसलडाला ॥ १८ ॥ १९ ॥ कुछ एक धूर्त वानर कुंभकर्णके शरीरके धोरे खड़े हुएथे (हाथ पसारकर कुंभकर्ण जैसेही उनको पकड़ना चाहते तब वे वानर छिटककर उसके पंजेसे चूक उसकी बगलके निकट खड़ेहो रहते; और जैसे २ कुंभकर्ण फिरता वैसेही वैसे उसकी बगलके नीचेको

---

१ जिसके गंधकी वास आनेसे दूसरे हाथी भाग जाते हैं उस हाथीको "गंधगज" कहते हैं । उसके समान ।

फिरते उनका यह धूर्तपन कुंभकर्णने नहीं जाना) परन्तु अब हाथ टूटनेपर वे सब भयके मारे थर २ कांपने लगे; और एकटक होकर राक्षस और रामचंद्रजीका युद्ध खड़ेहो देखने लगे ॥ २० ॥ एक हाथ कट जानेपर कुंभकर्ण दूसरे हाथसे वृक्ष उठाय युद्धमें रामजीको मारनेके लिये अति वेगसे उनके सन्मुख धाया ॥ २१ ॥ परन्तु रामचंद्रजीने ऐन्द्रास्त्र चलायकर वृक्षसहित उसकी बाँई भुजाभी काटडाली. दोनों हाथ टूटनेपरभी वह गर्जता हुआ सामनेको चला आताहै ऐसा देखकर रामचंद्रजीने ॥ २२ ॥ तीक्ष्ण और अर्द्धचन्द्राकार दो बाण लिये; और उससे कुंभकर्णके दोनों पांव काट डाले; वह पांव "सों सों" शब्द करतेहुए लंकाके द्वारपर जायकर गिरे ॥२३॥ दोनों हाथ व दोनों पांव कट जानेसे वह अतिभयं कर कुंभकर्ण

कुंभकर्णश्छिन्नहस्तःशालमुद्यम्यवेगतः ॥ समरेराघवंहंतुंदुद्रावतमथोच्छिनत् ॥ २१ ॥ शालेनसहितंवामहस्तमैंद्रेणराघवः ॥ छिन्न
वाहुमथायांतनर्दंतंवीक्ष्यराघवः ॥ २२ ॥ द्वावर्धचंद्रौनिशितावादायास्यपदद्वयम् ॥ चिच्छेदपतितौपादौलंकाद्वारिमहास्वनौ ॥ २३ ॥
निकृत्तपाणिपादोऽपिकुंभकर्णोऽतिभीषणः ॥ वडवामुखवद्वक्रंव्यादायरघुनंदनम् ॥ २४ ॥ अभिदुद्रावनिनदन्राहुश्चंद्रमसंयथा ॥
अपूरयत्सिताग्रैश्चसायकैस्तद्रघूत्तमः ॥ २५ ॥ शरपूरितवक्रोऽसौचुक्रोशातिभयंकरः ॥ अथसूर्यप्रतीकाशमैंद्रंशरमनुत्तमम् ॥२६॥
वज्राशनिसमंरामश्चिक्षेपासुरमृत्यवे ॥ सतत्पर्वतसंकाशंस्फुरत्कुंडलदंष्ट्रकम् ॥ २७ ॥ चकर्तरक्षोधिपतेःशिरोवृत्रमिवाशनिः ॥ तच्छि
रःपतितंलंकाद्वारिकायोमहोदधौ ॥ २८ ॥ शिरोऽस्य रोधयद्वारंकायोनक्राद्यचूर्णयत् ॥ ततोदेवाःसऋषयोगंधर्वाःपन्नगाःखगाः ॥२९॥

जैसे राहु चंद्रपर दौडताहै ऐसे वड़वामुखके[1] समान अपना मुख फैलाय गर्जता हुआ श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाया । रामचंद्रजीने तीक्ष्ण नोंकके बाण मारकर उसका मुख भरदिया ॥ २४ ॥ २५ ॥ बाणोंके द्वारा मुख भरजानेसे वह अति भयंकर दैत्य चिल्लाने लगा; फिर रामजीने सूर्यके समान तेजस्वी एक अत्युत्तम बाण ले उसपर ऐन्द्रास्त्रकी स्थापनाकी और इन्द्रके वज्रके समान अथवा विजयके समान वह बाण दैत्यके मारनेके लिये उसपर चलाया; जैसे वज्र चलायकर इन्द्रजीने वृत्रासुरका वध कियाथा तैसेही तिस बाणने उस राक्षस वीरका मस्तक काटकर धड़से अलग किया; वह मस्तक पर्वतके समान प्रचंडथा; उसमें कुंडल व डाढ़ें चमक रहीथीं, कुंभकर्णका शरीर लंकाके द्वारपर गिरा और धड़ महासागरमें पड़ा ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ उसके मस्त

---

[1] समुद्रमें औरस चौरसका शतयोजनका विस्तारवाला वड़वाग्निका कुंडहै उसको "वड़वामुख" कहते हैं, तैसा ।

कने द्वारको बंद कर लिया, और धड़ने समुद्रके नाकेआदि प्राणियोंको चूरा कर डाला। कुंभकर्णके मारे जानेपर ऋषियोंके सहित देवता, गंधर्व, सर्प, पक्षी, ॥ २९ ॥ सिद्ध, यक्ष, गुह्यक और अप्सरादि सबहीको आनंद हुआ; यह सब रामचंद्रजीपर फूलोंकी वर्षा करके उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥ तिस अवसरमें देवर्षि नारदजी रामजीके दर्शन करनेको आकाशसे शीघ्रतापूर्वक नीचे उतर आये। उनकी अंग कांतिके जिधर तिधर फैलनेसे दशों दिशा प्रकाशमान दिखाईदेने लगीं ॥ ३१ ॥ रामजीका शरीर नीले कमलके समान श्यामवर्ण है, मूर्ति अति सुन्दर, हाथमें धनुष धारण किये हुए, नेत्र रक्तवर्ण और विशाल, दूसरे हाथमें इन्द्रास्त्र लिये हुए हैं ॥ ३२ ॥ ऐसे वह प्रभु, बाणोंके प्रहारसे विह्वल होकर पड़े हुए वानरोंकी ओर दयादृष्टिसे देख रहेथे। उस मूर्तिको देखकर नारदजीके अंतरमें भक्ति उछली। उन्होंने गद्गदवाणीसे श्रीरामजीकी स्तुति करना प्रारंभ किया ॥ ३३ ॥ नारदजी बोले;– " हे देवाधिदेव ! आप सर्व जगत्के स्वामी सनातन परमात्माहो, जिसको नारायण कहते हैं व सब जगत्के आधार और सर्व विश्वके साक्षी आपही हैं, आपको नमस्कार हो ॥ ३४ ॥ अतिनिर्मल ज्ञानही वास्तवमें तुम्हारा रूप है ऐसा होनेपरभी आप माया करके मनुष्यका अवतार ले (मुझकोभी साधारण प्राणियोंके समान सुख दुःख भोगने पड़ते हैं) ऐसा दिखाते हो। परन्तु यह केवल आपकी सब लोकोंको ठगनेकी युक्ति है ॥ ३५ ॥ आप सर्वके हृदयमें रहते हैं। परन्तु मायासे ढके रहनेके कारण किसीको दिखाई नहीं दो; आपका स्वरूप स्वयंप्रकाश है। जिनके अंतःकरण शुद्ध होते हैं, उनको स्पष्ट आपका दर्शन मिलता है ॥ ३६ ॥ हे राम ! आप नेत्र उघाड़नेसे त्रिलोकीको उत्पन्न करते हैं; तैसेही आप

सिद्धायक्षागुह्यकाश्चअप्सरोभिश्चराघवम् ॥ ईडिरेकुसुमासारैर्वर्षंतश्चाभिनंदिताः ॥ ३० ॥ आजगामतदारामंद्रष्टुंदेवमुनीश्वरः ॥ नारदोगगनात्तूर्णंस्वभासाभासयन्दिशः ॥ ३१ ॥ राममिंदीवरश्याममुदारांगंधनुर्धरम् ॥ ईषत्ताम्रविशालाक्षमैंद्रास्त्रांचितबाहुकम् ॥ ३२ ॥ दयार्द्रदृष्ट्यापश्यंतंवानरांञ्छरपीडितान् ॥ दृष्ट्वागद्गदयावाचाभक्त्यास्तोतुंप्रचक्रमे ॥३३॥ नारदउवाच ॥ देवदेवजगन्नाथपरमात्मन्सनातन ॥ नारायणाखिलाधारविश्वसाक्षिन्नमोऽस्तुते ॥ ३४ ॥ विशुद्धज्ञानरूपोऽपित्वंलोकानतिवंचयन् ॥ माययामनुजाकारःसुखदुःखादिमानिव ॥ ३५ ॥ त्वंमाययागूह्यमानःसर्वेषांहृदिसंस्थितः ॥ स्वयंज्योतिःस्वभावस्त्वंव्यक्तएवामलात्मनाम् ॥३६॥ उन्मीलयन्सृजस्येतन्नेत्रेरामजगत्त्रयम् ॥ उपसंह्रियतेसर्वंत्वयाचक्षुर्निमीलनात् ॥ ३७ ॥

नेत्र मूंदकर विश्वका लय करते हैं (तुम्हारे नेत्रोंका खुलना मूंद जानाही जगत्की उत्पत्ति और लयका कारण है)॥ ३७॥ जिसके आधारसे यह सब जगत् भासता है, जिससे विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति, और लय होती है; और जिस्से अधिक लोकमें कोई नहीं है, सो वह ब्रह्म आपही हैं; आपको नमस्कार होवो ॥ ३८॥ मुनिश्रेष्ठगण जिसको प्रकृति, पुरुष, काल, व्यक्त स्वरूप पंच भूतादि, और अव्यक्त स्वरूप ब्रह्म[1] कहकर विचारते हैं, तुम वही रामचंद्रजी हो; आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ कितने एक स्थानोंमें वेदोंने कहा है कि—आपका स्वरूप विकाररहित व शुद्ध ज्ञान है और उन्होंने [वेदोंने] कहीं २ यह कहा है कि-आप सब जगत्के आकार हो ॥ ४० ॥ तिसमें प्रथम शुद्ध और विकाररहित रूप बताया; और फिर यह कहा कि जगत्रूप है। जगत् स्वयं विकारसे भराहै इस कारण ईश्वरभी विकारी ठहरा; इसपर वेदवादियोंका परस्पर विरोध दिखलाई देता है; विना तुम्हारी कृपा हुए लोग अज्ञानीही रहते हैं । उनसे वेदवचनोंका यथार्थ (परस्पर) विरुद्ध न होनेवाला अर्थ नहीं जानाजाता ॥ ४१ ॥ हे देव! जब तुम मायाकी सहायतासे लीला करते हो, तब फिर कुछ विरोध नहीं रहता; "तुम निराकार और साकारहो" इन दो श्रुतियोंसे विरोध हो रहाथा परन्तु तुम्हारे प्रसादसे निश्चय होता है कि-तुम मायाके आश्रयमें साकार और वास्तवमें निराकारहो; इसलिये अब कुछ विरोध नहीं रहा । जिस प्रकार भ्रमसे सूर्यकी किरणें जलके समान मालूम पड़ती हैं अर्थात् जैसे मरीचिकामें जलका भ्रम होता है ॥ ४२ ॥ उस भ्रमज्ञान होनेपर वह पानी नहीं, सूर्यकी किरणें हैं, ऐसा ज्ञान होना कठिन है। एक वस्तुमें दूसरी वस्तुके ज्ञान होनेको " भ्रान्तिज्ञान " कहते हैं। जैसे सीपीमें चां

यस्मिन्सर्वमिदंभातियतश्चैतच्चराचरम् ॥ यस्मान्नकिंचिल्लोकेऽस्मिंस्तस्मैतेब्रह्मणेनमः ॥ ३८ ॥ प्रकृतिंपुरुषंकालंव्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणम् ॥ यंजानंतिमुनिश्रेष्ठास्तस्मैरामायतेनमः ॥ ३९ ॥ विकाररहितंशुद्धंज्ञानरूपंश्रुतिर्जगौ ॥ त्वांसर्वजगदाकारमूर्तिंचाप्याहसाश्रुतिः ॥ ४० ॥ विरोधोदृश्यतेदेववैदिकोवेदवादिनाम् ॥ निश्चयंनाधिगच्छंतित्वत्प्रसादंविनाबुधाः॥४१॥ माययाक्रीडतोदेवनविरोधोमनागपि रश्मिजालंरवेर्यद्वदृश्यतेजलवद्भ्रमात् ॥ ४२ ॥ भ्रांतिज्ञानात्तथारामत्वयिसर्वंप्रकल्प्यते ॥ मनसोविषयोदेवरूपंतेनिर्गुणंपरम् ॥ ४३ ॥

---

[1] " प्रकृति, पुरुष और व्यक्तस्वरूपकाल (निमेषादि) और अव्यक्तस्वरूपकाल (क्षणादि) टीकाकार इस अर्थको मानता है।

दीका ज्ञान होता है। इस ज्ञानको 'भ्रान्तिज्ञान' कहते हैं। इस 'भ्रान्तिज्ञान' के होनेपर आपमें जगत्का रूप कल्पित हुआ है; परन्तु आपका स्वरूप और परम है। वह श्रवण, मनन, निदिध्यास; आदिसे सत्कार पाये हुए मनसे जाना जाता है;। क्योंकि श्रुतिमें भी कहा है कि "दृश्यते परया बुद्धया" उत्तम बुद्धिसे जाना जाता है।महाराज! जब आपका निर्गुण स्वरूप नहीं जाना जाय तो उसकी सेवा कैसे की जाय? इस प्रकार विचारकर निर्गुण रूपको न जाननेसे उस रूपका विचार किये विना आपके जो अवतार रूप हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ उनका बुद्धिमान् निपुण पुरुष सेवन करते हैं; और फिर वही ज्ञानसंपन्न होकर संसारसमुद्रके पार हो जाते हैं। भक्तिमार्गमें काम, क्रोधादि अनेक शत्रु हैं ॥ ४५ ॥ जैसे बिल्ली चूहेको डराती है तैसेही शत्रु बराबर अंतःकरणको डराते रहते हैं। तुम्हारा स्मरण करनेवाले भक्तोंके अंतःकरणमें आपका रूप नित्य प्रगट रहता है ॥ ४६ ॥ हे

कथंदृश्यंभवेद्देवदृश्याभावेभजेत्कथम् ॥ अतस्तवावतारेषुरूपाणिनिपुणाभुवि ॥ ४४ ॥ भजंतिबुद्धिसंपन्नास्तरंत्येवभवार्णवम् ॥ कामक्रोधादयस्तत्रबहवःपरिपंथिनः ॥ ४५ ॥ भीषयंतिसदाचेतोमार्जारामूषकंयथा ॥ त्वन्नामस्मरतानित्यंत्वद्रूपमपिमानसे ॥४६॥ त्वत्पूजानिरतानांतेकथामृतपरात्मनाम् ॥ त्वद्भक्तसंगिनांरामसंसारोगोष्पदायते ॥ ४७ ॥ अतस्तेसगुणंरूपंध्यात्वाहंसर्वदाहृदि ॥ मुक्तश्चरामिलोकेषुपूज्योऽहंसर्वदैवतैः ॥ ४८ ॥ रामत्वयामहत्कार्यंकृतंदेवहितेच्छया ॥ कुंभकर्णवधेनाद्यभूभारोऽयंगतःप्रभो ॥ ४९ ॥

राम! वास्तवमें यह संसार समुद्रके समान विस्तारवाला है तौ परन्तु जो लोग आपकी पूजा करनेमें तत्पर हैं; आपके कथारूपी अमृत पीनेमें चित्तकी वृत्तिको लगाते हैं; और तुम्हारे भक्तोंका संग करते हैं; उनको वह (संसारसमुद्र) गायके खुरका जो पृथ्वीमें गढ़ा पड़ता है; और उसमें जो पानी भर जाता है,— उसके समान अल्प मालूम होने लगता है ॥४७॥ हे देव! इस कारण मैं आपके सगुण रूपका सदा हृदयमें ध्यान करके त्रिलोकीमें फिराताहूं; आपके ध्यानके प्रभावसे मैं संसारके तापोंसे छुटा हुआहूं; व इसीलिये सब देवता मुझको पूज्य मानते हैं ॥ ४८ ॥ हे राम! आपने देवताओंके हितके लिये बड़ा भारी कार्य किया है; हे महाराज! कुंभकर्णका संहार किया तिस्से आज भूमिके ऊपरसे भयका नाश हुआ॥ ४९॥

कल लड़ाईमें लक्ष्मणजी इन्द्रजीतको मारेंगे, और परसोंके दिन आप रावणका संहार करेंगे ॥५० ॥ मैं सिद्ध पुरुषोंके साथ आकाशमें रहकर यह सब चरित्र देखताहूं;हे देव! मेरे ऊपर दया करो अब मैं स्वर्गको जाताहूं ॥५१॥ (गान चाल,भैरव ताल इकताला वावाउल भजनकी चालपर,ताल इकताला)

"बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम परम मधुर नाम। गोविन्द गोविन्द केशव केशव गोपाल गोपाल माधव माधव॥
हरि हरि हरि वंशीधर श्याम नारायण वासुदेव। नंदनंदन जगवन्दन वृन्दावन चारु चंद्र गरे गुंजदाम ॥
हरीचंद जनरंजन शरन सुखद मधुरमूर्ति, सीतापति पूर्णकरन सतत भक्तकाम ॥ "

त्रिकालज्ञानी नारदजी इतना कहकर व रामचंद्रजीका समाचार लेकर पापरहित ब्रह्मलोकको चलेगये । जातेहुए मार्गमें देवताओंनें उनकी

श्वोहनिष्यतिसौमित्रिरिंद्रजेतारमाहवे ॥ हनिष्यसेऽथरामत्वंपरश्वोदशकंधरम् ॥५०॥ पश्यामिसर्वंदेवेशासिद्धैःसहनभोगतः ॥ अनुगृह्णीष्वमांदेवगमिष्यामिसुरालयम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वाराममामंत्र्यनारदोभगवानृषिः ॥ ययौदेवैःपूज्यमानोब्रह्मलोकमकल्मषम् ॥ ५२ ॥ भ्रातरंनिहतंश्रुत्वाकुंभकर्णमहाबलम् ॥ रावणःशोकसंतप्तोरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥५३॥ मूर्च्छितःपतितोभूमावुत्थायविललापह ॥ पितृव्यंनिहतंश्रुत्वापितरंचातिविह्वलम्॥ ५४॥ इंद्रजित्प्राहशोकार्तंत्यजशोकंमहामते ॥ मयिजीवतिराजेंद्रमेघनादेमहाबले ॥ ५५ ॥ दुःखस्यावसरःकुत्रदेवांतकमहामते ॥ व्येतुतेदुःखमखिलंस्वस्थोभवमहीपते ॥ ५६ ॥

पूजा की ॥ ५२ ॥ रावणको समाचार मिला कि महाबलवान् भ्राता कुंभकर्णको महापराक्रमी रामचंद्रजीने मारडाला, इसकारण तुरत शोकमें तत्परहो मूर्च्छा खायकर रावण पृथ्वीपर गिरपड़ा; थोड़ी देरमें चैतन्यता आनेपर उठकर विलाप करने लगा। इन्द्रजितभी अपने चचा कुंभकर्णका माराजाना सुनकर और यह जानकर कि इसीसे हमारे पिता व्याकुल हो रहेहैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ यह समझ इन्द्रजित पितासे जायकर बोला;–" हे महामते! किस कारणसे शोक करतेहो? हेराजेन्द्र! मुझ बलवान् मेघनादके जीते हुए ॥ ५५ ॥ आपको दुःख करनेका काम क्याहै? हे बुद्धिमान्! आपने देवताओंसे वैर बांधकर उनको जर्जर कर दिया; फिर मनुष्यसे आप क्या भय खाते हैं? हे पृथ्वीनाथ ! आपके

सब दुःख दूर होंगे, आप सावधान रहैं॥ ५६ ॥ मैं शत्रुके मुख्य २ वीरोंका संहारकरकै उनके व अपने दुःख और बलको बराबर कर दूंगा । अब मैं निकुंभिला (विवर) में जाय अग्निको प्रसन्न किये लेताहूं ॥ ५७ ॥ व उस्से रथादि सामग्री लूंगा जिस्से शत्रु मुझको नहीं जीत सकैंगे ।" इतना कहकर शीघ्र इन्द्रजित ऊपर कहे हुए होमस्थलमें गया ॥ ५८ ॥ निकुंभिला स्थानमें जाय पहुँचने पर उसने लालफूल व लालवस्त्र अपने अंगपर धारण किये; लाल चंदन लगाय मौन व्रत धारण करकै हवन करना आरंभ किया ॥ ५९ ॥ इस बातको विभीषणजीने जानकर उस दुष्टके आरंभ किये होमका सारावृत्तान्त श्रीरामचंद्रजीसे कहा ॥ ६० ॥ "हेराम ! मेघनादकी बुद्धि अत्यन्त दुष्ट है, जो इसका आरंभ किया यह

सर्वंसमीकरिष्यामिहनिष्यामिचवैरिपून् ॥ गत्वानिकुंभिलांसद्यस्तर्पयित्वाहुताशनम्॥५७॥लब्ध्वारथादिकंतस्मादजेयोऽहंभवाम्यरेः ॥
इत्युक्त्वात्वरितंगत्वानिर्दिष्टंहवनस्थलम् ॥ ५८ ॥ रक्तमाल्यांवरधरोरक्तगंधानुलेपनः ॥ निकुंभिलास्थलेमौनीहवनायोपचक्रमे ॥
॥ ५९ ॥ विभीषणोऽथतच्छ्रुत्वामेघनादस्यचेष्टितम् ॥ प्राहरामायसकलंहोमारंभंदुरात्मनः ॥ ६० ॥ समाप्यतेचेद्धोमोऽयंमेघनाद
स्यदुर्मतेः ॥ तदाऽजेयोभवेद्रामेघनादःसुरासुरैः ॥ ६१ ॥ अतःशीघ्रंलक्ष्मणेनघातयिष्यामिरावणिम् ॥ आज्ञापयमयासा
र्धंलक्ष्मणंवलिनांवरम् ॥ हनिष्यतिनसंदेहोमेघनादंतवानुजः ॥ ६२ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अहमेवागमिष्यामिहंतुमिंद्रजितंरिपुम् ॥ आ
ग्नेयेनमहास्त्रेणसर्वराक्षसघातिना ॥ ६३ ॥ विभीषणोऽपितंप्राहनासावन्यैर्निहन्यते ॥ यस्तुद्वादशवर्षाणिनिद्राहारविवर्जितः ॥ ६४ ॥
तेनैवमृत्युर्निर्दिष्टोब्रह्मणास्यदुरात्मनः ॥ लक्ष्मणस्तुअयोध्यायानिर्गम्यायात्त्वयासह ॥ ६५ ॥

होम निर्विघ्नतासे पूरा होगया तौ मेघनादको देवता या दैत्य भी नहीं जीत सकते ॥ ६१ ॥ इसकारण मैं शीघ्रजायकर लक्ष्मणजीसे रावणके पुत्र का वध कराताहूं । हे बलवान् श्रेष्ठ ! लक्ष्मणजीको मेरे साथ जानेकी आज्ञा दीजिये । इसमें कोई संदेह नहीं कि आपके छोटेभ्राता लक्ष्मणजी मेघनादका वध करैंगे" ॥ ६२ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले,– " इन्द्रजितके मारनेको मैं जाऊंगा; मेरे पास अग्निका दिया हुआ प्रचंड आग्नेयास्त्रहै; यह सर्व राक्षसोंका नाश करनेको समर्थ है; तिससे मैं शत्रुका वध करूंगा ॥ ६३ ॥ विभीषणने उनसे कहा; "हेराम! इसका वध दूसरेके हाथसे नहीं होगा । जिस पुरुषने बारहवर्षतक नींद व आहारको छोड़ दिया हो ॥ ६४ ॥ उसके हाथसे इस दुष्टका वध होगा, ऐसा ब्रह्माजीने

निर्माणकिया है, केवल लक्ष्मणजीमें ही यह गुण दिखाई देतेहैं । जबसे वह आपके साथ अयोध्यासे आये ॥ ६५ ॥ हे राजाधिराज ! रघुवीर ! तबसे उन्होंने निद्राका नाम नहीं जानाहै । अर्थात् त्याग दियाहै । इस त्यागका कारण आपकी सेवाके सिवाय दूसरा कुछभी नहीं है । यह सब मैं जानता हूं ॥ ६६ ॥ इसकारण हे देवाधिदेव ! लक्ष्मणजीको शीघ्र मेरे साथ जानेकी आज्ञा दीजिये । वह निःसंदेह इन्द्रजितको मारैंगे; वह साक्षात् पृथ्वीको मस्तकपर धारण करनेवाले शेषजी हैं ॥ ६७ ॥ हेराम! आप चौदह भुवनके स्वामी साक्षात् नारायण हैं; व लक्ष्मणजी शेष हैं; आप दोनों जगद्रूपी नाटकके सूत्रधार होकर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतार ले आये हो ” ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे भाषाटीकायामष्टमः सर्गः ॥८॥

रुद्रजी बोले कि—हे पार्वति! विभीषणके वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजीने कहा“ विभीषण ! उस भयंकर राक्षसके सारे कपटोंको मैं जानताहूं ॥ १ ॥ वह महापराक्रमी शूर कपटी होकर ब्रह्मास्त्रका उपक्रमोपसंहार (ब्रह्मास्त्र चलाना और फिर उसको अपने पास बुलालेना) जानताहै । लक्ष्मणजीका स्वरूप व उनकी कीहुई सेवाकोभी मैं जानताहूं ॥ २ ॥ मैं बराबर जानताहूं कि लक्ष्मणजीने आहार, नींदका त्याग कर दियाहै, यह जानकरभी होनहार कार्य इन्द्रजितके वधकी कठिनाई विचारकर तबसे चुप बैठाहूं, मैंने इस कठोर व्रतका इन्हें निषेध नहीं किया ” (विभीषणसे) यह वचन कह ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ ३ ॥ “ हे लक्ष्मण! बड़ी सेनाको साथ लेजाओ और रावणके पुत्रका

तदादिनिद्राहारादीन्नजानातिरघूत्तम ॥ सेवार्थंतवराजेंद्रज्ञातंसर्वमिदंमया ॥ ६६ ॥ तदाज्ञापयदेवेशलक्ष्मणंत्वरयामया ॥ हनिष्यतिनसंदेहःशेषःसाक्षाद्धराधरः ॥६७॥ त्वमेवसाक्षाज्जगतामधीशोनारायणोलक्ष्मणएवशेषः ॥ युवांधराभारनिवारणार्थंजातौजगन्नाटकसूत्रधारौ ॥ ६८ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकाण्डेऽष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥ ॥ विभीषणवचःश्रुत्वारामोवाक्यमथाब्रवीत् ॥ जानामितस्यरौद्रस्यमायांकृत्स्नांविभीषण ॥ १ ॥ सहिब्रह्मास्त्रविच्छूरोमायावीचमहाबलः ॥ जानामिलक्ष्मणस्यापिस्वरूपंममसेवनम् ॥ २ ॥ ज्ञात्वैवासमहंतूष्णींभविष्यत्कार्यगौरवात् ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंप्राहरामोज्ञानवतांवरः ॥३ ॥ गच्छलक्ष्मणसैन्येनमहताजहिरावणिम् ॥ हनूमत्प्रमुखैःसर्वैर्यूथपैःसहलक्ष्मण ॥ ४ ॥

वध करो हेलक्ष्मण! हनुमानादि सर्व सैनापतियोंको साथ लेलो ॥ ४ ॥ रीछोंका राजा जांबवानभी अपनी सैनाके सहित तुम्हारे साथ जायगा । विभीषणजी मंत्रियोंको साथ लेकर तुम्हारे साथ जाँयगे ॥ ५ ॥ क्योंकि यह (विभीषण) वनकी गुफाओं और निकुंभिलाको जानते हैं। " रामचंद्रजीकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणजीने माथे चढ़ाली; और विभीषणभी निकटहीथे ॥ ६ ॥ लक्ष्मणजीका पराक्रम बड़ा तेज था; उन्होंने हाथमें बड़ाभारी दूसरा धनुष लिया । व रामचंद्रजीके चरणकमलोंका स्पर्श (वंदन, कर) प्रसन्न होकर बोले ॥ ७ ॥ आज मेरे धनुषसे छूटेहुए बाण इन्द्रजितके शरीरको भेदकर भोगावती (पातालगंगा)के जलमें स्नान करनेको पातालमें जांयगे ॥८॥ वह लक्ष्मणजी इतना कह रामचंद्रजीकी प्रदक्षिणाकर इन्द्रजित्के मारनेको अतिशीघ्रतासे चरण धरतेहुए चले ॥ ९ ॥ पीछे २ हनुमान्जी अनेकसहस्रवानर साथ लेकर चले । विभीषणजीभी मंत्रियोंके साथ तुरंत चले ॥ १० ॥ जाम्बवानादि रीछभी लक्ष्मणजीके पीछे २ गये । लक्ष्मणजी वानरोंके साथ निकुंभिला नामक स्थानपर जाय पहुँचे ॥ ११ ॥ उन्होंने दूरसे वहाँपर राक्षसोंकी सैनाका बहुत समूह देखा (तब) महाविक्रमकारी लक्ष्मणजी धनुष उठायकर सावधान होरहे ॥ १२ ॥ उनके साथही साथ वीरअंगद जाम्बवानभी तैयार हुए; उससमय राक्षसोंके राजा विभीषणने लक्ष्मणजीसे कहा; "हे लक्ष्मण! इन राक्षसोंको देखो ॥ १३ ॥ यह जो बादलोंके समान काली राक्षसोंकी सैना दिखाई देतीहै इस भारी

जांबवानृक्षराजोऽयंसहसैन्येनसंवृतः ॥ विभीषणश्चसचिवैःसहत्वामभियास्यति ॥ ५ ॥ अभिज्ञस्तस्यदेशस्यजानातिविवराणिसः ॥
रामस्यवचनंश्रुत्वालक्ष्मणःसविभीषणः ॥ ६ ॥ जग्राहकार्मुकंश्रेष्ठमन्यद्भीमपराक्रमः ॥ रामपादांबुजंस्पृश्यहृष्टःसौमित्रिरब्रवीत् ॥ ७ ॥
अद्यमत्कार्मुकान्मुक्ताःशरानिर्भिद्यरावणिम् ॥ गमिष्यंतिहिपातलंस्नातुंभोगावतीजले ॥८॥ एवमुक्त्वाससौमित्रिःपरिक्रम्यप्रणम्यतम् ॥
इंद्रजिन्निधनाकांक्षीययौत्वरितविक्रमः ॥ ९ ॥ वानरैर्बहुसाहस्रैर्हनूमान्पृष्ठतोऽन्वगात् ॥ विभीषणश्चसहितोमंत्रिभिस्त्वरितंययौ ॥ १० ॥
जांबवत्प्रमुखाऋक्षाःसौमित्रिंत्वरयाऽन्वगुः ॥ गत्वानिकुंभिलादेशंलक्ष्मणोवानरैःसह ॥ ११ ॥ अपश्यद्बलसंघातंदूराद्राक्षससंकुलम् ॥
धनुरायम्यसौमित्रिर्यत्तोऽभूद्भूरिविक्रमः ॥ १२ ॥ अंगदेनचवीरेणजांबवान्राक्षसाधिपः ॥ तदाविभीषणःप्राहसौमित्रिंपश्यराक्षसान् ॥१३॥
यदेतद्राक्षसानीकंमेघश्यामंविलोक्यते ॥ अस्यानीकस्यमहतोभेदनेयत्नवान्भव ॥ १४ ॥

राक्षसोंकी सैनाको विदीर्ण करनेका यत्न कीजिये ॥ १४ ॥ कारण कि इस सैनाके मरतेही इन्द्रजित् दिखाईदेगा जब तक उसका कार्य पूरा नहीं हो तबतक तुम जायकर उसके साथ युद्ध करो ॥ १५ ॥ उस दुष्टका मारनाही परमधर्म है । हे वीर ! तुम उसका वध करो ! ” तिन शुभलक्षणसंपन्न लक्ष्मणजीने विभीषणक वचन सुनकर ॥ १६ ॥ राक्षसपति रावणके पुत्रपर बाणोंकी वर्षा की । वानर सेनापति, पाषाण, पर्वतोंके शिखर, व वृक्षोंको चलाय २ कर ॥ १७ ॥ चारों ओरसे दैत्योंपर प्रहार करनेलगे; राक्षसोंनेभी वानरसेनापतियों पंर और वानरोंकी सैनापर कुल्हाड़ी, तीक्षणबाण, तोमरादि शस्त्रोंकी मार लगाई. तब अत्यन्त कुलाहल होने लगा और उन वानर व राक्षसोंका

राक्षसेंद्रसुतोऽप्यस्मिन्भिन्नेदृश्योभविष्यति ॥ अभिद्रवाशुयावद्वैनैतत्कर्मसमाप्यते ॥ १५ ॥ जहिवीरदुरात्मानंहिंसापरमधार्मिकम् ॥
विभीषणवचःश्रुत्वालक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ १६ ॥ ववर्षशरवर्षाणिराक्षसेंद्रसुतंप्रति ॥ पाषाणैःपर्वताग्रैश्चवृक्षैश्चहरियूथपाः ॥ १७ ॥
निर्जघ्नुःसर्वतोदैत्यांस्तेऽपिवानरयूथपान् ॥ परश्वधैःशितैर्बाणैरसिभिर्यष्टितोमरैः ॥ १८ ॥ निर्जघ्नुर्वानरानीकंतदाशब्दोमहानभूत् ॥
ससंप्रहारस्तुमुलःसंजज्ञेहरिरक्षसाम् ॥ १९ ॥ इंद्रजित्स्वबलंसर्वमर्द्यमानंविलोक्यसः ॥ निकुंभिलांचहोमंचत्यक्त्वाशीघ्रंविनिर्गतः ॥
॥ २० ॥ रथमारुह्यसधनुःक्रोधेनमहताऽऽगतम् ॥ समाह्वयित्वासौमित्रिंयुद्धायरणमूर्धनि ॥ २१ ॥ सौमित्रेमेघनादोऽहंमयाजीवन्नमोक्ष्य
से ॥ तत्रदृष्ट्वापितृव्यंसप्राहनिष्ठुरभाषणम् ॥२२॥ इहैवजातःसंवृद्धःसाक्षाद्भ्रातापितुर्मम ॥ यस्त्वंस्वजनमुत्सृज्यपरभृत्यत्वमागतः ॥ २३ ॥

तुमुल युद्ध हुआ ॥ १८ ॥ १९ ॥ अपनी सेनाको अतिशय मारखातेहुए देखकर इन्द्रजित् शीघ्रही निकुंभिला और होमको छोड़कर बाहर आया ॥ २० ॥ वह बड़े भारी क्रोधसे धनुष हाथमें ले रथमें बैठकर रणभूमिमें आया; और लक्ष्मणजीको युद्धके लिये बुलाताहुआ बोला; ॥ २१ ॥ “ हे लक्ष्मण ! मैं मेघनाद हूं ! अब तू मेरे निकटसे जीताहुआ नहीं बचैगा । ” इतनेहीमें इन्द्रजित्की दृष्टि अपने चाचा (विभीषण)पर गई, इन्द्रजितने उनसे निठुर वचन कहे ॥ २२ ॥ “ अरे ! तुम मेरे पिताके सहोदर भ्राता हो । तुम लंकामेंही जन्मे और यहीं इतने बड़ेहुए । परन्तु इससमय अपने हितकारी सगे भलोंको छोड़कर शत्रुओंका दासपन करते हो; तुमको धिक्कार है ! ॥ २३ ॥

मैं तुम्हारे पुत्रके समान हूं, तौभी तुम मुझसे कैसे द्वेष करते हो? वास्तवमें तुम 'अत्यन्त अधम' व "नीच मन" हो।" इसप्रकार विभीषणसे कह इन्द्रजितने अपनी दृष्टि हनुमान्‌जीकी पीठपर बैठेहुए लक्ष्मणजीपर डाली ॥ २४ ॥ वह (इन्द्रजित्) जिस विशाल रथमें बैठाथा; तिसमें अनेक शस्त्र व खड्ग तैयार रक्खीहुईथीं; उसने एक लंबा लचकदार (साढ़ेसात बेतका) धनुष उठाय उसपर भयंकर टंकार करके कहा ॥ २५ ॥ 'हे वानरो! आज हमारे बाण तुम्हारे प्राणोंको पियेंगे!' इधर शत्रुका नाश करनेमें तैयार लक्ष्मणजीने शीघ्र एक बाण ले ॥ २६ ॥ राक्षसेश्वर पर छोड़ा; मारे क्रोधके लक्ष्मणजी सर्पके समान फुंकार माररहेथे; इन्द्रजित्‌ने लाल २ नेत्रकर लक्ष्मणजीको देखा ॥ २७ ॥ लक्ष्मणजीके छोड़ेहुए इन्द्रके वज्रके समान तीक्ष्ण बाणके अंगमें लगनेपर इन्द्रजित् क्षणभर मूर्छितरहा, परन्तु शीघ्र चैतन्यताको प्राप्त हो ॥ २८ ॥ अपने सन्मुख वीर दशरथजीके पुत्र (लक्ष्मणजी) को देखताहुआ। वह राक्षस क्रोधसे लाल २ नेत्रकर लक्ष्मणजीके सन्मुख दौड़ा ॥ २९ ॥ और धनुषपर बाण चढ़ाय लक्ष्मणजीसे कहने लगा "जो पहले कभी युद्धमें मेरा पराक्रम न देखा होय तौ ॥ ३० ॥ आज तुझे दिखाताहूं; खड़ा रह"। ऐसा कहकर इन्द्रजित्‌ने लक्ष्मणजीके सात बाण मारे ॥ ३१ ॥ और दस तीखी धारके उत्तम बाण हनुमान्‌जीके मारे उस वीर्यवान्‌ने शत बाण धनुषपर चढ़ाय ॥ ३२ ॥ दूना क्रोधकर विभीषणजीको भेद डाला; लक्ष्मणजीनेभी इसीभाँति शत्रुके ऊपर बाणोंकी वर्षा की ॥ ३३ ॥

कथंद्रुह्यसिपुत्रायपापीयानसिदुर्मतिः ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंदृष्ट्वाहनूमत्पृष्ठतःस्थितम् ॥ २४ ॥ उद्यदायुधनिस्त्रिंशेरथेमहतिसंस्थितः ॥
महाप्रमाणमुद्यम्यघोरंविस्फारयन्धनुः ॥ २५ ॥ अद्यवोमामकाबाणाःप्राणान्पास्यंतिवानराः ॥ ततःशरंदाशरथिःसंधायामित्रकर्शनः ॥
॥ २६ ॥ ससर्जराक्षसेंद्रायक्रुद्धःसर्पइवश्वसन् ॥ इंद्रजिद्रक्तनयनोलक्ष्मणंसमुदैक्षत ॥ २७ ॥ शक्राशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहतःशरैः ॥
मुहूर्तमभवन्मूढःपुनःप्रत्याहृतेंद्रियः ॥ २८ ॥ ददर्शावस्थितंवीरंवीरोदशरथात्मजम् ॥ सोऽभिचक्रामसौमित्रिंक्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २९ ॥
शरान्धनुषिसंधायलक्ष्मणंचेदमब्रवीत् ॥ यदितेप्रथमेयुद्धेनदृष्टोमेपराक्रमः ॥ ३० ॥ अद्यत्वांदर्शयिष्यामितिष्ठेदानींव्यवस्थितः ॥
इत्युक्त्वासप्तभिर्बाणैरभिविव्याधलक्ष्मणम् ॥ ३१ ॥ दशभिश्चहनूमंतंतीक्ष्णधारैःशरोत्तमैः ॥ ततःशरशतेनैवसंप्रयुक्तेनवीर्यवान् ॥ ३२ ॥
क्रोधाद्द्विगुणसंरब्धोनिर्बिभेदविभीषणम् ॥ लक्ष्मणोपितथाशत्रुंशरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३३ ॥

इन्द्रजित्का सुवर्णके समान तेजपुंज कवच, बाण लगनेसे टुकडे २ हो रथपर गिरपड़ा, और वहाँपर फिर ,बाण लगनेसे तिल २ हो पृथ्वीपर गिरा ॥ ३४ ॥ तब रावणके पुत्रने अतिक्रोध करकै युद्धमें महापराक्रमी शूर लक्ष्मणजीके हज़ार बाण मारे ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणजीकाभी दिव्यकवच टूटकर पृथ्वीपर गिरा, वे दोनों परस्पर एक दूसरेके कार्यका प्रतिकार करने लगे ॥ ३६ ॥ दोनोंही मारे श्रमके वारंवार श्वास लेते हुए । दोनोंके शरीर विंध गयेथे और लोलुहान होगयेथे । फिर घोरयुद्ध होने लगा ॥ ३७ ॥ दोनोंही महापराक्रमी व शूर थे; उन्होंने बहुत देर तक तीक्ष्ण बाणोंको चलाय २ परस्पर युद्ध किया; परन्तु किसीको जय अथवा पराजय नहीं मिली ॥ ३८ ॥ इतनेमेंही वीर लक्ष्मणजीने पाँच

तस्यबाणैःसुसंविद्धंकवचंकांचनप्रभम् ॥ व्यशीर्यतरथोपस्थेतिलशःपतितंभुवि ॥ ३४ ॥ ततःशरसहस्रेणसंक्रुद्धोरावणात्मजः ॥ विभे
दसमरेवीरंलक्ष्मणंभीमविक्रमम् ॥ ३५ ॥ व्यशीर्यतापतद्दिव्यंकवचंलक्ष्मणस्यच ॥ कृतप्रतिकृतान्योऽन्यंबभूवतुरभिद्रुतौ ॥ ३६ ॥
अभीक्ष्णंनिःश्वसंतौतौयुद्धचेतांतुमुलंपुनः ॥ शरसंवृतसर्वांगौसर्वतोरुधिरोक्षितौ ॥ ३७ ॥ सुदीर्घकालंतौवीरावन्योन्यंनिशितैःशरैः ॥
अयुध्यतांमहासत्त्वौजयाजयविवर्जितौ ॥ ३८ ॥ एतस्मिन्नंतरेवीरोलक्ष्मणःपंचभिःशरैः ॥ रावणेःसारथिंसाश्वंरथंचसमचूर्णयत् ॥ ३९ ॥
चिच्छेदकार्मुकंतस्यदर्शयन्हस्तलाघवम् ॥ सोऽन्यत्तुकार्मुकंभद्रंसज्यंचक्रेत्वरान्वितः ॥ ४० ॥ तच्चापमपिचिच्छेदलक्ष्मणस्त्रिभिराशु
गैः ॥ तमेवच्छिन्नधन्वानंविव्याधानेकसायकैः ॥ ४१ ॥ पुनरन्यत्समादायकार्मुकंभीमविक्रमः ॥ इंद्रजिल्लक्ष्मणंबाणैःशितैरादित्यस
न्निभैः ॥ ४२ ॥ विभेदवानरान्सर्वान्बाणैरापूरयन्दिशः ॥ ततऐंद्रंसमादायलक्ष्मणोरावणिंप्रति ॥ ४३ ॥

बाण मारकर रावणके पुत्र मेघनादके सारथीको मारडाला, घोड़ोंके सहित रथका चूरा किया ॥ ३९ ॥ और हाथकी कौशल दिखानेको मेघनादका धनुषभी काट डाला । इन्द्रजित्ने झटपट दूसरा उत्तम धनुष लेकर चढ़ालिया ॥ ४० ॥ लक्ष्मणजीने तीन बाण मारकर उस उत्तम धनुषकोभी काट डाला । और टूट गया है धनुष जिसका ऐसे उस शत्रुपर अनेक बाण छोड़े ॥ ४१ ॥ फिर तीक्ष्ण पराक्रमी इन्द्रजित्ने दूसरा धनुप लेकर लक्ष्मणजीके सूर्यके समान चमकतेहुए तीक्ष्ण बाण मारे । और सर्व दिशाओंको बाणोंसे भरदिया; व सब वानरोंको वींध

डाला; तब लक्ष्मणजीने एक बाणपर ऐन्द्रास्त्रकी स्थापना की; वह बाण उठाय इन्द्रजित्पर क्रोधकर ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ धनुषपर चढ़ाया; बड़े कठोर दृढ़ धनुषको कानतक खैंच वीर लक्ष्मणजी रामचंद्रजीके चरणकमलका स्मरण करके बोलेः– ॥ ४४ ॥ "यदि दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी परम धार्मिक, सत्यवचन कहनेवाले, और त्रिलोकीमें उनके आगे खड़ा होनेवाला कोई शत्रु नहीं है,तौ हे बाण! तू इस रावणके पुत्रका वधकर" ॥४५॥ वीर लक्ष्मणजीने ऐसी शपथ करके उस सरल जानेवाले बाणको कानतक खेंच समरमें इन्द्रजित्के ऊपर छोड़ा ॥ ४६ ॥ तिस बाणने इन्द्रजित्का तेजपुंज मस्तक धड़से अलगकर पृथ्वीपर गिराया! उस शिरपर मुकुट था; व कानोंमें कुंडल चमकतेथे ॥ ४७ ॥ तिस समय देवताओंको परमानंद प्राप्त हुआ, वे रामचंद्रजीकी कीर्तिका वर्णन करने लगे। स्वर्गसे फूलोंकी वर्षा हुई; देवताओंने रामचंद्रजीकी स्तुति की ॥ ४८ ॥ देवता व महर्षियोंके साथ इन्द्रजी हर्षित हुए आकाशसे देवताओंके नगाडे बजनेका शब्द सुनाई आने लगा ॥ ४९ ॥ आकाश निर्मल हुआ। रावणके पुत्रको मृतक हुआ देखकर पृथ्वी स्थिर होगई; देवताओंने लक्ष्मणजीकी जयजयकार की ॥ ५० ॥ फिर जब लक्ष्मणजीकी थकावट उतरी तब उन्होंने शंख बजाय सिंहके समान गर्जना की धनुषपर टंकार दी ॥ ५१ ॥ टंकारको सुनकर वानर हर्षित हुए; व उनका भ्रम दूर होगया; वानर वीरोंके अंतःकरण सावधान हुए उन्होंने लक्ष्मणजीकी स्तुति की ॥ ५२ ॥ लक्ष्मणजीका मनभी प्रसन्न हुआ; वह

संधायाकृष्यकर्णांतंकार्मुकंनिष्ठुरंदृढम् ॥ उवाचलक्ष्मणोवीरःस्मरन्रामपदांबुजम् ॥ ४४ ॥ धर्मात्मासत्यसंधश्चरामोदाशरथिर्यदि ॥
त्रिलोक्यामप्रतिद्वंद्वस्तदेनंजहिरावणिम्॥४५॥इत्युक्त्वाबाणमाकर्णाद्विकृष्यतमजिह्मगम्॥ लक्ष्मणःसमरेवीरःससर्जेंद्रजितंप्रति ॥४६॥
सशरःसशिरस्त्राणंश्रीमज्ज्वलितकुंडलम् ॥ प्रमथ्येंद्रजितःकायात्पातयामासभूतले ॥ ४७ ॥ ततःप्रमुदितादेवाःकीर्तयंतोरघूत्तमम् ॥
ववर्षुःपुष्पवर्षाणिस्तुवंतश्चमुहुर्मुहुः ॥ ४८ ॥ जहर्षशक्रोभगवान्सहदेवैर्महर्षिभिः ॥ आकाशेऽपिचदेवानांशुश्रुवेदुंदुभिस्वनः ॥ ४९ ॥
विमलंगगनंचासीत्स्थिराभूद्विश्वधारिणी ॥ निहतंरावणिंदृष्ट्वाजयजल्पसमन्वितः ॥५०॥ गतश्रमःससौमित्रिःशंखमापूरयद्रणे॥ सिंहनादं
ततःकृत्वाज्याशब्दमकरोद्विभुः ॥ ५१ ॥ तेननादेनसंहृष्टावानराश्चगतश्रमाः ॥ वानरेंद्रैश्चसहितःस्तुवद्भिर्हृष्टमानसैः ॥५२॥ लक्ष्मणः
परितुष्टात्मादद्दर्शाभ्येत्यराघवम् ॥ हनूमद्राक्षसाभ्यांचसहितोविनयान्वितः ॥ ५३ ॥

वानरोंको साथ लेकर लौट आये, उन्होंने हनुमान् और विभीषण दोनोंके साथ जायकर नम्रतासे रामजीका दर्शन किया ॥ ५३ ॥ लक्ष्मणजी अपने बड़े भ्राता श्रीरामचंद्रजीको साक्षात् सर्वव्यापी नारायण जानतेथे। लक्ष्मणजीने रामजीका वंदनकर उनसे कहा,– "हे रघुवीर! मैंने आज आपकी कृपासे रणमें रावणके पुत्र (इन्द्रजित्) का वध किया।" ॥ ५४ ॥ लक्ष्मणजीके मुखसे निकलेहुए इन वचनोंको सुनतेही रामचंद्रजीको आनंदहुआ, उन्होंने प्रेमपूर्वक लक्ष्मणजीको हृदयसे लगाय मस्तक सूंघ स्नेह सहित कहा ॥ ५५ ॥ "लक्ष्मण! धन्यहै! तुमने आज बड़ाभारी कार्य किया मुझे बहुत संतोष हुआ। हे शत्रुदमन! मेघनादके मरनेसे हमने सब कुछ जीत लिया ॥ ५६ ॥ तीन

ववंदेभ्रातरंरामंज्येष्ठंनारायणंविभुम् ॥ त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठहतोरावणिराहवे ॥ ५४ ॥ श्रुत्वातल्लक्ष्मणाद्वक्त्यातमालिंग्यरघूत्तमः ॥ मूर्ध्न्यवघ्रायमुदितःसस्नेहमिदमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ साधुलक्ष्मणतुष्टोऽस्मिकर्मतेदुष्करंकृतम् ॥ मेघनादस्यनिधनेजितंसर्वमरिंदम ॥ ५६ ॥ अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरःकथंचिद्विनिपातितः ॥ निःसपत्नःकृतोऽस्म्यद्यनिर्यास्यतिहिरावणः ॥ ५७ ॥ पुत्रशोकान्मयायोद्धुंतंहनिष्यामि रावणम् ॥ मेघनादंहतंश्रुत्वालक्ष्मणेनमहाबलम् ॥५८॥ रावणःपतितोभूमौमूर्च्छितःपुनरुत्थितः ॥ विललापातिदीनात्मापुत्रशोकेनरावणः ॥ ५९ ॥ पुत्रस्यगुणकर्माणिसंस्मरन्पर्यदेवयत् ॥ अद्यदेवगणाःसर्वेलोकपालामहर्षयः ॥ ६० ॥

दिन तीन राततक संग्राम करकै वह मरा! वास्तवमें वह बड़ा शूर था; मैं समझताहूं कि आज तुमने मेरे सर्व शत्रुओंका नाश किया। रावण पुत्रशोकसे शोकित होकर मेरे साथ युद्ध करनेको आवैगा; बस मैं रावणका संहार करूंगा" महाबलवान् लक्ष्मणजीके हाथसे मेघनादका माराजाना सुन्तेही ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ रावण मूर्च्छ खायकर पृथ्वीपर गिरा; फिर कुछ वेलामें चैतन्य होकर विलाप करनेलगा। पुत्रशोकही तौ है! उसको जान पड़ा कि आज मैं निराधार होगया ॥ ५९ ॥ पुत्रके गुण ग्राम और कार्य याद करकै शोकको प्रकाश करता हुआ, आज सारे

---

१ आठवें सर्गके पचासवें श्लोकमें नारदजीका यह कहनाकि "कल लड़ाईमें लक्ष्मणजी इन्द्रजित्को मारेंगे" शीघ्रता सूचित करता है। यहाँ कलका अर्थ दूसरे दिनका नहीं लगाया "युद्धमें सब राक्षसोंका नाश करके ही" टीकाकार इस अर्थको मानताहै।

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

देवगण, लोकपाल, व महान् २ ऋषि ॥ ६० ॥ यह जानकर कि इन्द्रजित् मारागया निर्भयहो सुखसे सोवैंगे।" इस प्रकार रावण अनेक भाँतिसे विलाप करनेलगा। पुत्र मेघनादसे रावण बड़ी प्रीति करताथा ॥ ६१ ॥ फिर महा क्रोधित हो (शत्रुओंका) नाश करनेकी इच्छासे सब राक्षसोंको युद्धमें जानेके लिये कहा ॥ ६२ ॥ वह वीर रावण, पुत्रके वधसे अत्यन्त संतापित और क्रोधके वश हो बुद्धिसे कर्तव्य समझकर सीताजीके मारनेको दौड़ागया ॥ ६३ ॥ सीताजी राक्षसियोंके समूहके बीचमें बैठीथीं रावणको क्रोधसहित हाथमें खड्ग लिये हुए आता देखकर वह डरीं और शोकाकुल हुईं ॥ ६४ ॥ इस अवसरमें रावणका एक सुपार्श्वनामक मंत्री जो कि मनका निर्मल बड़ा बुद्धिमान् और विचारवान् था; वहाँपर आया, उसने रावणसे कहा ॥ ६५ ॥ "हे दशवदन! यह क्या? तुम प्रत्यक्ष कुबेरके छोटे भ्राता, वेदविद्यामें निष्णात—(चतुर) व्रत करनेमें निपुण; व अपने कर्मोंका आचरण करनेमें तत्पर हो ॥ ६६ ॥ ऐसे अनेक गुण तुममें हैं। फिर स्त्रीका वध करनेमें तुम्हारी इच्छा कैसे होती है? हम लोगोंके साथ आप रणमें राम लक्ष्मणको मारकर शीघ्रही जानकीको प्राप्तहोंगे।" मंत्रीके यह कहनेपर रावण फिरा ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त दुरात्मा रावण; बंधुके कहे उत्तमधर्मयुत वचन मानलेताहुआ; और शोकसे मूढ़बुद्धिहो शीघ्रतासे घरको चला गया। वहाँसे फिर बंधु बांधवोंके साथ संग्राममें गया ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्ध० भा० नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

हतमिंद्रजितंज्ञात्वासुखंस्वप्स्यंतिनिर्भयाः ॥ इत्यादिबहुशःपुत्रलालसोविललापह ॥ ६१ ॥ ततःपरमसंक्रुद्धोरावणोराक्षसाधिपः ॥
उवाचराक्षसान्सर्वान्निनाशयिषुराहवे ॥ ६२ ॥ सपुत्रवधसंतप्तःशूरःक्रोधवशंगतः ॥ संवीक्ष्यरावणोबुद्ध्याहंतुंसीतांप्रदुद्रुवे ॥ ६३ ॥
खड्गपाणिमथायांतंक्रुद्धंदृष्ट्वादशाननम् ॥ राक्षसीमध्यगासीताभयशोकाकुलाभवत् ॥ ६४ ॥ एतस्मिन्नंतरेतस्यसचिवोबुद्धिमाञ्छुचिः ॥
सुपार्श्वोनाममेधावीरावणंवाक्यमब्रवीत् ॥ ६५ ॥ ननुनामदशग्रीवसाक्षाद्वैश्रवणानुजः ॥ वेदविद्याव्रतस्नातःस्वकर्मपरिनिष्ठितः ॥ ६६ ॥
अनेकगुणसंपन्नःकथंस्त्रीवधमिच्छसि ॥ अस्माभिःसहितोयुद्धेहत्वारामंचलक्ष्मणम् ॥ प्राप्स्यसेजानकींशीघ्रमित्युक्तःसन्न्यवर्तत ॥ ६७ ॥
ततोदुरात्मासुहृदानिवेदितंवचःसुधर्म्यंप्रतिगृह्यरावणः ॥ गृहंजगामाशुशुचाविमूढधीःपुनःसभांचप्रययौसुहृद्वृतः ॥ ६८ ॥ इतिश्रीमद्ध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेनवमःसर्गः ॥ ९ ॥

रावणका शुक्रमत ग्रहणकरना ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं–कि हे पार्वति! फिर रावण राक्षस मंत्रियोंके साथ विचार करकै रणमें बचे बचाये राक्षसोंको साथ ले रामचंद्रजीके साथ युद्ध करनेको चला ॥ १ ॥ जिसप्रकार पतंगा बहुतसे पतंगोंको साथले जलती हुई आगमें प्रवेश करताहै वैसेही रावणका यह जाना हुआ। फिर श्रीरामचंद्रजीने युद्धमें उन सर्वराक्षसोंका संहार किया ॥ २ ॥ और स्वयं रावण रामचंद्रजीके तीखे बाणसे छातीमें वघा खाय पीड़ितहो शीघ्र लंकामें प्रवेश करताहुआ ॥ ३ ॥ वारंवार रामचंद्रजी व हनुमान्‌जीका अलौकिक पराक्रम देखकर रावण शीघ्र शुक्राचार्यके पास गया ॥ ४ ॥ रावणने शुक्राचार्यको नमस्कारकर हाथ जोड़ विनती करकै कहा कि ‘हे गुरुश्रेष्ठ! रामचंद्रने राक्षससेनापतियोंके सहित

श्रीमहादेवउवाच ॥ सविचार्यसभामध्येराक्षसैःसहमंत्रिभिः ॥ निर्ययौयेऽवशिष्टास्तैराक्षसैःसहराघवम् ॥ १ ॥ शलभःशलभैर्युक्तंप्रज्वलंतमिवानलम् ॥ ततोरामेणनिहताःसर्वेतेराक्षसायुधि ॥ २ ॥ स्वयंरामेणनिहतस्तीक्ष्णबाणेनवक्षसि ॥ व्यथितस्त्वरितंलंकांप्रविवेशदशाननः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वारामस्यबहुशःपौरुषंचाप्यमानुषम् ॥ रावणोमारुतेश्चैवशीघ्रंशुक्रांतिकंययौ ॥४॥ नमस्कृत्यदशग्रीवःशुक्रंप्रांजलिरब्रवीत् ॥ भगवन्राघवेणैवंलंकाराक्षसयूथपैः ॥ ५ ॥ विनाशितामहादैत्यानिहताःपुत्रबांधवाः ॥ कथंमेदुःखसंदोहस्त्वयितिष्ठतिसद्गुरौ ॥ ६ ॥ इतिविज्ञापितोदैत्यगुरुःप्राहदशाननम् ॥ होमंकुरुप्रयत्नेनरहसित्वंदशानन ॥ ७ ॥ यदिविघ्नोनचेद्धोमेतर्हिहोमानलोत्थितः ॥ ८ ॥ महान्रथश्चवाहाश्चचापतूणीरसायकाः ॥ संभविष्यंतितैर्युक्तस्त्वमजेयोभविष्यसि ॥ ९॥ गृहाणमंत्रान्मद्दत्तान्गच्छहोमंकुरुद्रुतम् ॥ इत्युक्तस्त्वरितंगत्वारावणोराक्षसाधिपः ॥ १० ॥ गुहांपातालसदृशींमंदिरेस्वेचकारह ॥ लंकाद्वारकपाटादिबद्ध्वासर्वत्रयत्नतः ॥ ११ ॥

लंकाका इस प्रकारसे ॥ ५ ॥ नाश किया है कि–,उन्होंने हमारे बडे २ दैत्य व बंधुजनोंको माराहै। आप सरीखे सद्गुरुके रहते हमको इतना दुःख कैसे प्राप्त हुआ? ॥ ६ ॥ इस प्रकार विनती करनेपर शुक्राचार्यनें रावणसे कहा;–“ हे दशानन! तुम किसी यत्नके साथ एकान्तमें होम करो ॥ ७ ॥ जो अनुष्ठानमें कुछ विघ्न नहीं हुआ तो होमाग्निसे उठा हुआ ॥ ८ ॥ एक प्रचंड रथ, घोड़े, धनुष, तरकश इत्यादि सामग्री तुम्हें मिलैंगी फिर तुम जीत जाओगे ॥ ९ ॥ मैं जिन मंत्रोंको देताहूं उन मंत्रोंको ग्रहण करकै शीघ्र होम करो। ” गुरुजीकी यह वार्ता सुनकर राक्षसोंका राजा रावण तुरत चला ॥ १० ॥ रावणने अपने मंदिरमें पातालके समान एक गुहा तैयार कराई, लंकाके द्वार व किंवाड चारोंओरसे

से बन्द कर दिये ॥ ११ ॥ जारण मारण कार्यके योग्य होमकी सामग्री विधिविधानसे एकत्र की, और गुहामें प्रवेशकर व्रत धार एकान्तमें मौन व्रत धारण किया ॥ १२ ॥ बहुतसा धुँआ निकलने लगा उसको देखतेही रावणका छोटा भ्राता (विभीषण) भयभीतहुआ उसने होम का धुँआ रामचंद्रजीको दिखायकर कहा ॥ १३ ॥ "हेराम! देखिये; रावणने होम करना आरंभ कियाहै! जो होम समाप्त होगया तौ रावण अजीतहोजायगा? ॥ १४ ॥ इस कारण होममें विघ्न करनेको शीघ्र बड़े २ वानरोंको भेज दीजिये । " रामचंद्रजीने "अच्छा " कहकर सुग्रीवकी सलाहसे और वानर अंगदको ॥ १५ ॥ व पवनकुमारादि महाबलवान वीरोंको–तहां जानेकी आज्ञा दी। वे कोटको लांघकर रावणके मंदिरके निकट गये ॥ १६ ॥ यह दशकरोड़ वानर चलेथे; इन्होंने वहाँ पहुँचतेही पहरेवालोंको मारा। और क्षणभरमेंही घोड़े हाथियों को मारडाला ॥ १७ ॥ इसप्रकार रातभर लंकामें लड़ाई होती रही; जब सबेरा हुआ, तब सरमाने हाथके संकेतसे होमस्थलको बतादिया। यह सरमा विभीषणकी स्त्री थी ॥ १८ ॥ गुहाके मुखपर उसको ढकनेके लिये बड़ीभारी शिला रक्खीथी, महापराक्रमी अंगदजीने लातमारकर उस पत्थरको तोड़ डाला; और उस महागुहामें प्रवेश किया ॥ १९ ॥ वहाँपर रावण आंख बंद कियेहुए निश्चल आसनपर बैठाथा उसको देखकर अंगदजीकी आज्ञा ले सारे वानर भीतर चलेआये ॥ २० ॥ आरै तहाँ कुलाहल करनेलगे; रावणके सेवक लोगोंको इच्छानुसार मार

होमद्रव्याणिसंपाद्ययान्युक्तान्याभिचारिके ॥ गुहांप्रविश्यचैकांतेमौनीहोमंप्रचक्रमे ॥ १२ ॥ उत्थितंधूममालोक्यमहांतंरावणानुजः ॥
रामायदर्शयामासहोमधूमंभयाकुलः ॥ १३ ॥ पश्यरामदशग्रीवोहोमंकर्तुंसमारभत् ॥ यदिहोमःसमाप्तःस्यात्तदाऽजेयोभविष्यति ॥
॥ १४ ॥ अतोविघ्नायहोमस्यप्रेषयाशुहरीश्वरान् ॥ तथेतिरामः सुग्रीवसंमतेनांगदंकपिम् ॥ १५ ॥ हनूमत्प्रमुखान्वीरानादिदेशमहाव
लान् ॥ प्राकारंलंघयित्वातेगत्वारावणमंदिरम् ॥ १६ ॥ दशकोट्यःप्लवंगानांगत्वामंदिररक्षकान् ॥ चूर्णयामासुरश्वांश्चगजांश्चन्यहनन्क्ष
णात् ॥ १७ ॥ ततश्चसरमानामप्रभातेहस्तसंज्ञया ॥ विभीषणस्यभार्यासाहोमस्थानमसूचयत् ॥ १८ ॥ गुहापिधानपाषाणमंगदःपा
दघट्टनैः ॥ चूर्णयित्वामहासत्त्वःप्रविवेशमहागुहाम् ॥ १९ ॥ दृष्ट्वादशाननंतत्रमीलिताक्षंदृढासनम् ॥ ततोंऽगदाज्ञयासर्वेवान
राविविशुर्द्रुतम् ॥ २० ॥ तत्रकोलाहलंचक्रुस्ताडयंतश्चसेवकान् ॥ संभारांश्चिक्षिपुस्तत्रहोमकुंडेसमंततः ॥ २१ ॥

नेलगे; और चारों ओरसे होमकी सामग्री कुंडमें डालनेलगे ॥ २१ ॥ हनुमान्‌जीने क्रोधित होकर बलात्कारसे रावणके हाथमेंसे स्रुवा छीनलिया वानरसेनापति हनुमान्‌जीने उस स्रुवासेही रावणको मारा ॥ २२ ॥ इधर उधरसे सारे वानर उसको दांतोंसे काटने व लकड़ियोंसे मारने लगे; इतने प्रहार लगतेथे परन्तु रावणने अपना ध्यान नहीं छोड़ा कारण कि उसके मनमें अग्निसे रथादि सामग्री लेकर शत्रुको जीतनेकी इच्छा थी ॥ २३ ॥ तब अंगदजी शीघ्रतासे रावणके अंतःपुरमें जाय, उसकी मनोहर मन्दोदरीकी चोटी पकड़के रावणके पास घसीटलाये ॥ २४ ॥ अंगदजीने उसको रावणके सन्मुख खड़ा किया । मन्दोदरी रावणके सन्मुख अनाथके समान रोने लगी अंगदने उसकी रत्नजड़ी कंचुकी फाड़ डाली ॥ २५ ॥ चोलीसे मोती, रत्नसमूहोंके साथ टूटकर नीचे गिरनेलगे । रत्नसे गुँधी हुई तगड़ी भी वानरोंकी खैंचाखैंचीसे टूटकर पृथ्वीपर गिरपड़ी ! उसमें चित्र विचित्र रत्न लगे हुएथे ॥ २६ ॥ उसका नारा कमरमेंसे खुलगया; और सारे गहने जिधर तिधर गिरे । यह सब बातें रावणके सन्मुख हो रहींथीं ॥ २७ ॥ और २ वानरगण हर्षितचित्तसे (रावणपत्नी) देवकन्या और गंधर्वकन्याओंको होम स्थानमें ले आये । रावणके आगे मन्दोदरी अतिशय शोक करने लगी ॥ २८ ॥ वह विचारी करुणा स्वरसे बिलाप करके रावणसे बोली,– “ अरे ! तू पक्का निर्लज्ज है ! शत्रु तेरेसों ही प्रत्यक्ष तेरी भार्याके केश पकड़कर खेंचते हैं, और तू हर्षसे होम कर रहा है ! तुझे लाज नहीं आती ? दुष्ट ! शत्रु आंखोंदेखते जिसकी

स्रुवमाच्छिद्यहस्ताच्चरावणस्यबलाद्रुषा ॥ तेनैवसंजघानाशुहनुमान्प्लवगाग्रणीः ॥ २२ ॥ घ्नंतिदंतैश्चकाष्ठैश्चवानरास्तमितस्ततः ॥
नजहौरावणोध्यानंहतोऽपिविजिगीषया ॥ २३ ॥ प्रविश्यांतःपुरेवेश्मन्यंगदोवेगवत्तरः ॥ समानयत्केशबंधेधृत्वामंदोदरींशुभाम् ॥ २४ ॥
रावणस्यैवपुरतोविलपंतीमनाथवत् ॥ विददारांगदस्तस्याःकंचुकंरत्नभूषितम् ॥ २५ ॥ मुक्ताविमुक्ताःपतिताःसमंताद्रत्नसंचयैः ॥ श्रोणिसूत्रंनिपतितंत्रुटितंरत्नचित्रितम् ॥ २६ ॥ कटिप्रदेशाद्विस्रस्तानीवीतस्यैवपश्यतः ॥ भूषणानिचसर्वाणिपतितानिसमंततः ॥ २७ ॥
देवगंधर्वकन्याश्चनीताहृष्टैःप्लवंगमैः ॥ मंदोदरीरुरोदाथरावणस्याग्रतोभृशम् ॥ २८ ॥ क्रोशंतीकरुणंदीनाजगाददशकंधरम् ॥ निर्लज्जोऽसिपरैरेवंकेशपाशेविकृष्यते ॥ २९ ॥ भार्यातवैवपुरतःकिंजुहोषिनलज्जसे ॥ हन्यतेपश्यतोयस्यभार्यापापैश्चशत्रुभिः ॥ ३० ॥

भार्याको मारें ॥ २९ ॥ ३० ॥ उसको तत्काल तिसी जगह जीव देना चाहिये; ऐसी अवस्था देखनेसे उसका मरना भला है ! ! मेघनाद ! हाय ! हाय ! अरे वानर तेरी माताको क्लेश देरहे हैं ॥ ३१ ॥ जो तू जीवित होता, तौ मुझपर इस दुःखका अवसर नहीं आता ? हमारे स्वामीने अपने जीवनकी आशासे स्त्री और लाज दोनोंको छोड़ दिया है ! " ॥ ३२ ॥ मन्दोदरीके विलापको सुनकर राजा रावणने शीघ्र उठ खड्ग उठाय "देवीको (राणी मन्दोदरीको) छोड़ ! ऐसे कह ॥ ३३ ॥ अंगदजीकी कमरमें प्रहार किया; इसके उपरान्त सारे वानर (इस प्रकारसे) उस बड़े होमका विध्वंस कर (मन्दोदरी आदि स्त्रियोंको छोड़) उस स्थानको त्याग कर चले गये ॥ ३४ ॥ सबही आनंदसे श्रीरामचंद्रजीके निकट आय पहुँचे। इस ओर रावण स्त्रीको समझाकर कहनेलगा ॥ ३५ ॥ हे सुन्दरी ! सब बात दैवके आधीन है । जो प्राणी जीवित रहते हैं, वह असंभवित वस्तुको भी देखते हैं जो प्रसंग आता है तो असंभव कर्म भोगको भोगता है; हे विशालनयने ! ऐसे निश्चित ज्ञानको आश्रय करके शोक छोड़ दो ॥ ३६ ॥ अज्ञानके सिवाय मनुष्यको शोक होनेका और कुछ कारण नहीं है । शोक होनेके पीछे अंतःकरणमें ज्ञानका नाश होनेके कारण अज्ञान बढ़ता है । मनुष्य अपनी देहमें जो 'अहं मैं' बुद्धि करता है । इसका कारणभी अज्ञानही है ॥ ३७ ॥ इस कारण अज्ञान छोड़कर ज्ञानदृष्टिसे देखो । अज्ञानदृष्टिसे मनुष्य पुत्र स्त्री आदिमें सम्बन्ध समझता है और सम्बन्धकी वासनासे मनुष्यको कर्मबंधन, हर्ष, शोक, भय, क्रोध, लोभ, मोह, काम

मर्तव्यंतेनतत्रैवजीवितान्मरणंवरम् ॥ हामेघनादतेमाताक्लिश्यतेवतवानरैः ॥ ३१ ॥ त्वयिजीवतिमेदुःखमीदृशंचकथंभवेत् ॥ भार्यालज्जाचसंत्यक्ताभर्त्रामेजीविताशया ॥ ३२ ॥ श्रुत्वातद्देवितंराजामंदोदर्यादशाननः ॥ उत्तस्थौखड्गमादायत्यजदेवीमितिब्रुवन् ॥ ३३ ॥ जघानांगदमव्यग्रःकटिदेशेदशाननः ॥ ततोत्सृज्ययथुःसर्वेविध्वंस्यहवनंमहत् ॥ ३४ ॥ रामपार्श्वमुपागम्यतस्थुःसर्वेप्रहर्षिताः ॥ रावणस्तुततोभार्यामुवाचपरिसांत्वयन् ॥ ३५ ॥ दैवाधीनमिदंभद्रेजीवताकिंनदृश्यते ॥ त्यजशोकंविशालाक्षिज्ञानमालंब्यनिश्चितम् ॥ ३६ ॥ अज्ञानप्रभवःशोकःशोकोज्ञानविनाशकृत् ॥ अज्ञानप्रभवाहंधीःशरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३७ ॥ तन्मूलःपुत्रदारादिसंबंधःसंसृतिस्ततः ॥ हर्षशोकभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ॥ ३८ ॥

इत्यादि सब विकार उत्पन्न होते हैं ॥ ३८ ॥ जन्म, मृत्यु, जरा यह भावभी अज्ञानसेही उत्पन्न होते हैं परन्तु आत्मातौ एक शुद्ध (निर्गुण) मायाकार्यसे अलग अलिप्त ॥ ३९ ॥ आनंदरूपी व ज्ञानमय है, और वह सुख तथा दुःखसे छूटा हुआ है; आत्माको तीन कालमें किसीके साथ संयोग अथवा वियोग नहीं है ॥ ४० ॥ हे अनिन्दिते ! अपनी आत्माको इस प्रकारसे जानकर शोक छोड़ दो। मैं अभी जाताहूं; और लक्ष्मणके सहित रामका वध करके ॥ ४१ ॥ आताहूं, नहीं तो श्रीरामजी वज्रतुल्य बाणोंसे मेरा शरीर छिन्न भिन्न करेंगे तो मैं उनके पदको प्राप्त होऊंगा ॥ ४२ ॥ हे प्रिये ! मैं आज्ञा देताहूं, कि सीताको मारकर मेरे समस्त प्रेत कार्य तुम[१] करना, अथवा मेरे मृतक शरीरके साथ आगमें जल

अज्ञानप्रभवाह्येतेजन्ममृत्युजरादयः ॥ आत्मातुकेवलःशुद्धोव्यतिरिक्तोह्यलेपकः ॥ ३९ ॥ आनंदरूपोज्ञानात्मासर्वभावविवर्जितः ॥ नसंयोगोवियोगोवाविद्यतेकेनचित्सतः ॥ ४० ॥ एवंज्ञात्वात्वमात्मानंत्यजशोकमनिंदिते ॥ इदानीमेवगच्छामिहत्वारामंसलक्ष्मणम् ॥ ४१ ॥ आगमिष्यामिनोचेन्मांदारयिष्यतिसायकैः ॥ श्रीरामोवज्रकल्पैश्चततोगच्छामितत्पदम् ॥ ४२ ॥ तदात्वयामेकर्तव्याक्रियामच्छासनात्प्रिये ॥ सीतांहत्वामयासार्धंत्वंप्रवेक्ष्यसिपावकम् ॥ ४३ ॥ एवंश्रुत्वावचस्तस्यरावणस्यातिदुःखिता ॥ उवाचनाथमेवाक्यंशृणुसत्यंतथाकुरु ॥ ४४ ॥ शक्योनराघवोजेतुंत्वयाचान्यैःकदाचन ॥ रामोदेववरःसाक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४५ ॥ मत्स्योभूत्वापुराकल्पेमनुंवैवस्वतंप्रभुः ॥ ररक्षसकलापद्भ्योराघवोभक्तवत्सलः ॥ ४६ ॥ रामःकूर्मोऽभवत्पूर्वंलक्षयोजनविस्तृतः ॥ समुद्रमथनेपृष्ठेदधारकनकाचलम् ॥ ४७ ॥

मरना। " ॥ ४३ ॥ रावणके यह वचन सुनकर मन्दोदरी महादुःखित होकर बोली " हे नाथ ! मेरे सत्यवाक्य श्रवणकरके उसके अनुसार कार्य करो ॥ ४४ ॥ हे महाराज ! तुम या दूसरे वीर रामचंद्रजीको कभीभी नहीं जीत सकेंगे। रामजी साक्षात् देवाधिदेव प्रकृति और जीवके नियामक हैं ॥ ४५ ॥ इन्हीं भक्तवत्सल प्रभु रामचंद्रजीने पहले एक कल्पमें मत्स्यावतार लेकर वैवस्वत मनुको सारे संकटोंसे छुड़ाया ॥ ४६ ॥ इन्हीं रामजीने पहले लक्ष योजनके विस्तारका कूर्मरूप ग्रहण किया, और समुद्रमथनेके समय पीठपर सुवर्णपर्वत (मन्दर) को धारण कियाथा ॥ ४७ ॥

---

[१] शास्त्रमें कहा है कि जिसके पुत्र न होय उस अपुत्र मनुष्यकी उत्तरक्रिया उसकी स्त्री करे इसके विषयमें मनुजीका " पुत्राभावेतु पत्नीस्यात् " वचन है।

इन्हीं महात्माने किसी समय पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये वराहशरीर धारण किया और हिरण्याक्ष असुरको मारा ॥ ४८ ॥ रामचंद्रजीने पूर्वकालमें नृसिंहमूर्ति धारणकर त्रिलोककंटक हिरण्यकशिपु दैत्यका वध किया ॥ ४९ ॥ इन रामचंद्रजीनेही पूर्व कालमें, बलिको बांध लिया व तीन पांवसे त्रिलोकीको नापकर इन्द्रको दिया, इन्द्र इनका सेवक है ॥ ५० ॥ एकसमय जिधर तिधर क्षत्रियस्वरूपी राक्षस उत्पन्न होकर पृथ्वीको अतिशय भार हुएथे; तिस वेला इन रामचंद्रजीनेही परशुरामअवतार धारण किया और क्षत्रियोंका अनेक [इक्कीस] वार संहारकर पृथ्वीको जीता और पृथ्वी मुनि (कश्यप) को देदी ॥ ५१ ॥ उन्हीं परेसे परे परमात्माने अब रघुवंशमें अवतार लिया है; तुम्हारा वध करनेकेलिये उन्होंने मनुष्यरूप धारण किया है । वही यह राम हैं ॥ ५२ ॥ तुमने पुत्रका नाश करानेके लिये उनकी स्त्रीको वनमेंसे बलसे हरण किया; और अपनीभी मृत्युका कारण सीताहीको किया ॥५३॥ अब तुम जानकीको रामचंद्रजीके पास भेजदो और राज्य विभीषणको दे फिर वनको चलेजाओ ॥ ५४ ॥ मन्दोदरीके वचन सुन रावणने कहा;—हे सुन्दरि ! मैंने रामसे युद्धमें पुत्रोंका, भ्राताओंका व राक्षस समूहका घातें करायाहै; अब मैं वनमें जायकर कैसे जीवित रहूं ? मैं लोगोंको अपना मुख कैसे दिखाऊंगा ॥ ५५ ॥ इस कारण मैं रामचंद्रजीसे युद्ध करनेको जाताहूं । रामचंद्रजीके बाण अत्यन्त शीघ्र चलते हैं उनके लगनेसे मेरा शरीर छिन्नभिन्न होजायगा तब मैं मृत्यु पायकर विष्णुजीके

हिरण्याक्षोऽतिदुर्वृत्तोहतोनेनमहात्मना ॥ क्रोडरूपेणवपुषाक्षोणीमुद्धरताक्कचित् ॥ ४८ ॥ त्रिलोककंटकंदैत्यंहिरण्यकशिपुंपुरा ॥ हत
वान्नारसिंहेनवपुषारघुनंदनः ॥ ४९ ॥ विक्रमैस्त्रिभिरेवासौबलिंबद्ध्वाजगत्त्रयम् ॥ आक्रम्यादात्सुरेंद्रायभृत्यायरघुसत्तमः ॥ ५० ॥
राक्षसाःक्षत्रियाकाराजाताभूमेर्भरावहाः ॥ तान्हत्वाबहुशोरामोभुवंजित्वाह्यदान्मुनेः ॥ ५१ ॥ सएवसांप्रतंजातोरघुवंशेपरात्परः ॥
भवदर्थंरघुश्रेष्ठोमानुषत्वमुपागतः ॥ ५२ ॥ तस्यभार्यांकिमर्थंवाहृतासीतावनाद्बलात् ॥ ममपुत्रविनाशार्थंस्वस्यापिनिधनायच॥५३॥
इतःपरंवावैदेहींप्रेषयस्वरघूत्तमे ॥ विभीषणायराज्यंतुदत्त्वागच्छामहेवनम् ॥ ५४ ॥ मंदोदरीवचःश्रुत्वारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ कथं
भद्रेरणेपुत्रान्भ्रातॄन्राक्षसमंडलम् ॥ घातयित्वाराघवेणजीवामिवनगोचरः ॥ ५५ ॥ रामेणसहयोत्स्यामिरामबाणैःसुशीघ्रगैः ॥ विदार्य
माणोयास्यामितद्विष्णोःपरमंपदम् ॥ ५६ ॥

परमपदको प्राप्तहूंगा ॥ ५६ ॥ यह मैं जानताहूं कि-रामचंद्रजी विष्णुके अवतार हैं, और सीता लक्ष्मीजीका अवतार हैं; जानबूझकर मैं जनककी कन्या सीताको बलात्कार हरण करलाया; इस उद्देशसे कि रामके हाथसे मरण होनेसे सद्गति मिलेगी ॥ ५७ ॥ हे प्रिये ! मैं तुझको व संसारको छोड़ मृतबंधुओंके साथ जाऊंगा । रामजीने युद्धमें मेरा वध किया इस लिये मैं, मुमुक्षु लोग जिस परमानंदमय पवित्र पदको पाते हैं ॥ ५८ ॥ तिस गतिको जाऊंगा; अंतकालमें रामजीका दर्शन पानेसे इस राक्षसदेहसे मुझकरके हुए सर्वपाप धुल जांयगे । जो मुक्ति दुर्लभ है, वह निश्चय मुझे मिलैगी ॥५९॥ हे प्रिये ! यह संसार एक समुद्र है; इस समुद्रमें पांच क्लेश अर्थात् १ अविद्या, जैसे सीपीमें चांदीका भास होना रस्सीमें सर्पका भास होना इत्यादि । २ अस्मिता, अर्थात् ऐसा मानना कि शरीरसे कोई आत्मा नहीं है । ३ राग, अर्थात् किसी वस्तुमें आसक्ति । ४ द्वेष, अर्थात् पराया भला देखकर मनमें डाह करना । ५ अभिनिवेश, अर्थात् मरणादिका भयव इन पांचोंसे उत्पन्न होनेवाली स्थूलवृत्ति जिसमें तरंगें उछलती हैं, एकके पीछे एक आनेवाला सुख दुःखही जिसमें भँवररूप है. स्त्री, पुत्र, आप्त, द्रव्य, बंधु इत्यादि जलजन्तु फिरते हैं । वड़वाग्निके समान प्रखर तेजस्वी अपना क्रोध रहता है, जिसमें कामदेवरूपी जल पड़ा हुआ है । ऐसे संसारसागरके पार होकर मैं हरिकी शरण जाताहूं ॥ ६० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकांडे भाषाटीकायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥

जानामिराघवंविष्णुंलक्ष्मींजानामिजानकीम् ॥ ज्ञात्वैवजानकीसीतामयानीतावनाद्बलात् ॥ ५७ ॥ रामेणनिधनंप्राप्ययास्यामीतिपरं पदम् ॥ विमुच्यत्वांतुसंसाराद्गमिष्यामिसहप्रिये ॥ ५८ ॥ परानंदमयीशुद्धासेव्यतेयामुमुक्षुभिः ॥ तांगतिंतुगमिष्यामिहतोरामेणसंयुगे ॥ ५९ ॥ प्रक्षाल्यकल्मषाणीहमुक्तियास्यामिदुर्लभाम् ॥ ६० ॥ क्लेशादिपंचकतरंगयुगंभ्रमाढ्यंदारात्मजाप्तधनबंधुझषाभियुक्तम् ॥ और्वानलाभनिजरोषमनंगजालंसंसारसागरमतीत्यहरिंव्रजामि ॥ ६१ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडे दशमःसर्गः ॥ १० ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ इत्युक्त्वावचनंप्रेम्णाराज्ञींमंदोदरींतदा ॥ रावणःप्रययौयोद्धुंरामेणसहसंयुगे ॥ १ ॥

॥ राम रावणका संग्राम । श्रीमहादेवजी कहते हैं कि " हे पार्वति ! रावण मन्दोदरीको ऊपरकहेअनुसार प्रेमसे समझाय बुझाय रामजीसे युद्ध करनेको रणभूमिमें जानेकी

तैयारी करता हुआ ॥ १ ॥ वह रावण भयंकर राक्षसोंको साथले मजबूत रथमें बैठा। इस रथमें सोलह पहियेथे; रक्षा करनेके लिये वरूथ (छतरी) लगा हुआ ज्वारिद्वार था ॥ २ ॥ उस रथमें गधे जुते हुएथे, उन गधोंका मुख पिशाचोंके समान भयंकर था; इस कारण उसको देखतेही डर लगताथा। इसमें अस्त्र शस्त्रादिक सब सामग्री भररहीथी ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे भयंकर आकारवाला रावण रणको चला; रावण उग्र दिखलाई देताथा और रणमें बड़े निर्दयीपनके कार्य करताथा; उसको देखतेही रामजीसे रक्षित वानरसेनाभी घबरा गई ॥ ४ ॥ हनुमान्‌जी कूदकर रावणसे युद्ध करनेको आये, हनुमान्‌जीके पराक्रमकी उपमा नहीं दी जासकती, उन्होंने निकट जाय राक्षसकी छातीपर दृढ़मूका बांध वेगसे मारा। उस घूंसेका प्रहार लगनेसे रावणको मूर्छा आगई; वह घुटने टेककर रथमें गिरपड़ा; परन्तु फिर कुछ देरमें सावधान होकर बोला;—"मैं मानताहूं कि तू शूर है" ॥५॥६॥७॥ हनुमान्‌जीने उस्से कहा "मुझे धिक्कार है! क्योंकि हे रावण! तू मेरे मूकेका प्रहार पायकरभी जीवितही रहा। हे रावण! तूभी मेरी छातीमें एक मूका मारले ॥८॥ कारण कि फिर मैं तेरे घूंसा मारूंगा कि जिस्से तू अवश्यही प्राण छोड़ेगा; इस्में कोई संशय नहीं, इस्से तेरे मनमें मेरे मारनेकी इच्छा जैसी कि तैसी रहजायगी!!"—रावणने 'ठीक' कहकर हनुमान्‌जीकी छातीमें घूंसा मारा ॥ ९ ॥ जिससे हनुमान्‌जीके नेत्र घूमें और कुछेक मूर्छा आई। वानरेश्वर चैतन्यताको प्राप्तहो रावणके मारनेको दौड़े ॥ १० ॥ तैसेही राक्षसपति रावण डरकर दूसरी ओरको

दृढंस्यंदनमास्थायवृतोघोरैर्निशाचरैः ॥ चक्रैःषोडशभिर्युक्तंसवरूथंसकूबरम् ॥ २ ॥ पिशाचवदनैर्घोरैःखरैर्युक्तंभयावहम् ॥ सर्वास्त्रशस्त्रसहितंसर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ३ ॥ निश्चक्रामाथसहसारावणोभीषणाकृतिः ॥ आयांतंरावणंदृष्ट्वाभीषणंरणकर्कशम् ॥ ४ ॥ संत्रस्ताऽभूत्तदासेनावानरीरामपालिता ॥ ५ ॥ हनूमानथचोत्प्लुत्यरावणंयोद्धुमाययौ ॥ आगत्यहनुमान्रक्षोवक्षस्यतुलविक्रमः ॥ ६ ॥ मुष्टिबंधंदृढंबद्धाताडयामासवेगतः ॥ तेनमुष्टिप्रहारेणजानुभ्यामपतद्रथे ॥ ७ ॥ मूर्च्छितोऽथमुहूर्तेनरावणःपुनरुत्थितः ॥ उवाचचहनूमंतंशूरोऽसिममसंमतः ॥ ८ ॥ हनूमानाहतंधिङ्मांयस्त्वंजीवसिरावण ॥ त्वंतावन्मुष्टिनावक्षोममताडयरावण ॥ ९ ॥ पश्चान्मयाहतःप्राणान्मोक्ष्यसेनात्रसंशयः ॥ तथेतिमुष्टिनावक्षोरावणेनापिताडितः ॥ १० ॥ विघूर्णमाननयनःकिंचित्कश्मलमाययौ ॥ संज्ञामवाप्यकपिराड्रावणंहंतुमुद्यतः ॥ ११ ॥

चलागया, हनुमान्, अंगद, नल, व नील ॥ ११ ॥ यह चारों बराबर खड़ेथे, इनके सन्मुख अग्निवर्ण, सर्परोमा, खड्गरोमा, और वृश्चिकरोमा ॥ १२ ॥ यह चारों बड़े राक्षस दिखाई दिये तब इन चारों वानरोंने क्रमसे इन चार राक्षसोंके साथ युद्ध करना आरंभ किया; फिर वे चारों पराक्रमी राक्षसोंको मारकर ॥ १३ ॥ १४ ॥ पृथक् २ गर्जते हुए रामचंद्रजीके पास आये; इतनेहीमें रावण मारे क्रोधके दाँतोंसे ओठोंको चबाता ॥ १५ ॥ आंखें निकालकर रामजीके ऊपर धाया । रावण रथमें बैठाथा व रामजी पृथ्वीपर खड़ेथे; परन्तु उस क्रूर राक्षसने रामजीकी इस स्थितिका विचार न करकै उनपर वज्रके समान महाभयंकर बाणोंका प्रहार किया । जैसे मेघ जलधारा छोड़ता है तैसे रावण बाण छोड़ताथा । उसने रामजीके

ततोऽन्यत्रगतोभीत्यारावणोराक्षसाधिपः ॥ हनूमानंगदश्चैवनलोनीलस्तथैवच ॥ १२ ॥ चत्वारःसमवेताग्रेदृष्ट्वाराक्षसपुंगवान् ॥ अग्नि
वर्णंतथासर्परोमाणंखड्गरोमकम् ॥ १३ ॥ तथावृश्चिकरोमाणंनिर्जघ्नुःक्रमशोऽसुरान् ॥ चत्वारश्चतुरोहत्वाराक्षसान्भीमविक्रमान् ॥१४॥
सिंहनादंपृथक्कृत्वारामपार्श्वमुपागताः ॥ ततःक्रुद्धोदशग्रीवःसंदश्यदशनच्छदम् ॥ १५ ॥ विवृत्यनयनेक्रूरोराममेवान्वधावत ॥
दशग्रीवोरथस्थस्तुरामंवज्रोपमैःशरैः ॥ १६ ॥ आजघानमहाघोरैर्धाराभिरिवतोयदः ॥ रामस्यपुरतःसर्वान्वानरानपिविव्यथे ॥ १७ ॥
ततःपावकसंकाशैःशरैःकांचनभूषणैः ॥ अभ्यवर्षद्रणेरामोदशग्रीवंसमाहितः ॥ १८ ॥ रथस्थंरावणंदृष्ट्वाभूमिष्ठंरघुनन्दनम् ॥ आहू
यमातलिंशक्रोवचनंचेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥ रथेनममभूमिष्ठंशीघ्रंयाहिरघूत्तमम् ॥ त्वरितंभूतलंगत्वाकुरुकार्यंममानघ ॥ २० ॥ एव
मुक्तोऽथतंनत्वामातलिर्देवसारथिः ॥ ततोहयैश्चसंयोज्यहरितैःस्यंदनोत्तमम् ॥ २१ ॥ स्वर्गाज्जयार्थंरामस्यह्युपचक्राममातलिः ॥
अब्रवीच्चततोराममप्रतर्क्यरथेस्थितः ॥ प्रांजलिर्देवराजेनप्रेषितोऽस्मिरघूत्तम ॥ २२ ॥

सामनेही सर्व वानरोंको जर्जर करडाला ॥ १६ ॥ १७ ॥ युद्धमें रामजी जराभी नहीं डगमगाए, वरन् अग्निके समान प्रकाशित सुवर्णकी फोंक लगे बाणोंकी वर्षा रावणपर कर रहेथे ॥ १८ ॥ इन्द्रने, रावणको रथमें बैठा हुआ व रामजीको पृथ्वीमें खड़ा हुआ देख मातलिको बुलायकर कहाकि ॥ १९ ॥ "हे पापरहित मेरा रथ लेकर पृथ्वीपर खड़े हुए श्रीरामचंद्रजीके निकट शीघ्र जाओ और यह मेरा कार्य करो" ॥ २० ॥ इन्द्रकी ऐसी आज्ञा पाय देव सारथी मातलि उसका वंदनकर शीघ्रही तिस उत्तम रथमें हरे रंगके घोड़े जोड़ता हुआ और उसको लेकर ॥ २१ ॥ रामजीकी विजय होनेके लिये

उनके निकट आया; इन्द्रका रथ साधारण प्राणियोंको नहीं दिखाई देता है; तिस रथमें बैठा हुआ मातलि हाथ जोड़कर श्रीरामजीसे बोला;– "हे रघुवीर ! मुझे देवराजने भेजाहै ॥ २२ ॥ हेप्रभो ! यह रथ देवराजका है; आप शत्रुओंको इसपर बैठकर जीतें, इस कारणसे यह भेजागया है। हे महाशय ! यह शोभायमान इन्द्रधनुष, यह कभी न टूटनेवाला, कवच, यह खड्ग, यह दिव्य दो तरकश; यह सब वस्तु मैं लायाहूं। हे राम ! इस रथपर बैठिये, मैं सारथिका कार्य करताहूं; हे देव ! जिसप्रकार इन्द्रने वृत्रासुरको मारा; वैसेही आप रावण राक्षसका संहार कीजिये"॥ २३ ॥ २४ ॥ मातलिके ऐसा कहनेपर राम उस उत्तम रथकी प्रदक्षिणा व वंदनकर रथपर चढ़े;–इस समय यह जानकर कि "अब रावणका वध शीघ्र होगा" सब लोकोंको आनंद हुआ ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त महासमर्थ रामचंद्रजीका व उस चतुर रावणका महासंग्राम होनेलगा; वह भयंकर दिखाव देखकर देखनेवालोंके रोम खड़े होगये ॥ २६ ॥ श्रीरामजी अस्त्रविद्यामें निपुणथे; राक्षसपति रावण जो अस्त्र छोडै रामचंद्रजीभी वही अस्त्र छोड़कर उसका प्रतिकार करैं। इस प्रकार आग्नेयास्त्रपर आग्नेयास्त्र छोड़, इन्द्रास्त्रपर इन्द्रास्त्र छोड़ रावणको हतवीर्य करते रहे ॥ २७ ॥ रावणभी अस्त्रोंको भलीभांति जानताथा; फिर उसने अत्यन्त क्रोधित होकर रामजीपर एक भयंकर राक्षसास्त्र छोड़ा ॥ २८ ॥ रावणके अस्त्रका पृष्ठभाग सुवर्णसे मढ़ा हुआथा; उस बाणके धनुषसे छूटतेही उसमेंसे अत्युग्र विषैले सर्प निकलकर चारों ओरसे रामजीपर गिरे ॥ २९ ॥ उन सर्पमुखी बाणोंके मुखसे अग्नि निकलतीथीं; ऐसे बाणोंसे उस समय दिशा विदिशा भरगईं ॥ ३० ॥

रथोऽयंदेवराजस्यविजयायतवप्रभो ॥ प्रेषितश्चमहाराजधनुरैंद्रंचभूषितम् ॥ २३ ॥ अभेद्यंकवचंखड्गंदिव्यतूणीयुगंतथा ॥ आरुह्यचरथं
रामरावणंजहिराक्षसम् ॥ २४ ॥ मयासारथिनादेववृत्रंदेवपतिर्यथा ॥ इत्युक्तस्तंपरिक्रम्यनमस्कृत्यरथोत्तमम् ॥ २५ ॥ आरुरोहरथं
रामोलोकाँल्लक्ष्म्यानियोजयन् ॥ ततोऽभवन्महायुद्धंभैरवंरोमहर्षणम् ॥ २६ ॥ महात्मनोराघवस्यरावणस्यचधीमतः ॥ आग्नेयेनचआ
ग्नेयंदैवंदैवेनराघवः ॥ २७ ॥ अस्त्रंराक्षसराजस्यजघानपरमास्त्रवित् ॥ ततस्तुससृजेघोरंराक्षसंचास्त्रमस्त्रवित् ॥ २८ ॥ क्रोधेनमहतावि
ष्टोरामस्योपरिरावणः ॥ रावणस्यधनुर्मुक्ताःसर्पाभूत्वामहाविषाः ॥ शराःकांचनपुंखाभाराघवंपरितोऽपतन् ॥ २९ ॥ तैःशरैःसर्पवदनै
र्वमद्भिरनलंमुखैः॥ दिशश्चविदिशश्चैवव्याप्तास्तत्रतदाभवन् ॥ ३० ॥

इसके उपरान्त श्रीरामजीने जिधर तिधर सर्पोंको फैला हुआ देखकर उस अस्त्रका डरानेवाला गरुड़ास्त्र युद्धमें रावणके ऊपर छोड़ा ॥ ३१ ॥
रामचंद्रजीका छोड़ा हुआ बाण गरुड़ रूपी बना । गरुड़ सर्पका मारक शत्रु है इसलिये उन गरुड़रूपी बाणोंने जिधर तिधर उन सर्परूपी फैले हुए
बाणोंकोकाट डाला ॥ ३२ ॥ युद्धमें रावणने यह देखकर कि रामने मेरे अस्त्रका प्रतिकार किया—रामजीपर भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३३ ॥
रामचंद्रजी अपना कार्य चतुरताके सहित सहजसेही करतेथे उन्हौंने रावणके बाण लीलासेही काट दिये तब रावणने फिर बाणसमूहको छोड़कर
रामजीको पीडित किया; और एक भयंकर बाण मातलिके मारा ॥ ३४ ॥ रामजीके रथका ध्वज सुवर्णकाथा; रावणने अत्यन्त क्रोधित होकर वह

रामःसर्पांस्ततोदृष्ट्वासमंतात्परिपूरितान् ॥ सौपर्णमस्त्रंतद्घोरंपुरःप्रावर्तयद्रणे ॥३१॥ रामेणमुक्तास्तेबाणाभूत्वागरुडरूपिणः॥चिच्छिदुः
सर्पबाणांस्तान्समंतात्सर्पशत्रवः ॥३२॥ अस्त्रेप्रतिहतेयुद्धेरामेणदशकंधरः ॥ अभ्यवर्षत्ततोरामंघोराभिःशरवृष्टिभिः ॥३३॥ ततःपुनः
शरानीकैराममक्लिष्टकारिणम् ॥ अर्दयित्वातुघोरेणमातलिंप्रत्यविध्यत ॥ ३४ ॥ पातयित्वारथोपस्थेरथकेतुंचकांचनम् ॥ ऐंद्रानश्वान
भ्यहनद्रावणःक्रोधमूर्च्छितः ॥ ३५ ॥ विषेदुर्देवगंधर्वाश्चारणाःपितरस्तथा ॥ आर्ताकारंहरिंदृष्ट्वाव्यथिताश्चमहर्षयः ॥ ३६ ॥ व्यथिता
वानरेंद्राश्चबभूवुःसविभीषणाः ॥ दशास्योविंशतिभुजःप्रगृहीतशरासनः ॥३७॥ ददृशेरावणस्तत्रमैनाकइवपर्वतः ॥ रामस्तुभ्रुकुटिंबद्ध्वा
क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३८ ॥ कोपंचकारसदृशंनिर्दहन्निवराक्षसम् ॥ धनुरादायदेवेंद्रधनुराकारमद्भुतम् ॥ ३९ ॥

ध्वजा काटकर रथमें गिराई । और इन्द्रके घोड़ोंको जर्जर किया,— ॥ ३५ ॥ रामजीके शरीरको विह्वल हुआ देख, देव, गंधर्व, चारण तैसेही पितरादि
सबको खेद हुआ व महर्षियोंको चिन्ता हुई ॥ ३६ ॥ विभीषणके सहित समस्त वानर यूथपतिभी अतिशय चिन्ता करते हुए । दशमुखवाला,
वीस हाथवाला, हाथमें धनुष इस प्रकारका ॥ ३७ ॥ वह रावण रणभूमिमें मैनाक पर्वतके समान प्रचंड दिखाई देने लगा ! रामजीके नेत्र मारे
क्रोधके लाल होगये उन्होंने भ्रुकुटी चढ़ाई ॥ ३८ ॥ और अपने पराक्रमके अनुसार ईर्षा धारण करते हुए । इससमय रामजी ऐसे जान पड़तेथे मानो
रावणको भस्म कर डालेंगे ! वर्षाऋतुके समय आकाशमें दिखाई देनेवाले इन्द्रधनुषके समान अपने अद्भुत विस्तीर्ण धनुषको श्रीरामजीनेउठाया ॥ ३९ ॥

प्रलयकालकी अग्निके समान धुक् धुक् करता हुआ बाण हाथमें लिया; व आगे खड़े हुए शत्रुपर अग्निके समान प्रदीप्त दृष्टि फेंकी ॥ ४० ॥ मारे क्रोधके उनका तेज प्रदीप्त होरहाथा। उन कालरूपी रामचंद्रजीने सर्व लोकोंके सन्मुख अपने पराक्रमको दिखानेका आरंभ किया ॥ ४१ ॥ रामचंद्रजीने कानतक धनुष खैंच रावणके बाण मार वानरसेनाको आनंद दिया। इससमय रामजीकी मूर्ति कालमृत्युके समान उग्र होनेपरभी रमणीय दिखाई देतीथी ॥ ४२ ॥ जिस समय रामजी शत्रुपर धाये; तिस समय उनके कोपयुक्त मुखको देखकर सब प्राणियोंको भय लगा; और पृथ्वी थर २ काँपने लगी ॥ ४३ ॥ रामजीका रूप महाभयंकर दिखाई देने लगा;

गृहीत्वापाणिनाबाणंकालानलसमप्रभम् ॥ निर्दहन्निवचक्षुर्भ्यांददृशेरिपुमंतिके ॥४० ॥ पराक्रमंदर्शयितुंतेजसाप्रज्वलन्निव ॥ प्रचक्रमे कालरूपीसर्वलोकस्यपश्यतः ॥ ४१ ॥ विकृष्यचापंरामस्तुरावणंप्रतिविध्यच ॥ हर्षयन्वानरानीकंकालांतकइवाबभौ ॥ ४२ ॥ क्रुद्धंरामस्यवदनंदृष्ट्वाशत्रुंप्रधावतः ॥ तत्रसुःसर्वभूतानिचचालचवसुंधरा ॥ ४३ ॥ रामंदृष्ट्वामहारौद्रमुत्पातांश्चसुदारुणान् ॥ त्रस्तानि सर्वभूतानिरावणंचाविशद्भयम् मानि ॥ ४४ ॥ स्थाःसुरगणाःसिद्धगंधर्वकिन्नराः ॥ ददृशुःसुमहायुद्धंलोकसंवर्तकोपमम् ॥ ऐंद्रमस्त्रं समादायरावणस्याशिरोऽच्छिनत् ॥ ४५ ॥ मूर्धानोरावणस्याथबहवोरुधिरोक्षिताः ॥ गगनात्प्रपतंतिस्मतालादिवफलानिहि ॥ ४६ ॥ नदिनंनचवैरात्रिर्नसंध्यानादिशोऽपिवा ॥ प्रकाशंतेनतद्रूपंदृश्यतेतत्रसंगरे ॥ ४७ ॥

जिधर तिधर अत्यन्त दारुण उत्पात दीखे; तब सर्व प्राणियोंको त्रास हुआ; व रावणको भी भय लगा ॥ ४४ ॥ देवगण, सिद्ध, गन्धर्व, व किन्नर विमानोंमें बैठकर जो आकाश मार्गमें आयेथे वे नीचे होते हुए संसारका यह प्रलयके समान अत्यन्त कठोर युद्ध देखते हुए चुप चाप खड़े रहे। रामचंद्रजीने इन्द्रास्त्र लेकर रावणका मस्तक काटा ॥४५॥ जिस प्रकार ताड़ वृक्षके फल पृथ्वीपर गिरते हैं वैसेही रामजीके द्वारा काटे हुए रावणके अनेक मस्तक आकाशमेंसे नीचे पृथ्वीपर गिरने लगे। वह रुधिरसे भींगे हुएथे ॥ ४६ ॥ इस युद्धके होनेपर न दिन दिखाई दे, न रातजान पड़े, न संध्याकाल मालूम हो, न दिशायें दीखें (बराबर अनेक दिनतक युद्ध होता रहाथा)अनेकवार रामचंद्रजीने रावणके मस्तक काटे

परन्तु युद्धमें रावणका वह कबन्धरूप किसीको नहीं दिखाई दिया,—क्योंकि जितनीवार शिर काटे गयेथे तितनीहीवार नये जम आयेथे ॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीका चित्त विस्मित हुआ। वह विचारने लगे कि वारंवार उत्पन्न हुए समान तेजवाले मस्तक एक सौ, एकबार काटे गये ॥ ४८ ॥ परन्तु अबतक रावणकी आयु पूरी नहीं होती; अबतक यह रावण नहीं मरता; यह क्या बात है! वह कौशल्याजीके आनंद बढ़ानेवाले (राम) महापराक्रमीथे; वह सर्व अस्त्र शस्त्रोंहीको नहीं जानतेथे वरन् वह सब उनके निकट तैयार रहतेथे। अब रामचंद्रजीको चिन्ता उत्पन्न हुई कि आजतक जिन २ बाणोंसे मैंने महाबलवान् पराक्रमी दैत्योंको मारा ॥ ४९ ॥ ५० ॥ वही बाण रावणके वधकार्यमें निष्फल

ततोरामोवभूवाथविस्मयाविष्टमानसः ॥ शतमेकोत्तरंछिन्नंशिरसांचैकवर्चसाम् ॥४८॥ नचैवरावणःशांतोदृश्यतेजीवितक्षयात् ॥ ततः सर्वास्त्रविद्वीरःकौसल्यानंदवर्धनः ॥ ४९ ॥अस्त्रैश्चवहुभिर्युक्तश्चिंतयामासराघवः ॥ यैर्यैर्वाणैर्हतादैत्यामहासत्वपराक्रमाः ॥ ५० ॥ एतेते निष्फलंयातारावणस्यनिपातने ॥ इतिचिंताकुलेरामेसमीपस्थोविभीषणः ॥ ५१ ॥ उवाचराघवंवाक्यंब्रह्मदत्तवरोह्यसौ ॥ विच्छिन्नावाहवोऽप्यस्यविच्छिन्नानिशिरांसिच ॥५२॥ उत्पत्स्यंतिपुनःशीघ्रमित्याहभगवानजः ॥ नाभिदेशेऽमृतंतस्यकुंडलाकारसंस्थितम् ॥५३॥ तच्छोषयानलास्त्रेणतस्यमृत्युस्ततोभवेत् ॥ विभीषणवचःश्रुत्वारामःशीघ्रपराक्रमः ॥ ५४ ॥ पावकास्त्रेणसंयोज्यनाभिंविव्याधरक्षसः ॥ अनंतरंचचिच्छेदशिरांसिचमहावलः ॥ ५५ ॥ वाहूनपिचसंरब्धोरावणस्यरघूत्तमः ॥ ततोघोरांमहाशक्तिमादायदशकंधरः ॥ ५६ ॥

होगये! अब क्या किया जाय? इस प्रकार रामचंद्रजी चिन्ताकुल हो रहेथे कि इतनेमें निकट स्थित विभीषण ॥ ५१ ॥ रामजीसे कहने लगे,—"हे रघुवीर! इसको ब्रह्माजीने वर दिया है कि—इसके बाँहें और शिर कटजाने परभी ॥ ५२ ॥ वे फिर शीघ्रही नवीन हो जायँगे ऐसा ब्रह्माजीने कहा है; इसके नाभिस्थानमें कुंडलके आकारके समान अमृत रक्खा हुआ है ॥५३॥ हेराम! उस अमृतकुंडको आग्नेयास्त्र चलायकर सुखा डालिये तब इसकी मृत्यु होगी।"—रामजी पराक्रमको शीघ्र करतेथे, उन्होंने विभीषणके वचन सुनतेही ॥ ५४ ॥ आग्नेयास्त्र चलाय राक्षसकी नाभिको भेद किया फिर उसके मस्तक काटकर बाँहोंको काटा। इससमय महापराक्रमी बहुतही क्रोधित हो रहेथे फिर

रावणने एक महाभयंकर महाशक्ति उठाई व ॥५५॥५६॥ विभीषणके मारनेको उसपर चलाई, क्योंकि विभीषणपर रावणको बहुतही क्रोध आ रहाथा । श्रीरामचंद्रजीने सुवर्णालंकृत तीक्ष्ण बाण चलायकर उस शक्तिके टुकड़े २ कर डाले ॥ ५७ ॥ नौ मस्तक कट जानेपर रावणका जते जाता रहा; व रूप मलीन होगया; उनभयंकर मस्तकोंके छिन्न भिन्न होनेसे वह विरूप दिखाई देने लगा ॥ ५८ ॥ अब उसका एक मुख्यमस्तक और दो बाँहैं बच रहीं, तौ भी वह वीर रणभूमिमें शोभायमानथा । उसने फिर क्रोधित होकर अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रसमूहकी ॥ ५९ ॥ वर्षा रामचंद्रजीपर की । रामचंद्रजी भी उसपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उस समय महाभयंकर तुमुल संग्राम हुआ । देखनेवालोंके रुँयें खड़े हो

विभीषणवधार्थायचिक्षेपक्रोधविह्वलः ॥ चिच्छेदराघवोबाणैस्तांशितैर्हेमभूषितैः ॥ ५७ ॥ दशग्रीवशिरश्छेदात्तदातेजोविनिर्गतम् ॥
म्लानरूपोबभूवाथच्छिन्नैःशीर्षैर्भयंकरैः ॥ ५८ ॥ एकेनमुख्यशिरसाबाहुभ्यांरावणोबभौ ॥ रावणस्तुपुनःक्रुद्धोनानाशस्त्रास्त्रवृष्टिभिः ॥
॥ ५९ ॥ ववर्षरामंतंरामस्तथाबाणैर्ववर्षच ॥ ततोयुद्धमभूद्घोरंतुमुलंलोमहर्षणम् ॥ ६० ॥ अथसंस्मारयामाससमातलीराघवंतदा ॥
विसृज्यास्त्रंवधायास्यब्राह्मंशीघ्रंरघूत्तम ॥ ६१ ॥ विनाशकालःप्रथितोयःसुरैःसोऽद्यवर्तते ॥ उत्तमांगंनचैतस्यच्छेत्तव्यंराघवत्वया ॥६२॥
नैवशीर्ष्णिप्रभोवध्योवध्यएवाहिमर्मणि ॥ ततःसंस्मारितोरामस्तेनवाक्येनमातलेः ॥ ६३ ॥ जग्राहसशरंदीप्तंनिःश्वसंतमिवोरगम् ॥ यस्यपार्श्वेतुपवनःफलेभास्करपावकौ ॥ ६४ ॥ शरीरमाकाशमयंगौरवेमेरुमंदरौ ॥ पर्वस्वपिचविन्यस्तालोकपालामहौजसः ॥ ६५ ॥

गये ॥ ६० ॥ फिर मातलिने रामचंद्रजीको याद दिलादी कि—हे रघुवीर ! इसका वध करनेके लिये शीघ्र ब्रह्मास्त्र छोड़िये ॥ ६१ ॥ वह समय, जो रावणके नाश होनेका देवताओंने नियत कियाहै वह इस समय आगयाहै । हेराघव! आप इसका मस्तक न काटिये ॥ ६२ ॥ हे प्रभो ! मस्तकपर कितनाही प्रहार कीजिये यह नहीं मरेगा, वक्षस्थलरूप मर्मदेशमें प्रहार लगतेही यह मरजायगा । मातलिके वचन सुनकर रामजीको याद आई; तब ॥ ६३ ॥ उन्होंने सर्पके समान फुंकार मारताहुआ एक प्रदीप्त बाण हाथमें लिया; इसबाणके दोनों ओर पवन देवताको स्थापित किया गयाथा, फलकपर सूर्य और अग्नि स्थापितथे ॥ ६४ ॥ शरीर आकाशमय (अर्थात् आकाशवत् व्यापक हिरण्यगर्भरूपवाला) उसके

(बाण) भारीपनमें मेरु मन्दर पर्वतकी उपमा देना योग्य होताथा; जिसकी गांठोंपर महासमर्थ लोकपाल वसतेथे ॥ ६५ ॥ उस (बाण) का शरीर देदीप्यमान होनेसे तेज सूर्यके समानथा; श्रीरामचंद्रजीने लोकोंका भय दूर करनेवाला विलक्षण उग्र अस्त्र उस प्रचंड बाणपर वेदोक्त विधिसे अभिमंत्रित करकै वह बाण धनुषपर चढ़ाया; रामचंद्रजीकी भुजा पुष्ट व शक्तिसम्पन्न थीं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जिस समय श्रीरामचंद्रजीने वह उत्तम बाण धनुषपर चढ़ाया तिस समय सब प्राणी भयभीत हुए और पृथ्वी कंपायमान होने लगी ॥ ६८ ॥ रामजीको रावणपर अतिशय क्रोध आरहाथा; उन्होंने भली भांतिसे धनुषकी डोरीको कानतक खैंचा, और वह मर्मभेदी बाण शत्रुपर छोड़ा ! ॥ ६९ ॥ इस बाणका मुख

जाज्वल्यमानंवपुषाभातंभास्करवर्चसा ॥ तमुग्रमस्त्रंलोकानांभयनाशनमद्भुतम् ॥ ६६ ॥ अभिमंत्र्यततोरामस्तंमहेषुंमहाभुजः ॥
वेदप्रोक्तेनविधिनासंदधेकार्मुकेबली ॥ ६७ ॥ तस्मिन्संधीयमानेतुराघवेणशरोत्तमे ॥ सर्वभूतानिवित्रेसुश्चचालचवसुंधरा ॥ ६८ ॥ स
रावणायसंक्रुद्धोभृशमानम्यकार्मुकम् ॥ चिक्षेपपरमायत्तस्तमस्त्रंमर्मघातिनम् ॥ ६९ ॥ सवज्रइवदुर्धर्षोवज्रपाणिविसर्जितः ॥ कृतांतइव
घोरास्योन्यपतद्रावणोरसि ॥ ७० ॥ सनिमग्नोमहाघोरःशरीरांतकरःपरः ॥ विभेदहृदयंतूर्णंरावणस्यमहात्मनः ॥ ७१ ॥ रावणस्याहर
त्प्राणान्विवेशधरणीतले ॥ सशरोरावणंहत्वारामतूणीरमाविशत् ॥ ७२ ॥ तस्यहस्तात्पपाताशुसशरंकार्मुकंमहत् ॥ गतासुर्भ्रमिवेगे
नराक्षसेंद्रोऽपतद्भुवि ॥ ७३ ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौहतशेषाश्चराक्षसाः ॥ हतनाथाभयत्रस्तादुद्रुवुःसर्वतोदिशम् ॥ ७४ ॥

कालके समान भयंकरथा। वज्रपाणिके (इन्द्रके) हाथसे छूटे हुए वज्रके समान वह असह्य बाण रावणकी छातीपर लगा ॥ ७० ॥ और उसमें प्रवेश करगया। शरीरका नाश करनेवाले उस अति भयंकर उत्तम बाणने उस महासमर्थ रावणके वक्षस्थलको तत्काल आर पार भेददाला ॥ ७१ ॥ व रावणका प्राणलेकर पृथ्वीमें प्रवेश करगया। रावणका वध करकैं फिर वही बाण रामजीके तरकसमें आगया ॥ ७२ ॥ शीघ्र ही रावणके हाथमेंका, बाणसहित, प्रचंड धनुष नीचे गिर पडा, और वह राक्षसाधिपति बाणके उत्पन्न कियहुए भ्रमणके वेगसे प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा ! ॥७३॥ उसे पृथ्वीपर पड़ा हुआ देखकर मरणसे बचे हुए राक्षस भयभीत होते हुए दशों दिशाओंको भागने लगे, मालिकके

मरतेही आश्रितोंकी दुर्दशा हो जातीहै ।। ७४ ।। "रावणका वध और रामचंद्रजीकी जीत होनेसे विजयशाली वानर आनंदित होते हुए गर्जने लगे
।। ७५ ।। कोई २ रामचंद्रजीकी जीत हुई कहते, कोई यह कहते कि, रावण मारागया" ऐसे कह गर्जने लगे फिर आकाशमें देव दुन्दुभीकी गंभीर
ध्वनि सुनाई आने लगी ।। ७६ ।। श्रीरामचंद्रजीपर चारों ओरसे फूलोंकी वर्षा होने लगी । मुनि, सिद्ध, चारण और देवता स्तुति करने
लगे ॥ ७७ ।। अप्सराओंने आनंदमें भरकर आकाशमार्गमें जिधर तिधर नाचना आरंभ किया । रावणके शरीरमेंसे सूर्यके समान देदीप्यमान
एक तेज निकलकर ।। ७८ ।। देवताओंके सन्मुख रामजीके रूपमें मिलगया; तत्काल देवता लोग बोले कि;—"अहो ! रावणका बड़ा भाग्य है?

दशग्रीवस्यनिधनंविजयंराघवस्यच ॥ ततोविनेदुःसंहृष्टावानराजितकाशिनः ॥ ७५ ॥ वदंतोरामविजयंरावणस्यचतद्वधम् ॥ अथांतरिक्षेव्यनदत्सौम्यस्त्रिदशदुंदुभिः ॥ ७६ ॥ पपातपुष्पवृष्टिश्चसमंताद्राघवोपरि ॥ तुष्टवुर्मुनयःसिद्धाश्चारणाश्चदिवौकसः ॥ ७७ ॥
अथांतरिक्षेननृतुःसर्वतोप्सरसोमुदा ॥ रावणस्यचदेहोत्थंज्योतिरादित्यवत्स्फुरत् ॥ ७८ ॥ प्रविवेशरघुश्रेष्ठंदेवानांपश्यतांसताम् ॥
देवाऊचुरहोभाग्यंरावणस्यमहात्मनः ॥ ७९ ॥ वयंतुसात्विकादेवाविष्णोःकारुण्यभाजनाः ॥ भयदुःखादिभिर्व्याप्ताःसंसारेपरिवर्तिनः॥
॥ ८० ॥ अयंतुराक्षसःक्रूरोब्रह्महातीवतामसः ॥ परदाररतोविष्णुद्वेषीतापसहिंसकः ॥ ८१ ॥ पश्यत्सुसर्वभूतेषुराममेवप्रविष्टवान् ॥
एवंब्रुवत्सुदेवेषुनारदःप्राहसुस्मितः ॥ ८२ ॥ शृणुतात्रसुरायूयंधर्मतत्त्वविचक्षणाः ॥ रावणोराघवद्वेषादनिशंहृदिभावयन् ॥ ८३ ॥
भृत्यैःसहसदारामचरित्रंद्वेषसंयुतः ॥ श्रुत्वारामात्स्वनिधनंभयात्सर्वत्रराघवम् ॥ ८४ ॥

इसके महात्मा होनेमें कोई संशय नहीं ।। ७९ ।। हम सत्वगुणमय देवताहैं; हमपर विष्णुजीकी कृपा है; परन्तु हमभी सुख दुःखादिसे व्याप्त
होकर संसारमें भ्रमण करते रहतेहैं ॥ ८० ।। और यह रावण जातिका राक्षस, क्रूर, ब्रह्महत्या करनेवाला, अत्यन्त तामसी, पराई स्त्रियोंमें
रत, विष्णुजीका शत्रु, व तपस्वियोंको मारने वालाथा ।। ८१ ।। इतने दुर्गुण वाला होनेपरभी यह सर्व प्राणियोंके सामने रामजीके रूपमें प्रवेश
करगया ! इसको धन्य है!! ' देवताओंके वचन सुनकर नारदजीको हँसी आई, वे बोले ।। ८२ ।।" हे देवगण ! तुम लोग धर्मके तत्त्वको भलीभाँति
जानतेहो इस विषयमें एक बात सुनो—रामचंद्रजीसे रावणका वैरभाव पड़गयाथा इसकारणसे वह द्वेष करके अपने सेवकोंके सहित राम

जीका चरित्र सुनकर सर्वकाल उनका चिन्तवन करता रहता। रामजीके हाथसे मेरी मृत्यु होगी, यह कानमें पड़तेही उसको सदा जिधर तिधर ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ रामजीही दीखतेथे। स्वप्नमेंभी उसको रामही दीखैं। उसके मनमें रामजीके विषयमें क्रोधथा, परन्तु वह (क्रोध) भी गुरुके उपदेशसे अधिक योग्यताका हुआ ॥ ८५ ॥ अंतको रामजीके हाथसे मृत्यु हुई, तब उसके समस्त पाप दूर होगये और बंधन छुटगये इस कारण उसको रामरूपी सायुज्य मुक्ति प्राप्त होगई" ॥ ८६ ॥ पापी होय, दुरात्मा होय, परधन, और परस्त्रीमें लंपट होय, परन्तु निरन्तर स्नेहसे अथवा भयसे रघुकुलतिलकरूप रामचंद्रजीका चिंतवन करताहुआ मरजाय; तौ उसका अंतःकरण शुद्ध हो जाताहै, और संसारमें शत २ जन्म देने वाले दोषसे छूटकर बडे २ देवता लोग जिसको प्रणाम करते हैं ऐसे विष्णुजीके वैकुंठ धाममें चला जाताहै ॥ ८७ ॥ "रावण त्रिलोकी

पश्यन्ननुदिनंस्वप्नेराममेवानुपश्यति ॥ क्रोधोऽपिरावणस्याशुगुरुबोधाधिकोऽभवत् ॥८५॥ रामेणनिहतश्चांतेनिर्धूताशेषकल्मषः ॥ रामसायुज्यमेवापरावणोमुक्तबंधनः ॥८६॥ पापिष्ठोवादुरात्मापरधनपरदारेषुसक्तोयदिस्यान्नित्यंस्नेहाद्भयाद्वारघुकुलतिलकंभावयन्संपरेतः॥ भूत्वाशुद्धांतरंगोभवशतजनितानेकदोषैर्विमुक्तःसद्योरामस्यविष्णोःसुरवरविनुतंयातिवैकुंठमाद्यम् ॥ ८७ ॥ हत्वायुद्धेदशास्यंत्रिभुवनविषमंवामहस्तेनचापंभूमौविष्टभ्यातिष्ठन्नितरकरधृतंभ्रामयन्बाणमेकम् ॥ आरक्तोपांतनेत्रःशरदलितवपुःसूर्यकोटिप्रकाशोवीरश्रीबंधुरांगस्त्रिदशपतिनुतःपातुमांवीररामः ॥ ८८ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेरावणवधोनामैकादशःसर्गः ॥ ११ ॥

को त्रास देताथा, रामचंद्रजीने दाये हांथसे धनुष पृथ्वीमें रखकर दूसरे हाथमें लिया हुआ एक बाण घुमाते हुए खड़ेथे; उनके नेत्र कुछेक ललाई लिये हुएथे, शरीर बाणोंसे विदीर्ण होरहाथा; उनके अंगकी कांति कोटि सूर्यके समान तेजपुंज दीखतीथी; उनकी योग्यताके समान निम्नोन्नत[1] शरीरपर वीरश्री शोभायमानथी; देवतालोग उनकी स्तुतिकर रहेथे। ऐसे वह वीर रामजी हमारी रक्षाकरैं।" ॥ ८८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकांडे कात्यायनगोत्रोद्भव पं० बलदेवप्रसाद मिश्रकृतायां भाषाटीकायामेएकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

---

[1] ऊंचे शरीरपर वीरश्री शोभायमान थी।

विभीषणका शोक लक्ष्मणजीके द्वारा दूर होना फिर जानकीजीका आना और अग्निसे परीक्षा । श्रीमहादेवजी बोले हे पार्वति ! रामचंद्रजी, विभीषण,
हनुमान, अंगद, लक्ष्मण वानरराज (सुग्रीव) जांबवान और तैसेही दूसरे वीरोंको देख ॥ १ ॥ मनमें प्रसन्न हो सबसे बोले कि " तुम लोगोंके
बाहुबलसे मैंने रावणको मारा ॥ २ ॥ जगमें जबतक चंद्रमा सूर्य हैं तबतक तुम्हारी पवित्र कीर्ति रहैगी, लोक तुम्हारा चरित्र वर्णन करैंगे; व
यह कथा त्रिलोकीको पवित्र कर सकती है ॥ ३ ॥ तुम्हारी कीर्तिका वर्णन करनेवाले लोग कलिके दोषोंसे छूटतेहुए अत्युत्तम गतिको जाते
(मोक्ष पाते) हैं । " रामजी इतना कह रहेथे कि इतनेमें मन्दोदरी आई, रावणकी सब आश्रित स्त्रियां शोक करतीहुईं वहां आईं व रावणको
पृथ्वीपर पड़ाहुआ देखकर उसके आगे विलाप करनेलगीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ विभीषणकोभी बड़ा दुःख हुआ वह विह्वल होकर शोक करनेलगे; रावणके
आगे गिरकर अनेक प्रकारसे विलाप करने लगे ॥ ६ ॥ यह देखकर रामजीने लक्ष्मणजीसे कहा, " हे मानद ! विभीषणको समझाओ, विभीषण
अपने भ्राताका सत्कार करे; विलम्बसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ७ ॥ मन्दोदरीआदि रावणकी प्रिय स्त्रियां भूमिपर पडी हुईं विलाप कर रहीं हैं, विभीषणसे
कहो कि वह सर्व राक्षसियोंको निवारण करें " ॥ ८ ॥ रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणजी विभीषणके निकट गये और उन्हैं उपदेश
देनेलगे रावणके मृतक शरीरके धोरे विभीषण प्रेततुल्य होकर पड़ेथे ॥ ९ ॥ वे शोकके मारे अतिशय विह्वल हो रहेथे, यह देखकर लक्ष्म

श्रीमहादेवउवाच ॥ रामोविभीषणंदृष्ट्वाहनूमंतंतथांगदम् ॥ लक्ष्मणंकपिराजंचजांबवंतंतथापरान् ॥ १ ॥ परितुष्टेनमनसासर्वानेवाब्रवीद्वचः ॥
भवतांबाहुवीर्येणनिहतोरावणोमया ॥ २ ॥ कीर्तिःस्थास्यतिवःपुण्यायावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ कीर्तयिष्यंतिभवतांकथांत्रैलोक्यपावनीम्
॥ ३ ॥ ययोपेतांकलिहरांयास्यंतिपरमांगतिम् ॥ एतस्मिन्नंतरेदृष्ट्वारावणंपतितंभुवि ॥ ४ ॥ मंदोदरीमुखाःसर्वाःस्त्रियोरावणपालिताः
॥ पतितारावणस्याग्रेशोचंत्यःपर्यदेवयन् ॥ ५ ॥ विभीषणःशुशोचार्तःशोकेनमहतावृतः ॥ पतितोरावणस्याग्रेबहुधापर्यदेवयत्
॥ ६ ॥ रामस्तुलक्ष्मणंप्राहबोधयस्वविभीषणम् ॥ करोतुभ्रातृसंस्कारंकिंविलंबेनमानद ॥ ७ ॥ स्त्रियोमंदोदरीमुख्याःपतिता
विलपंतिच ॥ निवारयतुताःसर्वाराक्षसीरावणप्रियाः ॥ ८ ॥ एवमुक्तोऽथरामेणलक्ष्मणोऽगाद्विभीषणम् ॥ उवाचमृतकोपांतेपतितंमृतकोपमम्
॥ ९ ॥ शोकेनमहताविष्टंसौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ यंशोचसित्वंदुःखेनकोऽयंतवविभीषण ॥ १० ॥

णजीने उनसे कहा;– "हे विभीषण ! तुम जिसके लिये दुःखसहित शोक करते हो, वह तेरा कौन है? ॥ १० ॥ तैसेही तू उसका कौन है? अर्थात् जगत्की आदिमें तुम्हारा उस (देह) के साथ किंचित् भी सम्बन्ध नथा, और जगत्की प्रलयमेंभी उसके साथ किंचित्भी सम्बन्ध नहीं रहता; तो फिर मध्यम भागमें वह सम्बन्ध कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता । दृष्टान्त । जैसे पानीके समूहमें रेती बही हुई चली आती है ॥ ११ ॥ कुछ आगे चली जाती है कितनी एक भारी होनेसे नीचे रह जाती है । किसी समय उस्के कण एकत्र मिल जाते हैं और किसी समय फिर विमुक्त हो जाते हैं; तैसेही कालगति करके इस प्राणीका एक दूसरेके साथ समागम और वियोग होता है दूसरा उदाहरण देखो !

त्वंवास्यकतमःसृष्टेःपुरेदानीमतःपरम् ॥ यद्वत्तोयौघपतिताःसिकतायांतितद्वशाः ॥ ११ ॥ संयुज्यंतेवियुज्यंतेतथाकालेनदेहिनः ॥
यथाधानासुवैधानाभवंतिनभवंतिच ॥ १२ ॥ एवंभूतेषुभूतानिप्रेरितानीशमायया ॥ त्वंचेमेवयमन्येचतुल्याःकालवशोद्भवाः ॥ १३ ॥
जन्ममृत्यूयदायस्मात्तदातस्माद्भविष्यतः ॥ ईश्वरःसर्वभूतानिभूतैःसृजातिहंत्यजः ॥ १४ ॥

नाज भूननेके भाडमें जब धान्य (जौ, सत्तु) डाला गया, व नीचेसे आंच लगाई तो उसमेंके दाने किसी समय एक जगह रहते हैं और किसी समय उड़कर ऊपर नीचे गिरते हैं ॥ १२ ॥ तैसेही प्राणी काल रूपी ईश्वरकी माया करके प्रेरित होनेपर प्राणीसे ऐक्यता और वियोगता पाते हैं; अर्थात् प्राणियोंके लिये जनकभावभी केवल जीवहीके समान है, संयोग वियोगभी मायाका किया हुआ है, इसलिये शोक करना अनुचित है 'तुम'. 'यह लोग' 'हम लोग' व और दूसरे सबही कोई समान हैं; कालके वशसे सबहीका संयोग वियोग होता है ॥ १३ ॥ ईश्वरने जिस कालमें जिस करके जन्म और मृत्यु निर्माण किया है, तिसी समय उससे जन्म और मरण अवश्य होता है, इसमें जराभी फेर नहीं पड़ता । ईश्वरका जन्म नहीं है; उसने प्रथम स्वयं प्राणियोंको उत्पन्न किया; फिर उन प्राणियोंसे स्त्री पुरुष संयोग द्वारा नई सृष्टि करता है; संहार करनेवाला भी वहीहै ॥ १४ ॥

---

१ श्रीमद्भागवत षष्ठ स्कन्ध १५ अध्यायका चौथा श्लोकभी बिलकुल ऐसाही है।

जैसे छोटे २ बालक खेल देखनेकेलिये आपही मट्टीकी मूर्तियें तैयार कर यह ठहरा लेते हैं कि इनमें एक स्त्री और एक पुरुष है' फिर तीसरी एक मूर्तिको बनाकर यह व्यवहार करते हैं कि यह पहले जोड़ेके लड़का हुआ है; इस क्रीड़ाके करनेसे उनको कुछ पानेकी इच्छा नहीं होती; तैसेही ईश्वर विना इच्छाके सृष्टि और प्रलय करके लीला करता है; देहके सम्बन्धसे जीव देह बनाहुआ है (जीव देहरूपी नहीं है) जैसे बीजसे बीज उत्पन्न होता है; जीव देहसे अलगके समान (पृथक्ही) नित्य है देही (जीव) और देह यह विभाग होनेके कारण प्रथम अविवेक करके कल्पित (मिथ्या) है; अंतःकरण करके देहमें अहंता--ममता होनेसे देहका सम्बन्ध हुआ; वह सम्बन्ध वास्तविक नहीं है। जब देहीका 'मेरा' कहना वास्तविक नहीं, तब भावोंको वैसा किस प्रकारसे कहा जासकता है ? इस कारण भ्राता पुत्रादिमें ममता नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥

आत्मसृष्टैरस्वतंत्रैरनपेक्षोऽपिबालवत् ॥ देहेनदेहिनोजीवादेहाद्देहोऽभिजायते ॥ १६ ॥ बीजादेवयथाबीजंदेहान्यइवशाश्वतः ॥ देहिदेह
विभागोऽयमविवेककृतःपुरा ॥ १६ ॥ नानात्वंजन्मनाशश्चक्षयोवृद्धिःक्रियाफलम् ॥ द्रष्टुराभांत्यतद्धर्मायथाऽग्नेर्दारुविक्रियाः ॥ १७ ॥
तइमेदेहसंयोगादात्मनाभांत्यसद्ग्रहात् ॥ प्रथायथातथाचान्यद्ध्यायतोऽसत्सदाग्रहात् ॥१८॥ प्रसुप्तस्यानहंभावात्तदाभातिनसंसृतिः ॥
जीवतोऽपितथातद्वाद्विमुक्तस्यानहंकृतेः ॥ १९ ॥

॥ १६ ॥ जैसे काठके सीधे टेढ़े आदि विकारोंके वशसे आगभी टेढ़ी सीधी अनेक भांतिकी जानी जाती है; तैसे मिथ्याभूत देहमें नानात्व, जन्म, नाश, ह्रास; वृद्धि कर्मोंके सुख दुःखरूप फलोंका यह धर्म उस देहके द्रष्टा जीवपर भासता है ॥ १७ ॥ देहका व अंतःकरणका समागम होनेसे जीवको अहंता– ममतारूपी अवास्तव ग्रह उत्पन्न होता है; इस कारण देहका नानात्वादि धर्म जीवपर दिखाई देता है– भृङ्गी एक कीड़ा भ्रमरोंकी जातिका होता है; वह किसी कीड़ेको पकड़कर अपने घरमें ले जाता है; और जाते आतेमें वह शब्दभी करता है,– मारे डरके विचारे कीड़ेके मनमें भृङ्गीका रूप बसा रहता है, अंतमें उसका ध्यान करते २ वह भृङ्गीके रूपको प्राप्त हो जाता है ! तैसेही सत्य, मिथ्या, या और किसी वस्तुकाभी जीव सदा ध्यान करता रहता है, उस २ वस्तुके सत्यत्व मिथ्यात्व इत्यादि धर्म उसपर दिखाई देते हैं ॥ १८ ॥ गाढ़ी नींद होनेके समय अहंकार नहीं होता; इसलिये जीवको संसारका पसार नहीं जानपड़ता; तैसेही जीवतपनमेंभी जो प्राणी अहंकारको छोड़े रहता है, वह

मुक्तही है, उसको संसार नहीं भोगना पड़ता ॥ १९ ॥ इस कारण हे विभीषण! अहंता व ममता “मैं” “मेरा” यह ज्ञान भ्रममूलक मायाका धर्म, जो तेरे मनपर आगया है उसको छोड़ दे और सब शक्तिमान् षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न जो रामचंद्रजी हैं, उनपर मन लगाओ ॥ २० ॥ रामजी सर्व प्राणियोंके अंतर्यामी हैं; उन परिपूर्ण ईश्वरने माया करके मनुष्यरूप धारण किया है; तुम अपने मनसे बाह्य विषयोंके सम्बन्धको धीरे २ छोड़ दो ॥ २१ ॥ उन विषयोंमें दोष भरेहुए हैं ऐसी दृष्टि रक्खो। व मन आनंदरूपी श्रीरामचंद्रजीपर लाओ! भाई; पिता, माता, मित्र, प्रिय; यह सब देहकी ओर देखनेसे तो हैं ॥ २२ ॥ परन्तु जहांपर ज्ञान हुआ कि आत्मा देहसे अलग है, फिर कौन बंधु? कौन भ्राता? अथवा

तस्मान्मायामनोधर्मंजह्यहंममताभ्रमम् ॥ रामभद्रेभगवतिमनोधेह्यात्मनीश्वरे ॥ २० ॥ सर्वभूतात्मनिपरेमायामानुषरूपिणि ॥ बाह्येंद्रियार्थसंबंधात्त्याजयित्वामनःशनैः ॥ २१ ॥ तत्रदोषान्दर्शयित्वारामानंदेनियोजय ॥ देहबुद्ध्याभवेद्भ्रातापितामातासुहृत्प्रियः ॥२२॥ विलक्षणंयदादेहाज्जानात्यात्मानमात्मना ॥ तदाकःकस्यवाबंधुर्भ्रातामातापितासुहृत् ॥ २३ ॥ मिथ्याज्ञानवशाज्जातादारागारादयःसदा ॥ शब्दादयश्चविषयाविविधाश्चैवसंपदः ॥ २४ ॥ बलंकोशोभृत्यवर्गोराज्यंभूमिःसुतादयः ॥ अज्ञानजत्वात्सर्वेतेक्षणसंगमभंगुराः ॥ ॥ २५ ॥ अथोत्तिष्ठहृदारामंभावयन्भक्तिभावितम् ॥ अनुवर्तस्वराज्यादिभुंजन्प्रारब्धमन्वहम् ॥ २६ ॥ भूतंभविष्यदभजन्वर्तमानमथाचरन् ॥ विहरस्वयथान्यायंभवदोषैर्नलिप्यसे ॥ २७ ॥

माता पिता और मित्र कैसे?॥ २३ ॥ स्त्री घर इत्यादि पदार्थ शब्दादि विषयक व अनेक प्रकारकी सम्पत्ति यह सब पसारा मिथ्या ज्ञानसे उत्पन्न हुआ है ॥ २४ ॥ सैन्य, द्रव्य, भंडार, सेवकसमूह, राज्य, भूमि, पुत्र इत्यादि सारी वस्तुयें अज्ञानसे उत्पन्न हुई हैं, अज्ञानकार्यका ऐसा स्वभाव है कि वह बराबर रूप बदलता रहता है। अर्थात् वे सब वस्तु क्षणमात्रके समागमसे नाशको प्राप्त होजाती हैं; यह सिद्ध है ॥ २५ ॥ इसकारण उठ कर हृदयमें रामजीका ध्यान करो, वे प्रभु भक्ति करकें जानते हैं, प्रारब्ध कर्म भोग करकेही क्षीण करनेचाहिये। हे विभीषण! इसकारण तुम राज्यादिका उपभोग करो, और नित्य प्रजापालन करनेमें सावधान रहो॥ २६ ॥ पीछे क्या हुआ आगेको क्या होगा? अब क्या हो रहाहै, इसका कुछ

विचार न करो और आसक्त न होते हुए नीतिशास्त्रके अनुसार व्यवहार चलाओ । तब तुम्हें संसारी दोष नहीं लगेंगे ॥ २७ ॥ रामजीने तुमको आज्ञा दी है, कि भ्राता (रावण) का जो कुछ मृतक कर्म करने योग्य है वह शास्त्रकी विधिसे करो, स्त्रियें विलाप करती हैं उनको ॥ २८ ॥ समझाय बुझाय झटपट लंकामें पठाय दो।” लक्ष्मणजीके कहेहुए समस्त वचन विभीषणजीने सुनलिये ॥ २९ ॥ विभीषणजीको धर्मका भलीभाँति ज्ञान था। लक्ष्मणजीके वचनोंमें धर्म व अर्थ दोनोंकी व्यवस्था सुन्दर रीतिसे प्रतिपादन हुईथी। यह वचन सुनकर निर्मल विचारवाले विभीषणजीको समझ आई और उनका शोक व मोह दूर होगया; वह शीघ्र रामचंद्रजीके निकट आये ॥ ३० ॥ रामचंद्रजीकी सेवा करनेका और उनके कहे अनुसार चलनेका विभीषणजीने दृढ़ निश्चय करलियाथा । उन्होंने रामजीसे कहा; “हे प्रभो ! रावण घातकी, असत्य बोलनेवाला व क्रूर था; जिसने धर्माचरण व नियम छोड़कर ॥ ३१ ॥ पराई स्त्रियोंके दूषित करनेका यत्न किया; मुझको यह बात योग्य नहीं मालूम होती कि मैं ऐसे पुरुषका उत्तरकार्य करूं” यह वचन सुन विभीषणका सरलभाव देख रामचंद्रजीके मनको संतोष हुआ, उन्होंने विभीषणसे कहा ॥ ३२ ॥ विभीषण! वैर कहांतक करना चाहिये ? मरणतक । अब अपना कार्य सिद्ध होगया तुम इसका संस्कार करो । यह रावण जैसा तुमको वैसाही मुझको है । (जब जीवित था, तब दोनोंका शत्रु था अब दोनोंमेंसे किसीका नहीं) ॥ ३३ ॥ रामचंद्रजीकी आज्ञा शिरपर चढ़ाय विभीषण शीघ्रही मन्दोदरी रानीके निकट गये, यह रानी बड़ी विचारवानथी, विभीषणने उसको समझानेकी बातें कहकर ॥ ३४ ॥ समझाया धर्मात्मा

आज्ञापयतिरामस्त्वांयद्भ्रातुःसांपरायिकम् ॥ तत्कुरुष्वयथाशास्त्रंरुदतीश्चापियोषितः ॥२८॥ निवारयमहाबुद्धेलंकांगच्छंतुमाचिरम् ॥
श्रुत्वायथावद्वचनंलक्ष्मणस्यविभीषणः ॥२९॥ त्यक्त्वाशोकंचमोहंचरामपार्श्वमुपागमत् ॥ विमृश्यबुद्ध्याधर्मज्ञोधर्मार्थसहितंवचः ॥
॥ ३० ॥ रामस्यैवानुवृत्त्यर्थमुत्तरंपर्यभाषत ॥ नृशंसमनृतंक्रूरंत्यक्तधर्मव्रतंप्रभो ॥ ३१ ॥ नार्होऽस्मिदेवसंस्कर्तुंपरदाराभिमर्शिनम् ॥
श्रुत्वातद्वचनंप्रीतोरामोवचनमब्रवीत् ॥ ३२॥ मरणांतानिवैराणिनिर्वृत्तंनःप्रयोजनम् ॥ क्रियतामस्यसंस्कारोममाप्येषयथातव॥३३॥
रामाज्ञांशिरसाधृत्वाशीघ्रमेवविभीषणः॥ सांत्ववाक्यैर्महाबुद्धिराज्ञींमंदोदरींतदा ॥ ३४ ॥ सांत्वयामासधर्मात्माधर्मबुद्धिर्विभीषणः ॥
त्वरयामासधर्मज्ञःसंस्कारार्थंस्वबांधवान् ॥ ३५ ॥

विभीषणजीकी बुद्धि नित्य धर्ममें प्रवृत्त रहतीथी, उन पूर्णज्ञानीने अपने भ्राताका उत्तर कार्य करनेकेलिये अपने बंधुजनोंको शीघ्रता कराई ॥ ३५ ॥ रावणके शवको विभीषणजीने चितापर चढ़ाया व पितृमेधकी विधिके अनुसार शास्त्रोक्त पद्धतिसे जिसप्रकार अग्निहोत्रीक मृतका कर्म किया जाता है॥ ३६ ॥ तैसेही बंधुजन व मंत्री लोगोंके सहित उसका उत्तर कार्य किया । विभीषणजीने विधिके अनुसार उसको अग्नि लगाई ॥ ३७ ॥ स्नान करकै भीगाही वस्त्र पहरे हुए दर्भयुक्त तिलोदक विधि पूर्वक अर्पण किया॥ ३८॥ उसको जलांजलि दी, शिरसे प्रणाम किया, फिर उन्होंने सांत्वनाके वचन कहकर स्त्रियोंका शोक दूर किया ॥ ३९ ॥ व उनसे लौट जानेको कहा, तब सब स्त्रियोंने नगरमें प्रवेश किया । सारी राक्षसीयोंके लंकामें चले

चित्यांनिवेश्यविधिवत्पितृमेधविधानतः ॥ आहिताग्नेर्यथाकार्यंरावणस्यविभीषणः ॥ ३६ ॥ तथैवसर्वमकरोद्बंधुभिःसहमंत्रिभिः ॥ ददौचपावकंतस्यविधियुक्तंविभीषणः ॥ ३७ ॥ स्नात्वाचैवार्द्रवस्त्रेणतिलान्दर्भाभिमिश्रितान् ॥ उदकेनचसंमिश्रान्प्रदायविधिपूर्वकम् ॥ ॥ ३८ ॥ प्रदायचोदकंतस्मैमूर्ध्नाचैनंप्रणम्यच ॥ ताःस्त्रियोऽनुनयामाससांत्वमुक्त्वापुनःपुनः ॥ ३९ ॥ गम्यतामितिताःसर्वाविविशुर्नगरंतदा ॥ प्रविष्टासुचसर्वासुराक्षसीषुविभीषणः ॥ ४० ॥ रामपार्श्वमुपागत्यतदातिष्ठद्विनीतवत् ॥ रामोऽपिसहसैन्येनससुग्रीवःसलक्ष्मणः ॥ ४१ ॥ हर्षंलेभेरिपून्हत्वायथावृत्रंशतक्रतुः ॥ मातलिश्चतदारामंपरिक्रम्याभिवंद्यच ॥ ४२ ॥ अनुज्ञातश्चरामेणययौस्वर्गंविहायसा ॥ ततोहृष्टमनारामोलक्ष्मणंचेदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ विभीषणायमेलंकाराज्यंदत्तंपुरैवहि ॥ इदानीमपिगत्वात्वंलंकामध्येविभीषणम् ॥ ४४ ॥ अभिषेचयविप्रैश्चमंत्रवद्विधिपूर्वकम् ॥ इत्युक्तोलक्ष्मणस्तूर्णंजगामसहवानरैः ॥ ४५ ॥

जानेपर विभीषण ॥ ४० ॥ रामचंद्रजीके निकट जाय नम्रतासे खड़े रहे; जिसप्रकार पहले इन्द्रको वृत्रासुरके मारनेपर हर्ष हुआथा तैसेही अब शत्रुका वध होजानेसे रामजी, उनकी सेना, सुग्रीव; लक्ष्मण इन सबको आनंद हुआ। तिससमय मातलिभी प्रदक्षिणा करकै रामचंद्रजीको नमस्कार कर ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उनकी आज्ञा पाय आकाश मार्गसे स्वर्गको गया । इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजी आनंदित अंतःकरणसे युक्त होकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥४३॥ "हे लक्ष्मण ! हमने पहलेही विभीषणजीको लंकाका राज्य दे दियाहै; परन्तु तुम अभी जायकर लंकामें विभीषणका ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणोंसे विधिपूर्वक वेद पढ़वाय अभिषेक कराओ " रामजीकी ऐसी आज्ञा पाय लक्ष्मणजी वानरोंको साथ लेकर चले ॥ ४५ ॥

उन्होंने लंकामें पहुँच सुवर्णके कलशोंमें समुद्रका जल भरवाकर मँगाया । तिस्से बुद्धिमान राक्षसेन्द्रका (विभीषणका) बडी धूमधामके साथ अभिषेक किया ॥ ४६ ॥ फिर लक्ष्मणजीके साथ विभीषणजी भेंट करकै आगे रामचंद्रजीके पास चले, उनके साथ नगरवासीभी भेटके लिये अनेक प्रकारकी वस्तु हाथमें लेकर चलते हुए ॥४७॥ सब रामचंद्रजीके निकट आय पहुँचे—रामचंद्रजीने अपना कार्य सरलतासे पूरा करलियाथा। विभीषणजीने उनको दंडवत प्रणाम किया, विभीषणके शरीरपर राजचिह्न देखकर रामचंद्रजीको आनंद हुआ ॥ ४८ ॥ वह अपनेको कृतकृत्य मानने लगे; लक्ष्मणजीकोभी वैसेही धन्यता मालूम हुई; इसके उपरान्त रामचंद्रजी सुग्रीवको हृदयसे लगाकर बोले ॥ ४९ ॥ हे वीर! हे पापरहित !

लंकांसुवर्णकलशैःसमुद्रजलसंयुतैः ॥ अभिषेकंशुभंचक्रेराक्षसेंद्रस्यधीमतः ॥ ४६ ॥ ततःपौरजनैःसार्धनानोपायनपाणिभिः ॥ विभीषणःससौमित्रिरुपायनपुरस्कृतः ॥ ४७ ॥ दंडप्रणाममकरोद्रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ रामोविभीषणंदृष्ट्वाप्राप्तराज्यंमुदान्वितः ॥ ४८ ॥ कृतकृत्यमिवात्मानममन्यतसहानुजः ॥ सुग्रीवंचसमालिंग्यरामोवाक्यमथाब्रवीत् ॥ ४९ ॥ सहायेनत्वयावीरजितोमेरावणोमहान् ॥ विभीषणोऽपिलंकायामभिषिक्तोमयानघ ॥ ५० ॥ ततःप्राहहनूमंतं पार्श्वस्थंविनयान्वितम् ॥ विभीषणस्यानुमतेगच्छत्वंरावणालयम् ॥ ५१ ॥ जानक्यैसर्वमाख्याहिरावणस्यवधादिकम् ॥ जानक्याःप्रतिवाक्यंमेशीघ्रमेवनिवेदय ॥ ५२ ॥ एवमाज्ञापितोधीमान्रामेणपवनात्मजः ॥ प्रविवेशपुरींलंकांपूज्यमानोनिशाचरैः ॥ ५३ ॥ प्रविश्यरावणगृहंशिंशपामूलमाश्रिताम् ॥ ददर्शजानकींतत्रकृशां दीनामनिंदिताम् ॥ ५४ ॥

महाप्रतापी रावणका जीतना और विभीषणका लंकामें राज्याभिषेक इन दोनों कार्योंके मेरे हाथसे होजानेका कारण केवल तुम्हारी सहायताका मिलनाही है ॥ ५० ॥ इसके उपरान्त विनीतभावसे बगलमें खडे हुए हनुमानजीसे रामजीने कहा;—“हे हनुमंत ! विभीषणकी आज्ञा लेकर (क्योंकि अब यह लंकाके राजा होगये) तुम शीघ्र रावणके मंदिरमें जाओ ॥ ५१ ॥ रावणके वधादिका सर्व वृत्तान्त जानकीको सुनाओ; जानकीजी जो कुछ उत्तर दे वह तत्काल आयकर मुझसे निवेदन करो ।” ॥ ५२ ॥ रामचंद्रजीकी ऐसी आज्ञा पाय महाबुद्धिमान् हनुमानजी लंकामें प्रवेश करतेहुए । अब राक्षस लोग उनका सत्कार करनेलगे ! “यथा राजा तथा प्रजाः !” ॥ ५३ ॥ रावणके मंदिरमें प्रवेश करनेपर

शिंशुपा वृक्षकी जडमें बैठीहुई साध्वी जानकीजी उनको दिखाईदी । उनका शरीर कृश व दीन दिखाईदेताथा ॥ ५४ ॥ राक्षसियोंके बीचमें बैठीहुई वह रामचंद्रजीका ध्यान करतीथी । हनुमानजीने उनको झुककर प्रणाम किया ॥ ५५ ॥ फिर वह वानरेश्वर भक्तिसहित हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े रहे, तिनको देखकर जानकीजी क्षणभरलों चुप रहीं । इतनेहीमें उनको पहली याद आई ॥ ५६ ॥ हनुमानजीको रामचंद्रजीका दूत पहँचानकर आनंदके मारे उनका मुख प्रसन्न होगया । उनका सुन्दर व गंभीर मुख देख हनुमानजीने रामचंद्रजीका संदेशा उनसे कहना आरंभ किया ॥ ५७॥ "हे देवी ! सुग्रीव, सहायकर्ता विभीषण, वानर सेना और लक्ष्मणजीके सहित रामचंद्रजी कुशलसे हैं । उन्होंने ॥ ५८ ॥

राक्षसीभिःपरिवृतांध्यायंतींराममेवहि ॥ विनयावनतोभूत्वाप्रणम्यपवनात्मजः ॥ ५५ ॥ कृतांजलिपुटोभूत्वाप्रह्वोभक्त्याग्रतःस्थितः ॥
तंदृष्ट्वाजानकीतूष्णींस्थित्वापूर्वस्मृतिंययौ ॥ ५६ ॥ ज्ञात्वातंरामदूतंसाहर्षात्सौम्यमुखीभवत् ॥ सतांसौम्यमुखींदृष्ट्वातस्यैपवननं
दनः ॥ रामस्यभाषितंसर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ५७ ॥ देविरामःससुग्रीवोविभीषणसहायवान् ॥ कुशलीवानराणांचसैन्यैश्चसह
लक्ष्मणः ॥ ५८ ॥ रावणंससुतंहत्वासबलंसहमंत्रिभिः ॥ त्वामाहकुशलंरामोराज्येकृत्वाविभीषणम् ॥ ५९ ॥ श्रुत्वाभर्तुःप्रियंवाक्यंहर्ष
गद्गदयागिरा ॥ किंतेप्रियंकरोम्यद्यनपश्यामिजगत्त्रये ॥ ६० ॥ समंतेप्रियवाक्यस्यरत्नान्याभरणानिच ॥ एवमुक्तस्तुवैदेह्याप्रत्युवाचप्लु
वंगमः ॥ ६१ ॥ रत्नौघाद्विविधाद्वापिदेवराज्याद्विशिष्यते ॥ हतशत्रुंविजयिनंरामंपश्यामिसुस्थिरम् ॥ ६२ ॥

पुत्र व मंत्रियोंके सहित रावणका वध किया, राज्यपर विभीषणको स्थापित किया । और कुशल कहनेके लिये तुम्हारे पास मुझे भेजा है।" ॥ ५९ ॥ अपने प्यारे पतिका प्रेम संदेश सुनकर जानकीजी अतिशय आनंदित हुईं; उन्होंने गद्गदवाणीसे हनुमानजीसे कहा—"आज मैं तुम्हारा क्या प्रियकार्य करूं? तुमने जो हमे प्रिय समाचार सुनायाहै; त्रिलोकीमें ॥ ६० ॥ जो अनेक रत्न और भूषण हैं, उनमेंसे एक भी इस प्रिय वचनकी बरोबरी करनेवाला नहीं (कोईभी रत्न या भूषण देदूं; पर तुमने जो यह संदेश सुनायकर मुझे आनंद दियाहै उसका बदला नहीं हो सकता) जानकीजीके ऐसा कहनेपर वानरने प्रत्युत्तर दिया ॥ ६१ ॥ "हे देवि ! विविध रत्नोंके समूह तो एक ओर रहे, बहुत तो क्या देवता

ओंके राज्यसेभी मुझे रामजीके दर्शनकी योग्यता अधिक दिखाई देतीहै वह प्रभु इस समय शत्रुको मारकर और जीतकर पूर्णपनसे स्थिर हुए हैं मुझे उनका दर्शन मिलगया (इस्सेही मुझे सब कुछ मिलगया) ॥ ६२ ॥ हनुमानजीके वचन सुनकर जानकीजीने उनसे कहा;– " हे हनुमंत ! तुम्हारा दर्शन मुझे चंद्रमाके समान शीतल व सुखकर मालूम होताहै । संसारमें जो सुखदायक गुणहैं वे सब तुममें पूर्णहैं ॥ ६३ ॥ अब मेरी इच्छा है कि मुझे रामजीका दर्शन मिले । रामजीसे तुम हमारी शीघ्र भेंट कराओ (अर्थात् तुम रामजीके पास जायकर कहो कि वे मुझे आनेकी आज्ञा दें) हनुमानजी ' अच्छा ' कह उनका वंदनकर रामचंद्रजीके दर्शनको चले ॥ ६४ ॥ उन्होंने जानकीजीके समस्त वचन रामजीके

तस्यतद्वचनंश्रुत्वामैथिलीप्राहमारुतिम् ॥ सर्वेसौम्यगुणाःसौम्यत्वय्येवपरिनिष्ठिताः ॥ ६३ ॥ रामंद्रक्ष्यामिशीघ्रंमामाज्ञापयतुराघवः॥
तथेतितांनमस्कृत्ययथौद्रष्टुंरघूत्तमम् ॥ ६४ ॥ जानक्याभाषितंसर्वंरामस्याग्रेन्यवेदयत् ॥ यन्निमित्तोऽयमारंभःकर्मणांचफलोदयः ॥
॥ ६५ ॥ तांदेवींशोकसंतप्तांद्रष्टुमर्हसिमैथिलीम् ॥ एवमुक्तोहनुमतारामोज्ञानवतांवरः ॥ ६६ ॥ मायासीतांपरित्यक्तुंजानकीमनलेस्थि
ताम् ॥ आदातुंमनसाध्यात्वारामःप्राहविभीषणम् ॥६७ ॥ गच्छराजञ्जनकजामानयाशुममांतिकम् ॥ स्नातांविरजवस्त्राढ्यांसर्वाभरणभू
षिताम् ॥ ६८ ॥ विभीषणोऽपितच्छ्रुत्वाजगामसहमारुतिः ॥ राक्षसीभिःसुवृद्धाभिःस्नापयित्वातुमैथिलीम् ॥ ६९ ॥ सर्वाभरणसंप
न्नामारोप्यशिबिकोत्तमे ॥ याष्टीकैर्बहुभिर्गुप्तांकंचुकोष्णीषिभिःशुभाम् ॥ ७० ॥

आगे निवेदन किये;– " जिस लिये आपने यह धूम धाम की, व जो युद्धादि कर्मका फल है ॥ ६५ ॥ उन देवी जानकीजीको आप अवलोकन करें वह मारे शोकके बहुत संतप्त होगईहैं । " हनुमानजीने ज्ञानवानपुरुषोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजीकी इस प्रकारसे प्रार्थना की ॥ ६६ ॥ तब रामचंद्रजीने अपने मनमें, मायाकी सीताको त्यागकरने और अग्निमें रक्खीहुई जानकीजीको निकालनेका निश्चय करके विभीषणसे कहा;– ॥ ६७ ॥ हेराजन् ! जानकीजीको जायकर शीघ्र मेरे पास लेआओ; उनको स्नानकराय निर्मल वस्त्र पहराय सर्व अलंकार धारण कराओ ॥ ६८ ॥ विभीषणभी वह आज्ञा सुनकर हनुमानजीको साथ ले वहां गये । उन्होंने वृद्ध२राक्षसियोंसे जानकीजीको मंगल स्नान करवाया ॥ ६९ ॥ सर्व गहने

पहराये व उत्तम पालकीमें बैठाया । बहुतसे वेतधारी पुरुष उस सुन्दरीकी रक्षा कररहेथे; उनके अंगमें जामा और मस्तकोंपर पगड़ियां थीं इस प्रकारसे सीताजी रामजीके पासको चलीं ॥ ७० ॥ समस्त वानर जानकीजीको देखनेके लिये आगे २ जानेलगे । वेतधारी पुरुष चारों ओरसे उनको निवारण करनेलगे ॥ ७१ ॥ ‘ हटो, बचो ! ’ करतेहुए सब जन श्रीरामचंद्रजीके निकट जाय पहुँचे । उन (सीताजी) को पालकीमें बैठी हुई देखकर दूरसेही श्रीरामचंद्रजी बोलेः– ॥ ७२ ॥ “ हे विभीषण ! कंचुकी लोग वानरोंको क्यों रोकते हैं? सर्व वानर सीताको माताके समान देखेंगे (उनको सीताके दर्शन कराओ) ॥ ७३ ॥ सीता पांव पयादे मेरे पास आवें (पालकीमें कैसे बैठी हैं?) रामजीके यह वचन

तांद्रष्टुमागताःसर्वेवानराजनकात्मजाम् ॥ तान्वारयंतोबहवःसर्वतोवेत्रपाणयः ॥ ७१ ॥ कोलाहलंप्रकुर्वंतोरामपार्श्वमुपाययुः ॥ दृष्ट्वातां
शिविकारूढांदूरादथरघूत्तमः ॥ ७२ ॥ विभीषणकिमर्थंतेवानरान्वारयंतिहि ॥ पश्यंतुवानराःसर्वेमैथिलींमातरंयथा ॥ ७३ ॥ पादचारे
णसाऽऽयातुजानकीममसन्निधिम् ॥ श्रुत्वातद्रामवचनंशिविकादवरुह्यसा ॥ ७४ ॥ पादचारेणशनकैरागतारामसन्निधिम् ॥ रामोऽपिदृ
ष्ट्वातांमायासीतांकार्यार्थनिर्मिताम् ॥ ७५ ॥ अवाच्यवादान्बहुशःप्राहतांरघुनंदनः ॥ अमृष्यमाणासासीतावचनंराघवोदितम् ॥ ७६ ॥
लक्ष्मणंप्राहमेशीघ्रंप्रज्वालयहुताशनम् ॥ विश्वासार्थंहिरामस्यलोकानांप्रत्ययायच ॥ ७७ ॥ राघवस्यमतंज्ञात्वालक्ष्मणोऽपितदैवहि॥
महाकाष्ठचयंकृत्वाज्वालयित्वाहुताशनम् ॥ ७८ ॥

सुनतेही जानकीजी पालकीसे नीचे उतरी व ॥ ७४ ॥ पाँव २ चलतीहुई हौले २ रामजीके निकट आईं । रामजी जानतेथे कि यह यथार्थ सीता नहीं वरन किसीकार्यके लिये मायासे एक नवीन बनाई गईं हैं, तौ भी उनको देखतेही ॥ ७५ ॥ रामजी “ तुम परपुरुषके घर रहीहो, तुमको धिक्कारहै ! ” इत्यादि अनेक दुर्वचन कहतेहुए । रामचंद्रजीके उच्चारण कियेहुए शब्द जानकीजीसे सहन नहीं होसके वह ॥ ७६ ॥ लक्ष्मणजीसे बोलीं; “ मेरे लिये अग्निकी चिता तैयार कराओ, मैं रामचंद्रजीके विश्वासके अर्थ, और लोगोंको यह बतानेकेलिये कि मेरा पतिव्रत सच्चा है अग्निमें स्नानकरकै शुद्धहोऊंगी ”॥ ७७ ॥ रामचंद्रजीके मनकी भी यही इच्छा जान शीघ्रही लक्ष्मणजीने एक काठकी बड़ी राशि एकत्रकर

उसमें आग लगादी । इतना कार्यकरकै वह शत्रुओंके दमन करनेवाले वीर (लक्ष्मणजी) रामचंद्रजीके निकट जाय सावधान हो खडे रहे; सब लोग देवता और राक्षसियोंकी स्त्रियां यह अद्भुत बात देखनेको वहां आईंथीं; फिर सीताजीने भक्ति सहित रामचंद्रजीकी परिक्रमाकर ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ देवता और ब्राह्मणोंको नमस्कार किया; व अग्निके निकट जाय हाथ जोड़कर प्रतिज्ञाकी ।। " जो मेरा अंतःकरण कभी ॥ ८० ।। रामचंद्रजीसे अलग नहीं हुआहो तौ सर्व लोकोंको प्रत्यक्ष देखनेवाले भगवान् अग्नि सदा मेरी रक्षाकरें " (शीतल होवैं) ।। ८१ ।। तिस समय इतना कहकर सीताजीने अग्निकी प्रदक्षिणाकी और उस भडकतीहुई अग्निमें प्रवेश किया । उस साध्वीके मनमें अपनी पवित्रताका पूर्ण भरोसाथा; इसकारण

रामपार्श्वमुपागम्यतस्थौतूष्णीमरिंदमः ॥ ततःसीतापरिक्रम्यराघवंभक्तिसंयुता ॥ ७९ ॥ पश्यतांसर्वलोकानांदेवराक्षसयोषिताम् ॥
प्रणम्यदेवताभ्यश्चब्राह्मणेभ्यश्चमैथिली ॥ ८० ॥ बद्धांजलिपुटाचेदमुवाचाग्निसमीपगा ॥ यथामेहृदयंनित्यंनापसर्पतिराघवात् ॥ ८१ ॥
तथालोकस्यसाक्षीमांसर्वतःपातुपावकः ॥ एवमुक्त्वातदासीतापरिक्रम्यहुताशनम्॥ ८२ ॥ विवेशज्वलनंदीप्तंनिर्भयेनहृदासती॥८३॥
दृष्ट्वाततोभूतगणाःससिद्धाःसीतांमहावह्निगतांभृशार्ताः ॥ परस्परंप्राहुरहोससीतांरामःश्रियंस्वांकथमत्यजज्ज्ञः॥ ८४ ॥ इतिश्रीमदध्या
त्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेद्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ ततःशक्रःसहस्राक्षोयमश्चवरुणस्तथा ॥
कुवेरश्चमहातेजाःपिनाकीवृषवाहनः ॥ १ ॥ ब्रह्माब्रह्मविदांश्रेष्ठोमुनिभिःसिद्धचारणैः ॥ पितरोऋषयःसाध्यागंधर्वाप्सर सोरगाः ॥ २ ॥
एतेचान्येविमानाग्र्यैराजग्मुर्यत्रराघवः ॥ अब्रुवन्परमात्मानंरामंप्रांजलयश्चते ॥ ३ ॥

उनको भय नहीं लगा ।। ८२ ॥ सिद्ध लोगोंके साथ सर्वप्राणी सीताजीको प्रचंड अग्निमें प्रवेश करता हुआ देख परस्पर हौले २ कहने लगे । अरे राम ! यह तौ सर्वकालके जानने वालेहैं, फिर उन्होंने अपनी लक्ष्मीरूप सीताका कैसे त्यागकरा ? अर्थात् उनको अग्निमें प्रवेशकरनेकी आज्ञा कैसे दीहै? ॥ ८३॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वर संवादे युद्धकांडे भाषाटीकायां द्वादशः सर्गः ।। १२ ।। रामचंद्रजीका सीताजीके साथ अयोध्याको लौटना ॥ महादेवजी बोले कि—हे पार्वति! फिर भगवान् सहस्र नेत्रवाले इन्द्र, यम, वरुण महातेजस्वी कुबेर, नंदिवाहन पिनाकपाणि (महादेवजी)॥ १ ॥ मुनि, सिद्ध, चारण, इनके साथ ब्रह्मवादियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी, पितर, ऋषि, साध्य, गंधर्व, अप्सरा, सर्प ।। २ ।। व और भी दूसरे देवता

लोग उत्तम विमानोंमें बैठकर वहां आये जहां रामचंद्रजीथे; वे हाथ जोडकर उनसे बोले ॥ ३ ॥ हे रघुवीर! आप ज्ञानरूप हैं; आप सर्व लोकोंको उत्पन्न करकै उनके कर्मोंको प्रत्यक्ष देखतेहैं आप वसुलोगोंमेंसे आठवें वसुहैं, रुद्रगणमें आप शंकरहैं ॥ ४ ॥ आप चतुर्मुख ब्रह्माजीके रूपसे सर्व लोकोंकी उत्पत्ति करतेहैं; अश्विनी कुमार आपकी नाकके छिद्र हैं, चंद्रमा सूर्य आपके नेत्रहैं ॥ ५ ॥ आप संसारके उत्पन्न करने और नाश करनेवाले होनेसे नित्य हैं, तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं है। आपका उदयसर्वकाल होता रहताहै (आपमें रातदिनका भेद नहींहै) आपका स्वरूप नित्य शुद्ध, नित्य ज्ञानरूप, नित्यमुक्त व भेदभावरहित है; जो लोग आपकी मायासे घिरे हुए हैं उनको आप मनुष्यरूपी भासते हैं। हे राम! अपना नाम

कर्तात्वंसर्वलोकानांसाक्षीविज्ञानविग्रहः ॥ वसूनामष्टमोऽसित्वंरुद्राणांशंकरोभवान् ॥ ४ ॥ आदिकर्तासिलोकानांब्रह्मात्वंचतुराननः ॥
अश्विनौघ्राणभूतौतेचक्षुषीचंद्रभास्करौ ॥ ५ ॥ लोकानामादिरंतोऽसिनित्यएकःसदोदितः ॥ सदाशुद्धःसदाबुद्धःसदामुक्तोऽगुणोऽद्वयः
॥६॥त्वन्मायासंवृतानांत्वंभासिमानुषविग्रहः ॥ त्वन्नामस्मरतांरामसदाभासिचिदात्मकः ॥७॥ रावणेनहृतंस्थानमस्माकंतेजसासह ॥
त्वयाद्यनिहतोदुष्टःपुनःप्राप्तंपदंस्वकम् ॥ ८ ॥ एवंस्तुवत्सुदेवेषुब्रह्मासाक्षात्पितामहः ॥ अब्रवीत्प्रणतोभूत्वारामंसत्यपथेस्थितम् ॥९॥
ब्रह्मोवाच ॥ वंदेदेवंविष्णुमशेषस्थितिहेतुंत्वामध्यात्मज्ञानिभिरंतर्हृदिभाव्यम् ॥ हेयाहेयद्वंद्वविहीनंपरमेकंसत्तामात्रंसर्वहृदिस्थंदृशि
रूपम् ॥१०॥ प्राणापानौनिश्चयबुद्ध्याहृदिरुद्ध्वाछित्त्वासर्वंसंशयबंधंविषयौघान् ॥ पश्यंतीशंयंगतमोहायतयस्तंवंदेरामंरत्नकिरीटंरवि
भासम् ॥ ११ ॥

स्मरण करनेवालोंको आप नित्य चैतन्यरूपी ज्ञात होतेहैं ॥६॥७॥ रावणने हम लोगोंका स्थान और तेजभी हर लियाथा; परन्तु आज अपने उस दुष्टका वध कर डाला; इसलिये हमको अपना पद फिर प्राप्त होगया ॥८॥ (महादेवजी बोले; हे पार्वति!) रामजी सत्यमार्गका अवलंबन कियेहुए हैं। देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर, साक्षात् पितामह ब्रह्माजी नम्र होकर रामचंद्रजीकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोलेः— हे देव विष्णुरूपी रघुवीर! मैं तुम्हें वंदन करताहूं; आप सब जगत्के पालन करनेवाले हैं, ब्रह्मज्ञानी लोग हृदयमें आपका ध्यान किया करते हैं। आपमें त्याज्य (दुःखसाधन) भेद नहीं है। आप परिपूर्ण, एक सत्तारूपी, सर्वके हृदयमें रहनेवाले व ज्ञानमय हैं ॥ १० ॥ जिनके तमोगुणका नाश हो

गया है वह यती किसी प्रकारसे भी हो भगवानका दर्शन करना चाहिये ऐसा निश्चय कर प्राण व अपान वायुको हृदयमें रोक सारे संशय बंधनका व विषय समूहोंका भेद करते हैं, तब उनको जिनका दर्शन मिलता है; उन परमेश्वरने रामरूपसे यहां अवतार लिया है। उनके मस्तकपर रत्न जड़ित मुकुट हैं, व उनकी अंगकांति सूर्यके समान है; मैं उनका वंदन करताहूं ॥ ११ ॥ उन प्रभुको मायाका गुण स्पर्श नहीं कर सकता; वह लक्ष्मीके पति हैं; सर्वके आदि कहिये जगके आदिकारण आपही हैं; उनके स्वरूपका देशतः किंवा कालतः परिमाण नहीं है (वह सर्वव्यापी और त्रिकालमें समान रहनेवाले) वह मोहका नाश करते हैं; इसलिये मुनि उनका वंदन करते हैं; योगी पुरुषोंके ज्ञानके विषय वही हैं; योगमार्ग उन्होंनेही प्रवृत्त किया है; वह परिपूर्ण ईश्वर स्वयं रमणीय होनेसे सब लोकोंमें रमण करते हैं; मैं उन रामचंद्रजीको नमस्कार करताहूं ॥ १२ ॥

मायातीतंमाधवमाद्यंजगदादिंमानातीतंमोहविनाशंमुनिवंद्यम्॥योगिध्येयंयोगविधानंपरिपूर्णंवंदेरामंरंजितलोकंरमणीयम् ॥१२॥ भावा
भावप्रत्ययहीनंभवमुख्यैर्भोगासक्तैरर्चितपादांबुजयुग्मम् ॥ नित्यंशुद्धंबुद्धमनंतंप्रणवाख्यंवंदेरामंवीतमशेषासुरदावम् ॥१३ ॥ त्वंमेना
थोनाथितकार्याखिलकारीमानातीतोमाधवरूपोऽखिलधारी ॥ भक्त्यागम्योभावितरूपोभवहारीयोगाभ्यासैर्भावितचेतःसहचारी॥१४॥

भाव और अभाव वस्तुसे रहित हो इस्से अनिर्वचनीय ज्ञानके विषय हो, अर्थात् भाव कहिये दिखाते हुए पदार्थ, और अभाव कहिये न दीखने वाले पदार्थोंसे रहित, भोगमें प्रीति न करनेवाले महादेवादि मुख्य देवता आपके चरणकमलकी पूजा करते हैं। आपको तीनकाल बाधा नहीं कर सकते, शुद्ध हो, मायाके गुण आपको नहीं छू सकते, ज्ञान मूर्ति हो, देशकालादि परिमाणरहित हो, प्रणव[1] आपका नाम है,–आप सर्व असुरोंका नाश करते हैं तथापि आपमें राग द्वेष नहीं है, ऐसे श्रीरामचंद्रजीको मैं प्रणाम करताहूं ॥ १३ ॥ हे राम! आप हमारे स्वामी हैं, क्योंकि मैंने जिस अर्थ आपकी प्रार्थनाकीथी वह सब कार्य आपने पूरा कर दिया;आपके स्वरूपका परिमाण नहीं। लक्ष्मीपति विष्णुजी आपहीके रूप हैं; आपसब जगका पोषण करते हैं, वा अनन्यभावसे शरण जानेवालोंको प्राप्त होते हैं; जो लोग आपके स्वरूपका ध्यान करते हैं; उनके संसारी बंधन आप दूर

---

[1] "तस्य वाचकः प्रणवः" उसका नाम प्रणव है। पातंजल योगसूत्रमें समाधि पादका यह सत्ताईसवां सूत्र है।

करते हैं; योगाभ्यास करकै जिनके अंतःकरण पवित्र हुए हैं; उनमें आप संचार करते हैं (उनकी वृत्तिको जानते हैं) ॥ १४ ॥ लोक समूहके उत्पन्न करनेवाले; और अंतमें प्रलय करनेवाले लोकके परम ईश्वरहो । लौकिक प्रमाणसे अपनापनमें नहीं आते; ऐसे भक्तिमान् और श्रद्धालु जनों करके भजनेके लायक कमलके समान श्यामसुन्दर श्रीरामचंद्रजीको मैं नमस्कार करताहूं ॥ १५ ॥ हे लक्ष्मीपते ! आपका स्वरूप यच्चयावत् परिमाणोंसे परे है; इसकारण आप किसी परिमाणमें नहीं आसक्के संसारमें सर्व लोक इन्द्रियादि प्रमाणपर आसक्त रहते हैं; उनमेंसे कोई पुरुष आपको नहीं जान सकता; मुनिजन आपको बड़ा मान देते हैं; आप कृष्णावतार लेकर वृन्दावनमें घूमे । व तिस वेलाभी सब देवताओंने आपका वन्दन किया । वास्तवमें आप महादेवादि देवताओंके वंदनीय हैं, कारण, परमसुखके कंद (उत्पादक) आपको मैं प्रणाम करताहूं॥ १६ ॥पृथक् २

त्वामाद्यंतंलोकततीनांपरमीशंलोकानांनोलौकिकमानैरधिगम्यम् ॥ भक्तिश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीयंवंदेरामंसुंदरमिंदीवरनीलम् ॥ १५ ॥
कोवाज्ञातुंत्वामतिमानंगतमानंमानासक्तोमाधवशक्तोमुनिमान्यम् ॥ वृंदारण्येवंदितवृंदारकवृंदंवंदेरामंभवसुखवंद्यंसुखकंदम् ॥ १६ ॥
नानाशास्त्रैर्वेदकदंबैःप्रतिपाद्यंनित्यानंदंनिर्विषयज्ञानमनादिम् ॥ मत्सेवार्थमानुषभावंप्रतिपन्नंवंदेरामंमरकतवर्णमथुरेशम् ॥१७॥ श्रद्धायुक्तोयःपठतीमंस्तवमाद्यंब्राह्मंब्रह्मज्ञानविधानंभुविमर्त्यः॥रामंश्यामंकामितकामप्रदमीशंध्यात्वाध्यातापातकजालैर्विगतःस्यात् ॥१८॥
श्रुत्वास्तुतिंलोकगुरोर्विभावसुःस्वांकेसमादायविदेहपुत्रिकाम् ॥ विभ्राजमानांविमलारुणद्युतिंरक्तांबरांदिव्यविभूषणान्विताम् ॥ १९ ॥

शास्त्र और वेदसमूहसे प्रतिपादन करनेके लायक नित्य आनंदमूर्ति, बाह्य विषयके ज्ञानसे आप नहीं जाने जाते,आप अनादि हैं; हमारे रावणादि शत्रुका नाश करनेके लिये आपने अवतार लिया है; आपका रंग मरकत मणिके समान है मथुराके ईश्वर (कृष्ण) हो, ऐसे आपकी राममूर्तिको मैं नमस्कार करताहूं । " ॥ १७ ॥ (महादेवजी बोले कि हे पार्वति !) जो मनुष्य श्रद्धासे, श्यामवर्ण, इच्छावर देनेवाले, समर्थ श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करके, मुख्य ब्रह्मज्ञानके देनेवाले ब्रह्माजीके कहेहुए आदिस्तवको पृथ्वीपर पढ़े; उस ध्यान करनेवालेके पातक दूर हो जाते हैं ॥ १८ ॥ लोकपितामह (ब्रह्माजी) की यह स्तुति अग्निने सुनी । और शीघ्र वह (अग्नि) जानकीजीको गोदमें लेकर प्रगट हुए; जानकीजीका रूप तेजःपुंज दिखाई

देताथा; उनकी प्रभा निर्मल व किंचित् रक्त वर्णथी; उन्होंने लाल २ वस्त्र पहर रक्खेथे; व शरीरपर अनेक दिव्य गहनेथे ॥ १९ ॥ सर्व संसारके साक्षी शरणागतोंके दुःख दूर करनेवाले अग्निने श्रीरामजीसे कहा "हेरामचंद्र आपने पहले वनमें देवी जानकीजीको मुझे सौंपाथा; वह यही है इनंको अंगीकार करो ॥ २० ॥ हे राम ! शरणागतोंके दुःख दूर करनेका आपका व्रत है। हे प्रभो ! आपने माया करकै दूसरी जानकी निर्माणकी; व पुत्र बांधवोंके सहित रावणका संहारकर पृथ्वीका भार उतारा ॥ २१ ॥ प्रतिबिंबरूप सीता जिस कार्यके लिये बनीथीं; वह काम पूरा होगया, इस कारण वह कृतकृत्य होकर अंतर्धान होगई।" अग्निके यह वचन सुनकर रामजीके अंतःकरणमें परमसंतोष हुआ, जानकीजीभी अत्यन्त हर्षित हुई। फिर रामजीने अग्निकी पूजा करके सीताजीको अंगीकार किया (अंगीकार करके) श्रीपतिजीने उन सदा साथ रहनेवाली जानकीजीको अपने अंकमें स्थापित किया ॥ २२ ॥ तिसकाल आनंद सहित सुरपति इन्द्र श्रीरामजीको श्रीजानकीजीके साथ मिलनेसे अपूर्व शोभायमान देखकर भक्ति सहित हाथ जोड़कर गदगद वाणीसे स्तुति करने लगे॥ २३॥ इन्द्र बोला—"मैं रामचंद्रजीकी सेवा करनेको तैयारहूं;उन प्रभुके शरीरकी कांति नीले कमलके समान तेजपुंज श्यामल दिखाई देती है; उनका नामभी संसाररूपी वनके लिये दावानलके समान है (संसारसागरका नाशकरनेवाला है) भवानी (पार्वती) अपने हृदयमें, उनके आनंदरूपका चिंतन करती रहती हैं। संसारके नाश करनेका कारण वही है। महादेवादि देवता उनकी सेवाकरते

प्रोवाचसाक्षीजगतांरघूत्तमंप्रपन्नसर्वार्तिहरंहुताशनः ॥ गृहाणदेवींरघुनाथजानकींपुरात्वयामय्यवरोपितांवने ॥ २० ॥ विधायमायाजनकात्मजांहरेदृशाननप्राणविनाशनायच ॥ हतोदशास्यःसहपुत्रबांधवैर्निराकृतोऽनेनभरोभुवःप्रभो ॥ २१ ॥ तिरोहितासाप्रतिबिंबरूपिणीकृतायदर्थंकृतकृत्यतांगता ॥ ततोऽतिहृष्टांपरिगृह्यजानकींरामःप्रहृष्टःप्रतिपूज्यपावकम् ॥२२॥ स्वांकेसमावेश्यसदानपायिनींश्रियंत्रिलोकीजननींश्रियःपतिः ॥ दृष्ट्वाथरामंजनकात्मजायुतंश्रियास्फुरंतंसुरनायकोमुदा ॥ २३ ॥ भक्त्यागिरागद्गदयासमेत्यकृतांजलिःस्तोतुमथोपचक्रमे॥इंद्रउवाच॥भजेऽहंसदाराममिंदीवराभंभवारण्यदावानलाभाभिधानम्॥भवानीहृदाभावितानंदरूपंभवाभावहेतुंभवादिप्रपन्नम् ॥२४॥सुरानीकदुःखौघनाशैकहेतुंनराकारदेहंनिराकारमीड्यम् ॥ परेशंपरानंदरूपंवरेण्यंहरिंराममीशंभजेभारनाशम्॥२५॥

रहते हैं; रामचंद्रजी एक देवताओंको दुःखपरंपराका नाश करनेवाले हैं उनका शरीर मनुष्यके समान दीखता तो है परन्तु वास्तवमें उनका कोइ आकार नहीं है। वही स्तुति करनेके योग्य हैं; वह परम समर्थ परमानंदरूप श्रेष्ठ प्रभु भक्तोंका दुःख दूर करते हैं;उन्होंने भूमिका भार उतारा; मैं उन रामचंद्रजीकी सेवा करताहूं ॥२४॥२५॥ वह रामजी शरणागतोंको सर्व प्रकारसे आनंद देते हैं; अनेक भक्त उनकी शरण जाते हैं; उनका केवल नामही शरणागतोंके दुःखोंका नाश कर डालता है। शम दमादि तपश्चर्याके द्वारा योगाभ्यास करनेवाले महान् २ योगी उसका सत्यरूपसे ध्यान करते हैं; मैं उन रामरूपी सूर्यकी उपासना करताहूं ॥२६॥जो लोग नित्यभोगमें लग रहे हैं;उनसे रामजी बहुत दूर रहते हैं परन्तु जो जन नित्य योगाभ्यास करते हैं उनके वह अतिशय निकट (अंतर्यामी) हैं; ऐसा अनुभव होता है; वह ब्रह्मानंद होनेसे सब प्राणियोंके आनंदकंद (उत्पत्तिके स्थान) हैं; उनका रूप

प्रपन्नाखिलानंददोहंप्रपन्नंप्रपन्नार्तिनिःशेषनाशाभिधानम् ॥ तपोयोगयोगीशभावाभिभाव्यंकपीशादिमित्रंभजेराममित्रम्॥२६॥सदाभो
गभाजांसुदूरेविभांतंसदायोगभाजामदूरेविभांतम् ॥ चिदानंदकंदंसदाराघवेशंविदेहात्मजानंदरूपंप्रपद्ये ॥२७॥ महायोगमायाविशेषानु
युक्तोविभासीशलीलानराकारवृत्तिः ॥ त्वदानंदलीलाकथापूर्णकर्णाःसदानंदरूपाभवंतीहलोके ॥ २८ ॥ अहंमानपानाभिमत्तप्रमत्तोन
वेदाखिलेशाभिमानाभिमानः ॥ इदानींभवत्पादपद्मप्रसादात्रिलोकाधिपत्याभिमानोविनष्टः ॥ २९ ॥

जनककी कन्याको आनंदका देनेवाला है;उन रघुवीरकी मैं शरणहूं ॥२७॥ हे ईश्वर। आप योगमायाके सत्य आदि गुणोंके साथ मिलकर जैसे लाल पुष्पके सम्बन्धसे स्फटिक मणि लाल दिखाई देता है; तैसेही आप लीला करके मनुष्यके आकारमें चेष्टा करते हो। ऐसा ज्ञात होता है, वास्तवमें आप निराकार हैं; वैसेही अवतारमें आप आनंदसे अनेक चरित्र करते हैं; उन बातोंसे इस लोकमें जिस पुरुषके कान भरजाते हैं जो पुरुष इस कथाको सुनते हैं वे नित्य आनंदमय बनते हैं ॥ २८ ॥ हे ईश्वर!। 'मैं स्वर्गका राजाहूं ' इस अभिमानकी मद पीनेसे मैं अत्यन्त उन्मत्त हो गयाथा; पृथ्वीपर साधारण राजाओंको 'हम राजा हैं' यह अभिमान होता है; तैसेही गर्व मुझे हुआ; उसका परिणाम यही हुआ कि मुझे आपके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ, अब तुम्हारे चरणकमलके अनुग्रहसे मेरा यह गर्व कि 'मैं त्रिलोकीका राजाहूं ' नाश हुआ ॥ २९ ॥

हे राम! आपके पहरेहुए बाजुओं जडीहुई मणियोंसे व हारमें गुंथेहुए रत्नोंके चमकनेसे आपका रूप लोगोंको मनोहर लगता है;पृथ्वीपर भाररूप जो दैत्योंकी सेना है,उसका आप नाश करनेवाले हैं; आपका मुख शरद ऋतुके चंद्रमाके समान शांत व निर्मल दिखाई देता है; नेत्रभी कमलके समान शोभायमान हैं; आपके माहात्म्यका आदि अंत मालूम होना अत्यन्त कठिन है मैं आपकी सेवा करताहूं ॥ ३० ॥ आपके अंगकी कान्ति इन्द्रनील मणिके समान व मेघके समान श्यामल है। आपने विराधादि राक्षसोंको मारकर लोकमें जिधर तिधर शांतता पसारी है। किरीट कुंडलादि गहनों करके आपका स्वरूप शोभायमान दिखाई देता है,। महादेवजीको भी आप अलभ्यलाभ दिखाई देते हैं।हे रघुपते! रामचंद्र मैं आपकी उपासना करता रहताहूं ॥ ३१ ॥ हे राम! करोड़ चंद्रमाके एक साथ उदयहोनेसे जितना प्रकाश दिखाई देता है, तैसेही आपके इस उत्तम सिंहासनका तेज दिखाई देता है। आप इस सिंहासनपर अंकमें सीताजीको लिये बैठे हैं; सीताजीका वर्ण सुवर्णके समान देदीप्यमान दिखाई देता है; उनकी ओर देखनेसे यह भास होता है कि वे बिजलीकी शक्ति हैं। हे राम दुःख व आलस्य आपसे निरन्तर दूर रहते हैं (आप नित्य प्रकाशरूपी हैं) मैं आपकी सेवामें तत्परहूं।" ॥ ३२ ॥ पार्वतीजीके सहित भगवान् महादेवजी विमानमें बैठकर आकाश मार्गसे आयेथे; इन्द्रकी स्तुति हो जानेपर, वे (शंकर) कमलदलनयन रामचंद्रजीसे बोले;– ॥ ३३ ॥ "हे महाराज! जब आप राजगद्दीपर बैठेंगे; तब अयोध्यामें आपके पास आपका दर्शन करनेके लिये आऊंगा; अब आप अपने पिता दशरथजीके दर्शन कर लें" ॥ ३४ ॥ इतनेहीमें आगे विमानमें बैठकर आयेहुए महाराज

स्फुरद्रत्नकेयूरहाराभिरामंधराभारभूतासुरानीकदावम् ॥ शरच्चंद्रवक्त्रंलसत्पद्मनेत्रंदुरावारपारंभजेराघवेशम् ॥ ३० ॥ सुराधीशनीला
भ्रनीलांगकांतिंविराधादिरक्षोवधाल्लोकशांतिम् ॥ किरीटादिशोभंपुरारातिलाभंभजेरामचंद्रंरघूणामधीशम् ॥ ३१ ॥ लसच्चंद्रकोटि
प्रकाशादिपीठेसमासीनमंकेसमाधायसीताम् ॥ स्फुरद्धेमवर्णांतडित्पुंजभासांभजेरामचंद्रंनिवृत्तार्तितंद्रम् ॥ ३२ ॥ ततःप्रोवाचभग
वान्भवान्यासहितोभवः ॥ रामंकमलपत्राक्षंविमानस्थोनभःस्थले ॥ ३३ ॥ आगमिष्याम्ययोध्यायांद्रष्टुंत्वांराज्यसत्कृतम् ॥ इदानीं
पश्यपितरमस्यदेहस्यराघव ॥ ३४ ॥ ततोऽपश्यद्विमानस्थंरामोदशरथंपुरः ॥ ननामशिरसापादौमुदाभक्त्यासहानुजः ॥ ३५ ॥

दशरथजी रामचंद्रजीको दिखाई दिये, रामचंद्रजीने बड़े आनंदसहित भक्तिपूर्वक छोटे भ्राताके साथ पिताजीके चरणोंका शिरसे वंदन किया ॥ ३५ ॥ दशरथजीने रामजीको हृदयसे लगाय, मस्तक सूंघकर कहा;– "हे वत्स ! तुमने मुझे संसाररूप दुःख समुद्रके पार करदिया । " ॥ ३६ ॥ यह कह दशरथजीने फिर रामजीको हृदयसे लगाया, रामजीने उनकी पूजाकी; दशरथजी चले गये, इधर हाथ जोड़ कर आगे खड़ेहुए इन्द्रसे रामचंद्रजीने कहा ॥ ३७ ॥ हे सहस्राक्ष ! संग्राममें मेरेलिये अनेक वानर मरण पाय पृथ्वीपर पड़े हैं ! तुम मेरी आज्ञासे अमृत वर्षाय शीघ्र उनको जिलाओ ॥ ३८ ॥ इन्द्रने 'जो आज्ञा' कह अमृत वर्षाय उन वानरोंको जिला या; पहले युद्धमें जो वानर मर गयेथे, नींदसे उठनेके समान उठकर पहले के समान बलवान् होते हुए आनंदसे रामजीके निकट आये ॥ ३९ ॥ वहांपर केवल राक्षसगण अमृतके स्पर्शसे नहीं उठे– कारणकि भगवानका बाण जिनके लगा है वे फिर नहीं उठ सकते; फिर विभीषणजीने रामचंद्रजीको साष्टांग दंडवत् प्रणाम करके कहा ॥४०॥ "हे देव ! आपसे एक मेरी विनती है, आप मुझपर बड़ा अनुग्रह करते हैं; इस्से आप मेरी विनती माने आज आप सीताजीके साथ मंगलस्नान करें ॥४१॥ अंगपर वस्त्र भूषण पहिरें; लक्ष्मणजीकोभी तैसाही करनेकी आज्ञा दें; फिर कल आप सब अयोध्याको जांय ! " विभीषणजीकी विनती सुनकर रामचंद्रजीने उत्तर दिया॥४२॥हे विभीषण! हमारे परमभक्त सुकुमार भरतजी हमारी बाट देखते होंगे वह जटा वल्कल धारणकर शब्दब्रह्मका (ओंकारका) जप

आलिंग्यमूर्ध्न्यवघ्रायरामंदशरथोऽब्रवीत् ॥ तारितोऽस्मित्वयावत्ससंसाराद्दुःखसागरात् ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वापुनरालिंग्यययौरामेणपूजितः ॥ रामोऽपिदेवराजंतंदृष्ट्वाप्राहकृतांजलिम्॥३७॥ मत्कृतेनिहतान्संख्येवानरान्पातितान्भुवि ॥ जीवयाशुसुधावृष्ट्यासहस्राक्षममाज्ञया ॥ ३८ ॥ तथेत्यमृतवृष्ट्याताञ्जीवयामासवानरान् ॥ येयेमृतामृधेपूर्वंतेतेसुप्तोत्थिताइव ॥ पूर्ववद्बलिनोहृष्टारामपार्श्वमुपाययुः॥ ३९ ॥ नोत्थिताराक्षसास्तत्रपीयूषस्पर्शनादपि ॥ विभीषणस्तुसाष्टांगंप्रणिपत्याब्रवीद्वचः ॥ ४० ॥ देवमामनुगृह्णीष्वमयिभक्तिर्यदातव ॥ मंगलस्नानमद्यत्वंकुरुसीतासमन्वितः ॥ ४१ ॥ अलंकृत्यसहभ्रात्राश्वोगमिष्यामहेवयम् ॥ विभीषणवचःश्रुत्वाप्रत्युवाचरघूत्तमः ॥ ॥ ४२ ॥ सुकुमारोऽतिभक्तोमेभरतोमामवेक्षते ॥ जटावल्कलधारीसशब्दब्रह्मसमाहितः ॥ ४३ ॥

व ध्यानकरनेमें निमग्न रहते हैं ॥ ४३ ॥ उनको साथ लियेविना मैं मंगलस्नान करने या अलंकारादि पहरने योग्य कैसे हो सकताहूं; इसकारण मैं तुमसे कहताहूं कि तुम सुग्रीवादि वानरोंका भलीभांति सत्कार करो ॥ ४४ ॥ वानरवीरोंकी पूजा करनेसे मेराही सत्कार होगा इसमें कोई संशय नहीं; रामजीके ऐसा कहनेपर विभीषणजीने, सुवर्ण रत्न व वस्त्रोंकी वानरोंपर वर्षा करदी–जिसको जितने चाहिये तितने, व जैसे मन भाये वैसे रत्न भूषण और वस्त्र दिये ॥ ४५ ॥ सर्व वानरयूथप लोगोंका रत्न भूषणोंसे सत्कार किया। यह देखकर रामजीने व्यवहारके अनुसार प्रत्येकका गौरव किया (उनके कियेहुए पराक्रमके बदलेमें प्रत्येककी अलग २ प्रशंसाकी) और वानर वीरोंको बिदा दी। विभीषणजीने सूर्यके समान तेजपुंज पुष्पक विमान

कथंतेनविनास्नानमलंकारादिकंमम ॥ अतःसुग्रीवमुख्यांस्त्वंपूजयाशुविशेषतः ॥ ४४ ॥ पूजितेषुकपींद्रेषुपूजितोऽहंनसंशयः ॥ इत्युक्तोराघवेणाशुस्वर्णरत्नांबराणिच ॥ ४५ ॥ ववर्षराक्षसश्रेष्ठोयथाकामंयथारुचि ॥ ततस्तान्पूजितान्दृष्ट्वारामोरत्नैश्चयूथपान् ॥ ४६ ॥ अभिनंद्ययथान्यायंविससर्जहरीश्वरान् ॥ विभीषणसमानीतंपुष्पकंसूर्यवर्चसम् ॥ ४७ ॥ आरुरोहततोरामस्तद्विमानमनुत्तमम् ॥ अंकेनिधायवैदेहींलज्जमानांयशस्विनीम् ॥ ४८ ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राविक्रांतेनधनुष्मता ॥ अब्रवीच्चविमानस्थःश्रीरामःसर्ववानरान् ॥ ॥ ४९ ॥ सुग्रीवंहरिराजंचअंगदंचविभीषणम् ॥ मित्रकार्यंकृतंसर्वंभवद्भिःसहवानरैः ॥ ५० ॥ अनुज्ञातामयासर्वेयथेष्टंगंतुमर्हथ ॥ सुग्रीवप्रतियाह्याशुकिष्किंधांसर्वसैनिकैः ॥ ५१ ॥ स्वराज्येवसलंकायांममभक्तोविभीषण ॥ नत्वांधर्षयितुंशक्ताःसेंद्राअपिदिवौकसः ॥५२॥

मँगवाया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ रामचंद्रजीने उस अत्युत्तम विमानमें बैठकर जानकीजीको अपने अंकमें बैठाला; इस समय वानरादिके सामने पतिके निकट बैठनसे स्त्री स्वभावके अनुसार सीताजी लजाईं ॥ ४८ ॥ निकटही पराक्रमकारी धनुषधारी लक्ष्मणजी बैठे, बाकी सब वानर पृथ्वीपर खड़े रहे; विमानमें सवार होकर रामजीने वानर, वानरोंके राजा सुग्रीव, अंगद, विभीषण सबहीसे कहा, "हे वीरगण! तुम वानरोंकी सहायताने मित्रका मेरा कार्य पूरा किया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ अब मैं तुम्हें आज्ञा देताहूं कि तुम इच्छानुसार अपने २ स्थानोंको चले जाओ; हे सुग्रीव! तुम अपनी सेनाको साथ ले शीघ्र किष्किन्धाको जाओ ॥ ५१ ॥ हे विभीषण! तुम अपने राज्यको भोगतेहुए सुखसे लंकामें रहो तुम्हारी मुझपर भक्ति है; इसकारण देवता

ओंके साथ इन्द्रभी तुम्हारा तिरस्कार नहीं कर सकैंगे ॥ ५२ ॥ अब मेरे मनमें अपने पिताकी राजधानी अयोध्यामें जानेकी इच्छा है;" रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर वे पराक्रमी वानर ॥ ५३ ॥ और राक्षस विभीषण सबहीजने हाथ जोड़कर बोले;" हे रघुवीर ! हम लोगोंके मनमें आपके साथ अयोध्या चलनेकी है ॥ ५४ ॥ आपका राज्याभिषेक हुआ देख कौशल्याजीका वंदनकर फिर हम अपने २ राज्योंमें चले जांयगे । हे प्रभो ! ऐसा करनेकी हमें आज्ञा दीजिये" ॥ ५५ ॥ रामचंद्रजीने 'ऐसाही हो' कहकर सुग्रीवसे कहा;—" तुम वानर मंडली, विभीषण व हनुमान् इसप्रकार सबको साथ लेकर पुष्पक विमानमें बैठें ॥५६॥ तब सैना सहित सुग्रीव व प्रधानोंके साथ विभीषण इसप्रकार सबही कोई शीघ्र उस दिव्य पुष्पक विमानमें चढ़े ॥ ५७ ॥ सर्व वानरोंके चढ़ लेनेपर रामचंद्रजीने कुबेरके उस उत्तम विमानको चलनेकी आज्ञादी । तत्काल वह विमान आकाश मार्गमें चलने लगा ॥ ५८ ॥ उस तेजस्वी विमानमें—ब्रह्माजीके विमानके समान आगे हंस जुडे हुएथे; इसकारण उसमें बैठे हुए आनंदमूर्ति रामचंद्रजी इससमय दूसरे ब्रह्माजी दिखाई देने लगे ॥ ५९ ॥ कुबेरजीको तीव्र तपस्याके द्वारा मिलाहुआ यह विमान उससमय सूर्यके बिंबके समान शोभायमान होताथा । सीता लक्ष्मणजीके साथ रामचंद्रजीके बैठनेसे उसकी (विमानकी) ऐसी शोभाहो रहीथी कि जिसका वर्णन नहीं किया जाता ॥ ६० ॥ इति० श्रीम० उमा० यु० भाषाटीकायां त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥

अयोध्यांगंतुमिच्छामिराजधानींपितुर्मम ॥ एवमुक्तास्तुरामेणवानरास्तेमहाबलाः ॥ ५३ ॥ ऊचुःप्रांजलयःसर्वेराक्षसश्चविभीषणः ॥
अयोध्यांगंतुमिच्छामस्त्वयासहरघूत्तम ॥ ५४ ॥ दृष्ट्वात्वामभिषिक्तंतुकौसल्यामभिवाद्यच ॥ पश्चाद्गृणमिहेराज्यमनुज्ञांदेहिनःप्रभो ॥
॥ ५५ ॥ रामस्तथेतिसुग्रीववानरैःसविभीषणः ॥ पुष्पकंसहनूमांश्चशीघ्रमारोहसांप्रतम् ॥ ५६ ॥ ततस्तुपुष्पकंदिव्यंसुग्रीवःसहसे
नया ॥ विभीषणश्चसामात्यःसर्वेचारुरुहुर्द्रुतम्॥५७॥तेष्वारूढेषुसर्वेषुकौबेरंपरमासनम्॥ राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपातविहायसा ॥५८॥
बभौतेनविमानेनहंसयुक्तेनभास्वता ॥ प्रहृष्टश्चतदारामश्चतुर्मुखइवापरः ॥५९॥ ततोबभौभास्करबिंबतुल्यंकुबेरयानंतपसानुलब्धम् ॥
रामेणशोभांनितरांप्रपेदेसीतासमेतेनसहानुजेन ॥ ६० ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्ध० त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

जानकीजीको युद्ध स्थल दिखाय, भरद्वाजाश्रममें जाय, फिर रामचंद्रजीका भरतजीसे भेट करना ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! सीताजीका मुख चंद्रमाके समान सुन्दर शान्त व रमणीय दिखाई देता था; विमान चलनेपर रामजी चारों ओर दृष्टि फिराय जानकीजीसे बोले ॥ १ ॥ "हे प्यारी ! वह देखो त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बसीहुई बहुत प्रकाशमान लंकानगरी दिखाई देती है! इधर यह रणभूमि देखो; इसमें मांसकी कीचड भरी हुई है ! ॥ २ ॥ यहींपर वानर और राक्षसोंका घोर युद्ध हुआ है; व यहीं मैंने राक्षसोंके राजा रावणको मारा है ! ॥ ३ ॥ कुंभकर्ण, इन्द्रजित, इत्यादि सारे राक्षसोंका इसी स्थानमें वध हुआ—हे प्रिये ! तुम्हारे लिये मैंने अपार जलकी राशि, महासागरपर यह सेतु बांधाहै ॥ ४ ॥ यह देखो ! महासागरमें सेतुबंध नामक तीर्थ दीखने लगा । सारी त्रिलोकी इसका वंदन करती है ॥ ५ ॥ यह पवित्र तीर्थ दर्शन करलेनेसे सर्व पातकोंका नाश करता है । यहांपर मैंने रामेश्वर नामक शिवलिंगकी स्थापनाकी है ॥ ६ ॥ यहाँपर मंत्रियोंको साथले विभीषण मेरी शरणमें आये, यह देखो सुग्रीवकी राजधानी किष्किन्धा है; उसके आसपास चित्रविचित्र वृक्षोंका वन कैसा सुन्दर दिखाई देताहै ? ॥ ७ ॥ (महादेवजी बोले हे पार्वति !) तहांपर पहुँचकर सुग्रीवने रामचंद्रजीकी आज्ञासे सीताजीकी इच्छा पूर्ण करनेको तारा आदि स्त्रियोंको बुलाया ॥ ८ ॥ उन स्त्रियोंको लेकर वह विमान आकाश मार्गमें शीघ्रतासे चलने लगा, यह देखकर रामजी फिर सीताजीसे कहने लगे;—हे सीते! देखो यह ऋष्यमूक पर्वत है ! यहांपर मैंने वालिका वध किया ॥ ९ ॥

॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ पातयित्वाततश्चक्षुःसर्वतोरघुनंदनः ॥ अब्रवीन्मैथिलींसीतांरामःशशिनिभाननाम् ॥ १ ॥ त्रिकूटशिखराग्रस्थां
पश्यलंकांमहाप्रभाम् ॥ एतांरणभुवंपश्यमांसकर्दमपंकिलाम् ॥ २ ॥ असुराणांप्लवंगानामत्रवैशसनंमहत् ॥ अत्रमेनिहतःशेतेरावणो
राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥ कुंभकर्णेंद्रजिन्मुख्याःसर्वेचात्रनिपातिताः ॥ एषसेतुर्मयाबद्धःसागरेसलिलाशये ॥ ४ ॥ एतच्चदृश्यतेतीर्थंसागरस्यम
हात्मनः ॥ सेतुबंधमितिख्यातंत्रैलोक्येनचपूजितम् ॥ ५ ॥ एतत्पवित्रंपरमंदर्शनात्पातकापहम् ॥ अत्ररामेश्वरोदेवोमयाशंभुःप्रतिष्ठि
तः ॥ ६ ॥ अत्रमांशरणंप्राप्तोमंत्रिभिश्चविभीषणः ॥ एषासुग्रीवनगरीकिष्किंधाचित्रकानना ॥ ७ ॥ तत्ररामाज्ञयाताराप्रमुखाहरियो
षितः ॥ आनयामाससुग्रीवःसीतायाःप्रियकाम्यया ॥ ८ ॥ ताभिःसहोत्थितंशीघ्रंविमानंप्रेक्ष्यराघवः ॥ प्राहचाद्रिमृष्यमूकंपश्यवा
ल्यत्रमेहतः ॥ ९ ॥

यह पंचवटी स्थान है यहांपर मैंने अनेक राक्षस मारे ॥ यह देखो यहांपर दो सुन्दर आश्रम दिखाई देते हैं; यह अगस्त्य मुनिका व दूसरा सुतीक्ष्ण ऋषिका ॥ १० ॥ सुंदरि ! यह देखो ! सब जातेहुए ऋषि दिखाई देने लगे। हे देवि ! यह चित्रकूट पर्वत स्पष्ट दीखता है; ॥ ११ ॥ यहींपर कैकेयीके पुत्र (भरत) हमको प्रसन्न करनेके लिये आयेथे। हे सीते ! यह देखो ! यमुनाके तीरपर भरद्वाज मुनिका आश्रम दिखाई देनेलगा ॥ १२ ॥ यह सब जगको पवित्र करनेवाली भागीरथी गंगाजी दीखने लगी; हे सीते ! वह देखो ! यह अपनी सरयूनदी दीखती है; यह यज्ञके स्तंभोंकी श्रेणी दिखाई देती है ॥ १३ ॥ यह अपनी अयोध्या नगरी दिखाई देनेलगी ! हे भामिनि ! (जानकि !) इसको नमस्कार करो। ” (महादेवजी बोले हे पार्वति !) इस क्रमसे परमात्मा रामचंद्रजी भरद्वाजजीके आश्रममें जाय पहुँचे ॥ १४ ॥ चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर तिसदिन पंचमी तिथिको छोटे भ्राताके सहित प्रभु रघुवीरने भरद्वाज मुनिका दर्शन करके उनका वंदन किया ॥ १५ ॥ सावधान होकर आश्रममें बैठेहुए मुनिसे रामचंद्रजीने नम्रतासे कहा “ महाराज ! भरतजीका कुछ समाचार सुनाहै ? वह भ्राता शत्रुघ्नके साथ कुशलसे तौ हैं ? ॥ १६ ॥ अयोध्यामें सर्व प्रकारसे समृद्धि और शांति है ? हमारी मातासे तौ कुशल है ? ॥ ” रामचंद्रजीके वचन सुनकर भरद्वाजजीके अंतःकरणमें आनंद हुआ, उन्होंने ॥ १७ ॥ उत्तर दिया;—“ हेराम ! सब कुशलसे हैं; वास्तवमें भरतजीका अंतःकरण उदार है; वह केवल फल मूल भक्षण करके अपना निर्वाह करते जटा वल्कल

एषापंचवटीनामराक्षसायत्रमेहताः ॥ अगस्त्यस्यसुतीक्ष्णस्यपश्याश्रमपदेशुभे ॥ १० ॥ एतेतेतापसाःसर्वेदृश्यंतेवरवर्णिनि ॥ असौशैलवरोदेविचित्रकूटःप्रकाशते ॥ ११ ॥ अत्रमांकैकयीपुत्रःप्रसादयितुमागतः ॥ भरद्वाजाश्रमंपश्यदृश्यतेयमुनातटे ॥ १२ ॥ एषाभागीरथीगंगादृश्यतेलोकपावनी ॥ एषासादृश्यतेसीतेसरयूर्यूपमालिनी ॥ १३ ॥ एषासादृश्यतेऽयोध्याप्रणामंकुरुभामिनि ॥ एवंक्रमेणसंप्राप्तोभरद्वाजाश्रमंहरिः ॥ १४ ॥ पूर्णेचतुर्दशेवर्षेपंचम्यांरघुनंदनः ॥ भरद्वाजंमुनिंदृष्ट्वाववंदेसानुजःप्रभुः ॥ १५ ॥ पप्रच्छमुनिमासीनंविनयेनरघूत्तमः ॥ शृणोषिकच्चिद्भरतःकुशल्यास्तेसहानुजः ॥ १६ ॥ सुभिक्षावर्ततेऽयोध्याजीवंतिचहिमातरः ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंभरद्वाजःप्रहृष्टधीः ॥ १७ ॥ प्राहसर्वेंकुशलिनोभरतस्तुमहामनाः ॥ फलमूलकृताहारोजटावल्कलधारकः ॥ १८ ॥

धारण करके ॥ १८ ॥ और पादुका (खडाऊँ) पर सब राज्यभार रखकर (सारे राज्यकार्य पादुकाओंसे. निवेदन कर) तुम्हारी वाट देख रहेहैं; हे रघुनंदन ! आपने दंडकारण्यमें जो २ चरित्र किये ॥ १९ ॥ प्रथम सीताजीका रावणसे हराजाना; फिर राक्षसोंका वध करना—वे सब मैंने तपश्चर्याके प्रभाव और आपके अनुग्रहसे जानलिये हैं। हे राम ! आप साक्षात् परब्रह्मरूप हैं, आपका आदि, मध्य, किंवा अंत नहीं है ॥ आप सृष्टिके आरंभमें जल उत्पन्न करके उसमें रहे इसलिये आपको 'नारायण' कहते हैं । सृष्टिके उत्पन्न करनेवाले आपही हैं ॥२० ॥ २१॥ हे विश्वरूप ! आप नरोंके अंतरकी बात जानते हैं इसलिये आपको 'नारायण' कहते हैं; सर्व लोकोंके पितामह (दादा) ब्रह्माजी तुम्हारे नाभि कमलसे उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ इसलिये आप चतुर्दश भुवनके नियामक हैं, सर्व लोक आपको नमस्कार करतेहैं; आप विष्णुजीके अवतारहैं; जानकीजी लक्ष्मीहैं; और शेषजीने लक्ष्मणजीके नामसे अवतार लियाहै; ॥ २३ ॥ आप आत्माके योगसे व आत्माके आश्रयसेही अपनी माया के द्वारा इस सृष्टिको उत्पन्न करतेहो; जैसे आकाश सर्वव्यापी होनेपर भी कहीं लगा लिपटा हुआ नहीं है; वैसेही आपभी कहीं आसक्त नहीं हैं; आप अपनी ज्ञानशक्तिके द्वारा संसारके सर्वकाम देखतेहैं ॥ २४ ॥ हे रघुनंदन ! आप प्राणियोंके अंतर और बाहरमें विराजमान हैं। तथाऽपि जिनकी दृष्टिमें अज्ञान है उन लोगोंको आप नियमित आकार (साढ़े तीन हाथ) के जान पड़तेहो ॥ २५ ॥ संसार तुम्हीं हो; संसारके आधार

पादुकेसकलंन्यस्यराज्यंत्वांसुप्रतीक्षते ॥ यद्यत्कृतंत्वयाकर्मदंडकेरघुनंदन ॥ १९ ॥ राक्षसानांविनाशंचसीताहरणपूर्वकम् ॥ सर्वंज्ञातं मयारामतपसातेप्रसादतः ॥ २० ॥ त्वंब्रह्मपरमंसाक्षादादिमध्यांतवर्जितः ॥ त्वमग्रेसलिलंसृष्ट्वातत्रसुप्तोऽसिभूतकृत् ॥ २१ ॥ नारायणोऽसिविश्वात्मन्नराणामंतरात्मकः ॥ त्वन्नाभिकमलोत्पन्नोब्रह्मालोकपितामहः ॥ २२ ॥ अतस्त्वंजगतामीशःसर्वलोकनमस्कृतः ॥ त्वंविष्णुर्जानकीलक्ष्मीःशेषोऽयंलक्ष्मणाभिधः ॥ २३ ॥ आत्मनासृजसीदंत्वमात्मन्येवात्ममायया ॥ नसज्जसेनभोवत्त्वंचिच्छक्त्यासर्वसाक्षिकः ॥ २४ ॥ वहिरंतश्चभूतानांत्वमेवरघुनंदन ॥ पूर्णोऽपिमूढदृष्टीनांविच्छिन्नइवलक्ष्यसे ॥ २५ ॥ जगत्त्वंजगदाधारस्त्वमेवपरिपालकः ॥ त्वमेवसर्वभूतानांभोक्ताभोज्यंजगत्पते ॥ २६ ॥

तुम्ही हो।जगके पालनकर्ता तुम्ही हो। हेजगन्नियंता ! सर्व जगत्के भोक्ता (भोगनेवाले) और भोग (विषय) रूप हो ॥ २६ ॥ हे रघुकुलोत्तम ! जो कुछ दिखलाई देताहै, स्मरणमें आताहै, सुना जाताहै; वह सर्व आप हैं; आपके सिवाय और कुछ नहीं है ॥ २७ ॥ वास्तविक देखनेसे आपमें सृष्टिकर्तृत्वादि गुण नहीं है; कारण माया अपने अलंकारादि गुणोंकरकै लोकोंको उत्पन्न करतीहै । परन्तु राम ! उस मायाको आपहीकी शक्तिसे प्रेरणा मिलतीहै; इसलिये स्रष्टृत्वादि गुण आपमें आरोपित किये जातेहैं ॥ २८ ॥ माया मूलकी जड़ है (वह स्वतंत्र होकर कोई कार्य नहीं कर सकती;) परन्तु जैसे लोहचुम्बकके निकट आनेपर लोहेका टुकड़ा चलायमान होजाताहै, तैसेही मायापर आपकी दृष्टि पड़तेही वह जगत्को उत्पन्न कर सकतीहै ॥ २९ ॥ वास्तवमें आप शरीररहितहैं परन्तु संसारकी रक्षाके लिये आपके दो शरीर हैं;—विराट् आपका स्थूल शरीर व हिरण्यगर्भ सूक्ष्म शरीर कहा जाता है ॥ ३० ॥ हेराम ! आपके विराट् रूपमेंसे सहस्रों अवतार कार्य करनेकें लिये उत्पन्न होतेहैं और कार्य हो जाने पर वह विराट् रूपमेंही प्रवेश कर जातेहैं ॥ ३१ ॥ हे रघुकुलोत्तम ! संसारमें जो लोग केवल तुममें मनलगाय आपकी अवतार कथा गाते या वर्णन करतेहैं; उन्हींको मोक्ष मिलती है ॥ ३२ ॥ हे राघव! ब्रह्माजीनें तपश्चर्याके द्वारा आपको संतुष्टकर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये आपकी प्रार्थना की; इसकारण आपने रघुकुलमें अवतार लिया ॥ ३३ ॥ हेराम ! रावणके वधकरनेका कार्य देवताओंकोभी बहु

दृश्यतेश्रूयतेयद्यत्स्मर्यतेवारघूत्तम ॥ त्वमेवसर्वमखिलंत्वद्विनान्यन्नकिंचन ॥२७॥ मायासृजतिलोकांश्चस्वगुणैरहमादिभिः ॥ त्वच्छक्तिप्रेरितारामतस्मात्त्वय्युपचर्यते ॥ २८ ॥ यथाचुंबकसान्निध्याच्चलंत्येवायआदयः ॥ जडातथात्वयादृष्टामायासृजतिवैजगत् ॥ २९॥ देहद्वयमदेहस्यतवविश्वंरिरक्षिषोः ॥ विराट्स्थूलंशरीरंतेसूत्रंसूक्ष्ममुदाहृतम् ॥ ३०॥ विराजःसंभवंत्येतेअवताराःसहस्रशः ॥ कार्यांतेप्रविशंत्येवविराजंरघुनंदन ॥ ३१ ॥ अवतारकथांलोकेयेगायंतिगृणंतिच ॥ अनन्यमनसोमुक्तिस्तेषामेवरघूत्तम ॥ ३२ ॥ त्वंब्रह्मणापुराभूमेर्भारहारायराघव ॥ प्रार्थितस्तपसातुष्टस्त्वंजातोऽसिरघोःकुले ॥ ३३ ॥ देवकार्यमशेषेणकृतंतेरामदुष्करम् ॥ बहुवर्षसहस्राणिमानुषंदेहमाश्रितः ॥ ३४ ॥

त कठिन था; परन्तु आपने सिद्ध किया। अब आगे कोभी आप अनेक सहस्र वर्षतक मनुष्यदेह धारणकरकै ॥ ३४ ॥ स्वर्ग, व मृत्यु दोनों
लोकका कल्याण करनेके लिये दुर्घट कार्य करते रहैंगे। आपकी कीर्ति सारे संसारमें फैल जायगी आपके चरित्र लोगोंका पाप दूर करैंगे ॥
॥ ३५ ॥ हेजगन्नाथ! मेरी आपसे यही प्रार्थनाहै कि आप मेरे आश्रमको पवित्र करैं। आजके दिन सेनासहित यहीं रहकर भोजन करो कल नग
रको जइयो ॥ ३६ ॥ रामजी 'तथास्तु' कहकर तिसदिन उस उत्तम आश्रममें रहे; भरद्वाज मुनिजीने, सीता, लक्ष्मण, और सेनाके सहित श्री
रामचंद्रजीका सत्कार किया ॥ ३७ ॥ फिर रामचंद्रजीनें क्षणभर विचारकर हनुमानजीसे कहा;—"हे हनुमंत! यहांसे शीघ्र अयोध्याको जाओ ॥ ३८ ॥

कुर्वन्दुष्करकर्माणिलोकद्वयहितायच ॥ पापहारीणिभुवनंयशसापूरयिष्यसि ॥ ३५ ॥ प्रार्थयामिजगन्नाथपवित्रंकुरुमेगृहम् ॥ स्थित्वा
द्यमुक्त्वासबलःश्वोगमिष्यसिपत्तनम् ॥ ३६ ॥ तथेतिराघवोऽतिष्ठत्तस्मिन्नाश्रमउत्तमे ॥ ससैन्यःपूजितस्तेनसीतयालक्ष्मणेनच ॥३७॥
ततोरामश्चिंतयित्वामुहूर्तंप्राहमारुतिम् ॥ इतोगच्छहनूमंस्त्वमयोध्यांप्रतिसत्वरः ॥ ३८ ॥ जानीहिकुशलीकच्चिज्जनोनृपतिमंदिरे ॥
शृंगवेरपुरंगत्वाब्रूहिमित्रंगुहंमम ॥ ३९ ॥ जानकीलक्ष्मणोपेतमागतंमांनिवेदय ॥ नंदिग्रामंततोगत्वाभ्रातरंभरतंमम ॥ ४० ॥ दृष्ट्वा
ब्रूहिसभार्यस्यसभ्रातुःकुशलंमम ॥ सीतापहरणादीनिरावणस्यवधादिकम् ॥ ४१ ॥ ब्रूहिक्रमेणमेभ्रातुःसर्वंतत्रविचेष्टितम् ॥ हत्वाश
त्रुगणान्सर्वान्सभार्यःसहलक्ष्मणः ॥ ४२ ॥ उपयातिसमृद्धार्थःसहऋक्षहरीश्वरैः ॥ इत्युक्त्वातत्रवृत्तांतंभरतस्यविचेष्टितम् ॥ ४३ ॥
सर्वंज्ञात्वापुनःशीघ्रमागच्छममसन्निधिम् ॥ तथेतिहनुमांस्तत्रमानुषंवपुरास्थितः ॥ ४४ ॥

राजमंदिरमें सबकी कुशलका समाचार ले, शृंगवेरपुरमें हमारा मित्र गुह रहताहै, उस्से जायकर कहो ॥ ३९ ॥ कि जानकी व लक्ष्मण दोनोंकें
साथ मैं (राम) आयाहूं; यह सन्देशा जतायकर तहांसे नंदिग्राममें जाओ; वहां हमारे भ्राता भरत हैं ॥ ४० ॥ उनसे भेंट कर कहो कि मैं स्त्री व भ्रा
ताके सहित कुशलसेहूं, सीताको रावणने चुरालियाथा, फिर मैंने उसका वध किया इत्यादि ॥ ४१ ॥ समस्त मेरा व भ्राताका चरित्र क्रमानु
सार उनसे निवेदनकर सबसे पीछे कहोकि राम समस्त शत्रुओंका संहारकर भार्या व बन्धु जनोंको साथले ॥ ४२ ॥ और अपने कार्यको सिद्ध
कर रीछराज जाम्बवान् और कपिराज सुग्रीवके साथ यहाँ आते हैं, ऐसा वृत्तान्त वहाँ कह भरतजीके चरित्रको ॥ ४३ ॥ समझकर फिरयहाँ

शीघ्र लौट आओ । ” हनुमानजीने ‘ बहुत अच्छा ’ कह शीघ्र वहाँही मनुष्यके समान रूप धारण किया ॥ ४४ ॥ जैसे गरुड़ बड़े सर्पको पकड़नेके लिये वेगसे दौड़ताहै, तैसेही हनुमानजी पवनके समान वेगसे नंदिग्रामकी ओर चले ॥ ४५ ॥ हनुमानजीने प्रथम शृंगवेरपुरमें जायकर गुहसे भेंट की; व आनंदित अंतःकरणसे उसको भला लगनेवाला संदेशा कहा ॥ ४६ ॥ “हे गुह! तुम्हारे मित्र धर्मात्मा श्रीमान् दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी कुशल हैं, उन्होंने तुमसे कुशलवार्ता कहनेके लिये मुझको यहाँ भेजाहै ॥ ४७ ॥ रघुवीर आज भरद्वाज मुनिकी आज्ञा पाय इधर आवेंगे; तब तुम्हें उन रघुकुलोत्तम देवताका दर्शन मिलैगा ” ॥ ४८ ॥ महातेजस्वी हनुमानजीके वचन सुनतेही मारे आनंदके गुहके रोम खड़े होगये; महावेगवान् हनुमानजी वायुवेगसे वहाँसे उड़े ॥ ४९ ॥ रस्तेमें रामतीर्थ और सरयू नदी दिखाई दी; उसको लांघकर हनुमानजी आनंदसे नंदिग्राममें आये ॥ ५० ॥ यह ग्राम अयोध्याके निकट एक कोशपरहै; वहांपर वल्कल व हरिणके चर्मका वस्त्र धारण करनेवाले, दीन व कृश हुए आश्रमवासी भरतजी हनुमानजीको दिखाई दिये ॥ ५१ ॥ भरतजीका शरीर मैलकी पंकसे मलिन होरहाथा; मस्तकपर जटा और अंगपर वल्कलरूप वस्त्रथे । वह निर्वाहके लिये फल व मूल खायकर रामचंद्रजीका ध्यान करनेमें निमग्नहो ॥ ५२ ॥ और उन (पहले जो रामचंद्रजीने दीथीं) खड़ाउंओंकी पूजा करकै उनके आश्रयसे पृथ्वीका राज्य चलातेथे—जैसे राजा चलावै वैसे मंत्री चलै—इस धर्मके अनुसार

नंदिग्रामंययौतूर्णंवायुवेगेनमारुतिः ॥ गरुत्मानिववेगेनजिघृक्षन्भुजगोत्तमम् ॥४५॥ शृंगवेरपुरंप्राप्यगुहमासाद्यमारुतिः ॥ उवाचमधुरं वाक्यंप्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ४६ ॥ रामोदाशरथिःश्रीमान्सखातेसहसीतया ॥ सलक्ष्मणस्त्वांधर्मात्माक्षेमीकुशलमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ अनुज्ञातोऽद्यमुनिनाभरद्वाजेनराघवः ॥ आगमिष्यतितंदेवंद्रक्ष्यसित्वंरघूत्तमम् ॥ ४८ ॥ एवमुक्त्वामहातेजाःसंप्रहृष्टतनूरुहम् ॥ उत्पपातमहावेगोवायुवेगेनमारुतिः ॥ ४९ ॥ सोऽपश्यद्रामतीर्थंचसरयूंचमहानदीम् ॥ तामतिक्रम्यहनुमान्नंदिग्रामंययौमुदा ॥ ५० ॥ क्रोशमात्रेत्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनांबरम् ॥ ददर्शभरतंदीनंकृशमाश्रमवासिनम् ॥५१॥ मलपंकविदिग्धांगंजटिलंवल्कलांबरम् ॥ फलमूलकृताहारंरामचिंतापरायणम् ॥ ५२ ॥ पादुकेतेपुरस्कृत्यशासयंतंवसुंधराम् ॥ मंत्रिभिःपौरमुख्यैश्चकाषायांबरधारिभिः ॥ ५३ ॥

उनके मंत्री व नगरके मुख्य लोग कषाय (गेरुआ) वस्त्र पहरकर ॥ ५३ ॥ निकट बैठेथे—उनको देखतेही देखनेवाला जानले कि क्या यह धर्म प्रत्यक्ष शरीर धारण करकै यहां बैठाहै। पवनकुमार हनुमानजीने हाथ जोड़कर उनसे कहा ॥ ५४ ॥ " हे भरत ! आप जिन रामचंद्रजीका ध्यान करतेहैं; व जिनका तापस व्रत अंगीकार करकै—दंडकारण्यमें रहना आपको बुरा लगताहै; उन रामजीने अपनी कुशल बतलानेको तुम्हारे पास मुझे भेजाहै ॥ ५५ ॥ हेराजन् ! मैं आपसे प्रियवार्ता कहताहूं; आप इस भयंकर शोकको छोड़दें । इसी घडीमें तुमसे और तुह्मारे भ्राता रामचंद्रसे भेट होगी ॥ ५६ ॥ रामचंद्रजीने युद्धमें रावणका वध किया। अब वह अपनाकार्य सिद्ध करकै सीता और लक्ष्मण इन दोनोंके साथ निकट आय पहुँचे हैं" ॥५७ ॥ ऐसी वार्ता सुनतेही उन महातेजस्वी भरतजीको अधिक आनंदके होनेसे मूर्छा आगई; वे पृथ्वीपर गिर पड़े; कैकेयीके उन प्रिय पुत्रको देहीका भान नहीं रहा ॥ ५८ ॥ कुछ देरमें चैतन्य हो भरतजीने शीघ्रही प्रियवार्ता कहनेवाले हनुमानजीको हृदयसे लगा लिया । इससमय भरतजीके नेत्रोंसे इतने आनंदके आंसू बहतेथे कि तिस्से वानर (हनुमानजी) का सब अंग भीग गया ! ॥ ५९ ॥ फिर भरतजी बोले; "मुझपर कृपा करकै जो तुम यहां आये हो तौ कोई देवता हो; या कोई मनुष्यहो; तुम्हारा दर्शन मुझे चंद्रमाके समान सुखदाई ज्ञात होता है । तुमने मुझे प्रिय समाचार सुनाया है; इसलिये मैं तुम्हें कुछ प्रियदान देताहूं ॥६० ॥ लाख गाय, उत्तम शत ग्राम, व सर्व अलंकारोंसे सजी सजाई सुन्दर सौ

वृत्तदेहंमूर्तिमंतंसाक्षाद्धर्ममिवस्थितम् ॥ उवाचप्रांजलिर्वाक्यंहनूमान्मारुतात्मजः ॥ ५४ ॥ यंत्वंचिंतयसेरामंतापसंदंडकेस्थितम् ॥ अनुशोचसिकाकुत्स्थःसत्वांकुशलमब्रवीत् ॥५५॥ प्रियमाख्यामितेदेवशोकंत्यजसुदारुणम् ॥ अस्मिन्मुहूर्तेभ्रात्रात्वंरामेणसहसंगतः॥ ॥५६॥ समरेरावणंहत्वारामःसीतामवाप्यच॥उपयातिसमृद्धार्थःससीतःसहलक्ष्मणः॥५७॥एवमुक्तोमहातेजाभरतोहर्षमूर्च्छितः॥ पपात भुविचास्वस्थःकैकेयीप्रियनंदनः ॥ ५८ ॥ आलिंग्यभरतःशीघ्रंमारुतिंप्रियवादिनम् ॥ आनंदजैरश्रुजलैःसिषेचभरतःकपिम् ॥ ५९ ॥ देवोवामानुषोवात्वमनुक्रोशादिहागतः ॥ प्रियाख्यानस्यतेसौम्यददामिब्रुवतःप्रियम् ॥ ६० ॥ गवांशतसहस्रंचग्रामाणांचशतंवरम् ॥ सर्वाभरणसंपन्नामुग्धाःकन्यास्तुषोडश ॥ ६१ ॥

कन्या लो ।" ॥ ६१ ॥ इतना कहकर फिर भरतजीने हनुमान्‌जीसे कहाः– "रामचंद्रजीको महाघोर वनमें गये हुए बहुत वर्ष हुए ॥ ६२ ॥ मेरे मनको संतोष देनेवाली स्वामिकी कुशलवार्ता बहुत वर्षोंमें आज हमने सुनी ! संसारमें जो एक कहावत है; उसके यथार्थ होनेका आज मुझे विश्वास हुआ कि ॥ ६३ ॥ 'मनुष्य जीवित रहै तो एक शत वर्ष पीछे भी उसके आनंदका दिन आता है ।' परस्पर वानरोंसे श्रीरामचंद्रजीका मिलना किस प्रकार हुआ ॥ ६४ ॥ सत्य कहो, तुम्हारा मंगलहो ! तुम्हारी बातका मैं विश्वास करूंगा ।" महासमर्थ भरतजीने ऐसे प्रश्न किया तब हनुमान्‌जीने ॥ ६५ ॥ उनको क्रमानुसार समस्त रामचरित्र निवेदन किया; हनुमान्‌जीके मुखसे यह वचन सुनकर भरतजीको परमानंद हुआ ॥ ६६ ॥ शत्रुघ्नजीभी यह वार्ता सुनकर हर्षित हुए; भरतजीने आनंदित होकर शत्रुघ्नजीको आज्ञा दी कि 'हे रघुकुमार! नगरमें जितने देवालय हैं; उन सबमें ॥ ६७ ॥ उत्तम बुद्धिमान् पुरुष अनेक भांतिकी सामग्री और बलि देकर पूजा करें; सूत, वैतालिक, वंदी, स्तुतिपाठक, ॥ ६८ ॥ मुख्य २ वाराङ्गनाओंके सैंकड़ों झुंड अभी जांय, राजरानियें प्रधानमंडल, हाथी, घोड़े, रथ, पयदलकी सेना॥ ६९॥ ब्राह्मण, नागरिकजन, देश २ के आये हुए राजा, इन सबको रामचंद्रजीका चंद्रमाके समान मुख अवलोकन करनेके लिये अभी भेजो' ॥ ७० ॥ भरतजीकी आज्ञा सुनकर

एवमुक्त्वापुनःप्राहभरतोमारुतात्मजम् ॥ बहूनीमानिवर्षाणिगतस्यसुमहद्वनम् ॥ ६२ ॥ शृणोम्यहंप्रीतिकरंममनाथस्यकीर्तनम् ॥ कल्याणीवतगाथेयंलौकिकीप्रतिभातिमे ॥ ६३ ॥ एतिजीवंतमानंदोनरंवर्षशतादपि ॥ राघवस्यहरीणांचकथमासीत्समागमः ॥ ६४ ॥ तत्त्वमाख्याहिभद्रंतेविश्वसेयंवचस्तव ॥ एवमुक्तोऽथहनुमान्भरतेनमहात्मना ॥ ६५ ॥ आचचक्षेऽथरामस्यचरितंकृत्स्नशःक्रमात् ॥ श्रुत्वातुपरमानंदंभरतोमारुतात्मजात् ॥ ६६ ॥ आज्ञापयच्छत्रुहणंमुदायुक्तंमुदान्वितः ॥ दैवतानिचयावंतिनगरेरघुनंदन ॥ ६७ ॥ नानोपहारबलिभिःपूजयंतुमहाधियः ॥ सूतावैतालिकाश्चैवबंदिनःस्तुतिपाठकाः ॥ ६८ ॥ वारमुख्याश्चशतशोनिर्यांत्वद्यैवसंघशः ॥ राजदारास्तथाऽमात्याःसेनाहस्त्यश्वपत्तयः ॥६९॥ ब्राह्मणाश्चतथापौराराजानोयेसमागताः॥निर्यांतुराघवस्याद्यद्रष्टुंशशिनिभाननम् ॥७०॥ भरतस्यवचःश्रुत्वाशत्रुघ्नपरिचोदिताः ॥ अलंचक्रुश्चनगरींमुक्तारत्नमयोज्ज्वलैः ॥ ७१ ॥

शत्रुघ्नजीने नगरमें दुहाई फेर दी, तिसके अनुसार लोगोंने मोतियोंकी व रत्नोंकी तेज़ःपुंज तोरण लायकर नगरको सजाया, जगह २ चित्र विचित्र पताका लगाईं गईं; व अनेक कलाकुशल लोगोंने अपने २ घरोंको शोभायमान किया ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ प्रत्येकको रामजीके दर्शन करनेकी उत्कंठा थी, इसकारण लोगोंके झुंडके झुंड बाहर निकले; एक लाख घोड़े, दशहजार हाथी ॥ ७३ ॥ व सुवर्णसूत्र (सच्चाकलाबत्तु) से सजे हुए दशहजार हाथी बाहर निकले। लोगोंने परमात्मा रामचंद्रजीके अर्पण करने योग्य बड़ी छोटी वस्तु भेंटके लिये साथ ले लीं ॥ ७४ ॥ उनके पीछे राजमन्दिरकी स्त्रियां पालकियोंमें बैठकर चलीं। भरतजीभी पादुका मस्तकपर रख हाथ जोड़ ॥ ७५ ॥ शत्रुघ्नजीके सहित पैदल चलते हुए रामजीके सन्मुखको चले। जब यह समाज बाहर निकला; तब दूर अंतरपर रामचंद्रजीका चंद्रमाके समान शुभ्र विमान दिखाइ दैनेलगा ॥ ७६ ॥ तब काल हनुमान्जीने लोगोंसे कहा; "हे मनुष्यो ! यह देखो सूर्यके समान तेजपुंज पुष्पकविमान दिखाई देता है ! इस विमानको ब्रह्माजीने संकल्पसे उत्पन्न किया है; इसमें जानकीजीके सहित दोनों शूर बंधु लक्ष्मण, वानरोंके राजा सकुटुम्ब सपरिवार सुग्रीव, व मंत्रियोंके सहित विभीषणजीभी बैठे हैं " ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ तिस समय, स्त्रियां, लड़के, तरुण और वृद्ध सब लोग जिधर तिधरसे आनंदमें भरकर, 'यह देखो, राम आये ! यह राम आये !' ऐसे कहने लगे। तब यह कल२ स्वर्गतक जाय पहुँची ॥ ७९ ॥ हाथी, और घोड़ोंपर बैठे हुए लोग नीचे उतरकर पृथ्वीपर खड़े रहे; तौ

तोरणैश्चपताकाभिर्विचित्राभिरनेकधा ॥ अलंकुर्वंतिवेश्मानिनानाबलिविचक्षणाः ॥ ७२ ॥ निर्यांतिवृंदशःसर्वेरामदर्शनलालसाः ॥
हयानांशतसाहस्रंगजानामयुतंतथा ॥ ७३ ॥ रथानांदशसाहस्रंस्वर्णसूत्रविभूषितम् ॥ पारमेष्ठीन्युपादायद्रव्याण्युच्चावचानिच ॥ ७४ ॥
ततस्तुशिबिकारूढानिर्ययूराजयोषितः ॥ भरतःपादुकेन्यस्याशिरस्येवकृतांजलिः ॥ ७५ ॥ शत्रुघ्नसहितोरामंपादचारेणनिर्ययौ ॥ तदै
वदृश्यतेदूराद्विमानंचंद्रसन्निभम् ॥ ७६ ॥ पुष्पकंसूर्यसंकाशंमनसाब्रह्मनिर्मितम् ॥ एतस्मिन्भ्रातरौवीरौवैदेह्यारामलक्ष्मणौ ॥ ७७ ॥
सुग्रीवश्चकपिश्रेष्ठोमंत्रिभिश्चविभीषणः ॥ दृश्यतेपश्यतजनाइत्याहपवनात्मजः ॥७८ ॥ ततोहर्षसमुद्भूतोनिःस्वनोदिवमस्पृशत् ॥ स्त्री
बालयुववृद्धानांरामोऽयमितिकीर्तनात् ॥ ७९ ॥ रथकुंजरवाजिस्थाअवतीर्यमहींगताः ॥ ददृशुस्तेंविमानस्थंजनाःसोममिवांबरे ॥८० ॥

आकाशमें उगे हुए चंद्रमाके समान विमानमें बैठे हुए रामचंद्रजी उनको दिखाई दिये ॥ ८० ॥ भरतजीको महाहर्ष हुआ, वह हाथ जोड़कर रामचंद्रजीके देखनेकी उत्कंठासे उनके आगे २ चले। विमानके ऊँचे स्थानमें बैठे हुए श्रीरामचंद्रजी उनको दिखाई दिये । तिस समय भरतजीने उनको आनंदसे ॥ ८१ ॥ लोग जिस प्रकार मेरुपर्वतपर उठे हुए सूर्यका वंदन करते हैं तैसेही नम्र होकर प्रणाम किया; फिर रामचंद्रजीकी आज्ञासे विमान भूमिपर उतरा ॥ ८२ ॥ तिस समय भरतजीको अपने छोटे भ्राताके (शत्रुघ्न) साथ विमानमें चढ़ाया । रामचंद्रजीके भेंट होनेसे भरतजीने आनंदित होकर फिर वंदन किया ॥ ८३ ॥ भ्राता भरतजीके बहुत दिनोंमें भेंटनेके कारण रामचंद्रजीने उनको उचलकर अपनी गोदीमें बैठाय आनंदपूर्वक हृदयसे लगाया ॥ ८४ ॥ फिर भरतजीने लक्ष्मणजीको भेंटा फिर उन्होंने सीताजीसे ' मैं भरत वंदन करताहूं । ' ऐसा कहकर प्रणाम किया, इससमय प्रेमके मारे उनका कंठ भर आया ॥८५॥ इसके उपरान्त उन्होंने सुग्रीव, जाम्बवान्, युवराज अंगद, द्विविद, नील, इन वीरोंको आलिंगन दिया ॥ ८६ ॥ तैसेही भरतजीने सुषेण, नल, गवाक्ष, गंधमादन, शरभ, पनसको भी भेंटा ॥ ८७ ॥ वानरोंने मनुष्योंके समान शांतरूप धारण कियाथा । इन सबने आनंदित होकर कुशल प्रश्न किया— ॥ ८८ ॥ अनन्तर भरतजीने सुग्रीवको फिर हृदयसे लगायकर उनसे प्रेम सहित कहा " हे राजन् ! तुम्हारी सहायतासे रामचंद्रजीको जय मिली और रावणका नाश हुआ ॥ ८९ ॥ हे सुग्रीव ! तुम हमारे चार भ्राताओंमें पां

प्रांजलिर्भरतोभूत्वाप्रहृष्टोराघवोन्मुखः ॥ ततोविमानाग्रगतंभरतोराघवंमुदा ॥ ८१ ॥ ववंदेप्रणतोरामंमेरुस्थमिवभास्करम् ॥ततोरामाभ्यनुज्ञातंविमानमपतद्भुवि॥८२॥आरोपितोविमानंतद्भरतःसानुजस्तदा ॥ राममासाद्यमुदितःपुनरेवाभ्यवादयत् ॥ ८३ ॥ समुत्थाप्यचिराद्दृष्टंभरतंरघुनंदनः ॥ भ्रातरंस्वांकमारोप्यमुदातंपरिषस्वजे ॥ ८४ ॥ ततोलक्ष्मणमासाद्यवैदेहींनामकीर्तयन् ॥ अभ्यवादयतप्रीतोभरतःप्रेमविह्वलः ॥ ८५ ॥ सुग्रीवंजांबवंतंचयुवराजंतथांगदम् ॥ मैंदद्विविदनीलांश्चऋषभंचैवसस्वजे ॥८६॥ सुषेणंचनलंचैवगवाक्षंगंधमादनम् ॥ शरभंपनसंचैवभरतःपरिषस्वजे ॥८७॥ सर्वेतेमानुषंरूपंकृत्वाभरतमादृताः ॥ पप्रच्छुःकुशलंसौम्याःप्रहृष्टाश्चप्लवंगमाः ॥ ८८ ॥ ततःसुग्रीवमालिंग्यभरतःप्राहभक्तितः ॥ त्वत्सहायेनरामस्यजयोऽभूद्रावणोहतः ॥ ८९ ॥ त्वमस्माकंचतुर्णांतुभ्राता सुग्रीवपंचमः ॥ शत्रुघ्नश्चतदाराममभिवाद्यसलक्ष्मणम् ॥ ९० ॥

चवें भ्राता हो। ” तिस समय शत्रुघ्नजीने भी नम्रपनसे राम व लक्ष्मणजीका वंदनकर फिर सीताजीके चरणोंमें प्रणाम किया । फिर रामचंद्रजी अपनी माताको भेटने गये। वह चौदह वर्षतक नित्य शोक करनेसे विह्वल होगईंथीं, पहलेका तेज अब उनमें नहीं रहाथा ॥ ९० ॥ ९१ ॥ रामचंद्रजीने माताको प्रसन्न करनेके लिये नमस्कार करके उनके चरणोंको पकड़ लिया, फिर उन्होंने कैकेयी,सुमित्रा और दूसरी माताओंको नमस्कार किया ॥ ९२ ॥ भरतजीने भक्तिपूर्वक आजतक पूजाकरके रक्खी हुई उन खड़ाऊँओंको रामचंद्रजीके पाँवमें पहराया ॥ ९३ ॥ व कहा “हे राम! मैंने धरोहरकी भांति आजतक यह तुम्हारा राज्य चलाया, आज मेरा जन्म सार्थक हो गया व मेरे मनोरथ सिद्ध होगये ॥ ९४ ॥

सीतायाश्चरणौपश्चाद्ववंदेविनयान्वितः ॥ रामोमातरमासाद्यविवर्णांशोकविह्वलाम् ॥ ९१ ॥ जग्राहप्रणतःपादौमनोमातुःप्रसादयन् ॥
कैकेयींचसुमित्रांचननामेतरमातरः ॥ ९२ ॥ भरतःपादुकेतेतुराघवस्यसुपूजिते ॥ योजयामासरामस्यपादयोर्भक्तिसंयुतः ॥ ९३ ॥
राज्यमेतन्न्यासभूतंमयानिर्यातितंतव ॥ अद्यमेसफलंजन्मफलितोमेमनोरथः ॥ ९४ ॥ यत्पश्यामिसमायातमयोध्यांत्वामहंप्रभो ॥ को
ष्ठागारंबलंकोशंकृतंदशगुणंमया ॥ ९५ ॥ त्वत्तेजसाजगन्नाथपालयस्वपुरंस्वकम् ॥ इतिब्रुवाणंभरतंदृष्ट्वासर्वेकपीश्वराः ॥ ९६ ॥ मुमु
चुर्नेत्रजंतोयंप्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥ ततोरामःप्रहृष्टात्माभरतंस्वांकगंमुदा ॥ ९७ ॥ ययौतेनविमानेनभरतस्याश्रमंतदा ॥ अवरुह्यत
दारामोविमानाग्र्यान्महीतलम् ॥ ९८ ॥ अब्रवीत्पुष्पकंदेवोगच्छवैश्रवणंवह ॥ अनुगच्छानुजानामिकुबेरंधनपालकम् ॥ ९९ ॥

कारण, प्रभो तुमको अयोध्यामें आया हुआ मैंने देखा हे प्रभो नाजके कोठे सैन्य द्रव्य भण्डार (खजाना) यह सब मेरे हाथसे पहलेसे दशगुण बढ़े हैं; परन्तु ॥ ९५ ॥ यह सब आपहीका प्रभाव है। जगत्पते ! अब अपनी नगरीका पालन करो ! ” भरतको इस प्रकार कहकर सर्वस्व निवेदन करता हुआ देख सर्व वानरवीरोंके ॥ ९६ ॥ नेत्रोंसे आनंदके आंसू वहने लगे; उन्होंने संतुष्ट होकर भरतजीका बखान किया। सारे इष्ट जनोंको भेंटनेसे रामचंद्रजीके मनको संतोष हुआ; वह भरतजीको गोदमें ले आनंदसे॥ ९७ ॥ उसी विमानमें बैठ शीघ्र उनके आश्रममें गये । तहां रामचंद्रजी उस श्रेष्ठ विमानपरसे पृथ्वीपर उतरे ॥ ९८ ॥ फिर प्रभुने पुष्पकसे कहा,– “ हे विमान ! तुम कुबेरके पास जाओ और उनको ले चला करो । मैं

तुमको आज्ञा देताहूं तुम धनपालक कुबेरकी आज्ञामें रहो" ॥ ९९ ॥ फिर जिस प्रकार इन्द्रजी बृहस्पतिजीको प्रणाम करते हैं; तैसेही राम गुरुजीके चरणोंकी वंदना करके व उनके बैठनेको महामोलका उत्तम आसन देकर स्वयं उनके समीप बैठे ॥ १०० ॥ इ० श्रीम० भा० चतुर्दशःसर्गः॥ १४ ॥ रामचंद्रजीका नगरमें प्रवेश करना, वसिष्ठजीका उनको राज्याभिषेक करना ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि–हे पार्वति ! फिर कैकेयीके पुत्र भरतने भक्तिसे अपने हाथ शिरसे जोड़ रामजीसे कहा;"माताका सत्कार करके मुझे राज्य दिया; जैसे आपने मुझे राज्य दिया; तैसेही आज मैं फिर आपको लौटाये देताहूं । "॥ १ ॥ २॥ इतना कहकर भक्तिपूर्वक रामचंद्रजीके चरणोंमेंभी साष्टांग नमस्कार किया, व अनेक प्रकारसे उनकी प्रार्थना की; उनके साथ ही माता कैकेयीने रामचंद्रजीसे कहा,– "हे राम ! तुमने हमारे वचन पाले इस्से मैं संतुष्ट हुई । अब मैं संतोषसे यह राज्य तुम्हैं देतीहूं; मनमें कुछ विकल्प न करके इसको अंगीकार करो । " ॥ ३ ॥ रामजीने 'अच्छा' कहकर भरतजीसे राजसूत्र ले लिया । राम अर्थात् साक्षात् परमेश्वर,--अपने स्वरूपमें मायाका अंगीकार कर मनुष्यके समान सर्व लीला कर रहेथे ॥ ४ ॥ तिनको नित स्वात्मानंद सुखका अनुभव मिलता, सुखमय ज्ञानही एक जिनका रूप है; व जिनके आनंदरूपकी अपेक्षा दूसरी ओर कोई आनंद रहाही नहीं; उन परमात्माको ॥ ५ ॥ मनुष्य लोकके (क्षुद्र) राज्यका क्या प्रयोजन है? उस जगन्नियंताके नेक भ्रुकुटी वांकी करतेही क्षणमात्रमें त्रिलोकीका नाश हो जाता है ॥ ६ ॥ केवल जिनकी

रामोवसिष्ठस्यगुरोःपदांबुजंनत्वायथादेवगुरोःशतक्रतुः ॥ दत्त्वामहार्हासनमुत्तमंगुरोरुपाविवेशाथगुरोःसमीपतः ॥ १०० ॥ इतिश्रीमद्ध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेचतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ ततस्तुकैकयीपुत्रोभरतोभक्तिसंयुतः ॥ शिरस्यंजलिमाधायज्येष्ठंभ्रातरमब्रवीत् ॥ १ ॥ मातामेसत्कृतारामदत्तंराज्यंत्वयामम ॥ ददामितत्तेचपुनर्यथात्वमददामम ॥ २ ॥ इत्युक्त्वापादयोर्भक्त्यासाष्टांगंप्रणिपत्यच ॥ बहुधाप्रार्थयामासकैकेय्यागुरुणासह ॥३॥ तथेतिप्रतिजग्राहभरताद्राज्यमीश्वरः ॥ मायामाश्रित्यसकलांनरचेष्टामुपागतः ॥ ४ ॥ स्वाराज्यानुभवोयस्यसुखज्ञानैकरूपिणः ॥ निरस्तातिशयानंदरूपिणःपरमात्मनः ॥ ५ ॥ मानुषेणतुराज्येनकिंतस्यजगदीशितुः ॥ यस्यभ्रूभंगमात्रेणत्रिलोकीनश्यतिक्षणात् ॥ ६ ॥ यस्यानुग्रहमात्रेणभवंत्याखंडलश्रियः ॥ लीलासृष्टमहासृष्टेःकियदेतद्रमापतेः ॥ ७ ॥

कृपादृष्टि फिरतेही मनुष्यको इन्द्रका ऐश्वर्य प्राप्त हो सकता है, व जिसने लीलासेही महासृष्टि उत्पन्न की है उन लक्ष्मीपतिके आगे इस राज्यकी कितनी प्रतिष्ठा !!! ॥ ७ ॥ तथापि, वह प्रभु अपने भक्तजनोंकी विविध इच्छा पूर्ण करनेके लिये लीलाके द्वारा मनुष्यदेह धारणकर लोकशिक्षा करनेको प्रत्येक प्रसंगके अनुरूप वर्ताव करते हैं ॥ ८ ॥ फिर शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे एक चतुर नापित (नाई) आया, रामचंद्रजीके अभिषेक करनेको सामग्री आई ॥ ९ ॥ प्रथम भरतजीका क्षौरकर्म करके मंगलस्नान कराया; फिर महात्मा लक्ष्मण, इनके पीछे वानरराज सुग्रीव, अनंतर राक्षसराज विभीषण सबकोही स्नान कराया गया ॥ १० ॥ फिर रामचंद्रजीने अपनी जटाओंको शुद्धकर (श्मश्रुकर) के अभ्यंगस्नान

तथापिभजतांनित्यंकामपूरविधित्सया ॥ लीलामानुषदेहेनसर्वमप्यनुवर्तते ॥ ८ ॥ ततःशत्रुघ्नवचनान्निपुणःश्मश्रुकृंतकः ॥ संभाराश्चाभिषेकार्थमानीताराघवस्यहि ॥ ९ ॥ पूर्वंतुभरतेस्नातेलक्ष्मणेचमहात्मनि ॥ सुग्रीवेवानरेंद्रेचराक्षसेंद्रेविभीषणे ॥ १० ॥ विशोधितजटःस्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः ॥ महार्हवसनोपेतस्तस्थौतत्रश्रियाज्वलन् ॥ ११ ॥ प्रतिकर्मचरामस्यलक्ष्मणश्चमहामतिः ॥ कारयामासभरतःसीतायाराजयोषितः ॥ १२ ॥ महार्हवस्त्राभरणैरलंचक्रुःसुमध्यमाम् ॥ ततोवानरपत्नीनांसर्वासामेवशोभना ॥ १३ ॥ अकारयतकौसल्याप्रहृष्टापुत्रवत्सला ॥ ततःस्यंदनमादायशत्रुघ्नवचनात्सुधीः ॥ १४ ॥ सुमंत्रःसूर्यसंकाशंयोजयित्वाग्रतःस्थितः ॥ आरुरोहरथंरामःसत्यधर्मपरायणः ॥ १५ ॥

किया, विविध फूलोंकी माला पहरीं; अनुलेपन लगाया, महामोलके वस्त्र पहरे; इस समय वह राममूर्ति कांतिमान् होकर अतिशय उज्वल दिखाई देने लगी ॥ ११ ॥ रामजीका अंगोद्वर्तन– (अंगमें सुगंधि द्रव्य मलकर रगड़ना) इत्यादि संस्कार लक्ष्मणजीने व महाबुद्धिमान् भरतजीने कराया । और सीताका, राजपत्नियोंने कराया ॥ १२ ॥ सीताजी स्वभावसेही सुन्दर (सिंहकटि) थीं उनको बड़े मोलके वस्त्राभूषण पहरायकर विशेष शोभायमान किया । कौशल्याजीका स्वभाव बड़ा उत्तमथा । पुत्रपर प्रेम होनेसे इस उत्सवमें महाआनंद प्राप्त हुआ । उन्होंने अपने हाथसे वानरोंकी सब स्त्रियोंको स्नान कराया ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे श्रेष्ठ बुद्धिमान् सुमंत्र एक सूर्यके समान तेजपुंजसम रथ जोड़कर

लेआया । और रामचंद्रजीके आगे खड़ा रहा, सत्यधर्माचरणमें तत्पर श्रीरामचंद्रजी उस रथमें बैठे ॥ १४ ॥ १५ ॥ सुग्रीव युवराज (अंगद) हनुमान् विभीषण, सबजने स्नान कर उत्तम वस्त्र पहर, दिव्य आभूषणोंसे शरीरको शोभायमान करके तैयारथे ॥ १६ ॥ रथोंमें, घोड़ोंपर, हाथियों पर बैठकर कोई रामचंद्रजीके आगे और कोई पीछे चलने लगे;सुग्रीवकी स्त्रीऔर सीताजी पालकीमें बैठकर विस्तीर्ण राजधानीकी ओर चलीं॥ १७ ॥ इन्द्रजी हरितवर्ण घोड़े जुते हुए रथमें बैठकर देवताओंके साथ चले; वैसेही रामचंद्रजी रथमें बैठकर अपनी विशाल राजधानीको चले ॥ १८ ॥ भरतजीने सारथिका कार्य अंगीकार किया; महातेजस्वी शत्रुघ्नजीने शुभ्र छत्र धारण किया;लक्ष्मणजीने पंखा लिया;निकटही खड़े हुए शत्रुओंको जर्जर करनेवाले सुग्रीवजी एक चँवर लेकर बयार करने लगे । राक्षसोंके राजा विभीषणने दूसरा चँवर लिया । छत्र, पंखा, व चँवरोंकी डंडियां रत्नजटित थीं, और चँवर चंद्रमाके समान शुभ्र व तेजस्वी दिखाई देतेथे, देवता सिद्धोंका समुदाय और जिनका दर्शन अपूर्व पुण्यकारक समझा जाता है; वे ऋषि रामचंद्रजीकी स्तुति करने लगे । जिधर तिधरसे स्तुतिकी मधुर वाणी कानोंमें सुनाई आने लगी॥ १९॥ २०॥ २१॥ वानर लोग मनुष्योंके समान रूप बनायकर हाथियोंपर सवार हुए । और नगाड़े,शंख, बजाते,मृदंग, ढोल आदि बाजोंको खटकाते हुए चले ॥ २२ ॥ इस धूमधामसे श्रीरामचंद्रजी अपने सजे हुए नगरमें जाय पहुँचे । मार्गमें चलती हुई राममूर्तिको नगरवासियोंने देखा ॥ २३ ॥ उनकी अंगकी कांति दूबके नालोंके समान

सुग्रीवोयुवराजश्चहनुमांश्चविभीषणः ॥ स्नात्वादिव्यांबरधरादिव्याभरणभूषिताः ॥ १६ ॥ राममन्वीयुरग्रेचरथाश्वजगवाहनाः ॥ सुग्रीवपत्न्यःसीताचययुर्यानैःपुरंमहत् ॥ १७ ॥ वज्रपाणिर्यथादेवैर्हरिताश्वरथेस्थितः ॥ प्रययौरथमास्थायतथारामोमहत्पुरम् ॥ १८ ॥ सारथ्यंभरतश्चक्रेरत्नदंडंमहाद्युतिः ॥ श्वेतातपत्रंशत्रुघ्नोलक्ष्मणोव्यजनंदधे ॥ १९ ॥ चामरंचसमीपस्थोन्यवीजयदरिंदमः ॥ शशिप्रकाशंत्वपरंजग्राहासुरनायकः ॥ २० ॥ दिविजैःसिद्धसंघैश्चऋषिभिर्दिव्यदर्शनैः ॥ स्तूयमानस्यरामस्यशुश्रुवेमधुरध्वनिः ॥ २१ ॥ मानुषंरूपमास्थायवानरागजवाहनाः ॥ भेरीशंखनिनादैश्चमृदंगपणवानकैः ॥२२॥ प्रययौराघवश्रेष्ठस्तांपुरींसमलंकृताम् ॥ ददृशुस्तेसमायांतंरावंपुरवासिनः ॥२३॥ दूर्वादलश्यामतनुंमहार्हकिरीटरत्नाभरणाचितांगम्॥आरक्तकंजायतलोचनांतंदृष्ट्वाययुर्मोदमतीवपुण्याः॥२४॥

श्यामल थी, उनके मस्तकपर महामोलका मुकुट और सर्व शरीरपर उत्तम रत्नोंके गहने विराजमानथे; उनके नेत्रप्रान्त किंचित् रक्तवर्ण और कमलके समान बड़ेथे; इस प्रकार रामरूपको देखकर अयोध्याके लोगोंको परमानंद हुआ; वास्तवमें वे अत्यन्त पुण्यवानथे ॥ २४ ॥ रामचंद्रजी अत्युत्तम पीताम्बर पहर रहेथे तिनपर चित्रविचित्र रत्नोंसे खचित कमरपट्टा पड़ाथा । उनका वक्षःस्थल विशाल व पुष्ट था । कंठमें महामोलके मोतियोंके हार पडनेसे बहुत शोभा हो रहीथी, सुग्रीवादि धीर शांत स्वभावके वानर उनकी सेवा कररहेथे उनका तेज सूर्यके समान दिखाई देताथा; उनके अंगमें कस्तूरीसे मिले हुए चंदनका उबटन लग रहाथा; कंठमें कल्पवृक्षके फूलोंकी माला लंबमानथी । इस प्रकारकी राममूर्तिको प्रजाने देखा ॥ २५ ॥ २६ ॥ रामचंद्रजीकी सवारीके मार्गमें आनेका समाचार सुनतेही महाआनंद प्राप्त होनेसे अयोध्याकी

विचित्ररत्नांचितसूत्रनद्धपीतांबरंपीनभुजांतरालम् ॥ अनर्घ्यमुक्ताफलदिव्यहारैर्विरोचमानंरघुनंदनंप्रजाः ॥ २५ ॥ सुग्रीवमुख्यैर्हरिभिः प्रशांतैर्निषेव्यमाणंरवितुल्यभासम् ॥ कस्तूरिकाचंदनलिप्तगात्रंनिवीतकल्पद्रुमपुष्पमालम् ॥ २६ ॥ श्रुत्वास्त्रियोराममुपागतंमुदाप्रहर्षवेगोत्कलिताननश्रियः ॥ अपास्यसर्वंगृहकार्यमाहितंहर्म्याणिचैवारुरुहुःस्वलंकृताः ॥ २७ ॥ दृष्ट्वाहरिंसर्वदृगुत्सवाकृतिंपुष्पैःकिरंत्यःस्मितशोभिताननाः ॥ दृग्भिःपुनर्नेत्रमनोरसायनंस्वानंदमूर्तिंमनसाभिरेभिरे ॥ २८ ॥ रामःस्मितस्निग्धदृशाप्रजास्तथापश्यन्प्रजानाथइवापरःप्रभुः ॥ शनैर्जगामाथपितुःस्वलंकृतंगृहंमहेंद्रालयसन्निभंहरिः ॥ २९ ॥

स्त्रियोंके मुखपर अतिशय दमक आई । वे हाथ आये घरके काम ज्योंके त्यों छोड़कर भरभराय भूषणोंको डालडूल रामचंद्रजीके देखनेको हवेलियोंके ऊपर चढ़ीं ॥ २७ ॥ रामचंद्रजीका आकार सबकी दृष्टिको आनंद देनेवालाथा; उनको देखतेही स्त्रियोंके मुख विकसित व सुन्दर दिखाई देने लगे । आनंदमूर्ति रामचंद्रजी दर्शन करनेवालेके नेत्र व मनके प्रेम करने योग्य विषय हैं । स्त्रियोंने उनपर फूल वर्षाये; नेत्रोंके द्वारा उनका रूप भलीभांतिसे देखा और मनसे उनको भेंटा ॥ २८ ॥ इधर प्रभु, भक्तसंकटनाशन रामचंद्रजीभी, हास्ययुक्त व प्रेमकी दृष्टिसे प्रजाजनोंको देखते हुए हौले २ पिताजीके मंदिरके निकट जाय पहुँचे । इससमय रामचंद्रजी लोगोंको सर्वके पितामह दूसरे ब्रह्माजीके समान जानपड़े (दादा अपने

पोतेको जिस दृष्टिसे देखताहै; तैसेही प्रेमकी दृष्टिसे रामचंद्रजी प्रजाको देखतेथे) इस उत्सवके प्रसंगसे राजभवन इन्द्रभुवनके समान सजाया गयाथा ॥ २९ ॥ वह रघुकुलदीपक रामचंद्रजीके राजमंदिरमें प्रवेश करनेपर एक भीतरके गृहमें उतरे । तहांपर उन्होंने आनंदित होकर प्रथम अपनी माताके चरणोंकी वंदना की; और फिर सीताने सब स्त्रियोंको क्रमानुसार भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥ ३० ॥ फिर सत्य पराक्रमकारी श्रीरामचंद्रजीने भरतजीसे कहा;—"हे भरत! सर्व संपत्तिसे भरा हुआ मेरा उत्तम मंदिर ॥ ३१ ॥ मेरे मित्र वानरोंके राजा सुग्रीवको रहनेके लिये दो और दूसरे घरोंमें विभीषणादि वानरोंको—जहाँपर सर्व प्रकारसे आराम हो उतारो। " ॥ ३२ ॥ रामचंद्रजीकी आज्ञा पायकर भरतजीने उसके अनुसार कार्य किया।इसके उपरान्त महातेजस्वी वह रामजीके छोटे भ्राता सुग्रीवसे बोले;॥ ३३॥ "हे राजन्! रामचंद्रजीके अभिषेकको चार समुद्रोंका पवित्र जल मँगवाना चाहिये; तुम्हारे दूत शीघ्र जानेवाले हैं, उनको शीघ्र इस कार्यके लिये भेजदो। " ॥३४ ॥ सुग्रीवजीने शीघ्रही जांबवान्, हनुमान्, अंगद और सुषेण इन चारोंको पठाया । वह वीर पवनके समान वेगसे जायकर ॥ ३५ ॥ जलसे भरे हुए सुवर्णके कलश लेआये । तीर्थोंका जल आजानेपर मंत्रियोंके साथ सुग्रीवजीने ॥ ३६ ॥ उन रामचंद्रजीका अभिषेक करनेके लिये वसिष्ठमुनिसे कहा । वसिष्ठमुनि, वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, व आचरणसे पवित्रथे उन्होंने अनेक ब्राह्मणोंको बुलायकर उनकी सहायतासे ॥ ३७ ॥ सीताजीके सहित श्रीरामचंद्रजीको रत्नसिंहासनपर बैठाया,

प्रविश्यवेश्मांतरसंस्थितोमुदारामोववंदेचरणौस्वमातुः ॥ क्रमेणसर्वाःपितृयोषितःप्रभुर्ननामभक्त्यारघुवंशकेतुः ॥३० ॥ ततोभरतमाहेदंरामःसत्यपराक्रमः ॥ सर्वसंपत्समायुक्तंममंमंदिरमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ मित्रायवानरेंद्रायसुग्रीवायप्रदीयताम् ॥ सर्वेभ्यःसुखवासार्थमंदिराणिप्रकल्पय ॥ ३२ ॥ रामेणैवंसमादिष्टोभरतश्चतथाकरोत् ॥ उवाचचमहातेजाःसुग्रीवंराघवानुजः ॥३३ ॥ राघवस्याभिषेकार्थंचतुःसिंधुजलंशुभम् ॥ आनेतुंप्रेषयस्वाशुदूतांस्त्वरितविक्रमान् ॥ ३४ ॥ प्रेषयामाससुग्रीवोजांबवंतंमरुत्सुतम् ॥ अंगदंचसुषेणंचतेगत्वावायुवेगतः ॥ ३५ ॥ जलपूर्णान्छातकुंभकलशांश्चसमानयन् ॥ आनीतंतीर्थसलिलंशत्रुघ्नोमंत्रिभिःसह ॥ ३६ ॥ राघवस्याभिषेकार्थंवसिष्ठायन्यवेदयत् ॥ ततस्तुप्रयतोवृद्धोवसिष्ठोब्राह्मणैःसह ॥ ३७ ॥ रामंरत्नमयेपीठेससीतंसंन्यवेशयत् ॥ वसिष्ठोवामदेवश्चजाबालिर्गौतमस्तथा ॥ ३८ ॥

वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गौतम ॥ ३८ ॥ और वाल्मीकि इन सबने मिलकर परमानंदसे कुश तुलसीके मिलेहुए पवित्र और सुगंधित जलसे रामचंद्रजीका अभिषेक किया ॥ ३९ ॥ जैसे वसु इन्द्रका अभिषेक करते हैं वैसेही उन ऋषिलोगोंने ऋत्विज, उत्तम ब्राह्मण, कन्या, मंत्रिगण, आकाशमें खड़े हुए देवता व पार्षदोंके साथ स्तुति करते हुए चार लोकपालोंके साथ सर्व औषधियोंके रससे रामचंद्रजीका अभिषेक किया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ शत्रुघ्नजीने रामचंद्रजीके मस्तकपर शुभ्र छत्र धारण किया। सुग्रीव और बिभीषण दोनोंजने स्वच्छ चमरसे बयार करते खड़े रहे ॥ ४२ ॥ इन्द्रकी आज्ञासे पवनने रामचंद्रजीको सुवर्णकी एक माला दी। स्वयं इन्द्रने राजा (राम) को भक्तिपूर्वक सर्व जातिके रत्नोंसे गूँधा हुआ, व सुवर्णसे शोभायमान एक हीरोंका हार दिया। देवलोकमें गंधर्व गाने लगे। अप्सराओंके झुंडने नाचना आरंभ किया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ देवताओंके नगाडे बजे आकाशमेंसे फूलोंकी वर्षा होनेलगी, श्रीरामचंद्रजीका शरीर नये दूर्वांकुरके समान साँवराथा, नेत्र कमलदलके समान लंबे दिखाई देतेथे ॥ ४५॥’ मस्तकपर कोटि सूर्यके समान तेजस्वी मुकुट धारण करनेसे वह अत्यन्त शोभायमान होरहेथे उनकी सुन्दरताई कामदेवकी सुन्दरताईसे करोड़ गुण अधिकथी; उन्होंने पीताम्बर पहर रक्खाथा ॥ ४६ ॥ अंगपर सर्वत्र दिव्य अलंकार पहरे व दिव्य चंदनका उबटन लगाये हुए वह रघुकुमार दशसहस्र सूर्यके समान तेज़पुंज दीखतेथे; उनका आकार महाविष्णुजीके समानथा; भेद केवल इतनाही कि—इनके केवल दो भुजा थीं ॥ ४७ ॥

वाल्मीकिश्चतथाचक्रुःसर्वेरामाभिषेचनम् ॥ कुशाग्रतुलसीयुक्तपुण्यगंधजलैर्मुदा ॥ ३९ ॥ अभ्यषिंचन्रघुश्रेष्ठंवासवंवसवोयथा ॥ ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैःश्रेष्ठैःकन्याभिःसहमंत्रिभिः ॥ ४० ॥ सर्वौषधीरसैश्चैवदैवतैर्नभसिस्थितैः ॥ चतुर्भिर्लोकपालैश्चस्तुवद्भिःसगणैस्तथा ॥४१॥ छत्रंचतस्यजग्राहशत्रुघ्नःपांडुरंशुभम् ॥ सुग्रीवराक्षसेंद्रौतौदधतुःश्वेतचामरे ॥ ४२ ॥ मालांचकांचनींवायुर्ददौवासवचोदितः ॥ सर्वरत्नसमायुक्तंमणिकांचनभूषितम् ॥ ४३ ॥ ददौहारंनरेंद्रायस्वयंशक्रस्तुभक्तितः ॥ प्रजगुर्देवगंधर्वाननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ४४ ॥ देवदुंदुभयोनेदुःपुष्पवृष्टिःपपातखात् ॥ नवदूर्वादलश्यामंपद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ ४५ ॥ रविकोटिप्रभायुक्तकिरीटेनविराजितम् ॥ कोटिकंदर्पलावण्यंपीतांबरसमावृतम् ॥ ४६ ॥ दिव्याभरणसंपन्नंदिव्यचंदनलेपनम् ॥ अयुतादित्यसंकाशंद्विभुजंरघुनंदनम् ॥ ४७ ॥

इनके दांई ओर सीताजी बैठीथीं उनके अंगकी कांति सुवर्णके समानथी; वह अपने शरीरपर सर्व गहने पहने रामचंद्रजीके वामभागमें बैठीथीं ॥४८॥ उन्होंने अपने कमलके समान हाथमें एक लालकमल ले रक्खाथा; रामचंद्रजी उनको दायें हाथसे आलिंगनकर बैठे हुएथे । इसप्रकार संसारमें सबसे अत्यन्त शोभायमान रामचंद्रजी दिखलाई देतेथे । पार्वतीजीके सहित महादेवजीके मनमें उनकी पूर्ण भक्ति नित्य रहती है । इससमयका रूप देख महादेवजीको स्तुति करनेकी उत्सुकता जान पड़ने लगी । इस कारण वे देव (महादेव) सब देवताओंको साथ ले रामचंद्रजीकी स्तुति करने लगे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ महादेवजी बोले;—"नीले कमलके समान श्याम, कोमल, मुकुट, हार, और बाजूबंदादि भूषणोंके धारण करनेवाले

वामभागेसमासीनांसीतांकांचनसन्निभाम् ॥ सर्वाभरणसंपन्नांवामांकेसमुपस्थिताम् ॥ ४८ ॥ रक्तोत्पलकरांभोजांवामेनालिंग्यसंस्थि
तम् ॥ सर्वातिशयशोभाढ्यंदृष्ट्वाभक्तिसमन्वितः ॥ ४९ ॥ उमयासहितोदेवःशंकरोरघुनंदनम् ॥ सर्वदेवगणैर्युक्तःस्तोतुंसमुपचक्रमे ॥
॥ ५० ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ नमोऽस्तुरामायसशक्तिकायनीलोत्पलश्यामलकोमलाय ॥ किरीटहारांगदभूषणायसिंहासनस्थायमहाप्र
भाय ॥५१॥ त्वमादिमध्यांतविहीनएकःसृजस्यवस्यत्सिचलोकजातम् ॥ स्वमाययातेननलिप्यसेत्वंयत्स्वेसुखेऽजस्त्ररतोऽनवद्यः॥५२॥
लीलांविधत्सेगुणसंवृतस्त्वंप्रपन्नभक्तानुविधानहेतोः ॥ नानावतारैःसुरमानुषाद्यैःप्रतीयसेज्ञानिभिरेवनित्यम् ॥ ५३ ॥ स्वांशेनलोकं
सकलंविधायतंबिभर्षिचत्वंतदधःफणीश्वरः ॥ उपर्यथोभान्वनिलोडुपौषधीप्रवर्षरूपोऽवसिनैकधाजगत् ॥ ५४ ॥

सिंहासनके ऊपर बैठे हुए महाकांतिवाले सीतारूप शक्तिके साथ विराजमान श्रीरामचंद्रजीको नमस्कार हो ॥ ५१ ॥ आप आदि, मध्य, और अंत रहितहैं, एक हैं; परन्तु अपनी मायासे आप संसारको उत्पन्न करते हो और उसका संहार करतेहो उसमें लिप्त नहीं होते । अर्थात् इस जगतके वध करनेसे आपको वधादिका दोष नहीं लगता कारण कि दोषरहित आप निरन्तर आत्मसुखमें मग्न रहतेहो ॥ ५२ ॥ आप अपनी शरणमें आये हुए भक्तोंको मोक्ष देनेके लिये गुणोंसे आवृत होकर देव मनुष्य इत्यादि अनेक अवतार धारण करके लीला करते हो (आपके अवतार लेनेका कारण यही है कि अवतारचरित्र गायकर व सुनकर भक्तोंके पाप क्षीण होजावें तिससे उन्हें मोक्ष मिले) आपका यथार्थ रूप (ईश्वर होना) केवल ज्ञानी लोग जानते हैं—इतर (अज्ञानी) लोग आपको साधारण मनुष्य समझते हैं ॥ ५३ ॥ आपने प्रथम अपने

रूपके एक अंशसे यह सारा संसार उत्पन्न किया । वैसेंही सूर्य, पवन, चंद्र, औषधि (धान्य), मेघ, इन सबका रूप धारणकरके अनेक प्रकारसे संसारकी रक्षाकरतेहो ॥ ५४ ॥ आप[1] अग्निरूप होकर जगत्में प्राणियोंका खाया हुआ अन्न निरन्तर पचातेहो । जठराग्निका पचनकारी कार्य पंच प्राणरूपी प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान वायुकी सहायतासे होता है । आप अपने अखंड संतत रूपसे जनका पालन करतेहो ॥ ५५ ॥ हे ईश्वर, चंद्रमामें, सूर्यमें, व अग्निमें जो तेजहै;सर्व प्राणियोंमें जो चैतन्यांशहै; और जीवोंका धैर्य, शौर्य, आयुष्य जो कुछहै वह सर्व आपकी सत्ताहै (यह सब आपके रूपसे उत्पन्न होतेहैं) ॥ ५६ ॥ लोगोंको तुम्हारे रूपके ब्रह्मदेव, शिव, विष्णु, यह भेद, व काल, कर्म, चंद्र, सूर्य महाविभाग दिखलाई देतेहैं—वे इनमेंसे किसी एक रूपकी उपासना करतेहैं; उनको अपना आराध्य रूपही परमश्रेष्ठ लगताहै, शेषरूप उनसे भिन्नहैं; ऐसा भास होताहै, इसकारण वे दूसरे रूपकी आराधना करनेवाली संप्रदायके लोगोंसे वाद करने लगते हैं । परन्तु परमेश्वर ! वास्तवमें आप परब्रह्मरूप हैं; ब्रह्मदेवादि आपसे भिन्न नहीं हैं, यही सिद्धान्त है ॥ ५७ ॥ मत्स्यादिरूप ग्रहण करनेसे आप श्रुति और पुराणमें प्रसिद्ध हो । तैसेही सद्रूप ब्रह्म और उनसे पृथक् असत् विश्व, यह विभाग आपहीके हैं, आपके सिवाय कुछभी नहीं है ॥ ५८ ॥ अपार सृष्टिमें जो कुछ उत्पन्न हुआ

त्वमिहदेहभृतांशिखिरूपःपचसिभुक्तमशेषमजस्रम् ॥ पवनपंचकरूपसहायोजगदखंडमनेनबिभर्षि ॥ ५५ ॥ चंद्रसूर्यशिखिमध्यगतंयत्तेजईशचिदशेषतनूनाम् ॥ प्राभवत्तनुभृतामिहधैर्यंशौर्यमायुरखिलंतवसत्त्वम् ॥ ५६ ॥ त्वंविरिंचिशिवविष्णुविभेदात्कालकर्मशशिसूर्यविभागात् ॥ वादिनांपृथगिवेशविभासिब्रह्मनिश्चितमनन्यदिहकम् ॥ ५७ ॥ मत्स्यादिरूपेणयथात्वमेकःश्रुतौपुराणेषुचलोकसिद्धः ॥ तथैवसर्वंसदसद्विभागस्त्वमेवनान्यद्भवतोविभाति ॥ ५८ ॥ यद्यत्समुत्पन्नमनंतसृष्टावुत्पत्स्यतेयच्चभवच्चयच्च ॥ नदृश्यतेस्थावरजंगमादौत्वयाविनातःपरतःपरस्त्वम् ॥ ५९ ॥

---

[1] भगवाननें गीतामें कहाहैकि" अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः । प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ " मैं वैश्वानर अग्नि होकर प्राणियोंकी देहमें रहताहुं और प्राण अपानादि पांच प्राणमय होकर प्राणियोंकरके खाया हुआ चार प्रकारका अन्न पचा देताहूं ॥

था, उत्पन्न होताहै; और जो कुछ उत्पन्न होगा, यह सब आप हो आपके सिवाय स्थावर (स्थिर रहनेवाला) और जंगम (चलनेवाला) रूप इस जगत्‌में दूसरा कोई दिखाई नहीं देता; इसकारण आप सर्वमें उत्तम ऐसे ब्रह्मासे भी श्रेष्ठहो। सर्व मनुष्य आप परमात्माकी मायासे घिरे रहनेके कारण आपकी महिमाको नहीं जान सक्केहैं; और तुम्हारे भक्तोंकी सेवासे निर्मल मनवाले मनुष्य आपको ईश्वरीय तत्त्वसे जानते हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ब्रह्मादि देवताओंकाभी चित्त बाह्य विषयोंमेंही लगारहताहै इसलिये उनको आपके ज्ञानमय आत्मतत्त्वका ज्ञान नहीं होता; फिर साधारण लोगोंकी तो वार्ताही क्याहै; इसकारण जब अज्ञानी (ज्ञान पानेको असमर्थ) जीव, ज्ञानप्राप्तिकी खटपटमें न पड़के तुम्हारे इस रूपका भजन करतेहैं; तो उनके दुःखनाश हो जाते हैं, व उनको मुक्ति मिलती है ॥ ६१ ॥ मैं तुम्हारे नामका जप करताहूं, व तिससेही कृतार्थता मानकर पार्वतीके साथ काशीक्षेत्रमें निरन्तर रहताहूं । हेराम! यहतौ मेरा व्रतही है—जो प्राणी उस क्षेत्रमें मरणोन्मुख हुआ उसको मोक्ष प्राप्त होनेके लिये मैं तुम्हारे रामनामका उपदेश देताहूं ॥ ६२ ॥ हे राम! मुझे यह वरदो कि—जो मनुष्य मेरा किया हुआ यह स्तोत्र नित्य एकाग्र भक्तिसे सुने, गावे, या लिखें, उनपर आपकी कृपाहो, उनको परमावधिके परम सुख मिलें और अंतमें तुम्हारे पदको प्राप्त हों" ॥ ६३ ॥ इन्द्र बोला;—"हेदेव! उस राक्षसपति (रावण) को ब्रह्माजीसे वर मिलाथा और उस वरके अहंकारसे उसने मेरे देवताओंके राज्यका सब सुख हरणकर लियाथा। परन्तु अब आपने उस राक्षसरूपी दुष्ट शत्रुका वध किया; इसकारण अब आपकी कृपासे फिरभी वे सुख मुझको मिलें" ॥—

तत्त्वंनजानंतिपरात्मनस्तेजनाःसमस्तास्तवमाययाऽतः ॥ त्वद्भक्तसेवामलमानसानांविभातितत्त्वंपरमेकमैशम् ॥ ६० ॥ ब्रह्माद
यस्तेनविदुःस्वरूपंचिदात्मतत्त्वंबहिरर्थभावाः ॥ ततोऽबुधस्त्वामिदमेवरूपंभक्त्याभजन्मुक्तिमुपैत्यदुःखः ॥ ६१ ॥ अहंभवन्ना
मगृणन्कृतार्थोवसामिकाश्यामनिशंभवान्या ॥ मुमूर्षमाणस्यविमुक्तयेऽहंदिशामिमंत्रंतवरामनाम ॥ ६२ ॥ इमंस्तवंनित्यमनन्यभ
क्त्याशृण्वंतिगायंतिलिखंतियेवै ॥ तेसर्वसौख्यंपरमंचलब्ध्वाभवत्पदंयांतुभवत्प्रसादात् ॥ ६३ ॥ इंद्रउवाच ॥ रक्षोऽधिपेनाखिलदेव
सौख्यंहृतंचमेब्रह्मवरेणदेव ॥ पुनश्चसर्वंभवतःप्रसादात्प्राप्तंहतोराक्षसदुष्टशत्रुः ॥ ६४ ॥

छंद शिखा । मृदु, पदु पदुम,मदुम महिज्ञन मन, अलि अलि रहि रमि२ है। चष चल चलनि, करति बर बस बस, सुबय बयन, अमिं २ है । अति मद मदन,मदन मरदन सर सर सत रस पतितन है । जय जय जपत,विबुध बुध छन छन,मम पति पति त्रिभुवनहै ॥ ६४ ॥ देवता लोग बोले"हे विष्णो! हे मुरारे ! जो दूसरे जन्ममें हिरण्यकशिपुथा, वही खल राक्षस हमारेलिये ब्राह्मणोंके दिये हुए यज्ञभागोंको हरण करलेताथा अब आपने उसको मारडाला । अब आपके प्रसादसे बहुत पहलेके समान फिर वह यज्ञभाग हमारे होंगे । " कवित्त । आपको सुयश दश दिशनि अनूप छायो, श्वेत दिग्पाल भये चीन्हे ते कोऊन जात ॥ डंकनिके शबद सशंकि सुनि वंक शत्रु, दरके दिलन नेक वदन कढ़ै न बात ॥ परमप्रताप पुंज झारहीसों झारे, सारे खर खल वृन्द नाहिं एकऊ कहूं देखात ॥ होतो जोन विश्वनाथ भूपति गजानदान, जलकी सरित सिंधु वाड़वाग्निसों सुखात ॥ ६५ ॥

देवाऊचुः ॥ह्रतायज्ञभागाधरादेवदत्तामुरारेखलेनादिदैत्येनविष्णो ॥ हतोऽद्यत्वयानोवितानेषुभागाः पुरावद्भविष्यंतियुष्मत्प्रसादात् ॥ ॥ ६५ ॥ पितरऊचुः ॥ हतोऽद्यत्वयादुष्टदैत्योमहात्मन्गयादौनरैर्दत्तपिंडादिकान्नः ॥ बलादत्तिहत्वागृहीत्वासमस्तानिदानींपुनर्लब्धसत्त्वाभवामः ॥ ६६ ॥ यक्षाऊचुः ॥ सदाविष्टिकर्मण्यनेनाभियुक्तावहामोदशास्यंबलाद्दुःखयुक्ताः ॥ दुरात्माहतोरावणोराघवेशत्वया तेवयंदुःखजाताद्विमुक्ताः ॥ ६७ ॥

पितृगण बोले—"हे महात्मन् ! मनुष्यलोग गयादि क्षेत्रोंमें पिण्डादि दान करते तो वह दुष्ट दैत्य हमको मार पीटकर उन सबको भोजनकर जाता अब आपने उसका वध कियाहै इस समय हम फिर हृष्ट पुष्ट होजाँयगे"॥प्रबन्धः। जय२ रघुनंदन करुणां कुरु हे । ताड़कातनुभंजन खलदल गंजन हे। पिनाकखंडन जनरंजन हे । सीता बिबहन सुवाव गाहनहे । सौशील्यौदार्यादिकुनभाजन हे ॥ ६६ ॥ यक्षगण बोले[1]—"हेराघव! ईश्वर ! इस रावणने बलपूर्वक हम लोगोंको अवैतनिक दासपनमें लगा रक्खाथा । दुःखितचित्तसे हमलोग उसको धारणकरतेथे; आपने उसही दुरात्मा रावणका वध कियाहै; हम इस समय दुःखजालसे छूटगये" ॥ जमकपद । अधन धनद धर, धरम परम प्रभु, प्रभुज ईश हित हितके ॥ मोहन मोहन सन सन मुखकरि,

---

[1] रावण भीने अपने यहां अवैतनिक (आधुनिक आनररी Honorary Magistrate) का महकमा कर रक्खाथा, परन्तु तिस कालमें लोग इस पदको धिक्कारतेथे । परन्तु आज कल तो यह पद प्राप्त करनेके लिये शहदपर मक्खीके समान लोग गिरतेहैं ।

गंधर्वाऊचुः ॥ वयंसंगीतानिपुणागायंतस्तेकथामृतम्॥आनंदामृतसंदोहयुक्ताःपूर्णाःस्थिताःपुरा॥६८॥पश्चाद्दुरात्मनारामरावणेनाभिविद्रुताः॥तमेवगायमानाश्चतदाराधनतत्पराः॥६९॥स्थितास्त्वयापरित्राताहतोऽयंदुष्टराक्षसः॥एवंमहोरगाःसिद्धाःकिन्नरामरुतस्तथा॥७०॥

रंजन जन सो कितके ॥ अलक कलप तरु, तरुन तरनि सम, शमन पाप तम अतिके ॥भव भव पालन हर हरषितकर विश्वनाथ मति मतिके ॥६७॥ गन्धर्वगण बोले ।" हेराम ! संगीत कलामें निपुण हम पहले अमृतरूपी कीर्तिका गान करते आनंदामृतमें मग्नहोकर कृतकृत्य रहतेथे ॥ ६८ ॥ हेराम! फिर इस दुष्ट रावणने हमको बलात्कार अपने अधीन कर लिया,तब हम निरुपाय होगये—अनन्तर हम उसकाही गुण गाने लगे, और उसकी ही सेवामें दक्ष रहे ॥ ६९ ॥ हेदेव ! अब आपने उस दुष्ट राक्षस को मारकर हमको संकटसे छुटाया ॥(रेरे[1] सनि रेरे सनि सानिन्निपप्यप्यम गरेसामम्मम्म प्यप्य धप मध निध धपाथो दिग दिग दिगथी तक तक तक थुंत कथुं ठग नंग नंग नंग, नंग नंग नंग नंग तंग, तथुन्न थैया ।" फिर एक २ अप्सराने आनकर गाना प्रारंभ किया । प्रफुल्ल अप्सरा श्रीरामचंद्रजीके वंदन करके गाने लगी । 'याकेशील चुभतसी नैनन । सकुचति चलति मंजु मुख मोरति उर अति प्रेम खुलत कछु वैनन । कौनेहुँ पति अपकार गनत नहिं पग परि परि आपुहि समुझावे । विश्वनाथ प्रभु समुझ न लायक यह सुकियाको अनुपम भावे' ॥ १ ॥ मेनका अप्सरा गाने लगी--'अब मैं क्योंकर खेलन जैहौं । काहूके कर यह न समै है , कैसे नैन मुंदै हौं ।, भयो कहा बाढ्यो तनु सौरभ छिपेहुँ सखिन बोलावै । विश्वनाथ अज्ञात यौवनाकी यह कला दिखावै' ॥ २ ॥ रंभा बड़े हावभावसे गाने लगी--'अब उर अंचल मूंदन लागी । करि शृंगारि आरसी निहारति तजि ख्याल भयो वन रसपागी ॥ निरखत निज अंग अंगली नाई; आपुहिं रीझ जाति मुसक्याई ॥ विश्वनाथ यह नृत्य करति है ज्ञात यौवना चरित देखाई ॥ ३ ॥ मंजुघोषा बोली—यह तो झझकति तकि परछांहीं । समुझायहुँ समुझति नहिं केहूं मुरि बैठति वरि नाहीं ।चलुघर कहति रुदति नहिं जैहौं कहि कहि पानि डोलावै ।'विश्वनाथ यह प्रगट करति है ललित नवोढ़ा भावै॥४॥ तिलोत्तमाने कहा—वैरिनभईनिगोड़ी लाज । उर अकुतई न लखन देति पिय वीर परै यहि ऊपर गाज ॥ यों कहि फेरति अंगुरि अपोलन घूंघटकारि चलि भावै आज ॥ मुरिचित बतियाको मध्यापन लखिये विश्वनाथ महाराज ॥ ५ ॥ घृताचीने गान आरंभ किया--शशि मुख लैलै कमल

---

[1] यहांसे आरंभ करके आगे ३४ चौंतीस पद्यतक भाषाग्रंथ भाषाटीकासे बाहरका है.

लगावति ।लीलहि प्यारेके श्रुति मूंदति लालशिखाकी धुनिहि छिपावति । तनु सुगंध निजश्वास वायुते प्रात होयको यवन दबावति । विश्वनाथ जो सब निशि विहरे प्रौढ़ाकी यह कलनिलखावति ॥ ६ ॥ कलकंठीने यह रागिनी अलापी—आलस लखहुँ आपके गात ॥ मोहि दुख यहै सोंह भाईकी और नहीं कछु बात ॥ निज तनु श्रमहिं वचाय करिय जोइ सोइ मोहूंको भावै । विश्वनाथ करि नचति चातुरी प्रगटति वीरा भावै ॥ ७ ॥ आनंदलतिकाने झूम २ कर यह गाया--बोलि बोलाय कहींसो लायक ॥ जेहि गुन वसी वसी हियरेतुव, तितहि जाव तुम नायक ॥ ऐगुन भरो होतताके ढिग बैठव उचित न होई ॥ नाचति भाव अधीराके विशुनाथ लीजिये जोई ॥ ८ ॥ मदनमंजरी कहने लगी—गई यह आजु सौतिके साथ ॥ चोर मिहीचनि खेलि आंखि तेहि मूंदि लई पिय हाथ ॥ यक करसों याके कुच परस्यो, अपनी प्रीति जनाई ॥ नाचति ज्येष्ठ कनिष्ठा भावहि विश्वनाथ दरशाई ॥ ९ ॥ अनंगसुन्दरी बोली--लजत तकि काय कोटि शतकाम ॥ मोको लाख कहै किन कोई है इनहींसों काम ॥ भार परो कुलका नि जाइ अब लहिहौं सुख उरलाय ॥ विश्वनाथ यह थरकि रही है ऊढ़ा भाव देखाय ॥ १० ॥ चंचलाक्षी गाने लगी--चलावति दूर व्याहसों माई ॥ सुठि, सुन्दर झुलवन्त वैस सम, वसो परोस विहाई ॥ मेरे उर यह शोच बड़ो अलि कोउ न कहत समुझाई ॥ विश्वनाथ यह भाव अनूढ़ा प्रगटति नाचति भाई ॥ ११ ॥ चंद्रमुखी बोली--लेन जल पठयो बरसत माई ॥ पिछलि गिरी इन आन उठायो भले तहूं इत आई ॥ नातरु कहत औरकी औरै यह पुर लोग चवाई ॥ विश्वनाथ यह नाच रही है गुप्ताभाव बताई ॥ १२ ॥ शशिप्रभा कहने लगी—सून लखि छोरि वाछरु आई ॥ द्वारे बोल बतायो करसों निरखि ननदिया धाई ॥भीतर भौन निशंक लाल सँग करी आपनी भाई॥विश्वनाथ यह क्रिया विदग्धा भाव करति छबि छाई॥१३॥ चंद्रकला बोली—तेरे मिलन हेतहीं आई ॥ अब तौ रैन अँधेरी छाई राखी बात लगाई ॥ पठै देहि निज पिय पहुँचावन मेरा हियो डराई ॥ विश्वनाथ यह वचन विदग्धा नचाति भाव दरशाई ॥ १४ ॥ चंचला गाने लगी—करन सुख कोउ नारि सखि जाने ॥ यह रस जान्यो मैकी विजुरी जो बहु घन संगठानै ॥ अब कहु काको त्रसहु सहर सब लिय निज वसहिं वसाई ॥ विश्वनाथ यह नाचति हरषित कुलटा कलनि लखाई ॥ १५ ॥ शशिकला बोली--जननि कह पूजि भवानी आवै ॥ यहि अहीर संग अबही गवने वन डरमन नहि ल्यावै ॥ सो मुनि अंग समातिन फूली चली थारकर लीन्हे ॥ विश्वनाथ यह नाचति मुदिता कोगुण प्रगटै कीन्हे ॥ १६ ॥ कलावती बोली--तनु सुवासि निज सूंघि सूंघितै कहा आज सकुचाती ॥ होजानी मो

बात सखी यह मज्जनहूं नहिं जाती ॥ सुनि मुसक्याय नचाइ नेत्रदिय ताहू नैन नवाई ॥ विश्वनाथ यह नाचि लक्षिता भावरही दरशाई ॥ १७ ॥
विलासवती गाने लगी--कर परिदेश प्यारिहू लै संग कौउ परदेशी आयो ॥ सूनो अपन झराय आपनी रुचिर कपाट लगायो ॥ सो सुनि लेत उसांस
बाल निज नैननिवारि बहावै ॥ विश्वनाथ अनुशयना भावहि नाचत प्रगट देखावै ॥१८॥ चंद्रलेखा–छिगुनी छुवत बिछौनेपर छलछंद अनेक करै।
कहुँ मुसक्याति तनति कहुँ भौंहैं कहुँ तकि भयहि भरै । कहुँ रिसि करति मिलन कहुँ चाहति बहुत सराहि हरै । विश्वनाथ लखिये नाचति यह
गणिका भाव धरे ॥ १९ ॥ सुन्दरदन्तिका बोली--तो सम और हितूको होवै । सह्यो हमारे हित ज्येतो दुख जात वदन नहिं गोवै । तनकंटक छद
स्वेदहि बूड़ी अजहुँ श्वास अधिकाई । विश्वनाथ यह नचति देखावति अन्य सुरति दुखिताई ॥ २० ॥ मुरलियाने रामचंद्रजीके चरण छूकर निवेदन
किया;–ठढे बलैया ये लेत; पियते बोलै न सजनी । अबै न मेरा कह्यो करति है, रहैगी दोउ कर मींजि । फिरतैं वीति गए रजनी ॥ ठाढ़े० । जाके
लखिवै को ललकतिती सोई हहा आगे खात; उठु मिलु टेढी समुझनी ॥ ठाढ़े ॥ विश्वनाथ यह नाचति मानिनीके भावन दरशाइ; बांकी भ्रुकुटि करि
रिझनी ॥ ठाढ़े ॥ २१ ॥ कनकसुन्दरी--पिअ मम प्राण प्राण अपनो दोउ अलियेकै करि राखै । कहा करैंगी सवति सबै अब नहीं होत कछु मांखै, ।
करत रहैं बैठी घरहीमें रिस जारै निजछाती । विश्वनाथ यह प्रेम गर्विता नचत प्रेम रंगराती ॥ २२ ॥ अनुरागिनी--चलि मुसक्यात लखति परछाहीं ।
अँगुरीसों तेहि हरषि लखावति पिय गलकर निजवाहीं । सांच कहौं ऐसे कहूं दूजी नर सुरनारिन मांही । विश्वनाथ यह नचति देखावति रूप गर्विता
काहीं ॥ २३ ॥ रत्नकलाने गाया । सखिमें पति देवताको शासन कोनी भांति नशाऊं ॥ गुणभे अगुण नाकजिय आयो, निशदिन कल नहिं पाऊं ।
विरच्यो विधिनहि पियगुणभाजन केहि केहि काह पढाऊं । नाचति गुण गर्विताके भावन यह विशुनाथ अगाऊं ॥ २४ ॥ काममंजरी--तकत हरि
अंगनमें पिय अरोपरि आई । चूरोगिरी मूंदरी चूरी कर पहिराई ॥ याकी श्वास लपट जनुजरि भे नभ घनकारे । विश्वनाथ यह नचति विरहिनी
भावहि धारे ॥ २५ ॥ रूपमंजरी–कापै परमप्रीति तुवलाल । हियते उमगिनैन मोइ लखियतु, छलक छीट कछु छाजतिभाल ॥ कज्जल मिसि कलंक
कहँ धारयो मुखशशि समहिं बनायो । विश्वनाथ यह भाव खंडिता नाचत माँहि दिखायो ॥ २६ ॥ चित्रलेखा–मींजि मींजिकर क्यों पछिताई ।
जब प्यारो आपहिं ते आयो हौं बहुविधि समुझाई ॥ तबतौ एक बात नहि मानी करी आपनी भाई । विश्वनाथ यह नाचति कलहंतरिता भाव बताई

वसवोमुनयोगावोगुह्यकाश्चपतत्रिणः ॥ सप्रजापतयश्चैतेतथाचाप्सरसांगणाः ॥७१॥
सर्वैरामंसमासाद्यदृष्ट्वानेत्रमहोत्सवम् ॥ स्तुत्वापृथक्पृथक्सर्वैराघवेणाभिवंदिताः ॥७२॥

॥ २७ ॥ प्रभावती गाने लगी–करि शृंगार प्रीतम मिलिवेहित आंजु सखी बन कुंजगई । मिल्यो न सो शशि उदय जानि रवि दुःखित भीत ह्वै भजत भई॥ज्यों त्यों करि पहुँची तु अढ़िगलौं होत वही जो लिखत दई । विश्वनाथ यह विप्रलब्धकी कलनि नचति अति मदन छई ॥ २८ ॥ पद्मावती--यामिनी याम वितीत भईरी । प्रीतम नहिं आये घन आये ये करि हैं महि अंबु मईरी ॥ आवत विलम घरिक जो लागत तितहि मिलनि गमनै मो प्रानै । विश्वनाथ यह नाचत भावत परगट उत्का भावहिठानै ॥ २९ ॥ कलहंसी--आजुकहा सजि सकल सिंगारन रचति सेज निज हाथै । पुनि पुनि तकति पंथ हियरेमें नहिं समात सुख गाथै ॥ छनमें कढ़ति छनहि गृह आवति लखियतु अति अकुताई । विश्वनाथ यह वासक शय्या नाचत भाव जनाई ॥ ३० ॥ चम्पकप्रभा--निशदिन निरखत रुख ढिग भावै । सखियां काज करन नहिं पावैं आप करत सुख पावै ॥ पिय हियते नटरत सेवकाई सौतिन मुख पियराई । विश्वनाथ स्वाधीन प्रियतमा नाचति अति छवि छाई ॥ ३१ ॥ लीलावती–पिय मिलिवे हित निरखि आरसी हरषित सकल शृंगार सँवारी । करिकै मंद मसाल भयंकहि गमनी सुख मयंक उजियारी ॥ तेहि छन निज गयंद गति निन्दति पीय मिलनिकी अति अतुराई । विश्वनाथ यह नाचति विलसत अभिसारिका भाव दरशाई ॥३२॥ अनंगसेना–चलति पिउ बाल जानि गदगद उर थकित बानि कछु नाहिं तहं कहत वन्यो हिय शोकभीनी ॥ भीतर घर जाइ निजै जनमकुंडली लखाई, अतिही बिलखाय प्रिय आगे धरदीनी ॥ साहस करि कह्यौ रौन मोहिं बुझाइ करी गौन,ज्योतिर्विद लिखी जो न आय,झूंठि साची । लखि ये विश्वनाथ नाथ रीझबूझ आय हाथ प्रेयसी प्रवेत्स्पतेके भाव कलितनाची ॥ ३३ ॥रसालमंजरीः–छन आंगन छन चढ़ति अटारी । छन कढिकै बाहर मग जोहति, रोकति नैननि शीतल वारी ॥ टूटत बंद फटति अंगिया उर नहिं समात आनँद अति भारी । विश्वनाथ यह नचति नवेली आगति पतिका भावहि धारी ॥ ३४ ॥इन सबको इनाम देकर श्रीरामचंद्रजीने विदा किया;)इस प्रकारसे अप्सराओंका झुन्ड बड़े२ सर्प, सिद्ध, किन्नर, मरुद्गण ॥ ७० ॥ वसु, मुनि, गाय, गुह्यक, पक्षी, प्रजापति, ॥ ७१ ॥ सब कोई रामचंद्रजीको भेंट नेत्रोंको परमानन्द देनेवाला उनका रूप देखते रहे रामचंद्रजीने उनका वंदन किया; फिर वे पृथक् २ प्रकारसे रामचंद्रजीकी स्तुति करकै ॥ ७२ ॥

अपने२ लोकको गये । तैसेही ब्रह्म, रुद्र इत्यादि देवता आनंदसे श्रीरामचंद्रजीकी स्तुतिकर उनके चरित्र गाते २ ॥ ७३ ॥ अपने लोकको गये; अभिषेक होनेसे श्रीरामचंद्रजीका शरीर भींग रहाथा उनके निकट सीता लक्ष्मणजीभीथे; वह राजाधिराज दीखते तौ थे परन्तु वास्तव नित्य सबके हृदयमेंही रहते हैं वहाँपर आये हुए सर्व कोई रामचंद्रजीका मनमें ध्यानकरते हुए लौट गये ॥ ७४ ॥ आकाशमें नगाड़े बजने लगे; उनको सुनकर अंतःकरणमें प्रसन्न हुए स्तुति करते हुए देवसमूह करकै, और चारों ओरसे आकाशमें फूलोंकी वर्षाकरनेवाले, मुनि जनोंके सेवा करने लायक

ययुःस्वंस्वंपदंसर्वेब्रह्मरुद्रादयस्तथा ॥ प्रशंसंतोमुदारामंगायंतस्तस्यचेष्टितम् ॥ ७३ ॥ ध्यायंतस्त्वभिषेकार्द्रंसीतालक्ष्मणसंयुतम् ॥ सिंहासनस्थंराजेंद्रंययुःसर्वेहृदिस्थितम् ॥ ७४ ॥ खेवाद्येषुध्वनत्सुप्रमुदितहृदयैर्देववृंदैःस्तुवद्भिर्वर्षद्भिःपुष्पवृष्टिंदिविमुनिनिकरैरीड्यमानंसमंतात् ॥ रामःश्यामःप्रसन्नस्मितरुचिरमुखःसूर्यकोटिप्रकाशःसीतासौमित्रिवातात्मजमुनिहरिभिःसेव्यमानोविभाति ॥७५॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेपंचदशःसर्गः॥१५॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ रामेऽभिषिक्तेराजेंद्रेसर्वलोकसुखावहे ॥ वसुधासस्यसंपन्नाफलवंतोमहीरुहाः ॥ १ ॥ गंधहीनानिपुष्पाणिगंधवंतिचकाशिरे ॥ सहस्रशतमश्वानांधेनूनांचगवांतथा ॥ २ ॥ ददौशतवृषान्पूर्वंद्विजेभ्योरघुनंदनः ॥ त्रिंशत्कोटिसुवर्णस्यब्राह्मणेभ्योददौपुनः ॥ ३ ॥

सीता लक्ष्मण,हनुमान्,मुनि और वानरोंसे सेवित कोटि सूर्यके समान तेजस्वी श्रीरामचंद्रजी शोभायमान हो रहे हैं[1] ॥७५॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकांडे भाषाटीकायां पंचदशः सर्गः ॥ १५॥ रामचंद्रजीका सब सखाओंको बिदा करना ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि;-- हे पार्वति ! सब मनुष्योंको राजाधिराज रामचंद्रजी सुख देतेथे । जब उनका अभिषेक हुआ तौ पृथ्वीपर बहुत धान्य होगया, फलोंसे वृक्ष भरगये ॥ १ ॥ गंधहीन पुष्पोंमें सुगंधि हुई, वे शोभायमान हुए; सैकड़ों हज़ारों घोड़े, गाय और ब्याही हुई गाय ॥ २॥ बैल प्रथम रामचंद्रजीने ब्राह्मणोंको दान दिये । फिर तीस करोड़

---

[1] महादेवजीने अपने हृदयमें वह रूप देखकर वर्तमान कालके समान वर्णन किया अथवा श्रीरामचंद्रजीका यह रूप स्थायी है ।

अशरफियां ब्राह्मणोंको दीं ॥ ३ ॥ वस्त्राभूषण, रत्न प्रसन्न होकर रामचंद्रजीने ब्राह्मणोंको दिये । सूर्यके समान कांतिवाले रत्नोंकरकै जडित माला ॥ ४ ॥ प्रसन्न होकर व भक्तवत्सल श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवको दी; अंगदजीको रघुनाथजीने एक दिव्य बाजूबंदका जोड़ा दिया॥ ५ ॥ करोड़ चंद्रमाके समान प्रकाशमान मणि व रत्नोंसे विभूषित हार प्रसन्न होकर रघुकुलोत्तम श्रीरामचंद्रजीने सीताजीके गलेमें डाला ॥ ६ ॥ जानकीजीने वह हार अपने गलेसे निकालकर हाथमें लिया,– कुछदेर वह हारको देखती रहीं, फिर सारे वानरोंकी ओर देखा, और फिर अपने पतिके मुखकी ओर देखा-- ऐसे दोतीनवार निहारा ॥ ७ ॥ रामचंद्रजी जानकीजीका अभिप्राय जानकर उनसे बोले,–" हे जानकि ! तुम्हारा मन यह हार देनेको किसे चाहता है ? हे सुन्दरी ! जिसपर तुम प्रसन्न हुई हो उसे यह हार हर्षसे दे दो । " ॥ ८ ॥ सीताजीने वह हार रामचंद्रजीके सन्मुख हनुमान्जीको दिया; उस हारकी प्रभासे व सीताजीके सत्कार करनेसे हनुमान्जीका मुख प्रसन्न होकर शोभायमान दिखाई देने लगा ॥ फिर हनुमानजी उस हारका एक २ मोती दांतोंसे फोड़कर पृथ्वीपर डालने लगे । यह देखकर सुग्रीवजी बोले कि,– हनुमन् ! इस हारको देखकर सबहीने वांछाकीथी, सो पायकर तुमने उसके मोती तोड़कर पृथ्वीपर डाल दिया । आखिर अपनी ज़ात प्रगट कीना ? हनुमानजीने कहा,– 'इसमें रामनाम नहीं लिखा है;' सुग्रीव बोले कि,--'तुम्हारा शरीर कब नामांकित है' यह सुनकर हनुमान्जीने अपनी छातीकी खाल फाड़कर रामनाम दिखा दिया । पद--को कीरति कह सकै प्रेमके धामकी । खैंचि त्वचा किय प्रगट निशानी नामकी ॥ तकि पवनजको कर्म ठगे कपि ईशहैं। विश्वनाथ मुनि साधु किये तर शीशहैं॥ यह व्यापार देख आकाशसे "आश्चर्य है । आश्चर्य है ! !" शब्द होनेलगा ॥ ९ ॥ हनुमानजीकी अत्यन्त भक्ति देख रानचंद्रजी उनपर नित्य

वस्त्राभरणरत्नानिब्राह्मणेभ्योमुदातथा ॥ सूर्यकांतिसमप्रख्यांसर्वरत्नमयींस्रजम् ॥ ४ ॥ सुग्रीवायददौप्रीत्याराघवोभक्तवत्सलः ॥ अंगदायददौदिव्येह्यंगदेरघुनंदनः ॥ ५ ॥ चंद्रकोटिप्रतीकाशंमणिरत्नविभूषितम् ॥ सीतायैप्रददौहारंप्रीत्यारघुकुलोत्तमः ॥ ६ ॥ अवमुच्यात्मनःकंठाद्धारंजनकनंदिनी ॥ अवैक्षतहरीन्सर्वान्भर्तारंचमुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥ रामस्तामाहवैदेहीमिंगितज्ञोविलोकयन् ॥ वैदेहियस्यतुष्टासिदेहितस्मैवरानने ॥ ८ ॥ हनूमतेददौहारंपश्यतोराघवस्यच ॥ तेनहारेणशुशुभेमारुतिर्गौरवेणच ॥ ९ ॥ रामोऽपिमारुतिंदृष्ट्वाकृतांजलिमुपस्थितम् ॥ ॥ भक्त्यापरमयातुष्टइदंवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

संतुष्ट रहे । हनुमानजीको आगे खड़ा हुआ देख रामचंद्रजीने उनसे कहा;– ॥ १० ॥ “ हे हनुमन् ! मैं तुमपर प्रसन्नहूं; जो अभिलाषा हो सो वर मांगो; जो तुम मांगोगे वह वस्तु त्रिलोकीमें चाहैं देवताओंको भी मिलनी कठिन हो परन्तु मैं तुम्हें दूंगा” ॥ ११ ॥ हनुमानजीके अंतःकरणमें भी आनंद हुआ, उन्होंने रामजीका वंदन करकै कहा;-- “ हे राम ! मैं आपका नित्य नामस्मरण करता हुआ भी तृप्ति नहीं पाताहूं ॥ १२ ॥ इस कारण मेरी यह इच्छा है कि आपके नामका नित्य स्मरण करता हुआ पृथ्वीपर रहूं; लोकमें जबतक आपका नाम विद्यमान रहै; तिसकालतक यह मेरा शरीर रहै; हे राजाधिराज ! यह वर मुझको इष्ट लगता है”॥ रामचंद्रजीने । ‘ तथास्तु ’ कहकर कहा कि तुम मुक्तहो सुखपूर्वक पृथ्वीपर जायकर रहो ॥ १३ ॥ १४ ॥ कल्प समाप्त होनेके कालमें तुम मेरे रूपमें मिल जाओगे; इसमें कुछ संशय नहीं; जानकीजीने संतुष्ट होकर हनुमान्जीको आशीर्वाद दिया । ‘ हे हनुमान् ! तुम जहां कहीं भी ॥ १५ ॥ रहोगे वहींपर मेरी आज्ञासे सब भोग तुमको प्राप्त होंगे । ’ दोनों ईश्वरोंके (रामसीताके) ऐसा कहनेपर हनुमानजीके मनको हर्ष हुआ ॥ १६ ॥ उनके नेत्र आनंदके आसुँओंसे भर आये । उन्होंने दोनों जनोंको वारंवार प्रणाम किया । इसके उपरान्त वह महाबुद्धिमान् वानर तपस्या करनेके लिये हिमालय पर्वतपर गये । रामचंद्रजीको छोड़ जाते हुए उन्हें बड़ा कष्ट हुआ ॥ १७ ॥ फिर रामचंद्रजी हाथ जोड़कर खड़े हुए गुहसे बोले “ हे मित्र ! अब तुम अत्युत्तम रमणीक श्रृङ्गवेरपुरको जाओ ॥ १८ ॥ और अपने पुण्यों करके उपार्जन किये भोगोंको भोगते रहो । केवल मुझमें नित्य चित्त लगाये रहो इसलिये अंतमें तुम्हें मेरी सारूप्य मुक्ति मिलैगी

हनूमंस्तेप्रसन्नोऽस्मिवरंवरयकांक्षितम् ॥ दास्यामिदेवैरपियद्दुर्लभंभुवनत्रये ॥ ११ ॥ हनूमानपितंप्राहनत्वारामंप्रहृष्टधीः ॥ त्वन्नाम
स्मरतोरामनतृप्यतिमनोमम ॥१२॥ अतस्त्वन्नामसततंस्मरन्स्थास्यामिभूतले ॥ यावत्स्थास्यतितेनामलोकेतावत्कलेवरम् ॥ १३ ॥
ममतिष्ठतुराजेंद्रवरोऽयंमेऽभिकांक्षितः ॥ रामस्तथेतितंप्राहमुक्तस्तिष्ठयथासुखम् ॥ १४ ॥ कल्पांतेममसायुज्यंप्राप्स्यसेनात्रसंशयः ॥
तमाहजानकीप्रीतायत्रकुत्रापिमारुते ॥१५॥ स्थितंत्वामनुयास्यंतिभोगाःसर्वेममाज्ञया ॥ इत्युक्तोमारुतिस्ताभ्यामीश्वराभ्यांप्रहृष्टधीः
॥ १६ ॥ आनंदाश्रुपरीताक्षोभूयोभूयःप्रणम्यतौ ॥ कृच्छ्राद्ययौतपस्तप्तुंहिमवंतंमहामतिः ॥ १७ ॥ ततोगुहंसमासाद्यरामःप्रांजलिमब्र
वीत् ॥ सखेगच्छपुरंरम्यंशृंगवेरमनुत्तमम्॥१८॥मामेवचिंतयन्नित्यंभुंक्ष्वभोगान्निजार्जितान्॥अंतेममैवसारूप्यंप्राप्स्यसेत्वंनसंशयः॥१९॥

इसमें कुछ संशय नहीं है” ॥ १९ ॥ इतना कहकर प्रभु श्रीरामचंद्रजीने उनको दिव्य अलंकार दिये, और विपुल राज्य देकर आत्मतत्त्व ज्ञानका उपदेश किया ॥ २० ॥ फिर रामचंद्रजीके आलिंगन देनेसे गुह आनंदित होकर अपने गृहको गया । दूसरे जो बड़े २ वानर अयोध्यामें आयेंथे उनकोभी ॥ २१ ॥ श्रीरामचंद्रजीने अमोल वस्त्राभूषण देकर पूजाकी । सुग्रीवादि सर्व वानर और विभीषणकोभी ॥ २२ ॥ उत्तम प्रभु रामचन्द्रजीने प्रत्येककी योग्यतानुसार सत्कार किया । तब वह सर्व आनंदित होकर अपने२ मार्गमें लौटे ॥ २३ ॥ सुग्रीवादि वानर आनंदसे किष्किन्धाको गये; और विभीषणकोभी निष्कंटक (शत्रुरहित) राज्य मिला ॥ २४ ॥ व रामचंद्रजीने उनका सत्कार किया; तब वह संतुष्ट होकर लंकापुरीको गये । विभीषणजीकी कुलक्षय करानेके कारण किसीने निन्दा नहीं की; इधर रामचंद्रजी समस्त राज्यका पालन करने लगे; वह प्रत्येक प्राणीको प्रियथे ॥ २५ ॥ लक्ष्मणजींकी इच्छा न रहतेहुएभी रामचंद्रजीने उनको यौवराज्याभिषेक किया । वह (लक्ष्मण) परमभक्ति सहित श्रीरामचंद्रजीकी सेवामें तत्पर रहे ॥ २६ ॥ वास्तवमें कहा जाय तो श्रीरामचंद्रजी सर्वान्तर्यामी, परमात्मा, सर्व कर्मोंको प्रत्यक्ष देखने वाले, निर्मल, कर्तृत्वादिधर्मरहित, नित्य निर्विकार व ॥ २७ ॥ अपने स्वरूपसे सदा संतुष्ट होतेथे; तथापि उन परमानंद प्रभुने पुरुषोंको उपदेश देनेके लिये अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया;व उनमें विपुल दक्षिणा दी, क्योंकि मनुष्यके समान शरीर स्वीकार करनेसे उनको ऐसा करना पड़ा॥ २८॥

इत्युक्त्वाप्रददौतस्मैदिव्यान्याभरणानिच ॥ राज्यंचविपुलंदत्त्वाविज्ञानंचददौविभुः ॥२०॥ रामेणालिंगितोहृष्टोययौस्वभवनंगुहः ॥
येचान्येवानराःश्रेष्ठाअयोध्यांसमुपागताः ॥२१॥ अमूल्याभरणैर्वस्त्रैःपूजयामासराघवः ॥ सुग्रीवप्रमुखाःसर्वेवानराःसविभीषणाः ॥२२॥
यथार्हंपूजितास्तेनरामेणपरमात्मना॥ प्रहृष्टमनसःसर्वेजग्मुरेवयथागतम्॥२३॥ सुग्रीवप्रमुखाःसर्वेकिष्किंधांप्रययुर्मुदा ॥ विभीषणस्तुसं
प्राप्यराज्यंनिहतकंटकम् ॥ २४ ॥ रामेणपूजितःप्रीत्याययौलंकामनिंदितः ॥ राघवोराज्यमखिलंशशासाखिलवत्सलः ॥ २५ ॥ अनि
च्छन्नपिरामेणयौवराज्येऽभिषेचितः ॥ लक्ष्मणःपरयाभक्त्यारामसेवापरोऽभवत् ॥ २६ ॥ रामस्तुपरमात्मापिकर्माध्यक्षोऽपिनिर्मलः ॥
कर्तृत्वादिविहीनोऽपिनिर्विकारोऽपिसर्वदा॥२७॥स्वानंदेनापितुष्टःसँल्लोकानामुपदेशकृत् ॥ अश्वमेधादियज्ञैश्चसर्वैर्विपुलदक्षिणैः ॥२८॥

रामचंद्रजीको राज्यमें ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई स्त्री विधवा होकर रोई हो; सर्पका डर नहीं हुआ । किसीको रोग पीडा नहींहुआ ॥ २९ ॥ लोगोंमें चोरका भय नहीं हुआ कोई अनर्थ उत्पन्न नहीं हुआ इसीप्रकार वंशमें वृद्ध मनुष्योंकी जीवित रहते छोटे लड़कोंका मृत्युने नहीं डराया ॥ ३० ॥ सब लोक रामचंद्रजीकी पूजामें तत्पर और रामचंद्रजीके ध्यानमें दक्ष रहते; मेघ योग्यकालमें लोगोंको मन माना जल दे (वर्षाते) ॥ ३१ ॥ प्रजा अपने २ धर्माचरणमें लगी हुई और अपने वर्ण व आश्रमके योग्य गुणोंसे सम्पन्नथी । जिस प्रकार पिता अपने औरस पुत्रका पालन करता है तैसेही श्रीरामचंद्रजी अपनी प्रजाकी रक्षा करते॥ ३२ ॥ श्रीरामचंद्रजी सर्व गुणसम्पन्न,और सर्व धर्म परायणथे,उन्होंने दश हज़ार वर्ष राज्य किया ॥ ३३ ॥

अयजत्परमानंदोमानुषंवपुराश्रितः ॥ नपर्यदेवन्विधवानचव्यालकृतंभयम् ॥ २९ ॥ नव्याधिजंभयंचासीद्रामेराज्यंप्रशासति ॥ लोकेदस्युभयंनासीदनर्थोनास्तिकश्चन ॥ ३० ॥ वृद्धेषुसत्सुबालानांनासीन्मृत्युभयंतथा ॥ रामपूजापराःसर्वेसर्वेराघवचिंतकाः ॥ ३१ ॥ ववर्षुर्जलदास्तोयंयथाकालंयथारुचि ॥ प्रजाःस्वधर्मनिरतावर्णाश्रमगुणान्विताः ॥ ३२ ॥ औरसानिवरामोऽपिजुगोपपितृवत्प्रजाः ॥ सर्वलक्षणसंयुक्तःसर्वधर्मपरायणः ॥ ३३ ॥ दशवर्षसहस्राणिरामोराज्यमुपास्तसः ॥ ३४ ॥ इदंरहस्यंधनधान्यऋद्धिमद्दीर्घायुरारोग्यकरंसुपुण्यदम् ॥ पवित्रमाध्यात्मिकसंज्ञितंपुरारामायणंभाषितमादिशंभुना ॥ ३५ ॥ शृणोतिभक्त्यामनुजःसमाहितोभक्त्यापठेद्वापरितुष्टमानसः ॥ सर्वाःसमाप्नोतिमनोगताशिषोविमुच्यतेपातककोटिभिःक्षणात् ॥ ३६ ॥

यह अध्यात्मकी पवित्र रामायण पहली पहल आदिदेव महादेवजीने प्रसिद्ध करी । उनके कहनेसे पहले यह गुप्तथी । इस अत्यन्त पुण्यकारक ग्रन्थका आदर करनेवाले मनुष्योंको, धन, धान्य, ऐश्वर्य, दीर्घायु, व आरोग्यता प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ जो पुरुष एकान्तचितसे भक्तिपूर्वक इस आख्यानको सुनता या आनंदित मनसे वांचता है; उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं; और वह क्षणभरमें करोड़ पापोंसे छूट जाता है ॥ ३५ ॥ जिस पुरुषको द्रव्यकी इच्छा हो,वह पुरुष शुद्ध होकर रामचंद्रजीके अभिषेकका यह आख्यान सुने तो उसको विपुल संपत्ति प्राप्त होगी; जिसको पुत्रकी

इच्छा हो वह प्रथमसे सर्व रामायणका पाठ करे, तो उसके विद्वान् और लोकमान्य पुत्र होंगे ॥ ३६ ॥ राजा, अध्यात्मरामायण सुने तो उसको धन धान्य सम्पन्न पृथ्वीका राज्य मिलता है; वह शत्रुको जीत लेता है शत्रु उसको डरा नहीं सक्के, उस राजाके सब दुःख दूर होते हैं, और उसको सर्वत्र जय मिलती है ॥ ३७ ॥ जो स्त्रियां यह रामचंद्रजीका चरित्र श्रवण करें तो उनके लड़के (मर जाते हों तौभी) जियें, व उनको सर्वत्र मान मिले;भक्तियोगसे पूर्णभरी हुई यह कथा जो कोई वंध्या स्त्री सुने तो उसके स्वरूपवान् पुत्र होता है ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य क्रोधको जीत, मत्सर बुद्धि छोड़ विश्वासपूर्वक यह ग्रंथ सुने या बांचै, उसकी रामजीपर भक्ति होगी; वह सब संकटोंके पार होकर निर्भय और सुखी हो जावेगा ॥ ३९ ॥

रामाभिषेकंप्रयतःशृणोतियोधनाभिलाषीलभतेमहद्धनम् ॥ पुत्राभिलाषीसुतमार्यसंमतंप्राप्नोतिरामायणमादितःपठन् ॥ ३७ ॥ शृणोतियोऽध्यात्मिकरामसंहितांप्राप्नोतिराजाभुवमृद्धसंपदम् ॥ शत्रून्विजित्यारिभिरप्रधर्षितोव्यपेतदुःखोविजयीभवेन्नृपः ॥ ३८ ॥ स्त्रियोऽपिशृण्वंत्यधिरामसंहितांभवंतिताजीवसुताश्चपूजिताः ॥ वंध्याऽपिपुत्रंलभतेसुरूपिणंकथामिमांभक्तियुताशृणोतिया ॥ ३९ ॥ श्रद्धान्वितोयःशृणुयात्पठेन्नरोविजित्यकोपंचतथाविमत्सरः ॥ दुर्गाणिसर्वाणिविजित्यनिर्भयोभवेत्सुखीराघवभक्तिसंयुतः ॥ ४० ॥ सुराःसमस्ताअपियांतितुष्टतांविघ्नाःसमस्ताअपयांतिशृण्वताम्॥ अध्यात्मरामायणमादितोनृणांभवंतिसर्वाअपिसंपदःपराः॥४१॥रजस्वलावायदिरामतत्पराशृणोतिरामायणमेतदादितः॥पुत्रंप्रसूतेऋषभंचिरायुषंपतिव्रतालोकसुपूजिताभवेत् ॥४२॥पूजयित्वातुयेभक्त्यानमस्कुर्वंतिनित्यशः॥सर्वैःपापैर्विनिर्मुक्ताविष्णोर्यांतिपरंपदम्॥४३॥अध्यात्मरामचरितंकृत्स्नंशृण्वंतिभक्तितः॥पठंतिवास्वयंवक्त्रात्तेषांरामःप्रसीदति४४

प्रथमसे लेकर अंतपर्यन्त अध्यात्मरामायणको श्रवण करनेवाले मनुष्योंपर सब देवता प्रसन्न होजाते हैं, उनके सब विघ्न दूर होते और उनको सर्व उत्तमऐश्वर्य मिलते हैं॥४०॥ जो रजस्वला स्त्री यह रामायण आरंभसे सुने तो उसके उदरसे दीर्घायु श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हो वह पतिव्रतसे कभी नहीं टलती, अर्थात् लोग बड़ा मान करते हैं ॥ ४१ ॥ जो लोग भक्तिपूर्वक पूजा करके नित्य रामायणका वंदन करते हैं, वे सर्व पापोंसे छूटकर विष्णुजीके श्रेष्ठ पदको पाते हैं ॥ ४२ ॥ जो पुरुष सारी अध्यात्मरामायणको भक्तिसे श्रवण करते या स्वयंही मुखसे पाठ करते हैं; उनपर श्री रामचंद्रजी प्रसन्न होते हैं; ॥ ४३ ॥ श्रीरामचंद्रजी साक्षात् परब्रह्म हैं; उन सर्वान्तर्यामी ईश्वरके संतुष्ट होनेसे मनुष्यको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष,

इनमें जिसकी इच्छाहो वही प्राप्त हो जाता है ॥ ४४ ॥ विना खंडित किये इस रामायणको प्रतिदिन नियमसे श्रवण करता जावै,इस्से मनुष्यको आयुष्य व आरोग्य मिलता है;और उसके किये हुए करोड़ों कल्पके पाप नाश होते हैं; रामायणके श्रवण करनेसे मनुष्यपर सर्व देवता, ग्रह, समस्त ऋषि और तैसेही पितरभी प्रसन्न होजाते हैं ॥४५॥४६॥ इस अध्यात्मरामायण नावके अद्भुत प्राचीन ग्रन्थमें वैराग्य, व तत्त्वज्ञानकी कथा भरी हुई है, जो लोग इस जन्ममें, इस ग्रन्थको वांचते सुनते, या लिखते हैं फिर उनको जन्म नहीं लेना पड़ता ॥ ४७ ॥ (पार्वतीजीके साथ रामायण श्रवण करता हुआ महादेवजीका एक शिष्य बोला,–) सर्व प्राणियोंके ईश्वर महादेवजीने समग्र वेदराशिको वारंवार मथा (विचार करा) तव उनको

रामएवपरंब्रह्मतस्मिंस्तुष्टेऽखिलात्मनि ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांयद्यदिच्छतितद्भवेत् ॥ ४५ ॥ श्रोतव्यंनियमेनैतद्रामायणमखंडितम् ॥ आयुष्यमारोग्यकरंकल्पकोट्यघनाशनम् ॥ ४६ ॥ देवाश्चसर्वेतुष्यंतुग्रहाःसर्वेमहर्षयः ॥ रामायणस्यश्रवणेतुष्यंतिपितरस्तथा ॥४७॥ अध्यात्मरामायणमेतदद्भुतंवैराग्यविज्ञानयुतंपुरातनम् ॥ पठंतिशृण्वंतिलिखंतियेनरास्तेषांभवेऽस्मिन्नपुनर्भवोभवेत् ॥ ४८ ॥ आलोड्याखिलवेदराशिमसकृद्यत्तारकंब्रह्मतद्रामोविष्णुरहस्यमूर्तिरितियोविज्ञायभूतेश्वरः ॥ उद्धृत्याखिलसारसंग्रहमिदंसंक्षेपतःप्रस्फुटंश्रीरामस्यनिगूढतत्त्वमखिलंप्राहप्रियायैभवः ॥ ४९ ॥

निश्चयात्मक ज्ञान हुआ कि; रामही तारक ब्रह्मरूपी होनेसे विष्णुजीकी गूढ मूर्ति हैं यह जानकर उन्हो (महादेवजी) ने सर्व ज्ञानका एक निकाला हुआ सार संक्षेपसे पार्वतीजीको सुनाया यह वही ग्रन्थ है इसमें श्रीरामचंद्रजीके गूढ तत्त्वका स्पष्ट वर्णन है, उन महादेवजीको मेरा नमस्कार हो ॥ ४८॥ पद ॥ जगतमें केवल नाम अधार ॥ माया, क्रोध, मोह, मद, लालच, सगरे महा असार॥ १ ॥सुत, दारा, धन, मात, पिताहूं विपति परे अलगाय, पै प्रफुल्ल इन्दीवरलोचन राम करत भवपार ॥ २ ॥ रघुकुल तपन जनन प्रतिपालक घालक दुष्टन वंश, लिये हाथ धनु बाण विराजैं,

नित मो हिये मझार ॥ ३ ॥ श्यामवरण दुखहरण निरखि छबि कोटिन मदन लजायँ, करि या छबिको ध्यान मिश्रनित आनँद लहत अपार ॥ ४ ॥

इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेषोडशःसर्गः ॥ १६ ॥ इतियुद्धकांडंसमाप्तम् ॥ ॥ कांडेयुद्धात्मकेसर्गानव सप्तनीलकंठोक्ताः ॥ सार्धैकादशशतश्लोकामनुसंख्यायुताः ॥ सर्गाः ॥ १६ ॥ श्लोकाः ॥ ११६४ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकांडे मिश्रकुलभूषणश्रीमच्छिवदयालुसिंहसूनुश्रीमत्सुखानंदमध्यमपुत्रधीमत्पं० बलदेवप्रसाद मिश्रविरचितभाषाटीकायां षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

इदमध्यात्मरामायणायोध्याकाण्डं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन
खेमराजेन स्वकीये 'श्रीवेंकटेश्वर' यन्त्रालयेऽङ्कित्वा प्रकाशितम्.
संवत् १९५२, शके १८१७, सन् १८९५.

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे भाषाटीकासमेतो युद्धकाण्डः समाप्तः ॥

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

॥ अथ श्रीमदध्यात्मरामायणे भाषाटीकासमेते उत्तरकाण्डप्रारम्भः ॥

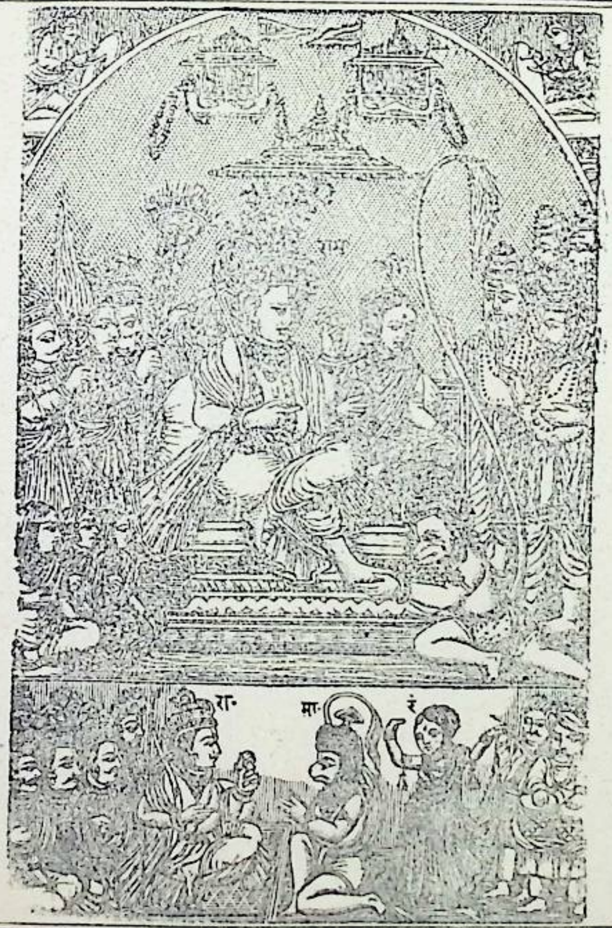
राम
रा·
मा·
रं

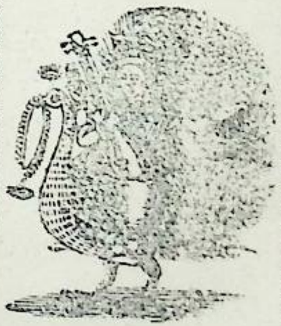

श्रीगणेशाय नमः ॥ रामचंद्रजीके पास कुंभजादिमुनियोंका आना ॥

दोहा । जयति तिलक रघुवंश प्रभु, कौशल्यासुखदान ॥ दशरथसुत खलवधनिरत, रामचन्द्र भगवान ॥ १ ॥
पार्वतीजी बोलीं। "भीमपराक्रम मातुमन,–हर्षकरन श्रीराम ॥ रावणहन संग्रामवित्, करे कोनसे काम ॥ २ ॥

कौशल्याके आनंद बढानेहारे भीमपराक्रमी रामचन्द्रने संग्राममें रावणादि राक्षसोंको मार फिर क्या किया ॥ १ ॥ अयोध्यामें राज्याभिषेक होनेंके पीछे सीताजीके सहित श्रीरामचंद्रजी मायाकरके मनुष्यरूप धारणकर कितने वर्षतक पृथ्वीमें बसे ॥ २ ॥ वह प्रभु रघुवीर साक्षात् सनातन परमात्माहैं, उन्होंने उस मनुष्यशरीरको लीलाकरकै फिर अंतमें किस प्रकारसे छोड़ा ॥ ३ ॥ यह आख्यान मुझसे कहो। हे प्रभो! भगवंत!

जयतिरघुवंशातिलकःकौसल्याहृदयनंदनोरामः ॥ दशवदननिधनकारीदाशरथिःपुंडरीकाक्षः ॥ १ ॥ पार्वत्युवाच ॥ अथरामःकिमक
रोत्कौसल्यानंदवर्धनः ॥ हत्वामृधेरावणादीन्राक्षसान्भीमविक्रमः ॥१॥ अभिषिक्तस्त्वयोध्यायांसीतयासहराघवः ॥ मायामानुषतांप्राप्य
कतिवर्षाणिभूतले ॥ २ ॥ स्थितवाँल्लीलयादेवःपरमात्मासनातनः ॥ अत्यजन्मानुषंलोकंकथमंतेरघूद्वहः ॥ ३ ॥ एतदाख्याहिभगव
ञ्छ्रद्धत्याममप्रभो ॥ कथापीयूषमास्वाद्यतृष्णामेऽतीववर्धते॥रामचंद्रस्यभगवन्ब्रूहिविस्तरशःकथाम्॥४॥श्रीमहादेवउवाच ॥ राक्षसा
नांवधंकृत्वाराज्यंरामउपस्थिते ॥ आययुर्मुनयःसर्वेश्रीराममभिवंदितुम् ॥ ५ ॥ विश्वामित्रोऽसितःकण्वोदुर्वासाभृगुरंगिराः ॥ कश्यपो
वामदेवोऽत्रिस्तथासप्तर्षयोऽमलाः॥६॥ अगस्त्यःसहशिष्यैश्चमुनिभिःसहितोऽभ्यगात् ॥ द्वारमासाद्यरामस्यद्वारपालमथाब्रवीत् ॥ ७ ॥

आपके वचनोंपर मेरा पूर्ण विश्वासहै। यह कथाअमृत पीनेको मिलनेसे मेरी तृष्णा (सुन्नेकी इच्छा) घटी नहीं, वरन् उत्तरोत्तर अधिक बढ़ती चलीहै! इसकारण हे षड्गुणेश्वर! रामचंद्रजीकी कथा विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये" ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले;—हे पार्वति! राक्षसोंका वध करकै जब श्रीरामचंद्रजी राज्यपर बैठे, तौ उन सर्वैश्वर्ययुक्त आनंददायक प्रभुका बंदनकरनेंको मुनिलोग आये ॥ ५ ॥ विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि इत्यादि सप्तर्षि[1] आये ॥ ६ ॥ ऋषि अगस्त्यजी अपने शिष्य मुनियोंको साथ लेकर वहांपर प्राप्त हुए,

---

[1] प्रत्येक मन्वन्तरमें अलग २सप्तर्षि होतेहैं-उस मन्वन्तरके सप्तऋषि लोग।

व द्वारके निकटजाय रामचंद्रजीके द्वारपालसे बोले ॥ ७ ॥ 'हेद्वारपाल ! रामचंद्रजीसे कहोकि अगस्त्यादि सर्व मुनि आशीर्वाद देकर आपको वंदन करनेको आये हुए बाहर खड़े हैं' ॥ ८ ॥ अगस्त्यजीकी आज्ञानुसार वह द्वारपाल शीघ्रही रामचंद्रजीके पास गया, और प्रभु रामचंद्रजीका नमस्कारकर विनयपूर्वक ॥ ९ ॥ हाथजोड़ कहनेलगा; 'हेदेव ! ऋषि अगस्त्यजी मुनिगणोंके साथ आपका दर्शन करनेके लिये आयकर बाहर खड़े हैं।' ॥ १० ॥ रामचंद्रजीनें उस द्वारपालको आज्ञादीः–'सुखपूर्वक (विनाकुछ प्रतिबंधके किये) उन्हें यहांपर लेआओ। ' द्वारपालनें रामचंद्रजीकी आज्ञासे गौरवपूर्वक उनको मार्ग दिखाया,–तब उन मुनि लोगोंने अनेक प्रकारके रत्नोंसे शोभायमान किये हुए उस मंदिरमें प्रवेश किया ॥ ११ ॥ मुनियोंको देखतेही रामजी तत्काल उठकर खड़ेरहे उन्हौंनें हाथजोड़, पाद्य, अर्घ्य, इत्यादि उपचारोंसे उनकी पूजाकी, मधुपर्कके लिये शास्त्रोक्त विधिके अनुसार वृषभ दिया ॥ १२ ॥ व सबको अलग २ प्रणाम करकै जैसी जिसकी योग्यताथी वैसाही दिव्य आसन उसको अर्पण किया; मुनिजन उन आसनोंपर विराजमान हुए; प्रभुके हाथसे पूजा प्राप्त होनेंपर उनको अत्यन्त हर्षजान पड़ा ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें उनसे कुशलप्रश्न किया; तिसका उत्तर देकर मुनिजनोंनेभी श्रीरामजीसे कुशल पूछी और कहा,–' विशाल हैं बांहैं जिनकी ऐसे हेरघुनंदन ! आपको सर्वत्र कुशलहै ॥ १४ ॥ हेशत्रुसंहारक ! आपने शत्रुका वध किया और आज ऐसी स्थितिमें हमको आपका

ब्रूहिरामायमुनयःसमागत्यबहिःस्थिताः ॥ अगस्त्यप्रमुखाःसर्वेंआशीर्भिरभिनंदितुम् ॥ ८ ॥ प्रतीहारस्ततोराममगस्त्यवचनाद्रुतम् ॥ नमस्कृत्याब्रवीद्वाक्यंविनयावनतःप्रभुम् ॥ ९ ॥ कृतांजलिरुवाचेदमगस्त्योमुनिभिःसह ॥ देवत्वद्दर्शनार्थायप्राप्तोबहिरुपस्थितः ॥१०॥ तमुवाचद्वारपालंप्रवेशययथासुखम् ॥ पूजिताविविशुर्वेश्मनानारत्नविभूषितम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वारामोमुनीञ्छीघ्रंप्रत्युत्थायकृतांजलिः ॥ पाद्यार्घ्यादिभिरापूज्यगांनिवेद्ययथाविधि ॥ १२ ॥ नत्वातेभ्योददौदिव्यान्यासनानियथार्हतः ॥ उपविष्टाःप्रहृष्टाश्चमुनयोरामपूजिताः ॥ १३ ॥ संपृष्टकुशलाःसर्वैंरामंकुशलमब्रुवन् ॥ कुशलंतेमहाबाहोसर्वत्ररघुनंदन ॥ १४ ॥ दिष्ट्येदानींप्रपश्यामोहतशत्रुमरिंदम ॥ नहिभारःसतेरामरावणोराक्षसेश्वरः ॥ १५ ॥

दर्शन मिला, यह बड़े आनंदकी बात है। हेराम ! राक्षसोंका राजा रावण कुछ आपको बहुत भारी (मारनेंमें कठिन) नहींथा ॥ १५ ॥ कारण कि आप हाथमें धनुष लेकर त्रिलोकीके जीतनेंकोभी समर्थ हैं ॥ आपनें रावणादि सर्व राक्षसोंको मारा, यह बडी उत्तम बात हुई ॥ १६ ॥ हे महावीर! रावणका वध करना सहजथा; परन्तु रावणके पुत्र इन्द्रजीतका नाश होना परमदुर्घटथा, परन्तु वहभी कार्य पूरा होगया, इसकारण हमको बहुत आनंद होताहै ॥ १७ ॥ मृत्युके समान कुंभकर्णादि राक्षसथे, हेरघुवीर ! उनको आपने संग्राममें मृत्युके समान बाणोंसे मारडाला ॥१८॥ आपने पहले हमको यह अभयदक्षिणा दीथी–तिसीके अनुसार युद्धमें राक्षससमूहका नाश किया, व अब कृतार्थ होकर आप विराजमान हैं’ ॥ १९ ॥

सधनुस्त्वंहिलोकांस्त्रीन्विजेतुंशक्तएवहि ॥ दिष्ट्यात्वयाहताःसर्वेराक्षसारावणादयः ॥ १६ ॥ सह्यमेतन्महाबाहोरावणस्यनिबर्हणम् ॥ असह्यमेतत्संप्राप्तंरावणेर्यन्निषूदनम् ॥ १७ ॥ अंतकप्रतिमाःसर्वेकुंभकर्णादयोमृधे ॥ अंतकप्रतिमैर्बाणैर्हतास्तेरघुसत्तम ॥ १८ ॥ दत्ताचेयंत्वयाऽस्माकंपुराह्यभयदक्षिणा ॥ हत्वारक्षोगणान्संख्येकृतकृत्योऽद्यजीवासि ॥ १९ ॥ श्रुत्वातुभाषितंतेषांमुनीनांभावितात्मनाम् ॥ विस्मयंपरमंगत्वारामःप्रांजलिरब्रवीत् ॥ २० ॥ रावणादीनतिक्रम्यकुंभकर्णादिराक्षसान् ॥ त्रिलोकजयिनोहित्वाकिंप्रशंसथरावणिम् ॥ २१ ॥ ततस्तद्वचनंश्रुत्वाराघवस्यमहात्मनः ॥ कुंभयोनिर्महातेजारामंप्रीत्यावचोऽब्रवीत् ॥ २२ ॥ शृणुरामयथावृत्तं रावणेरावणस्यच ॥ जन्मकर्मवरादानंसंक्षेपाद्वदतोमम ॥ २३ ॥ पुराकृतयुगेरामपुलस्त्योब्रह्मणःसुतः ॥ तपस्तप्तुंगतोविद्वान्मेरोःपार्श्वे महामतिः ॥ २४ ॥ तृणविंदोराश्रमेऽसौन्यवसन्मुनिपुंगवः ॥ तपस्तेपेमहातेजाःस्वाध्यायनिरतःसदा ॥ २५ ॥

शुद्ध अंतःकरणवाले उन मुनियोंके वचन सुनकर परम विस्मय पायेहुए श्रीरामचंद्रने हाथ जोड़कर प्रश्नकिया ॥ २० ॥ “हेमुनियो! रावण, कुंभकर्णादि राक्षसोंने त्रिलोकीको जीतलिया, उनको छोड़कर आप लोग मेघनादकी प्रशंसा क्यों करतेहैं? ”॥ २१ ॥ महाप्रतापी रामचंद्रजीके वचन सुनकर महातेजस्वी मुनि अगस्त्यजीने प्रसन्न होकर उनसे कहा;–॥ २२॥ “हेराम! रावण, और रावणके पुत्र मेघनादका वृत्तान्त कहताहूं, तथा उसका जन्मचरित और वरदानपाना इत्यादि संक्षेपसे कहताहूं सो आप सुनें ॥ २३ ॥ हेराम! पहले सत्ययुगमें ब्रह्माजीके पुत्र महाबुद्धिसंपन्न व विद्वान् पुलस्त्यजी तपकरनेके लिये मेरु पर्वतकी तलैटीमें गये ॥ २४ ॥ नित्य वेद पढ़नेवाले वह महातेजस्वी श्रेष्ठ मुनि तृणबिन्दुके आश्रममें तप

करते हुए रहे ॥ २५ ॥ वह आश्रमस्थल अत्यन्त रमणीय था वहांपर देवता और गन्धर्वोंकी कन्या आकर गातीं नाचतीं, हँसतीं, और बाजे बजातीथीं ॥ २६ ॥ उनके रूप इतने सुन्दरथे । उन्होंने ऊपर कहे अनुसार नाच गायकर पुलस्त्यजीके तपमें विघ्न किया, तब उन महातेजस्वी मुनिने क्रोधित होकर उग्र शाप दिया कि ॥२७॥ "जो कोई मेरी दृष्टिके सन्मुख पड़ेगी उसको तत्काल गर्भ रहजायगा !" सब लड़कियोंको शापका भय हुआ। तिस्से कोई उस स्थानमें पाँव न रक्खे ॥२८॥ तृणबिन्दुराजर्षिकी कन्याने यह शापकी बात नहीं सुनीथी, वह निर्भय हो मुनिजीकी ओर देखतीहुई उनके आगे फिरती रही ॥ २९ ॥ तत्काल उसको गर्भ रहगया, व उसका चिह्न–तिसका शरीर पीला–दीखने लगा।

तत्राश्रमेमहारम्येदेवगंधर्वकन्यकाः ॥ गायंत्योननृतुस्तत्रहसंत्योवादयंतिच ॥२६॥ पुलस्त्यस्यतपोविघ्नंचक्रुःसर्वाअनिंदिताः ॥ ततःक्रुद्धोमहातेजाव्याजहारवचोमहत् ॥ २७ ॥ यामेदृष्टिपथंगच्छेत्सागर्भंधारयिष्यति ॥ ताःसर्वाःशापसंविग्नानतंदेशंप्रचक्रमुः ॥ २८ ॥ तृणबिंदोस्तुराजर्षेःकन्यातन्नाशृणोद्वचः ॥ विचचारमुनेरग्रेनिर्भयातंप्रपश्यती ॥ २९ ॥ बभूवपांडुरतनुर्व्यंजितांतःशरीरजा ॥ दृष्ट्वासादेहवैवर्ण्यंभीतापितरमन्वगात् ॥ ३० ॥ तृणबिंदुश्चतांदृष्ट्वाराजर्षिरमितद्युतिः ॥ ध्यात्वामुनिकृतंसर्वमवैद्विज्ञानचक्षुषा ॥३१॥ तांकन्यांमुनिवर्यायपुलस्त्यायददौपिता ॥ तांप्रगृह्याब्रवीत्कन्यांबाढमित्येवसद्विजः ॥ ३२॥ शुश्रूषणपरांदृष्ट्वामुनिःप्रीतोऽब्रवीद्वचः ॥ दास्यामिपुत्रमेकंतेउभयोर्वंशवर्धनम् ॥ ३३ ॥ ततःप्रासूतसापुत्रंपुलस्त्याल्लोकविश्रुतम् ॥ विश्रवाइतिविख्यातःपौलस्त्योब्रह्मविन्मुनिः ॥ ३४ ॥

अपने शरीरको फीका पड़ाहुआ देखकर वह डरी और पिताके पास गई ॥ ३० ॥ तृणबिन्दु राजर्षिका तेज (प्रभाव) प्रमाणरहित था;–उन्होंने कन्याकी ओर देख कुछ विचार किया तत्काल ज्ञानदृष्टिसे उन्होंने पुलस्त्य मुनिके चरित्रको जान लिया ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त उसके पिताने वह कन्या उन श्रेष्ठ पुलस्त्य मुनिको दी। उस ब्राह्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर उस कन्याको अंगीकार किया ॥ ३२ ॥ वह कन्या पतिकी सेवा करनेमें दक्ष रही; उसके आचरण देख पुलस्त्यमुनि संतुष्ट होकर बोले;--दोनों कुलका कल्याण करनेवाला एक पुत्र मैं तुझे देताहूं ॥ ३३ ॥ फिर उसने पुलस्त्यजीसे एक पुत्र उत्पन्न किया वह पुत्र लोकमें बहुत प्रसिद्ध हुआ। उसका नाम विश्रवा हुआ; पुलस्त्यका यह पुत्र ब्रह्मज्ञानी

और विचारसंपन्न हुआ ॥ ३४ ॥ मुनि भरद्वाजजीने उसके स्वभावादि गुण देखकर आनंदसे अपनी कन्या उसको भार्या बनानेके लिये देदी ॥ ३५॥ उसके गर्भमें विश्रवाजीसे एक लोकमान्य 'वैश्रवण' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । वह लड़का गुणोंमें अपने पिताके समान था; उसको ब्रह्माजीसे वर मिला॥ ३६ ॥ तिसके मनमें 'मैं निरन्तर द्रव्याधीश होजाऊं।' ऐसी इच्छा थी इस इच्छाके पूर्ण होनेको उसने तपकिया । तप करनेसे ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उस वैश्रवणको शुभ इच्छित वर दिया ॥ ३७ ॥ इस प्रकारसे वर पानेसे वह धनपति (वैश्रवण कुबेर) ब्रह्माजीके दिये हुए तेजस्वी विमानमें बैठकर पिताजीके दर्शनको आए ॥ ३८ ॥ उन्होंने पिताजीको नमस्कार किया, और तपस्याका फल निवेदन करकै कहा;--हे पिता ! ब्रह्माजीने हमको शुभ वर दिया ॥ ३९॥ अब आप मुझको एक ऐसा निश्चित स्थल बताइये कि जिसपर किसीकी मालिकी नहो;—और जहाँ किसी प्रकारकी पीड़ा भोगनी नहीं पड़े ॥ ४० ॥ विश्रवाने पुत्रसे कहा;—"पुत्र ! लंकानामकी एक सुन्दर नगरी विश्वकर्माने राक्षसोंके रहनेको बनाई है ॥ ४१ ॥ परन्तु वह दैत्य विष्णुजीके डरसे पातालमें घुस रहे हैं; वह नगरी समुद्रके बीचमें वसी हुई है; इसकारण कोई शत्रु उसको नहीं दबाय सकता ॥ ४२॥ तुम वहाँ जायकर रहो । राक्षसोंके निकल जानेपर आजतक उस नगरीमें कोई नहीं रहा ।" पिताजीकी ऐसी आज्ञा पाय धनद (कुबेर) ने जायकर उस पुरीमें प्रवेश किया ॥ ४३ ॥ वहांपर वह पिताजीकी आज्ञासे बहुत दिनतक रहे इस बातके कुछ दिन पीछे एक दिन सुमालीनामका एक

तस्यशीलादिकंदृष्ट्वाभरद्वाजोमहामुनिः ॥ भार्यार्थंस्वांदुहितरंददौविश्रवसेमुदा ॥ ३५ ॥ तस्यांतुपुत्रःसंजज्ञेपौलस्त्याल्लोकसंमतः ॥ पितृतुल्योवैश्रवणोब्रह्मणाचानुमोदितः ॥ ३६ ॥ ददौतत्तपसातुष्टोब्रह्मातस्मैवरंशुभम् ॥ मनोऽभिलषितंतस्यधनेशत्वमखंडितम्॥ ३७॥ ततोलब्धवरःसोऽपिपितरंद्रष्टुमागतः ॥ पुष्पकेणधनाध्यक्षोब्रह्मदत्तेनभास्वता ॥ ३८ ॥ नमस्कृत्वाथपितरंनिवेद्यतपसःफलम् ॥ प्राहमे भगवान्ब्रह्मादत्त्वावरमनिंदितम् ॥ ३९ ॥ निवासायनमेस्थानंदत्तवान्परमेश्वरः ॥ ब्रूहिमेनियतंस्थानंहिंसायत्रनकस्यचित् ॥ ४० ॥ विश्रवाअपितंप्राहलंकानामपुरीशुभा ॥ राक्षसानांनिवासायनिर्मिताविश्वकर्मणा ॥४१॥ त्यक्त्वाविष्णुभयाद्दैत्याविविशुस्तेरसातलम् ॥ सापुरीदुष्प्रधर्षान्यैर्मध्येसागरमास्थिता ॥ ४२॥ तत्रवासायगच्छत्वंनान्यैःसाधिष्ठितापुरा ॥ पित्रादिष्टस्त्वसौगत्वातांपुरींधनदोऽविशत् ॥ ४३ ॥ सतत्रसुचिरंकालमुवासपितृसंमतः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यसुमालीनामराक्षसः ॥ ४४ ॥

मांस खानेवाला राक्षस ॥ ४४ ॥ पातालसे निकलकर पृथ्वीपर घूमताथा वह दैत्य अपने साथ साक्षात् देवी लक्ष्मीजीके समान रूपगुणसम्पन्न अपनी कन्याकोभी ले आयाथा ॥ ४५ ॥ धनपति कुबेरजीको पुष्पक विमानमें बैठकर घूमताहुआ देख उस दूरदर्शी राक्षसने राक्षसोंका हित करनेके लिये एक विचार किया और ॥ ४६ ॥ वहाँ साथ आईहुई कैकसीनामक कन्यासे बोला;–'वत्से ! तेरे विवाह करनेका यह समय ठीक है; क्योंकि तरुणाई निकली जाती है ॥ ४७ ॥ बेटी ! गुणसंपन्न होनेसेभी कोई वर तुझे नहीं मांगता, इसकारणकि कदाचित् तू नहीं करजाय इसका भय है। इसकारण मैं कहताहूं कि तू अब ब्रह्मकुलमें जन्म लिये हुए इन मुनि (विश्रवा) को वर, तेरा कल्याण हो ॥ ४८ ॥ हे बाले ! ऐसा करनेसे

रसातलान्मर्त्यलोकंचचारपिशिताशनः ॥ गृहीत्वातनयांकन्यांसाक्षाद्देवीमिवश्रियम् ॥ ४५ ॥ अपश्यद्धनदंदेवंचरंतंपुष्पकेणसः ॥ हितार्थंचिंतयामासराक्षसानांमहामनाः ॥ ४६ ॥ उवाचतनयांतत्रकैकसींनामनामतः ॥ वत्सेविवाहकालस्तेयौवनंचातिवर्तते ॥ ४७ ॥ प्रत्याख्यानाच्चभीतैस्त्वंनवरैर्गृह्यसेशुभे ॥ सात्वंवरयभद्रंतेमुनिंब्रह्मकुलोद्भवम् ॥४८॥ स्वयमेवततःपुत्राभविष्यंतिमहाबलाः॥ईदृशाःसर्वशोभाढ्याधनदेनसमाःशुभे ॥४९॥ तथेतिसाश्रमंगत्वामुनेरग्रेव्यवस्थिता ॥ लिखंतीभुवमग्रेणपादेनाधोमुखीस्थिता ॥५०॥ तामपृच्छन्मुनिःकात्वंकन्यासिवरवर्णिनि ॥ साब्रवीत्प्रांजलिर्ब्रह्मन्ध्यानेनज्ञातुमर्हसि ॥ ५१ ॥ ततोध्यात्वामुनिःसर्वंज्ञात्वातांप्रत्यभाषत ॥ ज्ञातंतत्त्वाभिलषितंमत्तःपुत्रानभीप्ससि ॥ ५२ ॥ दारुणायांतुवेलायामागतासिसुमध्यमे ॥ अतस्तेदारुणौपुत्रौराक्षसौसंभविष्यतः॥ ५३ ॥

तेरे अनायास इस कुबेरके समान सर्वैश्वर्यसम्पन्न व महापराक्रमी पुत्र होगा।' ॥ ४९ ॥ वह कन्या 'अच्छा' कहकर आश्रममें गई, व मर्यादशील स्त्रीके स्वभावके समान, पाँवके अँगूठेसे पृथ्वीपर लकीर खैंचती नीचेको मुख किये मुनिके आगे खड़ी रही ॥ ५० ॥ मुनि विश्रवाजीने उस्से प्रश्न किया;–" हे श्रेष्ठकान्तिवाली तू कौन है? किसकी कन्या है?" उसने हाथ जोड़कर उत्तर दिया,–हे ब्रह्मन् ! आप ध्यानके द्वारा सब जाननेको समर्थ हैं ॥ ५१ ॥ इसके उपरान्त मुनिजीने ध्यान करकै सर्व प्रकार जाना और उसको प्रत्युत्तर दिया। 'मैं तेरे अभिलाषको जानगया; तू मुझसे पुत्रकी कामना करती है ॥ ५२ ॥ मैं तेरी इच्छा पूरी करताहूं। परन्तु सुन्दरि ! तू इस भयंकर वेलामें आई है; इसलिये तेरे पुत्र दो क्रूर

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

राक्षस होंगे' ॥५३॥ कैकसी बोली,—'हे मुनिवर ! आपसेभी ऐसे (क्रूर) पुत्र होंगे?'। विश्रवाजीने उस्से कहा,—'इन दोनोंके अतिरिक्त जो तेरा पिछला पुत्र होगा, वह महाबुद्धिमान् परमभगवद्भक्त, ऐश्वर्यसम्पन्न व रामचंद्रजीकी भक्ति करनेमें केवल निमग्न होगा' ॥ ५४ ॥ ऐसा मुनिजीने कहा। इसके अनुसारही कैकसीके योग्य कालमें प्रथम पुत्र हुआ । इसके दशशिर और वीस हाथ थे; इस अतिभयंकर बालकका नाम 'रावण' हुआ ॥ ५५ ॥ उस राक्षसके जन्म लेतेही पृथ्वी थर २ कांपनेलगी; व उत्पातकी सूचना करनेवाले सब प्रकारके अशुभ शकुन हुए ॥ ५६ ॥ फिर कुंभकर्ण जन्मा, इसका प्रचंड शरीर पर्वतके समान था; तिसके पीछे रावणकी शूर्पणखा नामक बहनने जन्म लिया ॥५७॥ इसके उपरान्त विभीषणने अवतार लिया, उनका स्वरूप शान्त, जिनको देखतेही देखनेवालोंके मनमें समाधानी होजावै; वे नित्य वेदाध्ययन करते, उनका आहार नियमित था, वह नित्य अपने कर्मोंके करनेमें तत्पर थे ॥ ५८ ॥ कुंभकर्णका अंतःकरण दुष्ट था; वह अतिक्रूर राक्षस जिसका अंतःकरण सदा असंतुष्ट रहताथा ब्राह्मण और ऋषियोंके समुदायको भक्षण करताहुआ घूमा करताथा ॥ ५९ ॥ जैसे प्राणियोंके देहमें उनका नाश करनेके लिये रोग बढ़ता है; तैसेही रावणभी लोकोंको भयदायक होताहुआ बढ़ चला उसकी सामर्थ्य बड़ी थी; वह लोकोंको पीड़ा देता रहता ॥ ६० ॥ (अगस्त्यमुनि बोले) हे राम ! सर्व प्राणियोंके अंतरमें जो कुछ होता है, उस सर्वको आप जानते हैं; विज्ञान आपकी दृष्टि है । इसके द्वारा

साब्रवीन्मुनिशार्दूलत्वत्तोऽप्येवंविधौसुतौ ॥ तामाहपाश्चिमोयस्तेभविष्यतिमहामतिः ॥५४॥ महाभागवतःश्रीमाद्रामभक्त्येकतत्परः ॥
इत्युक्तासातथाकालेसुषुवेदशकंधरम् ॥५५॥ रावणंविंशतिभुजंदशशीर्षंसुदारुणम् ॥ तद्रक्षोजातमात्रेणचचालचवसुंधरा ॥ ५६ ॥ बभू
वुर्नाशहेतूनिनिमित्तान्यखिलान्यपि ॥ कुंभकर्णस्ततोजातोमहापर्वतसन्निभः ॥ ५७ ॥ ततःशूर्पणखानामजातारावणसोदरी ॥ ततो
विभीषणोजातःशांतात्मासौम्यदर्शनः ॥५८॥ स्वाध्यायीनियताहारोनित्यकर्मपरायणः॥कुंभकर्णस्तुदुष्टात्माद्विजान्संतुष्टचेतसः॥५९॥
भक्षयन्नृषिसंघांश्चविचचारातिदारुणः ॥ रावणोऽपिमहासत्त्वोलोकानांभयदायकः ॥ ववृधेलोकनाशायह्यामयोदेहिनामिव ॥ ६० ॥
रामत्वंसकलांतरस्थमभितोजानासिविज्ञानदृक्साक्षीसर्वहृदिस्थितोहिपरमोनित्योदितोनिर्मलः ॥ त्वंलीलामनुजाकृतिःस्वमहिमन्मा
यागुणैर्नाज्यसेलीलार्थंप्रतिचोदितोऽद्यभवतोवक्ष्यामिरक्षोद्भवम् ॥ ६१ ॥

आप सर्व क्रिया प्रत्यक्ष देखतेहैं; प्रत्येक प्राणीके अंतरमें आपका वास है। आप परमश्रेष्ठ, नित्य स्फुरण पानेवाले हो, निर्मल हो, लीला करके यह मनुष्यशरीर धारण किया है, आपकी महिमा असाधारण (अत्युत्तम) है, आप मायाके गुणोंमें लिप्त नहीं होते; अपनी लीलाकरके ही प्रश्न किया; इस कारण मैं राक्षसोंका जन्मवृत्तान्त आपसे कहताहूं (वास्तवमें आपके आगे मुझमें बोलनेकी क्या शक्ति है ॥ ६१ ॥ जो तुमने?) मुझसे कहा कि तुम मेरे ऐसे स्वरूपको साक्षी जानने लगे, तौ मैं जो कि मूढ़ हूं, केवल तुम्हारे अनुग्रहसे अचिन्त्यशक्तिवाला, चैतन्यमात्र, अक्षर, अजन्मा, और जिसने आत्मतत्त्वको जाना है ऐसे अनंत अद्वितीय अर्थात् केवलरूप अर्थात् जिसका रूप सांसारिक लोगोंको अति गूढ़ है ऐसे तुम्हारे स्वरूपको जानकर इसके अनुसार मैं इस प्रवृत्तिमार्गरूप संसारके विषे आपके अनुग्रहसे विचरण करताहूं ॥ ६२ ॥ रघुपति रामचंद्रजीकी कीर्त्ति

जानामिकेवलमनंतमचिंत्यशक्तिंचिन्मात्रमक्षरमजंविदितात्मतत्त्वम् ॥ त्वांरामगूढनिजरूपमनुप्रवृत्तोमूढोऽप्यहंभवदनुग्रहतश्चरामि ॥ ६२ ॥ एवंवदंतमिनवंशपवित्रकीर्तिःकुंभोद्भवंरघुपतिःप्रहसन्बभाषे ॥ मायाश्रितंसकलमेतदनन्यकत्वान्मत्कीर्तनंजगतिपापहरंनिबोध ॥ ६३ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेउत्तरकांडेप्रथमःसर्गः ॥ १ ॥ श्रीरामवचनंश्रुत्वापरमानंदनिर्भरः ॥ मुनिःप्रोवाचसदसिसर्वेषांतत्रशृण्वताम् ॥१॥ अथवित्तेश्वरोदेवस्तत्रकालेनकेनचित् ॥ आययौपुष्पकारूढःपितरंद्रष्टुमंजसा ॥ २ ॥

संसारमें परमपवित्र है; अगस्त्य मुनिके ऐसा कहनेपर वह प्रभु हँसते २ बोले हे मुने! यह सर्व जगत् मायाश्रित है कारण कि मुझसे अलग कुछ पदार्थ नहीं है परन्तु मेरे अवतारका मुख्य यही प्रयोजन है कि संसारी लोगोंको मेरी कथा सुन्नेको मिलनेसे उनके सब पापोंका संहार होजाता है इसकारण हे मुने! वह कथा वर्णनकरो ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उ० भाषाटीकायां प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥ रावणका महाउत्पात करना। श्रीमहादेवजी बोले कि;— हे पार्वति! श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर मुनि अगस्त्यजीको परमानंद प्राप्त हुआ। उन्होंने सभाके सब लोगोंके सुनते हुए वहाँपर इस प्रकारसे कहा ॥ १ ॥ हे राम! फिर कुछकाल वीतनेपर धनपति देव कुबेर पुष्पकविमानमें बैठकर पिताजीके दर्शनको आये ॥ २ ॥

उनका तेज विलक्षण होनेसे सामर्थ्यभी बड़ी थी; उनको देखकर कैकसी अपने पुत्रोंके निकट जाय रावणसे बोली, ॥ ३ ॥ बालक ! वह देख कुबेर अपने तेजसे कैसा उज्वल दीखता है;तू भी ऐसा यत्न कर कि जिस्से कुबेरकी योग्यतासे पहुँचे; तेरे अंगमें सामर्थ्य है इस कारण मुझे जान पड़ता है कि इस कार्यमें तुझे यश मिलैगा ॥ ४ ॥ माताके वचन कानमें पड़ते ही रावण ईर्षापर चढ़ा; उसने तत्कालही प्रतिज्ञा की कि“मैं थोड़ेही कालमें कुबेरके समान या उस्से भी अधिक संपत्तिमान हूंगा ” मैया ! मुझे आशीर्वादकी दृष्टिसे देख; बस सब कार्य होगया, संतापको त्यागदे ॥ ५ ॥ दशानन (रावण) इतना कहकर इच्छितफल लेनेके लिये घोर तपकरनेके अर्थ दोनों भ्राताओंके साथ गोकर्णक्षेत्रमें गया ॥ ६ ॥ तीनों भ्राता अपने २ नियमोंका पालन करके बड़ा भारी तप करने लगे। उनके समान घोर तप दूसरेको करना कठिन है; उस तपसे सर्व लोकोंको विलक्षण ताप होने लगा ॥ ७ ॥ कुंभकर्णने दशहजार वर्षतक तप किया । धर्मात्मा विभीषणजी सत्य (ब्रह्मचर्य अहिंसा इत्यादि) धर्माचरणमें तत्पर होते हुए ॥ ८ ॥ पांच सहस्र वर्षतक एक पांवसे खड़े रहे। रावणने देवताओंके हजार वर्षतक निराहार रहकर ॥ ९ ॥ सहस्र वर्ष पूर्ण होनेपर अपने एक मस्तकको काटकर अग्निमें हवन कर दिया । ऐसे क्रमसे उसको नौ हजार वर्ष बीतगये ॥ १० ॥ जब दशहजार वर्ष बीतगये तो रावणने दशवें शिरको काटनेका निश्चय किया; वह मस्तक काटनाही चाहताथा कि इतनेमें धर्मात्मा प्रजापति (ब्रह्मा) वहां प्राप्त हुए; और

दृष्ट्वातंकैकसीतत्रभ्राजमानंमहौजसम् ॥ राक्षसीपुत्रसामीप्यंगत्वारावणमब्रवीत् ॥३॥ पुत्रपश्यधनाध्यक्षंज्वलंतंस्वेनतेजसा ॥ त्वमप्येवंयथाभूयास्तथायत्नंकुरुप्रभो ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वारावणोरोषात्प्रतिज्ञामकरोद्द्रुतम् ॥ धनदेनसमोवापिह्यधिकोवाचिरेणतु ॥ ५ ॥ भविष्याम्यंबमांपश्यसंतापंत्यजसुव्रते ॥ इत्युक्त्वादुष्करंकर्तुंतपःसदशकंधरः ॥६॥ आगमत्फलसिद्ध्यर्थंगोकर्णंतुसहानुजः ॥ स्वंस्वंनियममास्थायभ्रातरस्तेतपोमहत् ॥ ७ ॥ आस्थितादुष्करंघोरंसर्वलोकैकतापनम् ॥ दशवर्षसहस्राणिकुंभकर्णोऽकरोत्तपः ॥ ८ ॥ विभीषणोऽपिधर्मात्मासत्यधर्मपरायणः ॥ पंचवर्षसहस्राणिपादेनैकेनतस्थिवान् ॥ ९ ॥ दिव्यवर्षसहस्रंतुनिराहारोदशाननः ॥ पूर्णेवर्षसहस्रेतुशीर्षमग्नौजुहावसः ॥ एवंवर्षसहस्राणिनवतस्यातिचक्रमुः ॥ १० ॥ अथवर्षसहस्रेतुदशमेदशमंशिरः ॥ छेत्तुकामस्यधर्मात्माप्राप्तश्चाथप्रजापतिः ॥ वत्सवत्सदशग्रीवप्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत ॥ ११ ॥

रावणसे बोले " बालक दशानन ! मैं प्रसन्नहूं ॥ ११ ॥ तू इच्छित वर मांग, मैं दूंगा! " यह सुनतेही रावणके मनमें अत्यन्त हर्ष हुआ वह बोला; ॥ १२ ॥ हे ईश्वर ! जो आप मुझे वर देते हैं तौ मैं अमरता मांगताहूं । गरुड़, सर्प, यक्ष, देवता, तैसेही दैत्य इनमेंका कोई भी ॥ १३ ॥ मुझको वध न कर सके, यह वर मुझे दो, मनुष्य तौ तिनुकेके समान हैं उनका मुझे कुछ डर नहीं। ब्रह्माजीने " तथास्तु " कहकर फिर रावणसे कहा ॥ १४ ॥ " हे दैत्यवर ! तैंने जिन मस्तकोंको अग्निमें होम दिया है, वे फिर पहलेके समान हो जावेंगे । हे सत्पुरुषशिरोमणे ! गरुड़ नागादि जिन जातियोंका तैंनें उच्चारण किया है– इन जातियोंसे इनका (तेरे मस्तकोंका) नाश नहीं होगा " ॥१५॥ हे रामचंद्र! प्रजापति ब्रह्माजी भक्तोंपर सदा कृपा करते हैं; वह ऊपर कहे अनुसार रावणको वर दे, नम्र हुए विभीषणके पास आये ॥ १६ ॥ ' हे वत्स ! विभीषण ! तैंने केवल धर्माचरणके उद्देशसे उत्तम तप किया, इसकारण मैं प्रसन्न हुआ; हे बालक ! तू इच्छित और हितकारी वर मांग ॥ १७ ॥ विभीषणजी ब्रह्माजीको हाथ जोड़ नमस्कार करके बोले;–" हे देव ! मेरी बुद्धिं सर्वकाल धर्माचरण करनेमें अखंड रहै! मेरी बुद्धिको किसी स्थानमें भी कैसाही अधर्म न रुचै ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त प्रजापतिं संतुष्ट होकर विभीषणसे बोले,– हे वत्स ! तुम्हारा स्वभाव सहजसेही धार्मिक है औ तुम आगेको भी ऐसेही होगे ॥ १९ ॥ हे विभीषण ! यद्यपि तुम नहीं मांगते हो तौ भीमैं तुम्हैं अमरत्व (मृत्यु न होनेका) वर देताहूं । ' फिर ब्रह्माजी कुंभकर्णसे बोले,-- ' तू अपने निय

वरंवरयदास्यामियत्तेमनसिकांक्षितम् ॥ दशग्रीवोऽपितच्छुत्वाप्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ १२ ॥ अमरत्वंवृणोमीशवरदोयदिमेभवान् ॥ सुपर्णनागयक्षाणांदेवतानांतथासुरैः ॥ अवध्यत्वंतुमेदेहितृणभूताहिमानुषाः ॥ १३ ॥ तथास्त्विवतिप्रजाध्यक्षःपुनराहदशाननम् ॥ अग्नौहुतानिशीर्षाणियानितेऽसुरपुंगव ॥ १४ ॥ भविष्यंतियथापूर्वमक्षयाणिचसत्तम ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वाततोरामदशग्रीवंप्रजापतिः ॥ विभीषणमुवाचेदंप्रणतंभक्तवत्सलः ॥ १६ ॥ विभीषणत्वयावत्सकृतंधर्मार्थमुत्तमम् ॥ तपस्ततोवरंवत्सवृणीष्वाभिमतांहितम् ॥ १७ ॥ विभीषणोऽपितंनत्वाप्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ देवमेसर्वदाबुद्धिर्धर्मेतिष्ठतुशाश्वती ॥ मारोचयत्वधर्मेमेबुद्धिःसर्वत्रसर्वदा ॥ १८ ॥ ततःप्रजापतिःप्रीतोविभीषणमथाब्रवीत् ॥ वत्सत्वंधर्मशीलोऽसितथैवचभविष्यसि ॥ १९ ॥ अयाचितोऽपितेदास्येह्यमरत्वंविभीषण ॥ कुंभकर्णमथोवाचवरंवरयसुव्रत ॥ २० ॥

मको भलीभांतिसे पालता है, अब वर मांग!' ॥ २० ॥ इधर देवताओंने देवी सरस्वतीजीकी प्रार्थना करी कि; इससमय तुम कुंभकर्णके मुखसे ऐसा वर मँगवाओ कि जिस्से हमको पीड़ा न होवै तिस प्रकारही वाणी देवीने कुंभकर्णको मोह दिलाया और वह ब्रह्माजीसे बोला,– "हे देव! मुझको छै, महीने भलीभांति नींद आवै व एक दिन इच्छानुसार भोजन मिले" ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी देवताओंसे 'तुम्हारा कार्य होगया' ऐसी सूचनाकर कुंभकर्णकी ओर दृष्टि करकै बोले;– "अच्छा" (मांगा हुआ वर तुझको दिया) सरस्वती उसके मुखसे निकलकर स्वर्गको गई ॥ २२ ॥ कुंभकर्णका अंतःकरण दुष्टथा अब उसको बुरा लगा; वह अपने आपही विचार करने लगा,–भाग्यका चमत्कार तौ देखो! मनमें न आतेहुए भी

वाण्याव्याप्तोऽथतंप्राहकुंभकर्णःपितामहम् ॥ स्वप्स्यामिदेवषण्मासान्दिनमेकंतुभोजनम्॥२१॥एवमस्त्वितितंप्राहब्रह्माहृष्टादिवौकसः॥
सरस्वतीचतद्वक्त्रान्निर्गताप्रययौदिवम् ॥ २२ ॥ कुंभकर्णस्तुदुष्टात्माचिंतयामासदुःखितः ॥ अनभिप्रेतमेवास्यात्किंनिर्गतमहोविधिः॥
॥ २३ ॥ सुमालीवरलब्धांस्ताञ्ज्ञात्वापौत्रान्निशाचरान् ॥ पातालान्निर्भयःप्रायात्प्रहस्तादिभिरन्वितः ॥ २४ ॥ दशग्रीवंपरिष्वज्यव
चनंचेदमब्रवीत् ॥ दिष्ट्यातेपुत्रसंवृत्तोवांछितोमेमनोरथः ॥ २५॥ यद्भयाच्चवयंलंकांत्यक्त्वायातारसातलम् ॥ तद्गतंनोमहाबाहोमहद्वि
ष्णुकृतंभयम् ॥ २६ ॥ अस्माभिःपूर्वमुषितालंकेयंधनदेनते ॥ भ्रात्राऽऽक्रांतामिदानींत्वंप्रत्यानेतुमिहार्हसि ॥ २७ ॥ साम्नावाथबलेना
पिराज्ञांबंधुःकुतःसुहृत् ॥ इत्युक्तोरावणःप्राहनार्हस्येवंप्रभाषितुम् ॥ २८ ॥

कैसे वचन मेरे मुखसे निकलगये!! ॥ २३ ॥ तीनों नातियोंको वर मिलनेका समाचार सुमालीने सुना; तब निर्भय होता हुआ प्रहस्तादिकोंको साथ ले पातालसे निकला ॥ २४ ॥ और रावणको हृदयसे लगायकर बोला;–"बालक! बड़े आनंदकी बात हुई कि मेरी इच्छाके अनुसार तुम्हाराभी मनोरथ पूरा हुआ ॥ २५ ॥ हे महावीरगण! जिनके डरसे हम लंका छोड़कर रसातलको गये, उन विष्णुजीका महाभय अब दूर होगया ॥ २६ ॥ हे रावण! जहांपर पहले हम रहतेथे वह लंकानगरी तुम्हारे भाई कुबेरने अपने अधिकारमें कर रक्खीहै, । अब फिर तुम उसको पलटलेलो ॥ २७ ॥ यह काम तुम साम उपायसे करो, या शक्तिके द्वारा सिद्धकरो । अरे! राज्यके विषय भ्राताका मन शुद्धकहां?" सुमालीके ऐसा कहनेपर रावण बोला;–

'नाना! आपका मुझसे ऐसा कहना उचित नहीं है ॥ २८ ॥ कारण धनपति (कुबेर) हमारा बडा भ्राता अर्थात् गुरुके समान हमारा पूज्यहै ।' यह बात सुनतेही प्रहस्त नम्र होकर दशमुख रावणसे बोला ॥ २९ ॥ हेरावण! जो मैं कहताहूं वह ध्यान देकर सुन; तेरा ऐसा कहना योग्य नहीं है, तुम राजधर्मको व तैसेही नीति शास्त्रको नहीं पढ़ेहो ॥ ३० ॥ शूर पुरुषोंमें भायपनकी प्रीति कभी नहीं रहती । हे प्रतापी राक्षस ! मैं कहताहूं वह सुन,–" देव और दैत्य सब कश्यपजीके पुत्रहैं, परन्तु वे दोनों महापराक्रमीहैं ॥ ३१ ॥ इसलिये उन्होंने प्रीति छोड़ हथियारोंसे परस्पर युद्ध किया; हेराजन्! कुछ आजसेही देवताओंने आपसे वैर नहीं आरंभ कियाहै उनका आपका वैर बहुत प्राचीन कालसे चला आताहै"

वित्तेशोगुरुरस्माकमेवंश्रुत्वातमब्रवीत् ॥ प्रहस्तःप्रश्रितंवाक्यंरावणंदशकंधरम् ॥२९॥ शृणुरावणयत्नेननैवंत्वंवक्तुमर्हसि ॥ नाधीताराजधर्मास्तेनीतिशास्त्रंतथैवच ॥ ३० ॥ शूराणांनहिसौभ्रात्रंशृणुमेवदतःप्रभो ॥ कश्यपस्यसुतादेवाराक्षसाश्चमहाबलाः ॥ ३१ ॥ परस्परमयुध्यंतत्यक्त्वासौहृदमायुधैः ॥ नैवेदानींतनंराजन्वैरंदेवैरनुष्ठितम् ॥ ३२ ॥ प्रहस्तस्यवचःश्रुत्वादशग्रीवोदुरात्मनः ॥ तथेतिक्रोधताम्राक्षस्त्रिकूटाचलमन्वगात् ॥ ३३ ॥ दूतंप्रहस्तंसंप्रेष्यनिष्कास्यधनदेश्वरम् ॥ लंकामाक्रम्यसचिवैराक्षसैःसुखमास्थितः ॥ ३४ ॥ धनदःपितृवाक्येनत्यक्त्वालंकांमहायशाः ॥ गत्वाकैलासशिखरंतपसातोषयच्छिवम् ॥ ३५ ॥ तेनसख्यमनुप्राप्यतेनैवपरिपालितः ॥ अलकांनगरींतत्रनिर्ममेविश्वकर्मणा ॥ ३६ ॥ दिक्पालत्वंचकारात्रशिवेनपरिपालितः ॥ रावणोराक्षसैःसार्धमभिषिक्तःसहानुजैः ॥३७॥

॥ ३२ ॥ दुष्ट प्रहस्तका रावणने यह वचन सुन ' बहुत ठीकहै ' कहा, उसके नेत्र क्रोधके मारे लाल होगये, शीघ्रही वह त्रिकूट पर्वत पर गया ॥ ॥ ३३ ॥ फिर उसने प्रहस्तको अपना दूत बनाकर कुबेरके पास भेजा; व उस कुबेरको लंकासे निकलवा दिया । इस प्रकारसे रावण लंकाको आधीनकर अपने मंत्री राक्षसोंके साथ उसमें सुखसे रहा ॥ ३४ ॥ महाकीर्तिमान कुबेरजी लंकाको छोड़कर पिताजीकी आज्ञासे कैलासके शिखरपर गये, वहां उन्होंने तपकरके महादेवजीको संतुष्ट किया ॥ ३५ ॥ उनसे मित्रताकरी, महादेवजी सब भांतिसे उनकी रक्षा करते हैं । फिर उन्होंने विश्वकर्माजीसे अलग नगरी निर्माण कराई ॥ ३६ ॥ अब वह महादेवजीके आश्रयसे अलकामें रहकर दिक्पालका अधिकार चलाते रहे ।

रावणको उसके छोटे भ्राताके सहित राक्षसोंने लंकामें अभिषेक किया॥ ३७॥तब वह दुष्ट राक्षसोंका राज्य चलाने लगा,त्रिलोकीको पीड़ादेना उसका व्रतथा उसने अपनी विकराल कालस्वरूपी बहनको कालखंजाके वंशमें उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ एक विद्युज्जिह्व नामक राक्षसको दी, । यह निशाचर महाकपटीथा । इधर राक्षसोंके विश्वकर्मा व दितिके पुत्र मयने ॥ ३९ ॥ अपने मन्दोदरीनामक कन्या रावणको दी । इस कन्याके समान सुन्दर कन्या सर्व लोकमें नहीं । मय असुरने फिर संतुष्ट अंतःकरणसे रावणको अपनी बनाई हुई अमोघ (वृथा न जानेंवाली) शक्तिदी ॥ ४० ॥ वैरोचनकी कन्याकी वृत्रज्वाला नाम एक कन्याथी; वह उसके पिताने अपने आप कुंभकर्णको दी; रावणने मान्य करके उसका विवाह कुंभकर्णके साथ किया ॥ ४१ ॥ वैसेही उसने शैलूष नामक महात्मा गंधर्वराजकी कन्या विभीषणकी पत्नी करदी, यह कन्या धर्ममार्गको जानतीथी ॥ ४२ ॥ इसका नाम सरमाथा; यह बड़े भाग्यवाली होनेसे सब लक्षण सम्पन्नथी फिर 'मन्दोदरीके मेघनाद' नामक पुत्र हुआ ॥ ४३ ॥ उसने जन्मतेही मेघके समान गर्जना करी, इस कारण सर्व लोक उसको वारंवार मेघनाद कहनेलगे । फिर उसका यही नाम पड़ गया ॥ ४४ ॥ फिर कुंभकर्णने रावणसे कहा कि हे प्रभो ! मुझको नींदने बहुत त्रास दिया है (निश्चन्ताईसे सोनेको कहीं स्थान नहींथा स्थान २ पर राक्षसोंका कलकलाहट होताथा) इस कारण रावणने उसके लिये एक लंबी चौड़ी विस्तीर्ण गुहा तैयार कराई ॥ ४५ ॥ मूढ़मति कुंभकर्ण

राज्यंचकारासुराणांत्रिलोकींबाधयन्खलः ॥ भगिनींकालखंजायददौविकटरूपिणीम् ॥३८॥ विद्युज्जिह्वायनाम्नासौमहामायीनिशाचरः ॥
ततोमयोविश्वकर्माराक्षसानांदितेःसुतः ॥ ३९ ॥ सुतांमंदोदरींनाम्नाददौलोकैकसुंदरीम् ॥ रावणायपुनःशक्तिममोघांप्रीतमानसः ॥४०॥
वैरोचनस्यदौहित्रींवृत्रज्वालेतिविश्रुताम् ॥ स्वयंदत्तामुदवहत्कुंभकर्णायरावणः ॥ ४१ ॥ गंधर्वराजस्यसुतांशैलूषस्यमहात्मनः ॥ वि
भीषणस्यभार्यार्थेधर्मज्ञांसमुदावहत् ॥ ४२ ॥ सरमांनामसुभगांसर्वलक्षणसंयुताम् ॥ ततोमंदोदरीपुत्रंमेघनादमजीजनत् ॥ ४३ ॥ जा
तमात्रस्तुयोनादंमेघवत्प्रमुमोचह ॥ ततःसर्वेऽब्रुवन्मेघनादोऽयमितिचासकृत् ॥ ४४ ॥ कुंभकर्णस्ततःप्राहनिद्रामांबाधतेप्रभो ॥ तत
श्चकारयामासगुहांदीर्घांसुविस्तराम् ॥ ४५ ॥ तत्रसुष्वापमूढात्माकुंभकर्णोविघूर्णितः ॥ निद्रितेकुंभकर्णेतुरावणोलोकरावणः ॥ ४६ ॥

उस गुहामें आनन्दसे सोता हुवा कुम्भकर्णके निद्रित होनेपर लोकोंके रुवानेवाले रावणने ॥ ४६ ॥ ब्राह्मण, बड़े २ ऋषि, देव, दानव, किन्नर, मनुष्य, बड़े २ सर्प इन सबोंको मारा; और देवताओंकी सम्पत्ति लूटलिया ॥ ४७ ॥ कुबेरजीने सुना कि रावण देवताओंके साथ अन्याय करता है; तब उन प्रभुने दूतके मुखसे (अधर्म नहीं करना चाहिये) ऐसे अनेक संदेशे जतायकर उसको निषेध किया ॥ ४८ ॥ तब रावण क्रोधित होकर कुबेरकी नगरीपर चलाआया उसने धनपतिको जीतकर उनका उत्तम पुष्पक विमान छीन लिया ॥ ४९ ॥ फिर वह दैत्य संग्राममें यम और वरुणको जीत इन्द्रके मारनेकी इच्छासे शीघ्रही स्वर्गको गया ॥ ५० ॥ वहांपर देवताओंके साथ इन्द्रसे उसका घोर युद्ध हुआ।

ब्राह्मणानृषिमुख्यांश्चदेवदानवकिन्नरान् ॥ देवश्रियोमनुष्यांश्चनिजघ्नेसमहोरगान् ॥ ४७ ॥ धनदोऽपिततःश्रुत्वारावणस्याक्रमंप्रभुः ॥
अधर्ममाकुरुष्वेतिदूतवाक्यैर्न्यवारयत् ॥ ४८ ॥ ततःक्रुद्धोदशग्रीवोजगामधनदालयम् ॥ विनिर्जित्यधनाध्यक्षंजहारोत्तमपुष्पकम् ॥
॥ ४९ ॥ ततोयमंचवरुणंनिर्जित्यसमरेऽसुरः ॥ स्वर्गलोकमगात्तूर्णंदेवराजजिघांसया ॥५० ॥ ततोऽभवन्महद्युद्धमिंद्रेणसहदैवतैः ॥
ततोरावणमभ्येत्यबबंधत्रिदशेश्वरः ॥ ५१ ॥ तच्छ्रुत्वासहसागत्यमेघनादःप्रतापवान् ॥ कृत्वाघोरंमहद्युद्धंजित्वात्रिदशपुंगवान् ॥५२॥
इंद्रंगृहीत्वाबद्ध्वासौमेघनादोमहाबलः ॥ मोचयित्वातुपितरंगृहीत्वेंद्रंययौपुरम्॥५३॥ ब्रह्मातुमोचयामासदेवेंद्रंमेघनादतः ॥ दत्त्वावरान्ब
हूंस्तस्मैब्रह्मास्वभवनंययौ ॥ ५४ ॥ रावणोविजयीलोकान्सर्वाञ्जित्वाक्रमेणतु ॥ कैलासंतोलयामासबाहुभिःपरिघोपमैः ॥५५ ॥ तत्रनं
दीश्वरेणैवंशप्तोऽयंराक्षसेश्वरः ॥ वानरैर्मानुषैश्चैवनाशंगच्छेतिकोपिना ॥ ५६ ॥

फिर इन्द्रने रावणपर आयकर उसको बांध लिया ॥ ५१ ॥ यह बात मेघनादने सुनी; तब वह प्रतापी वीर शीघ्रही इधरको निकल आया। उसने भयंकर महायुद्ध करके बड़े २ देवताओंको पराजितकर ॥५२॥ इन्द्रको पकड़ बांध लिया, फिर वह महासमर्थ मेघनाद पिताको छुड़ाय इन्द्रको ले अपनी नगरीको लौट आया ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजीने इन्द्रको मेघनादके हाथसे छुड़ाया—इन्द्रको छुड़ानेके बदलेमें उस (मेघनाद)को अनेक वर देकर ब्रह्माजी अपने स्थानको गये ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त विजयशाली रावणने क्रम २ से सर्व लोक जीत फिर अपनी परिघतुल्य बांहोंसे कैलाश पर्वतको उखाड़ा ॥ ५५ ॥ महादेवजीका वास स्थान हालनेसे नंदिकेश्वरको क्रोध आया; तत्काल उन्होंने राक्षसराजको शाप दिया, कि

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

'तेरा नाश वानर और मनुष्योंके हाथसे होगा' ॥ ५६ ॥ ऐसा शाप मिलनेपर उस शापको कुछ न गिन रावण हैहय राजा (सहस्राज्र्जुन) के नगरमें गया। सहस्राज्र्जुनने रावणको बांध लिया वहांपर उसको पुलस्त्यजीने छुटाया ॥ ५७ ॥ अनंतर रावण पहलेसे भी अधिक बलका गर्व कर वानरराजके मारनेकी इच्छासे चलागया; परन्तु उस रावणको वालिने बगलमें दाब लिया ! ॥ ५८ ॥ फिर उस वानरने रावणको चारों समुद्रोंपर घुमाय फिरायकर छोड़ दिया। वालिका पराक्रम निहार रावणने परमसंतुष्ट हो उसके साथ मित्रता करली ॥ ५९ ॥ हे राम ! इस प्रकारका वह महापराक्रमी रावण सर्व लोकोंको वशमें कर आपही उनके भोग भोगता हुआ ॥ ६० ॥ हे राजाधिराज ! रावणका प्रभाव ऐसा वि

शप्तोऽप्यगणयन्वाक्यंययौहैहयपत्तनम् ॥ तेनवद्धोदशग्रीवःपुलस्त्येनविमोचितः ॥ ५७ ॥ ततोऽपिवलमासाद्यजिघांसुर्हरिपुंगवम् ॥ धृतस्तेनैवकक्षेणवालिनादशकंधरः ॥ ५८ ॥ भ्रामयित्वातुचतुरःसमुद्रान्रावणंहरिः ॥ विसर्जयामासततस्तेनसख्यंचकारसः ॥ ५९ ॥ रावणःपरमप्रीतएवंलोकान्महावलः ॥ चकारस्ववशेरामवुभुजेस्वयमेवतान् ॥ ६० ॥ एवंप्रभावोराजेंद्रदशग्रीवःसहेंद्रजित् ॥ त्वयाविनिहतःसंख्येरावणोलोकरावणः ॥ ६१ ॥ मेघनादश्चनिहतोलक्ष्मणेनमहात्मना ॥ कुंभकर्णश्चनिहतस्त्वयापर्वतसन्निभः ॥ ६२ ॥ भवान्नारायणःसाक्षाज्जगतामादिकृद्विभुः ॥ त्वत्स्वरूपमिदंसर्वंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ ६३ ॥ त्वन्नाभिकमलोत्पन्नोब्रह्मालोकपितामहः ॥अग्निस्तेमुखतोजातोवाचासहरघूत्तम॥६४॥ वाहुभ्यांलोकपालौवाश्चक्षुर्भ्यांचंद्रभास्करौ ॥ दिशश्चविदिशश्चैवकर्णाभ्यांतेसमुत्थिताः॥६५॥

लक्षणथा। उसके पुत्रकी 'बापसे बेटा सवाया है !' कहावत हुई, कारण त्रिलोकीमें विख्यात शूर ऐसे पिता (रावण) को जिसने बांध लिया उस इन्द्रको इस पुत्रने जीता ! परन्तु हे राम ! लोकमें गर्जते हुए रावणको आपने संग्राममें वध किया ॥ ६१ ॥ महा पराक्रमी लक्ष्मणजीने मेघनादको मारा; तैसेही पर्वतके समान प्रचंड कुंभकर्णने आपके हाथसे मृत्युपाई। बहुत अच्छा हुआ ॥ ६२ ॥ आप जगत्के आदिकर्ता व्यापक साक्षात् नारायण हैं; यह स्थावर जंगमात्मक समस्त जग आपका स्वरूप है ॥ ६३ ॥ लोकोंके पितामह ब्रह्माजी आपके नाभिकमलसे जन्मे हैं;हे रघुवीर वाणी सहित अग्नि आपके मुखसे उत्पन्न हुए हैं ॥६४॥ लोकपालोंके समुदाय बांहोंसे, चंद्र; सूर्य नेत्रोंसे और मुख्य दिशा

व अवान्तर दिशा आपके कानोंसे उत्पन्न हुईं ॥ ६५ ॥ तुम्हारी नासिकासे प्राण व श्रेष्ठ देवता अश्विनीकुमार जन्मे। तुम्हारी जांघ, जानु, उरु, जघन इन अंगोंसे भुवर्लोकादिकी उत्पत्ति हुई है ॥ ६६ ॥ हे भक्तसंकटनाशन! तुम्हारे उदरसे चार समुद्र उत्पन्न हुए, स्तनोंसे इन्द्र व वरुण और वीर्यसे वालखिल्य हुए ॥ ६७ ॥ तुम्हारे उपस्थ लिंगसे यम; गुदासे मृत्यु व क्रोधसे त्रिनेत्र शंकर जन्मे; अस्थियोंसे पर्वत हुये व केशोंसे मेघमंडल उत्पन्न हुआ ॥६८॥ आपके रोमोंसे औषधि नखोंसे गर्दभादि योनि जन्मी आप माया नामक शक्तिको स्वीकार करके सकल जगद्रूपी विराट् पुरुष वनते हैं ॥ ६९ ॥ व गुणोंके न्यूनाधिक भावसे मिलनेपर विविधरूपी दिखाई देते हो; आपके आधारसे देवता लोग यज्ञमें अमृतपान करते हैं

घ्राणात्प्राणःसमुत्पन्नश्चाश्विनौदेवसत्तमौ ॥ जंघाजानूरुजघनाद्भुवर्लोकादयोऽभवन् ॥ ६६ ॥ कुक्षिदेशात्समुत्पन्नाश्चत्वारःसागराहरे ॥ स्तनाभ्यामिंद्रवरुणौवालखिल्याश्चरेतसः ॥ ६७ ॥ मेढ्राद्यमोगुदान्मृत्युर्मन्योरुद्रस्त्रिलोचनः ॥ अस्थिभ्यःपर्वताजाताःकेशेभ्योमेघसंहतिः ॥ ६८ ॥ ओषध्यस्तवरोमभ्योनखेभ्यश्चखरादयः ॥ त्वंविश्वरूपःपुरुषोमायाशक्तिसमन्वितः ॥ ६९ ॥ नानारूपइवाभासिगुणव्यतिकरेसति ॥ त्वामाश्रित्यैवविवुधाःपिवंत्यमृतमध्वरे ॥ ७० ॥ त्वयासृष्टमिदंसर्वंविश्वंस्थावरजंगमम् ॥ त्वामाश्रित्यैवजीवंतिसर्वेस्थावरजंगमाः ॥ ७१ ॥ त्वद्युक्तमखिलंवस्तुव्यवहारेऽपिराघव ॥ क्षीरमध्यगतंसर्पिर्यथाव्याप्याखिलंपयः ॥७२॥ त्वद्भासाभासतेऽर्कादिनत्वंतेनावभाससे ॥ सर्वगंनित्यमेकंत्वांज्ञानचक्षुर्विलोकयेत् ॥ ७३ ॥ नाज्ञानचक्षुस्त्वांपश्येदंधदृग्भास्करंयथा ॥ योगिनस्त्वांविचिन्वंतिस्वदेहेपरमेश्वरम् ॥ ७४ ॥

॥ ७० ॥ आपनेही यह स्थावर जंगमात्मक सारा संसार बनाया है। आपकेही आश्रयसे स्थावर जंगमात्मक सर्व प्राणी जीवन पाते हैं ॥ ७१ ॥ हे राघव! परन्तु व्यवहारके विषे सब वस्तु आपसे युक्त है। क्योंकि उनमें आपकी सत्ता, और भासना यह आपका धर्म मिला हुआ है। जिसप्रकार दूधमें रहा हुआ घी सर्व दूधसे व्याप रहाहै, तैसेही आप सर्व जगत्में व्याप रहेहैं ॥ ७२ ॥ सूर्य चंद्रादि सर्व आपके प्रकाशसे प्रकाश पाते हैं, कुछ आप उनसे प्रकाशित नहीं होते हैं; जिस पुरुषको ज्ञानदृष्टि प्राप्त होगई वह आपको सर्वव्यापी नित्य, एकस्वरूप देखता है ॥ ७३ ॥ जैसे अंधेको सूर्य नहीं दीखता; ऐसेही जिस मनुष्यको ज्ञानदृष्टि नहीं प्राप्त हुई उसको आपका दर्शन नहीं मिलता। हे परमेश्वर! योगी पुरुष रात दिन अपने श

रीरमें आपको खोजते हैं । खोजनेके साधन वेदोंके शिरोभाग (उपनिषद्) हैं ब्रह्मरूप हित होनेसे उसका वर्णन नहीं किया जाता; इसकारण वेदोंने 'अमुक ब्रह्म' नहीं है--इस प्रकारसे सारे संसारका निषेध कर इस्से आपका बोध किया है ॥ ७४ ॥ खोजनेवाले योगियोंके मनमें तुम्हारे चरणोंके मध्य जो कुछभी भक्ति होती है; तौ उनको आपके चैतन्यरूपका दर्शन मिलता है अन्यथा किसी प्रकार नहीं मिलता, ॥ ७५ ॥ हे देवाधिदेव ! मैंने आपके आगे अपनी मतिके अनुसार जो कुछ कहा है; सो आप मुझको क्षमा करैं । कारण कि हे राम ! मैं आपके अनुग्रहका पात्रहूं ॥ ७६ ॥ मैं रामचंद्रजीका भजन करताहूं । उनको दिशा, देश, किंवा काल, नहीं लगता (वह अमुक दिशामें, अमुक देशमें, अमुक वेलामें मिलता है; ऐसा निर्बन्ध नहीं है) उस्से अलग कोई नहीं है; परन्तु वह एक ज्ञानरूप है; उसको विकार जन्म किंवा चलनादि क्रिया नहीं है; वह सर्वज्ञ, सर्वशक्ति है; उसके गुणोंका अंत नहीं लगता; उसने माया दूर रक्खी है भक्तजनोंकी बुद्धिसे वह अभिन्न (अपनेसे अलग नहीं) ज्ञात होता है ॥७७॥ इ० श्रीम० उमा० भाषा० द्वितीयःसर्गः॥ २॥ वालि सुग्रीवका जन्म। श्रीरामचंद्रजी बोले;—" हे मुने ! वालि और सुग्रीवके जन्मको यथार्थ रीतिसे श्रवण करनेकी मैं इच्छा रखताहूं; कारण कि सूर्य और इंद्र दोनों, वानरोंके आकारमें हुए हैं, ऐसा मैंने सुना है " ॥ १ ॥ अगस्त्यमुनि बोले; हे राम ! वह इस प्रकारसे है सुनो सुवर्णमय मेरु पर्वतके मस्तकपर मध्यभागमें रत्नोंकरके चमकीला दिखाई देनेवाला एक शिखर है; । उसपर ब्रह्माजीकी एक शतयोजन विशाल सभा है ॥ २ ॥ एकसमय उस सभामें साक्षात् चतुर्मुख (ब्रह्माजी) ध्यानमें बैठेथे; इससमय उनके

अतन्निरसनमुखैर्वेदशीर्षैरहर्निशम् ॥ त्वत्पादभक्तिलेशेनगृहीतायदियोगिनः ॥ ७८ ॥ विचिन्वंतोहिपश्यंतिचिन्मात्रंत्वांनचान्यथा ॥
मयाप्रलपितंकिंचित्सर्वज्ञस्यतवाग्रतः ॥ क्षंतुमर्हसिदेवेशतवानुग्रहभागहम् ॥ ७६ ॥ दिग्देशकालपरिहीनमनन्यमेकंचिन्मात्रमक्षरमजं
चलनादिहीनम् ॥ सर्वज्ञमीश्वरमनंतगुणंव्युदस्तमायंभजेरघुपतिंभजतामभिन्नम् ॥ ७७ ॥ इतिश्रीम०रा०उत्तरकांडेद्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥
श्रीरामउवाच ॥ वालिसुग्रीवयोर्जन्मश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ रवींद्रौवानराकारौजज्ञातेइतिनःश्रुतम् ॥ १ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ मेरोः
स्वर्णमयस्याद्रेर्मध्यशृंगेमणिप्रभे ॥ तस्मिन्सभाऽऽस्तेविस्तीर्णाब्रह्मणःशतयोजना ॥ २ ॥ तस्यांचतुर्मुखःसाक्षात्कदाचिद्योगमास्थितः ॥
नेत्राभ्यांपतितंदिव्यमानंदसलिलंबहु ॥ ३ ॥

दोनों नेत्रोंसे बहुतसे दिव्य आनंदाश्रु गिरे ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीने उनको हाथमें लेकर कुछ देरतक विचार किया, और फिर उन्हें पृथ्वीपर डालदिया। पृथ्वीपर गिरतेही इन आँसुओंसे एक बड़ा वानर उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ ब्रह्माजीने उस्से कहा 'बालक ! कुछ कालतक यहां मेरे निकट रह। इस स्थानमें सर्व संपत्ति भरी हुई है। यहां रहनेसे तेरा कल्याण होगा।' ॥ ५ ॥ ब्रह्माजीकी ऐसी आज्ञा पाय वह वानरश्रेष्ठ वहांपर रहा। इस बातको बहुत दिन वीत गये। फिर एक दिन वह महाबुद्धिमान् वानरनाथ फलमूल लेनेके लिये उद्योग करता हुआ ॥ ६ ॥ पर्वतपर फिरताथा, वहांपर रत्नशिलाओंसे बांधी हुई व दिव्यजलसे भरी हुई एक बावलीको उसने देखा ॥ ७ ॥ उसमें पानी पीनेको गया; तौ जलमें उसको एक छायामय वानर (इसकी परछांई) दीखा, उसको दूसरा वानर समझकर यह पानीमें कूद पड़ा ॥ ८ ॥ वहां वानर नहीं मिला, तब यह शीघ्रही बाहर आयकर देखता है; तौ वानररूपके बदले अपनेको सुन्दर स्त्रीके रूपमें देख यह महा आश्चर्यको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥ फिर इन्द्रजी मध्याह्न समयमें देवादिदेव ब्रह्माजीकी पूजाकरके लौट रहेथे, इतनेहीमें यह मनोरथ स्त्री उन्होंने देखी ॥ १० ॥ मदनके बाणोंसे इन्द्रका शरीर इस स्त्रीने जर्जर करदिया, तब इनका वीर्य स्खलित हुआ। वह वीर्य उस स्त्रीके बाल (केश) प्रदेश पर लगकर पृथ्वीपर गिरा ॥ ११ ॥ तौ उस्से तिसी स्थानमें इन्द्रके समान पराक्रमी वालि उत्पन्न हुआ, इन्द्रजी उस बालकको सुवर्णकी माला देकर स्वर्गलोकको गये ॥ १२ ॥ तिसीसमय सूर्यभी वहांपर आये, और

तद्गृहीत्वाकरेब्रह्माध्यात्वाकिंचित्तदत्यजत् ॥ भूमौपतितमात्रेणतस्माज्जातोमहाकपिः ॥ ४ ॥ तमाहद्रुहिणोवत्सकिंचित्कालंवसात्रमे ॥
समीपेसर्वशोभाढ्येततःश्रेयोभविष्यति ॥ ५ ॥ इत्युक्तोन्यवसत्तत्रब्रह्मणावानरोत्तमः ॥ एवंबहुतिथेकालेगतेऋक्षाधिपःसुधीः ॥ ६ ॥
कदाचित्पर्यटन्नद्रौफलमूलार्थमुद्यतः ॥ अपश्यद्दिव्यसलिलांवापींमणिशिलान्विताम् ॥ ७ ॥ पानीयंपातुमागच्छत्तत्रच्छायामयंकपिम् ॥ दृष्ट्वाप्रतिकपिंमत्वानिपपातजलांतरे॥८॥तत्रादृष्ट्वाहरिंशीघ्रंपुनरुत्प्लुत्यवानरः ॥ अपश्यत्सुंदरींरामामात्मानंविस्मयंगतः ॥ ९ ॥
ततःसुरेशोदेवेशंपूजयित्वाचतुर्मुखम् ॥ गच्छन्मध्याह्नसमयेदृष्ट्वानारींमनोरमाम् ॥ १० ॥ कंदर्पशरविद्धांगस्त्यक्तवान्वीर्यमुत्तमम् ॥
तामप्राप्यैवतद्बीजंवालदेशेऽपतद्भुवि ॥ ११ ॥ वालीसमभवत्तत्रशक्रतुल्यपराक्रमः ॥ तस्यदत्त्वासुरेशानःस्वर्णमालांदिवंगतः ॥ १२ ॥
भानुरप्यागतस्तत्रतदानीमेवभामिनीम् ॥ दृष्ट्वाकामवशोभूत्वाग्रीवादेशेऽसृजन्महत् ॥ १३ ॥

उस स्त्रीको देखकर कामवश होगये । उन्होंने अपना उग्र वीर्य उसकी ग्रीवा (गर्दन) पर छोड़ा ॥ १३ ॥ तिस्से शीघ्रही एक बड़ा शरीरवाला वानर जन्मा। यह सुग्रीवथा । हनुमान्‌जीको उसकी सहायताके अर्थ देकर सूर्य चले गये ॥ १४ ॥ वह स्त्री उन दोनों पुत्रोंको कहीं लेजायकर सो रही, सवेरे उठकर उसने अपने शरीरको पहलेके समान (वानरके समान) हुआ देखा ।। १५ ॥ फिर वह महाबुद्धिमान् ऋक्षाधिपति वानर फलमूलादि ले उन दोनों पुत्रोंके साथ ब्रह्माजीकी सभामें आया; और ब्रह्माजीको नमस्कार कर आगे खड़ा रहा ॥ १६ ॥ तब ब्रह्माजीने उस महावानरको बहुत भांतिसे समुझाया बुझाया, और वहांपर एक देवतुल्य देवदूतको हांक मारकर कहा;– ।। १७ ।। “हे दूत ! मेरी आज्ञासे किष्किन्धामें जा। विश्वकर्मानें वह नगरी इसहींके लिये बनाई है ॥ १८ ॥ तिसमें सब ऐश्वर्य भरे हुए हैं; वह देवताओंकोभी हाथ आनी कठिन है; इसवीर राजाको उस नगरीमें राज्यसिंहासनपर बैठाय राज्याभिषेक कर ॥ १९ ॥ सातद्वीपोंमें जो दुर्जय वानर हैं,–वे समस्त इन वानरराजके अंकित व सेवक होकर रहेंगे ॥ २० ॥ जब साक्षात् सनातन नारायण पृथ्वीके भाररूप राक्षसोंका नाश करनेंके लिये पृथ्वी पर अवतारलेंगे ॥ २१ ॥ तिस समय उनकी सहायता करनेंको सारे वानर जांयगे ।” ब्रह्माजीके यह कहनेंपर वह महाबुद्धिमान् देवदूत वानरों

वीजंतस्यास्ततःसद्योमहाकायोऽभवद्धरिः ॥ तस्यदत्त्वाहनूमंतंसहायार्थंगतोरविः ॥ १४ ॥ पुत्रद्वयंसमादायगत्वासानिद्रिताक्वचित् ॥ प्रभातेऽपश्यदात्मानंपूर्ववद्वानराकृतिम् ॥ १५ ॥ फलमूलादिभिःसार्धंपुत्राभ्यांसहितःकपिः ॥ नत्वाचतुर्मुखस्याग्रेऋक्षराजःस्थितःसुधीः ॥ १६ ॥ ततोब्रवीत्समाश्वास्यवहुशःकपिकुंजरम् ॥ तत्रैकंदेवतादूतमाहूयामरसन्निभम् ॥ १७॥ गच्छदूतमयादिष्टोगृहीत्वावानरोत्तमम् ॥ किष्किंधांदिव्यनगरींनिर्मितांविश्वकर्मणा ॥ १८ ॥ सर्वसौभाग्यवलितांदेवैरपिदुरासदाम् ॥ तस्यांसिंहासनेवीरंराजानमभिषेचय ॥१९॥सप्तद्वीपगतायेयेवानराःसंतिदुर्जयाः॥सर्वेतेऋक्षराजस्यभविष्यंतिवशेऽनुगाः॥२०॥यदानारायणःसाक्षाद्रामोभूत्वासनातनः॥ भूभारासुरनाशायसंभविष्यतिभूतले ॥ २१ ॥ तदासर्वेसहायार्थेतस्यगच्छंतुवानराः ॥ इत्युक्तोब्रह्मणादूतोदेवानांसमहामतिः ॥ २२ ॥

को साथले वहांसे निकला ॥ २२ ॥ देवदूतनें ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार उस वानरराजकी व्यवस्थाकी (उसका किष्किन्धामें राज्याभिषेक किया) और फिर जायकर वह समाचार ब्रह्माजीको सुनाया । तबसे वह किष्किन्धा नगरी वानरोंकी राजधानी हुई । हेराम! सर्वेश्वर तुम्हींहो; ब्रह्माजीने तुम्हारी प्रार्थनाकीथी,इसलिये अब॥ २३ ॥ २४ ॥आपनें लीलासे यह मनुष्यरूप धारण करकै पृथ्वीका भार सारा उतारा । जो सर्व प्राणियोंके अंतरमें रहताहै, जो नित्यमुक्त व ज्ञानस्वरूपीहै; और जिसका रूप अखंड आनंदसे भराहुआहै; उस ईश्वरका (तुम्हारा) इसमें क्या पराक्रमहै? (अर्थात् यह कार्य तुम्हारे लिये कुछ भारी नहींहै) ॥ २५ ॥ तथापि सत्पुरुष, सर्व लोकोंके पाप नष्ट होने और उनको

यथाज्ञप्तस्तथाचक्रेब्रह्मणातंहरीश्वरम् ॥ देवदूतस्ततोगत्वाब्रह्मणेतन्निवेदयत् ॥ २३ ॥ तदादिवानराणांसाकिष्किंधाऽभून्नृपाश्रयः ॥ सर्वे
श्वरस्त्वमेवासीरिदानींब्रह्मणार्थितः ॥२४॥ भूमेर्भारोहृतःकृत्स्नस्त्वयालीलानृदेहिना ॥ सर्वभूतांतरस्थस्यनित्यमुक्तचिदात्मनः ॥२५॥
अखंडानंदरूपस्यकियानेषपराक्रमः ॥ तथाऽपिवर्ण्यतेसद्भिर्लीलामानुषरूपिणः ॥ २६ ॥ यशस्तेसर्वलोकनांपापहत्यैसुखायच ॥ यइदं
कीर्तयेन्मर्त्योवालिसुग्रीवयोर्महत् ॥ २७ ॥ जन्मत्वदाश्रयत्वात्समुच्यतेसर्वपातकैः ॥ अथान्यांसंप्रवक्ष्यामिकथांरामत्वदाश्रयाम् ॥२८॥
सीताहृतायदर्थंसारावणेनदुरात्मना ॥ पुराकृतयुगेरामप्रजापतिसुतंविभुम् ॥ २९ ॥ सनत्कुमारमेकांतेसमासीनंदशाननः ॥ विनया
वनतोभूत्वाह्यभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३० ॥ कोन्वस्मिन्प्रवरोलोकेदेवानांबलवत्तरः ॥ देवाश्चयंसमाश्रित्ययुद्धेशत्रुंजयंतिहि ॥ ३१ ॥

सुख प्राप्त होनेके लिये, आपकी लीलासे स्वीकार किये हुए मनुष्यरूपकी कीर्तिका वर्णन किया जाताहै ॥ २६ ॥ वालि और सुग्रीव यह दोनों महाअवतार आपकी सहायता करनेंको हुए, जो मनुष्य इनकी जन्मकथाके आख्यानको बांचेगा; वह सर्व पापसे छूटजावैगा ॥२७॥२८॥ हे राम! अब आपके विषयकी एक दूसरी कथा कहताहूं, दुष्ट रावणके द्वारा सीताजीके चुरानेका कारण इस प्रकारहै ॥ २९ ॥ हेराम! पहले सतयुग में एक समय ब्रह्माजीके मानस पुत्र सनत्कुमार एकांतमें बैठेथे; रावणनें नम्रता पूर्वक नमस्कारकरकै उनसे प्रश्न कियाकि ॥ ३० ॥ हेमुने ! देवता लोग जिसके आधारसे संग्राममें शत्रुको जीतते हैं, वह महा बलवान श्रेष्ठ देवता इस लोकमें कौनहैं ? ॥ ३१ ॥

प्रतिदिन ब्राह्मण किसकी आराधना करतेहैं? और योगी किसका ध्यान धरतेहैं? ॥ हेमुनिवर! आप सर्वज्ञ हैं अर्थात् आप सब प्रकारके प्रश्नोंका उत्तर जानतेहैं। इसकारण मेरे इस प्रश्नका उत्तर मुझसे कहिये'॥ ३२॥ सनत्कुमारने अपनी योग दृष्टिसे रावणके मनकी बात जानकर उसको उत्तर दिया;—"बालक! कहताहूं सुन!॥ ३३॥ जो नित्य जगका पालन पोषण करताहै उसका जन्म मृत्यु नहीं,देवता, दैत्य सदा जिसकी स्तुति करतेहैं उन निर्विकार ईश्वरकी हरि, नारायण संज्ञाहै ॥ ३४ ॥ जिसने यह सारा स्थावर–जंगममय जगत् बनाया; वह सृष्टिकर्ताके पति ब्रह्माजी उन नारायणके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ॥ ३५ ॥ देवता उसका आश्रयकरके युद्धमें शत्रुको जीततेहैं व योगी ध्यान योगसे उनकाही चिंतन करतेहैं" ॥ ३६ ॥

कंयजंतिद्विजानित्यंकंध्यायंतिचयोगिनः ॥ एतन्मेशंसभगवन्प्रश्नंप्रश्नविदांवर ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वातस्यहृदिस्थंयत्तदशेषेणयोगदृक् ॥ दशाननमुवाचेदंशृणुवक्ष्यामिपुत्रक ॥ ३३ ॥ भर्तायोजगतांनित्यंयस्यजन्मादिकंनहि ॥ सुरासुरैर्नुतोनित्यंहरिर्नारायणोऽव्ययः ॥ ३४ ॥ यन्नाभिपंकजाज्जातोब्रह्माविश्वसृजांपतिः ॥ सृष्टंयेनैवसकलंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ ३५ ॥ तंसमाश्रित्यविबुधाजयंतिसमरेरिपून् ॥ योगिनोध्यानयोगेनतमेवानुजपंतिहि ॥ ३६ ॥ महर्षेर्वचनंश्रुत्वाप्रत्युवाचदशाननः ॥ दैत्यदानवरक्षांसिविष्णुनानिहतानिच ॥ ३७ ॥ कांवागतिंप्रपद्यंतेप्रेत्यतेमुनिपुंगव ॥ तमुवाचमुनिश्रेष्ठोरावणंराक्षसाधिपम् ॥ ३८ ॥ दैवतैर्निहतानित्यंगत्वास्वर्गमनुत्तमम् ॥ भोगक्षये पुनस्तस्माद्भ्रष्टाभूमौभवंतिते ॥ ३९ ॥ पूर्वार्जितैःपुण्यपापैर्म्रियंतेचोद्भवंतिच ॥ विष्णुनायेहतास्तेतुप्राप्नुवंतिहरेर्गतिम् ॥ ४० ॥

महर्षिके वचन सुनकर फिर रावणनें प्रश्न किया,–"हे मुनिवर!दैत्य, दानव व राक्षस विष्णुजीके हाथसे मरकर ॥ ३७ ॥ परलोकमें किस गतिको प्राप्त होतेहैं"। श्रेष्ठ मुनिनें राक्षसनाथ रावणको उत्तर दिया ॥ ३८ ॥ 'इतर (साधारण) देवताओंके हाथसे मृत्युको प्राप्तहो दैत्यादिक उत्तम स्वर्ग लोकको जातेही हैं, परन्तु वह नित्य स्वर्गमें नहीं रहते वहांके भोग भोगनेकी मर्यादा पूरीहुई, कि वे कीर्तिभ्रष्ट होकर फिर पृथ्वीपर जन्म लेतेहैं ॥ ३९ ॥ व पूर्व जन्ममें किये हुए पाप पुण्यके अनुरोधसे मरण पाते और जन्मलेतेहैं;, और विष्णुजीके हाथसे जिनकी मृत्यु होतीहै; वेही

विष्णुपद (मुक्ति)को प्राप्त होतेहैं, ॥ ४० ॥ मुनिके मुखसे यह वचन सुन रावण हर्षित हो यह विचार करनें लगाकि विष्णुजीके हाथसे युद्धकर मरूंगा,–परन्तु वह प्रसंग कैसे बने ॥ ४१ ॥ महामुनिने उसके मनकी बात जानकर कहा--, “ हे बालक ! तेरी इच्छाके अनुसार होगा इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ४२ ॥ कुछदिनतक वाट देख, हेदशानन ! सुखी रह ! (विष्णुजीके हाथसे मरण पायकर सुखसे रहैगा) हे ” महावीर! (रामचंद्र) ऐसा कहकर सनत्कुमार मुनि फिर उस्से बोले,-- ॥ ४३ ॥ ‘ हे रावण! वास्तवमें विष्णुजीका रूप नहीं; परन्तु वह मायाकरके रूप धारण करतेहैं; मैं उनका स्वरूप तुमसे कहताहूं; वे सर्व स्थावर पदार्थोंमें नद व नदियोंमें भर रहेहैं ॥ ४४ ॥ ओंकार (सर्ववाणी) सत्यवचन, गायत्री, पृथ्वी यह सब उनकाही रूपहै । वह शेष सर्पके रूपसे सर्व जगत्के आधार होरहेहैं ॥ ४५ ॥ सर्व देव, समुद्र, काल, सूर्य, चंद्र, चंद्रोदय, दिन रात, याम, तैसेही वायु ॥ ४६ ॥ अग्नि, मृत्यु, इन्द्र, मेघ, वसु, ब्रह्मा, रुद्र इत्यादि और जो दूसरे देवता व दैत्यहैं, वे सब उनकेही रूप हैं ॥ ४७॥ वही सृष्टिकर्ता ईश्वर प्रकाश स्वरूपहैं; ज्वलन करताहै, रक्षा करताहै; व लयं करताहै (सूर्य अग्नि इत्यादि देवताओंमें प्रकाश प्रज्वलन इत्यादि शक्ति है; वह इनकीही है) वह यह सर्व व्यवहार लीलाके समान सहज सेही करताहै। वास्तवमें उन विष्णुजीका स्वरूप नित्य निर्विकारहै ॥ ॥ ४८ ॥ उसने यह स्थावर जंगमात्मकसारे विश्वको व्यापलियाहै । उनके अंगकी कांति नीले कमलदलके समान श्यामहै; वह बिजलीके

श्रुत्वामुनिमुखात्सर्वंरावणोहृष्टमानसः ॥ योत्स्येऽहंहरिणासार्धमितिचिंतापरोभवत् ॥ ४१ ॥ मनःस्थितंपरिज्ञात्वारावणस्यमहामुनिः ॥ उवाचवत्सतेऽभीष्टंभविष्यतिनसंशयः ॥ ४२ ॥ कंचित्कालंप्रतीक्षस्वसुखीभवदशानन ॥ एवमुक्त्वामहाबाहोमुनिःपुनरुवाचतम् ॥४३॥ तस्यस्वरूपंवक्ष्यामिह्यरूपस्यापिमायिनः ॥ स्थावरेषुचसर्वेषुनदेषुचनदीषुच ॥ ४४ ॥ ओंकारश्चैवसत्यंचसावित्रीपृथिवीचसः ॥ समस्त जगदाधारःशेषरूपधरोहिसः ॥ ४५ ॥ सर्वेदेवाःसमुद्राश्चकालःसूर्यश्चश्चंद्रमाः ॥ सूर्योदयोदिवारात्रीयमश्चैवतथाऽनिलः ॥ ४६ ॥ अग्निरिंद्रस्तथामृत्युःपर्जन्योवसवस्तथा ॥ ब्रह्मारुद्रादयश्चैवयेचान्येदेवदानवाः ॥ ४७ ॥ विद्योततिज्वलत्येषपातिचात्तीतिविश्वकृत् ॥ क्रीडांकरोत्यव्ययात्मासोऽयंविष्णुःसनातनः ॥ ४८ ॥ तेनसर्वमिदंव्याप्तंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ नीलोत्पलदलश्यामोविद्युद्वर्णांबरावृतः ॥४९॥

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

समान चमकीले रंगके वस्त्र पहरते हैं ॥ ४९ ॥ उनके वाम भागमें तपाये हुए सुवर्णके समान तेजपुंज व नित्य निश्चल रहनेंवाली देवी लक्ष्मी जी बैठीहैं, रामचंद्रजीका आलिंगन किये हुए उनको देख रहेहैं ॥ ५० ॥ देव, दैत्य, सर्प कोईभी उनकी ओर नहीं देख सकता। वह जिसपर कृपा करतेहैं, उस पुरुषकोही उसका (ईश्वरका) दर्शन मिलताहै ॥ ५१ ॥ भगवंतके दर्शन यज्ञसे या तपकरनेसे नहीं मिलते, दानसे या अध्यनादिकसे लाभ नहीं होता, बहुत तो क्याकहैं; भक्तिके सिवाय किसी दूसरे उपायसे नहीं मिलसकते ॥ ५२ ॥ जो लोग ईश्वरकी भक्ति करतेहैं; व अपने प्राण और चित्तवृत्ति सर्वथा उनमें लगातेहैं; उनके पापोंका नाश होकर वेदान्तरूप निर्मल दृष्टि प्राप्त होजातीहै; इस दृष्टिके प्राप्त होनेसे उनको भगवान्‌जीके दर्शन मिल जातेहैं ॥ ५३ ॥ अब जो विनाही किसी उपायके किये तुझको परमेश्वरके दर्शन. करनेकी इच्छा होतो सुन,– 'वह भगवान् त्रेतायुगमें राजाका शरीर धारण करनेवाले हैं ॥ ५४ ॥ देवता और मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये हरि इक्ष्वाकुकुलमें महाबलवान् पराक्रमी दशरथके पुत्र राम होंगे ॥ ५५ ॥ फिर वह परमधार्मिक प्रभु पिताकी आज्ञासे भ्राता और स्त्री दोनोंको साथ ले दंडकारण्यमें फिरेंगे जगकी माता जो ईश्वरकी माया हैं वह सीताके नामसे अवतार लेंगी।' ॥ ५६ ॥ " हे रावण ! यह सब मैंने तुझसे विस्तारसे निवेदन किया; अब अंतमें तेरे हितकी बात कहताहूं कि तू सीताजीके सहित रामचंद्रजीकी भक्तिभावसे सेवाकर " ॥ ५७ ॥

शुद्धजांबूनदप्रख्यांश्रियंवामांकसंस्थिताम् ॥ सदानपायिनींदेवींपश्यन्नालिंग्यतिष्ठति ॥ ९० ॥ द्रष्टुंनशक्यतेकैश्चिद्देवदानवपन्नगैः ॥
यस्यप्रसादंकुरुतेसचैनंद्रष्टुमर्हति ॥ ९१ ॥ नचयज्ञतपोभिर्वानदानाध्ययनादिभिः ॥ शक्यतेभगवान्द्रष्टुमुपायैरितरैरपि ॥ ९२ ॥
तद्भक्तैस्तद्गतप्राणैस्तच्चित्तैर्धूतकल्मषैः ॥ शक्यतेभगवान्विष्णुर्वेदांतामलदृष्टिभिः ॥ ९३ ॥ अथवाद्रष्टुमिच्छातेशृणुत्वंपरमेश्वरम् ॥
त्रेतायुगेसदेवेशोभवितानृपविग्रहः ॥९४॥ हितार्थंदेवमर्त्यानामिक्ष्वाकूणांकुलेहरिः ॥ रामोदाशरथिर्भूत्वामहासत्त्वपराक्रमः ॥ ९५ ॥
पितुर्नियोगात्सभ्रात्राभार्ययादंडकेवने ॥ विचरिष्यतिधर्मात्माजगन्मात्रास्वमायया ॥ ९६ ॥ एवंतेसर्वमाख्यातंमयारावणविस्तरात् ॥
भजस्वभक्तिभावेनतदारामंश्रियायुतम् ॥ ९७ ॥

(अगस्त्य मुनि बोले हे रामचंद्र) राक्षसेश्वरने यह वचन सुनकर मननपूर्वक किंचित् विचार किया । फिर तुम्हारे साथ वैर करनेको उसने निश्चय किया, इस वेला उस प्रतापी रावणको बहुतसा आनंद हुआ ॥५८॥ फिर वह युद्ध करनेकी इच्छासे सारी त्रिलोकीमें फिरता रहा; हे राजाधिराज ! इस कारणसे केवल तुम्हारे हाथसे अपना वध करानेकी इच्छासे उस अत्यन्त बुद्धिमान रावणने तुम्हारी जानकी रानीको चुरा लिया ॥ ५९ ॥ जो पुरुष यह कथा सुनेगा, वांचैगा, किंवा श्रवण करनेकी इच्छावालोंको नित्य सुनावेगा उसको आयुष्य, आरोग्य, अनंत सुख इच्छित वस्तुका लाभ, व अक्षय द्रव्य मिलता है॥६०॥इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकांडे भाषाटीकायां तृतीयः सर्गः॥ ३ ॥अपवाद सुनकर जानकीजीका त्यागना। श्रीमहादेवजी पार्वतीजीसे कहते हैं कि,—एक दिन ब्रह्मलोकसे आते हुए नारदमुनिको देख लोकमें फिरता हुआ रावण उनको नमस्कार करके

एवंश्रुत्वाऽसुराध्यक्षोध्यात्वाकिंचिद्विचार्यच ॥ त्वयासहविरोधेप्सुर्मुमुदेरावणोमहान् ॥ ५८ ॥ युद्धार्थीसर्वतोलोकान्पर्यटन्समवास्थितः ॥ एतदर्थंमहाराजरावणोऽतीवबुद्धिमान् ॥ हृतवाञ्जानकींदेवींत्वयात्मवधकांक्षया ॥ ५९ ॥ इमांकथांयःशृणुयात्पठेद्वासंश्रावयेद्वाश्रवणार्थिनांसदा ॥ आयुष्यमारोग्यमनंतसौख्यंप्राप्नोतिलाभंधनमक्षयंच ॥ ६० ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेउत्तरकांडेतृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ ॥ एकदाब्रह्मणोलोकादायांतंनारदंमुनिम् ॥ पर्यटन्रावणोलोकान्दृष्ट्वानत्वाब्रवीद्वचः ॥ १ ॥ भगवन्ब्रूहिमेयोद्धुंकुत्रसंतिमहाबलाः ॥ योद्धुमिच्छामिबलिभिस्त्वंज्ञातासिजगत्रयम् ॥ २ ॥ मुनिर्ध्यात्वाहसुचिरंश्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ महाबलामहाकायास्तत्रयाहिमहामते॥ ३ ॥ विष्णुपूजारतायेवैविष्णुनानिहताश्चये ॥ तएवतत्रसंजाताअजेयाश्चसुरासुरैः॥ ४॥ श्रुत्वातद्रावणोवेगान्मंत्रिभिःपुष्पकेणतान् ॥ योद्धुकामःसमागत्यश्वेतद्वीपसमीपतः ॥ ५ ॥

बोला ॥ १ ॥'हे भगवन् ! मुने ! आप त्रिलोकीका सर्व वृत्तान्त जानते हैं; मुझे यह बताओकि युद्ध करनेमें समर्थ महाबलवान पुरुष कहां है । बलवानोंसे युद्ध करनेकी मेरी इच्छा है' ॥२॥ मुनिने बहुत देरतक विचार करके रावणसे कहा;-"हे बुद्धिमान् श्वेतद्वीपके रहनेवाले पुरुष बड़े शरीरवाले और बलवान् हैं वहांपर जाओ ॥३॥ पहले जो लोग विष्णुजीकी आराधना करनेमें तत्पर हैं व और जिनका वध विष्णुजीने अपने हाथसे किया है वह (सप्रेम भक्ति करनेवाले और विरोध भक्ति करनेवाले) वहाँ जन्मे हैं; देवता या दैत्य कोईभी उनको पराजित करनेमें समर्थ नहीं है" ॥ ४ ॥ यह सुनकर रावण शीघ्रही मंत्रियोंके साथ पुष्पक विमानमें बैठा,— और उन विष्णुजीके भक्तोंसे युद्ध करनेकी इच्छा करके श्वेतद्वीपके निकट

जाय पहुँचा ॥ ५ ॥ वहाँके लोगोंकी प्रभासे पुष्पक विमानका तेज नष्ट होगया; वह पुष्पक विमान आगे नहीं चला; अनन्तर रावण उस पुष्पक विमानको और मंत्रियोंको छोड़कर आगे चला ॥ ६ ॥ उसने श्वेत द्वीपमें पाँव रक्खा कि एक स्त्री (दासी) ने उसका हाथ पकड़कर कहा,—"तू कौन है ? कहांका है; और तुझको किसने भेजा है ? सो बता" ॥ ७ ॥ वहाँपर बहुतसी स्त्रियेंथीं; वह लीलापूर्वक हँसते २ वारंवार कहने लगीं। उन स्त्रियोंके हाथसे अतिकष्ट करके रावण छूटा ॥ ८ ॥ मुझ समान वीरकी स्त्रियोंने दुर्दशा करदी यह देख रावणको बड़ा आश्चर्य प्राप्त हुआ; वह दुष्ट मनसे विचार करने लगा कि विष्णुजीके हाथसे मृत्यु होनेपर वैकुंठको जाऊंगा; यह करनेका रावणने पूर्ण निश्चय कर लिया ॥ ९ ॥

तत्प्रभाहततेजस्कंपुष्पकंनाचलत्ततः ॥ त्यक्त्वाविमानंप्रययौमंत्रिणश्चदशाननः ॥ ६ ॥ प्रविशन्नेवतद्वीपंधृतोहस्तेनयोषिता ॥ पृष्टश्च
त्वंकुतःकोऽसिप्रेषितःकेनवावद ॥ ७॥ इत्युक्तोलीलयास्त्रीभिर्हसंतीभिःपुनःपुनः ॥ कृच्छ्राद्धस्ताद्विनिर्मुक्तस्तासांस्त्रीणांदशाननः ॥८॥
आश्चर्यमतुलंलब्ध्वाचिंतयामासदुर्मतिः ॥ विष्णुनानिहतोयामिवैकुंठमितिनिश्चितः ॥ ९ ॥ मयिविष्णुर्यथाकुप्येत्तथाकार्यंकरोम्यहम् ॥
इतिनिश्चित्यवैदेहींजहारविपिनेऽसुरः ॥१०॥ जानन्नेवपरात्मानंसजहारावनीसुताम् ॥ मातृवत्पालयामासत्वत्तःकांक्षन्वधंस्वकम् ॥११॥
रामत्वंपरमेश्वरोऽसिसकलंजानासिविज्ञानदृग्भूतंभव्यमिदंत्रिकालकलनासाक्षीविकल्पोज्झितः ॥ भक्तानामनुवर्तनायसकलांकुर्वन्क्रि
यासंहतिंत्वांशृण्वन्मनुजाकृतिर्मुनिवचोभासीशलोकार्चितः ॥ १२ ॥

फिर यह निश्चय करकै कि कोई ऐसा कार्य करना चाहिये जिस्से विष्णुजी मुझपर क्रोधित हों, उस दैत्यने जानकीको वनमें चुरा लिया ॥ १० ॥ उसने आपको परमात्मा जानकर जानकीको हरण किया ।और माताके समान उनकी रक्षा करता रहा, उसकी इच्छा इतनीहीथी कि आपके हाथसे उसका वध हो ॥ ११ ॥ हे रामचंद्र ! आप परमेश्वर हैं, व सब बाते जानते हैं; अपने स्वरूपका ज्ञान नहीं, आपकी दृष्टि है । पीछे ऐसा होगया, व अब ऐसाहो रहा है; यह तीनों कालकी सर्व व्यवस्था आप प्रत्यक्ष अवलोकन करते हैं । आपको कोईभी संशय नहीं है । भक्तोंको अपना चरित्रकीर्तन करनेको मिले कि जिस्से उनके पापक्षय हो जावैं; इसलिये आपने मनुष्यरूप धारण कर रावणवधादि समस्त कार्य किये;

और हमारे समान मुनियोंके वचन सुनते हुए तुम मनुष्यके समान आकारवाले भासतेहो, परन्तु वास्तविक रीतिसे तुम मनुष्य नहीं हो; वरन् इन्द्रादि देवताओं करके सेव्यहो ॥ १२ ॥ मुनि अगस्त्यजीने इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजीकी पूजाकी ! रामचंद्रजीनेभी उनकी पूजाकरी; तब वे मुनि आनंदित मनसे मुनियोंके साथ अपने आश्रमको चले गये ॥ १३ ॥ लक्ष्मीके पति श्रीरामचंद्रजी, सीता, भ्राता, और मंत्रियोंके सहित संसारी पुरुषके समान गृहमें रमण करतेहुए वसे ॥ १४ ॥ वह विषयोंपर आसक्त नहींथे—तौभी प्रियाके साथ उपभोग भोगतेथे; हनुमानादि श्रेष्ठ वानर उनके निकट रहतेथे ॥ १५ ॥ एक समय पुष्पक विमानने पहलेके अनुसार फिर श्रीरामचंद्रजीके निकट आनकर कहा; "हे देव! मैं आपकी आज्ञाके अनुसार कुबेरजीके पास पहुँचा, उन्होंने मुझे लौटकर आपके पास भेजा है" ॥ १६ ॥ कुबेरजीने मुझसे यह कहा है कि,— "प्रथम तुझको रावणने जींता;—और फिर रामचंद्रजीने वशकर लिया; इस कारण जबतक रामजी पृथ्वीपर हैं तबतक तू उनको धारणकर ॥ १७ ॥ रघुवीरजीके वैकुंठ जानेपर फिर मेरे निकट अइयो।" यह सुनकर रामजी सूर्यके समान पुष्पक विमानसे बोले,-- ॥ १८ ॥ "तेरा कल्याण होवे ! मैं याद करूं तब तू मेरे पास अइयो, अब जाओ, सर्वत्र गुप्त होकर रहो यह मैं आज्ञा देताहूं," ॥ १९ ॥ यह कहकर श्रीरामचंद्रजी भ्राता व मंत्रियोंकी सहायतासे नीतिशास्त्रके अनुसार सर्व नागरिक जनोंके कार्य देखने लगे ॥ २० ॥ जब त्रिलोकीनाथ, लक्ष्मीपति श्रीरामचंद्रजी पृथ्वीका राज्य करतेथे,

स्तुत्वैवंराघवंतेनपूजितःकुंभसंभवः ॥ स्वाश्रमंमुनिभिःसार्धंप्रययौहृष्टमानसः ॥ १३ ॥ रामस्तुसीतयासार्धंभ्रातृभिःसहमंत्रिभिः ॥
संसारीवरमानाथोरममाणोऽवसद्गृहे ॥ १४ ॥ अनासक्तोऽपिविषयान्बुभुजेप्रिययासह ॥ हनूमत्प्रमुखैःसद्भिर्वानरैःपरिवेष्टितः ॥ १५ ॥
पुष्पकंचागमद्रामम्एकदापूर्ववत्प्रभुम् ॥ प्राहदेवकुबेरेणप्रेषितंत्वामहंततः ॥ १६ ॥ जितंत्वंरावणेनादौपश्चाद्रामेणनिर्जितम् ॥ अतस्त्वं
राघवंनित्यंवहयावद्वसेद्भुवि ॥१७॥ यदागच्छेद्रघुश्रेष्ठोवैकुंठंयाहिमांतदा ॥ तच्छ्रुत्वाराघवःप्राहपुष्पकंसूर्यसन्निभम् ॥ १८॥ यदास्मरा
मिभद्रंतेतदागच्छममांतिकम् ॥ तिष्ठांतर्धायसर्वत्रगच्छेदानिमिमाज्ञया ॥१९॥ इत्युक्त्वारामचंद्रोऽपिपौरकार्याणिसर्वशः ॥ भ्रातृभिर्मं
त्रिभिःसार्धंयथान्यायंचकारसः ॥ २० ॥ राघवेशासतिभुवंलोकनाथेरमापतौ ॥ वसुधासस्यसंपन्नाफलवंतश्चभूरुहाः ॥ २१ ॥

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

तब पृथ्वी धन धान्यसे भरी हुई रहै; वृक्ष विपुल फल दें ॥ २१ ॥ सब लोग अपने अपने धर्मानुसार चलें, स्त्रियां पतिकी सेवा करनेमें दक्ष रहैं; रामचंद्रजीके राजा होतेहुए किसीने अपने पुत्रको मृतक न देखा ॥ २२ ॥ प्रभु श्रीरामचंद्रजी, सीता, वानर, और भ्राताओंको साथले उत्तम पुष्पक विमानमें बैठ पृथ्वीपर फिरते रहे ॥ २३ ॥ प्रभुने पृथ्वीपर ऐसे अनेक कार्य किये जो मनुष्योंसे नहोसके; एक ब्राह्मणका छोटा लड़का अकालमें मृत्युको प्राप्त हुआ; इस कारण श्रीरामचंद्रजीने उस ब्राह्मणको शोक करते हुए देखा। प्रभुकी बुद्धि महा विलक्षण थी। इस विपरीत होनेका कारण उन्होंने तत्काल जान लिया; वनमें एक शूद्र तप करता था। रामचंद्रजीने उसको वध कर ब्राह्मणके लड़केको ॥ २४ ॥ २५ ॥ जिलाया और शूद्रको अत्युत्तम स्वर्गलोक दिया। परमात्मा रामचंद्रजीने लोगोंके उपदेशार्थ ॥ २६ ॥ जिधर तिधर करोड़ो शिवलिङ्ग स्थापित किये; वह सर्व दिव्य उपभोगोंके द्वारा सीताजीको रमण करते रहे ॥ २७ ॥ रामचंद्रजीको धर्मका उत्तम ज्ञानथा, उन्हौंने धर्मानुसार राज्य चलाया, और सर्व लोकोंका पाप दूर करनेवाली अपनी पवित्र कीर्ति जगमें चिरकालके लिये स्थापितकी ॥ २८ ॥ जिनके चरणकमलका सर्व लोक वंदन करते हैं, उन परमेश्वरने मायाके द्वारा मनुष्य शरीर धारण कर नीतिशास्त्रके अनुसार दशहजार वर्षतक राज्य किया ॥ २९ ॥ रामजीने एकपत्नीव्रत पालन किया (प्राचीन कालमें राजा लोग अनेक स्त्रियां रखतेथे ऐसा होनेपरभी यह सर्वगुणसंपन्न राजा एकही स्त्रीमें रत और संतुष्ट रहे। वास्तवमें यह गुण उसकालके

जनाधर्मपराःसर्वेपतिभक्तिपराःस्त्रियः ॥ नापश्यत्पुत्रमरणंकश्चिद्राजनिराघवे ॥ २२ ॥ समारुह्यविमानाग्र्यंराघवःसीतयासह ॥ वानरै
र्भ्रातृभिःसार्धंसंचचारावनिंप्रभुः ॥ २३ ॥ अमानुषाणिकार्याणिचकारबहुशोभुवि ॥ ब्राह्मणस्यसुतंदृष्ट्वाबालंमृतमकालतः ॥ २४ ॥
शोचंतंब्राह्मणंचापिज्ञात्वारामोमहामतिः ॥ तपस्यंतंवनेशूद्रंहत्वाब्राह्मणबालकम् ॥ २५ ॥ जीवयामासशूद्रस्यददौस्वर्गमनुत्तमम् ॥
लोकानामुपदेशार्थंपरमात्मारघूत्तमः ॥ २६ ॥ कोटिशःस्थापयामासशिवलिंगानिसर्वशः ॥ सीतांचरमयामाससर्वभोगैरमानुषैः ॥२७॥
शशासरामोधर्मेणराज्यंपरमधर्मवित् ॥ कथांसंस्थापयामाससर्वलोकमलापहाम् ॥ २८ ॥ दशवर्षसहस्राणिमायामानुषविग्रहः ॥ चका
रराज्यंविधिवल्लोकवंद्यपदांबुजः ॥ २९ ॥ एकपत्नीव्रतोरामोराजर्षिःसर्वदाशुचिः ॥ गृहमेधीयमखिलमचरञ्छिक्षयञ्जनान् ॥ ३० ॥

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

मध्य असामान्य हुआ) वह राजर्षि (राजा होनेपरभी ऋषिके समान तप करनेवाले श्रीरामजी) सर्वकाल शुद्ध रहकर लोकशिक्षाके लिये गृहस्थाश्रमके सर्व धर्म आचण करते रहे ॥ ३० ॥ सीताजीमें नम्रता, इन्द्रियनिग्रह, लाज, नीति, यह गुणथे। वह रामचंद्रजीके अभिप्रायको जानतीथीं इतने गुणों करके वह साध्वी पतिका मन हरण करके प्रेम पूर्वक उनकी सेवा करतीं ॥ ३१ ॥ एक अवसरमें रघुवीर पुष्पवाटिकामें सर्व उपभोगोंसे भरेहुए दिव्य मंदिरमें एकान्त स्थलमें बैठेथे ॥ ३२ ॥ उनके शरीरकी कांति नीले रत्नके समानथी उनके अंगपर बड़े मोलके गहनेथे; उनका मुख प्रसन्न व आकृति गंभीर दिखाई देती, वह विजलीके राशिके समान तेजपुंज वस्त्र पहर रहेथे ॥ ३३ ॥ कमलदलनयनवाली सीताजी

सीताप्रेम्णाऽनुवृत्त्याचप्रश्रयेणदमेनच ॥ भर्तुर्मनोहरासाध्वीभावज्ञासाह्रियाभिया ॥ ३१ ॥ एकदाऽऽक्रीडविपिनेसर्वभोगसमन्विते ॥
एकांतेदिव्यभवनेसुखासीनंरघूत्तमम् ॥ ३२ ॥ नीलमाणिक्यसंकाशंदिव्याभरणभूषितम् ॥ प्रसन्नवदनंशांतंविद्युत्पुंजनिभांवरम् ॥ ३३ ॥
सीताकमलपत्राक्षीसर्वाभरणभूषिता ॥ राममाहकराभ्यांसालालयंतीपदांबुजे ॥ ३४ ॥ देवदेवजगन्नाथपरमात्मन्सनातन ॥ चिदानंदादिमध्यांतरहिताशेषकारण ॥ ३५ ॥ देवदेवाःसमासाद्यमामेकांतेऽब्रुवन्वचः ॥ वहुशोऽर्थयमानास्तेवैकुंठागमनंप्रति ॥ ३६ ॥ त्वयासमेतश्चिच्छक्त्यारामस्तिष्ठतिभूतले ॥ विसृज्यास्मान्स्वकंधामवैकुंठंचसनातनम् ॥ ३७ ॥ आस्तेत्वयाजगद्धात्रिरामःकमललोचनः ॥
अग्रतोयाहिवैकुंठंत्वंतथाचेद्रघूत्तमः ॥ ३८ ॥ आगमिष्यतिवैकुंठंसनाथान्नःकरिष्यति ॥ इतिविज्ञापिताहंतैर्मयाविज्ञापितोभवान्॥३९॥

शरीरपर सर्व गहने धारण कर रहींथीं । वह अपने हाथोंसे रामचंद्रजीके चरण चपाती हुई बोलीं; ॥ ३४ ॥ "हे देवाधिदेव ! आप जगके स्वामी सनातन परमात्मा हैं, ज्ञान और आनंद आपका रूप है; आपका आदि मध्य व अंत नहीं है । आप सर्व जगत्के कारण हैं ॥ ३५ ॥ हे राम ! आपके वैकुंठ जानेके विषयमें इन्द्रादि मुख्य देव अनेक प्रकारसे विनती करते हैं । उन्हौंने मुझसे अकेलेमें साक्षात्कर विनती कीहै ॥ ३६ ॥ कि 'हे चिच्छक्तिरूप देवि ! रामचंद्रजी हमको छोड़ अपने सनातन वैकुठको छोड़ तुम्हारे साथ पृथ्वीपर रहते हैं ॥ ३७ ॥ हे जगन्माते ! कमलनयन रामचंद्रजीको, यहां रहना भला लगता है; इसका कारण तुम्हीं हो। पहले तुम वैकुंठको चलो; तुम्हारे जातेही रामजी ॥ ३८ ॥ वैकुंठको जायकर ह

मको आश्रय दें गे । ' उन्हौंने मेरी ऐसी प्रार्थना करी; और मैंने आपसे विज्ञापनपूर्वक निवेदन किया है ॥ ३९ ॥ हे प्रभो ! अब आप जो योग्य समझें तैसा करैं मैं आपको कुछ आज्ञा नहीं देतीहूं । " सीताजीके वचन सुन रामचंद्रजीने क्षणमात्र विचारकर उत्तर दिया ॥ ४० ॥ " हे सीते ! मैंने तुम्हारें कहनेका सर्व अभिप्राय जान लिया; इसका मैं तुमसे एक उपाय कहताहूं । हे देवि ! लोकमें तेरे विषयमें कुछ अपवाद उठा है ऐसा मिष रचकर ॥ ४१ ॥ साधारण मनुष्यके समान लोकापवादके डरसे मैं तुम्हें वनमें छोडूंगा । तहां तुम्हारे वाल्मीकिजीके आश्रममें दो पुत्र होंगे॥ ४२॥ अब तुम्हारे उदरमें गर्भ होनेके चिह्न प्रगट दीखते हैं । तदनन्तर तुम फिर हमारे निकट आओगी । और लोकोंके विश्वासको अर्थात् निर्दोषहूं ऐसी प्रतीति करनेके लिये आदरसे शपथ लेकर अर्थात् सौगन्ध करकै ॥ ४३ ॥ तुरंत पृथ्वीके छिद्रमें होकर तुम वैकुंठको जाओगी; और फिर मैंभी स्वर्गमें आऊंगा, ऐसा मेरा निश्चय है " ॥ ४४ ॥ ऐसा कहकर एक ज्ञानस्वरूप जिनका लक्षण है ऐसे श्रीरामजीने सीताजीको राजमंदिरमें भेज दिया । एक समय रामचंद्रजी अपने गूढ़ मंत्रका तत्त्व जाननेवाले प्रधान और सैनापतियोंके साथ इस सभामें बैठेथे ॥ ४५ ॥ रामचंद्रजीके वहांपर बैठे रहतेहुए हँसानेके कार्यमें चतुर, और अनेक कथा कहनेमें निपुण (खुश मश्करे) उनके मित्र उनको हँसाते (विनोद कथा कहते हुए) निकट बैठेथे ॥ ४६ ॥ कथा प्रसंगसे रामजीने अपने दूतसे कहा;– " अयोध्याके नागरिक किंवा देशोंकें लोग मेरे विषयमें अच्छा बुरा क्या क

यद्युक्तंतत्कुरुष्वाद्यनाहमाज्ञापयेत्प्रभो ॥ सीतायास्तद्वचःश्रुत्वारामोध्यात्वाऽब्रवीत्क्षणम् ॥ ४० ॥ देविजानामिसकलंतत्रोपायंवदामिते ॥ कल्पयित्वामिषंदेविलोकवादंत्वदाश्रयम् ॥ ४१ ॥ त्यजामित्वांवनेलोकवादाद्भीतइवापरः ॥ भविष्यतःकुमारौद्वौवाल्मीकेराश्रमांतिके ॥ ४२ ॥ इदानींदृश्यतेगर्भःपुनरागत्यमेंऽतिकम् ॥ लोकानांप्रत्ययार्थंत्वंकृत्वाशपथमादरात् ॥ ४३ ॥ भूमेर्विवरमात्रेणवैकुंठंयास्यसिद्रुतम् ॥ पश्चादहंगमिष्यामिएषएवसुनिश्चयः ॥ ४४ ॥ इत्युक्त्वातांविसृज्याथरामोज्ञानैकलक्षणः ॥ मंत्रिभिर्मंत्रतत्त्वज्ञैर्वलमुख्यैश्चसंवृतः ॥ ४५ ॥ तत्रोपविष्टंश्रीरामंसुहृदःपर्युपासत ॥ हास्यप्रौढकथासुज्ञाहासयंतःस्थिताहरिम् ॥ ४६ ॥ कथाप्रसंगात्पप्रच्छरामोविजयनामकम् ॥ पौराजानपदामेकिंवदंतीहशुभाशुभम् ॥ ४७ ॥

हते हैं ? ॥ ४७ ॥ सीताको, हमारी माता (कौशल्या) को, भ्राताओंको अथवा कैकयीको लोग क्या कहते हैं ? डरो मत, आनंदसे कह । तुझे हमारी शपथ है" ॥ ४८ ॥ रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर विजयने कहा; "हे राजन् ! तुम्हारे विषयमें सब लोग कहते हैं कि —रामजीको आत्मतत्त्वज्ञान है जो कार्य करने अत्यन्त कठिनथे, वह समस्त रामचंद्रजीने किये ॥४९॥ परन्तु रावणको मारनेपर सीताजीको साथले और विनाही कुछ क्रोध किये (सीताजीके पतिव्रतमें कुछभी शंका न करकै) घर आये, उन्होंने सीताको हर्षसहित घरमें रखलिया । ॥ ५० ॥ निर्जन वनमें दुष्टात्मा रावण जिसको हरण करके ले गयाथा; नहीं कह सक्के कि उस सीतासे संभोग करते रामके हृदयमें कैसा सुख होता है ? ॥ ५१ ॥ इसकारण

सीतांवामातरंवामेभ्रातॄन्वाकैकयीमथ ॥ नभेतव्यंत्वयाब्रूहिशापितोऽसिममोपरि ॥ ४८ ॥ इत्युक्तःप्राहविजयोदेवसर्वेवदंतिते ॥ कृतंसुदुष्करंसर्वंरामेणविदितात्मना ॥ ४९ ॥ किंतुहत्वादशग्रीवंसीतामाहृत्यराघवः ॥ अमर्षंपृष्ठतःकृत्वास्ववेश्मप्रत्यपादयत् ॥ ५० ॥ कीदृशंहृदयेतस्यसीतासंभोगजंसुखम् ॥ याहृताविजनेऽरण्येरावणेनदुरात्मना ॥ ५१ ॥ अस्माकमपिदुष्कर्मयोषितांमर्षणंभवेत् ॥ यादृग्भवतिवैराजातादृश्योनियतंप्रजाः ॥ ५२ ॥ श्रुत्वातद्वचनंरामःस्वजनान्पर्यपृच्छत ॥ तेऽपिनत्वाऽब्रुवन्राममेवमेतन्नसंशयः ॥ ५३ ॥ ततोविसृज्यसचिवान्विजयंसुहृदस्तथा ॥ आहूयलक्ष्मणंरामोवचनंचेदमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ लोकापवादस्तुमहान्सीतामाश्रित्यमेऽभवत् ॥ सीतांप्रातःसमानीयवाल्मीकेराश्रमांतिके॥५५॥त्यक्त्वाशीघ्रंरथेनत्वंपुनरायाहिलक्ष्मण॥वक्ष्यसेयदिवाकिंचित्तदामांहतवानसि ॥५६॥

यदि हमारी स्त्रियांभी दुष्कर्म करें तौ हमको वह सहन करने पड़ैंगे; क्योंकि जैसा राजा होता है, प्रजाभी निश्चय वैसी होती है" ॥ ५२ ॥ रामचंद्रजीने विजयकी वार्ता सुन अपने दूसरी आत्मीय लोगोंसे पूछा; उन्होंनेभी रामजीको नमस्कार करकै कहा कि "हाँ ऐसाही कहते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं" ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त रामजीने मंत्रियोंको विदा करके लक्ष्मणजीको बुलाय यह कहा,— ॥ ५४ ॥ "हे लक्ष्मण ! लोक सीताके संबन्धमें मुझको बड़ा अपवाद लगाते हैं । इसकारण तुम सीताको भोर होतेही अंतःपुरसे निकालकर वाल्मीकि मुनिजीके आश्रमके निकट छोड़ दो ॥ ५५ ॥ और रथमें बैठ फिर शीघ्र इधर आओ । इसपर जो एक शब्द (अदलबदल) भी मेरे निकट कहोगे तौ तुमको मेरे वध करनेका

दोष लगैगा ” ॥ ५६ ॥ रामजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणजी मारे भयके–रामजीके आगे विनाही कुछ बोले चले गये। व सबेरेही उठे और सुमंतकी सहायतासे सीताजीको रथमें बैठाय एकसाथ वनको गये ॥ ५७ ॥ वहांपर उन्होंने वाल्मीकिजीके आश्रमके निकट सीताजीको छोड़कर कहा;-- ‘हे मातः– ! लोग दूषण देते हैं इसभयसे रामजीने तुम्हैं वनमें छोड़ दिया ॥ ५८ ॥ हे मैया ! इसमें मेरा कुछ भी अपराध नहीं, अब तुम मुनिके आश्रमको जाओ।’ इतना कहकर लक्ष्मणजी शीघ्रही निकले व रामचंद्रजीके निकट आये ॥ ५९ ॥ इधर जानकीजीभी दुःखित होकर अज्ञानके समान विलाप करने लगी, शिष्योंके मुखसे वाल्मीकि मुनिके कानमें यह वार्ता गई कि कोई स्त्री आश्रमके निकट आनकर रो रही है। मुनिजीने दिव्य दृष्टिके द्वारा जानलिया कि वह सीता है ॥ ६० ॥ आगे क्या होनेवाला है यह सब वाल्मीकिजी जानतेथे, इसकारण उन्होंने

इत्युक्तोलक्ष्मणोभीत्याप्रातरुत्थायजानकीम् ॥ सुमंत्रेणरथेकृत्वाजगामसहसावनम् ॥ ५७ ॥ वाल्मीकेराश्रमस्यांतेत्यक्त्वासीतासुवाचसः ॥ लोकापवादभीत्यात्वांत्यक्त्वान्राघवोवने ॥ ५८ ॥ दोषोनकश्चिन्मेमातर्गच्छाश्रमपदंमुनेः ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणःशीघ्रंगतवान्रामसन्निधिम् ॥ ५९ ॥ सीताऽपिदुःखसंतप्ताविललापातिमुग्धवत् ॥ शिष्यैःश्रुत्वाचवाल्मीकिःसीतांज्ञात्वासदिव्यदृक् ॥ ६० ॥ अर्घ्यादिभिःपूजयित्वासमाश्वास्यचजानकीम् ॥ ज्ञात्वाभविष्यंसकलमार्पयन्मुनियोषिताम् ॥ ६१ ॥ तास्तांसंपूजयंतिस्मसीतांभक्त्यादिनेदिने ॥ ज्ञात्वापरात्मनोलक्ष्मींमुनिवाक्येनयोषितः ॥ सेवांचक्रुःसदातस्याविनयादिभिरादरात् ॥ ६२ ॥ रामोऽपिसीतारहितःपरात्माविज्ञानदृक्केवलआदिदेवः ॥ संत्यज्यभोगानखिलान्विरक्तोमुनिव्रतोऽभून्मुनिसेवितांघ्रिः ॥६३॥ इतिश्रीमद्ध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेउत्तरकांडेचतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

अर्घ्यादिक उपचारोंसे जानकीजीकी पूजा करके उनको समझाया बुझाया और ‘इनकी भलीभांतिसे रक्षा करो ’ यह कह मुनिपत्नियोंके हाथमें जानकीको सौंप दिया ॥ ६१ ॥ मुनिजीकी आज्ञाके अनुसार वह स्त्रियें सीताजीको परमेश्वरकी लक्ष्मीजी समझ भक्तिपूर्वक प्रतिदिन उनकी पूजा करतीं, और सदा बड़े आदरसे नम्रतादि गुणोंके द्वारा उनकी सेवा करती रहतीं ॥ ६२ ॥ सीताजीके त्याग करनेपर परमात्मा रामचंद्रजी सर्व उपभोगोंका भोगना छोड़ वैराग्य धारणकर मुनियोंके समान नियमका आचरण करते रहे । महादेवजी बोले हे पार्वति ! यह रामचंद्रजी केवल आदिदेव थे, तत्त्वज्ञानमें उनकी दृष्टि रही, मुनिलोग नित्य उनके चरणोंकी सेवा करने लगे ॥ ६३ ॥ इ० श्रीम० उमा० भा० चतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

रामचंद्रजीका उपदेश करना । श्रीमहादेवजी बोले; हे पार्वति ! संसारमें प्राणियोंके जो कुछ आनंद हैं, या होते हैं; उनका आधार श्रीरामचंद्रजीकी ब्रह्मानंदमय मूर्ति है कारण वेदोंने कहा है कि ब्रह्मानंदके एक अंशपर इतर सर्व जीवन (आनंद) पाते हैं [अथवा रामचंद्रजीकी कल्याणमय मूर्तिसेही सर्व संसारका कल्याण होता है] उन्होंने ऐसी मंगलमूर्ति धारण करकै जो कीर्ति संपादित करी उसके आधारपर अनेक रामायण ग्रन्थ बने । इस उत्तम कीर्तिके श्रवण करनेवाले लोगोंको मोक्ष प्राप्त होता है। रामचंद्रजीने लोकापवादसे जानकीजीका त्याग किया,यहांतक अपनी कथा आय पहुँची है—आगे यह रामचंद्रजीने अपने पूर्वजोंकी प्रजा पालन करने, साधु पुरुषोंकी कथा श्रवण करने इत्यादि कर्तव्योंका जिस प्रकारसे पालन किया; व दूसरे महान् २ राजर्षियोंके जिसमार्गको अंगीकार किया; उसके अनुरोधसे चलतेहुए॥ १ ॥ लक्ष्मणजीकी बुद्धि बड़ी उदारथी(शिष्यके जो महागुण—गुरुके और वेदान्तके वचनोंपर विश्वास इत्यादि—शास्त्रमें कहे हैं; वे समस्त लक्ष्मणजीकी बुद्धिमें दिखाई देतेथे) वह रामचंद्रजीसे धर्मविषयक अनेक प्रश्न करैं;

श्रीमहादेवउवाच ॥ ततोजगन्मंगलमंगलात्मनाविधायरामायणकीर्तिमुत्तमाम्॥चचारपूर्वाचरितंरघूत्तमोराजर्षिवर्यैरभिसेवितंयथा ॥१॥
सौमित्रिणापृष्टउदारबुद्धिनारामःकथाःप्राहपुरातनीःशुभाः ॥ राज्ञःप्रमत्तस्यनृगस्यशापतोद्विजस्यतिर्यक्त्वमथाहराघवः ॥२॥ कदाचि
देकांतउपस्थितंप्रभुंरामंरमालालितपादपंकजम् ॥ सौमित्रिरासादितशुद्धभावनःप्रणम्यभक्त्याविनयान्वितोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥

और उनको धर्म अधर्मका निर्णय करनेके लिये, तैसे विषयों करके भरी हुई प्राचीन कथा यें कहा करें इस प्रसंगमें रामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा कि;—"बिना जानेभी जो अधर्म होजाय तौ मनुष्यको उसका फल भोगना पड़ता है। ब्रह्मस्वापहारीके समान पापसेभी बहुतही डरना चाहिये,-पहले नृग नामक एक बड़ा धार्मिक राजा होगया है; वह नित्य बहुतसी गायें ब्राह्मणोंको दान देताथा; उस राजाकी गायोंके झुंडमें ब्राह्मणकी एक गाय भूलसे चली आईथी; राजाको यह नहीं ज्ञान था; इसकारण उसने और गायोंके साथ-उस गायकोभी दान करदिया; फिर उस गायके पहले स्वामी ब्राह्मणने इस बातको जाना, उसने क्रोधसे शाप दिया, तिस शापसे राजा नृगको तिर्यग्योनि (गिरगटके जन्म) में जाना पड़ा;-बिना जाने होगए हुए ब्रह्मस्वापहारका परिणाम ऐसा होताहै !! " ॥२॥ इस प्रकारकी अनेक कथा सुनकर; तदनुरूप उत्तम आचरण धारणकर

लक्ष्मणजीनें अपना अंतःकरण निर्मलकियाथा । एक समयमें, जिनके चरणकमल लक्ष्मीजीसे सेवितहैं वह सर्वशक्तिमान् रामचंद्रजी एकांत स्थलमें बैठेहैं। यह देखकर लक्ष्मणजी उनके निकट गये–और भक्तिपूर्वक नमस्कार करके नम्रतापूर्वक उनसे बोले ॥ ३ ॥ "हे रामचंद्र! आप महाज्ञानीहो, वास्तविक आपका शरीर हमारासा नहीं है; शुद्धज्ञान ही आपका रूपहै । आप सर्व प्राणियोंके अन्तर्यामीहो; अर्थात् उनके नियामक आपही हो हेराम! इसपर तुम कहोगे कि;–(१) जो मैं सबके अंतरमें रहताहूं तो सबको मेरा ज्ञान क्योंनहीं होता? (२) जब मेरा रूपही नहीं तब योगियोंको मैं कैसे दिखाई देताहूं? तब इन दोनों शंकाओंके उत्तर कहताहूं!–(१) जिन पुरुषोंको ज्ञानसाधनभूत वेदान्त शास्त्रकी दृष्टि प्राप्त होगई; तिनकोही आप (२) अपने होकर अपने दर्शन (अनुभव) देतेहो जिसप्रकार कमलपर भ्रमरका प्रेमहोताहै; तैसेही

त्वंशुद्धबोधोऽसिहिसर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशोऽसिनिराकृतिःस्वयम् ॥ प्रतीयसेज्ञानदृशांमहामतेपादाब्जभृंगाहितसंगसंगिनाम् ॥ ४ ॥
अहंप्रपन्नोऽस्मिपदांबुजंप्रभोभवापवर्गंतवयोगिभावितम् ॥ यथांजसाज्ञानमपारवारिधिंसुखंतरिष्यामितथानुशाधिमाम् ॥ ५ ॥ श्रुत्वाऽ
थसौमित्रिवचोऽखिलंतदाप्राहप्रपन्नार्तिहरःप्रसन्नधीः ॥ विज्ञानमज्ञानतमोपशांतयेश्रुतिप्रपन्नंक्षितिपालभूषणः ॥ ६ ॥ आदौस्ववर्णाश्रमव
र्णिताःक्रियाःकृत्वासमासादितशुद्धमानसः ॥ समाप्यतत्पूर्वमुपात्तसाधनःसमाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये ॥ ७ ॥

जिन पुरुषोंके अंतःकरणमें आपके चरणकमलकी भक्ति रहतीहै उनको यह ज्ञानदृष्टि प्राप्त होतीहै ॥ ४ ॥ हे महासमर्थ! योगिजन मोक्षकी प्राप्तिके लिये आपके चरणकमलका ध्यान करतेहैं; वे संसारकी निवृत्ति करतेहैं इसलिये मैं उनको (आपके चरणकमलको) शरण आयाहूं। हेराम! संसारका मूलकारण अज्ञान, तरजानेंको परमकठिन अपार समुद्रहै; मैं इस अज्ञानसे विनाक्लेशितहुए शीघ्र जिसकेद्वारा पार होजाऊं ऐसाकोई उपाय मुझे सिखाइये।" ॥ ५ ॥ महादेवजी बोले,–हेपार्वति! राजशिरोमणि रामचंद्रजी शरणागतोंके दुःख तत्काल दूर करतेहैं। लक्ष्मणजीके समस्त वचन सुन उनके मनको बहुत संतोष हुआ उन्होंने अज्ञानरूप अंधकारका नाशकरनेके अर्थ वेदमान्य आत्मतत्त्वज्ञान लक्ष्मणजीसे कहा;–वह इसप्रकारसे रामचंद्रजी बोले ॥ ६ ॥ "पुरुषको ज्ञानप्राप्तिके लिये पहले (१) बहिरंग व (२) अंतरंग साधन शुद्ध करने चाहिये। प्रथम

क्रियाशरीरोद्भवहेतुराहताप्रियाप्रियौतौभवतःसुरागिणः ॥ धर्मेतरौतत्रपुनःशरीरकंपुनःक्रियाचक्रवदीर्यतेभवः ॥ ८ ॥
अज्ञानमेवास्यहिमूलकारणंतद्धानमेवात्रविधौविधीयते ॥ विद्यैवतन्नाशविधौपटीयसीनकर्मतज्जंसविरोधमीरितम् ॥ ९ ॥

(१) यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन चारोंके मध्य जिसवर्णमें अपना जन्म हुआहो, और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, किंवा सन्यासी इन चार आश्रमोंमें जिस आश्रमको स्वीकार कियाहो तिसमें आचरण करनेंके नित्यनैमित्तिक कर्म शास्त्रोक्तविधिसे आचरणकरै । (२) और अंतःकरण शुद्धकरले; व कर्मानुष्ठान पूर्वक शान्ति, इन्द्रियनिग्रह (इन्द्रियोंका जीतना) इत्यादि साधनकरै । इसप्रकार इन दोनों साधनोंके सिद्ध होजानेपर फिर कर्मोंका करना छोड़दे (आत्मज्ञानके लिये) (आत्मज्ञानके देनेवाले तत्त्वमस्यादि महावाक्योंके अर्थका विचार करनेकेलिये) वेदज्ञ और ब्रह्मनिष्ठ गुरुका आश्रय करै ॥ ७ ॥ हे लक्ष्मण ! प्राणीने पहले जन्ममें आदरपूर्वक जो कर्म करेहैं; उन कर्मोंका फल तिसके इस (विद्यमान) शरीरको मिलता है । जो इस जन्ममेंभी वह विषयोंपर आसक्त हो रहा तो जिसके हाथसे वह (शास्त्रमें प्रसिद्ध हुए) धर्म व अधर्म होते हैं । किसीके मनको धर्म करना अच्छा लगता है, कोई अधर्मको भला समझता है; इस रीतिसे इसजन्ममें कर्म संचय होनेपर जिस्से प्राणीको फिरभी जन्म लेना पड़ता है, तिस जन्ममेंभी वह फिर कर्म करता है । और इस संसारचक्रमें फिरा करता है । जैसे पहिया फिरता है, तब उसके नीचेका भाग ऊपर दिखलाई देता हैऔर ऊपरका भाग नीचे दिखलाई देताहै; तैसेही जन्म है और यह जन्यजनक भावसे परिवर्तन हुआ करतेहैं ॥ ८ ॥ इस संसारका मूलकारण अज्ञानही है संसारसे छूटनेको जो कुछकर्तव्य सुनेजातेहैं या शास्त्रमें लिखे हैं, वे यहीं हैं कि अज्ञानको दूर झिझकार दे, उस मूलकारणरूप अज्ञानका नाश करनेके लिये समर्थ कहा जावै तो आत्मज्ञानही है । कर्मसे अज्ञानका नाश नहीं होता; कारण, कर्मकी मूल उत्पन्न हुई है अज्ञानसे, अर्थात् कर्मका व अज्ञानका विरोध किंवा द्वेष नहीं है । जिसका जिस्से विरोध होता है; वही उसका नाश करता है,–ऐसा कहा जाता है । इस लोकसिद्ध कहावतसे अज्ञानका नाश उसके विरोधी ज्ञानसेही होताहै, यह बात प्रगटहै ॥ ९ ॥

कर्मानुष्ठान करनेसे अज्ञानका नाशभी नहीं होता,और विषय या शक्तिभी नहीं छूटती वरन् इस्से उलटा नाशात्मक फलवाला सदोष नयाँ कर्म उत्पन्न होताहै; तिस्से फिर संसार भोगना पड़ताहै; संसारका निवारण कुछभी नहीं होता, इसमें कोई शंका करैकि जब वारंवार जन्म मरण होताहै । तौ मुक्तिकी आशा अतिदुर्लभ हुई; इसका यही समाधानहै कि संसृति वारंवार न होनेके लियेही विवेकी पुरुषोंमें वेदांतवाक्योंका विचारकरना चाहिये ॥ १० ॥ कुछ लोग ऐसा कहतेहैं कि जब ज्ञान और कर्म दोनों एक जगह होतेहैं;तब मोक्ष मिलतीहै, इनमेंसे एक [ज्ञान किंवा कर्म] मोक्ष नहीं देसकता, इसप्रकार कहनेवालोंको समुच्चयवादी कहते हैं--प्रस्तुत विषयपर उनकी ऐसी शंका हैकि;—“ जैसे वेदमुखनें ज्ञानको पुरुषार्थका [मोक्षप्राप्तिका] साधन कहाहै, वैसेही कर्मको कहाहै” प्रमाण देखो; एक वेद वचन ऐसा कहताहै कि, ‘ ब्रह्मज्ञानसे उत्तमपद मिलताहै । ’ और

नाज्ञानहानिर्नचरागसंक्षयोभवेत्ततःकर्मसदोषमुद्भवेत् ॥ ततःपुनःसंसृतिरप्यवारितातस्माद्बुधोज्ञानविचारवान्भवेत् ॥ १० ॥ ननु क्रियावेदमुखेनचोदितायथैवविद्यापुरुषार्थसाधनम् ॥ कर्तव्यताप्राणभृतःप्रचोदिताविद्यासहायत्वमुपैतिसापुनः ॥ ११ ॥ कर्माकृतौदोषमपिश्रुतिर्जगौतस्मात्सदाकार्यमिदंमुमुक्षुणा ॥ ननुस्वतंत्राध्रुवकार्यकारिणीविद्यानकिंचिन्मनसाऽप्यपेक्षते ॥ १२ ॥

“ उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥ तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम्”इति । जैसे पक्षी दोनों पंखोंके द्वारा आकाशमें उड़ते हैं और एक पंखसे नही उड़ सकते तैसेही ज्ञान व कर्म दोनों साधनोंके सिद्ध होनेपर शाश्वत ब्रह्मपदकी प्राप्ति होतीहै; यह दूसरे वचनका अभिप्रायहै । नित्य नैमित्तक कर्म प्राणियोंको अवश्य करने चाहिये ऐसी विधिहै । और यह कर्म फिर ज्ञानकी सहायता करतेहैं ॥ ११ ॥ और कर्म न करनेसे वेद दोष दरशाताहै; तिस्से मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सदा कर्म करना चाहिये । तिसमें सिद्धान्ती शंका करताहै कि मोक्षको संपादन करनेंवाली विद्या स्वतंत्रहै; इसकारण सहायताके विना कार्य करनेमें स्वयमसमर्थ है जैसे तेज अंधकारको निर्वृत्त करनेमें समर्थहै; और उसमें किसी दूसरी वस्तुकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रहती, तसेही विद्या अर्थात् ज्ञानको मोक्ष फल देनेमें किसी दूसरी सहायताकी आवश्यकता नहींहै॥ १२॥

नसत्यकार्योऽपिहियद्वदध्वरःप्रकांक्षतेऽन्यानपिकारकादिकान् ॥ तथैवविद्याविधितःप्रकाशितैर्विशिष्यतेकर्मभिरेवमुक्तये ॥ १३ ॥ केचिद्वदंतीतिवितर्कवादिनस्तदप्यसद्दृष्टविरोधकारणात् ॥ देहाभिमानादभिवर्धतेक्रियाविद्यागताहंकृतितःप्रसिद्ध्यति ॥ १४ ॥ विशुद्धविज्ञानविरोचनांचिताविद्याऽत्मवृत्तिश्चरमेतिभण्यते ॥ उदेतिकर्माखिलकारकादिभिर्निहंतिविद्याऽखिलकारकादिकम् ॥ १५ ॥

तिसमें समुच्चयवादी ऐसा परिहार करता है कि तुम्हारे कहनेके अनुसार ऐसा नहीं है; क्योंकि सत्यकार्य अर्थात् चातुर्मास्यके यज्ञ करनेवालेको अक्षय सुख मिलता है; इत्यादि वेदमें कहाहुआ ऐसा यज्ञभी जैसे, दूसरे उपकारक प्रयाज आदि अंग और देशकालादिकी अपेक्षा करता है, तैसेही विद्या अर्थात् ज्ञानसेभी जीवन रहते अग्निहोत्रका होमकरना इत्यादि विधिवाक्यसे और उसके समूहद्वारा प्रकाशित कर्मके साथही मुक्तिके लिये विशेष गिना जाता है ॥ १३ ॥ इस सबका अनुवाद करके सिद्धांती दूषण दिखलाता है । कितनेक वितर्कवादी ज्ञान और कर्मके समुच्चयको मुक्तिका साधनरूप कहते हैं, परन्तु उनका यह कहना असत्य है । और केवल कर्म तथा ज्ञानमिश्रित कर्मकोभी मोक्षका साधन कहना असत्य है क्योंकि सब लोगोंको प्रत्यक्ष, ज्ञान, कर्मका विरोधी दिखलाई देता है । कारण कि उस कर्म कर्मका विरोध इसही कर्म देहके अभिमानसे उत्पन्न होता है; तिस्से अनात्मदेहादिके विषे आत्मत्वके अभिमानसे कर्मकी वृद्धि होती है । और विद्या अर्थात् ज्ञान निरहंकारीपुरुषको होताहै; इसप्रकार अहंकारमूलक कर्म और सत्तामूलक ज्ञान इनको दोनोंका समुच्चय अति विरुद्ध है इन दोनोंका वास एकत्र कैसे हो सकता है ॥ १४ ॥ परम निर्मल आत्मतत्त्वका ज्ञान करानेवाले वेदान्तवचनोंका बहुतायतसे विचार करनेपर पिछली जो अंतःकरणकी ब्रह्माकार वृत्ति बनती है । उसको ‘ तत्वज्ञान ’ कहते हैं समस्त प्रयाज अनुयाज इत्यादि कारकाओंके [अंगोंके] योगसे कर्मका उदय होता है; और तत्त्वज्ञान सब कारकाओंका (कर्तृत्वादि बुद्धिका) लय करता है । अतएव । कर्मका और ज्ञानका परस्पर वैर है, उनका, एकत्र वास कभी नही होसकता चितशुद्धिकर

---

१ “ अधीतवेदो जपकृत्पुत्रवानन्न दोग्निमान् । शक्त्याच यज्ञकृन्मोक्षे मनः कुर्यात्तु नान्यथा ” अर्थात् (वेद पढ़कर गायत्र्यादि जप अनुष्ठान करके गृहस्थ हो, तौ पुत्रवान् अन्नदाता-अग्नियोवाला अर्थात् अग्निका अनुष्ठान करनेवाला । यथाशक्ति यज्ञादि करनेंके द्वारा मोक्षमें मन लगावै अन्यथा नहीं) इत्यादि वाक्यसे यज्ञ मोक्षका उपकारक सिद्ध होता है ॥

नेसे कर्म केवल ज्ञानकी उत्पत्तिका कारणहै । ज्ञानको अपने फल मोक्ष देनेंके कार्यमें कर्मकी अपेक्षा बिलकुल नहींहै ॥ १५ ॥ अब उपसंहारमें मुमुक्षुकी वृत्तिका प्रकार दरशाताहूं । विद्याका कर्मके साथ विरोधहै; तिस्से मेल होना संभव नहीं; इसकारण मुमुक्षुपुरुषको समस्त काम्यकर्मका त्याग करना चाहिये, केवल नित्यनैमित्तिक कर्म तबतक करै जबतक चित्तकी शुद्धि होवै; अर्थात् ब्रह्मके विषे चित्त स्थिर होनेतक करै; इसके पीछे सर्व इन्द्रियोंके विषयोंसे जो निर्वृत्तहुआहै, उस सच्चिदानंदस्वरूप आत्माका अनुसंधानही जिसे परम प्राप्त करने योग्यहै ऐसा होकर रहै ॥ १६ ॥ जबतक प्राणी अज्ञान करके शरीर इन्द्रिय आदि अनात्म (जड़) वस्तुओं आत्मा (मैं, कर्ताहूं) ऐसी बुद्धि रखता है, तबतक उसको वेदांतकी कर्मबोधकविधिका दासपन करना पड़ता है (यज्ञ करना चाहिये । इत्यादि वेदोंकी आज्ञा पालन करनी पड़ती है) यह अहंकार छूटा कि पुरुष ‘नेति नेति’ (यह सत्य नहीं है; वह सत्य नहीं है) इन वचनोंके आधारसे सारे संसारके मिथ्या होनेका निर्णय ठहराय परमात्माको संसारसे पृथक् और सत्यरूपी जानता है; इस ज्ञानके होतेही वह कर्मोंको छोड़ देता है (उसके कर्म छूटही जाते हैं) ॥ १७ ॥

तस्मात्त्यजेत्कार्यमशेषतःसुधीर्विद्याविरोधान्नसमुच्चयोभवेत् ॥ आत्मानुसंधानपरायणःसदानिवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः ॥१६॥ यावच्छरीरादिषुमाययाऽऽत्मधीस्तावद्विधेयोविधिवादकर्मणाम् ॥ नेतीतिवाक्यैरखिलंनिषिद्ध्यतज्ज्ञात्वापरात्मानमथत्यजेत्क्रियाः ॥ १७ ॥ यदापरात्मात्मविभेदभेदकंविज्ञानमात्मन्यवभातिभास्वरम् ॥ तदैवमायाप्रविलीयतेऽजसासकारकाकारणमात्मसंसृतेः ॥ १८ ॥

एकही आत्मरूपके ईश्वर और जीव यह भेद दोनोंको दो अलग २ उपाधियोंके प्राप्त होनेसे हुए हैं । ईश्वरकी उपाधि माया और जीवकी उपाधि अंतःकरण उपाधिके अर्थ आगेके दृष्टान्तमें कहे जाते हैं; देखो, एक बड़े तालाबका पानी मूलके द्वारा वृक्षोंकी जड़के थांवलोंमें जायकर थमा है; और थांब लेके आकारसा हो रहा है इस उदाहरणमें तालाबका पानी कहिये ईश्वर और वृक्षोंकी श्रेणीका पानी कहिये जीव । पानी दोनों जगह एकही है तैसेही आत्मरूपसे ईश्वर व जीव एकही है । तालाबका बांध यह ईश्वरकी मायारूप उपाधि है; और वृक्षोंके थांवले, यह जीवकी अंतःकरणरूप उपाधि है; । एतएव परमात्मा और जीवके इस भेदका नाश आत्मतत्त्वज्ञानके द्वारा होता है । यह प्रकाशरूप आत्मज्ञान अंतःकरणमें प्रगट होते

ही तत्काल अविद्या अपनी सामग्रीके साथ (दूसरे जन्ममें प्राप्तहुए कर्मोंके साथ) नष्ट हो जाती है; आत्माके संसारमें पड़नेका कारण यह अविद्याही है ॥ १८ ॥ (तत्त्वमसि वह ब्रह्मरूप तू है) इत्यादि महावाक्योंके आधारसे ज्ञान उत्पन्न होकर अविद्या नष्ट हो जानेसे वह किसीभी रीतिसे अपना कार्य (मोह संसार) करेगी ! अर्थात् कैसेभी नहीं कर सकती। डोरीपर सर्पका भ्रम होनेसे भय लगता है परन्तु अब 'वह डोरी है; सर्प नहीं', ऐसा पूर्ण ज्ञान होगया;—फिर अपनेको वह साँपही है, ऐसा भय फिर कैसे लगेगा ? अर्थात् नहीं लगेगा; तैसेही जिसके अर्थ जब शुद्ध व द्वैतरहित (एक) आत्मतत्त्वज्ञानके जिसका नाश किया तिसके अर्थ अविद्या फिर उत्पन्न नहीं होगी पुरुषको 'मैं कर्म कर्ताहूं।' ऐसे अहंपन ज्ञात होनेंका कारण अविद्या है अब उस अविद्याकाही नाश होगया और वह फिर उत्पन्न नहीं होती तब पुरुषको (मैं असुक २ कर्मोंका करने वालाहूं) यह बुद्धि कैसे होगी ? ऐसी बुद्धि नहीं है; अर्थात् ज्ञानकालमें कर्म नहीं यह सिद्ध है इस कारण मैं कहताहूं कि ज्ञानको पूर्ण

श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिताचसाकथंभविष्यत्यपिकार्यकारिणी ॥ विज्ञानमात्रादमलाद्वितीयतस्तस्मादविद्यानपुनर्भविष्यति ॥ १९ ॥
यदिस्मनष्टानपुनःप्रसूयतेकर्ताऽहमस्येतिमतिःकथंभवेत् ॥ तस्मात्स्वतंत्रानकिमप्यपेक्षतेविद्याविमोक्षायविभातिकेवला॥२०॥सातैत्तिरीयश्रुतिराहसादरंन्यासंप्रशस्ताखिलकर्मणांस्फुटम् ॥ एतावदित्याहचवाजिनांश्रुतिर्ज्ञानंविमोक्षायनकर्मसाधनम् ॥ २१ ॥ विद्यासमत्वेनतुदर्शितस्त्वयाक्रतुर्नदृष्टांतउदाहृतःसमः ॥ फलैःपृथक्त्वाद्बहुकारकैःक्रतुःसंसाध्यतेज्ञानमतोविपर्ययम् ॥ २२ ॥

स्वतंत्रता है, और किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं, व अकेलाही मोक्ष देनेके कार्यमें शोभायमान होता है ॥ १९ ॥ २० ॥ वेदके अर्थवाद वचनोंने कर्मोंका कितनाही बखान किया हो; तौभी उन सब कर्मोंको छोड़ देना चाहिये, ऐसा उस तैत्तिरीय शाखाकी प्रसिद्ध श्रुतिने आदर पूर्वक स्पष्टपनसे कहा है। उस श्रुतिका आशय ऐसा है कि कर्म करके मोक्ष प्राप्त नहीं होती; या द्रव्य द्वारा अपनी नहीं करी जाती; परन्तु केवल सर्वसंगपरित्याग करनेसे प्राप्त होती है वाजसनेयी शाखाकी 'एतावत्' श्रुतिने भी ऐसाही कहा है कि मोक्षका साधन ज्ञान है, कर्म नहीं ॥ २१ ॥ सिद्धांती कहता है। हे समुच्चयवादी ! अग्निष्टोमादि क्रतुको तुमने ज्ञानके समान दिखाया, परन्तु यह तुम्हारा दृष्टान्त योग्य नहीं है; जो तुम कहो कि विद्या अर्थात् ज्ञान व कर्म यह दोनों बराबर हैं; कारण कि परिणाममें एक फल है "जैसे घड़ेके वास्ते चक्र दंडादिक हैं तैसे"

इस अनुमानके अनुसार मोक्षरूप एक फलके लिये, ज्ञान व कर्म बराबर हैं, परन्तु यह नहीं हो सकता,क्योंकि अहंताममताका अभिमानरूप आन्तरिक और बाह्य देशकालादिके नियमोंसे यज्ञके फलोंकी बराबरीहै,और ज्ञान तौ इस्से अलगही है इस कारण इन दोनोंकी समानता नहीं ॥ २२ ॥ कर्म न करनेसे पाप होगा,यह जड़का धर्म है, तिसको तत्त्वज्ञान नहीं है उसमें यह लगता है तत्त्वज्ञानीको तैसा कभी नहीं ज्ञान होता;– कारण कि उसको कर्तृत्वका अभिमान नहीं; वह पापादिक धर्म अनात्म्यबुद्धिवालेको होते हैं ऐसा निश्चयसे जानते हैं।-'कर्म अमुक प्रकारसे करै व अवश्य करै' ऐसी वेदकी आज्ञा है परन्तु वह किस्से है ? जिनके अंतःकरण कर्मोंके स्वर्गादिक फल प्राप्त करनेके लिये लगरहे हैं; उनको,– तत्त्वज्ञानियोंको नहीं। – इस लिये विवेकी पुरुषोंको आवश्यक कर्मभी हर्षसे छोड़ देने चाहिये ॥ २३ ॥ जिसको ज्ञानकी इच्छा हुई, और जिसका गुरुवेदान्तवचनोंपर विश्वास हुआ, उसका अंतःकरण शुद्ध हो जाता है, परन्तु वह निष्काम करकै चित्तको भलीभांति शुद्ध करै, फिर गुरुकी कृपा पाय, उनके मुखसे सुने हुए 'तत्त्वमसि।' इस महावाक्यके आधारसे जीवात्माकी परमात्मासे ऐक्यता है, इसविषयमें मनन निदिध्यासन करके अनुभव प्राप्त करे। इस ज्ञानका साक्षात्कार होतेही सब दुःख दूर होकर सुख प्राप्त हो जाता है। फिर उस पुरुषकी स्थिति मेरु पर्वतके समान अत्यन्त स्थिर होती है। विषयादिकी इच्छा करके अंतःकरण कभी लुब्ध नहीं होता ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मण! अब मैं तुमसे 'तत्त्वमसि' महावाक्यका अर्थ कहता हूं। भ्रम या भूल न करके किसी भी वाक्यके अर्थ जाननेका कारण (साधन) प्रथम उस वाक्यके पदोंका अर्थ समझ लेना है। महावाक्यके 'तत्' और 'त्वम्' इन दोनों पदोंका अर्थ 'परमात्मा और जीव' है; व (असि) पद इन दोनोंका अभेद जताता है ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण! इसपर तुमको शंका होगी कि 'ईश्वर सर्वज्ञ है; जीव किंचिज्ज्ञ (थोड़ा ज्ञान रखनेवाला) है;' फिर इन दोनोंकी एकता कैसे होसकती है? तौ

सप्रत्यवायोह्यहमित्यनात्मधीरज्ञप्रसिद्धानतुतत्त्वदर्शिनः ॥ तस्माद्बुधैस्त्याज्यमपिक्रियात्मभिर्विधानतःकर्मविधिप्रकाशितम् ॥ २३ ॥
श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीतिवाक्यतोगुरोःप्रसादादपिशुद्धमानसः ॥ विज्ञायचैकात्म्यमथात्मजीवयोःसुखीभवेन्मेरुरिवाप्रकंपनः ॥ २४ ॥
आदौपदार्थावगतिर्हिकारणंवाक्यार्थविज्ञानविधौविधानतः ॥ तत्त्वंपदार्थौपरमात्मजीवकावसीतिचैकात्म्यमथानयोर्भवेत् ॥ २५ ॥
प्रत्यक्परोक्षादिविरोधमात्मनोर्विहायसंगृह्यतयोश्चिदात्मताम् ॥ संशोधितांलक्षणयाचलक्षितांज्ञात्वास्वमात्मानमथाद्वयोभवेत् ॥ २६ ॥

इसकाभी उत्तर कहताहूं जीवमें 'अहं' मैं इस बुद्धिका जानना यह धर्म है; व ईश्वरमें—वह किसीको दीखता (जाना जाता है) नहीं, यह धर्म है इन अलग २ धर्मोंसे जीवात्माका परमात्मासे विरोध हुआ है; यह विरोध छोड़कर तिसके विषयमें उत्तम प्रकारसे विचार करै; 'तत्' और 'त्वं' इन पदोंका आगेको श्लोकोंमें कहे अनुसार लक्षणसे निकलनेवाला अर्थ लेकर यह दोनोंही (ईश्वर और जीव) चैतन्य रूपसे एक 'तत्' और 'त्वम्' इन पदोंके उद्दिष्ट अर्थ है--ऐसे जाने; फिर अपनी आत्मा वैसी (चैतन्यमय) है, ऐसा समझकर चिद्रूपीमें मिलगयेके समान होवे (मूलमें वह दोनों एकही हैं; परन्तु जैसे एक स्त्रीकी नथ खोगईथी; यह नथ गलेमें अटक गईथी, परन्तु भूलसे वह स्त्री घबड़ाकर घरभरमें नथको ढूंढ़ फिरी फिर दूसरी एक स्त्रीने उस्से कहा कि 'बहन! यह देखो तुम्हारी नथ तुम्हारे गलेमें है!' तब वह नथकी मालिक स्त्री 'मेरी नथ मिलगई!' ऐसा कहती हुई घूमती फिरी; वास्तविक देखनेसे उसकी नथ खोई नहीं गईथी। फिर यह कैसा कहा जासकता है कि वह 'मिलगई'? परन्तु स्त्रीकी नथ खो जानेके बदले उसको पूर्ण ग्रह आयाथा;) इसकारण उसका ऐसा उद्धार निकला, तैसेही जीव यद्यपि चैतन्यरूप व परमात्मासे अभिन्नहै; तौभी मनु

एकात्मकत्वाज्जहतीनसंभवेत्तथाऽजहल्लक्षणताविरोधतः ॥ सोऽयंपदार्थाविवभागलक्षणायुज्येततत्त्वंपदयोरदोषतः ॥ २७ ॥

ष्यका ग्रह जो है वह परमेश्वरसे अलग है ऐसा होता है; इसकारण ज्ञान होनेपर ईश्वरके रूपमें मिलजानेके समान होवै ऐसा कहा ॥ २६ ॥

लक्षण तीन प्रकारकी है;--(१) जहत्स्वार्थ लक्षण, (२) अजहत्स्वार्थ लक्षण और (३) जहदजहत्स्वार्थ लक्षण। (१) जहत्स्वार्थ लक्षण कहिये छोड़ा जाता है शब्दके मूलका अर्थ जिस्में वह मूलका अर्थ संभवन होनेसे छोड़ देकर उसके स्थानमें दूसरा संभवनेवाला अर्थ स्वीकार करना; उदाहरणः—गंगायां घोषः-- (गंगामें घोसियोंका गृह है) इस वाक्यमें 'गंगायाम्' इस शब्दका मौलिक अर्थ 'गंगाके प्रवाहमें' है। परन्तु गंगाके प्रवाहमें अहीरोंका घर होजाना संभव नहीं इस लिये 'गंगायाम्' इस शब्दका मौलिक अर्थ 'गंगाके प्रवाहमें' छोड़ देकर 'गंगाके तीरपर' किया जाता है व 'गंगायांघोषः' इस वाक्यका यथार्थ अर्थ 'गंगाके तीरपर अहीरोंका ग्रह' ऐसा धरकर व्यवहार चलता है। (२) अजहत्स्वार्थ लक्षण अर्थात् छोड़ा जाता नहीं है, मूलका अर्थ जिस्मेंसे शब्दके मूलका अर्थ छोड़ा नहीं जाता, परन्तु महावरेसे उसके समान लायकर कोई दूसराही

अर्थ भरदेना) उदाहरण–‘ काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम् [कौओंसे दहीकी रक्षा करो] ’ इस वाक्यमें ‘ काकेभ्यः ’ इस पदका मौलिक अर्थ ‘ कौओंसे ’ यह नहीं छोड़ा जायगा, परन्तु इसके अतिरिक्त ‘ बिल्ली कुत्ते ’ जो कोई दहीको खाजाते हैं; तिससेभी ऐसा प्रगट अर्थ महावरेसे लगादिया जाता है, अतएव ‘ काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम् ’ इस वाक्यका अर्थ ‘ कउए, कुत्ते, बिल्ली ’ जो दहीको खाने या वखेरने जाँय, उनको अलगकर दहीको रखाओ ऐसा लेकर व्यवहार चलता है (३) जहदजहत्स्वार्थलक्षणा वा भागलक्षणा अर्थात् कुछ छोड़ा जाता है कुछ नहीं छोड़ा जाता है मूलका अर्थ जिसमेंसे उदाहरण–जैसे ‘ सोऽयं देवदत्तः ’ सः (अर्थात् दशवर्ष पहलेका देखाहुआ) वह । ‘ अयं ’ (अर्थात् अब आगे खड़ाहुआ) यह देवदत्त है दशवर्ष पहले देवदत्त छोटाथा; उसके डाढ़ी मूछें नहींथीं और अब तो इसका स्वरूप बिलकुल बदल गया है, परन्तु मनुष्य देवदत्तका दशवर्ष पहलेका छोटा आकार व अबका डाढ़ी मूछोंका आकार छोड़ देकर; न बदलनेवाले सामान्य मांसपिंडके ऊपर लक्ष्य देता है । एतएव–सः (पहलेका) और ‘ अयं ’ (अबका) इन दोनोंके मूलका कुछ अर्थ छोड़ देकर पहिचानका व्यवहार चलता है । महावाक्यमें ‘ तत् ’ माया उपाधि [पीछे अठारहवें श्लोकमें ‘ उपाधि ’ शब्दका व्याख्यान है सो देखो । इस शब्दकी उत्पत्ति आधीयते अनेन इति आधिः आधेः उप--उपाधिः-चिंताके निकटका] है, जिसकी वह चैतन्य–ईश्वर, व ‘ त्वं ’ (तुम अतःकरण उपाधि हो जिसकी वह चैतन्य जीव) इन पदोंमें दोनोंके एक होनेकी शक्ति नहीं, इसकारण लक्षणा तो करनी चाहिये । पर वह कौनसी करनी चाहिये, जहत्स्वार्थ लक्षणा करना संभव नहीं; क्योंकि इस लक्षणामें पदके मूलका अर्थ सारा छोड़ दिया जाता है; और हमारे दोनों पदोंका सारा अर्थ छोड़नेके योग्य नहीं, कारण तिनमें चैतन्यरूप अर्थ एक है; वह हमको लेना चाहिये।अच्छा ! तैसेही अजहत्स्वार्थ लक्षणाभी नहीं लगाई जाती, क्योंकि तिसमेंभी विरोध आता है देखो इस लक्षणामें बाहरके अर्थ भरलेनेका; परन्तु पदके मूलका अर्थ सम्पूर्णतः नहीं छोड़ा जाता; हमको दोनों पदोंसे ‘ चैतन्य ’ इतनाही अर्थ रखकर बाकी छोडना है । अबरही–जहदजहत्स्वार्थ लक्षणा किंवा भाग लक्षणा केवल लगती है । इसमें कोई दोष नहीं आता।जैसे ‘सोऽयं देवदत्तः ’ इस कारणमेंसे हम ‘ उस समयका छोटा ’ व ‘ इस समयका डाढ़ी मूंछवाला बड़ा ’ यह दोनों धर्म छोड़ देवदत्तकी साधारण पहँचान उसके मुखपर माताके दाग थे इत्यादि लिये, तैसेही ‘ तत् ’ व (त्वं) पदोंके अनुक्रमसे (माया उपाधि है जिसकी, व अंतःकरण उपाधिहै जिसकी) यह अर्थ छोड़कर शेष ‘ चैतन्य ’ अर्थ ग्रहण

करे, और पिछले श्लोकोंमें कहे हुएके अनुसार 'असि' उस पदसे उसका ऐक्य समझो ॥ २७ ॥ जीवकी उपाधि किससे छूटतीहै सोकहताहूं सुनो । पूर्वजन्म करके संचितहुएकर्मोंसे उत्पन्न हुआ यह शरीर; यह जीवकी स्थूल (बड़ादीखने योग) उपाधिहै ! पृथ्वी, उदक, जल, तेज, वायु, आकाश यह पांचों भूत एक दूसरेमें मिश्र होकर बनेहुए गोलेसे इनकी उत्पत्ति होतीहैं । सुख दुःख इत्यादि प्राप्तकर देनेवाले कर्मके भोग भोगनेका स्थान यहीहै; इसकी उत्पत्ति व नाश नहींहै; यह परंपरासे (मायासे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे भूत, व भूतोंसे शरीर, ऐसे क्रमसे) मायाके कार्यहैं ॥ २८ ॥ इस स्थूल शरीरसे भिन्न, सूक्ष्म अर्थात् चक्षु आदि इन्द्रियोंकरके अप्रत्यक्ष, तथा संकल्पविकल्पात्मक मन निश्चयात्मक बुद्धि और नाक, जीभ,चक्षु, त्वचा, श्रोत्र, आदि पांच ज्ञानेन्द्रिय, वाणी, हाथ, पैर, पायु और उपस्थ यह पांच कर्मेन्द्रिय, प्राण अपान, व्यान, उदान, समान, आदिपांच पवनसे युक्त पंचीकृत नहींकिया गया; इस प्रकारका भूतोंसे उत्पन्न हुआ तथा सुखदुःखादिके अनुभवका साधनरूप ऐसा सत्रह तत्त्वका समुदायरूप इस लिंगशरीरको तत्त्ववेत्ता लोग आत्माकी सूक्ष्मउपाधिरूप कहतेहैं । जब स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर युक्त होतेहैं तबतक भोगके साधन गिने जातेहैं; और जब अलग होजाते हैं तब यह कहाजाताहै कि मरण होगया ॥ २९ ॥ इस प्रकार जीवकी स्थूल, सूक्ष्म दोनों उपाधि कहकर, अब ईश्वरकी उपाधिको कहताहूं ।–माया, ईश्वरका उत्तम ('यह ईश्वरहै' जिसमें यह व्यवहार चलताहै सो) प्रधान शरीरहै । इस शरीरकी उत्पत्ति नहीं (यह पहलेसेहीहै, परन्तु इसका नाश होताहै; अर्थात् माया अनेक रूप करके परिमाणपाती और अंतको वह सर्वरूप नष्ट होतेहैं) इस शरीरका वर्णन नहीं किया जा सकता, परन्तु यही सब जगत्की उत्पत्तिका कारणहै । मूल आत्मा एक होनेसे इन भिन्न२ उपाधियोंकरके 'जीव' और 'ईश्वर' ऐसा पृथक् होरहाहै । इसकारण वह उपाधि छोड़, श्रवण, मनन, निदि

रसादिपंचीकृतभूतसंभवंभोगालयंदुःखसुखादिकर्मणाम् ॥ शरीरमाद्यंतवदादिकर्मजंमायामयंस्थूलमुपाधिमात्मनः ॥ २८ ॥ सूक्ष्मं
मनोबुद्धिदशेंद्रियैर्युतंप्राणैरपंचीकृतभूतसंभवम् ॥ भोक्तुःसुखादेरनुसाधनंभवेच्छरीरमन्यद्विदुरात्मनोबुधाः ॥ २९ ॥ अनाद्यनिर्वा
च्यमपीहकारणंमायाप्रधानंतुपरंशरीरकम् ॥ उपाधिभेदात्तुयतःपृथक्स्थितंस्वात्मानमात्मन्यवधारयेत्क्रमात् ॥ ३० ॥

ध्यासके क्रमसे जीवात्माको परमात्मरूपी अभेद (ऐक्य) जानना उचितहै ॥ ३० ॥ अब वाक्यार्थ विचारकर फलको दर्शाताहूं । यह आत्मा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय, आदिकोशके विषय जैसे स्फटिक मणि गुड़हलके फूलके संगसे लाल मालूम होतीहै, तैसेही तिन २ कोशोंके संगसे उस २ कोशके समान आकारवाला मालूम होताहै, परन्तु इस महावाक्यका अर्थ भलीभांति विचारनेसे यह आत्मा संग और रूपसे रहित, अजन्मा और अद्वितीय मालूम होताहै, इसकारण मैं स्थूल कृश इत्यादिहूँ ऐसी प्रतीति स्फटिकके समान उस २ कोशके संगसे अज्ञानीको होतीहै, परन्तु तैसी प्रतीति तत्त्वज्ञानीको नहीं होती । इसकारण उपाधिसे हुई उस २ आकारवाला प्रतीतिको मिटानांही इस वाक्यार्थके विचारका फलहै ॥ ३१ ॥ इस (आत्मा) में स्वप्न–जागृति (जागना) और सुषुप्ति (निद्रा) इन भेदोंकी तीन प्रकारकी अवस्था दिखाई देतीहैं; परन्तु यह बुद्धिकेही धर्महैं;--आत्माके नहीं--बुद्धि रज, सत्व और तम, इन तीन गुणोंकी हुईहै, और यह तीनों अवस्थाका इन तीन गुणोंकेही अनुक्रमसे कार्य होताहै (स्वप्न रजोगुणका कार्य, जागृति सत्व गुणका और निद्रा तमोगुणका) यह अवस्था आत्मापर अनुभव नहीं होती क्योंकि इनका मूलही झूठाहै; इनमेंसे एकभी अवस्था नित्य नहींहै; देखो; स्वप्नमें निद्रा कहां आती है? निद्रामें जागनापन क्यों दिखाई देताहै? जागतेहुएमें निद्रा क्यों आतीहै? ऐसा इन अवस्थाओंका परस्पर व्यभिचार (नाश) है;--इसकारण इनको नित्य नहीं कहा जासकता । अर्थात् इनका झूंठा होना सिद्धहै, आत्मा नित्य (उत्पत्तिनाशरहित) तीनों गुणोंसे अलग, व्यापक, किसीसे सम्बन्ध न रखनेवाला व आनंदरूपहै; ऐसी आत्मापर अनित्य अवस्थाका अनुभव वास्तवमें कभी नहीं हो सकता, परन्तु तैसा भास होताहै; तिसका कारण केवल बुद्धिका अध्यास (अध्यासका अर्थ ३ श्लोकमें आगे कहाहै, सो देखो) ॥ ३२ ॥ देह, इन्द्रियें, प्राण, मन, और जीव इनके एकपर एकके अध्यास (३७ श्लोक देखो)

कोशेष्वयंतेषुतुतत्तदाकृतिर्विभातिसंगात्स्फटिकोपलोयथा ॥ असंगरूपोऽयमजोयतोऽद्वयोविज्ञायतेऽस्मिन्परितोविचारिते ॥ ३१ ॥
बुद्धेस्त्रिधावृत्तिरपीहदृश्यतेस्वप्नादिभेदेनगुणत्रयात्मनः ॥ अन्योऽन्यतोऽस्मिन्व्यभिचारतोमृषानित्येपरेब्रह्मणिकेवलेशिवे ॥ ३२ ॥
देहेंद्रियप्राणमनश्चिदात्मनांसंघादजस्रंपरिवर्ततेधियः ॥ वृत्तिस्तमोमूलतयाज्ञलक्षणायावद्भवेत्तावदसौभवोद्भवः ॥ ३३ ॥

होनेसे बुद्धिकी वृत्ति निरन्तर चलती रहती है; इस वृत्तिका मूल आधार तमोगुणका–व रजोगुणका--होता है, इस कारण उस्से होनेवाले व्यापारभी अज्ञानके बोधक होते हैं उन व्यापारोंके देखतेही विद्वानोंको स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि यह केवल अज्ञान है; उस बुद्धिकी वृत्ति जबतक चलती रहती है, तबतक यह संसार उत्पन्न होताही है; अत एव जिसमें रज व तम गुणका आधिक्य होता है, वह बुद्धि संसारका कारण है; इस कारण उसका सर्वथा त्याग करना ॥ ३३ ॥ अब महावाक्यके विचारके कर्तव्यको दर्शाताहूं । जिस्से 'न इति ' इस प्रकार करके अर्थात् मिथ्या करके, देह इन्द्रियादि दृश्य समूहरूप सर्व जगत्‌ने जाना है; तथापि जिसे सत्वप्रधान मनसे चैतन्यरूप अमृतका घूंट अर्थात् सर्व दुःख रहित ऐसे परम सुखरूप चैतन्य धनका भली भांति स्वाद लिया है, ऐसा पुरुष सर्व, दृश्य, श्राव्य जगत्‌का त्याग करे अर्थात् उसमें हेय, उपादेय, बुद्धि नहीं करे, परन्तु केवल उदासीन होकर रहे । जैसे प्यासा मनुष्य नारियल अथवा नारंगी आदि फलका रस पीनेके पीछे उस रसके मूलस्थानरूप फलका त्याग करता है, तैसेही सर्व दृश्य जगत्‌के मायारूप ब्रह्मको प्राप्त होनेके पीछे निःसार सर्व दृश्य जगत्‌के विषे त्याज्य और ग्राह्यबुद्धि नहीं रक्खे; अर्थात् उसमें उदासीन होकर रहे ॥ ३४ ॥ आत्मा कभी (६) मरता नहीं, (१) उत्पन्न नहीं होता (५) क्षीण नहीं होता (३) बढ़ता नहीं और (२) नया होकर (४) व रूपान्तर पायकर रहता नहीं इस कारण उसको (१) जायते, (२) अस्ति, (३) वर्धते, (४) विपरिणमते (५) अपक्षीयते (६) नश्यति; यह छै भाव विकार नहीं लगते इसने (जीवात्माने) देहेन्द्रियादि सर्वका महत्त्व दूर कर दिया है (तिस्से अधिक महत्त्व किसीका नहीं है) यह सुखरूप, स्वप्रकाश, सर्वव्यापी व ब्रह्मसे अभिन्न है-- इसके अतिरिक्त सर्व पदार्थ विकारी और अनित्य है,–इस कारण तिसमें वैराग्य धारण करे ॥ ३५॥ इसपर सहजसेही यह शंका उत्पन्न होतीहै कि जब आत्मा इस प्रकारका ज्ञानरूप व सुखमय

नेतिप्रमाणेननिराकृताखिलोहृदासमास्वादितचिद्घनामृतः ॥ त्यजेदशेषंजगदात्तसद्रसंपीत्वायथांऽभःप्रजहातितत्फलम् ॥३४॥
कदाचिदात्मानमृतोनजायतेनक्षीयतेनापिविवर्धतेऽनवः ॥ निरस्तसर्वातिशयःसुखात्मकःस्वयंप्रभःसर्वगतोऽयमद्वयः ॥ ३५ ॥
एवंविधेज्ञानमयेसुखात्मकेकथंभवोदुःखमयःप्रतीयते ॥ अज्ञानतोऽध्यासवशात्प्रकाशतेज्ञानेविलीयेतविरोधतःक्षणात् ॥ ३६ ॥

है; तब उसपर यह दुःखका भराहुआ संसार कैसे दीखता है? परन्तु उसका उत्तर यह है कि; अज्ञानसे लोग आत्मापर देहेन्द्रियोंका अध्यास (आगेका श्लोक देखो) करते हैं इस कारण उनको संसारकी प्रतीति होती है; तत्त्वज्ञानके होतेही क्षणमात्रमें अज्ञान लय होजाता है;क्योंकि-ज्ञान और अज्ञानका पूर्ण द्वेष है (यह दोनों इकठ्ठे नहीं रहते)अज्ञान उत्पन्न होतेही तिस करके उत्पन्नहुआ संसार अर्थसेही नाश होजाता है ॥ ३६ ॥ एक वस्तुके विषय दूसरी वस्तु भ्रमसे भासती है, तिसको तत्त्वदर्शी लोग अध्यास कहते हैं, सर्प नहीं है, ऐसी डोरीके विषे जैसे सर्पका आरोप उस रज्जुका अज्ञानमूलक है, तैसेही ईश्वरके विषय देहादि संसारात्मक सर्व जगत् आत्मज्ञानके अभावसे भासता है; इसप्रकारही ईश्वरपर जगत्का अध्यास किया है ॥ ३७ ॥ अब आत्माके विषय जगत्का भान होनेमें कैसा अध्यास है, वे कारण कहताहूं; सर्व विकल्पका कारणरूप मायासे

यदन्यदन्यत्रविभाव्यतेभ्रमादध्यासमित्याहुरमुंविपश्चितः॥असर्पभूतेहिविभावनंयथारज्ज्वादिकेतद्वदपीश्वरेजगत् ॥३७॥ विकल्पमायारहितेचिदात्मकेऽहंकारएषप्रथमःप्रकल्पितः ॥ अध्यासएवात्मनिसर्वकारणेनिरामयेब्रह्मणिकेवलेपरे ॥ ३८ ॥ इच्छादिरागादिसुखादिधर्मिकाःसदाधियःसंसृतिहेतवःपरे ॥ यस्मात्प्रसुप्तौतदभावतःपरःसुखस्वरूपेणविभाव्यतेहिनः ॥ ३९ ॥

रहित अर्थात् वास्तवमें मायाके संगसे रहित चित्स्वरूप, सर्वका कारणरूप, निरामय, सर्व दुःखोंसे असंभिन्न, आनंदमय, केवल, सर्वविकाररहित, ब्रह्म अर्थात् व्यापक, सर्व दृश्यसे विलक्षण आत्माके विषे प्रथम अहंकार अर्थात् अहंबुद्ध्यात्मक (मैं) ऐसा अभिमान, अध्यासही सर्व जन्ममरणादिकका कारणरूप कहागयाहै ॥ ३८ ॥ इच्छा--उदासीनता, प्रीति, द्वेष, सुख, दुःख, यह जोड़े नित्यगुण धर्म है, उस परमेश्वरपर अध्यास जाननेवाले--संसारके कारण, बुद्धिपर रहनेवाले हैं, कारण जबतक बुद्धि है, तबतक यह है; बुद्धिकी वृत्तिनहीं तब यहभी नहीं ! देखो!--निद्रामें बुद्धिकी वृत्ति नहीं होती, तिस समय सुख, दुःख, प्रीति, द्वेष, कोईभी धर्म नहीं होते--वह आत्माका धर्म है, परन्तु निद्राके बीचभी अनुभवमें आत्माहै; उस समय आत्माभी रहताहै,कारण नींद लेकर उठनेपर‘ मैं’ सुखसे सोयाथा, ऐसा मनुष्य कहताहै तिस्से नींदकी वेला सुखका अनुभव लेनेवालाहै

अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिंबितोजीवःप्रकाशोऽयमितीर्यतेचितः ॥ आत्माधियःसाक्षितयापृथक्स्थितोबुद्ध्यापरिच्छिन्नपरःसएवहि ॥ ४० ॥
चिद्बिंबसाक्ष्यात्मधियांप्रसंगतस्त्वेकत्रवासादनलाक्तलोहवत् ॥ अन्योऽन्यमध्यासवशात्प्रतीयतेजडाजडत्वंचचिदात्मचेतसोः ॥ ४१ ॥
गुरोःसकाशादपिवेदवाक्यतःसंजातविद्यानुभवोनिरीक्ष्यतम् ॥ स्वात्मानमात्मस्थमुपाधिवर्जितंत्यजेदशेषंजडमात्मगोचरम् ॥ ४२ ॥
प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयोऽसकृद्विभातोऽहमतीवनिर्मलः ॥ विशुद्धविज्ञानघनोनिरामयःसंपूर्णआनंदमयोऽहमक्रियः ॥ ४३ ॥

यह स्वीकार करना पड़ताहै ॥ ३९ ॥ अनादि अविद्यासे उत्पन्नहुई बुद्धिमें चैतन्यप्रकाशका प्रतिबिम्ब पड़ताहै तिस प्रतिबिम्बको 'जीव' कहतेहैं और 'परमात्मा' बुद्धिका चित्रदेखता हुआ अलग रहताहै; बुद्धिसे उसका परिच्छेद नहीं किया जाताहै, अर्थात् वह व्यापक है यह 'जीव' और 'ईश्वर' महावाक्यमेंके 'त्वम्' और 'तत्' पदोंके अर्थहै ॥ ४० ॥ जैसे जब लोहेका गोला अग्निमें डालकर व तपानेपर लालकिया जाय तब उसमें अग्निके गुण (दाहकता, भूननेकी शक्ति) लोहेके खंडपर दिखाई देतेहैं, और लोहेके गुण (गोलआकार आदि) अग्निपर भासतेहैं (लोहेका टुकड़ा चौकोर होरहाहै) 'अग्निका लालगोला' ऐसा लोग कहतेहैं, इसकारण लोखंड और अग्निका एक जगह रहना है, तैसेही चैतन्यका प्रतिबिम्ब (जीव) इन्द्रियोंके सहित, मन व अंतःकरणके निकट सम्बन्धसे, चिदात्मा और मनका परस्पर अध्यास (पीछे श्लोक ३७ देखो) होकर आत्माका धर्म चेतनपना इस मनपर, और मनका धर्म जड़पना आत्मापर दिखाई देताहै ॥ ४१ ॥ इसकारण पुरुषको वेदवचनोंकरके व गुरुसे महावाक्यका अर्थ श्रवण करना चाहिये; इसके उपरान्त सदा उनका चिंतन करकै ज्ञानका अनुभव प्राणी करे, और अपना आत्मा सर्व उपाधिसे रहित होनेपर हृदयमें रहता है; ऐसा साक्षात्कार होनेपर सर्व जड़ देहेन्द्रियादि उपकरणोंके विषे उदासीन होकर रहैं ॥ ४२ ॥ अब नीचे कहे अनुसार निरुपाधिकस्वरूपको कहताहूं, स्वप्रकाशरूप अजन्मा, सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदसे रहित, तथा जिसका दूसरा कोई प्रकाश नहीं है, ऐसा अतिनिर्मल; अर्थात् माया–कृत आवरणविक्षेपसे रहित, विशुद्ध, विज्ञानघन अर्थात् विशुद्ध एक चैतन्य स्वरूप, निरामय, कर्तापन इत्यादिके अभिमानसे रहित सम्पूर्ण अर्थात् देशकालके परिच्छेदसे रहित, ऐसा आनंद रूप और अपरिणामी

मैं हूं अजन्मा–"अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे" इत्यादि श्रुति प्रमाण है ॥ ४३ ॥ मैं नित्यमुक्त हूं; मेरी शक्ति कल्पनाके परेहै; इन्द्रियोंको न होनेवाला ज्ञान मेरा रूपहै मेरा परिणाम (रूपान्तर) नहीं होता; मेरा अंत व पार नहींहै (मैं सर्वकाल सर्वव्यापक हूं) वेदवेत्ता विज्ञान दिन रात हृदयमें जिसका चिंतवन करतेहैं सो मैंही हूं ॥ ४४ ॥ इस प्रकार सदा अखंडित अन्तःकरणसे जिसका चित्त विषयमें नहीं खींचाहुआ है, ऐसे अंतःकरणसे आत्मस्वरूपका विचार करनेवालेको विशुद्ध भावना या ब्रह्माकार अंतःकरणकी वृत्ति उदय होता है । उसके उदय होतेही जैसे सेवन की हुई ओषधि रोगका नाश करती है, इसीप्रकार वह ब्रह्माकार वृत्ति देहान्तरको प्राप्त करानेवाली कर्मसहित अविद्याका तत्काल नाश करती है ॥ ४५ ॥ अब ध्यान करनेकी रीतिको दर्शाताहूं, एकान्तमें यथोचित पद्म[1] स्वस्तिक आदि आसन[2]पर बैठाहुआ,

सदैवमुक्तोऽहमचिंत्यशक्तिमानतींद्रियज्ञानमविक्रियात्मकः ॥ अनंतपारोऽहमहर्निशंबुधैर्विभावितोऽहंहृदिवेदवादिभिः ॥ ४४ ॥ एवंस
दात्मानमखंडितात्मनाविचारमाणस्यविशुद्धभावना ॥ हन्याद‌विद्यामचिरेणकारकैरसायनंयद्वदुपासितंरुजः ॥ ४५ ॥ विविक्तआसीनउ
पारतेंद्रियोविनिर्जितात्माविमलांतराशयः ॥ विभावयेदेकमनन्यसाधनोविज्ञानदृक्केवलआत्मसंस्थितः ॥ ४६ ॥

शम, दमादि साधनोंके द्वारा संपन्न होनेसे जिसकी इन्द्रियां उपराम होगईं हैं; तथा, प्राणायामके द्वारा अंतःकरणको जीता है, तिस करके जिसके मनका कलुष नाशको प्राप्त होगया है; ऐसा विशुद्ध चित्तवाला; और जिसकी भावना केवल एक विज्ञान स्वरूपमें रही है, अर्थात् द्रष्टा तथा दृश्यके भानसे रहित है, इस्से निर्विकल्प समाधिवाला, समझना चाहिये । अनन्य साधन होकर अर्थात् तत्त्वज्ञानके अतिरिक्त और कोई मुक्तिका साधन नहीं है, ऐसा निश्चयवाला केवल असंग और आत्माके विषेही जिसकी स्थिति हुई है, अर्थात् जिसके चित्तमें किसी प्रथम दूसरे विषयोंका

---

[1] शिवसंहिताके योगप्रकरणमें तीसरे पटलके मध्य पद्मासनकी व्याख्या लिखी है " उत्तानौ चरणौ कृत्वा ऊरुसंस्थौ प्रयत्नतः । ऊरुमध्ये तथोत्तानौ पाणी कृत्वा तु तादृशौ ॥१॥ नासाग्रे विन्यसेद्‌दृष्टिं दंतमूलं च जिह्वया । उत्तोल्य चिबुकं वीक्ष्य उत्थाप्य पवनं शनैः ॥ २ ॥ तथा शक्त्या च पश्चात्तु रेचयेदविरोधतः । इदं पद्मासनं प्रोक्तं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ३ ॥ "

[2] "तत्र स्थिरसुखमासनम् " स्वस्तिकासन, पद्मासन, दंडासन इत्यादिकोंके लगनेसे शरीर स्थिर, निष्कंप होकर ध्यान शुद्ध होता है ॥

संचार नहीं होता, ऐसा होकर स्वयं आत्म स्वरूपका ध्यान करे ॥ ४६ ॥ वही परमात्मा जिसका प्रकाशक है, ऐसे इस भूत, भविष्य, और वर्तमान सर्व जगत्को सर्वके कारणरूप आत्मामें लय करै। उपादान (कार्यके साथ होने वा मुख्य (कारण) उदाहरण; घटके 'उपादान' कारण मिट्टी, कुंभारका चाक फिरानेकी चकरेटी (लकड़ी) यह घटका कारण है; परन्तु यह कारण घड़ेके साथ नहीं रहते हैं, इसकारण उनको 'निमित्त कारण' कहते हैं; कारणसत्ताके विना कार्यसत्ताको नहीं देखै। उसका लक्षण नीचे कहे अनुसार होता है, आत्माके विषय सर्व जगत्का लय करनेसे स्वयं चिदानन्दमय, पूर्ण अर्थात् जिसको किसी दूसरी कामनाकी इच्छा नहीं, ऐसा होकर रहता है, तब उसको बाह्य या अंतरका कुछ दृश्य नहीं रहता, क्योंकि सर्व कहीं ब्रह्माकार वृत्तिसे उसको ब्रह्मही भासता है ॥४७॥ सब विषयोंकी आसक्ति छूटकर ब्रह्माकार वृत्ति बनती है, इसको 'समाधि' कहते हैं, समाधि सिद्ध होनेसे पहले पुरुषका कर्तव्य यह है कि;—सर्व स्थावर जंगम वस्तुओंके सहित 'जगत्' इतना अर्थ (ॐ)

विश्वंयदेतत्परमात्मदर्शनंविलापयेदात्मनिसर्वकारणे ॥ पूर्णश्चिदानंदमयोऽवतिष्ठतेनवेदबाह्यंनचाकिंचिदांतरम् ॥ ४७ ॥ पूर्वंसमाधेरखिलंविचिंतयेदोंकारमात्रंसचराचरंजगत् ॥ तदेववाच्यंप्रणवोहिवाचकोविभाव्यतेऽज्ञानवशान्नबोधतः ॥ ४८ ॥ अकारसंज्ञःपुरुषोहिविश्वको ह्युकारकस्तैजसईर्यतेक्रमात् ॥ प्राज्ञोमकारःपरिपठ्यतेऽखिलैःसमाधिपूर्वंनतुतत्त्वतोभवेत् ॥ ४९ ॥

शब्दमें समाया हुआ है ऐसा चिंतवन करे। जगत् यह प्रणव (ॐकार) का वाच्य (तिस्से) निकलनेवाला अर्थ और प्रणव यह जगका वाचक शब्द (नाम) है, यह कल्पना शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है; यह वृत्तिभी अज्ञान है, यह जबतक रहैगी जबतक ज्ञान नहीं हुआ, ज्ञानके होतेही नहीं रहैगी, कारण कि ज्ञानही सर्व वृत्तियोंका नाश करनेवाला है ॥ ४८ ॥ [विषमपद० परमात्मा श्रीरामचंद्रजी (समाधिसे प्रथम चराचर जगत्को ॐकार रूप जाने) ॐकार वाचक है ब्रह्मवाच्य है ऐसे कहते हैं अब उनके आशयको ले ॐकारमें सर्व जगत्की उत्पत्तिमें बुद्धिअनुसार कहते हैं कि (ओम्) अ १ उ २ म् ३ इन तीनोंको ॐकार कहते हैं; अर्थात् सत्व रज तम इनके ऐक्यताको ॐ कहते हैं, सत्वप्रधान विष्णु १ रजप्रधान ब्रह्मा २ तमप्रधान शिव ३ प्रगट भये, अथवा इनसे जैसे सृष्टिकी उत्पत्ति है वह कहते हैं कि सत्व रज तम इनकी साम्य अवस्थाको प्रकृति अर्थात्

माया कहते हैं; प्रकृतिसे महत् अर्थात् महत्तत्त्वसे अहंकार उत्पन्न हुआ; अहंकारसे पंचतन्मात्रा उत्पन्न हुईं अर्थात् शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ रस ४ गंध ५ इन पंचतन्मात्रासे दशइन्द्रियां अर्थात् नेत्र १ कर्ण २ नासिका ३ रसना ४ त्वचा ५ वाणी १ हाथ २ पद ३ गुदा ४ लिंग ५ यह दशइन्द्रियां हुईं ॥ पाँचतन्मात्रासे पंचभूत हुए जैसे शब्दतन्मात्रासे शब्दका गुण आकाश, शब्द तन्मात्राके साथ, स्पर्श तन्मात्रासे वायु, शब्द स्पर्शतन्मात्राके साथ रूप तन्मात्रासे तेज, शब्द स्पर्शरूपका गुण हुआ, पीछे शब्दस्पर्शरूपतन्मात्राके सहित रस तन्मात्रासे जल शब्दस्पर्शरूप रसका गुण हुआ, फिर शब्दस्पर्शरूपरसतन्मात्रासहित गंधतन्मात्रासे पृथ्वी, शब्दस्पर्शरूपरसगंधकागुण हुआ, यह पाँचभूत हुए और उभयात्मक मन और कार्यकारणका विलंबी आत्मा । यह सर्वसृष्टि सत्व रज तम अकार उकारमें अंतर्गत है इन तीनोंको कहते हैं ॥ इसलिये समाधिमें ॲँकारका जप और उसका ज्ञान उपकारक है, जैसे योगशास्त्रमें लिखा है कि "तस्य वाचकः प्रणवः" तिस परमात्माका वाचक अर्थात् कहनेवाला प्रणव है; इसहेतुसे ॲँकारके ज्ञानकी आवश्यकता है यथा; "तज्जपस्तदर्थभावनम् " समाधिमें तिस ॲँकारका जप और अर्थज्ञान की भावना चाहिये ॥ और इसी आशयको लेकर छान्दोग्यउपनिषद्में लिखा है कि "ॲँकारपूर्वं हि योगोपशासनं–यानि नित्यानि कर्माणि" इत्यादि श्रुति स्मृति विचारशास्त्र द्वारा ॲँकारका जप अर्थ और सृष्टिका कारण कह अब ॲँकारका परमोत्कृष्ट माहात्म्य श्रुति विहित लिखते हैं ॥ अथर्ववेदीयप्रश्नोपनिषत्पंचमप्रश्ने यथा– " अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ । स योह वैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत । कतमं वा वसते न लोकं जयतीति ॥ १ ॥ तस्मै स होवाच एतद्वै सत्यकाम परश्चापरश्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेन नैकतरमन्वेति ॥ २ ॥ स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ॥ ३ ॥ अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते । स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥ ४ ॥ यः पुनरेतत्रिमात्रेणैवोमित्यनेनैवाक्षरेण परपुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना–विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ५ ॥ तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योऽन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः । क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥ ६ ॥ ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सा

मभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । तमोंकारेणैव वायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परश्चेति ॥ ७ ॥ इति पंचमा पृश्न! ओ३म् प्लुत उच्चारण करना चाहिये ॥] ' ॐ ' इस शब्दका अर्थ 'सारा संसार, ऐसा कैसे हुआ सो श्रवण करो;–'अ+उ+म्'इन तीन अक्षरोंकी सन्धि होकर ' ॐ ' शब्द सिद्ध हुआ है । शरीरमें जाग्रदवस्थाका साक्षी (जागतेपनके व्यवहारोंका देखनेवाला (जो पुरुष– वेदान्तशास्त्रमें जिसको– ' विश्व ' कहते हैं-उसकी ही ' अ ' संज्ञा है । अनुक्रमसे दूसरा वर्ण ' उ ' है । यह नाम स्वप्नवृत्तिका साक्षी व वेदान्तशास्त्रमें जिसकी ' तैजस ' संज्ञा है; ऐसे कहा है कि यह संज्ञा हिरण्यगर्भकी है, तैसेही समस्त लोक सुषुप्तिके साक्षी पुरुषको–वेदान्त शास्त्रकी ' प्राज्ञ ' को– ' म ' कहते हैं यह सब प्रकार[1] समाधिके पहलेका है । तत्त्वज्ञान होनेपर फिर इसका विचारही नहीं है ॥ ४९ ॥ जगत्को आत्मरूपमें लय करे ऐसा (४७)वें श्लोकमें कहा है; अब वह

विश्वंत्वकारंपुरुषंविलापयेदुकारमध्येबहुधाव्यवस्थितम् ॥ ततोमकारेप्रविलाप्यतैजसंद्वितीयवर्णंप्रणवस्यचांतिमे ॥ ५० ॥ मकारम
प्यात्मनिचिद्घनेपरेविलापयेत्प्राज्ञमपीहकारणम् ॥ सोहंपरंब्रह्मसदाविमुक्तिमद्विज्ञानदृङ्मुक्तउपाधितोऽमलः ॥ ५१ ॥ एवंसदाजातप
रात्मभावनःस्वानंदतुष्टःपरिविस्मृताखिलः ॥ आस्तेसनित्यात्मसुखप्रकाशकःसाक्षाद्विमुक्तोऽचलवारिसिंधुवत् ॥ ५२ ॥

लय करनेका प्रकार कहताहूं; विस्तीर्ण स्थूलदेहका अभिमान रखनेवाला विश्वसंज्ञक पुरुष उसका वाचक ' अ ' यह दोनों उकारमें मिलगये ऐसी भावना करे; फिर स्वप्नका अभिमानी ' तैजस ' पुरुष और उसकी संज्ञा ओंकारका दूसरा वर्ण, उकार यह प्रणवके पिछले अक्षर ' म ' कारमें लीन होगया ऐसी कल्पना करे ॥ ५० ॥ फिर ' म ' कार और उसका वाच्य जो अपनेको कारणत्व माननेवाला पुरुष ' प्राज्ञ ' उसको इस चैतन्यमय परमात्मामें मिलावे, और पीछे सर्व जगत् जिसमें लय पाता है वह नित्य मुक्त परब्रह्म मैं हूं ऐसी भावना करे; ऐसी भावनाके होनेका साधन तत्त्वज्ञान है; इतनी योग्यताको पहुँचा हुआ पुरुष उपाधिसे छुटा अर्थात् रागद्वेषादि मलरहित हो जाता है; इस लिये उसकी ब्रह्मरूपी ऐक्यभावना होनेमें कभी कठिनता नहीं होती ॥ ५१ ॥ इस प्रकारसे नित्य जिसकी परमात्मरूपी एक भावना जमगई, वह पुरुष

---

[1] समाधि " समाधिश्चित्तवृत्तिनिरोधः । " चित्तकी जो वृत्ति राग द्वेष काम क्रोधादि इनसे अलग करके मनका एक भावनामें स्थित करना समाधि कहलाता है ।

पुत्र देहादि सबको भूल जाताहै (पुत्र देह इत्यादि विषयोंसे होनेंवाले आनंदका परिणाम दुःखरूपहै, इसकारण उनसे विरक्त होताहै) व अपने स्वरूपके आनंदसेही संतुष्ट रहताहै; साक्षात् नित्य (जिसको उपाधिके मूलसे उत्पन्न होनेवाले नाम व रूप नहीं है, ऐसा) आत्मा, तन्मय सुख व प्रकाशरूपीहै; उसको पाकर वह जीवन्मुक्त पुरुष जलसे भरेहुए निश्चल समुद्रके समान शान्त रहताहै ॥ ५२ ॥ इसप्रकारसे जो पुरुष नित्य समाधियोगका अभ्यास करताहै; इन्द्रियोंके सर्व विषय छोड़देताहै; व षड्गुण सम्पन्न (१) सर्वज्ञ होना (२) नित्यतृप्त रहना, (३) ज्ञान स्वरूप होना (४) स्वतंत्र होना (५) सबकालमें रहना (६) अनन्तरूप रहना यह छैः गुण हैं आत्माको वश कर लेताहै उसको मेरा दर्शनं नित्य मिलताहै ॥५३॥ इसप्रकारसे समस्त बंधनोंको छोड़कर मुनि;दिन रात नित्य आत्मचिंतन करता रहै। प्रारब्धकर्म तीन प्रकारके हैं;(१) संचित (२) क्रियमाण, और (३) तीसरा प्रारब्ध; संचित कहिये इकट्ठे करके एक ओर रक्खेहुए, क्रियमाण कहिये जो आज कल हम करतेहैं, प्रारब्ध कहिये जिनका फल आजकल हम भोगरहेहैं। तीनकर्मोंके तीन उदाहरण क्रमसे दिये जातेहैं। (१) किसी जिमीदारनें बहुतसा नाज भरकर कुठियाको बंद कर दिया, कि आगेको काम आवै। (२) खेंतमेंसे धान काटे जारहे हैं (३) कोई पुरानी कुठिया खोलकर उसमेंसे धान खाये जारहेहैं तिनके वशसे प्राप्तहुए भोगोंको भोगै परन्तु अभिमान न रक्खे तो अंतमें उसको प्रत्यक्ष मेरे स्वरूपकी गति मिलैगी ॥ ५४ ॥ संसार आदि मध्य व तैसेही अंतमें भय और शोकको प्राप्त कर देनेवाला है ऐसा जानकर मुमुक्षु पुरुष वेदान्तक 'यजेत् ' (यज्ञ करो) ऐसे विधिवचनों करके करनेको कहेहुए सर्व कर्म छोड़दे; और सर्व प्राणियोंका आत्मा जो परमेश्वर (मैं) हूं तिसकी (मेरी) भक्ति करै, यही सर्व धर्मोंमें श्रेष्ठ

एवंसदाऽभ्यस्तसमाधियोगिनोनिवृत्तसर्वेंद्रियगोचरस्यहि ॥ विनिर्जिताशेषरिपोरहंसदादृश्योभवेयंजितषड्गुणात्मनः ॥ ५३ ॥ ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशंमुनिस्तिष्ठेत्सदामुक्तसमस्तबंधनः ॥ प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितोमय्येवसाक्षात्प्रविलीयतेततः ॥ ५४ ॥ आदौचमध्येचतथैवचांततोभवंविदित्वाभयशोककारणम् ॥ हित्वासमस्तंविधिवादचोदितंभजेत्स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम् ॥ ५५ ॥ आत्मन्यभेदेनविभावयन्निदंभवत्यभेदेनमयाऽऽत्मनातदा ॥ यथाजलंवारिनिधौयथापयःक्षीरेवियद्व्योम्न्यनिलेयथाऽनिलः ॥ ५६ ॥

धर्म है ॥ ५५ ॥ मैं सर्वभूतोंका आधार हूं, पुरुष मेरे स्वरूपमें जीव अभेदसे है, (परमेश्वर व जीव एकही है) ऐसी भावना करता रहा कि मुझसे ऐक्यताको प्राप्त होजाताहै (एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः । एकः स भिद्यते शक्त्या मायया न स्वभावतः ॥ अनेन प्रकारेणात्मन्यभेदः ॥ " अर्थात् एकही परमात्मा सर्वभूतोंमें व्यापक है जलमें चंद्रमाकी नांई जैसे घड़ोंमें बहुतसे चंद्रमा प्रतीत होते हैं वास्तवसे एकही हैं; उदाहरण देखो; नदियोंका पानी समुद्रमें मिलतेही समुद्ररूप बनता है दूध दूधमें पड़तेही एकमएक होजाता है; घड़ेका आकाश (खोखलापन) घड़ेके टूटतेही बड़े आकाशमें मिलजाता है; लुहारकी धोंकनीका पवन बाहरकी पवनमें मिलजाता है (ऐसाही परमात्माका जीवात्मासे एकत्व होता है) ॥ ५६ ॥ इस प्रकारसे जीवन्मुक्तिदशामें प्रारब्धके योगसे लोकव्यवहारको करनेपरभी जगत् मिथ्या है, यह चिंतवन करताहुआ मुनि जब अपने एक स्वरूपको जान्ता है तब जगत्के सत्यपनका भ्रम मिटजाता है, कारण कि "अतोन्यदार्तं " इत्यादि श्रुतिओंसे " जगन्मिथ्या दृश्यत्वात् शुक्तिरजतादिवत्" ऐसे अनुमानसे सीपमें चांदी भासतीहै; तैसेही जगत् दृश्य होनेसे मिथ्या है, जैसे एक चंद्रमामें दो चंद्रमाका भ्रमकरना उस एक चंद्रमाके जानलेनेसे दूर होताहै, जैसे पूर्वादि दिशाका भ्रम उस दिशाके यथार्थ जानलेनेसे दूर होजाताहै; और फिरते हुए पुरुषको दिशाओंके घूमनेंका भ्रम तथा निकटके वृक्षोंके घूमनेंका भ्रम होताहै; वह भ्रम जिस प्रकार उनके स्थिरपनके ज्ञानसे दूर होताहै तैसेही आत्मस्वरूपकी एकता जाननेसे जगत्के सत्य होनेका भ्रम मिटजाताहै ॥ ५७ ॥ हेलक्ष्मण! ऐसे ज्ञान होनेका उपाय मेरी आराधना करनाही है जबतक पुरुषको जैसे सर्प भासनेका आधार डोरी है तैसेही इस सर्व जगका आधार मैं (परमेश्वर रामचंद्र) हूं, ऐसी दृष्टि प्राप्त नहीं हुई, तबतक उसको भगवानकी आराधना करनाही ज्ञानका उपायहै ऐसा विश्वास रखकर मेरी पूजा करनेमें तत्पर रहै; जिस्से मेरी अत्यन्त बढ़ीहुई भक्तिके चिह्न दिखाईदेतेहैं; उसके हृदयमें अपना स्वरूप

इत्थंयदीक्षेतहिलोकसंस्थितोजगन्मृषैवेतिविभावयन्मुनिः ॥ निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतोयथेंदुभेदोदिशिदिग्भ्रमादयः ॥५७॥ यावन्न
पश्येदखिलंमदात्मकंतावन्मदाराधनतत्परोभवेत् ॥ श्रद्धालुरत्यूर्जितभक्तिलक्षणोयस्तस्यदृश्योऽहमहर्निशंहृदि ॥ ५८ ॥

नित्य प्रगट रखताहूं ॥ ५८ ॥ हेलक्ष्मण! तुम हमको बहुत प्यारे हो; इसलिये मैंने सर्ववेदोंका सारअंश जो एकत्र करके ठहरायाथा, वह मैंने तुमसे कहा । यह तत्त्वविचार बहुत गुप्तहै; व तैसाही रखना चाहिये; सृष्टिमें जो बुद्धिमान् मनुष्य इसका उत्तम प्रकारसे विचार करताहै वह पापकी राशिसे तत्काल मुक्त हो जाताहै ॥ ५९ ॥ हे भइया ! जो यह जगत् दीखता है वह सब मायाही है, ऐसा समझकर मनको सबसे दूर रक्खे (उदासीन रहौ) और अपनेको मुझसे ऐक्य होनेकी भावना करो, तब तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध होगा; और फिर तुम्हें दुःख भोगने न पड़ेंगे केवल सुख प्राप्त होगा, इतनाही नहीं वरन् आगेको तुम आनंदमय बन जाओगे, यह मेरा पूर्ण आशीर्वाद है ॥ ६० ॥ सत्व, रज, और तम गुणसेरहित सच्चिदानंदरूप, मायासे, तैसेही सर्वज्ञाता आदि और अलौकिक लावण्य आदि गुणवाली जिसकी मूर्ति है ऐसे मुझको जो कोई पुरुष शुद्ध अंतःकरणसे सेवन करता है, वे निर्गुण और सगुण मेरे रूपकी उपासना करनेवाले दोनों सेवक मेरी स्वरूपके समान हैं अर्थात् वह रूप मैं हीहूं । वे भक्त अपने चरणोंकी रजसे त्रिलोकीको पावन करते हैं तथा जैसे सूर्य जगत्के अंधकारका नाश करके प्रकाश करता है; तैसेही मेरा

रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसंग्रहंमयाविनिश्चित्यतवोदितंप्रिय ॥ यस्त्वेतदालोचयतीहबुद्धिमान्समुच्यतेपातकराशिभिः क्षणात् ॥ ५९ ॥
भ्रातर्यदीदंपरिदृश्यतेजगन्मायैवसर्वंपरिहृत्यचेतसा ॥ मद्भावनाभावितशुद्धमानसःसुखीभवानंदमयोनिरामयः ॥ ६० ॥ यःसेवतेमाम
गुणंगुणात्परंहृदाकदावायदिवागुणात्मकम् ॥ सोऽहंस्वपादांचितरेणुभिःस्पृशन्पुनातिलोकत्रितयंयथारविः ॥ ६१ ॥

वि० आशय यह है कि–जिस पुरुषका चित्त पूर्व कर्मोंकरकै न शुद्ध होवै; और मेरा स्वरूप यथार्थतासे सर्व जगत् न देखे; फिर चित्तशुद्धिके लिये निष्काम कर्मोंसे मेरी जो गुणमूर्तिहै; उसका ध्यान पूजनकरे । प्रमाण श्रु० य० वे० अ० ४ मं० २ ॥ "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।" अर्थ कि सर्व जगत्में ब्रह्ममय भावना न होवै तौ १०० वर्षतक निष्काम कर्मकरे इस प्रकार तुमको मोक्ष होगी; और तरहसे नहीं; और निष्काम किये हुए दुष्कर्म तुमको नहीं प्राप्त होंगे । इसके द्वारा सगुण निर्गुण दोप्रकारकी उपासना कहदीं श्रीरामचंद्रजी फिर सगुण उपासनाको अंतमें प्रगट करैंगे इति ॥

प्रियभक्त लोगोंके अज्ञानरूप अंधकारका नाश करके सर्वको पवित्र करता है ॥ ६१ ॥ जगत्की उत्पत्ति इत्यादि जिसकी लीलाका ज्ञान उपनिषदोंके द्वारा श्रवण करके मिला है, सो मैंहीहूं । और मैंनेही सर्व वेदोंका तत्त्व यह अद्वितीय तत्त्वज्ञान निरूपण किया । जो मनुष्यपर गुरुपर भक्ति रखकर विश्वासपूर्वक इसका पाठ करे और उसकी भक्ति मेरे वचनोंपर होगी तो उसको मेरे स्वरूपकी गति मिलैगी "॥ ६२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसम्वादे उत्तरकांडे मिश्रसूखानंदसुनुपंडितबलदेवप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायांरामगीतायां पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

दोहा—वेद पुराण निगम अगम, श्रुति रहस्यको सार ॥ कह्यो राम निजमुखकमल, जगउद्धारन हार ॥ १ ॥
याहि पढ़हिं जो प्रेमते, लहैं अमित विश्राम ॥ छूटि जगत् जंजालसों, जाँय रामके धाम ॥ २ ॥
पढ़त रामगीता सुभग, बनत लोक परलोक ॥ चलो काम सब त्यागके, पीवहु आनँद ओक ॥ ३ ॥
पूष कृष्ण आनंद पक्ष, श्रेष्ठवार गुरुवार ॥ भाष्यकार भाषाकरी; निजमतिके अनुसार ॥ ४ ॥

विज्ञानमेतदखिलंश्रुतिसारमेकंवेदांतवेद्यचरणेनमयैवगीतम् ॥ यःश्रद्धयापरिपठेद्गुरुभक्तियुक्तोमद्रूपमेतियदिमद्वचनेषुभक्तिः ॥ ६२ ॥
॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेउत्तरकांडेश्रीरामगीतायांपंचमःसर्गः ॥५॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ एकदामुनयःसर्वेयमुनातीरवासिनः॥आजग्मूराघवंद्रष्टुंभयाल्लवणरक्षसः॥१॥कृत्वाग्रेतुमुनिश्रेष्ठंभार्गवंच्यवनंद्विजाः॥असंख्याताःसमायातारामादभयकांक्षिणः॥ २ ॥

द्विज बलदेव प्रसाद मैं, विनवित हों कर जोरि ॥ जो अशुद्धता होय कहुँ, दीजो मोहि न खोरि ॥ ५ ॥
ज्ञानकथा समझत सुनत; ज्ञानवान् चलजाहिं ॥ हौं भूलो भटक्यो जो कहुँ, तो मोहिलानो ताहिं ॥ ६ ॥
मुरमर्दन केशीदलन, लिये भक्तजन साथ ॥ साँवररूप अनूपसो, वसो हिये रघुनाथ ॥ ७ ॥
रामगीता महापुण्या यथेच्छफलदायिनी ॥ पठनीया सदा सद्भिर्ब्रह्मानंदस्वरूपिणी ॥ १ ॥

शत्रुघ्नजीका लवणासुरके वध करनेको जाना । श्रीमहादेवजी बोले हे पार्वति ! एक समय यमुनाके तीरपर रहनेवाले सर्व ऋषि लवण राक्षसके भयसे श्रीरामचंद्रजीसे भेंट करनेको अयोध्यामें आये ॥ १ ॥ असंख्य ब्राह्मण रामचंद्रजीसे अभय पानेकी इच्छासे, च्यवन भार्गव नामक श्रेष्ठ मुनिको आगे

करके, राजमंदिरके निकट जाय पहुँचे॥ २॥रघुकुलोत्तम रामचंद्रजीने परमभक्तिपूर्वक उनकी पूजा करके मुनिसमूहको आनंद देनेके लिये मधुर वचन कहे ॥ ३॥ "हे मुनिश्रेष्ठगण ! मैं आपका कौनसा कार्य करूं आप लोग किस अभिप्रायसे यहांपर आये? मेरे हाथसे आपका दुःख दूर हो जायगा, ऐसी बुद्धिसे प्रीतिपूर्वक जो आप लोग आये तिस्से मैं कृतार्थ होगया॥ ४ ॥आपका कार्य कैसाही कठिन हो तौभी मैं करूंगा, मैं आपका सेवक हूं,—क्योंकि ब्राह्मण मेरे आराध्य देवताहैं;मुझ सेवकके लिये आप आज्ञा कीजिये"॥ ५॥ यह सुन च्यवन मुनि हर्षित होकर शीघ्र बोले ।" हे प्रभो ! पहले सतयुगमें मधुनामका एक महादैत्य ॥६॥ होगया है । वह अत्यन्त धार्मिक देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेमें तत्पर रहा; महादेवजीने प्रसन्न होकर उसको

तान्पूजयित्वापरयाभक्त्यारघुकुलोत्तमः ॥ उवाचमधुरंवाक्यंहर्षयन्मुनिमण्डलम् ॥ ३ ॥ करवाणिमुनिश्रेष्ठाःकिमागमनकारणम् ॥
धन्योऽस्मियदियूयंमांप्रीत्याद्रष्टुमिहागताः ॥ ४॥ दुष्करंचापियत्कार्यंभवतांतत्करोम्यहम्॥ आज्ञापयंतुमांभृत्यंब्राह्मणादैवतंहिमे॥५॥
तच्छ्रुत्वासहसाहृष्टश्च्यवनोवाक्यमब्रवीत् ॥ मधुनाममहादैत्यःपुराकृतयुगेप्रभो ॥ ६ ॥ आसीदतीवधर्मात्मादेवब्राह्मणपूजकः ॥
तस्यतुष्टोमहादेवोददौशूलमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ प्राहचानेनयंहंसिसतुभस्मीभविष्यति ॥ रावणस्यानुजाभार्यातस्यकुंभीनसीश्रुता॥८॥
तस्यांतुलवणोनामराक्षसोभीमविक्रमः ॥ आसीद्दुरात्मादुर्धर्षोदेवब्राह्मणहिंसकः ॥ ९ ॥ पीडितास्तेनराजेंद्रवयंत्वांशरणंगताः ॥ तच्छ्रुत्वाराघवोऽप्याहमाभैर्वोमुनिपुंगवाः॥१०॥लवणंनाशयिष्यामिगच्छंतुविगतज्वराः॥इत्युक्त्वाप्राहरामोऽपिभ्रातॄन्कोवाहनिष्यति॥११॥

एक अत्युत्तम शूल दिया ॥७॥ और कहा कि इस शूलसे जिसको प्रहार करैगा, वह भस्म हो जायगा । यह बात प्रसिद्ध है कि रावणकी छोटी वहन कुम्भीनसी उसकी भार्या हुई ॥ ८ ॥ मधु दैत्यसे कुम्भीनसीके गर्भमें लवण नामका एक महापराक्रमी राक्षस पुत्र हुआ; यह अंतःकरणका परमनिर्दयी, किसीको भला न लगनेंवाला, और देवता व ब्राह्मणोंकी हत्याकरनेंवाला हुआ ॥ ९ ॥ हे राजेन्द्र! उस्से सताये जाकर हम आपकी शरणमें आयेहैं" यह सुनकर रामजी बोले,--'हेमुनिश्रेष्ठो! अब तुम भय नकरो ! ॥ १०॥ मैं लवणका नाश करताहूं । आप कुछभी संताप न करके लौटजाँय ।' ऋपियोंको इसप्रकारसे समझाय रामचंद्रजी भ्राताओंसे बोले, 'तुममेंसे लवण राक्षसको कौन संहार करैगा ? ॥ ११ ॥

और ब्राह्मणोंको पूर्ण अभय देनेंका कार्य कोन करेगा?,' यह सुन भरत हाथ जोड़कर श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १२ ॥ 'हेदेव! हेप्रभो! मैं उसका वध करूंगा मुझे आज्ञा दीजिये!' इसके उपरान्त शत्रुघ्नजी रामचंद्रजीको नमस्कार करकै बोले; ॥ १३ ॥ "लक्ष्मणजीने युद्धमें बड़ाभारी कार्य कियाहै। इधर महाबुद्धिमान् भरतजीनेभी नंदिग्राममें अतिशय दुःख अनुभव किया ॥ १४ ॥ अब जो कुछ कार्य रहगया सो मेराहै इसकारण मैं लवणका वध करनेके लिये जाताहूं। हे रघुवीरश्रेष्ठ! तुम्हारे प्रसादसे युद्धके मध्यमें उस राक्षसका वध करूंगा।" ॥ १५ ॥ शत्रुओंका नाश करनेवाले श्रीरामचंद्रजीने यह वचन सुन शत्रुघ्नजीको अंकमें लेकर कहा "हे शत्रुघ्न! मैं आजही तुम्हारा मथुराके राज्यपर अभिषेक करताहूं ॥ १६॥

लवणंराक्षसंदद्याद्ब्राह्मणेभ्योऽभयंमहत् ॥ तच्छुत्वाप्रांजलिःप्राहभरतोराघवायवै ॥ १२ ॥ अहमेवहनिष्यामिदेवाज्ञापयमांप्रभो ॥
ततोरामंनमस्कृत्यशत्रुघ्नोवाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥ लक्ष्मणेनमहत्कार्यंकृतंराघवसंयुगे ॥ नंदिग्रामेमहाबुद्धिर्भरतोदुःखमन्वभूत् ॥ १४ ॥
अहमेवगमिष्यामिलवणस्यवधायच ॥ त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठहन्यांतंराक्षसंयुधि ॥ १५ ॥ तच्छुत्वास्वांकमारोप्यशत्रुघ्नंशत्रुसूदनः॥प्राहाद्यै
वाभिषेक्ष्यामिमथुराराज्यकारणात् ॥ १६ ॥ आनाय्यचसुसंभाराँल्लक्ष्मणेनाभिषेचने ॥ अनिच्छंतमपिस्नेहादभिषेकमकारयत् ॥१७॥
दत्त्वातस्मैशरंदिव्यंरामःशत्रुघ्नमब्रवीत् ॥ अनेनजहिबाणेनलवणंलोककंटकम् ॥ १८ ॥ सतुसंपूज्यतच्छूलंगेहेगच्छतिकाननम् ॥
भक्षणार्थंतुजंतूनांनानाप्राणिवधायच ॥ १९ ॥ सतुनायातिसदनंयावद्वनचरोभवेत् ॥ तावदेवपुरद्वारितिष्ठत्वंधृतकार्मुकः ॥ २० ॥
योत्स्यतेसत्वयाक्रुद्धस्तदावध्योभविष्यति ॥ तंहत्वालवणंक्रूरंतद्वनंमधुसंज्ञितम् ॥ २१ ॥

शीघ्रही रामजीनें बड़े प्रेमसे लक्ष्मणजीके द्वारा अभिषेककी सब सामग्री मँगवाई।और शत्रुघ्नजीकी इच्छा न रहते हुएभी उनका अभिषेक करदिया ॥ १७॥ रामचंद्रजीने एक दिव्यबाण देकर शत्रुघ्नजीसे कहा।" हे वत्स! इस बाणसे तुम उस त्रिलोकीके शत्रु लवणका संहार करो ॥१८॥ वह राक्षस उस(महादेवजीके दिये) शूलको घरमें रखकर पूजा करता है, और वनमें जीव जन्तुओंका भक्षण करनेके लिये व अनेक प्राणियोंका घात करनेको जाता है ॥ १९ ॥ वह जबतक घर न आवै और वनमें फिरता हो,-- तिस वेलाको साधकर तुम नगरके द्वारपर धनुषको लिये हुए तैयार खड़े रहो ॥ २० ॥ वह क्रोध करके तुमसे युद्ध करेगा, इस समय उसके पास शूल न होगा। इस्से तुम उसका वध करोगे। इस प्रकारसे उस क्रूर राक्षसका

नाश करनेपर तुम उस मधुबनको उजाड़ो ॥ २१ ॥ उस स्थानमें एक नगरी वसायकर मेरी आज्ञासे वहाँपर रहो पाँच हजार घोड़े, तिस्से आधे (ढाई हजार) रथ ॥ २२ ॥ छै सो हाथी, तीस हजार पैदल, इतनी सैना तुम्हारे पीछे आवैगी, तुम आगे जायकर राक्षसोंका समाचार लो "॥ ॥ २३ ॥ रामचंद्रजीने शत्रुघ्नजीको ऐसी आज्ञा देकर उनका मस्तक सूंघा; और अनेक आशीर्वादोंसे उत्तेजन कर उनको मुनियोंके साथ भेजदिया ॥ २४ ॥ शत्रुघ्नजीनेभी श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाके अनुसार सर्व कार्य किया—मधुपुत्र (लवण)का वध करके मथुरानगरी बसाई ॥ २५ ॥ वहाँपर धनधान्यकी समृद्धि की, और लोगोंको अनेक प्रकारके दान व मान देकर वहाँपर बसाया । इधर वाल्मीकिजीके आश्रममें सीताजीने दो पुत्र प्रसव किये ॥ २६ ॥ मुनिजीने उनमें बड़े पुत्रका नाम कुश और छोटेका नाम लव रक्खा । धीरे २ सीताजीके पुत्र विद्यासम्पन्न होगये ॥ २७ ॥ प्रथम मुनिजीने उनका उपनयन संस्कार किया, फिर उनको वेद पढ़ाया, और छोटे पनसेही उनको समस्त रामायण सिखाई ॥ २८ ॥ उस रामायण आख्यानको पहले त्रिपुरासुरके नाश करनेवाले महादेवजीने पार्वतीजीको वेदोंका तात्पर्य जतनेके अर्थ कह सुनाया । वही काव्य महासामर्थ्य वाल्मीकि मुनिजीने इन दोनों बालकोंको पढ़ाया ॥ २९ ॥ वे लड़के अश्विनीकुमारके समान सुन्दरथे । उनका स्वर (वाणी या आवाज) कानोंको बहुत मधुर लगता, उनको ताल स्वरका उत्तम ज्ञानथा, वे वनमें रामायणकी

निवेश्यनगरंतत्रतिष्ठत्वंमेऽनुशासनात् ॥ अश्वानांपंचसाहस्रंरथानांचतदर्धकम् ॥ २२ ॥ गजानांषट्शतानीहपत्तीनामयुतत्रयम् ॥ आगमिष्यतिपश्चात्त्वमग्रेसाधयराक्षसम्॥२३॥ इत्युक्त्वामूर्ध्न्यवघ्रायप्रेषयामासराघवः ॥ शत्रुघ्नंमुनिभिःसार्धमाशीर्भिरभिनंद्यच ॥२४॥ शत्रुघ्नोऽपितथाचक्रेयथारामेणचोदितः ॥ हत्वामधुसुतंयुद्धेमथुरामकरोत्पुरीम् ॥ २६ ॥ स्फीतांजनपदांचक्रेमथुरांदानमानतः ॥ सीतापिसुषुवेपुत्रौद्वौवाल्मीकेरथाश्रमे ॥२६ ॥ मुनिस्तयोर्नामचक्रेकुशोज्येष्ठोनुजोलवः ॥ क्रमेणविद्यासंपन्नौसीतापुत्रौबभूवतुः ॥२७॥ उपनीतौचमुनिनावेदाध्ययनतत्परौ ॥ कृत्स्नंरामायणंप्राहकाव्यंबालकयोर्मुनिः ॥ २८ ॥ शंकरेणपुराप्रोक्तंपार्वत्यैपुरहारिणा ॥ वेदोपबृंहणार्थायतावग्राहयतप्रभुः ॥ २९ ॥ कुमारौस्वरसंपन्नौसुंदरावश्विनाविव ॥ तंत्रीतालसमायुक्तौगायंतौचेरतुर्वने ॥ ३० ॥

कथाको गाते हुए इधर उधर फिरते रहते ॥ ३० ॥ उनका रूप देवताओंके समान मनोहरथा; वे जगह २ मुनिजनोंके समाजोंमें रामकथा गाते एकतो लड़के मनोहर, तिसपर स्वर भला; और फिर काव्य अति रसाल इतने गुण एकत्र होनेपर कुशलवका गाना जिस२ ने सुना, व उनकी मूर्ति जिसने देखी, वे सब मुनि आश्चर्यसे चकित होकर यह बोले ॥ ३१ ॥ 'अहो ! हम आज इतने दिन संसारमें जीवितरहे, व सर्व दिशा देखी (अनेक देशोंमें बहुत दिनतक बासकिया) परन्तु गन्धर्व लोगोंमें, पृथ्वीके लोगोंमें, किन्नरोंमें, देवताओंमें, स्वर्गलोकके रहनेवालोंमें, पातालवासियोंमें, ब्रह्मलोकमें, अथवा समस्त त्रिलोकीमें ऐसे गाने और तालकी उत्तम कोशल हमने न कहीं देखी न सुनी'-- ॥ ३२ ॥ इसप्रकार

तत्रतत्रमुनीनांतौसमाजेसुररूपिणौ ॥ गायंतावभितोदृष्ट्वाविस्मितामुनयोऽब्रुवन् ॥३१॥ गंधर्वेष्विहाकिन्नरेषुभुविवादेवेषुदेवालयेपातालेष्वथवाचतुर्मुखगृहेलोकेषुसर्वेषुच ॥ अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतरंदृष्ट्वादिशःसर्वतोनाज्ञायीदृशगीतवाद्यगरिमानादर्शिनाश्राविच ॥ ॥ ३२ ॥ एवंस्तुवद्भिरखिलैर्मुनिभिःप्रतिवासरम् ॥ आसातेसुखमेकांतेवाल्मीकेराश्रमेचिरम् ॥ ३३ ॥ अथरामोऽश्वमेधादींश्चकारबहुदक्षिणान् ॥ यज्ञान्स्वर्णमयींसीतांविधायविपुलद्युतिः ॥ ३४ ॥ तस्मिन्वितानेऋषयःसर्वेराजर्षयस्तथा ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःसमाजग्मुर्दिदृक्षवः ॥ ३५ ॥ वाल्मीकिरपिसंगृह्यगायंतौतौकुशीलवौ॥ जगामऋषिवाटस्यसमीपंमुनिपुंगवः॥३६॥ तत्रैकांतेस्थितंशांतंसमाधिविरमेमुनिम् ॥ कुशःपप्रच्छवाल्मीकिंज्ञानशास्त्रंकथांतरे ॥ ३७ ॥

मुनिलोग उनकी प्रतिदिन स्तुतिकरते । वे दोनों बालक वाल्मीकिजीके आश्रममें, एकान्त स्थलमें ऋषियोंके साथ बहुत दिनोंतक सुखसे रहे ॥३३॥ इधर महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजीने,—यज्ञकर्ममें पत्नी अवश्य चाहिये—इसकारण सुवर्णकी जानकीजी बनवाय उनकी सहायतासे उन्होंने अनेक अश्वमेधादि यज्ञ किये,उनमें बहुतसी दक्षिणा दी ॥३४॥ तिस यज्ञमें, समारम्भ देखनेके लिये सर्व ऋषि, राजर्षि, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आयेथे ॥ ३५ ॥ श्रेष्ठ वाल्मीकिजी मुनिभी गानेकी कलामें प्रवीण हुए उन कुश लवको साथ लेकर वहाँ आये, और रामजीने जो मंडप ऋषियोंके रहनेको नियत कियाथा उसमें उतरे ॥ ३६ ॥ एक दिन जब वाल्मीकिजी समाधि उतार शान्त हुए एकान्तमें बैठेथे तब कुशने कथा कहते २

उनसे ज्ञानशास्त्रका प्रश्न किया;–कुश बोला; ॥ ३७ ॥ 'हे भगवन्! आपके मुखसे सब बातें थोड़ेही मैं सुनलूं, ऐसी मेरी इच्छा है, प्राणीको यह दृढ़ संसारबंधन कैसे उत्पन्न होता है? ॥ ३८ ॥ प्राणी इससंसार नामक दृढ़ बंधनसे कैसे छूटता है? यह मुझसे कहकर अनुग्रह कीजिये । हे मुनि! आप सर्वज्ञ हैं–अर्थात् यह सब बातें आप जानते हैं,– मैं आपका शिष्यहूं; इसकारण मुझसे कहनेमें कोई प्रतिबंधक नहीं' ॥ ३९ ॥ वाल्मीकिजी बोले,– 'हे वत्स! सुन। मैं तुझसे बंध और मोक्षका स्वरूप व संसारसे छुटनेके सब साधन कहताहूं । सुन लेनेपर फिर मेरे कहे अनुसार ॥ ४० ॥ आचरण कर, तब तेरा कल्याण होगा व तू जीवन्मुक्त हो जायगा। हे कुश! चैतन्यरूपी आत्माको वास्तवमें देहका सम्बन्ध नहीं है। देहही उसका (आत्माका) बड़ा ग्रह है (जैसे घरके स्वामीका व घरका रूप एक नहीं, तैसेही आत्माका और देहका रूप एक नहीं है)

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामिसंक्षेपाद्भवतोखिलम् ॥ देहिनःसंसृतिर्बंधःकथमुत्पद्यतेदृढः ॥ ३८ ॥ कथंविमुच्यतेदेहीदृढबंधाद्भवाभिधात् ॥ वक्तुमर्हसिसर्वज्ञमह्यंशिष्यायतेमुने ॥ ३९ ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ शृणुवक्ष्यामितेसर्वंसंक्षेपाद्बंधमोक्षयोः ॥ स्वरूपंसाधनंचापिमत्तः श्रुत्वायथोदितम् ॥ ४० ॥ तथैवाचरभद्रंतेजीवन्मुक्तोभविष्यसि ॥ देहएवमहागेहमदेहस्याचिदात्मनः ॥ ४१ ॥ तस्याहंकारएवास्मिन्मंत्रीतेनैवकल्पितः ॥ देहगेहाभिमानंस्वंसमारोप्याचिदात्मनि ॥ ४२ ॥ तेनतादात्म्यमापन्नःस्वचेष्टितमशेषतः ॥ विदधातिचिदानंदेतद्भासितवपुःस्वयम् ॥ ४३ ॥ तेनसंकल्पितोदेहीसंकल्पनिगडावृतः ॥ पुत्रदारगृहादीनिसंकल्पयतिचानिशम् ॥ ४४ ॥ संकल्पयन्स्वयंदेहीपरिशोचतिसर्वदा ॥ त्रयस्तस्याऽहमोदेहाअधमोत्तममध्यमाः ॥ ४५ ॥

॥ ४१ ॥ आत्माका इस देहमें उसकाही कल्पित किया हुआ एक प्रधान है। यह प्रधान अपना देहविषयका और घरका अभिमान चिदात्मापर आरोपित करता ॥ ४२ ॥ और उस्से एकताको पायकर अपने सारे चरित्र ज्ञानानंदरूपी आत्मापर दिखाता है । स्वयंही अहंकारका शरीर प्रकाशित होता है; इसमें कोई शंका करे कि जड़ अहंकार अपना क्या चरित्र कर सकता है? उसका यही समाधान है कि वह अहंकार आत्माके समीप रहनेसे ऐसा सामर्थ्यवाला हुआ है ॥ ४३ ॥ इसलिये उस अहंकार करके इसप्रकारका किया हुआ संकल्पवाला जीव संकल्परूप बेड़ीसे बँधा हुआ है। तिस्से पुत्र, स्त्री और गृहादिकी निरन्तर इच्छा करता है ॥ ४४ ॥ तथा ऐसी चिन्तासे निरन्तर जीव अपनेआप सकल्प और शोकादि

करता है। अहंकारके अधम,उत्तम और मध्यम तीन भेद हैं, ॥ ४५ ॥ इन तीन शरीरोंके क्रमानुसार तम, सत्व, और रज यह तीन नाम हैं, यही शरीर जगत्‌की स्थितिका कारण है। संकल्प करतेहुए वृत्तिमें तमोगुणकी प्रधानता आई कि, हाथोंसे व्यापार भी तामस (निंदनीय) होते हैं ॥ ४६ ॥ तिनके फलसे यह प्राणी पूर्ण तमोगुणी बनकर कृमिकीटयोनियोंमें जन्म लेता है। सत्त्वगुणमय संकल्पका फल यह है कि मनुष्यकी प्रवृत्ति धर्म व ज्ञान संपादनमें लग जाती है; ॥ ४७ ॥ फिर उस्से मोक्षरूप साम्राज्य दूर नहीं रहता, वरन् ऐसा प्रसिद्ध है कि वह सुखरूप होकर रहताहै, जिसके संकल्पमें रजोगुणका आधिक्य होताहै वह प्राणी लौकिक व्यवहारमें दक्ष रहताहै ॥ ४८ ॥ इसकारणसे स्त्रीइत्यादिकोंके साथ संसारमें विहार

तमःसत्त्वरजःसंज्ञाजगतःकारणंस्थितेः ॥ तमोरूपाद्धिसंकल्पान्नित्यंतामसचेष्टया ॥४६॥ अत्यंतंतामसोभूत्वाकृमिकीटत्वमाप्नुयात् ॥ सत्त्वरूपोहिसंकल्पोधर्मज्ञानपरायणः ॥४७॥ अदूरमोक्षसाम्राज्यःसुखरूपोहितिष्ठति ॥ रजोरूपोहिसंकल्पोलोकेसव्यवहारवान्॥४८॥ परितिष्ठतिसंसारेपुत्रदारानुरंजितः ॥ त्रिविधंतुपरित्यज्यरूपमेतन्महामते ॥ ४९ ॥ संकल्पःपरमाप्नोतिपदमात्मपरिक्षये ॥ दृष्टीःसर्वाः परित्यज्यनियम्यमनसामनः ॥ ५० ॥ सबाह्याभ्यंतरार्थस्यसंकलपस्यक्षयंकुरु ॥ यदिवर्षसहस्राणितपश्चरसिदारुणम् ॥ ५१ ॥ पातालस्थस्यभूस्थस्यस्वर्गस्थस्यापितेऽनघ ॥ नान्यःकश्चिदुपायोऽस्तिसंकल्पोपशमादृते ॥ ५२ ॥ अनाबाधेविकारेस्वेसुखेपरमपावने ॥ संकल्पोपशमेयत्नंपौरुषेणपरंकुरु ॥ ५३ ॥

करके रहना भला लगताहै। हे महाबुद्धिमान् ! (कुश !) जिसपुरुषका संकल्प यह तीनों रूप छोड़देताहै ॥ ४९ ॥ उसका वह संकल्पही अपना (संकल्पका) क्षय होनेपर परमपदकी प्राप्तिकराय देताहै; इसलिये तू सर्व इन्द्रियोंके विषयको छोड़दे, मनके द्वारा मनका निग्रहकर इन्द्रियोंको और मनको विषयोंपर न जानेदे ॥ ५० ॥ और बाह्यविषयोंके साथ आभ्यन्तर विषयोंके संकल्पको क्षयकरो। हे अनघ! जो तुम हजारवर्षतक तपकरते रहोगे ॥ ५१ ॥ पातालमें जाय रहोगे, पृथ्वीपर रहोगे, अथवा स्वर्ग लोकमें विराजमान रहोगे तौ भी ॥ तुम्हें दुःखरहित विकारशून्य व परमशुद्ध आत्मसुखकी प्राप्तिका उपाय संकल्पका क्षय करनेके सिवाय दूसरा नहीं मिलैगा इसकारण बड़े धैर्यसे तू संकल्पके क्षय

करनेका यत्न कर ॥ ५२॥५३ ॥ हे पुण्यपुरुष ! इस संकल्परूप तारके आधारपर सर्व विकार रहतेहैं, ऐसा कहाहै । इस संकल्परूपी तारके टूटते
ही संसारको प्राप्तकरानेवाले विकार न जाने कहां चले जातेहैं? ॥ ५४ ॥ इसकारणसे तू संकल्प छोड़दे, दैवइच्छासे जो व्यवहार आयपड़ें उनको
करताहुआ रह । संकल्पजातके क्षय होनेपर जीवको ब्रह्मरूपकी प्राप्ति होतीहै ॥ ५५ ॥ यह विकल्पका बड़ा जाल आपसे आप नहीं छूटैगा; तू
उसको बलात्कारसे तोड़ डाल, ब्रह्मरूपी हुए पुरुषके समान वृत्ति बनाकर निद्राकी वेला जैसी चित्तकीवृत्ति रहती है; तैसी निरन्तर रख और प्रसिद्ध
एक पदकी प्राप्तिकरले; तब तुझको सदा सुख मिलैगा, ॥५६॥ इति श्रीमद० उत्तरकांडे भाषाटीकायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ जानकीजीका सभामें शपथ

संकल्पतंतौनिखिलाभावाःप्रोताःकिलानघ॥ छिन्नेतंतौनजानीमःक्यांतिविभवाःपराः ॥ ५४ ॥ निःसंकल्पोयथाप्राप्तव्यवहारपरोभव ॥
क्षयेसंकल्पजालस्यजीवोब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥ अधिगतपरमार्थतामुपेत्यप्रसभमपास्यविकल्पजालमुच्चैः ॥ अधिगमयपदंतदद्वितीयंविततसुखायसुषुप्तचित्तवृत्तिः ॥ ५६ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेउत्तरकांडेषष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥ ॥ वाल्मीकि
नाबोधितोऽसौकुशःसद्योगतभ्रमः ॥ अंतर्युक्तोबहिःसर्वमनुकुर्वंश्चचारसः ॥ १ ॥ वाल्मीकिरपितौप्राहसीतापुत्रौमहाधियौ ॥ तत्रतत्रच
गायंतौपुरेवीथिषुसर्वतः ॥ २ ॥ रामस्याग्रेप्रगायेतांशुश्रूषुर्यदिराघवः ॥ नग्राह्यंवैयुवाभ्यांतद्यदिकिंचित्प्रदास्यति ॥ ३ ॥ इतितौचो
दितौतत्रगायमानौविचेरतुः ॥ यथोक्तमृषिणापूर्वंतत्रतत्राभ्यगायताम् ॥ ४ ॥ तांसशुश्रावकाकुत्स्थःपूर्वचर्यांततस्ततः ॥ अपूर्वपाठजा
तिंचगेयेनसमभिप्लुताम् ॥ ५ ॥

करकै पृथ्वीमें समाना । श्रीमहादेवजी बोलेकि हे पार्वति! इसप्रकारसे वाल्मीकिजीने जिसको बोध कियाहै उस कुशका तत्काल सर्वभ्रम मिटगया;
और अपने आप अंतःकरणके विषय ज्ञानवान होकर केवल आसक्तिके विना कर्मका अनुसरण करतारहा ॥ १ ॥ वाल्मीकिजीने सीताजीके पुत्र
कुशसे कहाकि ‘ तुम नगरमें मार्गोंपर चारोंओर गातेहुए फिरो ॥ २ ॥ जो किसी अवसरमें रामचंद्रजीको गाना श्रवणकरनेकी इच्छाहो--और वह
तुमको बुलावें; तब तुम उनके सन्मुख गाना--परन्तु वह कुछ द्रव्य दें तो न लेना’ ॥ ३ ॥ ऐसी प्रेरणा मिलने पर वह दोनों गातेहुए घूमनेंलगे;
ऋषिजीके पहले कहेके अनुसार वे जगह २ गाते हुए ॥ ४ ॥ अपना पूर्वचरित्र स्थान २ पर गातेहैं, कहनेकी पद्धति नवीन प्रकारकी सुन्दर होनेसे

गानेंका स्वरभी बहुत मनोहर है, ऐसा रामचंद्रजीके कानोंमें गया ॥ ५ ॥ फिर उन्होंने गानेवालाकों खोज कराया तौ जाना कि वे दोनों छोटे बालक आतेहैं; तब रामचंद्रजीको बड़ा कौतुक हुआ अनंतर यज्ञकर्मके मध्यमें (दुपहरीमें विश्रामके समय) राजा रामचंद्रजीने बड़े २ मुनियोंको बुलाया ॥ ६ ॥ उन श्रेष्ठपुरुषने राजा, पंडित, वैदिक, पौराणिक व्याकरण वृद्ध वृद्धादिजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,) ॥ ७ ॥ इन सबसे सभा भरकर, तहाँ तिन गानेवाले लड़कोंको बुलाया । राजा व ब्राह्मणादिक लोग सबकेही मनको आनंद हुआ ॥ ८ ॥ वे रामकी ओर और लड़कोंकी ओर आश्चर्ययुक्त होकर वारंवार एकटक देखते रहे; अनन्तर तहांपर जमीहुई सारी समाजमें परस्पर काना फूंसी होनेलगी ॥ ९ ॥

बालयोराघवःश्रुत्वाकौतूहलमुपेयिवान् ॥ अथकर्मांतरेराजासमाहूयमहामुनीन् ॥ ६ ॥ राज्ञश्चैवनरव्याघ्रःपंडितांश्चैवनैगमान् ॥ पौराणिकाञ्छब्दविदोयेचवृद्धाद्विजातयः ॥ ७ ॥ एतान्सर्वान्समाहूयगायकौसंप्रवेशयत् ॥ तेसर्वेहृष्टमनसोराजानोब्राह्मणादयः ॥ ८ ॥ रामंतौदारकौदृष्ट्वाविस्मिताह्यनिमेषणाः ॥ अवोचन्सर्वएवैतेपरस्परमथागताः ॥ ९ ॥ इमौरामस्यसदृशौबिंबाद्बिंबमिवोदितौ ॥ जटिलौयदिनस्यातांनचवल्कलधारिणौ ॥ १० ॥ विशेषंनाधिगच्छामोराघवस्यानयोस्तदा ॥ एवंसंवदतांतेषांविस्मितानांपरस्परम् ॥ ११ ॥ उपचक्रमतुर्गातुंतावुभौमुनिदारकौ ॥ ततःप्रवृत्तंमधुरंगांधर्वमतिमानुषम् ॥ १२ ॥ श्रुत्वातन्मधुरंगीतमपराह्णेरघूत्तमः ॥ उवाचभरतंचाभ्यांदीयतामयुतंवसु ॥ १३ ॥ दीयमानंसुवर्णंतुनतज्जगृहतुस्तदा ॥ किमनेनसुवर्णेनराजन्नौवन्यभोजनौ ॥ १४ ॥ इतिसंत्यज्यसंदत्तंजग्मतुर्मुनिसन्निधिम् ॥ एवंश्रुत्वातुचरितंरामःस्वस्यैवविस्मितः ॥ १५ ॥

क्यों भई ! यह बालक तौ साक्षात् रामजीके समान दिखलाई देते हैं मानो जैसे बिम्बके प्रतिबिम्ब पड़े हैं । इनके मस्तकपर जटा न होती, व अंगपर वल्कल न होते ॥ १० ॥ तौ रामजीमें और इनमें विशेष क्या अन्तर है, सो हम नहीं जान सकते इसप्रकार विस्मित होकर परस्पर लोग बातें करनेलगे । इतनेहीमें ॥ ११ ॥ उन दोनों मुनिकुमारोंने गाना आरंभ किया । मनुष्योंमें कभी दीखनेवाला नहीं ऐसा मधुर गाना होनेलगा ॥ १२ ॥ तीसरे पहरके समय गाना सुनलेनेपर रामचंद्रजीने भरतजीसे कहा कि इन बालकोंको दशहजार अशरफी देदो ॥ १३ ॥ द्रव्य देनेपर बालकोंने नहीं लिया और कहा; 'हेराजन् ! हम धन लेकर क्या करेंगे ? हम वनमें फल फूल खायकर रहनेवाले हैं ! ' ॥ १४ ॥ इतना कह व दियाहुआ द्रव्य

वहींपर छोड़कर कुश लव वाल्मीकिजीके निकट गये,वहांपर अपनाही सब चरित्र सुनकर रामचंद्रजी विस्मित हुए ॥ १५ ॥ रामचंद्रजीने उनको सीताका पुत्र जानकर, शत्रुघ्न, हनुमान, सुषेण, विभीषण, व अंगदको आज्ञा दी ॥ १६ ॥ 'सर्वज्ञ परमोदार श्रेष्ठतम देवतुल्य वाल्मीकिजी मुनिको सीताके साथ यहां ले आओ ॥ १७ ॥ जानकीजी इस सभामें सब जनोंको विश्वास करानेके लिये शपथ करेंगी कि जिससे सबही सीताको पापरहित जान लें' ॥ १८ ॥ यह वचन सुनकर सबको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। रामजीके सेवकोंने मुनि वाल्मीकिजीके पास जायकर जो कुछ रामजीने कहाथा सो कहा ॥ १९ ॥ रामचंद्रजीके मनका समस्त अभिप्राय जानकर मुनि वाल्मीकिजीने दूतोंसे कहा,–" कल्ह सीता सब लोगोंके सन्मुख सभामें शपथ करेगी ॥ २० ॥ इसमें कोई संदेह नहीं कि स्त्रियोंका देवता पतिही है।" यह सुनकर सर्व दूत शीघ्र लौटगये। व उन्होंने ऋषिका उत्तर रामजीसे कहा ॥ २१ ॥ रामचंद्रजीभी मुनिजीका संदेशा सुनकर लोगोंसे बोले;–समस्त राजा लोग और मुनिगणों! सुनो ॥ २२ ॥ 'कल्ह सीता शपथ करेंगी; आप सबजने उस शपथको सुनकर धर्म अधर्मका निर्णय करना'। रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर दूसरे दिन सब लोग शपथ देखनेकी इच्छासे ॥ २३ ॥ तहाँ आये,–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र महान् महान् ऋषि वानर ऐसे विविध जन कौतुकयुक्त होकर तहाँ आये ॥ २४ ॥ अनन्तर मुनियोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकिजीभी सीताजीके साथ तहाँ पधारे सीताजी मुनि वाल्मीकिजीको आगे किये (मुनिजीके पीछे २) व मुख किंचित्

ज्ञात्वासीताकुमारौतौशत्रुघ्नंचेदमब्रवीत् ॥ हनूमंतंसुषेणंचविभीषणमथांगदम् ॥ १६ ॥ भगवंतंमहात्मानंवाल्मीकिंमुनिसत्तमम् ॥ आनयध्वं
मुनिवरंससीतंदेवसंमितम् ॥ १७ ॥ अस्यास्तुपर्षदोमध्येप्रत्ययंजनकात्मजा ॥ करोतुशपथंसर्वेजानंतुगतकल्मषाम् ॥ १८ ॥ सीतां
तद्वचनंश्रुत्वागताःसर्वेऽतिविस्मिताः ॥ ऊचुर्यथोक्तंरामेणवाल्मीकिंरामपार्षदाः ॥ १९ ॥ रामस्यहृद्गतंसर्वंज्ञात्वावाल्मीकिरब्रवीत् ॥
श्वःकरिष्यतिवैसीताशपथंजनसंसदि ॥ २० ॥ योषितांपरमंदैवंपतिरेवनसंशयः ॥ तच्छ्रुत्वासहसागत्वासर्वेप्रोचुर्मुनेर्वचः ॥ २१ ॥
राघवस्यापिरामोऽपिश्रुत्वामुनिवचस्तथा ॥ राजानोमुनयःसर्वेशृणुध्वमितिचाब्रवीत् ॥ २२ ॥ सीतायाःशपथंलोकाविजानंतुशुभाशु
भम् ॥ इत्युक्ताराघवेणाथलोकाःसर्वेदिदृक्षवः ॥ २३ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राश्चैवमहर्षयः ॥ वानराश्चसमाजग्मुःकौतूहलसमन्विताः
॥ २४ ॥ ततोमुनिवरस्तूर्णंससीतःसमुपागमत् ॥ अग्रतस्तमृषिंकृत्वायांतीकिंचिदवाङ्मुखी ॥ २५ ॥

नीचे झुकाये(मर्यादा व शीलपनसे) आई ॥ २५ ॥ वे हाथ जोड़े हुए थीं उनका कंठ भरआयाथा; इस प्रकारसे उन्होंने यज्ञमंडपमें प्रवेश किया; जैसे लक्ष्मीजी ब्रह्माजीके पीछे२ चलती हैं, ऐसेही सीताजीको मुनिजीके पीछे २ जाताहुआ देख मनुष्योंकी भीड़मेंसे महान् साधुवाद (धन्य है ! धन्य है !) होनेलगा ॥ २६ ॥ तिस समय श्रेष्ठ मुनि वाल्मीकिजीने सीताजीके सहित जनसमाजमें प्रवेश करके रामचंद्रजीसे कहा ॥ २७ ॥ 'हे दशरथकुमार ! यह जानकीजी कभी पतिव्रतसे टलनेवाली नहीं, यह धर्मानुसार चलनेवाली ॥ २८ ॥ अर्थात् पापरहित हैं। हेराम ! तुमने लोकापवादसे डरकर भयंकर वनमें मेरे आश्रमके निकट बहुत दिन पहले इनको छोड़ दिया ॥ २९ ॥ सीताजी परीक्षा देंगी; इस विषयमें आप अनुमति दें, यह दोनों (कुश लव) सीताके एक साथ जन्मेहुए बालक हैं ॥ ३० ॥ तुम्हारे इन पुत्रोंको कोई शूर पराजित नहीं कर सकता। हे रघुकुलभूषण मैं प्रचेता प्रजापतिका दशवां पुत्रहूं ॥ ३१ ॥ जन्मसे लेकर कभी असत्य भाषण किया हो ऐसा मुझे याद नहीं—और वही सत्यवक्ता मैं तुमसे कहताहूं कि यह बालक तुम्हारे पुत्र हैं। मैंने बहुत हजार वर्षोंतक उत्तम तपस्या की है ॥ ३२ ॥ उस सबका प्रण लगाकर कहताहूं कि जो सीतासे दुराचरण हुआहो, तौ मेरी उस तपस्याका फल कुछभी न हो !' वाल्मीकिजीसे ऐसा सुनकर रामजीने उनको प्रतिवचन दिया ॥ ३३ ॥ 'हे मुने! आप महाज्ञानी व सदाचरणी हैं; आपके पवित्र वचनोंने मेरे मनमें विश्वास उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥ जानकीजीने लंकामें देवताओंके सामनेभी मुझको

कृतांजलिर्बाष्पकंठासीतायज्ञंविवेशतम् ॥ दृष्ट्वालक्ष्मीमिवायांतींब्रह्माणमनुयायिनीम् ॥ २६ ॥ वाल्मीकेःपृष्ठतःसीतांसाधुवादो महानभूत् ॥ तदामध्येजनौघस्यप्रविश्यमुनिपुंगवः ॥ २७ ॥ सीतासहायोवाल्मीकिरितिप्राहचराघवम् ॥ इयंदाशरथेसीतासुव्रताधर्मचारिणी ॥ २८ ॥ अपापातेपुरात्यक्तामामाश्रमसमीपतः ॥लोकापवादभीतेनत्वयाराममहावने ॥ २९ ॥ प्रत्ययंदास्यतेसीतातदनुज्ञातुमर्हसि ॥ इमौतुसीतातनयाविमौयमलजातकौ॥३०॥सुतौतुतवदुर्धर्षौतथ्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ प्रचेतसोऽहंदशमःपुत्रोरघुकुलोद्वह ॥ ३१ ॥ अनृतंनस्मराम्युक्तंयथेमौतवपुत्रकौ ॥ बहून्वर्षगणान्सम्यक्तपश्चर्यामयाकृता ॥ ३२॥ नोपाश्नीयांफलंतस्यादुष्टेयंयदिमैथिली ॥ वाल्मीकिनैवमुक्तस्तुराघवःप्रत्यभाषत ॥ ३३ ॥ एवमेतन्महाप्राज्ञयथावदसिसुव्रत ॥ प्रत्ययोजनितोमह्यंतववाक्यैरकिल्बिषैः ॥ ३४ ॥ लंकायामपिदत्तोमेवैदेह्याप्रत्ययोमहान् ॥ देवानांपुरतस्तेनमंदिरेसंप्रवेशिता ॥ ३५ ॥

महान् विश्वास दिलायाथा; इसकारण मैंने उनको गृहमें लिया ॥ ३५ ॥ हे द्विजवर! उन जानकीजीकोही जो कि अब यहां हैं, लोकापवादके भयसे कुछ वर्ष पहले मैंने इनका त्याग किया, इसके लिये आप मुझको क्षमा करैं ॥ ३६ ॥ मैं जानताहूं कि यह दोनों पुत्र कुश लव मुझसे जन्मे हैं। ऐसा सारी पृथ्वी जान जाय कि जानकी पवित्र हैं, तौ मेरी इनपर प्रीति होवै’ ॥ ३७ ॥ समस्त देवता रामचंद्रजीके उद्देश्यको जानगयेथे इस कारण वह हज़ारों देवता उत्सुकतासे ब्रह्माजीको आगे करकै वहाँ आये ॥३८॥ प्रजाजन आनंदित होकर तिस स्थानमें प्राप्त हुए, रेशमी वस्त्र धारण किये हुए जानकीजी उत्तरकी ओर मुख करकै खड़ी रहीं, और पृथ्वीकी ओर दृष्टि किये हुए हाथ जोड़कर बोलीं ॥ ३९ ॥ “जो मैंने सिवाय रामचंद्रजीके अन्य किसीका मनसेभी चिंतन नहीं किया है तौ मुझको पृथ्वी देवी अपने उदरमें स्थान दे।” ॥ ४० ॥ सीताजीके द्वारा प्रतिज्ञाका ऐसा शब्द उच्चारित होतेही पृथ्वीतलमेंसे पृथ्वीको भेदकर, एक महाविलक्षण अतिशय चमकदमकका अत्युत्तम सिंहासन प्रगट हुआ ॥ ४१ ॥ बड़े २ दिव्य शरीरवाले नाग उस सूर्यके समान तेज सिंहासनको अपने मस्तकपर धारण कर रहेथे, पृथ्वीदेवीने प्रेमपूर्वक जानकीजिको बाहोंसे पकड़ हृदयमें लगाय ॥ ४२ ॥ “बाले! आवो। बहुत अच्छा हुआ!” ऐसा कहा, और उनको उस सिंहासनपर बैठाया, जानकीजी सिंहासनपर बैठकर पृथ्वीके गर्भमें प्रवेश करने लगीं, तब ॥ ४३ ॥ आकाशमेंसे उनपर बराबर फूलोंकी वर्षा होने लगी, देवता

सेयंलोकभयाद्ब्रह्मन्नपापापिसतीपुरा ॥ सीतामयापरित्यक्ताभवांस्तत्क्षंतुमर्हति ॥ ३६ ॥ ममैवजातौजानामिपुत्रावेतौकुशीलवौ ॥
शुद्धायांजगतीमध्येसीतायांप्रीतिरस्तुमे ॥३७॥ देवाःसर्वेपरिज्ञायरामाभिप्रायमुत्सुकाः॥ ब्रह्माणमग्रतःकृत्वासमाजग्मुःसहस्रशः॥३८॥
प्रजाःसमागमन्हृष्टाःसीताकौशेयवासिनी ॥ उदङ्मुखीह्यधोदृष्टिः प्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ रामादन्यंयथाहंवैमनसापिनचिंतये ॥
तथामेधरणीदेवीविवरंदातुमर्हति ॥४०॥ तथाशपंत्याःसीतायाःप्रादुरासीन्महाद्भुतम् ॥ भूतलाद्दिव्यमत्यर्थंसिंहासनमनुत्तमम् ॥ ४१ ॥
नागेंद्रैर्ध्रियमाणंचदिव्यदेहैरविप्रभम् ॥ भूदेवीजानकींदोर्भ्यांगृहीत्वास्नेहसंयुता ॥ ४२ ॥ स्वागतंतामुवाचैनामासनेसंन्यवेशयत् ॥
सिंहासनस्थांवैदेहींप्रविशंतींरसातलम् ॥ ४३ ॥ निरंतरापुष्पवृष्टिर्दिव्यासीतामवाकिरत् ॥ साधुवादश्चसुमहान्देवानांपरमाद्भुतः॥४४॥

ओंके सुखसे ' धन्य है ! उत्तम !' ऐसा महान् विलक्षण शब्द निकला ॥ ४४ ॥ आकाशमें आयेहुए देवता अंतरमें वह भूमिपर आयेहुए स्थावर जंगम प्राणी बड़े २ शरीरवाले वानर इन सबने सीताजीके शपथ करनेको देखा, ॥ ४५ ॥ तब यह पृथक् २ ऐसा कहने लगे; कोई बोला,– " सीताजीसे ऐसा नहीं कराना उचितथा " कोई बोला "लंकामें तौ एकवार शपथ करीहीथी,अब इस शपथका कराना कैसे उचितथा, "-- इसप्रकारसे प्रत्येकके अलग २ विचार होने लगे । कोई ' अब सीता कहां जायगी? 'ऐसी चिन्ता करकै बैठे रहे । कोई पृथ्वीमें शिरनवाये सीताजीका ध्यान करने लगे ॥ ४६ ॥ कुछ जन रामचंद्रजीकी ओर देखते रहे; कितनेक सीताजीका विचार करने लगे' । अधिक क्या कहा जाय उस

ऊचुश्चबहुधावाचोह्यंतरिक्षगताःसुराः ॥ अंतरिक्षेचभूमौचसर्वेस्थावरजंगमाः ॥ ४५ ॥ वानराश्चमहाकायाःसीताशपथकारिणः ॥ केचि
च्चितापरास्तस्याःकेचिद्ध्यानपरायणाः ॥४६॥ केचिद्रामंनिरीक्षंतःकेचित्सीतामचेतसः ॥ मुहूर्तमात्रंतत्सर्वंतूष्णींभूतमचेतनम् ॥४७॥
सीताप्रवेशनंदृष्ट्वासर्वंसंमोहितंजगत् ॥ रामस्तुसर्वंज्ञात्वैवभविष्यत्कार्यगौरवम् ॥ ४८ ॥ अजानन्निवदुःखेनशुशोचजनकात्मजाम् ॥
ब्रह्मणाऋषिभिःसार्धंबोधितोरघुनंदनः ॥४९॥ प्रतिबुद्धइवस्वप्नाच्चकारानंतराःक्रियाः ॥ विससर्जऋषीन्सर्वानृत्विजोयेसमागताः ॥ ५०॥
तान्सर्वान्धनरत्नाद्यैस्तोषयामासभूरिशः ॥ उपादायकुमारौतावयोध्यामगमत्प्रभुः ॥ ५१ ॥ तदादिनिःस्पृहोरामःस्वर्गभोगेषुसर्वदा ॥
आत्मचिंतापरोनित्यमेकांतेसमुपस्थितः ॥ ५२ ॥

समय किसीका भी चित्त सावधान नहींथा; कुछ देरतक वह सर्व स्थल सम्पूर्णतः स्तब्ध व अचेतन रहा (कोई शब्द वहांपर नहीं होताथा) ॥ ४७ ॥ सीताजीको पृथ्वीके उदरमें प्रवेश कियाहुआ देखकर समस्त संसारको मोह होगया रामजी सब जानतेथे; परन्तु आगे महत्त्वके कर्तव्यपर लक्ष्य देकर वह ॥ ४८ ॥ अज्ञानी मनुष्यके समान दुःखी होकर जानकीके लिये शोक करने लगे । ऋषियोंके साथ ब्रह्माजीने रामचंद्रजीको समझाया ॥ ॥ ४९ ॥ तब उन्होंने स्वप्नसे जागेहुएके समान उठकर यज्ञके शेष रहे कर्मोंको समाप्तकिया व तहांपर आयेहुए सर्व ऋषि और ऋत्विजोंको विदादी ॥ ५० ॥ विदा देती समय उन सबको विपुल द्रव्य और विपुल रत्न देकर संतुष्ट किया,बालकोंको लेकर अयोध्यामें आये ॥ ५१ ॥ तबसे रामचंद्रजी नित्य सब

उपभोगोंसे चित्तको हटाय एकान्तमें बैठते, व आत्मचिंतवनमें सदा निमग्न रहते ॥ ५२ ॥ एक दिन श्रीरामचंद्रजी नित्य ध्यान करनेके अनुसार एकान्तमें बैठे हुए ध्यान कर रहेथे। कौशल्याजी जानतीथीं कि यह साक्षात् नारायण हैं । कौशल्याजी नित्य मधुर वचन बोलतीथीं ॥ ५३ ॥ उन्होंने निकट जाय प्रसन्न श्रीरामचंद्रजीको भक्तिपूर्वक वंदन करके संतुष्ट मनसे प्रश्न किया। " हे राम ! तुम सब जगके आदिकारण हो, तुम्हारा आदि, मध्य, व अंत नहीं है ॥ ५४ ॥ तुमने परमात्मा परमानंदरूपी, पूर्ण अन्तर्यामी, व सर्व शक्तिमान् होनेपरभी मेरे उदरमें जन्म लिया; यह मेरा परम पुण्य है ॥ ५५ ॥ हे रघुकुलवर! मुझे अपनी वृद्धावस्थामें और तुम्हारे अवतार प्राप्त होनेके समय तुमसे प्रश्न करनेका अवसर मिला ! अब तक मेरा अज्ञानसे उत्पन्न हुआ संसाररूपी बंधन निःशेष निवृत्त नहीं होता ! ॥ ५६ ॥ हे सर्वव्यापक मुझको वर्तमानअवस्थामेंही जिस्से संसारके बंधनका नाश करनेवाला ज्ञान हो जाय, ऐसा संक्षेपसे बोध करो ॥ ५७ ॥ जब माताने विषयोपभोगसे विरक्त होकर ऐसा प्रश्न किया तब मातृवत्सल दयालु व परमधार्मिक प्रभु रामचंद्रजी वृद्धपनसे जर्जर हुई अपनी साध्वी मातासे बोले ॥ ५८ ॥ माते! मैंने मोक्षप्राप्तिके साधनरूप तीन मार्ग पहले कह रक्खे हैं,-(१) कर्मयोग (२) ज्ञानयोग (३) अखंडभक्तियोग ॥५९॥ मैया ! भक्तिकेभी तीन पृथक् २ गुण होनेसे तीन प्रकार हुए हैं,- जिसका जैसा स्वभाव होता है, तैसीही उसकी भक्ति भिन्न होती है ॥६०॥ जो मनुष्य अमुक मेरा मित्र व अमुक मेरा शत्रु है, ऐसी भेद

एकांतेध्याननिरतेएकदारावर्वेसति ॥ ज्ञात्वानारायणंसाक्षात्कौसल्याप्रियवादिनी ॥५३॥ भक्त्यागत्यप्रसन्नंतंप्रणताप्राहहृष्टधीः ॥ राम
त्वंजगतामादिरादिमध्यांतवर्जितः ॥ ५४ ॥ परमात्मापरानंदःपूर्णःपुरुषईश्वरः ॥ जातोऽसिमेगर्भगृहेममपुण्यातिरेकतः ॥ ५५ ॥ अव
सानेममाप्यद्यसमयोऽभूद्रघूत्तम ॥ नाद्याप्यवोधजःकृत्स्नोभववंधोनिवर्तते ॥ ५६ ॥ इदानीमपिमेज्ञानंभवबंधनिवर्तकम् ॥ यथासंक्षेपतो
भूयात्तथावोधयमांविभो ॥ ५७ ॥ निर्वेदवादिनीमेवंमातरंमातृवत्सलः ॥ दयालुःप्राहधर्मात्माजराजर्जरितांशुभाम् ॥ ५८ ॥ श्रीराम
चन्द्रउवाच ॥ ॥ मार्गास्त्रयोमयाप्रोक्ताःपुरामोक्षाप्तिसाधकाः ॥ कर्मयोगोज्ञानयोगोभक्तियोगश्वशाश्वतः ॥ ५९ ॥ भक्तिर्विभिद्यते
मातस्त्रिविधागुणभेदतः ॥ स्वभावोयस्ययस्तेनतस्यभक्तिर्विभिद्यते ॥६०॥ यस्तुहिंसांसमुद्दिश्यदंभंमात्सर्यमेववा ॥ भेददृष्टिश्वसंरंभी
भक्तोमेतामसःस्मृतः ॥ ६१ ॥

दृष्टि करता है व मित्रत्व, अथवा शत्रुत्वका उत्तम ग्रह धरके, हिंसा कपट किंवा मत्सर साधनेके अभिप्रायसे मेरी भक्ति करता है, उसको तामस कहते हैं ॥ ६१ ॥ जो मनुष्यमें पूजा करनेवाला अलग व ईश्वर अलग है, ऐसी भेदबुद्धि रखकर स्वर्गादि फलकी प्राप्ति करनेकी इच्छासे, भोगप्राप्तिके लिये व द्रव्य या कीर्ति मिलनेके लिये मूर्ति इत्यादि स्थलमें मेरी पूजा करता है, वह राजस है ॥६२॥ जो पुरुष भेदबुद्धिसे रहित होकर, परन्तु पापनाश करनेके लिये कर्मका आचरण करके मुझे अर्पण करता है (ईश्वरकी प्रेरणासे मैंने कर्म किया सो ईश्वरको अर्पित होवो; ऐसा संकल्प करता है) अथवा शास्त्रके कहे अनुसार कि कर्म अवश्य करना चाहिये इस कारण,-- (निरिच्छापनसे) करता है वह भक्त सात्विक है । इस भक्तको फिर ज्ञान हो जाता है । कि निर्गुण भक्ति करनी चाहिये ॥ ६३ ॥ मैं अनंतगुणका आधार हूं जैसे गंगाका जल समुद्रमें प्रवेश करनेपर समुद्र रूप बन जाता है, दिखाई नहीं देता, तैसेही केवल मेरे गुणोंका आश्रय करके मेरे स्वरूपमें अखंड वृत्तिकल्पनाही निर्गुणभक्तियोगका लक्षण है मुझसे निष्काम व अखंड भक्ति उत्पन्न होकर उस भक्तको मेरी सलोकता (मैं जहां रहताहूं तिस लोकमें रहना) समीपता (मेरे निकट रहना) सरूपता, (मेरे समान चतुर्भुज पीताम्बरधारी रूप धारण करना) किंवा सायुज्य (मेरे रूपमें मिलजानां) इसभाँति चार प्रकारकी मुक्ति देती है; परन्तु भक्तजन मेरी सेवाके सिवाय दूसरी किसी वस्तुका अंगीकार नहीं करते ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ हे माते ! सालोक्यादि मुक्तिका त्याग देनाही अत्युत्तम भक्तियोग है तिसके द्वारा पुरुष तीनों गुणका उल्लंघन करके मेरे रूपको प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ अब कर्मयोग कैसे करना चाहिये, सो कहताहूं, किसी फलकी इच्छा न करके पूर्णपनसे धर्माचरण करे जिसमें हिंसा नहीं है, वह श्रेष्ठ यज्ञादि कर्म

फलाभिसंधिर्भोगार्थीधनकामोयशस्तथा ॥ अर्चादौभेदबुद्ध्यामांपूजयेत्सतुराजसः ॥ ६२ ॥ परस्मिन्नर्पितंयस्तुकर्मनिर्हरणायवा ॥
कर्तव्यमितिवाकुर्याद्भेदबुद्ध्याससात्त्विकः॥६३॥मद्गुणाश्रयणादेवमय्यनंतगुणालये ॥ अविच्छिन्नामनोवृत्तिर्यथागंगांबुनोंबुधौ ॥६४॥
तदेवभक्तियोगस्यलक्षणंनिर्गुणस्यहि ॥ अहैतुक्यव्यवहितायाभक्तिर्मयिजायते ॥ ६५ ॥ सामेसालोक्यसामीप्यसार्ष्टिसायुज्यमेववा ॥
ददात्यपिनगृह्णंतिभक्तामत्सेवनंविना॥६६॥सएवात्यंतिकोयोगोभक्तिमार्गस्यभामिनि ॥ मद्भावंप्राप्नुयात्तेनअतिक्रम्यगुणत्रयम् ॥६७॥
महताकामहीनेनस्वधर्माचरणेनच ॥ कर्मयोगेनशस्तेनवर्जितेनाविहिंसनम् ॥ ६८ ॥

करे, ऐसे कर्मोंके करनेसे मेरी प्राप्ति होती है ॥ ६८ ॥ अब भक्तियोग्य साध्य होनेका उपाय कहताहूं–मेरा दर्शन करे, स्तुति करे, महा पूजा बांधे; स्मरण व वंदन करे सर्व प्राणियोंमें मैं (परमेश्वर) विराजमानहूं; ऐसी भावना रक्खै, किसीपर आसक्त न होवे, असत्य छोड़े ॥ ६९ ॥ सज्जनोंको अधिक मान दे; दुःखित प्राणियोंपर कृपा करे; अपने समान योग्यताके मनुष्यसे मित्रता करे, यमनियमादि पालन करे ॥ ७० ॥ वेदांतके वचन सुन, मेरा नाम कीर्तनकरै साधुसमागम करै; सीधा होकर चलै, अहंकार छोड़ै, ॥ ७१ ॥ ईश्वरकी प्रीति जिसके द्वारा होवै, वह धर्माचरण भले जाने; इसरीतिसे व्यवहार करनेपर मनुष्यका अंतःकरण सर्वतः शुद्ध हो जाताहै जिसप्रकार गति वायु गंधके अनुरोधसे अपने आश्रयभूत पुष्पादि पदार्थोंसे निकलकर नासिकामें प्रवेश करता है; तैसेही वह पुरुष मेरे गुणको सुननेरूपी साधनसे शीघ्रही मेरे स्वरूपमें मिल जाता है चित्त योगाभ्यासमें रत होनेपर इसप्रकारसे आत्मरूपमें लग जाता है, ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ मैं सर्व प्राणिसमूहमें आत्मरूपसे रहता हूं हे माते! वह मेरास्वरूप न पहचानकर मूर्ख पुरुष केवल बाहिरकी क्रियाके द्वारा अनेक यत्न करके विविध गंध पुष्पादि सामग्रीके द्वारा मेरी पूजा करते हैं, परन्तु उस पूजासे मुझे संतोष नहीं होता प्राणियोंका अपमान करनेवाले मनुष्यनें प्रतिमामें मेरी कितनीही पूजाकरी हो, परन्तु वह न करने के समान है ॥ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ जबतक मनुष्यके मनपर 'मैं' (ईश्वर) सर्व प्राणियोंमें रहताहूं, ऐसा स्थिर नहीं होता, तबतक उसको मूर्ति इत्यादिकोंके

मद्दर्शनस्तुतिमहापूजाभिःस्मृतिवंदनैः ॥ भूतेषुमद्भावनयासंगेनासत्यवर्जनैः ॥६९॥ बहुमानेनमहतांदुःखिनामनुकंपया ॥ स्वसमानेषु मैत्र्याचयमादीनांनिषेवया ॥ ७० ॥ वेदांतवाक्यश्रवणान्ममनामानुकीर्तनात् ॥ सत्संगेनार्जवेणैवह्यहमःपरिवर्जनात् ॥ ७१ ॥ कांक्षयाममधर्मस्यपरिशुद्धांतरोजनः ॥ मद्गुणश्रवणादेवायातिमामंजसाजनः ॥ ७२ ॥ यथावायुवशाद्गंधःस्वाश्रयाद्घ्राणमाविशेत् ॥ योगाभ्यासरतंचित्तमेवमात्मानमाविशेत् ॥ ७३ ॥ सर्वेषुप्राणिजातेषुह्यहमात्माव्यवस्थितः ॥ तमज्ञात्वाविमूढात्माकुरुतेकेवलंबहिः ॥७४॥ क्रियोत्पन्नैर्नैकभेदैर्द्रव्यैर्मेनांवतोषणम् ॥ भूतावमानिनार्चायामर्चितोऽहंनपूजितः ॥ ७५ ॥ तावन्मामर्चयेद्देवंप्रतिमादौस्वकर्मभिः ॥ यावत्सर्वेषुभूतेषुस्थितंचात्मनिनस्मरेत् ॥ ७६ ॥

आधारपर अपने कर्मोंके द्वारा मेरी पूजा करनी चाहिये, सर्व भूतमें ईश्वर है; मनमें ऐसा निश्चय होतेही पूज्य पूजकभाव नहीं रहता, अर्थात् मूर्ति पूजा छूट जाती है ॥ ७६ ॥ जो स्वात्मा और परमात्माको भिन्न मानता है, उस भेददृष्टि रखनेवाले पुरुषको मृत्युका भय लगेगा इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ७७ ॥ हेमाते ! यह जो अलग २ भूत दिखाई देते हैं तिन सबमें एक मैंही वास करताहूं; इसकारण मनुष्यको भेदबुद्धि छोड़कर (सर्वत्र ज्ञानरूपी परमात्मा एक है, ऐसा समझकर) ज्ञान, मान मित्रतादि पहले कहेहुए साधनोंसे मेरी आराधना करनी चाहिये ॥ ७८ ॥ बुद्धिमान् पुरुषको मैं ज्ञानमय शुद्ध आत्मा जीवरूपसे सर्व प्राणियोंमें रहता हूं, ऐसा जानकर सर्व प्राणियोंको निरन्तर चित्तसे प्रणाम करै ॥ ७९ ॥

यस्तुभेदंप्रकुरुतेस्वात्मनश्चपरस्यच ॥ भिन्नदृष्टेर्भयंमृत्युस्तस्यकुर्यान्नसंशयः ॥ ७७ ॥ मामतःसर्वभूतेषुपरिच्छिन्नेषुसंस्थितम् ॥
एकंज्ञानेनमानेनमैत्र्याचार्चेदभिन्नधीः॥७८॥चेतसैवानिशंसर्वभूतानिप्रणमेत्सुधीः ॥ ज्ञात्वामांचेतनंशुद्धंजीवरूपेणसंस्थितम् ॥ ७९ ॥
तस्मात्कदाचिन्नेक्षेतभेदमीश्वरजीवयोः ॥ भक्तियोगोज्ञानयोगोमयामातरुदीरितः ॥ ८० ॥ आलंब्यैकतरंवापिपुरुषःशममृच्छति ॥
ततोमांभक्तियोगेनमातःसर्वहृदिस्थितम् ॥ ८१ ॥ पुत्ररूपेणवानित्यंस्मृत्वाशांतिमवाप्स्यसि ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंकौसल्यानं
दसंयुता ॥ ८२ ॥ रामंसदाहृदिध्यात्वाछित्त्वासंसारबंधनम् ॥ अतिक्रम्यगतीस्तिस्रोऽप्यवापपरमांगतिम् ॥ ८३ ॥

सारांश यह है कि ईश्वर और जीवात्माका भिन्न होना मनमें कभी न लावै । हे मैया ! मैंने तुमसे भक्तियोग और ज्ञानयोग कहा ॥ ८० ॥ इनमेंसे किसी एकका भी आश्रय लेनेसे मनुष्यको शान्ति प्राप्त होती है । इसकारण हे अम्ब ! तुम हमारा ‘मैं’ सर्वभूतोंके अंतरमें रहताहूं—इसकारण परमपूज्य ईश्वरहूं, ऐसी भक्तियोगके द्वारा ॥८१ ॥ “अथवा ‘मैं तुम्हारा पुत्रहूं’ ऐसे भावसे नित्य स्मरण करती रहो, जब तुम्हें शान्ति और सुख प्राप्त होगा ।” रामजीके वचन सुनकर कौशल्याजीको आनंद हुआ॥८२॥फिर वे अपने हृदयमें सदा श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करती रही, व अंतस

मय संसार बंधन तोड़ और—सात्विक राजस तामस तीनों गतियोंको उल्लंघनकर अत्युत्तम पदको प्राप्त करती हुई ॥ ८३ ॥ कैकेयीको रामचंद्रजीने पहलेही (जब चित्रकूट पर्वतपर मिलनेपर आई थी तब) योगका उपदेश कियाथा, उसकी रामजीके वचनोंपर पूर्ण विश्वासयुक्त भक्ति थी। वह शान्तपनसे हृदयमें रामचंद्रजीका चिंतवन करते रहनेके कारण मरण पानेके पीछे स्वर्गलोकमें जाय दशरथजीके साथ आनंदसे रही। तैसेही लक्ष्मणजीकी माता सुमित्राजीकी बुद्धि निर्मल हुईथी। वहभी परलोकमें पतिसे जाय मिली ॥ ८४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकांडे भाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥७॥ रामचंद्रजीके द्वारा लक्ष्मणजीका त्यागा जाना ॥ महादेवजी बोले—कि हे पार्वति ! रामजीके राज्य करनेके समय महापराक्रमी भरतजीको युधाजित मामाके द्वारा—अपने देशके निकट वसेहुए गंधर्वदेशके कुछ गंधर्वोंका वध करनेके लिये—बुलावा आया; इस कारण भरतजी सेनाके साथ तहां जानेको चले ॥१॥ उन रघुकुमारने रामचंद्रजीकी आज्ञा ली,तहां जाय तीन करोड़ गन्धर्वोंके नायकोंका वध किया व तहां दो नगर वसाये ॥ २ ॥ भरतजीके पुष्कर और तक्ष नामक दो पुत्र थे, उन्होंने नये वसायेहुए नगरोंके नाम अपने पुत्रोंके नामपर रक्खे;-- पुष्करावती नगरीमें पुष्करका और तक्षशिलानामक नगरीमें तक्षकका अभिषेक किया, और वहां उनको द्रव्य, धान्य, और मित्रमंडली प्राप्त करा दी ॥३ ॥ इसके उपरान्त फिर भरतजी लौट आयकर रामजीकी सेवामें तत्पर रहे; तब रामचंद्रजीने संतुष्ट होकर आदरपूर्वक लक्ष्मणजीसेकहा ॥ ४ ॥

कैकेयीचापियोगंरघुपतिगदितंपूर्वमेवाधिगम्यश्रद्धाभक्तिप्रशांताहृदिरघुतिलकंभावयंतीगतासुः ॥ गत्वास्वर्गेस्फुरंतीदशरथसहितामोदमानावतस्थेमाताश्रीलक्ष्मणस्याऽप्यतिविमलमतिःप्रापभर्तुःसमीपम् ॥ ८४ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेउत्तरकांडेश्रीरामचन्द्रमातॄणांस्वर्गप्रस्थानंनामसप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ अथकालेगतेकस्मिन्भरतोभीमविक्रमः ॥ युधाजितामातुलेनह्याहूतोऽगात्ससैनिकः ॥१॥ रामाज्ञयागतस्तत्रहत्वागंधर्वनायकान् ॥ तिस्रःकोटीःपुरेद्वेतुनिवेश्यरघुनंदनः ॥ २ ॥ पुष्करंपुष्करावत्यांतक्षंतक्षशिलाह्वये ॥ अभिषिच्यसुतौतत्रधनधान्यसुहृद्वृतौ ॥ ३ ॥ पुनरागत्यभरतोरामसेवापरोऽभवत् ॥ ततःप्रीतोरघुश्रेष्ठोलक्ष्मणंप्राहसादरम् ॥ ४ ॥

'हे लक्ष्मण ! तुम अपने दोनों पुत्रोंको लेकर पश्चिम दिशामें जाओ । वहांपर सबको त्रास देनेवाले दुष्ट भील बहुत होगये हैं, उनको पराजित करो ॥ ५ ॥ अंगद व चित्रकेतु (लक्ष्मणजीके पुत्र) दोनोंही महाबुद्धिमान् महापराक्रमी हैं; उनको दो नगर वसादो । तिनमें, हाथी, घोडे, द्रव्य व रत्नोंका संग्रह कराओ ॥६॥ और वहांपर पुत्रोंको राज्याभिषेक करके शीघ्रही हमारे पासको लौट आओ । ' लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा मानकर, हाथी, घोड़े, सैना, और वाहनोंके साथ ॥ ७ ॥ तहां गये । उन्होंने समस्त शत्रुओंका वध करके तहांपर दोनों पुत्रोंको स्थापित किया । अनन्तर वह फिर लौट आयकर श्रीरामचंद्रजीकी सेवामें तत्पर रहे ॥ ८ ॥ इस बातको बहुत दिन बीतगये--प्रभु रामचंद्रजी सदा

उभौकुमारौसौमित्रेगृहीत्वापश्चिमांदिशम्॥तत्रभिल्लान्विनिर्जित्यदुष्टान्सर्वापकारिणः॥५॥ अंगदश्चित्रकेतुश्चमहासत्त्वपराक्रमौ ॥ द्वयोर्द्वे
नगरेकृत्वागजाश्वधनरत्नकैः ॥६॥ अभिषिच्यसुतौतत्रशीघ्रमागच्छमांपुनः॥ रामस्याज्ञांपुरस्कृत्यगजाश्वबलवाहनः ॥७॥ गत्वाहत्वारि
पून्सर्वान्स्थापयित्वाकुमारकौ ॥ सौमित्रिःपुनरागत्यरामसेवापरोऽभवत् ॥ ८ ॥ ततस्तुकालेमहतिप्रयातेरामंसदाधर्मपथेस्थितंहरिम् ॥
द्रष्टुंसमागादृषिवेषधारीकालस्ततोलक्ष्मणमित्युवाच ॥ ९॥ निवेदयस्वातिवलस्यदूतंमांद्रष्टुकामंपुरुषोत्तमाय ॥ रामायविज्ञापनमस्ति
तस्यमहर्षिमुख्यस्यचिरायधीमन् ॥ १० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासौमित्रिस्त्वरयान्वितः ॥ आचचक्षेऽथरामायससंप्राप्तंतपोधनम् ॥११॥
एवंब्रुवंतंप्रोवाचलक्ष्मणंराघवोवचः ॥ शीघ्रंप्रवेश्यतांतातमुनिःसत्कारपूर्वकम् ॥ १२ ॥ लक्ष्मणस्तुतथेत्युक्त्वाप्रावेशयततापसम् ॥
स्वतेजसाज्वलंतंतंघृतसिक्तंयथानलम् ॥ १३ ॥

धर्ममार्गके अनुसार चलते रहें । फिर एक समय काल ऋषिका भेष करकै रामजीके भेटनेको आया, और लक्ष्मणजीसे बोला, ॥ ९ ॥ 'हे बुद्धिमान् ! (लक्ष्मण !) मैं अतिबल नामक ऋषिका दूत, पुरुषोत्तम (परमेश्वर) से भेंटनेकी इच्छा करताहूं । यह वार्ता अब जायकर रामजीसे कहो । उन श्रेष्ठ ऋषिकी रामजीके निकट बहुत दिनकी कुछ विज्ञापना है' ॥ १० ॥ ऐसे उस दूतके वचन सुनकर लक्ष्मणजीने रामचंद्रजीके पास जायकर तपोधनका समाचार कहा ॥ ११ ॥ तिसको सुनकर रामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा कि 'हेतात ! उन मुनिको सत्कार करकै जलदी यहांपर ले आओ ! ' ॥१२॥ 'जो आज्ञा' कहकर उन ऋषिको रामजीके पास पहुँचाया । उन ऋषिका स्वाभाविक तेज घृतकी आहुती देनेसे प्रज्वलित हुई

अग्निके समान दिखाई देताथा ॥ १३ ॥ अपने अतुल तेजसे प्रकाशमान उन मुनिने रामजीके निकट जायकर मधुर वाणीसे उनको 'तुम्हारा उत्कर्ष होवै (तुमको पृथ्वीके राज्यकी अपेक्षा अधिक योग्यताका राज्य मिलै)' ऐसा आशीर्वाद दिया ॥ १४ ॥ रामचंद्रजीने सावधान अंतःकरणसे उनकी यथाविधि पूजा की । मुनिने रामचंद्रजीसे कुशलप्रश्न किया, रामचंद्रजीनेभी उनसे कुशल पूंछी ॥ १५ ॥ फिर दिव्य सिंहासनपर बैठे हुए श्रीरामचंद्रजीने उन तपोनिधिसे विन्ती की; हे महाराज! आप जिसलिये यहाँ आयेहैं—वह अपने गुरुका संदेशा मुझसे कहिये ॥ १६ ॥ रामचंद्रजीने ऐसे वचन कहके प्रेरणाकी,— तब मुनि बोले;—'हेराम! पहलेतौ आप ऐसी व्यवस्था कीजिये कि यहां हम दोनोंही रहैं । वह सन्देश किसी (तीसरे) के जानने योग्य नहींहै ॥ १७ ॥ मेरी कही हुई यह बात दूसरा कोई न सुने और न किसीसे यह कहने योग्य है, हेप्रभो! हमारी बात करनेको कोई देखे या सुने तौ उसका वधकरैं ॥ १८ ॥ रामजीनें' बहुत अच्छा ' कह प्रतिज्ञा करके लक्ष्मणजीसे कहा;--'हेलक्ष्मण! द्वारपर खड़े रहो, इस एकान्तस्थानमें कोई मनुष्य नहीं आवै ॥ १९ ॥ जो आवैगा तौ फिर कोईभी हो; मैं उसका वध करूंगा, इसमें अंतर नहीं होगा, इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजी मुनिसे बोले,' हेमुने! आपको जिसने भेजाहै अथवा ॥ २० ॥ स्वयं आपके मनमें जो कुछ कहनेकी इच्छा हो वह सब मेरे सन्मुख निवेदन कीजिये । ' तब मुनि बोले,--'हेराम! मैं तुमसे सत्य कहताहूं सुनिये ॥ २१ ॥

सोभिगम्यरघुश्रेष्ठंदीप्यमानःस्वतेजसा ॥ मुनिर्मधुरवाक्येनवर्धस्वेत्याहराघवम् ॥ १४ ॥ तस्मैसमुनयेरामःपूजांकृत्वायथाविधि ॥पृष्ट्वानामयमव्यग्रोरामःपृष्टोऽथतेनसः ॥ १५ ॥ दिव्यासनेसमासीनोरामःप्रोवाचतापसम् ॥ यदर्थमागतोऽसित्वमिहतत्प्रापयस्वमे ॥ १६ ॥ वाक्यनचोदितस्तेनरामेणाहमुनिर्वचः ॥ द्वंद्वमेवप्रयोक्तव्यमनालक्ष्यंतुतद्वचः ॥ १७ ॥ नान्येनचैतच्छ्रोतव्यंनाख्यातव्यंचकस्यचित् ॥ शृणुयाद्वानिरीक्षेद्वायःसवध्यस्त्वयाप्रभो ॥ १८ ॥ तथेतिचप्रतिज्ञायरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ तिष्ठत्वंद्वारिसौमित्रेनायात्वत्रजनोरहः ॥ ॥ १९ ॥ यद्यागच्छतिकोवापिसवध्योमेनसंशयः ॥ ततःप्राहमुनिंरामोयेनवात्वंविसर्जितः ॥ २० ॥ यत्तेमनीषितंवाक्यंतद्वदस्वममाग्रतः ॥ ततःप्राहमुनिर्वाक्यंशृणुरामयथातथम् ॥ २१ ॥

हे प्रभो ईश्वर! मुझे ब्रह्माजीने आपके पास किसी कार्यके लिये भेजाहै। हे शत्रुनाशन देव! मैं तुम्हारा पुत्र हूं ॥ २२ ॥ हेवीर! आपने मायासे समागम किया। (तिसकी ओर देखा) तब मेरा जन्म हुआ, मेरा नाम काल है, मैं समस्त जगत्का संहार करताहूं; सर्व देव और ऋषि जिसकी पूजा करतेहैं; उन भगवान् ब्रह्माजीकी आपसे यह विज्ञापना है कि ॥ २३ ॥ हे महाज्ञानवंत! अब तुम्हारी स्वर्गलोकमें लौटजायकर रक्षा करनेकी वेला आई है, पूर्व कल्पके समाप्तकालमें आप सर्व लोकका संहारकरकै अकेलेही रहे ॥ २४ ॥ फिर आपने मायाका अंगीकार करकै प्रथम एक पुत्र उत्पन्न किया, वह पुत्र मैं हूं। तैसेही आपने एक प्रचंड शरीरका नाग उत्पन्नकिया; वह जलमें रहताहुआ उनका नाम अनंत (शेष) हुआ ॥ २५ ॥ आपने मायाके

ब्रह्मणाप्रेषितोऽस्मीशकार्यार्थेतेंऽतिकंप्रभो ॥ अहंहिपूर्वजोदेवतवपुत्रःपरंतप ॥ २२ ॥ मायासंगमजोवीरकालःसर्वहरःस्मृतः ॥ ब्रह्मात्वा माहभगवान्सर्वदेवर्षिपूजितः ॥ २३ ॥ रक्षितुंस्वर्गलोकस्यसमयस्तेमहामते ॥ पुरात्वमेकएवासीर्लोकान्संहृत्यमायया ॥ २४ ॥ भार्ययासहितस्त्वंमामादौपुत्रमजीजनः ॥ तथाभोगवतंनागमनंतमुदकेशयम् ॥ २५ ॥ माययाजनयित्वात्वंद्वौससत्त्वौमहाबलौ ॥ मधुकैटभकौदैत्यौहत्वामेदोऽस्थिसंचयम् ॥ २६ ॥ इमांपर्वतसंबद्धांमेदिनींपुरुषर्षभ ॥ पद्मेदिव्यार्कसंकाशेनाभ्यामुत्पाद्यमामपि ॥ २७ ॥ मांविधायप्रजाध्यक्षंमयिसर्वंन्यवेदयत् ॥ सोहंसंयुक्तसंभारस्त्वामवोचंजगत्पते ॥ २८ ॥ रक्षांविधत्स्वभूतेभ्योयेमेवीर्यापहारिणः ॥ ततस्त्वंकश्यपाज्जातोविष्णुर्वामनरूपधृक्॥ २९ ॥ हृतवानसिभूभारंवधाद्रक्षोगणस्यच ॥ सर्वासूत्सार्यमाणासुप्रजासुधरणीधर ॥३०॥

द्वारा महापराक्रमी व महाशक्तिमान् मधुकैटभ नामके दो दैत्य उत्पन्न करकै मारे और उनके मेद (चरबी) व हड्डियोंकी राशिकी ॥ २६ ॥ यह पर्वतयुक्त मेदिनी (पृथ्वी) बनाई। फिर आपने अपनी नाभिमें दिव्य सूर्यके समान कमल निर्माण करकै उस्से मेरी उत्पत्ति की ॥ २७ ॥ मुझको प्रजापालनका अधिकार दिया, और मुझपर सर्व भार रक्खा। हेजगत्पालक! आपने सृष्टि इत्यादि सर्वकार्य मुझे सौंपदिये–इसकारणसे मैंने आपसे प्रार्थना करी कि ॥ २८ ॥ हे प्रभो! जो कोई मेरे वीर्यका अपहार करतेहैं (मेरी प्रजाको दुःख देतेहैं) उनसे प्राणियोंकी रक्षा करो। इस कारण हे विष्णुरूप! फिर आपने कश्यपजीसे वामनरूपी अवतार लियाहै ॥ २९ ॥ हेपृथ्वीपालक! सर्वप्रजाका संहार होनेकी वेला आईथी,

परन्तु आपने राक्षसोंका वध करकै पृथ्वीका भार उतारा ॥ ३० ॥ तिसके पीछे जब सर्व प्रजाको रावणने पीड़ित किया, तब उसका वधकरने केलिये आप मनुष्यलोकके विषे प्राप्त हुए, फिर पहले देवताओंके सामने जो मृत्युलोकमें रहनेके विषे आपने प्रतिज्ञा की थी; उस प्रतिज्ञाका समय पूर्ण होनेको आगया है; क्योंकि यहाँ आये आपको ग्यारह हज़ार वर्ष होगये; ॥ ३१ ॥ वह आपका इष्ट कार्यभी पूराहोगया । हेरामचंद्र ! मृत्युलोकमें आपके रहनेकी मर्यादा पूरी होगई ॥ ३२ ॥ मैं काल ऋषिका वेष धारण करकै आपके पास आया हूं, अब जो ऐसी तुम्हारी इच्छा होकि "अब फिर पृथ्वीका राज्य भोगकरैं" ॥ ३३ ॥ तौ तैसाही कीजिये (राज्यकरो) ऐसा ब्रह्माजीने कहाहै । हेराम ! सर्व इन्द्रियवृत्ति आपके स्वाधीन हैं, जो आपने देवलोक जानेका निश्चय किया है तौ ॥ ३४ ॥ देवताओंको विष्णुजीका आधार मिलैगा उनका संताप दूर होगा ।' कालका कहाहुआ ब्रह्माजीका वह संदेश सुनकर ॥ ३५ ॥ तिस समय रामजी हँसते २ उस सर्व संहारकारी पुरुष (काल) से बोले,--मैंने तुम्हारे वचन सुने; इस समय मेराभी यही इष्टहै ॥ ३६ ॥ तुम्हारे आनेसे मुझको बहुत संतोष हुआ, मेरा अवतार त्रिलोकीके कार्यको होताहै ॥ ३७ ॥ तुम्हारा कल्याण हो; मैं जिस स्थानसे यहां आयाहूं तहांको लौट जाऊंगा; मेरा मनोरथ सिद्ध होगया; इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ३८ ॥ हेपुत्र ! ब्रह्माजीने जैसे कहाहै तिसके अनुसार मैं अपने सेवक जो देवताहैं, तिनके सर्वकार्यरक्षा करनेके लिये मायाके द्वारा सदा तैयार रहूंगा, यही योग्यहै ।' ॥ ३९ ॥

रावणस्यवधाकांक्षीमर्त्यलोकमुपागतः ॥ दशवर्षसहस्राणिदशवर्षशतानिच ॥ ३१ ॥ कृत्वावासस्यसमयंत्रिदशेष्वात्मनःपुरा ॥ सते
मनोरथःपूर्णःपूर्णेचायुषितेनृषु ॥ ३२ ॥ कालस्तापसरूपेणत्वत्समीपमुपागमम् ॥ ततोभूयश्चतेबुद्धिर्यदिराज्यमुपासितुम् ॥ ३३ ॥
तत्तथाभवभद्रंतेएवमाहपितामहः ॥ यदितेगमनेबुद्धिर्देवलोकंजितेंद्रिय ॥ ३४ ॥ सनाथाविष्णुनादेवाभवंतुविगतज्वराः ॥ चतुर्मुखस्य
तद्वाक्यंश्रुत्वाकालेनभाषितम् ॥ ३५ ॥ हसन्रामस्तदावाक्यंकृत्स्नस्यांतकमब्रवीत् ॥ श्रुतंतववचोमेऽद्यममापीष्टतरंतुतत् ॥ ३६ ॥
संतोषःपरमोज्ञेयस्त्वदागमनकारणात् ॥ त्रयाणामपिलोकानांकार्यार्थंममसंभवः ॥ ३७ ॥ भद्रंतेऽस्त्वागमिष्यामियतएवाहमागतः ॥
मनोरथस्तुसंप्राप्तोनमेत्राऽस्तिविचारणा ॥ ३८ ॥ मत्सेवकानांदेवानांसर्वकार्येषुवैमया ॥ स्थातव्यंमाययापुत्रयथाचाहप्रजापतिः ॥ ३९ ॥

इनका ऐसा संवादहा रहाथा कि, इतनेमें दुर्वासा मुनि किसी आवश्यकीय कार्यको शीघ्र रामचंद्रजीका दर्शन पानेकी इच्छासे राजद्वारपर प्राप्तहुए ॥ ४० ॥ दुर्वासा मुनि लक्ष्मणजीके निकट जायकर बोले, शीघ्र हमको रामचंद्रजीकी भेंट करादो । हमारा अतिशय आवश्यकीय कार्य है । ' ॥ ४१ ॥ यह सुनकर लक्ष्मणजी उन अग्निके समान तेजस्वी ऋषिसे बोले;–'महाराज! इससमय रामचंद्रजीसे आपका कौनसा कार्य है? आप अपनी इच्छा मुझसे कहिये,–उसको मैं पूर्ण करताहूं ॥ ४२ ॥ राजा रामचंद्रजी इस समय एक दूसरा कार्य कर रहेहैं;--जो उनसेही भेंट करना हो, तौ कृपाकरकै एक घड़ीभर थँभ जाइये, ' यह वचन सुनतेही मुनि क्रोधसे लाल होकर लक्ष्मणजीसे बोले,–॥ ४३ ॥ 'हे लक्ष्मण! इसी

एवंतयोःकथयतोर्दुर्वासामुनिरत्यगात ॥ राजद्वारंराघवस्यदर्शनापेक्षयाद्रुतम् ॥ ४० ॥ मुनिर्लक्ष्मणमासाद्यदुर्वासावाक्यमब्रवीत् ॥ शीघ्रंदर्शयरामंमेकार्यंमेऽस्त्यंतमाहितम्॥४१॥ तच्छ्रुत्वाप्राहसौमित्रिर्मुनिंज्वलनतेजसम् ॥ रामेणकार्यंकिंतेऽद्यकिंतेऽभीष्टंकरोम्यहम्॥४२॥ राजाकार्यांतरेव्यग्रोमुहूर्तंसंप्रतीक्ष्यताम् ॥ तच्छ्रुत्वाक्रोधसंतप्तोमुनिःसौमित्रिमब्रवीत् ॥४३॥ अस्मिन्क्षणेतुसौमित्रेनदर्शयसिचेद्विभुम् ॥ रामंसविषयंवंशंभस्मीकुर्यांनसंशयः ॥४४॥ श्रुत्वातद्वचनंघोरमृषेर्दुर्वाससोभृशम् ॥ स्वरूपंतस्यवाक्यस्यचिंतयित्वासलक्ष्मणः ॥४५॥ सर्वनाशाद्वरंमेऽद्यनाशोह्येकस्यकारणात् ॥ निश्चित्यैवंततोगत्वारामायप्राहलक्ष्मणः ॥४६ ॥ सौमित्रेर्वचनंश्रुत्वारामःकालंव्यसर्जयत् ॥ शीघ्रंनिर्गम्यरामोऽपिददर्शात्रेःसुतंमुनिम् ॥४७॥ रामोऽभिवाद्यसंप्रीतोमुनिंपप्रच्छसादरम् ॥ किंकार्यंतेकरोमीतिमुनिमाहरघूत्तमः॥४८॥

क्षण जो तुम हमें रामचंद्रजीकी भेंट न कराओगे तौ मैं दशरथके वंशको इष्टमित्रोंसहित भस्म कर डालूंगा! इसमें अन्यथा नहीं होगा! ' ॥ ४४ ॥ लक्ष्मणजीने दुर्वासा ऋषिके वे अत्यन्त भयंकर वचन सुने,व उन वाक्योंके स्वरूपका विचार किया,--तौ उनको जान पड़ाकि,–॥ ४५ ॥ इस (दुर्वासा रूप) कारणसे सारे कुलके लय होनेकी अपेक्षा आज केवल मेरा नाश हो जाना अच्छाहे । ऐसा निश्चय करकै लक्ष्मणजी एकांतमें काल मुनिके साथ बैठे हुए रामजीके पास गये और उनसे दुर्वासाके आनेका समाचार कहा ॥ ४६ ॥ लक्ष्मणजीके वचन सुनतेही रामचंद्रजीने काल को विदा दी,वह शीघ्र बाहर आय अत्रिपुत्र (दुर्वासा) से भेट की,रामजीने संतुष्ट हो मुनिका वंदनकर आदरपूर्वक पूंछा " हे महाराज ! मैं आपका

कौनसा कार्य करूं!"इस प्रकार रामजीने कहा॥४७॥४८॥रामजीके यह वचन सुनकर दुर्वासा मुनि बोले,–' हे राम ! आज मुझे अनेक सहस्र वर्षों से किये हुए उपवासकी समाप्ति करनी है ॥ ४९ ॥ इस कारण हे रघुवीर जो पाक तुम्हारे यहां तैयार हो उसको भोजन करनेकी मैं इच्छा करता हूं ' रामजीने मुनिके वचन सुन संतुष्ट हो ॥ ५० ॥ मुनिको इच्छानुसार तैयार अन्न अर्पण किया, मुनिजीभी अमृततुल्य अन्न भोजनकर संतुष्ट होतेहुए लौट गये ॥ ५१ ॥ जब वह अपने स्थानको गये, तब रामचंद्रजीको कालका कहना याद आया व अत्यन्त बुरा लगा, उनका मन उद्विग्न हुआ, वह अत्यन्त विह्वल हुए ॥ ५२ ॥ उन्होंने मुख नीचेको झुका लिया, अंतःकरण इतना दीन होगया कि, उनके मुखसे बाततक नहीं निकली। रामचंद्रजीने मनमें जान लिया कि लक्ष्मण मृतकतुल्य हो रहे हैं ॥ ५३ ॥ तब वह सर्वेश्वर नीचेको मुखकर सावधान हो बैठे; फिर रामजी दुःखसे व्याप्त हुए हैं, कुछ बोलते नहीं, चिन्तामें पड़े हुए, प्रीति पाशकी निन्दा करते हैं; ऐसा देखकर लक्ष्मणजी उनसे बोले;– ' हे रघुकुमार ! मेरे अर्थ संताप करना छोड मेरा वध कीजिये॥५४॥५५॥हे प्रभो ! कालकी गति ऐसीही है; यह पहलेही विचार रक्खी है; जो आपने प्रतिज्ञा भंग की तौ मुझको निःसन्देह नरकमें पड़ना पड़ैगा ॥५६॥ जो आप मुझपर प्रीति करतेहैं; आपके मनमें मुझपर अनुग्रह करना-ठीक बोध होता है, तौ शंका छोड़कर मेरा वध कीजिये । हे समर्थ ! आप सब बातें जानते हैं; धर्मका त्याग न कीजिये' ॥ ५७ ॥ लक्ष्मणजीके यह वचन सुनकर

तच्छुत्वारामवचनंदुर्वासाराममब्रवीत् ॥ अद्यवर्षसहस्राणामुपवाससमापनम् ॥ ४९ ॥ अतोभोजनमिच्छामिसिद्धंयत्तेरघूत्तम ॥ रामोमुनिवचःश्रुत्वासंतोषेणसमन्वितः ॥५०॥ ससिद्धमन्नंमुनयेयथावत्समुपाहरत् ॥मुनिर्भुक्त्वान्नममृतंसंतुष्टःपुनरभ्यगात् ॥५१॥ स्वमाश्रमंगतेतस्मिन्रामःसस्मारभाषितम् ॥ कालेनशोकदुःखार्तोविमनाश्चातिविह्वलः ॥५२॥ अवाङ्मुखोदीनमनानशशाकाभिभाषितुम् ॥ मनसालक्ष्मणंज्ञात्वाहतप्रायंरघूद्वहः ॥५३॥ अवाङ्मुखोबभूवाथतूष्णीमेवाखिलेश्वरः ॥ ततोरामंविलोक्याहसौमित्रिर्दुःखसंप्लुतम् ॥ ५४ ॥ तूष्णींभूतंचिंतयंतंगर्हंतंस्नेहबंधनम् ॥ मत्कृतेत्यजसंतापंजाहिमांरघुनंदन ॥ ५५ ॥ गतिःकालस्यकलितापूर्वमेवेदृशीप्रभो ॥ त्वयिहीनप्रतिज्ञेतुनरकोमेध्रुवंभवेत् ॥ ५६ ॥मयिप्रीतिर्यदिभवेद्यद्यनुग्राह्यतातव ॥ त्यक्त्वाशंकांजहिप्राज्ञमामाधर्मंत्यजप्रभो ॥ ५७ ॥ सौमित्रिणोक्तंतच्छुत्वारामश्चलितमानसः ॥ आहूयमंत्रिणःसर्वान्वसिष्ठंचेदमब्रवीत् ॥ ५८ ॥

रामजीका मन फिरा– उन्होंने अपने सर्व मंत्रि और वसिष्ठ मुनिको बुलायकर अपना सर्व वृत्तान्त कहा ॥ ५८ ॥ प्रभु रामचंद्रजीने मुनिका आना, उनका भाषण करना, व अपनी प्रतिज्ञा यह सर्व वृत्तान्त मंडलीको सुनाया ॥ ५९ ॥ रामजीके वचन सुनकर उपाध्यायके सहित सब मंत्रिजन हाथ जोड़कर उनसे बोले;– ॥ ६० ॥ ‘हे ईश्वर ! आपने पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये अवतार लिया है, यह बात पहलेहीसे निवेदन की हुई है कि आपका लक्ष्मणजीसे वियोग हो, आप भी ज्ञानदृष्टिके द्वारा इसको जानते हैं ॥ ६१ ॥ हे राम ! शीघ्र लक्ष्मणको त्याग करो, परन्तु प्रभो ! प्रतिज्ञाभंग न करो, प्रतिज्ञात कर्मका त्याग करनेसे धर्म निष्फल होता है ॥ ६२ ॥ हे राम ! सर्व धर्म नाश होनेपर निःसन्देह त्रिलोकी प्रलयको

मुनेरागमनंयत्तुकालस्यापिहिभाषितम् ॥ प्रतिज्ञामात्मनश्चैवसर्वमावेदयत्प्रभुः ॥५९॥ श्रुत्वारामस्यवचनंमंत्रिणःसपुरोहिताः ॥ ऊचुः प्रांजलयःसर्वेराममक्लिष्टकारिणम् ॥ ६० ॥ पूर्वमेवहिनिर्दिष्टंतवभूभारहारिणः ॥ लक्ष्मणेनवियोगस्तेज्ञातोविज्ञानचक्षुषा ॥ ६१॥ त्यजाशुलक्ष्मणंराममाप्रतिज्ञांत्यजप्रभो ॥ प्रतिज्ञातेपरित्यक्तेधर्मोभवतिनिष्फलः ॥ ६२ ॥ धर्मेनष्टेऽखिलेरामत्रैलोक्यंनश्यतिध्रुवम् ॥ त्वंतुसर्वस्यलोकस्यपालकोऽसिरघूत्तम ॥६३॥ त्यक्त्वालक्ष्मणमेवैकंत्रैलोक्यंत्रातुमर्हसि ॥ रामोधर्मार्थसहितंवाक्यंतेषामनिंदितम् ॥६४॥ सभामध्येसमाश्रुत्यप्राहसौमित्रिमंजसा ॥ यथेष्टंगच्छसौमित्रेमाभूद्धर्मस्यसंशयः ॥ ६५ ॥ परित्यागोवधोवापिसतामेवोभयंसमम् ॥ एवमुक्तेरघुश्रेष्ठेदुःखव्याकुलितेक्षणः ॥ ६६ ॥ रामंप्रणम्यसौमित्रिःशीघ्रंगृहमगात्स्वकम् ॥ ततोऽगात्सरयूतीरमाचम्यसकृतांजलिः ॥ ६७ ॥ नवद्वाराणिसंयम्यमूर्ध्निप्राणमधारयत् ॥ यदक्षरंपरंब्रह्मवासुदेवाख्यमव्ययम् ॥ ६८ ॥

प्राप्त होजाती है। हे रघुवीर ! आप सब लोकोंके रक्षा करनेवाले हैं ॥ ६३ ॥ इसकारण अकेले लक्ष्मणका त्याग करके त्रिलोकीकी रक्षा करो, यह हमको उचित दीखता है !’ रामचंद्रजीने उनके धर्म अर्थसे भरे हुए पवित्र और आनंदित वाक्य ॥ ६४ ॥ सभामें सुनकर शीघ्रही लक्ष्मणजीसे कहा;– ‘हे लक्ष्मण ! तुम जहां इच्छा हो; तहां चले जाओ । धर्मका लोप नहीं होना चाहिये’ ॥ ६५ ॥ सत्पुरुषोंका त्याग करना या वध करना यह दोनोंबाते बराबरही हैं; रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणजीके नेत्र दुःखके आंसुओंसे व्याकुल होगये (भर आये) ॥ ६६ ॥ वह रामजीको प्रणाम करके शीघ्रही अपने मंदिरमें जायकर वहांसे सरयूपर गये । तहां उन्होंने हाथ जोड़े ॥ ६७ ॥ नवोंद्वार (इन्द्रियोंके छेद–दो ना

सिकाके स्वर, दो नेत्र, दो कान, मुख, लिंग और गुदा) बंद किये । प्राण मस्तकपर चढ़ा लिये, व नाशरहित सर्वाश्रय और विकाररहित वासुदेव संज्ञक परब्रह्मपदका मनमें चिंतवन किया ॥ ६८ ॥ जब लक्ष्मणजीने प्राणवायुको रोकलिया तब अग्निके सहित सर्व देवता महर्षियोंने फूलों की वर्षा करके उन्हें ढकदिया और स्तुति की ॥ ६९ ॥ इसके उपरान्त इन्द्र लक्ष्मणजीको शरीरके सहित स्वर्गमें लेगया; कुछ देरतक तो लक्ष्मणजीका शरीर किसी देवताको नहीं दिखाई दिया ॥ ७० ॥ फिर उन विष्णुजीकी चतुर्व्यूह मूर्तिमें एक चौथा भाग है ऐसा बड़े २ देवता और सर्व ऋषियोंने देखा तब उन्होंने लक्ष्मणजीकी पूजा की ॥ ७१ ॥ विष्णुजीके अंश लक्ष्मण स्वर्गमें गये, तब सिद्ध लोकमें रहे हुए योगिलोग ब्रह्मा

पदंतत्परंधामचेतसासोऽभ्यचिंतयत् ॥ वायुरोधेनसंयुक्तंसर्वेदेवाःसहर्षयः ॥ ६९॥ साग्नयोलक्ष्मणंपुष्पैस्तुष्टुवुश्चसमाकिरन् ॥ अदृश्यंविबुधैःकैश्चित्सशरीरंसवासवः ॥ ७० ॥गृहीत्वालक्ष्मणंशक्रःस्वर्गलोकमथागमत् ॥ ततोविष्णोश्चतुर्भागंतंदेवंसुरसत्तमाः ॥ सर्वेदेवर्षयोदृष्ट्वालक्ष्मणंसमपूजयन् ॥ ७१ ॥ लक्ष्मणेहिदिवमागतेहरौसिद्धलोकगतयोगिनस्तदा ॥ ब्रह्मणासहसमागमन्मुदाद्रष्टुमाहितमहाहिरूपकम् ॥ ७२ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरा०उमामहेश्वरसंवादेउत्तरकांडेअष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ लक्ष्मणंतुपरित्यज्यरामोदुःखसमन्वितः ॥ मंत्रिणोनैगमांश्चैववसिष्ठंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ अभिषेक्ष्यामिभरतमधिराज्येमहामतिम् ॥ अद्यचाहंगमिष्यामिलक्ष्मणस्यपदानुगः ॥ २ ॥ एवमुक्तेरघुश्रेष्ठेपौरजानपदास्तदा ॥ द्रुमाइवच्छिन्नमूलादुःखार्ताःपतिताभुवि ॥ ३ ॥ मूर्च्छितोभरतोवापिश्रुत्वारामाभिभाषितम् ॥ गर्हयामासराज्यंसप्राहेदंरामसन्निधौ ॥ ४ ॥

जीको साथ लेकर हर्षसे पास आये हुए महा शेषरूप लक्ष्मणजीका दर्शन करनेके लिये आये ॥ ७२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकांडे भाषाटीकायामष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजीका अपने धाममें जाना । महादेवजी बोले कि--हे पार्वति ! लक्ष्मणजीके त्याग करनेपर रामजीको परमदुःख हुआ;– उन्होंने अपने मंत्री, नगरके व्यापारी, वसिष्ठ मुनि, ऐसे सबको बुलायकर कहा;–॥ १ ॥ ‘ हे श्रेष्ठमति ! यह भरत महाबुद्धिमान् हैं; अब उनका राज्याभिषेक करके स्वयं लक्ष्मणके पीछे जानेकी मेरी इच्छा है;– ’ ॥२॥ रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर नगरवासी और देशवासी सब जन दुःखसे विह्वल हो जड़ टूटकर गिरेहुए वृक्षके समान पृथ्वीपर लोटने लगे ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीके उच्चारणकियेहुए

शब्द भरतजीके कानमें पड़े;तब उनको मूर्च्छा आगई,वह राज्यकी निन्दा करतेहुए रामजीसे बोले;–॥४॥‘हेप्रभो रघुवीर ! मैं आपको सत्य स्मरण कर व आपके चरणोंकी सौगंध करके कहताहूं कि आपके विना मुझे पृथ्वीके राज्यकी तौ बातही क्या है; स्वर्गके राज्यकीभी इच्छा नहीं है ॥ ५ ॥ हे राजा रामचंद्र ! इन कुश लवका अभिषेक कीजिये । कुश महाप्रतापी है उसको दक्षिण कोशल देशका राज्य दो; और लवको उत्तर कोशल देशका राज्य दे दीजिये ॥ ६ ॥ शत्रुघ्नको बुलानेके लिये शीघ्र दूत भेजिये; उनको यह वार्ता ज्ञातहोजानी चाहिये कि हम स्वर्गमें रहनेको जाते हैं’ ॥७॥ भरतजीके इन वचनोंको सुनकर सब लोगोंको अत्यन्त भय लगा वे लोग इनके मुखकी ओर देखतेहुए पृथ्वीपर देहको गिरा देते हुए । रामजीका भावी वियोग जानकर उनके अंतरमें बहुत खलबली मचगई ॥ ८ ॥ भगवान् वसिष्ठजीको वह दृश्य (दिखाव) देखकर करुणा आई वे रामजीसे बोले;–‘हे राजन् ! देखो प्रजा आपको कितना चाहती है; सब जने पृथ्वीपर पड़ेहुए हैं ! ॥ ९ ॥ हे राम ! इनके अभिप्रायके अनुसार आप अनुग्रह करें यह मुझको उचित दीखता है ।’गुरु वसिष्ठजीके वचन सुनकर रामचंद्रजीने सर्व प्रजाओंको उठाया; और प्रेमभरे शब्द कहकर उनको शान्त किया ॥ १० ॥ रामचंद्रजीके मनमेंभी प्रजाका प्रेम भराहुआथा । वह उनसे बोले;–‘मैं तुम्हारी कौनसी इच्छा पूरी करूं सो कहो ।’ तब प्रजाजन हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक रामजीसे बोले;– ॥ ११ ॥ ‘हे राम ! आपके मनमें जहां जानेकी इच्छा है तहां

सत्येनचशपेनाहंत्वांविनादिविवाभुवि ॥ कांक्षेराज्यंरघुश्रेष्ठशपेत्वत्पादयोःप्रभो ॥ ५ ॥ इमौकुशलवौराजन्नभिषिंचस्वराघव ॥ कोशलेषुकुशंवीरमुत्तरेषुलवंतथा ॥ ६ ॥ गच्छंतुदूतास्त्वरितंशत्रुघ्नानयनायहि ॥ अस्माकमेतद्गमनंस्ववर्वासायश्रृणोतुसः ॥ ७ ॥ भरतेनोदितंश्रुत्वापतितास्ताःसमीक्ष्यतम् ॥ प्रजाश्चभयसंविग्नारामविश्लेषकातराः ॥ ८ ॥ वसिष्ठोभगवान्राममुवाचसदयंवचः ॥ पश्यताताद्रात्सर्वाःपतिताभूतलेप्रजाः ॥ ९ ॥ तासांभावानुगंरामप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ श्रुत्वावसिष्ठवचनंताःसमुत्थाप्यपूज्यच ॥ १० ॥ सस्नेहोरघुनाथस्ताःकिंकरोमीतिचाब्रवीत् ॥ ततःप्रांजलयःप्रोचुःप्रजाभक्त्यारघूद्वहम् ॥ ११ ॥ गंतुमिच्छसियत्रत्वमनुगच्छामहेवयम् ॥ अस्माकमेपापरमाप्रीतिर्धर्मोऽयमक्षयः ॥ १२ ॥

हमकोभी साथही ले चलो; इसमें हमारा परमसंतोष है; व यही अक्षय धर्म है ॥ १२ ॥ 'हे राम! तुम्हारे साथ जानेका हमारे मनमें दृढ़ निश्चय है। हम पुत्र, स्त्री, सबको साथ लेकर अभी तुम्हारे साथही साथ चलेंगे; इसमें अंतर नहीं होगा ॥ १३ ॥ हे रघुकुमार! फिर आप तपोवनमें जाइये या स्वर्गको चलिये; ' रामजीने उनके अंतःकरणका पूर्ण निश्चय और कालके वचन इन दोनों बातोंको मनमें विचार ॥ १४ ॥ उन अपने नागरिक भक्त जनोंसे 'बहुत अच्छा' ठीक है, इसप्रकार कहा। प्रभुरामजीने शीघ्र उस दिनकोही निश्चय कर ॥ १५ ॥ कुश लवको अपने २ भागके राज्यपर भेज दिया, आठ हजार रथ, एक सहस्र हाथी ॥ १६ ॥ और साठ हजार घोड़े, इतनी २ सेना एक २ को दी। प्रत्येक पुत्रको बहुतसे रत्न, बहुतसा द्रव्य और आनंदी व पराक्रमी सेवक जन दिये ॥ १७ ॥ तब वे कुश लव रामचंद्रजीका वंदन करके अपने २ प्रदेशपर गये; रामचंद्रजीका वियोग होनेसे बड़े कष्टपूर्वक गये, इधर रामजीने शत्रुघ्नको बुलानेके लिये दूतोंको पठाया। उन दूतोंने शीघ्र जायकर शत्रुघ्नजीसे कहा कि ॥ १८ ॥ अयोध्यामें काल मुनि आयेथे फिर दुर्वासा ऋषिकी चेष्टा, लक्ष्मणजीका चला जाना, रामचंद्रजीने प्रजाके साथ स्वर्गमें जानेकी प्रतिज्ञा की है ॥ १९ ॥ पुत्रोंको अभिषेकभी कर दिया,--इस प्रकारसे रामचंद्रजीका अभिप्राय दूतने शत्रुघ्नजीको सुनाया। अपने कुलके नाश होनेका वृत्तान्त दूतोंके मुखसे सुनकर शत्रुघ्नको ॥ २० ॥ बहुत बुरा लगा; परन्तु उन महाप्रतापी पुरुषने धीरज धारण करके पुत्रोंको निकट बुलाया; और

तवानुगमनेरामहृद्गतानोदृढामतिः ॥ पुत्रदारादिभिःसार्धमनुयामोऽद्यसर्वथा ॥ १३ ॥ तपोवनंवास्वर्गंवापुरंवारघुनन्दन ॥ ज्ञात्वातेषां मनोदार्ढ्यंकालस्यवचनंयथा ॥ १४ ॥ भक्तंपौरजनंचैववाढमित्याहराघवः ॥ कृत्वैवनिश्चयंरामस्तस्मिन्नेवाहनिप्रभुः ॥ १५ ॥ प्रस्थापयामासचतौरामभद्रःकुशीलवौ ॥ अष्टौरथसहस्राणिसहस्रंचैवदंतिनाम् ॥ १६ ॥ षष्टिंचाश्वसहस्राणामेकैकस्मैददौवलम् ॥ वहुरत्नौ वहुधनौहृष्टपुष्टजनावृतौ ॥ १७ ॥ अभिवाद्यगतौरामंकृच्छ्रेणतुकुशीलवौ ॥ शत्रुघ्नानयनेदूतान्प्रेषयामासराघवः ॥ तेदूतास्त्वरितंगत्वाशत्रुघ्नायन्यवेदयन् ॥१८॥ कालस्यागमनंपश्चाद्‌दात्रिपुत्रस्यचेष्टितम् ॥ लक्ष्मणस्यचनिर्याणंप्रतिज्ञांराघवस्यच ॥ १९ ॥ पुत्राभिषेचनंचैवसर्वंरामचिकीर्षितम् ॥ श्रुत्वातद्दूतवचनंशत्रुघ्नःकुलनाशनम् ॥ २० ॥ व्यथितोऽपिधृतिंलब्ध्वापुत्रावाहूयसत्वरः ॥ अभिषिच्यसुवाहुंवैमथुरायांमहावलः ॥ २१ ॥

शीघ्रही सुबाहु नाम पुत्रका मथुरामें राज्याभिषेक किया ॥ २१ ॥ यूपकेतुको विदिशानगरीका राज्य दिया, इसके उपरान्त वह शत्रुदमन वीर रामचंद्रजीका दर्शन करनेके लिये अपने आप शीघ्रही अयोध्याको आये ॥ २२ ॥ वहांपर उन रामचंद्रजीको इन उदारपुरुषने देखा; रामचंद्रजीका तेज अग्निके समान था; वह दो रेशमीन वस्त्र अंगपर धारणकररहेथे; वसिष्ठादिक अनेक दीर्घायु ऋषि उनके निकट बैठेथे ॥ २३ ॥ महाबुद्धिमान् शत्रुघ्नजीने लक्ष्मीपति रघुनाथजीको प्रणाम किया व हाथ जोड़कर धर्मयुक्त वचन बोले ॥ २४ ॥ हे कमलनयन राजन्! मैंने तहांके राज्यपर पुत्रोंको स्थापित किया है– तुम्हारे साथ चलनेका मैंने पूर्ण निश्चय कर लिया है, ऐसा आप जानो ॥ २५ ॥ हे रघुवीर! मुझे, विशेष

यूपकेतुंचावदिशानगरेशत्रुसूदनः ॥ अयोध्यांत्वरितंप्रागात्स्वयंरामदिदृक्षया ॥ २२ ॥ ददर्शचमहात्मानंतेजसाज्वलनप्रभम् ॥ दुकूलयुगसंवीतमृषिभिश्चाक्षयैर्वृतम् ॥ २३ ॥ अभिवाद्यरमानाथंशत्रुघ्नोरघुपुंगवम् ॥ प्रांजलिर्धर्मसहितंवाक्यंप्राहमहामतिः ॥ २४ ॥ अभिषिच्यसुतौतत्रराज्येराजीवलोचन ॥ तवानुगमनेराजन्विद्धिमांकृतनिश्चयम् ॥ २५ ॥ त्यक्तुंनार्हसिमांवीरभक्तंतवविशेषतः ॥ शत्रुघ्नस्यदृढांबुद्धिंविज्ञायरघुनन्दनः ॥ २६ ॥ सज्जीभवतुमध्याह्नेभवानित्यब्रवीद्वचः ॥ अथक्षणात्समुत्पेतुर्वानराःकामरूपिणः ॥ २७ ॥ ऋक्षाश्चराक्षसाश्चैवगोपुच्छाश्चसहस्रशः ॥ ऋषीणांदेवतानांचपुत्रारामस्यनिर्गमम् ॥ २८ ॥ श्रुत्वाप्रोचूरघुश्रेष्ठंसर्वेवानरराक्षसाः ॥ तवानुगमनेविद्धिनिश्चितार्थान्हिनःप्रभो ॥ २९ ॥ एतस्मिन्नंतरेरामंसुग्रीवोऽपिमहाबलः ॥ यथावदभिवाद्याहराघवंभक्तवत्सलम् ॥ ३० ॥

करकै इस अपने भक्तको छोड़ न जाइये (मुझको साथ लीजिये) शत्रुघ्नजीका दृढ़ निश्चय रामचंद्रजीने जाना ॥ २६ ॥ व उन्हौंने उनसे कहा कि तुम मध्याह्न कालमें तैयार रहो– इतनेहीमें एक क्षणभरके बीचमें वहाँ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले कूदते हुए कामरूप वानर आय पहुँचे ॥ ॥ २७ ॥ हजारों ऋक्ष, राक्षस, गोपुच्छ(एक जातिके वानर), तहां आये; यह सर्व मंडली ऋषि और देवताओंके अंशसेथी ‘ रामजी जांयगे ’ ॥ २८॥ यह वार्ता सुन समस्त वानर और राक्षस रामजीसे बोले;–‘प्रभो ! तुम्हारे पीछेही पीछे जानेका हमारा निश्चय है यह तुमसे विदित हो ’ ॥ २९ ॥ इतनेही अवकाशमें महापराक्रमी सुग्रीव तिस स्थानमें आये, व भक्तवत्सल रामचंद्रजीको साष्टांग दंडवत करकै बोले ॥ ३० ॥

'हे राम! मैं महाप्रतापी अंगदका राज्याभिषेक कर आया।तुम्हारे साथ चलनेका मेरा पूर्ण निश्चय है।' ॥ ३१॥ उन ऋक्ष, वानर और राक्षस मंडलीके
दृढ़ निश्चयके वचन सुनकर रामचंद्रजीने मृदु शब्दसे गौरवपूर्वक विभीषणसे कहा ॥ ३२ ॥ हे विभीषण ! मैं तुमको अपनी शपथ दिलायकर आज्ञा
देताहूं कि जबतक पृथ्वीपर राक्षसोंकी प्रजा रहे तबतक तुम राक्षसोंका राज्य करो ॥ ३३ ॥ मैंही ऐसी व्यवस्था करताहूं, इसकारण तुम इसपर
कोई उत्तर न दो; रामजी विभीषणसे ऐसा कह हनुमान्‌जीसे बोले ॥३४॥ हे पवनकुमार ! तुम सदा जीवित रहो। मेरी आज्ञा वृथा न करो। फिर
रामजीने जाम्बवानसे कहा। 'अब तौ तुम भी पृथ्वीपर जीवित रहो। फिर एक समय द्वापरयुगके मध्यमें ॥ ३५ ॥ तेरे साथ किसीकारणसे

अभिषिच्यांगदंराज्येआगतोऽस्मिमहाबलम् ॥ तवानुगमनेरामविद्धिमांकृतनिश्चयम् ॥ ३१ ॥ श्रुत्वातेषांदृढंवाक्यमृक्षवानररक्षसाम् ॥
विभीषणमुवाचेदंवचनंमृदुसादरम् ॥ ३२ ॥ धरिष्यतिधरायावत्प्रजास्तावत्प्रशाधिमे ॥ वचनाद्राक्षसंराज्यंशापितोऽसिममोपरि ॥३३॥
नकिंचिदुत्तरंवाच्यंत्वयामत्कृतकारणात् ॥ एवंविभीषणंतूक्त्वाहनूमंतमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ मारुतेत्वंचिरंजीवममाज्ञांमामृषाकृथाः ॥
जांववंतमथप्राहतिष्ठत्वंद्वापरांतरे॥३५॥मयासार्धंभवेद्युद्धंयत्किंचित्कारणांतरे ॥ ततस्तान्राघवःप्राहऋक्षराक्षसवानरान् ॥ सर्वानेवमया
सार्धंप्रयातेतिदयान्वितः ॥३६॥ ततःप्रभातेरघुवंशनाथोविशालवक्षाःसितकंजनेत्रः ॥ पुरोधसंप्राहवसिष्ठमार्यंयांत्वग्निहोत्राणिपुरोगुरोमे
॥ ३७ ॥ ततोवसिष्ठोऽपिचकारसर्वंप्रास्थानिकंकर्ममहद्विधानात् ॥ क्षौमांबरोदर्भपवित्रपाणिर्महाप्रयाणायगृहीतबुद्धिः ॥ ३८ ॥

मेरा युद्ध होगा।' इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीने कृपायुक्त होकर बाकी सर्व ऋक्ष, राक्षस, व, वानरोंसे कहा कि 'तुम हमारे साथ चलो।' ॥ ३६ ॥
रामचंद्रजीका वक्षस्थल विशाल और नेत्र श्वेत कमलके समानथे, दूसरे दिन सबेरेही रघुकुलनायकने अपने उपाध्याय श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनिसे कहा कि,—
गुरुमहाराज ! आप मेरे अग्निहोत्र मेरे आगे २ ले चलें ॥ ३७ ॥ वसिष्ठ मुनिने भी महाप्रस्थानके समय जो उचित है वह सर्व कर्म यथाविधिसे
आचरण किये। रामजीने रेशमीन वस्त्र पहरा, और हाथमें दर्भकी पवित्री ले महान् प्रस्थान विषयी बुद्धिका निश्चय करकै ॥ ३८ ॥

नगरसे बाहर निकले। उनकी कान्ति कोटिचंद्रमाके समानथी, शुभ्र मेघमंडलसे चंद्रमाके बाहर निकलनेके समान रामजी नगरसे निकले, रामजीकी
बांई ओर लक्ष्मी (सीताजी लक्ष्मीजीका रूप धरकर तहां आईं) जो श्वेतकमल हाथमें लिये चलतीथीं उनके नेत्र कमलके समान विशाल
थे॥ ३९ ॥दायीं ओर पृथ्वी तेजस्वी श्यामवर्णकी मूर्ति धारण कर चलती थी, इसके हाथमें लाल कमलका फूल था, शास्त्र,शस्त्र, व धनुषबाण प्रत्यक्ष
मूर्ति धारण करकै रामजीके आगे चले ॥ ४० ॥ सर्व वेद प्रत्यक्ष शरीर धारण करकै रामजीके साथ चले। समस्त मुनि चले, वेदोंकी पवित्र माता
(गायत्री) प्रणव, और व्याहृतिको साथ लेकर ईश्वरके साथ चलने लगी ॥ ४१ ॥ तिससमय लोगोंको ज्ञात हुआ कि अब मोक्षका द्वार

निष्क्रम्यरामोनगरात्सिताभ्राच्छशीवयातःशशिकोटिकांतिः ॥ रामस्यसव्येसितपद्महस्तापद्मागतापद्मविशालनेत्रा ॥ ३९ ॥ पार्श्वेऽ
थदक्षेरुणकंजहस्ताश्यामायथौभूरपिदीप्यमाना ॥ शास्त्राणिशस्त्राणिधनुश्चबाणाजग्मुःपुरस्ताद्धृतविग्रहास्ते ॥ ४० ॥ वेदाश्चसर्वेधृतवि
ग्रहाश्चययुश्चसर्वेमुनयश्चदिव्याः ॥ माताश्रुतीनांप्रणवेनसाध्वीययौहरिंव्याहृतिभिःसमेता ॥४१ ॥ गच्छंतमेवानुगताजनास्तेसपुत्रदाराः
सहबंधुवर्गैः ॥ अनावृतद्वारमिवापवर्गेरामंव्रजंतंययुरात्तकामाः ॥ ४२ ॥ सांतःपुरःसानुचरःसभार्यःशत्रुघ्नयुक्तोभरतोऽनुयायात् ॥ गच्छं
तमालोक्यरमासमेतंश्रीराघवंपौरजनाःसमस्ताः ॥ ४३ ॥ सबालवृद्धाश्चययुर्द्विजाग्र्याःसामात्यवर्गाश्चसमंत्रिणोययुः ॥ सर्वेगताःक्षत्रमु
खाःप्रहृष्टावैश्याश्चशूद्राश्चतथापरेच ॥ ४४ ॥ सुग्रीवमुख्याहरिपुंगवाश्चस्नाताविशुद्धाःशुभशब्दयुक्ताः ॥ नकश्चिदासीद्भवदुःखयुक्तोदी
नोऽथवाबाह्यसुखेषुसक्तः ॥ ४५ ॥

खुला हुआ है, इसकारण राम जिधरको चले हैं, उधर चलें; उन लोगोंकी ऐहिक सर्व उपभोगकी इच्छा पूर्ण होगईथी, इसालिये वे पुत्र, स्त्रियें और
भाई बंधु सब जनोंको साथ लेकर रामचंद्रजीके पीछे २ बाहर चले॥ ४२॥ रामजी अपने अंतःपुरके सेवक जन, भार्या, और शत्रुघ्न, इन सबको साथ
लेकर चले। श्रीरामचंद्रजीको लक्ष्मीजीके साथ जाता हुआ देखकर समस्त नागरिक जन ॥ ४३ ॥ व लड़के, वृद्ध, प्रधानमंडल, और ऐसे सबके साथ
बड़े, ब्राह्मण बाहर निकले । क्षत्रिय प्रभृति वर्ण-वैश्य-तैसेही शूद्र व दूसरे लोग, आनंदित होते हुए चलने लगे ॥ ४४ ॥ सुग्रीवादि बड़े
वानर स्नान करकै शुद्ध होते हुए मंगलशब्द उच्चारण करकै निकले, तिसकाल वहाँ संसारदुःखसे पीडित हुआ, दीन, अथवा बाह्य सुखमें

आसक्त हुआ कोईभी प्राणी नहींथा ॥ ४५ ॥ सर्व जन विरक्त होते हुए अपने पशु और सेवकोंके समुदाय साथ ले आनंदरूपी रामचंद्रजी के पीछे २ चले। तहाँके अदृश्य जीव व स्थावर जंगमात्मक प्राणी ऐसे सर्व जन ॥ ४६ ॥ विरक्त होकर साक्षात् सर्वशक्ति परमात्माके पीछे चले। तिस समय अयोध्यामें ऐसा कोईभी प्राणी नहींथा, कि जो रामचंद्रजीमें मन लगाय उनके पीछे बाहर न निकलाहो ॥ ४७ ॥ राजा रामचंद्रजीके चले जानेपर सर्वनगर जनशून्य होगया । नगरसे बाहर बहुत दूर चले जानेपर, सरयू नदी रामचंद्रजीको दिखाई दी, उस नदीकी उत्पत्ति ईश्वरके नेत्रोंसे हुईहै ॥ ४८ ॥ वह प्रवाह देखकर रामचंद्रजीको आनंद हुआ। फिर उन्होंने अपने पवित्र विराट्रूपका ध्यान किया; और ऐसी दृष्टि की कि यह सर्व जगत् अपने दृश्यमें है (मैं विराट्स्वरूपहूं ऐसा ध्यान किया) इस समय उस स्थानपर सर्वके पितामह श्रेष्ठ ब्रह्माजी सर्व देवता ऋषि और सिद्धजन प्राप्त हुए ॥ ४९ ॥ आकाश अपरंपार होनेपरभी तिस समय करोड़ों विमानोंसे भरगया! उन विमानोंमें देवता बैठेथे विमानोंका तेज सूर्यके समान जिधर तिधर फैले रहनेसे आकाश प्रकाशमय होगया ॥ ५० ॥ बड़े २ पुण्यवान् व स्वयंप्रकाश श्रेष्ठ लोगोंके आकाशमें ठट्ट इकठे होगये; सुगंधित पवन चलने लगा, फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ५१ ॥ देवताओंके मृदंगकी ध्वनि होने लगी, विद्याधर और किन्नरगण गाने लगे; स्वर्गमें ऐसा उत्सव होताथा; इधर सर्व शक्तिमान् रामचंद्रजी एक आचमन करकै सरयूके जलपर चलने लगे ॥ ५२ ॥

आनंदरूपानुगताविरक्तायथुश्चरामंपशुभृत्यवर्गैः ॥ भूतान्यदृश्यानिचयानितत्रयेप्राणिनःस्थावरजंगमाश्च ॥ ४६ ॥ साक्षात्परात्मानमनंतशक्तिंजग्मुर्विरक्ताःपरमेकमीशम् ॥ नासीदयोध्यानगरेतुजंतुःकश्चित्तदाराममनानयातः ॥ ४७ ॥ शून्यंबभूवाखिलमेवतत्रपुरंगतेराजनिरामचंद्रे ॥ ततोऽतिदूरंनगरात्सगत्वाददर्शनदींतांहरिनेत्रजाताम् ॥ ४८ ॥ ननंदरामःस्मृतपावनोऽतोददर्शचाशेषमिदंहृदिस्थम् ॥ अथागतस्तत्रपितामहोमहान्देवाश्चसर्वेऋषयश्चसिद्धाः ॥४९॥ विमानकोटीभिरपारपारंसमावृतंखंसुरसेविताभिः ॥ रविप्रकाशाभिरभिस्फुरत्स्वंज्योतिर्मयंतत्रनभोबभूव॥५०॥ स्वयंप्रकाशैर्महतांमहद्भिःसमावृतंपुण्यकृतांवरिष्ठैः ॥ ववुश्चवाताश्चसुगंधवंतोववर्षवृष्टिःकुसुमावलीनाम् ॥ ५१ ॥ उपस्थितेदेवमृदंगनादेगायत्सुविद्याधरकिन्नरेषु ॥ रामस्तुपद्भ्यांसरयूजलंसकृत्स्पृष्ट्वापरिक्रामदनंतशक्तिः ॥ ५२ ॥

तिससमय ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर श्रीरामचंद्रजीकी प्रार्थना की–‘हे परमात्मन्! आप जगत्‌की सृष्टि, स्थिति, व लय करतेहो। आप नित्यमय आनंदमय पूर्ण विष्णु हैं। आप अपने अद्वितीय ब्रह्मरूपको जानते हैं ॥ ५३ ॥ हे सर्वेश्वर! ज्ञानरूप! ऐसा होनेपरभी आपने रामावतार ले मेरी प्रार्थना पूर्ण की; और भक्तवात्सल्य लोगोंको विश्वास दिला दिया, अब आप अपने भ्राताओंके साथ एक व आद्य विष्णुरूपमें प्रवेश करके देवताओंकी रक्षा करो ॥ ५४ ॥ अथवा जो कोई तुम्हैं दूसरा शरीर अंगीकार करना हो तौ उसको अंगीकार करकै हमारा पालन करो; आप देवाधिदेव विष्णुजी हैं; मेरे अतिरिक्त कोई पुरुष आपके यथार्थ रूपको नहीं जानता ॥ ५५ ॥ देवाधिदेव! आपको सहस्रवार नमस्कार है।’ जब ब्रह्माजीने ऐसी प्रार्थना की तब रामजीने तत्काल सर्व देवताओंके सन्मुख ॥ ५६ ॥ चतुर्भुज रूप धारण किया; उनके हाथमें शंख चक्रादि आयुध थे। उनका तेज देखकर देवताओंके नेत्र दिप गये; लक्ष्मणजी विष्णुजीकी शय्या शेष हुए; उनका शरीर प्रचंड था ॥ ५७ ॥ कैकेयीके पुत्र (भरत) और लवणासुरके नाशकर्ता (शत्रुघ्न) यह दोनों विष्णुजीके हाथके चक्र और शंख यह दोनों आयुध हुए। सीताजी पहलेही लक्ष्मीजी होगईं। इस प्रकारसे रामचंद्रजीका पुराणपुरुषरूप सिद्धहै ॥ ५८ ॥ छोटे भ्राताओंके सहित रामचंद्रजी अपने पूर्वका शरीर (विष्णुरूप) धारणकरकै प्रकाशमान दिव्यदेही बने। विष्णुजीका दर्शन पायकर इन्द्रादि देव सिद्ध, मुनि, यक्ष, ॥ ५९ ॥ व ब्रह्मादि सर्व महात्मा ईश्वरके निकट खड़े

ब्रह्मातदाप्राहकृतांजलिस्तंरामंपरात्मन्परमेश्वरस्त्वम् ॥ विष्णुःसदानंदमयोऽसिपूर्णोंजानासितत्त्वंनिजमैशमेकम् ॥ ५३ ॥ तथापिदा
सस्यममाखिलेशकृतंवचोभक्तपरोऽसिविद्वन् ॥ त्वंभ्रातृभिर्वैष्णवमेकमाद्यंप्रविश्यदेहंपरिपाहिदेवान् ॥ ५४ ॥ यद्वापरोवायदिरोच
तेतंप्रविश्यदेहंपरिपाहिनस्त्वम् ॥ त्वमेवदेवाधिपतिश्चविष्णुर्जानंतिनत्वांपुरुषाविनामाम् ॥ ५५ ॥ सहस्रकृत्वस्तुनमोनमस्तेप्रसीददे
वेशपुनर्नमस्ते ॥ पितामहप्रार्थनयासरामःपश्यत्सुदेवेषुमहाप्रकाशः ॥ ५६ ॥ मुष्णंश्चचक्षूंषिदिवौकसांतदाबभूवचक्रादियुतश्चतुर्भुजः ॥
शेषोबभूवेश्वरतल्पभूतःसौमित्रिरत्यद्भुतभोगधारी ॥ ५७ ॥ बभूवतुश्चक्रदरौचदिव्यौकैकेयिसूनुर्लवणांतकश्च ॥ सीताचलक्ष्मीरभव
त्पुरैवरामोहिविष्णुःपुरुषःपुराणः ॥ ५८ ॥ सहानुजःपूर्वशरीरकेणबभूवतेजोमयदिव्यमूर्तिः ॥ विष्णुंसमासाद्यसुरेंद्रमुख्यादेवाश्चसिद्धा
मुनयश्चयक्षाः ॥ ५९ ॥ पितामहाद्याःपरितःपरेशंस्तवैर्गृणंतःपरिपूजयंतः ॥ आनंदसंप्लावितपूर्णचित्ताबभूविरेप्राप्तमनोरथास्ते ॥ ६० ॥

रहकर विविध स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति व पूजा करने लगे। उनके मन आनंदसे पूर्ण होगये व मनोरथ पारिपूर्ण हुए ॥ ६० ॥ श्रीविष्णुजीका अंतःकरण भक्तोंके विषयमें परमोदार है; उन्होंने उस समय ब्रह्माजीसे कहा ‘ यह मेरे भक्त मुझपर पूर्ण अनुरागी हैं, मैं स्वर्गको जानेके लिये तैयार हुआ तौ यह सब मेरे पीछे चले; इनकी इस कृत्यसे इनको परम पुण्य हुआ; इसकारण यद्यपि यह क्षुद्रयोनिमें जन्मे हैं तथापि ॥ ६१ ॥ इनको वैकुण्ठकी. योग्यताका लोक प्राप्त होना चाहिये। इसकारण मेरी आज्ञासे इनको तैसेही लोकमें पहुँचाओ। ’ ईश्वरकी आज्ञा सुनकर ब्रह्मा जी बोले;—‘वे सांतानिक लोकमें जाँय (मैं उनको सांतानिक लोकमें पहुँचाताहूं) वहां अनेक प्रकारके उपभोग तैयारहैं। वे (सांतानिक) ते

तदाहविष्णुर्द्रुहिणंमहात्माएतेहिभक्तामयिचानुरक्ताः ॥ यांतंदिवंमामनुयांतिसर्वेतिर्यक्छरीराअपिपुण्ययुक्ताः ॥ ६१ ॥ वैकुंठसाम्यं
परमंप्रयांतुसमाविशस्वाशुममाज्ञयात्वम् ॥ श्रुत्वाहरेर्वाक्यमथाब्रवीत्कःसांतानिकान्यांतुविचित्रभोगान् ॥ ६२ ॥ लोकान्मदी
योपरिदीप्यमानांस्त्वद्भावयुक्ताःकृतपुण्यपुंजाः ॥ येचापितेरामपवित्रनामगृणंतिमर्त्यालयकालएव ॥ ६३ ॥ अज्ञानतोवापिभजंतु
लोकांस्तानेवयोगैरपिचाधिगम्यान् ॥ ततोतिहृष्टाहरिराक्षसाद्याःस्पृष्ट्वाजलंत्यक्तकलेवरास्ते ॥ ६४ ॥ प्रपेदिरेप्राक्तनमेवरूपंयदंशजा
ऋक्षहरीश्वरास्ते ॥ प्रभाकरंप्रापहरिप्रवीरःसुग्रीवआदित्यजवीर्यवत्त्वात् ॥ ६५ ॥

जोमय लोक मेरे सत्य लोकसेभी श्रेष्ठ (तिस्सेभी अधिक योग्यतासे) हैं; ईश्वररूप तुममें इन प्राणियोंने दृढ़ भक्ति करी इसकारणसे इनको पुण्य राशि प्राप्त हुई॥६२॥हेराम! जो पुरुष मरणकालके समय आपके नामका जप करते हैं, उनको यह सांतानिक लोक प्राप्त होतेहैं। यह स्थान अनेक जन्मोंमें पुष्कल योगसाधन करनेसे प्राप्त होते हैं (राम नाम स्मरणकी योग्यता अनेक जन्मोंको योग साधना करनेके समान है) ॥ ६३ ॥ उस समय वानर, राक्षस इत्यादि रामभक्तोंको बहुत आनंद हुआ, वे सर्व ऋक्षाधिपति व वानरवीर जल स्पर्श (आचमन) करके जिसके (देवता) के अंशमें जन्मेथे तिस पूर्वरूपमेंही आप जाय मिले ॥ ६४ ॥ वानरराज सुग्रीवने सूर्यके वीर्यसे जन्म लियाथा इसलिये वह सूर्यरूपमें मिलगये।

फिर मनुष्योंनेभी आयके जलमें गोता लगाकर मनुष्यशरीरको छोडा ॥ ६५ ॥ तत्काल उनको दिव्य अलंकारोंसे युक्त शरीर और बैठनेके लिये विमान मिले तब वे उन विमानोंमे बैठकर सांतानिक नागके लोकोंमें गये। तिर्य्योयोनिमें उत्पन्नहुये प्राणी रामचन्द्रजीकी दृष्टिके प्रभावसे जलमें डुबकी मारतेही शरीरको छोड़ गये ॥ ६६ ॥ देशदेशके लोग रामजीके दर्शनको आयेथे; रामचन्द्रजीका दर्शन करतेही उनके पाप नाशको प्राप्त होगये, उन्होंने सर्वसंगपरित्याग करके लोकोंके गुरु व सकलदुःखहारी परमेश्वरका स्मरण किया, और सरयूके जलमें प्रवेश करतेहुए—तत्काल उनकोभी स्वर्गमिला ॥ ६७ ॥ महादेवजीने पार्वतीजीको श्रीरामचंद्रजीके अवशिष्टादि चारित्रका उत्तर भाग इतना कहा। जो मनुष्य इस ग्रंथका एक भागभी बांचैगा वह सहस्रजन्मोंके कियेहुए पापोंसे छूट जायगा ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य प्रतिदिन पापराशि करता रहा हो परन्तु जो इस ग्रंथमेंका एक श्लोकभी भक्तिके साथ पढ़ता है, तौ उसके पापोंकी राशि सब दूर हो जाती हैं; वह प्रत्यक्ष रामजीके लोकमें जाता है; यह स्थान साधारण साधनोंसे नहीं मिलता ॥ ६९ ॥ पहले अन्तर्यामी श्रीरामचंद्रजीने शंकरजीकी प्रेरणा करी, तब महादेवजीनें जिसमें भविष्य अर्थ समझाये हुए हैं ऐसा यह रघुकुलनाथ श्रीरामचंद्रजीकी कथाका आख्यान रचा है कि जिसके श्रवण करनेसे रामचंद्रजी प्रसन्न हो जाते हैं अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीकी प्रशंसासे सर्व अर्थ सिद्ध होजाते हैं ॥ ७० ॥ यह रामायणनामका अत्यन्त पुण्यकारक काव्य श्रीमहादेवजीने पार्वतीजीसे कहा,

ततोविमग्नाःसरयूजलेषुनराःपरित्यज्यमनुष्यदेहम् ॥ आरुह्यदिव्याभरणाविमानंप्रापुश्चैतसांतनिकाख्यलोकान् ॥ ६६ ॥ तिर्यक्प्रजाताअपिरामदृष्टाजलंप्रविष्टादिवमेवयाताः ॥ दिदृक्षवोजानपदाश्चलोकारामंसमालोक्यविमुक्तसंगाः ॥ ६७ ॥ स्मृत्वाहरिंलोकगुरुंपरेशंस्पृष्ट्वाजलंस्वर्गमवापुरंजः ॥ एतावदेवोत्तरमाहशंभुःश्रीरामचंद्रस्यकथावशेषम् ॥ ६८ ॥ यःपादमप्यत्रपठेत्सपापाद्विमुच्यतेजन्मसहस्रजातात् ॥ दिनेदिनेपापचयंप्रकुर्वन्पठेन्नरःश्लोकमपीहभक्त्या ॥ ६९ ॥ विमुक्तसर्वाघचयःप्रयातिरामेतिसालोक्यमनन्यलभ्यम् ॥ आख्यानमेतद्रघुनायकस्यकृतंपुराराघवचोदितेन ॥ ७० ॥ महेश्वरेणाप्तभविष्यदर्थंश्रुत्वातुरामःपरितोषमेति ॥ रामायणंकाव्यमनंतपुण्यंश्रीशंकरेणाभिहितंभवान्यै ॥ ७१ ॥

जो मनुष्य इस ग्रन्थको बांचैगा, या सुनैगा, वह सैकडों जन्मके पापोंसे छूटजायगा ॥ ७१ ॥ जो कोई पुरुष अध्यात्मरामायण भक्तिपूर्वक नित्य पढै, सुनै, या लिखै, तौ सीताजीके साथ रामचंद्रजी अत्यन्त प्रसन्न होकर नित्य उसके निकट रहते हैं, और इसके ऐश्वर्यको बढाते हैं ॥ ७२ ॥ यह रामायणनामक पुरातनकाव्य सबजनोंके मनको रमणीय लगनेवाला है, ब्रह्मादि बड़े २ देवता इसकी प्रशंसा करते हैं । जो मनुष्य रामायणही मेरा उद्धार करैगी, ऐसा विश्वास रखकर यह ग्रन्थ नित्य बाँचैगा या सुनैगा उसका शरीर पवित्र हो जायगा ॥ ७३ ॥

भक्त्यापठेद्यःशृणुयात्सपापैर्विमुच्यतेजन्मशतोद्भवैश्च ॥ अध्यात्मरामंपठतश्चनित्यंश्रोतुश्चभक्त्यालिखितुश्चरामः ॥ ७२ ॥ अतिप्रसन्नश्चसदासमीपेसीतासमेतःश्रियमातनोति ॥ ७३ ॥ रामायणंजनमनोहरमादिकाव्यंब्रह्मादिभिःसुरवरैरपिसंस्तुतंच ॥ श्रद्धान्वितःपठतियःशृणुयात्तुनित्यंविष्णोःप्रयातिसदनंसविशुद्धदेहः॥७४॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेउत्तरकांडेनवमःसर्गः॥९॥ अध्यात्मोत्तरकांडेसर्गाग्रहसंख्ययापरिक्षिताः ॥ ऋतुशतसंख्याःश्लोकाःपुराणसंख्याश्चपुरहरेणोक्ताः ॥ १ ॥ पार्वत्यैपरमेश्वरेणगदितेह्यध्यात्मरामायणेकांडैःसप्तभिरन्वितेऽतिशुभेदसर्गाश्चतुःषष्टिकाः ॥ श्लोकानांतुशतद्वयेनसहितान्युक्तानिचत्वारिवैसाहस्राणिसमाप्तितःश्रुतिशतेपूक्तानितत्त्वार्थतः ॥ १ ॥ समाप्तमिदमुत्तरकांडम् ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकांडे श्रीमन्मिश्रसुखानंदसूनुगंगागर्भजमिश्रबलदेवप्रसादकृतौ भाषाटीकायां नवमःसर्गः ॥ ९ ॥ अध्यात्मरामायणका यह आख्यान श्रीमहादेवजीने पार्वतीजीसे कहा । इसमें सप्तकांड, चौसठ सर्ग, वा चार सहस्र दोशत (४२००) श्लोक हैं, इसके वर्णन कियेहुए तत्त्वसिद्धान्तमें सैकडों श्रुति कहीं हैं ॥ १ ॥

इति उत्तरकांडं समाप्तम् ।

दोहा--जेहि श्रुतिगावतरैनि दिन, वेद न पावत पार। सोइ रघुनाथ सिया सहित, वंदों वारंवार ॥ १ ॥
श्यामरूप चितवनरुचिर, बने प्रफुल्ल शरीर। कमलनयन मोहनमयन, हर मेरी भवभीर ॥ २ ॥
कियो तुम्हारी कृपासों, भाषामें यह ग्रंथ। याहि पढ़त समुझत सुनत, खुलत मोक्षको पंथ ॥ ३ ॥
अध्यातम रघुवर चरित, श्रुति पुराणको सार। नेक पढ़ेहू देत है, शुभग पदारथ चार ॥ ४ ॥
उन्निससे ऊपर अधिक, बावन वर्ष विचार। पौषमाससितसप्तमी, पूर्ण कियो गुरुवार ॥ ५ ॥

श्लोकः।

नमस्कृत्य जगन्नाथं कौशल्यानंदवर्धनम्। धनुर्बाणधरं वीरं जानकीवल्लभं हरिम् ॥ १ ॥
भाषया व्याख्यया युक्तो ब्रह्मज्ञानसमन्वितो। ग्रंथोयं पूर्तिमानीतो बलदेवेन धीमता ॥ २॥

शुभमस्तु॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–खेमराज श्रीकृष्णदास, “श्रीवेंकटेश्वर” छापाखाना–मुम्बई.

जाहिरात।

हिंदुस्थानी भाषाके ग्रंथ।

पुस्तकोंका नाम.	कीमत.
वाल्मीकीय रामायण भाषा. इसकी भाषा मूल पुस्तकके प्रत्येक श्लोकसे मिलाकर बनाई गई है और श्लोकार्थ जाननेके लिये प्रत्येक सर्गके श्लोकांकभी डाले गये हैं पुस्तक बड़ी होनेके कारण दो जिल्दोंमें बांधी गई है और दोनोंमें सुन्दर विलायती कपड़ा और सोनेके अक्षर लगे हुये हैं....	१०)
वाशिष्टसार भाषा वेदांत ६ प्रकरण	२॥)
न्यायप्रकाशभाषा परमोत्तम चिद्घनानंद स्वामीकृत (न्याय और वेदान्त)	७)
शुकसागर–अर्थात् भाषाभागवत लाला शालिग्रामजी कृत, इस पुस्तककी भाषा ऐसी सरल मनोरंजन बनाई गई है कि जिसको छोटेबड़े सब भली भांति समझ सक्ते हैं जगह २ पर दोहा, कवित्त, सवैया, भजनादि भी डाले गये हैं शंका समाधानभी खूबही किया गयाहै और बहुतसे उपयोगी दृष्टान्त भी स्थलानुकूल डाले गये हैं अक्षरभी इतना बड़ा है कि जिसके पढ़नेमें बहुत कम परिश्रम पड़ता है वृद्धभी बाच सक्ते हैं इसका वजनभी पक्का १० सेरकाहै सुन्दर विलायती कागज चिकना नंबर १....	१२)
तथा उक्त समस्त अलंकारोंसमेत. नंबर २ कागज रफ	१०)
शुकसागर–उपरोक्त सर्वालंकारों समेत छोटा अक्षर सर्वसाधारण तथा देशाटनीयजनो को लाभदायक	५)
तुलसीकृत रामायणसंजीवनीटीका लवकुशकांडसहित प्रत्येक दोहा चौपाईका अर्थ पंडित ज्वालाप्रसादजी कृत भाषाटीका अतिउत्तम संपूर्ण क्षेपकोंके अर्थ और माहात्म्य तुलसी दासजीका जीवनचारित्र व गूढार्थ व रामवनवासतिथिपत्र, कोश और हनुमान्जीका चित्र व सूर्यवंशकावृक्षसहित सुन्दर जिल्द	८)
तथा रफ् कागजकी	७)
तुलसीकृत रामायण सटीक ऊपरके सर्व अलंकारों समेत सुन्दर छोटे अक्षर मे छपी तयार है	५)
तुलसीकृतरामायण बडे टाईपका अतिउत्तम मये श्लोकार्थ, गूढार्थ, प्रसंगार्थ, छन्दार्थ व अष्टम लवकुशकांड व इतिहास व तुलसी दासजीका जीवन चरित्र और पंचीकरण, रामचंद्रजीके वनवासका तिथिपत्र व दृष्टांत व बरवा रामायण सहित ३८०० टिप्पणीके जिसमें संपूर्ण क्षेपक और कोषभी है ग्लेज ५) रु० तथा रफ्	४)
तुलसीकृतरामायण क्षेपकसह मझले टाईपका अति उत्तम मये श्लोकार्थ व गूढार्थ व छन्दार्थ व प्रसंगार्थ व अष्टम लवकुश कांड व इतिहास व दृष्टांत व रामवनवास तिथिपत्र व तुलसीदासका जीवन चारित्र व बरवारामायण व माहात्म्य व हनुमान्जीका बड़ाचित्र व सूर्यवंशकावृक्ष सहित ३८०० टिप्पणीके जिसमें संपूर्ण क्षेपक हैं ग्लेज २॥ तथा रफ्	१॥।)
तुलसीकृतरामायण बारीक .गुटका श्लोकार्थ, गूढार्थ प्रसंगार्थ छन्दार्थ व अष्टम लवकुश कांड व इतिहास व दृष्टांत व रामवनवास तिथिपत्र व बरवारामायण व माहात्म्यसहित ३८०० टिप्पणीके जिसमें संपूर्ण क्षेपक हैं देशाटनकरनेवालोंको अत्यंत उपयोगीहै थोडे दाममें चोखाकाम ग्लेज कागजका चित्रितपुट्ठा	१।)
तथा रफ् कागजका	१)
श्रीगुसाईंतुलसीदासकृत षोडश रामायण	२)
रामरसायन रामायन रसिकविहारीकृत	४)
ब्रजविलास बड़ा मोटेअक्षरका टिप्पणीसहित	५)
ब्रजविलास मध्यमअक्षरपदच्छेद और टिप्पणीसहित विलायती जिल्द ग्लेज २॥ रु० तथा रफ्	१॥।)
भक्तमाला रामरसिकावली बड़ी, रींवाधिपति महाराज रघुराजसिंहकृत अत्युत्तम छन्दबद्ध जिसमेंचारोंयुगोंके भक्तोंकी भिन्न २ कथाहैं	४)
पंचदशीभाषावेदान्तआत्मस्वरूपजीकृत	४)
रागरत्नाकर भक्तचिंतामणि रागमाला सहित जिसमें ११०२ पद और ५०२ दोहे हैं ६ राग ३६ रागिनी में भजन	

पुस्तकोंका नाम.	कीमत.
गानेका अति उत्तम	२)
भजनामृत–इसमें मंगल गौरी होली जयध्वनि पद विनय आरती इत्यादि अनेक प्रकारके भजन हैं साधुओंके वास्ते अति उत्तम है	१)
ब्रजविहार-वृन्दावन वासी श्रीनारायण स्वामीजीकृत जिसमें श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद वृन्दावनविहारी तथा श्रीवृषभानुनन्दिनी राधे महारानीकी सम्पूर्ण लीलाओंका वर्णन सुन्दर अनेक प्रकारके भजन दोहे कवित्त और वार्तिक में अतिमधुरतासे किया गयाहै जिसके पढनेसे श्रीकृष्ण चरणानुरागियोंका मन प्रेम में एकदम मग्न हो जाताहै इसमें अधिकतर वही लीला सम्मिलित की गई हैं कि जिनको आज कलके रासधारीलोग करते हैं अन्तमें अनुराग रसभी है स्थान २ पर चित्रभी सुंदर लीलानुकूल लगाये गये हैं पुस्तककी रक्षाके निमित्त विलायती कपडेकी जिल्दभी बांधी गई है जिसपर सोनेके अक्षर भी लिखे गये हैं मूल्यप्रेमियोंके निमित्त चिकनेकागजका २ तथा रफ्	१॥।)

पुस्तकोंका नाम.	कीमत.
नवरत्नरासविलास प्रथम भाग–इसमें श्रीकृष्णजीकी अनेकप्रकारकी रासलीला है	॥।)
सितारचंद्रिका (सितारबजानेकीरीति)	।=)
विचारसागरसटीकनिश्चलदासजीकृत	२)
जैमिनीयअश्वमेधभाषा परम मनोहर दोहा चौपाई छन्दवद्धमें ग्लेज	२)
तथा रफ् कागज	१॥)
लावनी ब्रह्मज्ञानकी-काशीगिरिबनारसीकृत इस्में संपूर्ण लावनी ऐसी भाव गंभीरतासे बनाई हैं कि जिनका अर्थ शृंगार वैराग्य दोनों पक्षोंपर मिलता है.	१।)
हनुमन्नाटक रामगीत भाषा-कविहृदयरामकृत अति ललित सवैया कवित्तादि छन्दवद्धमें अति उत्तम है	१।)
एकादशस्कंध भाषा चतुरदासकृत और नानकविलास	१)
योगवाशिष्ठगुटकावैराग्य मोक्ष प्रकरण वेदांत उत्तम कागज अक्षर बड़ा	१)
अध्यात्मप्रकाश भाषा	≡)
प्रेमसागर बडा ग्लेज कागजका	२)
प्रेमसागर टाईपका बड़ा रफ्	१॥)
अर्जुनगीता भाषा	।)

पुस्तकोंका नाम.	कीमत.
वसंतफागसंग्रह होली	॥)
गजेंद्रमोक्ष भाषा	–॥)
गजेंद्रमोक्षभाषाटीका	।)
विदुरनीतिहिंदुस्थानी-श्रीमहाराज धृतराष्ट्रको विदुरने उपदेशदिया है यक्ष प्रश्नोंकेसह	।)
विदुरप्रजागरराजनीति मारवाडी भाषा	॥)
चाणक्यनीति भाषाटीका दोहासहित जिल्द	॥)
रामगीतावली	॥।)
तुलसीदासकृत दोहावलीरामायण	।)
स्वरोदयसार चरणदासकृत	=)
शनिकथा कायस्थकी	–॥)
शनिकथाराघवदासकृत	≡)
शनिकथारोचक छंदवद्ध पं०रामप्रतापजीकृत०	॥)
रसिकप्रिया कविवरकेशवदासकृतनायकाभेद	॥।)
विज्ञानगीता कविकेशवदासकृत का- (व्यरत्न)	॥)
रामचंद्रिका सटीक कवि केशवदास प्रणीत	२)
सुंदरविलास (ज्ञानसमुद्र, ज्ञानविलास, सुन्दराष्टकादि सहित) सटिप्पण	१)

पुस्तकोंका नाम.	कीमत.
हनुमानवाहुक	–॥)
नासिकेतपुराणभाषा स्वर्गनरकका वर्णन	॥)
नरसीमेहताका मामेरा बड़ा	।–)
प्रह्लादनाटकलालाश्रीनिवासदासप्रणीत	।=)
माधवानलकामकंदलानाटक–ऐसाप्रीतिप्रवाह ग्रंथदेखनेहीके योग्य है लालाशालिग्राम वैश्यकृत	॥।)
मोरध्वज नाटक–रौद्र वीर सत्यता और भक्तिमार्गी करुणादि रससे परिपूर्ण भाषा लालाशालिग्रामकृत	॥)
वेणीसंहारनाटक भाषा करुणा हास्य और शांति व रौद्र रससे परिपूर्ण अत्युत्तम पण्डित ज्वालाप्रसादजीकृत	॥=)
विस्मिलपरीवारका स्वांग (इश्कचमन)	॥)
अमृतधारावेदांत	॥।)
संतोषसुरतरु वेदांत	॥)
संतप्रभाव वेदांत	।=)
विचारमालासटीकपंचीकरणसहित	॥।)
विद्याज्ञानप्रकाश–बालकोंको परमोपयोगी	॥।=)
सूर्यपुराणादि १८१ रत्न अतिउत्तम कागज और अक्षर	॥)
सूर्यपुराणादि १८१ रत्न रफ्	।=)
विनयपत्रिकातुलसीदासकृत ग्लेज कागज	॥)

पुस्तकोंका नाम.	कीमत.
तथा रफ़ कागज	।=)
ज्ञानमाला	=)
कवित्तरामायण	।)
सिंहासनबत्तीसी	।≡)
वैतालपच्चीसी	।)
राजनीति पंचोपाख्यान	।≡)
सभाविलास	।)
शुकबहत्तरी	।=)
हनुमानचालीसासंकटमोचन	-)
मंगलदीपिका अर्थात् शाखोच्चार	-॥)
दंपतिवाक्यविलास–जिसमें सब देशांतरकी यात्रा और धंधेके सुखको पुरुषने मंडन और स्त्रीने खंडन किया है दोहा कवित्तोंमें	॥।)
ऋतुसंहार और चौरपंचाशिका भाषाटीका	॥)
रसतरंग ज्ञानभक्तिमार्गी अजब रंगीले पद्य कृष्णगढ़ महाराज प्रणीत	॥)
आल्हारामायण लंकाकांड (रामरावणकी लड़ाई)	॥)
मेघमालाभड्डली	।)
रत्नपरीक्षा (रत्नोंके परीक्षाका ग्रंथ भाषा)	।)
स्वप्नप्रकाशिका भाषाटीका	≡)
नळदमयन्ती चरित्र दमयन्तीका पातिव्रत पालन तथा सत्यता और स्वयंवरकी कथा	॥)
कन्याहितकारिणी	=)
नारीशिक्षा	≡)
त्रियातिमिर नाशक	।=)
नारीधर्म	=)
कृष्णचारितावली कृष्णकी लीला	।)
मुद्राकुलीन अर्थात् मैसूर राज्यका इतिहास	॥।)
तुलसीकृतरामायणका सुंदरकाण्ड भाषा	≡)
,, किष्किंधाकाण्ड	≡)
आनंदप्रकाश अर्थात् लावनी तुर्रा	।≡)
स्वप्नाध्याय भाषाटीका	=)
पल्लीपतन भाषाटीका	=)
बालबोध प्रथम पुस्तक पट्टीपहाड़ा	-॥)
पट्टीपहाडा	-॥)
सुदामाचरित्र अत्युत्तम छंदवद्ध	≡)
होलीसंग्रह चौताल	।)
सुदामाकी बाराखडी	-)
द्रौपदीकी बारामासी	-)
दुर्गाचालीसी	-)
रमलप्रश्नावली अंकप्रश्नावली	-)
दयानन्दतिमिरभास्कर पं. ज्वालाप्रसादजीकृत सनातनधर्मावलम्बियोंको अवश्य देखनेयोग्य	३)
रंभाशुकसंवाद संस्कृत मूल व प्रत्येक श्लोकका कवित्तमें टीका व भाषाटीका सहित	=)
सुभाषितसार भाषाटीका	≡)
बारामासी संग्रह	-॥)
आरती संग्रह २९ आरतीका	-॥)
हरदेवकी बाराखडी कलियुगका चरित्र	=)
गौका चित्र	-)
माहेश्वरीवैश्योत्पत्ति	।=)
रामकलेवा	-॥)
स्वच्छताकी पुस्तक	-)
भूगोलकी परिभाषा	-)
हिन्दीकी पहिली पुस्तक	=॥)
तथा दूसरी पुस्तक	।)
हिन्दी अंग्रेजी शिक्षक (प्राइमर)	=)
द्रव्यस्तोत्र भाषाटीका	-॥)
यमुनालहरी भाषाटीका	=)
अर्बुदमाहात्म्य भाषा टीका (आबूपहाडके तीर्थोंका माहात्म्य मै नक़्शा	।-)
भावपंचाशिका कवि वृंदजीकृत	=)

नूतन छपेहुये पुस्तक।

पुस्तकोंका नाम.	कीमत.
मदनमुख चपेटिका भाषा टीका	।)
प्रेमवाटिका भाषा (रोचक रसकवित्त)	=)
हनुमत्पताका छन्दवद्ध (वीररसके रोचककवित्त)	≡)
नामप्रताप छन्दवद्ध(श्रीरामनाममाहात्म्य)	-॥)
रामाश्वमेध केवलभाषा श्लोकांकसमेत	२)
वामामनरंजन (स्त्रियोंकीशिक्षामें परमोपयोगीहै)	।)
शृंगारांकुर भाषाछन्दवद्ध (रसकाव्य)	=)
जगन्नाथशतक–इसमें रघुराजसिंह रीवांधिपतिके बनायेहुये १०० कवित्त विनयके हैं	।)
दादूरामोदय संस्कृत–दादू पंथी साधुओंको अत्यन्त उपयोगीहै	॥=)
प्रत्येकानुभव शतक भाषा (वेदान्त	।=)
गंगालहरीभाषा पद्माकरकृत	=)
सुन्दरीतिलक (शृंगाररसके चुहचुहाते हुये कवित्त भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र संग्रहीत	।=)
माहेश्वरीतंत्र भाषाटीका (मारण मोहन वशीकरण उच्चाटनादि विधि) वर्णित है	।)
आल्हामहाभारत सभापर्व (द्रौपदीका चीरहरणादि)	॥=)

जाहिरात.

पुस्तकोंका नाम.	कीमत.
द्वादशग्रन्थी (गुरूनानकजीकी) सिक्खोंको परमोपयोगी....	॥)
करेरखा संख्यावली (छंदवद्ध सुगमसामुद्रिक)	।)
तुलसीदासजी रचित (षोडश रामायण) अर्थात् १६ काव्य एकत्र उत्तम विलायती कपड़ेकी जिल्द बंधी है और अलग २ भी मिलतेहैं	२)
शृंगारतिलक भाषाटीका सहित	।)
पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश—वेदांत वर्णन (कामलीवाले बाबाकीबनाईहुई)....	३)
भक्तिचंन्द्रिका (छंदवद्ध भक्तिनिरूपण)	॥)
दोलोत्सवदीपिका (श्रीरघुनाथजीके झूलाकेपद)	।-)
शम्भुचालीसी (रुचिरकवित्तोंमें शिवस्तुति)	=)
बुद्धिप्रवेश (लौकिककामोंमें शिक्षा)	।)
विक्रमविलास (रोचक छन्दवद्ध बैतालपचीसी)	॥)
रघुराजविलास-भक्तिउल्लासक रामकृष्णकेपद महाराजा रीवांधिपति रघुराजसिंहकृत	।-)
रामाष्टयाम (श्रीसीतारामजीके आठों प्रहरके क्रीडाचरित्र रुचिर दोहा चौपाइयोंमें)	।=)
त्रियातिमिर नाशक (यथा नामा तथा गुणाः)....	।=)
भाषाभूषण (नायकाभेद मधुर छंदवद्ध)	=)
चिठ्ठीदोहाप्रकाश (चिठ्ठी लिखनेकी रीति)	।)
दशोपनिषद् भाषा (स्वामि अच्युतानन्द कृत) बहुत सुगम भाषानुवाद	२)
कलियुगाचार्य्यस्तोत्र	-)
पदावली (महंतरामसखेकृत-रामपद)	॥)
विराटपर्व नैपाली भाषा	।)
काव्यसंग्रह (प्राचीन रोचक कवित्त सवैया)....	॥)
मसलानामा (मनभावनकाव्य)	=)
कारकस्वरूप भाषाटीका सहित	।=
कान्यकुब्ज वंशावली	।=)
श्रृंगारादिनवरस निरूपण (प्रत्येक श्लोककी टीका शृङ्गार व शान्तपक्षपर है)	॥)
पंचांग सं० १९५३ महीधरजी कृत	।)
वेदांत डिम्डिम्	-)॥
नवग्रहकाण्डी (नित्यपूजाविधानपद्धति)	=)
सनातनधर्मदीपक भाषा (धर्मशास्त्राकूल उदाहरणों समेत सनातन धर्म मण्डन)...	॥)
ब्रजरस कवित्तावली (श्रीराधाकृष्ण की लीला ब्रजमहिमा प्रियादासशुक्लकृत)	।)
भक्तिज्ञानानन्दामृतवर्षिणी (भक्तिज्ञानका प्रतिपादन सौ कुंडलियोंमें प्रियादास शुक्लजी रचित)	≡)
साम्प्रत समयानुसार मानवीकर्त्तव्यकर्मधर्म (मनुष्योंको नैमित्तिक कामोंमें अत्यंत लाभकारी)	≡)
महाविद्यास्तोत्र (पाठकरने योग्य)	-)
कल्याणकल्पदुम (रोचकछन्दवद्ध वेदान्त मार्गमें सूक्ष्म रामायण)	।)
रसिक छबीली (गौनेसमयके हास्य रसके दोहा पहेली)	=)
पार्वणश्राद्ध सटीक	।)
मलमास माहात्म्य	।=)
महाभारत सबलसिंहकृत (दोहा चौपाईमें)	२॥)
कजरी रागसंग्रह (देखनेही योग्य)	।)
नैषधकाव्य भाषा (छन्दवद्ध)	१)
मंत्रमहोदधि अत्युत्तम छपता है ...	

अग्रवालोंकी उत्पति(अग्रवालोंभाइको बिना मूल्य दिया जायगा ।

इसके सिवाय बड़ा सूचीपत्र अलग छपा है आध आनेका टिकट भेजनेसे बिना मूल्य दिया जाता है ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,
“श्रीवेङ्कटेश्वर” छापाखाना.
(मुम्बई)

इदमध्यात्मरामायणोत्तरकाण्डं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन खेमराजेन स्वकीये 'श्रीवेङ्कटेश्वर' यन्त्रालयेऽङ्कित्वा प्रकाशितम्. संवत् १९५२,
शके १८१७, सन् १८९५.

इत्यध्यात्मरामायणे भाषाटीकासमेते उत्तरकांडं स०

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN